तुलनात्मक प्रशासनिक व्यवस्थाएँ

[Comparative Administrative Systems]

डॉ. सुरेन्द्र कटारिया

अनुक्रमणिका

नवें संस्करण की भूमिका *vii*

आमुख *ix*

1 **तुलनात्मक लोक प्रशासन : अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्त्व** 1
(Comparative Public Administration : Meaning, Nature, Scope and Importance)

तुलनात्मक लोक प्रशासन : अर्थ / 2
- अवधारणा / 4
- प्रकृति / 5
- क्षेत्र / 6
- तुलना के बिन्दु / 8

तुलनात्मक लोक प्रशासन की विकास यात्रा / 9

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के उत्तरदायी कारण / 11
- महत्त्व / 14

विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन / 15

विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन / 16
- विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक समस्याएँ / 19
- विकासशील देशों में प्रशासनिक व्यवस्था के लक्षण / 20

विकसित राष्ट्रों में लोक प्रशासन / 25
- विकसित देशों में प्रशासनिक व्यवस्था के लक्षण / 26

लोक प्रशासन की पारिस्थितिकी (पर्यावरण) / 31
- महत्त्व / 32
- लोक प्रशासन एवं राजनीतिक पर्यावरण / 33

- लोक प्रशासन एवं आर्थिक पर्यावरण / 37
- लोक प्रशासन एवं सामाजिक पर्यावरण / 40
- लोक प्रशासन एवं सांस्कृतिक पर्यावरण / 42

2 **तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के उपागम** **46**
(Approaches to the Study of Comparative Public Administration)
संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम / 49
- आलोचना / 52

व्यवहारवादी उपागम / 52
- अन्य विशेषताएँ या मान्यताएँ / 54
- आलोचना / 55

विकास प्रशासन उपागम / 56
- आलोचना / 58

पारिस्थितिकीय उपागम / 58
- आलोचना / 60

फ्रेड रिग्स का योगदान / 60
- तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रवृत्तियाँ / 61
- पारिस्थितिकीय उपागम / 61
- संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम / 62
- कृषका-औद्योगिका प्रतिमान / 63
- संयोजित-समपार्श्वीय-विवर्तित प्रतिमान / 64

3 **ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था** **67**
(Administrative System in United Kingdom)
- संवैधानिक विकास / 69

ब्रिटिश संविधान की मुख्य विशेषताएँ / 71
- शासन व्यवस्था / 75

संसदीय व्यवस्था / 79
- गुण अथवा लाभ / 82
- संसदीय प्रणाली के दोष अथवा हानियाँ / 83

प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमण्डल / 86
- ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की विशेषताएँ / 86

प्रधानमंत्री / 88
- योग्यताएँ / 88
- पदमुक्ति / 89
- कार्य एवं भूमिका / 89

ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ / 90
- नियंत्रण व्यवस्था / 97

ब्रिटेन में ओम्बुड्समैन / 99
मंत्रिमण्डल सचिवालय / 101
- संगठन / 102
- कार्य एवं भूमिका / 103

गृह विभाग / 105
- संगठन / 105
- कार्य / 107

राजकोष / 108
- संगठन / 108
- कार्य एवं भूमिका / 109

4 **संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासनिक व्यवस्था** **112**
(Administrative System in USA)
- संवैधानिक विकास / 116

अमेरिकी संविधान की मुख्य विशेषताएँ / 118
- शासन व्यवस्था / 125

अध्यक्षीय शासन प्रणाली / 127
- गुण / 129
- दोष / 131

राष्ट्रपति / 132
- योग्यताएँ / 133
- कार्यकाल / 133
- निर्वाचन / 133
- शपथ / 135
- वेतन, भत्ते एवं उन्मुक्तियाँ / 135
- पदमुक्ति / 136
- शक्तियाँ एवं कार्य / 137

अमेरिकी राष्ट्रपति की भारत के राष्ट्रपति से तुलना / 141
- भारत तथा अमेरिका के राष्ट्रपति पद में समानताएँ / 144

अमेरिकी प्रशासन की मुख्य विशेषताएँ / 144
- नियंत्रण व्यवस्था / 151

राज्य प्रशासन / 154
अमेरिका में गवर्नर / 158
- शक्तियाँ / 160

- लेफ्टिनेन्ट गवर्नर / 161

स्वतंत्र नियामकीय आयोग / 161
- कारण / 162
- विशेषताएँ / 163
- संगठन एवं कार्यप्रणाली / 164
- कार्य / 165
- प्रकृति / 165
- लाभ तथा महत्त्व / 166
- आलोचना / 167

5 फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था 169
(Administrative System in France)
- संवैधानिक विकास / 171

फ्रांसिसी संविधान की मुख्य विशेषताएँ / 173
- शासन व्यवस्था / 176
- अध्यक्षीय शासन व्यवस्था / 178

राष्ट्रपति / 180
- योग्यताएँ / 180
- निर्वाचन / 180
- कार्यकाल / 181
- शक्तियाँ एवं कार्य / 181
- आपातकालीन शक्तियाँ / 182

प्रधानमंत्री / 183
- नियुक्ति / 183
- पदमुक्ति / 183
- शक्तियाँ एवं कार्य / 183

मंत्रिपरिषद् / 184
- गठन / 184
- पदमुक्ति / 185

फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ / 185
- नियंत्रण व्यवस्था / 192

राज्य परिषद् / 194
- विकास / 194
- संगठन / 194
- शक्तियाँ / 196
- कार्य / 196

- कार्यक्षेत्र / 196
- आधार / 197
- कार्यप्रणाली / 198

6 चीन की प्रशासनिक व्यवस्था 200
(Administrative System in China)
- संवैधानिक विकास / 202

जनवादी चीन के संविधान की मुख्य विशेषताएँ / 203
- शासन व्यवस्था / 207

चीन की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ / 210

7 नेपाल की प्रशासनिक व्यवस्था 216
(Administrative System in Nepal)
- संवैधानिक विकास / 217
- सन् 1990 के नेपाली संविधान की प्रमुख विशेषताएँ / 219
- पूर्ववर्ती शासन व्यवस्था / 219
- गणतंत्र की दिशा में कदम / 220
- अन्तरिम संविधान की प्रमुख विशेषताएँ / 221

नेपाल की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ / 222

8 स्वीडन में ओम्बुड्समैन 228
(Ombudsman in Sweden)
- विकास यात्रा / 228
- चयन एवं कार्यकाल / 230
- वेतन-भत्ते / 231
- कार्यक्षेत्र / 231
- कार्य / 231
- कार्यप्रणाली एवं शक्तियाँ / 233
- उपादेयता / 234
- आलोचना / 235

स्वीडन में ओम्बुड्समैन तथा भारत में लोकपाल या लोकायुक्त संस्था की तुलना / 236

बहुविकल्पात्मक, लघूत्तरात्मक एवं निबन्धात्मक प्रश्न 239

1

तुलनात्मक लोक प्रशासन : अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्त्व

(Comparative Public Administration : Meaning, Nature, Scope and Importance)

इल्मदां समझते हैं, तकरीरों से बदलता है जमाना,
सियासतदां कहते हैं, नारों से बदलता है जमाना,
हाकिमों ने फरमाया है, हुक्मनामों से बदलता है जमाना,
कातिबों ने लिखा है, कायदों से बदलता है जमाना,
पर मिजाजेजहां बदलने को, ये काफी नहीं होता,
नसीहत देने वाले खुद बदलें, तो बदलता है जमाना ॥

हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान, जयपुर से सेवानिवृत्त **डॉ. जे.सी. कुक्कड़** (Professor in Behavioural Science) की ये चन्द पंक्तियाँ समग्र मानव-चरित्र को न केवल स्पष्ट करती हैं बल्कि सुधारों तथा परिवर्तन के नाम पर बहाए जा रहे घड़ियाली आँसुओं पर भी करारी चोट करती हैं।

वस्तुतः मानव, स्वभाव से ही तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। तुलना करने की प्रवृत्ति तथा आवश्यकता ही अच्छाई-बुराई, उच्च-निम्न, अपना-पराया, आवश्यक-अनावश्यक तथा नूतन-पुरातन का भेद स्पष्ट करती हैं। इसी प्रकार समस्त नाप-तौल, मूल्यांकन एवं गणनाएँ भी केवल तुलना पर आधारित हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई अभूतपूर्व प्रगति एवं संचार क्रांति के परिणामस्वरूप विश्व भौगोलिक रूप से अवश्य ही सिमटता हुआ दिखाई दे रहा है किन्तु दिलों की दूरियाँ उसी अनुपात में बढ़ रही हैं।

लोक प्रशासन चूँकि वर्तमान सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का केन्द्रबिन्दु बन चुका है अतः मानव समाज की प्रत्येक गतिविधि इसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करती रहती है। सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक कारकों में हो रहे परिवर्तन के अनुरूप लोक प्रशासन का पर्यावरण भी प्रभावित हुआ है। लोक प्रशासन न केवल पर्यावरण के विविध घटकों से प्रभावित होता है बल्कि स्वयं लोक प्रशासन अपने

पर्यावरण यथा—समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति, कानून, सांस्कृतिक मूल्यों एवं परम्पराओं को व्यापक रूप से प्रभावित भी करता है क्योंकि लोक प्रशासन प्रत्यक्षत: व्यक्ति के जीवन से सम्बद्ध हो चुका है। इस सम्बन्ध में **डिमॉक** लिखते हैं—''वर्तमान में लोक प्रशासन, व्यावहारिक रूप से हमारे सम्पूर्ण जीवन तथा इसके कार्यों पर छा चुका है तथा यह हमारी सभ्यता का मूलाधार बन चुका है। लोक प्रशासन आधुनिक सभ्य समाजों का अंग है जिसमें राज्य के उस स्वरूप ने जन्म लिया है जिसे हम 'प्रशासकीय राज्य' कहते हैं।''

संयुक्त राज्य अमेरिका की **पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली** *(Political Science Quarterly)* पत्रिका में **वुडरो विल्सन** के लेख 'The Study of Administration' से शुरू हुई लोक प्रशासन की शैक्षिक यात्रा अनेक मोड़ों से गुजर चुकी है। लोक प्रशासन के जनक वुडरो विल्सन ने राजनीति तथा प्रशासन में पर्याप्त अन्तर बताते हुए इन्हें पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण से समझने पर बल दिया था। **वुडरो विल्सन** ने तुलनात्मक अध्ययनों की भी अनुशंसा की थी किन्तु लोक प्रशासन में तुलनात्मक अध्ययन देरी से शुरू हुए। कालान्तर में अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका तथा एशिया महाद्वीपों के अनेक देशों में लोक प्रशासन के सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं तथा कार्यप्रणालियों के सम्मुख नित्य नई चुनौतियाँ उत्पन्न होने लगीं। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सभी सामाजिक विज्ञान जो मूलत: मानव स्वभाव तथा समाज के कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित हैं उनकी प्रकृति अन्तरविषयी तथा अन्तरनिर्भर होना स्वाभाविक है। अत: नवीन लोक प्रशासन की विचारधाराएँ राजनीति विज्ञान से अलगाव नहीं बल्कि घनिष्ठता एवं समन्वय पर बल देती हैं।

तुलनात्मक लोक प्रशासन एक आधुनिक अवधारणा है जो दो या अधिक प्रशासनों के अध्ययन पर बल देती है। समाजशास्त्री **इमाइल दुर्खिम** मानते हैं कि किसी भी जटिल सामाजिक तथ्य की सुसंगत व्याख्या तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग के बिना सम्भव नहीं है। ऐसी ही मान्यताएँ राजनीति विज्ञान तथा मनोविज्ञान में प्रचलित हैं क्योंकि तुलना के आधार पर ही सत्य का मार्ग ढूँढा जा सकता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन : अर्थ
(Comparative Public Administration : Meaning)

सामान्य अर्थों में दो या अधिक देशों, क्षेत्रों, प्रांतों या स्थानों की लोक प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मध्य तुलनात्मक अध्ययन ही तुलनात्मक लोक प्रशासन है।

निमरोद रैफिली के अनुसार—''तुलनात्मक लोक प्रशासन तुलनात्मक आधार पर लोक प्रशासन का अध्ययन है।''

अमेरिकन सोसायटी फॉर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के **तुलनात्मक प्रशासनिक समूह** (Comparative Administrative Group–CAG) के अनुसार—''विभिन्न संस्कृतियों तथा राष्ट्रीय परिदृश्य में प्रयुक्त हुए लोक प्रशासन के सिद्धान्त तथा तथ्यात्मक सामग्री जिसके द्वारा इनका विस्तार और परीक्षण किया जा सकता है, तुलनात्मक लोक प्रशासन के अंग हैं।''

एफ.डब्ल्यू. रिग्स के अनुसार—''तुलनात्मक शब्द का प्रयोग अनुभवमूलक तथा सिद्धान्त निर्माण में सहायक अध्ययनों के लिए ही किया जाना चाहिए। तुलनात्मक लोक प्रशासन, आदर्शमूलक उपागम से अनुभवमूलक उपागम की ओर जाने, विशिष्टता (Ideographic) से सामान्यपरकता (Nomothetic) की ओर जाने तथा गैर पारिस्थितिकीय से पारिस्थितिकीय आधार को ढूँढ़ने की प्रवृत्तियाँ रखता है।''

गाई पीटर्स के शब्दों में—''यदि प्रशासन की जाँच का एक विशाल तथा सामान्य क्षेत्र समझा जाए तो तुलनात्मक लोक प्रशासन इसकी एक विशिष्ट शाखा है जो प्रशासन के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक वातावरण को समझने में हमारी सहायता करती है।''

हारून ए. खान के अनुसार—''तुलनात्मक लोक प्रशासन, दूसरे देशों के लोक प्रशासन के अध्ययन करने को कहते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन की निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

1. यह लोक प्रशासन के ज्ञान की एक नई शाखा है।
2. यह लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में नूतन अवधारणा है।
3. यह दो या अधिक प्रशासनिक संगठनों, देशों तथा व्यवस्थाओं के बीच तुलनात्मक विश्लेषण अध्ययन करने से सम्बन्धित है।
4. इसमें पूर्व के परम्परागत सिद्धान्तों के स्थान पर वैज्ञानिक विधि को अधिक बल दिया जाता है।
5. विशिष्टता के स्थान पर सामान्यीकरण की ओर जाने के प्रयास किए जाते हैं।
6. लोक प्रशासन को एक निर्जीव यंत्र मानने की बजाए उसे ऐसे ढाँचे के रूप में देखा जाता है जो अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है तथा पर्यावरण के घटकों को प्रभावित भी करता है।
7. यह विश्व के देशों, राज्यों तथा संगठनों के मध्य दूरी बनाए रखने के स्थान पर उनमें समीपता लाने तथा एक-दूसरे से प्रेरणा पाने के लिए प्रयासरत है।
8. तुलनात्मक लोक प्रशासन की विचारधारा अन्य समाज विज्ञानों से पृथकता बनाए रखने के स्थान पर उनसे समन्वय स्थापित करने एवं अन्तर्विषयी दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देती है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन की आधारभूत विशेषताओं के अनुसार यह विषय विभिन्न संगठनों, संस्थाओं, अभिकरणों तथा विभागों इत्यादि की संरचना एवं प्रक्रियाओं को समझता है। ये प्रशासनिक संगठन विभिन्न देशों में विभिन्न संस्कृतियों एवं पर्यावरण में स्थित रहते हैं। अत: एक योजनाबद्ध तरीके से इन संगठनों के सिद्धान्तों, संरचना तथा कार्यप्रणाली का अध्ययन किया जाना चाहिए ताकि विश्व स्तर पर या राष्ट्रीय स्तर पर कतिपय ऐसे नियम या सिद्धान्त बनाए जा सकें जो प्रशासन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के साथ-साथ इसकी समस्याओं के समाधान में भी सहायक हो सकें।

तुलनात्मक प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के अग्रांकित उद्देश्य

तुलनात्मक आधार पर प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के अग्रांकित उद्देश्य रहते हैं—

1. विशिष्ट प्रशासनिक समस्याओं, पद्धतियों, कार्यप्रणाली, संरचना तथा नीतियों का अध्ययन करके सामान्य नियमों और सिद्धान्तों की व्याख्या करना;
2. प्रशासकीय व्यवहारों में विभिन्न राष्ट्रों, संस्कृतियों, व्यवस्थाओं तथा पर्यावरण का विश्लेषण एवं व्याख्या करना;
3. विभिन्न प्रशासनिक संगठनों, उनके स्वरूपों तथा पद्धतियों की तुलनात्मक परिस्थितियों की पहचान कर उनकी सफलताओं तथा आवश्यकताओं के कारणों की जाँच-पड़ताल करना;
4. विभिन्न देशों तथा स्तरों पर प्रवर्तित प्रशासनिक सुधारों की कार्यनीति को समझने का प्रयास करना; तथा
5. लोक प्रशासन के क्षितिज को अधिक व्यापक, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक बनाने के प्रयास करना।

फैरेल हैडी ने सिद्धान्तों (Theories) की खोज, उनको व्यवहार में क्रियान्विति, तुलनात्मक राजनीति के योगदान, प्रशासनिक विधि में प्रशिक्षित विशेषज्ञों की रुचि तथा लोक प्रशासन की समस्याओं के तुलनात्मक विश्लेषण को तुलनात्मक लोक प्रशासन के 'प्रेरक मुद्दे' करार दिया है।

अवधारणा (Concept)

अवधारणा किसी विचार या किसी वस्तु के सार सम्बन्धित सिद्धान्त को कहते हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा बहुत प्राचीन नहीं है बल्कि इसका उदय कुछ दशक पूर्व ही हुआ है। लोक प्रशासन विषय की स्थापना के शुरुआती दिनों में स्थानीय प्रशासनिक समस्याओं को सुलझाने तथा विश्लेषित करने के लिए संकीर्ण विचारधाराएँ प्रचलित थीं किन्तु कालान्तर में लोक प्रशासन का दृष्टिकोण विस्तृत होता चला गया जिसमें अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन करना भी प्रमुख था।

रॉबर्ट जेक्सन के अनुसार तुलनात्मक लोक प्रशासन की चार प्रमुख मान्यताएँ हैं—

1. प्रशासनिक व्यवहार में कतिपय ऐसी प्रवृत्तियाँ भी होती हैं जिनका व्यवस्थित विश्लेषण तथा अध्ययन किया जा सकता है तथा उनके आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण भी किया जा सकता है।
2. प्रशासन के क्षेत्र में जो पद्धतियाँ तथा कार्यप्रणाली अपनाई जाती है उनका संस्कृतियों तथा राष्ट्रों के सन्दर्भ में अध्ययन किया जा सकता है।
3. विभिन्न राष्ट्रीय, सांस्कृतिक संक्रमणकालीन अध्ययनों के पश्चात् जो निष्कर्ष प्राप्त हों, उनका परीक्षण किया जा सकता है।
4. इस तुलनात्मक अध्ययन तथा विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों को विभिन्न स्तरों पर लागू किया जा सकता है ताकि कुछ आधारभूत सामान्यीकृत नियम सामने आ

सकें। विभिन्न प्रकार की प्राक्कल्पनाओं एवं प्रारूपों इत्यादि का निर्माण करके अन्ततः एक सामान्य सिद्धान्त की ओर कदम बढ़ाए जा सकते हैं।

वस्तुतः रॉबर्ट जेक्सन की मान्यताएँ तुलनात्मक आधार पर अध्ययन करके लोक प्रशासन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने पर बल देती हैं ताकि कुछ ऐसे नियम एवं सिद्धान्त प्रतिपादित किए जा सकें जो सम्पूर्ण विश्व की विविध प्रकार की सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं राजनीतिक पर्यावरण में समान रूप से लागू हो सकें क्योंकि अभी लोक प्रशासन के समस्त नियम, पद्धतियाँ तथा कार्यप्रणालियाँ पर्याप्त विभिन्नता लिए हुए हैं।

एफ.डब्ल्यू. रिग्ज ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के क्रम (सन् 1962) में तीन प्रकार की प्रवृत्तियों का वर्णन किया है—

1. **आदर्शात्मक से अनुभवमूलक उन्मुखता** (Normative to Empirical) : अर्थात् केवल सैद्धान्तिक नियमों की व्याख्या करने या केवल आदर्शों की चर्चा करने के स्थान पर उन परिस्थितियों को अधिक महत्त्व दिया जाए जो वास्तव में हमारे सामने हैं तथा प्रशासन को प्रभावित करती हैं। यह 'क्या होना चाहिए' के स्थान पर 'क्या है' पर अधिक ध्यान देता है।
2. **विशिष्टता से सामान्यपरकता** (Ideographic to Nomothetic) : रिग्ज के अनुसार विशिष्टता (Ideographic) अर्थात् किसी एक संगठन, व्यक्ति या समाज के अध्ययन के बजाए उन तथ्यों को अधिक महत्त्व दिया जाए जो सामान्यपरक (Nomothetic) या व्यापकता लिए होते हैं। विशिष्टता के स्थान पर सामान्यपरकता तभी आ सकती है जबकि हम तुलनात्मक अध्ययनों पर बल दें।
3. **गैर पारिस्थितिकीय से पारिस्थितिकीय** (Non Ecological to Ecological) : अर्थात् लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक पर्यावरण का भी गहनता से अध्ययन किया जाए। यह पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण है जो वर्तमान में तुलनात्मक लोक प्रशासन की मुख्य आवश्यकता माना जाता है।

प्रकृति (Nature)

तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति लोक प्रशासन विषय से भी अधिक वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत मानी जाती है। इस सम्बन्ध में **रॉबर्ट डाल** का मानना है—"जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं बनाया जाता, तब तक लोक प्रशासन को विज्ञान मानने का दावा खोखला ही बना रहेगा।"

फैरेल हैडी ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति को चार रूपों में विभक्त किया है—

1. सुधरी हुई पारस्परिक प्रकृति।
2. विकासमान प्रकृति।
3. सामान्य प्रणाली का प्रारूप।
4. मध्यवर्ती सिद्धान्तों का प्रारूप।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं तथा संगठनों के बीच परस्पर तुलना करने तथा विश्लेषित कर निष्कर्ष प्राप्त करने की प्रकृति रखता है। इसमें उन तथ्यों तथा समंकों को सर्वाधिक महत्व या प्राथमिकता प्रदान की जाती है जो सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए उत्तरदायी हैं अथवा वह समस्याएँ हैं जो सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रतिफल स्वरूप उत्पन्न हुई हैं। सामान्य प्रणाली के प्रारूप से तात्पर्य यह है कि सामाजिक परिवेश के अनुरूप ही प्रशासन तंत्र संचालित होता है अतः एक ऐसा मॉडल या प्रारूप निर्मित किया जाता है जो सामान्य रूप से समाज एवं प्रशासन पर लागू किया जा सके। मध्यवर्ती सिद्धान्तों के प्रारूप से तात्पर्य उन सिद्धान्तों के पालन से है जो सभी पक्षों पर व्यावहारिक रूप से लागू किए जा सकते हैं तथा जिनका तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक परीक्षण किया जा सकता है।

रॉबर्ट टी. गोलेम्ब्युस्की ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की तीन विषयवस्तुओं (Themes) को रेखांकित किया है—

1. यह ध्यान केन्द्रित करने योग्य विषयों या मुद्दों को महत्त्व देता है।
2. परिणाम दे सकने वाले प्रयासों को महत्त्व देता है।
3. उपागम या अध्ययन पद्धतियों को अपनाने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करता है।

उपर्युक्त वर्णित विषयवस्तु तुलनात्मक लोक प्रशासन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने, व्यापकता देने तथा तार्किक एवं व्यावहारिक उपादेयता सिद्ध करने की दिशा में निर्देश हैं ताकि सफलतापूर्वक आगे बढ़ा जा सके।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का मुख्य बल निम्नांकित बिन्दुओं पर रहता है—

1. कई उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए, संगठनों को विशिष्ट संस्कृतियों तथा राजनीतिक पर्यावरण के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।
2. लोक प्रशासन में प्रचलित सिद्धान्त अपर्याप्त हैं अतः उनको परिपूर्ण बनाया जाना चाहिए।
3. प्रत्येक प्रशासन तथा इसका व्यवहार कई प्रकार के मूल्यों (Values) से सराबोर है अतः तदनुरूप विश्लेषण करना चाहिए।
4. किसी भी अध्ययन की उपादेयता सिद्ध करने के लिए सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों पक्षों को सम्मिलित कर विश्लेषण करना चाहिए।

रॉबर्ट डाल का कहना है—"लोक प्रशासन के अध्ययन को अनिवार्यतः और अधिक व्यापक आधार वाला विषय होना चाहिए। केवल तकनीकों एवं विधियों की संकुचित परिभाषा वाले ज्ञान पर आधारित न रह कर इसे घटते-बढ़ते ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य अनुकूलक घटकों तक विस्तृत होना चाहिए।"

क्षेत्र (Scope)

तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन क्षेत्र विश्वव्यापी है। किसी भी देश के आन्तरिक प्रशासनिक संगठनों का अन्तर्देशीय (In Country) अध्ययन भी हो सकता है तो देशों के

मध्य अन्तरराष्ट्रीय (International) अध्ययन भी किया जा सकता है। सामान्यतः तुलनात्मक लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र तीन रूपों में विभक्त किया जाता है—

(1) वृहद् स्तरीय अध्ययन (Macro Level Study) : जब किन्हीं दो या अधिक देशों के सम्पूर्ण प्रशासकीय ढाँचे का अथवा प्रशासनिक व्यवस्थाओं का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है तो यह वृहद् स्तरीय तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन कहलाता है। **इस पुस्तक में वर्णित फ्रांस, ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका इत्यादि का तुलनात्मक अध्ययन वृहद् स्तरीय ही है;** जिसके अन्तर्गत इन देशों के सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक एवं राजनीतिक पर्यावरण के साथ-साथ संवैधानिक प्रावधान तथा प्रवर्तित प्रशासनिक विशेषताओं तथा कार्यप्रणाली का स्थूल विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(2) मध्य स्तरीय अध्ययन (Medium/Meso Level Study) : मध्य स्तरीय तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत उन अध्ययनों को सम्मिलित किया जाता है जो न तो बहुत व्यापक या वृहद् होते हैं और न ही अत्यन्त सूक्ष्म या लघु होते हैं। इन अध्ययनों के अन्तर्गत किसी देश के प्रशासनिक तंत्र के किसी एक भाग (अंग) को, दूसरे देश के उसी भाग से परस्पर तुलना की जाती है। जैसे कि भारत की नौकरशाही या लोक सेवाओं की ब्रिटेन की लोक सेवाओं से तुलना करना या भारत की स्थानीय प्रशासन प्रणाली का फ्रांस की नगरीय सरकारों से तुलना करना। वस्तुतः इस प्रकार के अध्ययनों का उद्देश्य किसी समस्या या क्षेत्र विशेष के गुण-दोषों को जानकर एक सामान्यीकृत नियम को ढूँढना होता है।

(3) लघु स्तरीय अध्ययन (Micro Level Study) : वर्तमान में लोक प्रशासन सहित अधिकांश सामाजिक विज्ञानों यथा—इतिहास, अर्थशास्त्र, नृविज्ञान, समाजशास्त्र तथा राजनीति विज्ञान इत्यादि में वृहद् स्तरीय अनुसंधान करने के बजाए किसी एक इकाई की एक समस्या का गम्भीर तथा गहन (सूक्ष्म) अध्ययन करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में प्रशासन की किसी कार्यप्रणाली, प्रक्रिया या विशिष्ट समस्या जैसे—हड़ताल करना, फाइल निस्तारण, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, अनुपस्थित रहना या प्रशिक्षण की पद्धतियाँ इत्यादि किसी भी एक बिन्दु को लेकर उसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। निस्सन्देह यह अध्ययन भी तुलनात्मक ही होता है किन्तु इसका दायरा विस्तृत नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन, समान स्तरों पर (सम स्तरीय) तथा असमान स्तरों (विषम स्तरीय) पर भी संचालित किए जाते हैं जैसे—अमेरिका के राज्य प्रशासन का भारत के राज्य प्रशासन के साथ तुलनात्मक अध्ययन सम स्तरीय है किन्तु भारत के जिला प्रशासन की अमेरिका के राज्य प्रशासन से तुलना विषम स्तरीय होगी।

कार्य प्रकृति की दृष्टि से तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र इस प्रकार भी हो सकता है—

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र **अन्तरराष्ट्रीय** (दो देशों के मध्य) हो सकता है। दो से अधिक देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन भी किया जा सकता है जिसे **बहु राष्ट्रीय विश्लेषण** कहा जाता है।
2. इसका क्षेत्र **अन्तर्देशीय** (देश के अन्दर ही) हो सकता है, जबकि एक ही देश की दो संस्थाओं जैसे—रेलवे बोर्ड तथा रिजर्व बैंक का आपसी अध्ययन।
3. यह **अन्तरसांस्कृतिक** भी हो सकता है जैसे कि अमेरिका के लोक सेवकों का तथा भारत के लोक सेवकों का जनता से व्यवहार का अध्ययन।
4. इसमें **समसामयिक** (Contemporary) तथा **संकर सामयिक** (Cross Contemporary) अध्ययन भी किए जाते हैं जैसे कि आज के भारत की जापान से तुलना समसामयिक है किन्तु आज के भारतीय प्रशासन की मौर्यकाल से तुलना संकरसामयिक प्रकृति की होगी। इसे बहु कालात्मक विश्लेषण भी कहा जाता है।
5. तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों में **विकसित, विकासशील** तथा अत्यन्त पिछड़े देशों के मध्य भी अध्ययन किया जा सकता है।
6. इसमें प्रशासन की कार्यप्रणाली, संरचना, संगठन, कारणों, पर्यावरण तथा सन्दर्भों के आधार पर भी अध्ययन हो सकते हैं। इन्हें **अन्तरसंरचनात्मक, अन्तरसंस्थागत, अन्तरविधायी** तथा **अन्तरपर्यावरणीय** अध्ययन कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए भारत के मंत्रिमण्डल सचिवालय के ढाँचे की ब्रिटेन के मंत्रिमण्डल सचिवालय के संगठन से तुलना अन्तरसंगठनात्मक अध्ययन की श्रेणी होगी।

तुलना के बिन्दु (Points of Comparison)

तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र अत्यन्त विशद् तथा रोचक है। अध्ययन एवं अनुसंधान की विविध सीमाओं तथा बाध्यताओं, साथ ही साथ अध्ययनों की उपादेयता को देखते हुए कतिपय विशिष्ट बिन्दुओं या **विषयवस्तु** को तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन में सम्मिलित किया जाता है, जैसे—

1. प्रशासनिक प्रणालियों या व्यवस्थाओं का पर्यावरण।
2. सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना एवं कार्यकरण।
3. पदसोपान, कार्य-विभाजन, सत्ता, कर्तव्य, केन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकरण, नियंत्रण, विशेषीकरण तथा श्रम-विभाजन इत्यादि प्रशासनिक बिन्दु। यह प्रशासनिक तंत्र का औपचारिक स्वरूप है।
4. प्रशासनिक संगठनों में अनौपचारिक संगठन तथा उनके व्यावहारिक आयाम जैसे—अभिप्रेरणा, मैत्री सम्बन्ध, मनोबल का स्तर, अनौपचारिक संचार, नेतृत्व तथा वर्गीय भावनाएँ।
5. संगठन में कार्यरत व्यक्तियों की विविध भूमिकाएँ।
6. प्रशासनिक कार्यप्रणाली, संगठनात्मक व्यवहार तथा कार्मिकों के मध्य अन्तरसम्बन्ध।
7. नीति एवं निर्णय को प्रभावित करने वाले तथा उससे सम्बद्ध तंत्र।

8. प्रशासनिक एवं संगठनात्मक कार्यकुशलता तथा निष्पादन मूल्यांकन।
9. संचार की सम्पूर्ण प्रणाली।
10. संसाधनों तथा प्रशासनिक लक्ष्यों के क्रम में अन्तरसम्बन्ध।

लोक प्रशासन में बढ़ती विशेषज्ञता तथा विकास प्रशासन की आवश्यकता ने कई शाखाओं जैसे—आर्थिक प्रशासन, सामाजिक प्रशासन, स्वास्थ्य प्रशासन, शैक्षिक प्रशासन, ग्रामीण प्रशासन, नगरीय प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, कार्मिक प्रशासन, राज्य प्रशासन, सुधार प्रशासन, पर्यावरण प्रशासन तथा ऊर्जा प्रशासन इत्यादि को जन्म दिया है जो तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों के लोकप्रिय क्षेत्र भी बन रही हैं।

निष्कर्षतः तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र भी उतना ही विस्तृत हो सकता है जितना कि स्वयं लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र है। इसमें नियोजन, संगठन, कार्मिक, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन, बजट, नीति, विधि, जन सम्पर्क तथा कार्यक्रम क्रियान्वयन सहित प्रशासन के पर्यावरणीय कारकों के आधार पर गहन या व्यापक अनुसंधान आवश्यकतानुसार किए जाते हैं।

तुलनात्मक लोक प्रशासन की विकास यात्रा
(Evolution of Comparative Public Administration)

द्वितीय विश्वयुद्ध (1939–45) को बीसवीं सदी की अधिकांश घटनाओं तथा विश्वव्यापी परिदृश्य का एक निर्णायक मोड़ माना जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन का उदय भी द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् वर्ष 1940–50 के बीच हुआ। युद्ध के पश्चात् अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, जापान, फ्रांस, जर्मनी तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों के समक्ष नई समस्याएँ उत्पन्न हुईं। मानव सभ्यता एवं संस्कृति को लोक कल्याणकारी राज्यों के माध्यम से पोषित करने तथा अन्तरराष्ट्रीय बन्धुत्व बढ़ाने की दिशा में गम्भीर मंथन शुरू हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व लोक प्रशासन का साहित्य बहुत कम मात्रा में तुलनात्मक होता था। आर्थिक सुधार कार्यक्रमों, विकास परियोजनाओं, नव स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय, प्रशासनिक सुधारों की विश्वव्यापी आवश्यकता तथा परम्परागत संस्कृतिबद्ध लोक प्रशासन की न्यूनताओं से खिन्नता के कारण तुलनात्मक लोक प्रशासन का उदय हुआ।

एक विषय के रूप में सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के **प्रो. ड्वाइट वाल्डो** ने सन् 1948 में तुलनात्मक लोक प्रशासन को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया। इसके पश्चात् तुलनात्मक लोक प्रशासन की विषयवस्तु तथा अध्ययन प्रविधि की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। उस समय लोक प्रशासन का प्रचलित साहित्य राष्ट्रीय प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, कार्मिक प्रशासन, लोक वित्त, प्रशासनिक नियंत्रण, विकेन्द्रीकरण तथा संगठनात्मक गतिविधियों से सम्बन्धित था जिसमें पश्चिमी देशों के औद्योगिक स्वरूप की वर्णनात्मक व्याख्या उपलब्ध थी। इस साहित्य में विश्लेषणात्मक तथा समस्योन्मुखी तथ्यों का सर्वथा अभाव था। अतः कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व की लोक प्रशासन से सम्बन्धित विषय सामग्री तुलनात्मक

आधारों पर विनिर्मित नहीं थी। यद्यपि 159 संविधानों (नगर राज्यों का इतिवृत्त—Case Histories अध्ययन) का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले **अरस्तू को तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों का आदि प्रवर्तक माना जाता है** तथापि तुलनात्मक लोक प्रशासन एक नई अवधारणा ही कही जाएगी।

लोक प्रशासन का प्रारम्भिक स्वरूप जर्मन केमरेलिज्म (17वीं सदी) पर आधारित था, जिसकी मुख्य मान्यता यह थी कि उत्पादन के साथ-साथ उसकी प्रबन्ध तकनीक पर ध्यान देकर ही समृद्धि के लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते हैं। कालान्तर में टेलरवाद तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध की विचारधाराएँ सामने आईं। परम्परागत या यांत्रिक दृष्टिकोण के समर्थक विद्वान् प्रशासन को मशीन की भाँति समझते रहे किन्तु 'मानव-सम्बन्ध विचारधारा' ने संगठन में कार्य करने वाले मनुष्यों के आपसी सम्बन्धों को महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर दिया लेकिन इन सबके बावजूद लोक प्रशासन का स्वरूप अत्यधिक वैज्ञानिक न हो पाया था। हरबर्ट साइमन, एडविन स्टीन तथा ड्वाइट वाल्डो ने वैज्ञानिक व्याख्याएँ देनी शुरू की क्योंकि प्रचलित लोक प्रशासन सम्बन्धित मान्यताएँ आदर्शात्मक, संस्कृतिबद्ध, गैर पारिस्थितिकीय तथा एकांगी थीं। व्यवहारवादी आन्दोलन तथा तुलनात्मक राजनीति आन्दोलन ने भी लोक प्रशासन को तुलनात्मक अध्ययनों की ओर प्रेरित किया।

सन् 1952 में प्रिन्सटन में तुलनात्मक प्रशासन विषय पर एक सम्मेलन किया गया तथा सन् 1953 में एक अस्थायी लोक प्रशासन समिति बना दी गई। सन् 1955 में प्रो. मेक्रीडिस ने 'The Study of Comparative Governments' नामक लेख से तुलनात्मक राजनीति एवं तुलनात्मक प्रशासन के सम्बन्ध में तर्कपूर्ण व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। इसी वर्ष एफ.डब्ल्यू. रिग्ज ने अमेरिकी राजनीति विज्ञान परिषद् के सम्मेलन में तुलनात्मक लोक प्रशासन सम्बन्धित अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। अगले वर्ष गेबरियल आमण्ड ने 'तुलनात्मक राजनीतिक व्यवस्थाओं' पर लेख तैयार किया तथा इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति की विचारधाराओं ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की दिशा में गम्भीरतापूर्वक प्रयास करने का मार्ग प्रशस्त किया।

सन् 1963 में अमेरिकन सोसायटी फॉर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के अधीन 'तुलनात्मक प्रशासन समूह' (Comparative Administration Group or CAG) का गठन किया गया। यह समूह सन् 1971 तक फोर्ड फाउण्डेशन की आर्थिक सहायता से अनुसंधान एवं प्रचार कार्य करता रहा। प्रारम्भ में इस समूह की अध्यक्षता **एफ.डब्ल्यू. रिग्ज** ने स्वीकार की। आठ वर्ष पश्चात् रिग्ज के उत्तराधिकारी के रूप में **रिचर्ड गेबल** पदासीन हुए। इस दौरान तुलनात्मक प्रशासन समूह ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को लोकप्रिय तथा उपयोगी बनाने के लिए त्रिपक्षीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया—

1. अनुसंधान कार्यों को बढ़ावा,
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्यापन, तथा
3. विकास प्रशासन के क्षेत्र में अधिक प्रभावी लोक नीति के निर्माण को प्रोत्साहन।

फोर्ड फाउण्डेशन की शर्तों के अनुसार इस समूह ने विकासशील राष्ट्रों की

प्रशासनिक समस्याओं को समझने तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पर्यावरण के सन्दर्भ में व्यवस्थित अध्ययन के सार्थक प्रयास किए। यह समूह अनुसंधान कार्यों, परियोजनाओं, गोष्ठियों तथा सम्मेलनों के माध्यम से तुलनात्मक लोक प्रशासन की दिशा में तेजी से कदम उठाता रहा है। इस समूह के अधीन शुरू में 11 समितियाँ थीं जो समस्योन्मुखी, क्षेत्रीय उपागम तथा सिद्धान्त निर्माण के आधार पर बनाई गई थीं। इन समितियों ने एशिया, यूरोप, लेटिन अमेरिका, अफ्रीका, राष्ट्रीय नियोजन, तुलनात्मक शहरी प्रशासन, विधि निर्माण अध्ययन, तुलनात्मक शैक्षिक प्रशासन तथा व्यवस्था उपागम इत्यादि विषयों पर गहन अध्ययन किया।

तुलनात्मक प्रशासन समूह को विश्व प्रसिद्ध विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त रहा है जिनमें राल्फ बायबण्टी, फ्रेडरिक क्लीवलैण्ड, अल्फ्रेड डायमॉण्ट, सैमुअल आइजनस्टेट, बेत्राम गॉस, फैरेल हैडी, जेम्स हीफी, वारेन इंचमैन, मार्टिन लैण्डाऊ, जॉन मोण्टगोमरी, एफ.डब्ल्यू. रिग्ज, एमिल सेडी, रिचर्ड गेबल, फ्रैंक शेरवुड, ड्वाइट वाल्डो तथा विलियम स्टिफिन प्रमुख हैं। तुलनात्मक प्रशासन समूह ने न केवल लोक प्रशासन को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया बल्कि अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ अन्तरसम्बन्धों को भी प्रगाढ़ किया है।

संयुक्त राष्ट्र के 'आर्थिक एवं सामाजिक मामलों से सम्बन्धित विभाग' के अधीन कार्यरत लोक प्रशासन शाखा ने भी विगत कई दशकों से निरन्तर तुलनात्मक लोक प्रशासन से सम्बन्धित सामग्री प्रकाशित कर विश्व स्तर पर तेजी से बढ़ रही तुलनात्मक साहित्य की माँग को पूरा करने का प्रयास किया है। संयुक्त राष्ट्र में लोक प्रशासन शाखा की स्थापना अमेरिका के लोक प्रशासन निपटान कार्यालय (Public Administration Clearing House) के पुरोधा **रॉलैण्ड इगर** (Rowland Egger) के परामर्श पर की गई थी। भारत सहित अधिकांश देशों के विश्वविद्यालयों द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन विषय पर अध्ययन-अनुसंधान निरन्तर जारी है किन्तु अभी भी विकासशील देशों में इस दिशा में बहुत उल्लेखनीय कार्य नहीं हो पाया है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के उत्तरदायी कारण
(Causes of the Evolution of Comparative Public Administration)

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का विकास कई कारकों पर आधारित रहा है। इन कारकों ने विश्व परिदृश्य में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं कि लोक प्रशासन में तुलनात्मक अनुसंधान एवं अध्ययन अनिवार्य हो गए। कतिपय महत्त्वपूर्ण कारण निम्नांकित माने जाते हैं—

(1) परम्परागत दृष्टिकोण की अपर्याप्तता : लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए प्रचलित यांत्रिक, संगठनात्मक तथा परम्परावादी दृष्टिकोणों ने केवल प्रशासन की आन्तरिक संरचना एवं कार्यप्रणाली को समझने पर ध्यान केन्द्रित करने पर बल दिया था। इन दृष्टिकोणों के आधार पर तीव्रता से परिवर्तित हो रही विश्व-व्यवस्था को समझना

कठिन था। इस सम्बन्ध में **ड्वाइट वाल्डो** ने कहा है—''लोक प्रशासन का परम्परागत दृष्टिकोण संस्कृति-अवरोधी, पश्चिमी यूरोप तक सिमटा हुआ तथा वैधानिक एवं औपचारिकताओं से परिपूर्ण था। इस दृष्टिकोण में अनौपचारिक सम्बन्धों की अनुचित अवहेलना की गई थी तथा संगठन के औपचारिक एवं स्थायी पक्षों पर अधिक जोर दिया गया था। यह दृष्टिकोण मुख्यतः वर्णनात्मक था जिसमें समस्या को समझने, विश्लेषित करने तथा समाधान ढूँढ़ने का मार्ग नहीं था। परम्परागत दृष्टिकोण के सहारे लोक प्रशासन का विद्यार्थी केवल किसी देश के प्रशासन की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकता था, किन्तु दूसरे देशों से उसकी समानता का अन्तर देखने में असमर्थ रहता था।'' इस प्रकार परम्परागत दृष्टिकोण की कमियों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास को प्रेरित किया।

(2) **अनुसंधान की नवीन पद्धतियों तथा अवधारणाओं का उदय :** द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् लोक प्रशासन सहित समस्त समाज विज्ञानों के अध्ययन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आए क्योंकि सामाजिक अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रणालियाँ प्रयोग में लाई जाने लगीं। वस्तुतः समाज वैज्ञानिकों की युवा पीढ़ी ने परम्परागत दृष्टिकोणों को तर्क की कसौटी पर परखना शुरू कर दिया था अतः तुलनात्मक तथा उपयोगी अनुसंधान अनिवार्य हो चुके थे। लोक प्रशासन को अन्तरविषयी आधार पर विश्लेषित किया जाने लगा तथा यह माना गया कि मानव समाज की अधिसंख्य समस्याएँ परस्पर कई कारकों पर निर्भर करती हैं अतः वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किसी विषय को विज्ञान के समीप लाने तथा समस्या-समाधान में सहायक हैं।

(3) **अन्तरराष्ट्रीय निर्भरता :** विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अकल्पनीय प्रगति तथा नवराष्ट्रों के उदय के कारण विश्व स्तर पर देशों के मध्य आपसी दूरी कम हुई तथा परस्पर निर्भरता बढ़ी है। मशीनों के आदान-प्रदान, उत्पादन के आयात-निर्यात, सांस्कृतिक एवं राजनयिक सम्बन्धों, आपसी समझौतों तथा सन्धियों एवं शीत युद्ध के दौरान ध्रुवीकरण के चलते गुटों में बँटना एक सामान्य बात हो गई थी। बीसवीं सदी के पचास तथा साठ के दशक में कई देशों ने स्वतंत्रता की खुली हवा में साँस ली तथा आर्थिक-सामाजिक विकास के अनेक कार्यक्रम निर्धारित किए। इस सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से ऋण एवं अनुदान सहायता भी प्राप्त हुई और साथ में अनुभवजन्य निर्देश एवं नियंत्रण की विधियाँ भी। इन सब कारणों ने शासकों-प्रशासकों सहित अध्येताओं को विचार विनिमय एवं तुलनात्मक अध्ययनों की ओर प्रेरित किया।

(4) **सामाजिक सन्दर्भों का महत्त्व :** लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र मानव समाज है। मानव समाज की कुछ विशेषताएँ सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक समान होते हुए भी अलग-अलग स्थानों पर सामाजिक परिवेश, संस्कृति, मूल्यों, सामाजिक संरचना, सामाजिक समस्याओं तथा व्यवस्थाओं में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। यही कारण है कि एक समान दो प्रशासनिक संस्थाएँ दो विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न व्यवहार प्रदर्शित करती हैं। भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विशाल भू-भाग वाले देशों में प्रांतीय सरकारों एवं उनके

राज्य प्रशासन में पर्याप्त भेद पाया जाता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा यहाँ तक कि भौगोलिक पर्यावरण के कारण भी लोक प्रशासन प्रभावित होता है। अतः तुलनात्मक अध्ययनों को महत्त्व मिलने लगा ताकि कुछ ठोस सिद्धान्तों का निर्माण हो सके।

(5) **आपसी सम्पर्क :** व्यापार, वैदेशिक सम्बन्ध, राजनयिक एवं कूटनीतिक वार्ताओं, अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी समझौतों तथा विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील राष्ट्रों को दी जाने वाली सहायता एवं शैक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा एक-दूसरे देश के वैज्ञानिकों ने परस्पर विचारों का आदान-प्रदान किया तथा ऐतिहासिक अनुसंधानों से यह सिद्ध होने लगा कि मानव सभ्यता का अतीत बहुत गौरवमयी तथा प्रगाढ़तापूर्ण रहा है अतः सदियों पुराने सांस्कृतिक सम्बन्धों को नवीन परिस्थितियों में समझने-आँकने की जिज्ञासा स्वाभाविक है।

(6) **आर्थिक सहायता कार्यक्रम :** संयुक्त राष्ट्र के निर्माण तथा लोक कल्याणकारी एवं लोकतांत्रिक राज्यों के उदय के पश्चात् विकासशील देशों के चहुँमुखी विकास के लिए अमेरिका सहित अनेक विकसित राष्ट्रों ने आर्थिक सहायता कार्यक्रम संचालित किए। इन कार्यक्रमों के संचालन के दौरान विकासशील राष्ट्रों के प्रशासनिक सुधारों के सम्बन्ध में भी यथावश्यक निर्देश एवं सुझाव प्राप्त हुए।

(7) **व्यवहारवाद का प्रभाव :** सामाजिक विज्ञानों के अनुसंधान में व्यवहारवाद का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। व्यक्ति के व्यवहार को केन्द्रबिन्दु मानकर अध्ययन करने, अन्तरविषयी उपागम का सहारा लेने तथा मूल्य निरपेक्ष दृष्टिकोण के साथ अनुभवमूलक तथ्यों को महत्त्व देने के कारण व्यवहारवाद शीघ्र ही उपादेय सिद्ध होने लगा। लोक प्रशासन भी इस उपागम से अछूता न रह सका क्योंकि प्रशासन के वास्तविक कार्यकर्ता मनुष्य ही हैं जो मानव समाज के हित के लिए विविध क्रियाएँ सम्पादित करते हैं।

(8) **तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों का प्रभाव :** ऐसा माना जाता है कि प्रशासनिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन राजनीतिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन के साथ-साथ विकसित हुआ है। **फैरेल हैडी** तथा **सिबिल एल. स्टॉक्स** के अनुसार राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन, दोनों के तुलनात्मक अध्ययनों में कुछ समानताएँ थीं जिनमें भाग लेने वाले वैज्ञानिकों का युवावस्था में होना, व्यवहारवाद में आस्था होना, अन्तरविषयी रुचियाँ होना, सर्वव्यापी सत्य एवं सिद्धान्तों की खोज करना तथा संस्कृतियों के सन्दर्भ में अध्ययन करना इत्यादि प्रमुख थीं। **अलफ्रेड डायमॉण्ट** का मत है कि तुलनात्मक राजनीति में उपलब्ध सूचना सामग्री काफ़ी मात्रा में तुलनात्मक लोक प्रशासन से सम्बन्धित तथा उपयोगी है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को स्वतंत्र विषय बनाने की इच्छा, पर्यटन का उद्योग के रूप में स्थापित होना, संचार एवं परिवहन सुविधाओं में वृद्धि होना, संयुक्त राष्ट्र एवं यूनेस्को द्वारा प्रयास किया जाना, विदेशी छात्रवृत्ति योजनाएँ शुरू होना तथा कम्प्यूटर क्रांति आना इत्यादि ऐसे कारक रहे हैं जिन्होंने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को प्रेरित एवं परिवर्द्धित किया है।

महत्त्व (Importance)

लोक प्रशासन को ब्रिटेन, अमेरिका या फ्रांस के सन्दर्भ में समझने की अपेक्षा इसे सम्पूर्ण विश्व के लिए समान वैज्ञानिक विषय के रूप में स्थापित करने के क्रम में तुलनात्मक अध्ययन का विशिष्ट महत्त्व है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की विचारधाराएँ तथा अनुसंधान प्रवृत्तियाँ निस्सन्देह इस विषय को लोकप्रियता के शिखर पर ले आई हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों ने क्षेत्रवाद या स्थानीयवाद की संकीर्णताओं को समाप्त किया है तथा समग्र लोक प्रशासन को विशाल, गहन, उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाया है। प्रविधि (Methodology) पर आधारित तुलनात्मक लोक प्रशासन ने सिद्धान्त निर्माण की दिशा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है। अतः इससे सामाजिक विश्लेषण के क्षेत्र को विस्तृत बनाने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन की विशिष्ट समस्याओं तथा महती आवश्यकताओं के क्रम में **रोबट** कहते हैं—"विश्व में कार्यरत लोक प्रशासन तथा दूसरी संस्थाएँ व्यापक विभेदों से युक्त हैं। देशों की कार्यशील जनसंख्या में से नौकरशाही के रूप में कार्य करने वालों की संख्या में भी भारी भिन्नता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 18 प्रतिशत, फ्रांस में 33 प्रतिशत तथा स्वीडन में 38 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या सरकारी सेवाओं में है। अमेरिका में 70 प्रतिशत तो दूसरी ओर इटली में मात्र 13 प्रतिशत सत्ता स्थानीय संस्थाओं तक विकेन्द्रीकृत की गई है। वर्ष 1951-81 के मध्य अमेरिका में मात्र 1.3 प्रतिशत लोक सेवाओं का विस्तार हुआ है जबकि स्वीडन में 23 प्रतिशत विस्तार हुआ। ब्रिटेन में 50 प्रतिशत कार्मिक लोक निगमों में कार्यरत हैं जबकि अमेरिका में यही आँकड़ा मात्र 8 प्रतिशत है।" ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप से ऐसे सर्वमान्य प्रशासनिक सिद्धान्तों एवं नियमों की आवश्यकता प्रतीत होती है जो विश्व स्तर पर लोक प्रशासन की सामान्यीकृत रूपरेखा प्रकट कर सकें किन्तु यह सहज कार्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक देश की संस्कृति, समस्याएँ एवं पर्यावरण भिन्न-भिन्न प्रकृति के हैं।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्त्व को इंगित करते हुए **एडवर्ड शिल्स** कहते हैं—"विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।" तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन की इस अवधारणा ने निस्सन्देह राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन की दूरियाँ कम की हैं जो विकास प्रशासन एवं नीति विज्ञान के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक भी है। इसके अतिरिक्त तुलनात्मक लोक प्रशासन के अग्रांकित लाभ या गुण भी बताए जा सकते हैं—

1. इसके कारण सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र व्यापक तथा गहन हुआ है जो पूर्व में सीमित, संकीर्ण तथा स्थूल प्रकृति का था।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों ने प्रशासन के क्षेत्र में सिद्धान्त निर्माण तथा सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया है।
3. इस अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है अतः आत्मकेन्द्रित

रहने या स्वसंस्कृति से आबद्ध रहने के स्थान पर व्यापक दृष्टिकोण पल्लवित हुआ है।

4. इस अध्ययन पद्धति में केवल वर्णनात्मक विवरण के स्थान पर तुलनात्मक विश्लेषण का प्रयोग होता है अतः सामाजिक विश्लेषण का क्षेत्र विस्तृत हुआ है।
5. तुलनात्मक लोक प्रशासन की अध्ययन पद्धति ने विश्व के विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मध्य तुलना एवं विश्लेषण को बढ़ावा दिया है जिससे एक-दूसरे को अनुभव से सीखा जा सकता है तथा कुछ सार्थक निष्कर्ष भी निकाले जा सकते हैं।
6. इस पद्धति के कारण लोक प्रशासन के विद्यार्थियों, वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों को दूसरे देशों की व्यवस्था को समझने में मदद मिली है एवं इसका क्षितिज विस्तृत हुआ है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक प्रकृति की विश्वव्यापी अवधारणा है जो कुछ सामान्यीकृत सिद्धान्त विकसित करने को उत्सुक है।

विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन
(Public Administration in Developed and Developing Countries)

राजनीतिक दृष्टि से मानव समाज या दुनिया के राष्ट्र दो ध्रुवों में विभक्त हैं। विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों के रूप में यह विभाजन प्रत्येक दृष्टि से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। सामान्यतः विकासशील देशों (Developing Countries) को अर्द्ध विकसित राष्ट्र या तीसरी दुनिया के देश भी कहा जाता है। **तीसरी दुनिया** (Third World) शब्द का प्रथम प्रयोग सन् 1961 में अल्जीयर्स लेखक **फ्रेण्ट्ज फेनॉन** ने अपनी पुस्तक 'Les Dammes De La Terres' में किया था जिसमें अमेरिका तथा अन्य पूँजीवादी राष्ट्रों को **'पहली दुनिया'**, रूस तथा अन्य समाजवादी राष्ट्रों को **'दूसरी दुनिया'** तथा विकासशील राष्ट्रों को **'तीसरी दुनिया'** कहा था। वास्तव में अब दूसरी दुनिया नामक शब्द की प्रासंगिकता नहीं रही है क्योंकि सन् 1991 में सोवियत समाजवादी गणराज्य का विघटन हो चुका है तथा अमेरिका एवं उसके मित्र राष्ट्र ही महाशक्ति के रूप में बचे हैं। कई बार अमीर देश **'उत्तर'** तथा गरीब देश **'दक्षिण'** के नाम से पुकारे जाते हैं। आजकल अति निर्धन देशों (सूडान, इथियोपिया तथा बांग्लादेश) को **'चौथी दुनिया'** भी कहा जाने लगा है। वैसे भारत में आम बोलचाल में हिजड़ों (किन्नर) के समाज को भी 'तीसरी दुनिया' कह दिया जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिदृश्य शीघ्रता से परिवर्तित हुआ है। पहली दुनिया में संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी यूरोप, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड की चर्चा होती थी जबकि दूसरी दुनिया के रूप में सोवियत संघ तथा उसके मित्र राष्ट्र (पूर्वी यूरोपीय देश) सम्मिलित थे। तीसरी दुनिया में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के वे देश सम्मिलित हैं जो उपनिवेश काल से स्वतंत्र होकर विकास की राह पर चल रहे हैं। यह

देश आर्थिक रूप से पिछड़े हुए, सामाजिक रूप से विषमताग्रस्त तथा उपनिवेश काल को विरासत को ढोने वाले माने जाते हैं। लेकिन यह व्याख्या भी पूर्ण नहीं है क्योंकि नेपाल तथा थाईलैण्ड उपनिवेश नहीं रहे एवं कुवैत जैसे धनी देश विकासशील नहीं कहला सकते हैं फिर भी विकासशील या तीसरी दुनिया के देशों की अपनी कुछ विशिष्ट समस्याएँ एवं लक्षण हैं। कम से कम आधुनिकता का तो यहाँ अभाव है ही।

विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ सामान्यतः तटस्थ या गुटनिरपेक्ष प्रकृति की रही हैं। यूरोप के विकासशील राष्ट्र पोलैण्ड तथा रोमानिया ने अपने सम्बन्ध सदैव दूसरी दुनिया से बनाए रखे थे। आर्थिक तथा तकनीकी रूप से पिछड़े हुए विकासशील राष्ट्रों को येन केन प्रकारेण विकास के लक्ष्य पूरे करने होते हैं अतः वे सभी देशों से मधुर सम्बन्ध बनाना चाहते हैं।

विकासशील राष्ट्रों की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित मानी जाती हैं—

1. औद्योगिक दृष्टि से विश्व के विकसित देशों की तुलना में इनका आर्थिक एवं राजनीतिक विकास स्तर निम्न स्तरीय है;
2. विकासशील देश पूँजीवादी गुट (अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप) तथा साम्यवादी गुट (सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप) से स्वयं को पृथक् रखते आए हैं;
3. इन देशों का समाज बहुत विविधताओं से युक्त तथा पिछड़ा हुआ है;
4. कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले ये देश प्राकृतिक प्रकोपों से भी पीड़ित रहते हैं;
5. अशिक्षा, कुपोषण, भाग्यवादिता, गरीबी तथा रूढ़िवादी समाज इत्यादि इनकी समस्याएँ हैं;
6. सामान्यतः विकासशील देश उपनिवेश रह चुके हैं; तथा
7. भौगोलिक दृष्टि से गर्म जलवायु के देश हैं।

संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों के अनुसार जिन देशों को प्रति व्यक्ति आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा यूरोप के देशों की तुलना में कम होती है वे अल्प विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश कहलाते हैं। **विश्व विकास रिपोर्ट** (2003) के अनुसार सन् 2001 में 745 डॉलर या इससे कम आय वाले देश विकासशील राष्ट्रों की गिनती में थे। वस्तुतः यह परिभाषा अर्थशास्त्र की दृष्टि से प्रस्तुत की गई है। अभी तक ऐसी कोई सर्वव्यापी परिभाषा विकसित नहीं हुई है जो सभी विकासशील राष्ट्रों के सम्पूर्ण रेखाचित्र को स्पष्ट कर सके।

विकासशील राष्ट्रों में लोक प्रशासन
(Public Administration in Developing Countries)

यह एक घोर आश्चर्य तथा शोध का विषय है कि मिस्र, भारत तथा चीन विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में नहीं पहुँच सके हैं जबकि मानव सभ्यता का विकास इन्हीं देशों में हुआ तथा आज का साहित्य, विज्ञान एवं संस्कृति इन्हीं सभ्यताओं की स्वर्णिम नींव पर खड़ी है। वस्तुतः सिन्धु घाटी, मिस्र, सुमेरियन, बेबीलोन तथा चीनी सभ्यताएँ उस समय उन्नत

एवं परिष्कृत स्वरूप में थीं जब यूरोप तथा अमेरिका का समाज आदिम संस्कृति का संवाहक था। कालान्तर में सम्भवतः भौगोलिक एवं प्राकृतिक कारणों ने सभ्यता एवं संस्कृति की परिवर्तनशीलता को निर्णायक रूप से प्रभावित किया।

एशिया तथा अफ्रीका के देश ब्रिटिश शासकों के शोषण के शिकार हुए वहीं लेटिन अमेरिका के देश स्पेन के उपनिवेश बन गए। सदियों तक राजशाही, सामन्तशाही तथा तानाशाही व्यवस्थाओं से ग्रस्त ये देश शिक्षा एवं विज्ञान की उन्नति में पिछड़ गए। जिस समय यूरोप में पुनर्जागरण का काल था उस समय विकासशील देशों की जनता राजशाही व्यवस्थाओं से त्रस्त थी। कालान्तर में 17वीं सदी से लेकर 20वीं सदी तक फ्रांस, हालैण्ड, पुर्तगाल तथा ब्रिटिश शासकों ने इन राष्ट्रों पर निरंकुश शासन किया। विकासशील राष्ट्रों के संसाधनों का विदेशी शासकों द्वारा दुरुपयोग किया जाता रहा तथा सामाजिक-आर्थिक रूप से ये देश पिछड़ते चले गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जब यह देश उपनिवेशवाद से मुक्त हुए तब तक शेष विश्व (विकसित) इनसे काफी आगे निकल चुका था। जनाधिक्य, सामाजिक शोषण, गरीबी, बेरोजगारी, परम्परागत समाज तथा अन्धविश्वास से ग्रस्त ये देश उपनिवेशवाद के दौरान मिली प्रशासनिक व्यवस्था को विरासत में लेकर विकास की राह पर आगे बढ़े। लेकिन मूल समस्या संसाधनों की कमी या इनके समुचित दोहन (तकनीकी ज्ञान) की थी। उपनिवेशवाद के दौरान प्रवर्तित प्रशासनिक तंत्र नियामकीय प्रकृति का था जिसका मुख्य कार्य शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना था जबकि नवस्वतंत्र राष्ट्रों की मुख्य आवश्यकता विकास प्रशासन की थी। यद्यपि विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक परिस्थितियाँ परिवर्तित हो गईं थीं किन्तु इनका प्रशासन तंत्र पूर्व की भाँति निष्ठुर, असंवेदनशील तथा कठोर बना रहा। परिणामस्वरूप न तो विकास के लक्ष्य प्राप्त किए जा सके और न ही लोककल्याणकारी राज्य तथा लोकतंत्र के स्वप्न सिद्ध हो सके।

विकासशील राष्ट्रों के लोक प्रशासन की निम्नांकित **विशेषताएँ** कही जा सकती हैं—

1. इन देशों का लोक प्रशासन उपनिवेशवाद की विरासत है जिसमें उस देश की छाप दिखाई देती है जिसने 19वीं या 20वीं सदी में शासन किया था अर्थात् प्रशासन का स्वरूप देशी न होकर अनुकरणात्मक है।
2. लोक प्रशासन का स्वरूप विकासोन्मुख दिखाई देता है किन्तु नौकरशाही की कार्यशैली कठोर, अहंग्रस्त तथा असंवेदनशील है।
3. भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद तथा गबन यहाँ के प्रशासन की मुख्य समस्याएँ रहती हैं।
4. लोक प्रशासन की कार्यशैली में लैंगिक भेद, जातीय वैमनस्य तथा वर्गीय असमानता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।
5. विशेषज्ञ एवं तकनीकी सेवाओं को कम महत्त्व दिया जाता है।
6. लोक प्रशासन नित्य नए कानून, नीति, संगठन तथा समितियाँ बनाता है किन्तु उनकी प्रभावशीलता शून्य रहती है।

7. लोक सेवाओं में संविधान, कानून तथा जनता के प्रति प्रतिबद्धता का अभाव पाया जाता है।
8. विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित नहीं हो पाती हैं अर्थात् केन्द्रीकरण के प्रति मोह व्याप्त है।

रिग्स के अनुसार विकासशील देशों के विभिन्न कार्यात्मक क्षेत्रों में परिवर्तन की गति एक समान नहीं होती है। उदाहरणस्वरूप भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास की तुलना में सामाजिक मानसिकता परिवर्तित नहीं हुई है।

वस्तुतः विकासशील राष्ट्रों का लोक प्रशासन समस्याग्रस्त प्रशासन माना जाता है जिसमें प्रशासनिक सुधारों तथा परिवर्तनों के प्रति अनिच्छा व्याप्त रहती है। किसी एक समस्या को समाप्त करने के लिए नई प्रशासनिक संरचना गठित कर दी जाती है तथा समस्या का समाधान न होने पर पुनः एक जाँच आयोग या उच्च स्तरीय समिति नियुक्त कर दी जाती है क्योंकि समस्या को स्थायी रूप से मिटाने की इच्छा न तो राजनेताओं में पाई जाती है और न ही लोक सेवक रुचि प्रकट करते हैं।

भारत में वस्तुस्थिति यह है कि केन्द्र सरकार राज्यों को अधिकार नहीं देना चाहती तो राज्य सचिवालय अपनी शक्तियाँ निदेशालयों या अन्य कार्यकारी स्तरों पर विकेन्द्रीकृत नहीं करना चाहता है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के नाम पर स्थापित पंचायती राज संस्थाएँ कई दशकों से सत्ता एवं वित्त के अभाव में निष्प्रभावी सिद्ध हो रही हैं जबकि सत्ता के गलियारों में दिन रात यही प्रयास रहता है कि किसी भी प्रकार सत्ता का विकेन्द्रीकरण न होने पाए। यह स्थिति केवल भारत की ही नहीं बल्कि सभी विकासशील राष्ट्रों की है। विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक दुरभिसन्धियाँ तथा संकीर्णताएँ अपने चरम पर होती हैं। राष्ट्रीय भावना, नैतिकता तथा सच्चरित्रता की स्थापना एक दुष्कर कार्य बना रहता है क्योंकि नवस्वतंत्र राष्ट्रों में स्वतंत्रता का आशय 'स्वच्छंदता' से लिया जाता है। लोकतंत्र का तात्पर्य केवल अधिकारों की प्राप्ति से समझा जाता है अतः इन देशों में नागरिक कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्व भावना का अभाव पाया जाता है। विकासशील राष्ट्रों का समाज परम्परागत, अशिक्षित, अल्प जागरूक, विषमतायुक्त तथा ग्रामीण जनसंस्कृति से युक्त होता है अतः **सामाजिक न्याय** की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु बन जाता है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में लोक प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करता है।

विशेषज्ञ तथा तकनीकी क्षमताओं से युक्त अधिकारियों की तुलना में सामान्यज्ञ अर्थात् प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों का वर्चस्व व्याप्त रहता है। स्पष्ट है सामान्यज्ञ अधिकारी कानूनों, नियमों, प्रक्रियाओं तथा कागजों (फाइलों) से अधिक मोह रखते हैं, अतः कार्यनिष्पादन का मापन संख्यात्मक रखने पर बल दिया जाता है न कि कार्य की गुणवत्ता को महत्त्व देते हैं। राष्ट्रीय भाषा, राष्ट्रीय मूल्यों तथा राष्ट्रीय मुद्दों के प्रति विकासशील राष्ट्रों की नौकरशाही प्रायः चुप्पी धारण किए हुए रहती है जिसे तटस्थता या निष्पक्षता की संज्ञा दी जाती है। संगठनात्मक दृष्टि से इन देशों का लोक प्रशासन बहुत

प्रभावी तथा सुदृढ़ दिखाई देता है किन्तु कार्यकुशलता की दृष्टि से सदैव प्रश्नचिन्ह लगा रहता है। विकसित राष्ट्रों में विकास के लिए एकमेव रूप में सरकार ही प्रयत्नशील नहीं रहती है बल्कि अन्य संगठनों का भी भरपूर योगदान रहता है जबकि विकासशील राष्ट्रों की योजनाएँ एवं विकास कार्यक्रम पूर्णतया राज्याश्रित तथा नियंत्रित रहते हैं। गरीबी, निम्न स्वास्थ्य स्तर, मानवाधिकारों का हनन, निरक्षरता, भुखमरी, शोषण, सामाजिक-आर्थिक अन्याय, महिला अत्याचार, अपराध, बाल श्रम, बेरोजगारी, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, रूढ़िवादिता, जनसंख्या विस्फोट तथा औद्योगीकरण का अभाव ऐसी समस्याएँ हैं जो सभी विकासशील राष्ट्रों में पाई जाती हैं तथा यहाँ का लोक प्रशासन इन्हीं के समाधान में प्रयासरत रहता है।

विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक समस्याएँ
(Administrative Problems of Developing Countries)

विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाएँ, राजनीतिक संस्थाएँ तथा सामाजिक संरचनाएँ इत्यादि **संक्रमणकाल** (Transition) से गुजर रही हैं जहाँ अतीत की विरासत, पुरातनपंथी मान्यताओं तथा परम्परागत मूल्यों का आधुनिकता, विज्ञान, तकनीकी एवं विकास प्रक्रिया से टकराव हो रहा है। इस संक्रमणकालीन स्थिति का प्रभाव यह हुआ है कि यह राष्ट्र तथा इनकी सम्पूर्ण व्यवस्था न तो प्राचीन संस्कृति एवं मूल्यों पर आधारित है और न ही आधुनिक पश्चिमी मॉडल पर आधारित व्यवस्था कहला सकती है। किंकर्तव्यविमूढ़ता की इस स्थिति में विकासशील राष्ट्रों का प्रशासन अपने आप में एक समस्या बन चुका है। इन देशों की प्रशासनिक समस्याएँ निम्नांकित हैं—

1. सामान्यतः उपनिवेशवाद के शिकार रहे इन देशों का प्रशासन तंत्र विदेशी शासक राष्ट्र के प्रतिमानों पर आधारित माना जाता है अतः उसमें स्थानीय मूल्यों, संस्कृति तथा अपनत्व का अभाव रहता है।
2. नौकरशाही की निरंकुश कार्यप्रणाली इन देशों के समाज की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाती है अतः **लॉर्ड हीवर्ट** के शब्दों में नौकरशाही 'नवीन निरंकुशता' के रूप में इन देशों का शासन संचालित करती है।
3. प्रशासनिक विभागों, संगठनों तथा कार्मिकों की संख्या का निरन्तर विस्तार होता रहता है अतः अनुपयोगी प्रशासन तंत्र की सूजती काया राष्ट्रीय व्यय में वृद्धि करती है।
4. इन देशों में प्रशासनिक तंत्र में जड़ता व्याप्त रहती है। समयानुकूल सुधारों तथा परिवर्तनों का विरोध होता है अतः प्रशासनिक पिछड़ापन व्याप्त रहता है।
5. विशेषज्ञों को नीति निर्माण एवं निर्णयन में कम महत्त्व मिलने के कारण सामान्यज्ञ विशेषज्ञ विवाद बना रहता है।
6. राजनीतिक मंत्री तथा प्रशासनिक सचिव के मध्य अहं तथा अधिकार क्षेत्र का संघर्ष पाया जाता है।

7. लोककल्याणकारी राज्य के लक्ष्यों की सम्पूर्ति हेतु सरकार द्वारा नित्य नए विकास एवं कल्याण कार्यक्रम निरूपित किए जाते हैं किन्तु इनका निष्पादन बहुत शोचनीय रहता है क्योंकि उत्तरदायित्व एवं प्रतिबद्धता की भावना का अभाव है।
8. हड़ताल, अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, लापरवाही तथा रिश्वतखोरी इन देशों की प्रमुख समस्याएँ बनी हुई हैं।
9. प्रशासनिक कुशलता तथा राष्ट्रीय विकास के लिए बने कानून बहुत शिथिल तथा अपूर्ण हैं अतः न्यायपालिका भी मुकदमों के बोझ से पीड़ित रहती है।
10. प्रशासनिक नियंत्रण की व्यवस्था पूर्ण प्रभावी नहीं होती है अतः संसाधनों का दुरुपयोग यथावत् जारी रहता है।
11. राजनीतिक अस्थिरता तथा जन असन्तोष के कारण प्रशासनिक कार्यकुशलता निम्न स्तरीय बनी रहती है।
12. समाज वैज्ञानिकों तथा मनोविश्लेषकों का निष्कर्ष है कि विकासशील राष्ट्रों का भाग्यवादी एवं पिछड़ा हुआ समाज अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होता है अतः प्रशासनिक शोषण भी जारी रहता है।
13. विदेशी सहायता (अनुदान या ऋण) कार्यक्रम पर आधारित इन देशों की विकास परियोजनाएँ तथा प्रशासन बहुधा विदेशी अभिकरणों की शर्तों का पालन करने को विवश रहते हैं अतः न चाहते हुए भी अप्रिय स्थितियों का सामना करना पड़ता है।
14. मानव संसाधन की तकनीकी तथा व्यावहारिक योग्यताएँ निम्न स्तरीय पाई जाती हैं।
15. लोक प्रशासन में होने वाला व्यय अनुत्पादक अधिक होता है। सामान्यतः आधा बजट तो कार्मिकों के वेतन-भत्तों पर ही व्यय हो जाता है।
16. प्रशासनिक संगठनों तथा प्रक्रियाओं में अनावश्यक रूप से औपचारिकताओं की भरमार रहती है।

विकासशील देशों में प्रशासनिक व्यवस्था के लक्षण
(Characteristics of Administrative System in Developing Countries)

संक्रमण काल से गुजर रहे विकासशील समाजों की प्रशासनिक व्यवस्था शिथिल, भ्रष्ट तथा अकर्मण्यता की पर्याय मानी जाती है। इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं—

(1) अतीत की विरासत : एशिया, लेटिन अमेरिका, अफ्रीका तथा मध्य पूर्व के देश ब्रिटेन, हालैण्ड, फ्रांस, पुर्तगाल तथा स्पेन इत्यादि देशों के उपनिवेश रह चुके हैं अतः इन विकासशील देशों की वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था पूर्ववर्ती निरंकुश, अनुत्तरदायी तथा नियामकीय शासन का प्रतिनिधित्व करती है जबकि वर्तमान में इन देशों की प्रमुख आवश्यकता विकास एवं सामाजिक परिवर्तन है। आज भी विकासशील देशों के लोक

सेवक अपने ही नागरिकों के साथ आततायियों जैसा व्यवहार करते हैं। नौकरशाही का स्वदेशी स्वरूप इन देशों में न तो विकसित हो सकता है और न ही इस दिशा में कोई प्रयास होते हैं।

(2) परिवर्तन से परहेज : विकासशील देशों में सामाजिक तथा प्रशासनिक, दोनों ही स्तरों पर यथास्थिति को बनाए रखने के प्रयास होते रहते हैं। जब कभी राज्य एवं अन्य संस्थाओं द्वारा सुधार कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं तब उन कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विरोध किया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों की प्रशासनिक संरचनाएँ आज भी उपनिवेशवाद की विरासत को ढो रही हैं। परिवर्तन की कल्पनामात्र से समाज तथा लोक सेवक नकारात्मक रुख धारण कर लेते हैं। यद्यपि इन देशों में प्रशासनिक सुधार एवं नवाचार के प्रयास होते हैं किन्तु वे केवल कागजी अभ्यास सिद्ध होते हैं।

(3) परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाज का प्रभाव : विभिन्न जाति, वंशों, नस्लों, वर्गों, धर्मों तथा सम्प्रदायों से युक्त विकासशील देशों का समाज परम्परागत एवं रूढ़िवादी समाज कहलाता है। इन समाजों में आज भी रूढ़ियों, आडम्बरों तथा परम्पराओं को सामाजिक कानूनों से अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। विकास प्रशासन के रूप में कार्यरत यहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था 'सामाजिक परिवर्तन' के नियोजित प्रयास सफलतापूर्वक नहीं कर पाती है। लोक प्रशासन द्वारा संचालित विकास एवं कल्याण कार्यक्रम प्रायः जन सहभागिता के अभाव में निष्फल सिद्ध होते हैं।

यद्यपि विकासशील समाजों में 'आधुनिकीकरण' की ओर रूझान पाया जाता है किन्तु यह तार्किकता, ज्ञान के प्रसार तथा मानव कल्याण पर आधारित न होकर केवल पश्चिमी फैशन के अनुसरण तथा भौतिक संस्कृति से लगाव का उदाहरण भर होता है। यद्यपि प्रशासन तंत्र को इन देशों में 'परिवर्तन का वाहक' माना जाता है किन्तु उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती है।

(4) केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति : नवस्वतंत्र विकासशील राष्ट्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण तथा सत्ता के प्रत्यायोजन के क्रम में सैद्धान्तिक रूप से स्थिति सन्तोषप्रद दिखाई देती है लेकिन सदियों तक गुलामी सह चुके इन राष्ट्रों के नागरिक एवं राजनेता सहजता से विकेन्द्रीकरण को स्वीकार नहीं करते हैं। भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों में सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर उस मात्रा एवं गति से नहीं होता है जो कि प्रशासनिक कुशलता के लिए आवश्यक है। प्रत्येक स्तर पर सत्ताधीश यही सोचता है कि अधीनस्थ संस्था या व्यक्ति को अधिकार सौंपना आत्मघाती हो सकता है। इस अनागत भय के कारण एक ही स्थान या अधिकारी के पास कार्य का बोझ बढ़ता है जो अन्ततः भ्रष्टाचार, लालफीताशाही तथा अकर्मण्यता को जन्म देता है।

(5) भ्रष्ट तथा अकुशल प्रशासन : विदेशी शासकों के चंगुल से मुक्त हुए इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार तथा अकार्यकुशलता के कीचड़ में आकंठ डूबी हुई नजर आती है। राष्ट्रीय संसाधनों, राष्ट्रीय कानूनों तथा सत्ता का दुरुपयोग यहाँ आम

जाता है क्योंकि इन देशों की सामाजिक व्यवस्था में राष्ट्रप्रेम का छद्म स्वरूप होता है। वस्तुत: न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक नागरिक स्वयं को राष्ट्र से पृथक् समझता है। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता से लगाया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों के लोक सेवक जिस मात्रा में अपने अधिकारों के लिए सचेत पाए जाते हैं, उसी मात्रा में कर्तव्यों के प्रति लापरवाह भी होते हैं।

सारे कुएँ में भाँग पड़ी होने के कारण किसी एक संस्था को भ्रष्टाचार के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। सन् 1997 में जारी **भ्रष्ट देशों की सूची** में सर्वोच्च स्थान नाइजीरिया का रहा है तत्पश्चात् बोलिविया, कोलम्बिया, रूस, पाकिस्तान, मेक्सिको, इण्डोनेशिया तथा 8वाँ स्थान भारत का था जबकि डेनमार्क, फिनलैण्ड, स्वीडन, न्यूजीलैण्ड, कनाडा, हालैण्ड, नार्वे तथा आस्ट्रेलिया भ्रष्टाचार से लगभग मुक्त हैं। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार समाप्ति के यदा-कदा प्रयास होते रहते हैं। सामाजिक स्तर पर सभी चाहते हैं कि यह व्यवस्था सुधरे। भारत में भी हर व्यक्ति चाहता है कि **भगतसिंह पैदा हो, लेकिन पड़ौसी के घर।**

(6) **प्रशासन के सम्मुख चुनौतियाँ :** विकासशील देशों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से नित्य नई चुनौतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इन चुनौतियों का सामना करना प्रशासन का दायित्व माना जाता है। अधिकांश विकासशील देशों में प्राकृतिक, वित्तीय, मानवीय तथा तकनीकी संसाधनों का स्तर शोचनीय पाया जाता है। इन देशों में प्राकृतिक आपदाओं जैसे—बाढ़, सूखा, महामारी, तूफान, भूकम्प तथा आगजनी इत्यादि के साथ-साथ सामाजिक रूढ़ियों के कारण नित्य नई समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। अधिकांश विकासशील राष्ट्र उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में स्थित हैं जहाँ गर्मी की अधिकता मानव स्वास्थ्य को विपरीत रूप से प्रभावित करती है। संक्रामक रोगों का व्यापक प्रसार तथा कुपोषण के कारण इन देशों में **स्वास्थ्य का स्तर निम्न** पाया जाता है। गरीबी, बेरोजगारी, जनाधिक्य तथा संसाधनों की कमी के चलते इन समाजों की प्रशासनिक व्यवस्था सदैव चुनौतीपूर्ण कार्यों में जूझती रहती है। इन देशों की अर्थव्यवस्था मूलत: **कृषि प्रधान** होती है जबकि कृषि कार्य अपने आप में 'एक जुआ' सिद्ध होता है। भाग्यवादिता, कर्मकाण्डता तथा अन्धविश्वासों का प्रत्यक्ष प्रभाव लोक प्रशासन पर भी दिखाई देता है।

विकासशील देशों का प्रशासनिक तंत्र कमजोर अर्थव्यवस्था, भ्रष्टाचार, गरीबी, मानवाधिकारों के हनन, सामाजिक असमानता, व्यापार घाटे तथा बेरोजगारी जैसी परम्परागत चुनौतियों या समस्याओं के साथ-साथ अब आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, प्रदूषण तथा नशीली दवाओं के व्यापार एवं हथियारों की होड़ जैसी विषम समस्याओं से भी जूझ रहा है।

(7) **सामान्यज्ञों का वर्चस्व :** विकासशील देशों में औपनिवेशिक काल की विरासत आज भी सम्मानपूर्वक प्रवर्तित है। सामान्यज्ञ या प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी लोक प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन रहते हैं तथा राजनीतिज्ञों (मंत्रियों) को परामर्श देने का

कार्य करते हैं। राजनीतिज्ञ एवं सामान्यज्ञ अधिकारी मिलकर लोक नीति, कानून तथा विकास कार्यक्रमों का निर्माण करते हैं जिनका क्रियान्वयन विशेषज्ञ सेवाओं के अधिकारियों को करना होता है। अधिक तकनीकी क्षमता एवं कौशल से युक्त विशेषज्ञ अधिकारी, सामान्यज्ञों के अधीन रहते हुए प्राय: कुंठा एवं निराशा के शिकार हो जाते हैं। यही कारण है कि भारत में सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद वर्षों से जारी है। तकनीकी विकास एवं सामाजिक परिवर्तन के वर्तमान दौर में जहाँ विकास प्रशासन की अवधारणा तेजी से जड़ें जमा रही है, में विशेषज्ञों की उपेक्षा राष्ट्रहित में नहीं है।

(8) **उलझा हुआ एवं समस्याग्रस्त प्रशासन :** विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था जटिल, उलझी हुई तथा बिखराव की समस्याओं से युक्त दिखाई देती है। इन देशों में प्राय: विकसित देशों की नकल पर विविध प्रकार के प्रशासनिक अभिकरण गठित किए जाते हैं। यदि कोई विभाग या संस्था कार्य संचालन में असफल सिद्ध होती है तो उस संस्था पर एक और नियंत्रक संस्था स्थापित कर दी जाती है। इस प्रकार विकासशील राष्ट्रों में विकसित राष्ट्रों के समान प्रशासनिक संगठनों जैसे—विभाग, बोर्ड, आयोग, परिषद्, निगम तथा सरकारी कम्पनी से लेकर अर्द्ध स्वायत्त संस्थाओं तक सभी प्रकार के संगठन कार्यरत होते हैं किन्तु कार्यकुशलता का स्तर निरन्तर नीचे की ओर अग्रसर रहता है। सामान्यत: इन देशों का लोक प्रशासन समस्याग्रस्त प्रशासन माना जाता है जो राष्ट्रीय या सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूँढने की अपेक्षा स्वयं की समस्याओं से ही जूझता रहता है। जैसे—

- नौकरशाही या लोक सेवाओं का आकार निरन्तर बढ़ता रहता है किन्तु कुशलता उसी अनुपात में वृद्धि नहीं करती है।
- भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन-भत्ते तथा पेन्शन इत्यादि कार्मिक प्रकरण सदैव विवादग्रस्त बने रहते हैं।
- स्वयं लोक सेवक तथा आम जनता प्रशासनिक निर्णयों के विरुद्ध बड़ी संख्या में वाद दायर करती है।
- सेमिनार, संगोष्ठी, कार्यशाला तथा प्रशिक्षण इत्यादि की महज औपचारिकताएँ पूरी की जाती हैं। अन्तिम निष्कर्ष अत्यन्त निराशाजनक होता है।
- राष्ट्रीय संसाधनों का दुरुपयोग आम जनता से कहीं अधिक नौकरशाह करते हैं। प्रशासनिक विभागों का आधे से अधिक बजट केवल वेतन-भत्तों पर व्यय होता है।
- प्रत्येक कार्य में नियमों, कानूनों तथा प्रक्रियाओं की अनावश्यक औपचारिकताएँ पूर्ण की जाती हैं, चाहे कार्य कितना ही छोटा या आपातकालीन परिस्थिति से सम्बद्ध क्यों न हो।
- प्रशासनिक संगठनों के आन्तरिक कार्यकरण में जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, लिंग तथा नस्ल इत्यादि पर आधारित भेदभाव एवं संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है।
- अनुसंधान, नवाचार तथा प्रशासनिक सुधारों के नाम पर महज खानापूर्ति की

जाती है। किसी भी स्तर पर पहल क्षमता तथा नेतृत्व का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

- अति महत्त्वाकांक्षी, कर्मठ, योग्य तथा प्रतिबद्ध कार्मिकों को प्रायः निराशा के दौर से गुजरना पड़ता है अतः इन देशों की **प्रतिभाएँ विकसित राष्ट्रों की ओर पलायन** (Brain Drain) कर जाती हैं।
- प्रशासनिक गोपनीयता के कारण पारदर्शिता, सूचना का अधिकार तथा लोक जवाबदेयता सुनिश्चित नहीं हो पाती है।
- शिकायत निवारण व्यवस्था प्रायः निष्क्रिय तथा स्वार्थी तत्त्वों से युक्त होने के कारण उपहास एवं अविश्वास की शिकार रहती है।
- प्रत्येक कार्य को उलझाने तथा दूसरों पर टालने के लिए 'समिति व्यवस्था' के दुरुपयोग की यहाँ सामान्य परम्परा होती है।

(9) **राजनीतिक हस्तक्षेप की अधिकता :** यद्यपि विश्व के सभी देशों में कार्यपालिका के शीर्ष पर राजनीतिक व्यक्ति ही पदासीन होते हैं तथा उन्हीं के दिशा-निर्देशों पर प्रशासनिक कार्य संचालित होते हैं तथापि विकासशील देशों में राजनीति का प्रशासन के क्षेत्र में हस्तक्षेप आवश्यकता से अधिक रहता है। लोक प्रशासन में उच्च पदों से लेकर निम्न पदों तक भाई-भतीजावाद तथा राजनीतिक प्रश्रय की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। भारत सहित बहुत से अन्य विकासशील राष्ट्रों में **तबादला उद्योग** प्रशासनिक अकर्मण्यता का प्रमुख कारण बन चुका है। राजनीतिक स्वार्थों के चलते कोई भी दल स्पष्ट तथा व्यावहारिक स्थानान्तरण नीति निर्मित नहीं करता है।

इन देशों में भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, पूँजीपतियों, उच्च नौकरशाहों तथा अपराधियों (Underworld) का एक ऐसा गठजोड़ बन जाता है जो सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था तथा समाज को खोखला एवं पंगु बना कर रख देता है। स्वतंत्र न्यायपालिका का सिद्धान्त, व्यवहार में बहुत कम दिखाई पड़ता है। समूची व्यवस्था को नियंत्रित करने हेतु बनाए गए **कानून प्रभावी नहीं** होते हैं। इस सम्बन्ध में **गोल्डस्मिथ** ने कहा था—"यहाँ कानून निर्धनों पर शासन करते हैं और धनी व्यक्ति कानूनों पर शासन करते हैं।" लोक सेवकों को राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ या निष्पक्ष माना जाता है जो अनाम रहकर प्रशासनिक कार्य सम्पादित करते हैं जबकि राजनीतिक तटस्थता एक छद्म विश्वास है।

(10) **जनसहयोग का अभाव :** विकासशील देशों का प्रशासन सामान्यतः **विकास प्रशासन** का पर्याय माना जाता है जो नियोजित सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हेतु अनेक प्रकार के कल्याणकारी एवं विकासपरक कार्यक्रम संचालित करता है। स्पष्ट है विकास प्रशासन की सफलता जन सहभागिता पर निर्भर करती है किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि इन देशों में वे व्यक्ति प्रशासनिक कार्यों या विकास कार्यों में सहयोग नहीं करते हैं जिनके लिए विकास कार्य संचालित किए जाते हैं। वस्तुतः निरक्षरता, गरीबी, सामाजिक पिछड़ापन, नौकरशाही का अहं, स्वार्थ भावनाएँ तथा कामचोरी की प्रवृत्ति विकास कार्यक्रमों में जन सहभागिता में कमी लाती है।

विकसित राष्ट्रों में लोक प्रशासन
(Public Administration in Developed Countries)

आज जिन्हें हम विकसित राष्ट्र कहते हैं उनका इतिहास सदियों पूर्व की जनचेतना को प्रमाणित करता है। वस्तुतः पश्चिम यूरोप के देशों पर रोमन सभ्यता तथा संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव रहा है। रोमन कानून तथा प्रशासन की मुख्य मान्यताएँ यह थीं कि राज्याध्यक्ष अपनी शक्तियाँ ईश्वर से नहीं बल्कि जनता से प्राप्त करता है। वह व्यक्तिगत तथा राजकीय सेवा के दो पृथक् रूपों में कार्य करता है। राज्याधीन सेवाएँ पदसोपान युक्त होती हैं अतः तद्नुसार शक्तियों एवं कार्यों का विभाजन होता है। वस्तुतः रोमन साम्राज्य की मान्यताएँ लोक कल्याणकारी तथा तार्किक आधारों पर अवस्थित थीं। कालान्तर में एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका की भाँति यूरोप में भी सामन्तवाद तथा जागीर प्रथा का व्यापक प्रचार-प्रसार हो गया। निरंकुश राजशाही में राजा तथा उसके कुछ चाटुकारों की इच्छा ही शासन का प्रतीक हो गई।

सन् 1215 में इंग्लैण्ड के राजा जॉन द्वितीय को नागरिक अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं के घोषणा पत्र (मैग्नाकार्टा) पर हस्ताक्षर करने पड़े जो आज भी ब्रिटिश संविधान की बाइबिल कहलाता है। सन् 1453 में कुस्तुन्तुनिया पर टर्कों का अधिकार हो जाने से यूरोपवासियों के लिए एशिया का स्थल मार्ग अवरुद्ध हो गया अतः यूरोपवासियों ने जलमार्गों की खोज की। इसी के परिणामस्वरूप कोलम्बस अमेरिका नामक नई दुनिया में पहुँचा। इसी प्रकार साहित्य, विज्ञान तथा धर्म सुधार का **पुनर्जागरण काल** प्रारम्भ हुआ। सन् 1688 में हुई रक्तहीन गौरवमयी क्रांति के कारण इंग्लैण्ड का सम्राट् जेम्स द्वितीय गद्दी छोड़कर भाग गया तथा वास्तविक शासन संसद के हाथों में आ गया। प्रकार सन् 1776 में ब्रिटिश सरकार द्वारा करों के विरोध में अमेरिकन जनता ने स्वतंत्रता के लिए युद्ध छेड़ा तो सन् 1789 में रूसो, वाल्टेयर तथा माण्टेस्क्यू के विचारों से प्रेरित हो फ्रांस में राज्य क्रांति हुई तथा 'समानता, स्वतंत्रता एवं भाईचारा' का सिद्धान्त पल्लवित हुआ। लेनिन के नेतृत्व में रूस के जार निकोलस के विरुद्ध बाल्शेविक क्रांति हुई तथा साम्यवाद का उदय हुआ। इस प्रकार विकसित राष्ट्रों में जनजागरण, विज्ञान के आविष्कार, मीडिया का प्रचार तथा अधिकारों की लड़ाई बहुत पहले हो चुकी थी।

विकसित राष्ट्रों में **आधुनिकता** का आशय भौतिकवाद से नहीं बल्कि विचारों की उत्कृष्टता से लिया गया है। इन राष्ट्रों की राजनीतिक संस्थाएँ अत्यन्त परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की हैं अतः लोक प्रशासन का स्वरूप भी विकसित हो चुका है। **मैक्स वेबर** के अनुसार यूरोप में सामन्तशाही के विरोध में उठी आवाज ने राजा के स्थान पर राज्य तथा प्रशासन को महत्त्व प्रदान किया परिणामस्वरूप पैतृकता के स्थान पर नौकरशाही का विकास हुआ। **चैपमैन** ने भी अपनी पुस्तक 'The Profession of Government' में कहा है कि—"राजा के सेवक परिवर्तित परिस्थितियों में उसके (राजा के) अभिकर्ता न रहकर जनशक्ति के साधन बन गए तथा एक व्यक्ति की इच्छा के स्थान पर कानून के अनुसार कार्य होने लगा।" **विधि के शासन** की अवधारणा ने सम्पूर्ण

प्रशासनिक तंत्र को उत्तरदेय तथा विकासोन्मुख बना दिया। सामाजिक तथा आर्थिक समृद्धता ने यूरोपीय राष्ट्रों के लोक प्रशासन को अधिक विकसित बनाने में भरपूर योगदान दिया है।

विकसित राष्ट्रों के लोक प्रशासन की निम्नांकित **विशेषताएँ** कही जा सकती हैं—

1. यह जनाकांक्षाओं के अनुरूप निर्मित तथा प्रवर्तित है।
2. वैधानिकता, तार्किकता तथा स्पष्टता इसके लक्षण हैं।
3. विशेषज्ञता का प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त महत्त्व है।
4. प्रायः राजनेताओं तथा प्रशासकों के मध्य मधुर सम्बन्ध रहते हैं।
5. यह संविधान, राष्ट्रीय कानूनों तथा आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध है।
6. उच्च स्तरीय नैतिकता तथा कार्यकुशलता पाई जाती है।
7. लोक प्रशासन में विकेन्द्रीकरण का व्यावहारिक स्वरूप मिलता है।
8. देश की कार्यशील जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग लोक सेवकों के रूप में कार्यरत रहता है।
9. प्रशासनिक नीतियाँ लोकमत से प्रभावित रहती हैं तथा जनता पर्याप्त रुचि एवं सहभागिता प्रकट करती है।
10. नौकरशाही की कठोर कार्यप्रणाली के बजाय सहयोगी एवं संवेदनशील प्रशासन प्रवर्तित है।
11. लोक प्रशासन की छवि आम जनता के बीच विश्वसनीय तथा लोकप्रिय है।
12. इरा शरकांसकी के अनुसार विकसित राष्ट्रों की नौकरशाही पेशेवर तथा विशेषज्ञ प्रकृति की होती है।

विकसित देशों में प्रशासनिक व्यवस्था के लक्षण
(Characteristics of Administrative System in Developed Countries)

फ्रांस, अमेरिका, जापान तथा ब्रिटेन इत्यादि विकसित देशों की न केवल प्रशासनिक व्यवस्था में बल्कि सामाजिक स्तर पर भी परिपक्वता दिखाई देती है। इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं—

(1) राष्ट्र एवं संविधान के प्रति प्रतिबद्धता : विकसित देशों के नागरिक अपने देश के संविधान, राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रीय प्रतीकों तथा राष्ट्रीय कानूनों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं। यही कारण है कि इन देशों के नागरिकों तथा प्रशासन के मध्य सहयोग एवं सामंजस्यता का भाव दिखाई देता है। संविधान एवं कानून के प्रति दृढ़ आस्था के कारण ही नागरिक, राजनेता तथा लोक सेवक राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। प्रत्येक नागरिक तथा सरकारी कार्मिक हर वक्त यह प्रयास करता है कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उनके देश की छवि धूमिल न हो पाए और उनका देश सबसे आगे एवं सबसे अलग दिखाई दे।

(2) उत्तरदायी एवं कुशल लोक सेवाएँ : चूँकि विकसित देशों के नागरिकों में राष्ट्रभक्ति का स्तर अत्यन्त ऊँचा होता है अतः प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन भी सफलतापूर्वक किया जाता है। किसी भी नागरिक, उपभोक्ता या आम व्यक्ति को प्रशासन द्वारा हुई हानि या असुविधा की क्षतिपूर्ति प्रदान करना एक सामान्य परम्परा है। इन देशों में प्रशासनिक कार्यकुशलता, लोकप्रियता, संवेदनशीलता तथा उपादेयता के क्रम में निरन्तर शोध एवं नवाचार किए जाते हैं। व्यक्ति के जन्म से पूर्व से लेकर मृत्यु के उपरान्त तक लोक प्रशासन द्वारा सेवा की अवधारणा यहाँ मूर्त दिखाई देती है। प्रशासनिक कुशलता के लिए विकेन्द्रीकरण को इन देशों में पर्याप्त महत्त्व दिया जाता है। विकासशील देशों में प्रचलित सामन्तवादी व्यवस्था विकसित देशों में नहीं पाई जाती है यही कारण है कि विकसित देशों में चपरासी का पद प्रायः नहीं होता है।

(3) लोक सेवाओं का लोकतांत्रिक स्वरूप : जनता का, जनता के लिए तथा जनता के द्वारा शासन अर्थात् प्रजातंत्र की यह आधुनिक लोकप्रिय अवधारणा विकसित समाजों में यथार्थ एवं व्यापक रूप से लागू होती है। प्रशासन का स्वरूप सैद्धान्तिक रूप से ही लोकतांत्रिक नहीं होता है बल्कि व्यावहारिक रूप में भी लोक प्रशासन पूर्ण प्रजातंत्रात्मक प्रतीत होता है। लोक सेवकों के व्यवहार में जनता के स्वामी जैसा भाव नहीं बल्कि 'जन सेवक' का वास्तविक भाव रहता है क्योंकि लोकतंत्र में सत्ता जनता में निहित होती है। लोक सेवाओं में समानता, न्याय तथा स्वतंत्रता का अधिकार सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। कार्मिकों को संघ बनाने तथा हितों के लिए संघर्ष करने की छूट दी गई है।

(4) योग्यता को वरीयता : लोक सेवाओं में भर्ती के लिए योग्यता को व्यापक मान्यता प्राप्त है। अधिसंख्य सामान्य प्रशासकीय एवं विशेषज्ञ पदों पर नियुक्ति या चयन से पूर्व प्रतियोगी परीक्षा को उत्तीर्ण करना आवश्यक होता है। योग्यता निर्धारण की ये प्रतियोगी परीक्षाएँ अत्यन्त विशद, गम्भीर तथा विश्वसनीय प्रकृति की मानी जाती हैं। अमेरिका सहित कतिपय अन्य विकसित देशों में उच्च स्तरीय पद राष्ट्रपति की इच्छा से भरे अवश्य जाते हैं किन्तु इन पदों की नियुक्तियाँ विधायिका द्वारा अनुमोदित होती हैं। कोई भी राष्ट्रपति यह नहीं चाहता कि वह उच्च एवं विश्वसनीय पदों पर अयोग्य व्यक्तियों को अवसर देकर वह जनाक्रोश का शिकार बने।

(5) स्थायित्व : विकसित देशों की लोक सेवाओं में स्थायित्व का भाव पाया जाता है। इसीलिए कहा जाता है कि शासक परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु नौकरशाही सदैव बनी रहती है। निश्चित आयु पर भर्ती तथा सेवानिवृत्ति की सुस्थापित व्यवस्था के कारण लोक सेवकों का कार्यकाल निश्चित रहता है। कार्यकाल के स्थायित्व के कारण लोक सेवक निर्भीक एवं निष्पक्ष होकर कार्य सम्पादित करते हैं।

(6) गतिशीलता की प्रवृत्ति : विकसित देशों का सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक ढाँचा गतिशील प्रवृत्ति का परिचायक है। इन देशों में परिवर्तन को सहजता से अंगीकार किया जाता है। अर्थव्यवस्था, राजनीतिक परिदृश्य, सामाजिक संरचना तथा तकनीकी

विकास के सन्दर्भ में आए परिवर्तनों के अनुरूप प्रशासनिक व्यवस्था शीघ्रता से परिवर्तित हो जाती है। उदाहरण के लिए विगत् एक दशक से ब्रिटेन में लोक सेवाओं का घटता आकार तथा निजीकरण समय की माँग के अनुरूप एक गतिशील परिवर्तन है। इसी प्रकार 'प्रशासनिक सुधारों' के प्रयास पूर्ण मनोयोग एवं इच्छा से क्रियान्वित होते हैं।

(7) **व्यापक कार्यक्षेत्र :** विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था अत्यन्त व्यापक एवं गम्भीर कार्यक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप ने प्रशासन के कार्यक्षेत्र को न केवल व्यापक बना दिया है बल्कि गुरुतर दायित्वों से भी युक्त कर दिया है। कृषि, उद्योग, परिवहन, संचार, रक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, ऊर्जा, पर्यावरण संरक्षण से लेकर न्याय व्यवस्था तक प्रत्येक जीवनोपयोगी कार्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में सम्मिलित है। राष्ट्र की सुरक्षा, आन्तरिक शांति एवं व्यवस्था, वैदेशिक सम्बन्ध तथा सामाजिक सेवाओं का संचालन अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण इत्यादि सभी कार्य प्रशासन की कार्य सूची में सम्मिलित होते हैं।

(8) **विशेषज्ञता का प्रसार :** विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रसार निस्सन्देह विकसित देशों में अधिक हुआ है जो इनकी उन्नति का मूलाधार भी बना है। विज्ञान तथा तकनीकी विकास ने लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में विशेषज्ञता को बढ़ावा दिया है अतः प्रशासन में भी स्थूल से सूक्ष्म तथा सामान्य से विशिष्टता की ओर झुकाव में वृद्धि हुई है। प्रत्येक कार्य को सम्पादित करने के लिए अनेक विशिष्ट प्रशासनिक अभिकरण जैसे—विभाग, बोर्ड, आयोग, निगम तथा न्यायाधिकरण इत्यादि स्थापित किए गए हैं। लोक सेवाओं में भी प्रत्येक पद की विशेषज्ञ योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं तथा प्रशिक्षण को भी तद्नुसार विकसित किया गया है।

(9) **विशेषज्ञों का महत्त्व :** विकासशील राष्ट्रों में सामान्यज्ञ अधिकारियों का वर्चस्व रहता है जबकि विकसित राष्ट्रों में वैज्ञानिक, डॉक्टर तथा इंजीनियर इत्यादि विशेषज्ञ अधिकारियों को उच्च दर्जा प्रदान किया गया है। अमेरिका, जापान तथा जर्मनी में विशेषज्ञ अधिक सम्मानित हैं वहीं ब्रिटेन तथा फ्रांस में इन्हें कम से कम सामान्यज्ञों के अधीनस्थ स्थिति में नहीं रखा गया है। वस्तुतः तकनीकी विकास की जटिलताओं तथा ज्ञान के बढ़ते क्षितिज ने विशेषज्ञों की प्रशासन में भूमिका महत्त्वपूर्ण बना दी है।

(10) **उच्चस्तरीय समन्वय :** समन्वय, प्रशासनिक संरचनाओं की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जो संघर्ष तथा अतिराव को रोकती है। विकसित देशों में एक कार्य से सम्बन्धित कई सरकारी, अर्द्ध सरकारी तथा निजी संगठन कार्यरत होते हैं किन्तु इन संगठनों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद वर्षों तक अनिर्णित अवस्था में नहीं रहते हैं बल्कि समय रहते राजनीतिज्ञों एवं शीर्षस्थ कार्यपालक अधिकारियों द्वारा सुलझा दिए जाते हैं। विकसित देशों में लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों क्षेत्रों के संगठन परस्पर विचार-विमर्श करते रहते हैं।

(11) **पर्याप्त राजनीतिक चेतना :** यद्यपि विकसित राष्ट्रों के लोक सेवक सामान्यतः राजनीतिक रूप से **तटस्थ** तथा अनाम रहकर कार्य करते हैं किन्तु इन देशों के

कार्मिकों में राजनीतिक अधिकारों तथा स्वयं के हितों के प्रति पूर्ण चेतना पाई जाती है। फ्रांस में लोक सेवकों को सर्वाधिक राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए हैं लेकिन अन्य देशों में भी लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार एवं जनचेतना में वृद्धि के कारण पर्याप्त राजनीतिक अधिकार प्रदत्त हैं। कर्मचारी अपनी माँगों एवं सुविधाओं में वृद्धि के लिए पर्याप्त सजग एवं प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। महिलाओं को प्रशासन में पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया गया है।

(12) **आभिजात्य वर्ग का प्रभुत्व :** शासन सत्ता में उच्च परिवारों, धनिकों, प्रभावशाली जातियों तथा परम्परागत रूप से साधन सम्पन्न लोगों का प्रभुत्व सभी देशों में प्रायः एक समान है फिर भी फ्रांस, अमेरिका तथा ब्रिटेन में यह सर्वाधिक दिखाई देता है। भारत की भाँति ग्रामीण एवं पिछड़े वर्गों के युवा आज भी अधीनस्थ सेवाओं में रहकर संघर्ष करते पाए जाते हैं।

(13) **सुदृढ़ अर्थव्यवस्था तथा सुखी जीवन :** विकसित राष्ट्रों की आर्थिक एवं वित्तीय व्यवस्था सुदृढ़ है अतः प्रशासनिक व्यय को सरलता से वहन किया जा सकता है। राज्य द्वारा प्रवर्तित सामाजिक सेवाएँ एवं कल्याणकारी कार्यक्रम सफलतापूर्वक निष्पादित होते हैं क्योंकि आधुनिक प्रशासन तथा इसके कार्य पूर्णतया वित्त पर आधारित हैं। चूँकि विकसित राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति आय अत्यधिक है अतः प्रत्येक व्यक्ति के पास जीवन की न्यूनतम या मूलभूत आवश्यकताओं की समस्या नहीं है। ऐसी परिस्थिति में प्रशासन अपना ध्यान रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं पर केन्द्रित नहीं करता है बल्कि मानव जीवन को सुखी बनाने के अन्य बिन्दुओं पर चिन्तन एवं नवाचार कर सकता है।

विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के लोक प्रशासन में अन्तर

विकसित राष्ट्र	विकासशील राष्ट्र
1. इन राष्ट्रों का लोक प्रशासन स्थायित्व प्राप्त, प्रतिबद्ध एवं सुचारू है।	1. इन राष्ट्रों का लोक प्रशासन यहाँ के समाज एवं राजनीति की भाँति संक्रमण काल से गुजर रहा है तथा कम प्रतिबद्ध है।
2. यह विकसित राष्ट्रों के स्वयं के इतिहास, जनाकांक्षा तथा परिपक्वता का परिचायक है।	2. उपनिवेशवाद का शिकार है तथा जनाकांक्षाओं के अनुरूप नहीं है।
3. सांस्कृतिक भिन्नताएँ कम हैं अतः एकता प्रयासों में बाधा नहीं आती है।	3. विकासशील देशों में सांस्कृतिक भिन्नताएँ अधिक हैं तथा संघर्ष बना रहता है।
4. तकनीकी दृष्टि से सक्षम तथा औद्योगिक अर्थव्यवस्था है।	4. कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है तथा तकनीकी क्षमताएँ अपूर्ण हैं।

विकसित राष्ट्र	विकासशील राष्ट्र
5. मानवीय, प्राकृतिक तथा मशीनी संसाधनों के मध्य सामंजस्य होता है।	5. सभी प्रकार के संसाधन होते हुए भी उनका एकीकृत सदुपयोग नहीं हो पाता है।
6. नीति एवं क्रियान्वयन में पर्याप्त समन्वय होता है।	6. नीति, कार्यक्रम तथा योजना के निर्माण में जितने कुशल हैं उतने ही अकुशल इनके क्रियान्वयन में हैं।
7. प्रशासन स्वयं को समाज का एक भाग मानता है।	7. प्रशासन स्वयं को समाज से उच्च मानता है।
8. जनसहभागिता एवं सहयोग मिलता है।	8. विकास कार्यों में जनसहयोग नहीं मिलता है।
9. राष्ट्रीय मुद्दों पर विभिन्न राजनीतिक दलों में सहमति होती है।	9. दलगत राजनीतिक स्वार्थों के आगे राष्ट्र के मुद्दे गौण हो जाते हैं।
10. लोक प्रशासन की दैनिक गति-विधियों में राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होता है।	10. प्रत्येक स्तर पर राजनीतिक दवाब एवं स्वार्थ अभिभावी रहते हैं।
11. सत्ता का विकेन्द्रीकरण प्रायः आवश्यकतानुसार होता है।	11. सत्ता का विकेन्द्रीकरण सैद्धान्तिक रूप से दिखता है, वास्तव में होता नहीं है।
12. कानूनों का पालन यहाँ का राष्ट्रीय चरित्र है।	12. यहाँ कानूनों की भरमार होते हुए भी उनका पालन करवाना दुष्कर है।
13. मंत्रालयों तथा प्रशासनिक संस्थाओं इत्यादि का विस्तार नियंत्रित रहता है।	13. विकासशील देशों में अनियंत्रित ढंग से प्रशासनिक संस्थाएँ गठित होती रहती हैं।
14. नियोजन में सरकारी भूमिका केवल निदेशात्मक (Indicative) रहती है।	14. सम्पूर्ण नियोजन एवं विकास कार्यों में सरकार की भूमिका पूर्णरूपेण रहती है।
15. प्रशासन पर नियंत्रणकारी संस्थाएँ प्रभावी सिद्ध होती हैं।	15. नियंत्रणकारी संस्थाएँ अल्पप्रभावी या निष्प्रभावी सिद्ध होती हैं।
16. लोक प्रशासन में 'कार्य की संस्कृति' पाई जाती है।	16. प्रशासनिक 'कार्य-संस्कृति' का सर्वथा अभाव रहता है।
17. आवश्यकतानुसार सुधार एवं परिवर्तन किए जा सकते हैं।	17. सुधारों तथा परिवर्तनों के विरोध का माहौल बना रहता है।

लोक प्रशासन की पारिस्थितिकी (पर्यावरण)
Ecology (Environment) of Public Administration

पर्यावरण या पारिस्थितिकी (Ecology) का तात्पर्य केवल जलवायु या भौगोलिक कारकों से सम्बन्धित नहीं है बल्कि यह हमारे समग्र सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण को इंगित करता है। Ecology शब्द, ग्रीक भाषा के oikos से बना है, जिसका अर्थ होता है—घर या रहने का स्थान। समाज विज्ञानों ने पारिस्थितिकी की अवधारणा जीवविज्ञान से ग्रहण की है जिसमें यह माना जाता है कि प्रत्येक सजीव वस्तु अपने आस-पास के वातावरण के अनुरूप स्वयं को ढालने का प्रयास करती है। ठण्डे प्रदेशों में बड़े बालों वाले जीव तथा गर्म प्रदेशों में छोटे बालों वाले जीव पारिस्थितिकी को सिद्ध करते हैं। ऐसा ही प्रभाव विश्व के अलग-अलग स्थानों पर पाई जाने वाली वनस्पतियों पर भी दिखाई पड़ता है। वस्तुतः पारिस्थितिकी (Ecology) तथा पर्यावरण (Environment) समानार्थक नहीं हैं फिर भी समान अर्थ में प्रयुक्त हो रहे हैं। पारिस्थितिकी किसी जीव के प्राकृतिक वातावरण को दर्शाता है जबकि पर्यावरण स्थान तथा परिस्थितियों से सम्बन्धित है।

लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक

सन् 1947 में जॉन एम. गॉस ने लोक प्रशासन में नौकरशाही और इसके पर्यावरण की अनिवार्य परस्पर निर्भरता का अध्ययन करने के लिए पारिस्थितिकीय प्रभावों को समझने की आवश्यकता पर बल दिया था। इसी वर्ष रॉबर्ट डाल ने प्रशासनिक ढाँचे और व्यवहार पर पर्यावरण के प्रभावों के विश्लेषित करने की आवश्यकता प्रतिपादित की। उनका मानना था कि लोक प्रशासन राष्ट्रीय मनोविज्ञान, राजनीति, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता है अतः लोक प्रशासन के प्रवर्तित सिद्धान्तों में पर्यावरणीय प्रभावों का भी समावेश होना चाहिए। तुलनात्मक लोक प्रशासन की

बढ़ती अवधारणा ने लोक प्रशासन की पारिस्थितिकी को समझने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। **गाई पीटर्स** का मत है किसी भी देश की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ सरकार के कार्यों और विशेषतया लोक प्रशासन की सीमाएँ निर्धारित करती हैं। राजनीतिक संस्कृति भी लोक प्रशासन की सीमाएँ निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है किन्तु इसका प्रभाव आर्थिक परिस्थितियों की तुलना में कम रहता है। किसी भी देश की संस्कृति ही अच्छे या बुरे का निर्धारण करती है तथा इसी से प्रशासनिक कार्यकलाप प्रभावित होते हैं।

सन् 1961 में एफ.डब्ल्यू. रिग्ज ने "The Ecology of Public Administration" पुस्तक की रचना की जिसमें लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के बीच परस्पर क्रियाओं का तुलनात्मक सन्दर्भ वर्णित किया गया था। **रिग्ज** का कहना है कि—''किसी भी प्रशासनिक संरचना का महत्त्व उसकी पारिस्थितिकी के अन्तर्गत ही समझा जा सकता है।''

महत्त्व (Importance)

लोक प्रशासन की पारिस्थितिकी का अध्ययन करने एवं तद्नुसार प्रशासनिक कार्यकलापों का विश्लेषण करने से प्रशासनिक सुधारों को एक सार्थक दिशा मिल सकती है एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासनिक प्रक्रियाएँ तथा व्यवहार परिवर्धित किया जा सकता है। चूँकि लोक प्रशासन अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक सन्दर्भों से प्रभावित ही नहीं होता बल्कि इन कारकों को प्रभावित भी करता है अतः किसी राष्ट्र की प्रशासनिक व्यवस्था एवं विकास की गति तथा उसके प्रभावों को मापने में यह प्रयास सहायक सिद्ध होता है।

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में लोक प्रशासन को पारिस्थितिकी को समझना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह आभास हो जाता है कि किसी राष्ट्र का लोक प्रशासन किन परिस्थितियों में कार्य कर रहा है।
2. किसी एक प्रशासनिक संगठन या संस्था की सफलता, कार्यकुशलता एवं उपादेयता को उसके पारिस्थितिकीय सन्दर्भों में आँकने के पश्चात् ऐसी संस्था अन्यत्र भी स्थापित की जा सकती है ताकि वह मॉडल संस्था प्रशासनिक प्रक्रियाओं में कुशलता प्रदान कर सके।
3. जो प्रशासनिक संस्थाएँ किन्हीं कारणों से असफल या निष्प्रभावी सिद्ध हुई हैं उनका विश्लेषण आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक कारकों के आधार पर करके भविष्य के लिए अन्य स्थानों या राष्ट्रों को आगाह किया जा सकता है।
4. नवीन प्रशासनिक संस्थाओं की स्थापना से पूर्व उनके पर्यावरणीय प्रभावों एवं मूलभूत आवश्यकताओं को भलीभाँति जान लेने के पश्चात् उन संस्थाओं के भविष्य एवं प्रभावशीलता के प्रति आश्वस्त रहा जा सकता है।
5. लोक प्रशासन के कार्यकरण से समाज एवं अर्थव्यवस्था पर हो रहे प्रभावों का विश्लेषण करके भविष्यलक्षी कार्यक्रम निरूपित करने में सहायता मिलती है।

लोक प्रशासन एवं राजनीतिक पर्यावरण
(Public Administration and Political Environment)

राजनीति मूलतः राज्य तथा शासन की अवधारणा और कार्यप्रणाली से सम्बद्ध है। राजनीति विज्ञान के प्रसिद्ध विचारक **अरस्तू** के अनुसार—''राज्य, जीवन के लिए अस्तित्व में आया और अच्छे जीवन के लिए उसका अस्तित्व बना हुआ है।'' इसी प्रकार राज्य तथा कानून की महत्ता को रेखांकित करते हुए **जर्मी टाइलर** कहते हैं—''यदि मानव में तर्क बुद्धि न होती और उस पर एक उच्चतर शक्ति न होती तो भेड़ियों का झुण्ड, मनुष्यों की तुलना में अधिक शान्त और एकमत होता।'' वस्तुतः राज्य की उत्पत्ति तथा शासन प्रणालियों के विकास ने राजनीति का पर्यावरण निर्मित किया है।

'राज्य' के चार प्रमुख तत्वों यथा—जनसंख्या, निश्चित भू-भाग, शासन (सरकार) तथा सम्प्रभुता में शासन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। शासन तथा राजनीतिक पर्यावरण एक-दूसरे के पर्याय बनते जा रहे हैं। किसी भी देश का लोक प्रशासन वहाँ के राजनीतिक पर्यावरण से अत्यधिक प्रभावित होता है क्योंकि प्रशासन तो स्वयं शासन का कार्यकारी स्वरूप एवं निकाय है। राजनीतिक पर्यावरण के निम्नांकित कारक लोक प्रशासन की पारिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं—

1. संवैधानिक प्रावधान;
2. शासन प्रणाली;
3. विधानमण्डल तथा निर्वाचन क्षेत्र;
4. शक्तियों का बँटवारा;
5. मतदाता की आयु तथा राजनीतिक चेतना;
6. राजनीतिक दलों की संख्या तथा उनकी मान्यताएँ;
7. राजनीतिज्ञ—लोक सेवक सम्बन्ध;
8. राजनेताओं की समाज में छवि तथा उच्च लोक सेवकों का पदस्थापन;
9. दबाव समूह; तथा
10. राष्ट्र प्रेम की भावना।

विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक पर्यावरण सर्वथा भिन्न प्रकृति का पाया जाता है एवं दोनों स्थानों के लोक प्रशासन में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। विकसित राष्ट्रों में आधुनिकता तथा संस्थागत परिपक्वता परिलक्षित होती है अतः वहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था भिन्न प्रकृति की है। आधुनिकीकृत राजनीति में नौकरशाही का विशेषीकरण, उच्चस्तरीय व्यावसायिक पुट, कार्यक्षेत्र विस्तार, आपसी सामंजस्य, जनसहयोग, पंथ निरपेक्षता, राष्ट्रीय प्रेम तथा सच्चरित्रता पाई जाती है। नियंत्रण एवं आपसी समन्वय सहित अधिकार क्षेत्र की स्पष्टता रहती है अतः विकसित राष्ट्रों की राजनीति एवं प्रशासन दोनों साथ मिलकर राष्ट्रीय विकास में योगदान देते हैं।

विकासशील राष्ट्रों में राजनीतिक व्यवहार बहुत ही अस्पष्ट एवं अपरिपक्व दिखाई पड़ता है। **एच. मेरथुनी** का मानना है कि—''विकासशील राष्ट्रों में शक्तिशाली सरकार

तथा अत्यधिक केन्द्रीकरण पर बल दिया जाता है क्योंकि इन राष्ट्रों में ऐसी धारणा रही है कि राष्ट्रीय एकता, आर्थिक विकास तथा सामाजिक परिवर्तन इत्यादि के लिए सुदृढ़ शासन तथा शक्तिशाली नेतृत्व न्यूनाधिक मात्रा में आवश्यक है।" विकासशील राष्ट्रों की राजनीतिक प्रक्रियाएँ एवं संस्थाएँ संक्रमणकाल से गुजरती हैं जहाँ विकासवादी विचारधाराएँ, सरकारों की अस्थिरता, शासक तथा शासितों के मध्य खाई, राजनीतिक संस्थाओं में असन्तुलन तथा विदेशी शक्तियों का प्रभाव दिखाई देता है। भारत में वर्ष 1989 से 1998 के मध्य हुए चार आम चुनावों के समय केन्द्र में त्रिशंकु विधायिका (Hung Parliament) की स्थिति उत्पन्न होने पर अस्थिर सरकारों द्वारा शासन संचालित हुआ। इस प्रक्रिया में राजनीतिक कार्यपालिका सुदृढ़ नहीं कही जा सकती है क्योंकि गठबन्धन या साझा सरकारें बैसाखियों के सहारे चलती हैं। इस राजनीतिक अस्थिरता का दुष्परिणाम यह हुआ है कि परम्परागत नौकरशाही (स्थायी कार्यपालिका) की निरंकुशता नियंत्रित होने के स्थान पर बढ़ी तथा विकास की प्रक्रिया नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई।

विकासशील राष्ट्रों में राष्ट्रीय समस्याओं तथा विवादित विषयों पर एकमत या सर्वसम्मति का अभाव पाया जाता है फलस्वरूप सत्तारूढ़ शासक दल पूर्ववर्ती राजनीतिक दल द्वारा कल्पित एवं क्रियान्वित नीतियों तथा कार्यक्रमों को परिवर्तित कर देता है। राजनीतिक दलों की संविधान, कानून तथा राष्ट्रीय विकास के प्रति प्रतिबद्धता नहीं होती बल्कि संकीर्ण स्वार्थों एवं वोटों की राजनीति का बोलबाला रहता है। भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में व्याप्त निराशा, संघर्ष, अस्थिरता तथा अवसरवादिता ने समग्र सामाजिक वृत्ति एवं लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली को प्रभावित किया है। सैद्धान्तिक रूप से कोई भी लोक सेवक राजनीतिक कार्यकलापों में भाग नहीं ले सकता है फिर भी प्रशासनिक अधिकारियों में पर्याप्त मात्रा में राजनीतिक भेदभाव पाया जाता है। सरकारी कर्मचारियों के स्थानान्तरण तथा पदस्थापन में दिखाई देने वाली राजनीतिक संकीर्णताएँ लोक प्रशासन को व्यापक रूप से प्रभावित करती हैं।

मंत्रालयों के शीर्ष नियंत्रणकर्ता के रूप में राजनीतिक मंत्री तथा मंत्रिपरिषद् नीति, विधि एवं कार्यक्रम निर्माण के लिए उत्तरदायी है किन्तु उनका निष्पादन लोक सेवकों द्वारा ही किया जाता है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक मान्यताओं का प्रशासन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। 'प्रतिबद्ध नौकरशाही' की वकालत करने में श्रीमती इन्दिरा गाँधी सबसे अग्रणी मानी जाती हैं। वैसे भी 'नवीन लोक प्रशासन' की विचारधारा यह मानती है कि राजनीति तथा लोक प्रशासन का पृथक्करण न तो सम्भव है और न ही व्यावहारिक। वस्तुतः राजनीतिक पर्यावरण ही किसी राष्ट्र की एकता, नैतिकता तथा भावनात्मक सामंजस्यता में वृद्धि करता है किन्तु घोटालों तथा प्रपंच की पर्याय भारतीय राजनीति न केवल प्रशासन को बल्कि समाज को भी पतन के कगार पर ले आई है। लोकतान्त्रिक मूल्यों के प्रसार, विकास प्रशासन में जनसहभागिता, सामाजिक न्याय की स्थापना, कानूनों के क्रियान्वयन, प्रशासनिक सुधारों तथा भ्रष्टाचार से मुक्ति के क्रम में निःसन्देह

राजनीतिक पर्यावरण अग्रणी भूमिका निभा कर लोक प्रशासन का कार्य आसान कर सकता है।

संवैधानिक पर्यावरण के अन्तर्गत विभिन्न देशों में प्रवर्तित संविधान तथा तद्नुसार संचालित शासन व्यवस्थाओं की अपनी एक कार्यशैली, गुण तथा दोष पाए जाते हैं। आधुनिक विश्व में अधिसंख्य राज्य (देश) लोक कल्याणकारी प्रकृति के हैं चाहे वहाँ शासन व्यवस्था तथा नौकरशाही का स्वरूप कैसा भी हो। संसदीय कार्यपालिका का स्वरूप ब्रिटेन, भारत, जापान तथा पाकिस्तान जैसे देशों में प्रचलित है जहाँ नाममात्र की तथा वास्तविक, दो प्रकार की कार्यपालिकाएँ कार्यरत रहती हैं। एकल कार्यपालिका या अध्यक्षीय शासन व्यवस्था संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्राजील जैसे देशों में संचालित हो रही है। स्विट्जरलैण्ड में बहुल कार्यपालिका है अर्थात् कार्यकारिणी शक्ति एक व्यक्ति में न होकर सात सदस्यीय परिषद् में निहित है। जनता से चुनी हुई लोकतांत्रिक सरकारों का सर्वाधिक प्रचलन होते हुए भी कई देशों में तानाशाही सरकारें भी कार्यरत हैं। स्पष्ट है कि जिस प्रकार का राजनीतिक एवं संवैधानिक वातावरण होगा उसी के अनुरूप लोक प्रशासन का कार्यकरण निर्धारित होगा।

राजनीतिक नामों की दृष्टि से नीदरलैण्ड (हालैण्ड), नार्वे, मोरक्को, बेल्जियम, भूटान, डेनमार्क, जोर्डन, लेसोथो, सऊदी अरबिया, स्पेन, स्वाजीलैण्ड, स्वीडन, थाइलैण्ड, टोंगा तथा ब्रिटेन (यूनाइटेड किंगडम ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड नॉर्दर्न आयरलैण्ड) इत्यादि अपने को **राजतंत्र** घोषित करते हैं जबकि भारत, अर्जेण्टीना, आस्ट्रिया, बांग्लादेश, ब्राजील, बुल्गारिया, चिली, कोलम्बिया, क्यूबा, साइप्रस, मिस्र, फ्रांस, यूनान (ग्रीस या हेलेनिका), हंगरी, इण्डोनेशिया, इराक, इटली, केन्या, दक्षिण कोरिया (कोरिया गणराज्य), उत्तरी कोरिया (कोरिया जनवादी लोकतंत्रीय गणराज्य), लेबनान, मालदीव, मॉरीशस, मंगोलिया, नामीबिया, पनामा, पेरू, पोलैण्ड, पुर्तगाल, दक्षिण अफ्रीका, सूडान, सीरिया, तुर्की, यमन तथा जिम्बाब्वे इत्यादि अधिसंख्य देश गणराज्य हैं। अफगानिस्तान, कोमोरो, ईरान तथा मॉरीटानिया स्वयं को **धार्मिक (इस्लामिक)** राज्य घोषित करते हैं जो प्रशासन से भी धार्मिक प्रतिबद्धता की माँग करता है। बहामास, डोमीनिका तथा आस्ट्रेलिया अपने राजनीतिक नाम में राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) शब्द काम में लाते हैं। संवैधानिक रूप से लीबिया, श्रीलंका, तथा वियतनाम घोषित समाजवादी राज्य हैं जबकि संघीय (Federation) शासन व्यवस्था के प्रमुख उदाहरणों में युगोस्लाविया, मलेशिया, जर्मनी, इथियोपिया तथा ब्राजील इत्यादि सम्मिलित हैं। इसी प्रकार जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, चीन, मेक्सिको तथा तंजानिया भी संघ (Union) शासन व्यवस्थाओं के उदाहरण हैं जहाँ केन्द्र तथा राज्य सरकारें पृथक्-पृथक् स्तर पर कार्य करती हैं।

फैरेल हैडी, आमण्ड, रॉबर्ट ट्रकर तथा शील्स इत्यादि ने विकसित एवं विकासशील देशों में शासन, राजनीति एवं नौकरशाही को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है, उनके अनुसार कतिपय विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(1) **शास्त्रीय प्रशासन** (Classic Administration), फ्रांस तथा जर्मनी जैसे विकसित

देशों में प्रवर्तित है जहाँ समस्त प्रकार की राजनीतिक उथल-पुथल एवं झंझावातों के बीच लोक प्रशासन यथावत् कार्य करता रहा है। अधिकार सम्पन्न लोक सेवक बहुत शक्तिशाली भूमिका निभाते हैं तथा राजनीतिक कार्यकलापों में भी रुचि लेते हैं। डायमॉण्ड के शब्दों में—"यहाँ गणराज्य समाप्त हो जाता है किन्तु प्रशासन बना रहता है।"

(2) **नागरिक संस्कृति** (Civic Culture) का प्रचलन संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ब्रिटेन में है जहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक संस्कृति में समानता है। सुस्पष्ट, स्थिर, संवेदनशील एवं परिपक्व राजनीति के साथ लोक सेवक मिलकर कार्य करते हैं। यहाँ सामाजिक शक्तियाँ अर्थात् नागरिक भी लोक प्रशासन में सार्थक भूमिका अदा करते हैं।

(3) **आधुनिकीकृत प्रशासन** (Modernizing Administration) का उदाहरण जापान है जहाँ संविधान के अनुसार लोक सेवक किसी विशेष समूह के नहीं बल्कि समाज के प्रतिनिधि माने जाते हैं। यहाँ लोक सेवक राजनीतिक निर्णयों में महती भूमिका निभाते हैं।

(4) **परम्परागत-स्वेच्छाचारी व्यवस्था** (Traditional Autocratic System) में यमन, सऊदी अरबिया, मोरक्को तथा पेरू इत्यादि सम्मिलित किए गए हैं जहाँ जनाधिक्य की समस्या भी है। यहाँ परम्परागत राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था है अर्थात् दलों या दबाव समूहों का अस्तित्व न के बराबर है। प्रशासनिक तंत्र एवं सेना स्वेच्छाचारी शासकों की इच्छापूर्ति में व्यस्त है। समाज का विकास शासकों के लिए प्राथमिकता क्षेत्र में नहीं है यद्यपि कुछ प्रयास अवश्य होते रहते हैं।

(5) **नौकरशाही अभिजन व्यवस्था** (Bureaucratic Elite System) के उदाहरणों में म्यांमार (बर्मा), इण्डोनेशिया, इराक, सूडान, सीरिया, थाइलैण्ड तथा अन्य कई अफ्रीकी देशों को सम्मिलित किया जाता है। इन देशों में शासक वर्ग तथा उच्च लोक सेवक वर्ग समाज के उच्च वर्गों, धनी किसानों, उद्योगपतियों, शहरी निवासियों तथा प्रभुत्व सम्पन्न लोगों से युक्त होता है। ये आभिजात्यवादी लोग थोथे नारे लगाते हैं, लेकिन वास्तव में विकास तथा सामाजिक न्याय के प्रति इनकी आस्था नहीं होती है और न ही जनता इस तंत्र पर विश्वास करती है। लोक सेवकों की अपेक्षा सैनिक अधिकारी शासन सत्ता एवं राजनीति के अधिक समीप रहते हैं।

(6) **बहुलवादी प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था** (Ployarchial Competitive System) में फिलीपीन्स, यूनान, मलयेशिया, चिली, इजरायल, लेबनान, अर्जेण्टीना, ब्राजील, श्रीलंका तथा तुर्की जैसे विकासशील देश सम्मिलित हैं। इन देशों में अनेक राजनीतिक दल, समूह या संगठन कार्य करते हैं। ये सभी संगठन प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ में चलते हैं तथा नीति निर्माण एवं अनेक महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर इनकी सहमति रहती है। रॉबर्ट डाल ने बहुलवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत बताया है कि प्रत्येक संगठन किसी-न-किसी स्तर पर अपनी भूमिका अवश्य निभाता है। जनसाधारण के बीच सक्रिय रहकर राजनीतिक दल न केवल जनमत निर्माण करते हैं बल्कि शासन सत्ता की प्राप्ति के लिए सदैव संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में वे नौकरशाही से भी निरन्तर उलझते रहते हैं।

(7) **प्रभावशाली दल : अर्द्ध प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था** (Dominant Party : Semi Competitive System) के अन्तर्गत ऐसे देश आते हैं जहाँ एक ही राजनीतिक दल वर्षों तक अपना प्रभुत्व बनाए रखता है। यद्यपि यहाँ अन्य दल भी होते हैं किन्तु वे कड़ी प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर पाते हैं। मेक्सिको की पी.आर.आई. तथा भारत की कांग्रेस पार्टी इन उदाहरणों में सम्मिलित की जाती है। यद्यपि दो दशक से भारत में एक दलीय मान्यता टूट चुकी है किन्तु अभी भी स्थिति पूर्णतया परिवर्तित नहीं हुई है। **डेविड एप्टर** इसे गतिमान व्यवस्था मानते हैं जिसका उद्देश्य समाज परिवर्तन, पंथ निरपेक्षता तथा समानता स्थापित करना है। यहाँ नौकरशाही की स्थिति मध्यम होते हुए पूर्णतया प्रभावी नहीं कही जा सकती है।

(8) **प्रभावशाली दल : गतिशील व्यवस्था** (Dominant Party : Mobilization System) अल्जीरिया, बोलिविया, मिस्र, घाना, गिनी तथा अन्य पश्चिम अफ्रीकी देशों में प्रवर्तित है। इन देशों की राजनीति में आज्ञाकारिता कम तथा दमन एवं निरंकुशता अधिक पाई जाती है। एक ही दल राजनीतिक एवं वैधानिक रूप से अग्रणी रहता है, शेष को कुचल दिया जाता है। करिश्माई नेतृत्व का प्रभुत्व रहता है। विशिष्ट समूह, शिक्षित युवा, नौकरशाही तथा अभिजन सत्ता के प्रति स्वामीभक्ति दिखाते हैं।

(9) **साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था** (Communist Totalitarian System) के अन्तर्गत वे विकासशील देश आ जाते हैं जहाँ साम्यवाद का प्रचलन है। इनमें पूर्ववर्ती सोवियत रूस, रोमानिया, पोलैण्ड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया तथा बुल्गारिया इत्यादि सम्मिलित थे। लेकिन बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में साम्यवाद से मोह हटने लगा था। साम्यवाद का तात्पर्य उस शासन व्यवस्था से है जिसमें जनता के कल्याण एवं विकास की समस्त जिम्मेदारी सरकार उठाती है तथा उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का नियंत्रण रहता है। सर्वाधिकारवाद वह व्यवस्था है जब व्यक्ति के जीवन की समस्त गतिविधियाँ सरकार के नियंत्रण में आ जाती हैं तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई महत्त्व नहीं रहता है। साम्यवादी सर्वाधिकारवादी व्यवस्था अब उपर्युक्त वर्णित सभी देशों में दम तोड़ चुकी है। विश्वव्यापी आर्थिक उदारीकरण की चपेट में चीन जैसे समाजवादी राज्य भी आ चुके हैं।

उपर्युक्त वर्णित राजनीतिक-संवैधानिक वर्गीकरण समय के साथ परिवर्तित होता रहता है क्योंकि स्वयं राजनीति भी समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती है।

लोक प्रशासन एवं आर्थिक पर्यावरण
(Public Administration and Economic Environment)

प्राचीन भारतीय प्रशासनिक चिन्तकों में अग्रणी **कौटिल्य** का मानना रहा है कि राज्य तथा उसकी समृद्धि का मुख्य आधार अर्थव्यवस्था ही होती है। आदिकाल से ही भूमि, प्राकृतिक संसाधन, उत्पादन तथा राजकीय नीतियाँ आर्थिक तंत्र को प्रभावित करती आई

है। इसीलिए मानव सभ्यताओं का विकास एवं युद्धों की राजनीति वहीं रही है जहाँ नदी किनारे, उच्च उर्वरता प्राप्त भूमि, खनिज पदार्थों का बाहुल्य, सुरक्षा हेतु पर्वत तथा अन्य संसाधन (उत्कृष्ट प्रकृति के) सहजता से उपलब्ध रहे हैं। वस्तुओं के उत्पादन, व्यापार, आर्थिक विकास तथा करों के एकत्रण के द्वारा राज्य की अर्थव्यवस्था निर्धारित होती रही है। वस्तुतः वित्तीय एवं आर्थिक प्रशासन की सुदृढ़ता सम्पूर्ण लोक प्रशासन एवं राज्य के लक्ष्यों को प्रभावित करती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने आर्थिक नियोजन के मार्ग से राष्ट्रीय विकास के उद्देश्य प्राप्त करना निर्धारित किया था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति में निस्सन्देह लोक प्रशासन की नीतियाँ तथा कार्यकुशलता निर्णायक भूमिका निभाती है। इसी प्रकार किसी भी देश का लोक प्रशासन वैसा ही होता है जैसा कि वहाँ का आर्थिक पर्यावरण होता है। उच्च स्तरीय संसाधनों से सम्पन्न देश का प्रशासनिक तंत्र विकसित होता है तो दूसरी ओर आर्थिक विपन्नताओं से जूझते विकासशील राष्ट्रों का प्रशासनिक तंत्र व्याधिग्रस्त हो जाता है। सामान्यतः अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा नीतियाँ राजनीति एवं प्रशासन द्वारा निर्धारित की जाती हैं। अमेरिका पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वाला राष्ट्र है जहाँ धनी वर्ग निजी उपक्रमों के माध्यम से अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण रखता है जबकि समाजवादी देशों में अधिकांश उत्पादन शक्तियाँ राज्य के हाथों में होती हैं अतः वहाँ की अर्थव्यवस्था भी लोक प्रशासन का एक भाग होती है। भारत में सन् 1947 में स्वतंत्रता के समय पूर्णतया पूँजीवादी या समाजवादी व्यवस्थाओं को अपनाने के स्थान पर **मिश्रित अर्थव्यवस्था** का मार्ग निर्धारित किया था जिसमें कुछ क्षेत्र निजी हाथों में तो कुछ क्षेत्र सरकारी हाथों में रखे गए। अर्थव्यवस्था में सरकारी भूमिका सुनिश्चित करने के लिए लोक उपक्रमों की स्थापना भारत, अमेरिका, चीन तथा फ्रांस इत्यादि सभी देशों में की जाती है। निस्सन्देह अर्थव्यवस्था की भूमिका एवं स्थिति प्रशासन के कृत्यों को व्यापक रूप से प्रभावित करती है क्योंकि—

1. वर्तमान में यह माना जाता है कि सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया मूलतः लोक प्रशासन की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है;
2. किसी भी देश की आर्थिक दशाओं में प्रगति या अवनति प्रशासन की नीतियों पर निर्भर करती है;
3. अर्थव्यवस्था की समस्त गतिविधियों पर राज्य एवं समाज के हित में नियंत्रण करने का दायित्व प्रशासन का है;
4. विकासशील देशों का प्रशासन जो **विकास प्रशासन** का पर्याय बन चुका है का मुख्य लक्ष्य आर्थिक-सामाजिक विकास को सुनिश्चित करना है;
5. करों का आरोपण, एकत्रण तथा निर्धारण, शुल्क नीतियाँ, लाइसेंस विधियाँ, संसाधनों का बँटवारा, एकाधिकारों पर रोक, आयात-निर्यात नीति, मूल्य निर्धारण तथा बाजार प्रवृत्तियों के नियंत्रण के क्रम में प्रशासन सर्वोच्च निकाय है;
6. लोगों का जीवन स्तर, रहन-सहन, भविष्यलक्षी योजनाएँ, विदेशी सहायता-

सम्बन्ध, शोषण से मुक्ति तथा वित्तीय लेन-देन मुख्यतः शासकीय नीतियों पर निर्भर करता है।

सामान्यतः किसी भी देश के आर्थिक पर्यावरण को निम्नांकित कारक प्रभावित करते हैं—

1. उपलब्ध संसाधनों (भूमि, जल, पेड़-पौधे, खनिज, मशीन, तकनीक तथा मानव इत्यादि) की स्थिति तथा उपयोग,
2. औद्योगिक, आर्थिक तथा व्यापारिक नीतियाँ,
3. बाजार की स्थिति,
4. नियोजित विकास के कार्यक्रम,
5. आधारभूत संस्थागत सुविधाएँ,
6. आय के स्रोत तथा जनसंख्या,
7. भ्रष्टाचार एवं कालाधन,
8. मानव संसाधन विकास,
9. रोजगार के साधन, तथा
10. बजटीय नीतियाँ एवं नियंत्रण।

विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था भी पिछड़ी हुई मानी जाती है क्योंकि उसमें जनाधिक्य, परम्परागत पेशों की भरमार, कम औद्योगीकरण, तकनीकी पिछड़ापन, गरीबी, निरक्षरता, बेरोजगारी, बाजार की अपूर्णता, संसाधनों की कमी या निम्न गुणवत्ता, कृषि पर अधिक निर्भरता तथा भाग्यवादिता की समस्याएँ जुड़ी रहती हैं। अर्थव्यवस्था की इस शोचनीय स्थिति के कारण लोक प्रशासन के सम्मुख नित्य नई चुनौतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि किसी भी देश के आर्थिक पर्यावरण को समझे बिना प्रशासन का विश्लेषण करना जटिल एवं अव्यावहारिक है। भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों में एक ओर पर्याप्त भूमि अनुपयोगी पड़ी है तो दूसरी ओर बेरोजगार काम की प्रतीक्षा में बैठे हैं। वस्तुतः आर्थिक संसाधनों तथा नीतियों में समन्वय एवं व्यावहारिकता का पर्याप्त अन्तर रहने के कारण अर्थव्यवस्था का संचालन बिखरा हुआ एवं शिथिल सा दिखाई देता है।

अमेरिकी प्रशासन का अध्ययन करने के पश्चात् एफ. डब्ल्यू. रिग्ज का निष्कर्ष है कि अमेरिकी प्रशासन की बहुत सी विशेषताएँ उसकी अर्थव्यवस्था के नमूने पर ढली हुई हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में आर्थिक उत्पादकता की दर बहुत ऊँची है क्योंकि वहाँ पर अर्थव्यवस्था तथा प्रशासन के नियमों में अन्तर नहीं बल्कि स्पष्टता एवं समानता है। अमेरिकी समाज में प्रत्येक सेवा (चाहे वह प्रशासन द्वारा दी जाए) वस्तु के रूप में आँकी जाती है। भूमि, मजदूरी, धन, समय, ज्ञान, सेवा तथा परामर्श सभी कुछ क्रय-विक्रय के नियमों पर आधारित है। अमेरिकी समाज की '**कीमत-रचना की बाजार व्यवस्था**' ही विकास का आधार बन चुकी है जिसकी मुख्य विशेषताएँ यह हैं कि इसमें नौकरशाही की सेवाएँ भी वस्तु मानी जाती हैं, क्रेता एवं विक्रेता की आपसी समझ एवं सन्तुष्टि

महत्वपूर्ण है, हर कार्य ठेका एवं समझौते से संचालित होता है, कार्मिकगण ज्यादा मौद्रिक लाभ माँगते हैं तो नियोक्ता ज्यादा एवं श्रेष्ठ कार्य चाहता है, हर कोई अपने क्षेत्र में निर्णय के लिए स्वतंत्र है तथा राज्य द्वारा दी जाने वाली सेवाओं पर पर्याप्त कर लिया जाता है। अमेरिकी प्रशासन एक व्यवसाय की भाँति कार्य करता है।

अर्थव्यवस्था, प्रशासन तथा समाज के अन्तरसम्बन्धों के क्रम में **सकल राष्ट्रीय सुख** की नई अवधारणा भी जन्म ले रही है। नवम्बर, 1998 में सियोल में हुई प्रथम एशिया प्रशान्त संगोष्ठी में भूटान के विदेश मंत्री लियो जिगमी थिगले ने सबको यह कहकर चौंका दिया है कि भूटान, सकल राष्ट्रीय सुख की अवधारणा के अनुसार विकास कार्य कर रहा है। यह अवधारणा यह मानकर चलती है कि विकासशील राष्ट्र विश्व की प्रतिस्पर्द्धा के कारण अपनी सांस्कृतिक पहचान तथा आत्मिक सुख खोते जा रहे हैं। अतः राष्ट्रीय आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उन आध्यात्मिक मूल्यों का लोप न हो जो मानव सभ्यता के अभिन्न तत्त्व हैं। विगत दो दशक से यह प्रश्न भी उठाया जाने लगा है कि पश्चिमी मॉडल पर आधारित विकास कार्यक्रम विकासशील राष्ट्रों की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हैं अतः इन देशों की अर्थव्यवस्था को स्थानीय कारकों एवं विशेषताओं के आधार पर पुनर्सरचित किया जाना चाहिए।

सन् 1991 में भारत द्वारा निर्मित नई आर्थिक नीति में उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण तथा प्रतिस्पर्द्धा मुख्य बिन्दु हैं किन्तु यहाँ की परम्परागत कठोर नौकरशाही में किंचित् भी सुधार नहीं किए गए, परिणामस्वरूप नई आर्थिक नीति भी पूर्ण सफल दिखाई नहीं दे रही है। वस्तुतः आर्थिक सुधारों के साथ-साथ प्रशासनिक सुधार भी अनिवार्य शर्त हैं किन्तु इन्हें गम्भीरतापूर्वक समझा नहीं गया है। यही कारण है कि इण्डोनेशिया तथा मेक्सिको की अर्थव्यवस्थाएँ संकट से जूझ रही हैं।

लोक प्रशासन एवं सामाजिक पर्यावरण
(Public Administration and Social Environment)

समस्त समाज विज्ञानों का मुख्य कार्यक्षेत्र समाज है तथा मानव व्यवहार की विविध गतिविधियाँ और समस्याएँ इनके अध्ययन का अभिन्न हिस्सा हैं। समाजशास्त्रियों की दृष्टि में समाज, सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। मानव समाज की जटिल संरचना, उन्नत बौद्धिक क्षमता, श्रेष्ठ शारीरिक रचना, मानव व्यवहार की अनिश्चितता तथा महत्वाकांक्षाओं के कारण सभ्यता तथा संस्कृति की विकास यात्रा अनेक मार्गों से गुजरी है।

वास्तव में लोक प्रशासन का सम्बन्ध व्यक्ति तथा समाज से होने के कारण इसकी गतिविधियाँ तथा कार्यशैली स्थानानुसार परिवर्तित दिखाई देती है। अमेरिका तथा पश्चिमी देशों का लोक प्रशासन यदि कार्यकुशल तथा प्रतिबद्ध दिखाई देता है तो इसका सीधा सा तात्पर्य उन देशों की सामाजिक संरचना की श्रेष्ठता से है। यद्यपि प्रत्येक समाज अपने ऐतिहासिक सन्दर्भों तथा समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार श्रेष्ठ एवं उपयोगी ही होता है किन्तु विकास तथा परिवर्तन की अन्य क्रियाओं के साथ उसका अन्तरसम्बन्ध

कई प्रकार के विकट प्रश्न उत्पन्न कर देता है। रिग्स द्वारा किए गए अध्ययनों के अनुसार किसी भी समुदाय का सामाजिक पर्यावरण जो उसके संस्थानों, समूहों, वर्ग (या जाति) सम्बन्धों, ऐतिहासिक विरासत, परम्पराओं, धर्म, मूल्य, आस्था, विश्वास, आदर्श तथा लोकाचार इत्यादि पर आधारित होता है, उसके प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालता है। लोक सेवा में सम्मिलित होने से पूर्व कोई भी व्यक्ति अपने पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन में कुछ ऐसे स्थायी संस्कार एवं मूल्य ग्रहण कर लेता है जो उसके प्रशासनिक व्यवहार पर पर्याप्त प्रभाव दिखाते हैं।

भारतीय समाज में व्याप्त अनैतिकता, भ्रष्टाचार, छल-प्रपंच, दिखावा, संकीर्णता तथा अकर्मण्यता का प्रभाव प्रत्यक्षतः प्रशासन में दिखाई पड़ता है क्योंकि हम सभी सामाजिक प्राणी ही लोक सेवक की भूमिका निभाते हैं। सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित निम्नांकित कारक निर्णायक भूमिका निभाते हैं—

1. वर्ग तथा जाति,
2. सामाजिक मूल्य एवं परम्पराएँ,
3. जनसंख्या तथा स्वास्थ्य,
4. सामाजिक न्याय एवं समानता,
5. बाल श्रम तथा महिला अधिकार,
6. स्वैच्छिक संगठन,
7. समाज सेवा की प्रवृत्तियाँ,
8. संचार के साधन,
9. सामाजिक परिवर्तनशीलता की दर,
10. सामाजिक सम्बन्ध,
11. पारिवारिक संस्कार,
12. शिक्षा संस्थानों की भूमिका, तथा
13. मानवाधिकारों की स्थिति।

विकसित राष्ट्रों में कई प्रकार के सामाजिक संगठन, धार्मिक संगठन, व्यावसायिक तथा श्रमिक संघ एवं अन्य अभिरुचि संघ बनाए जाते हैं जो अपने सदस्यों की भर्ती समानता तथा स्वेच्छा पर करते हैं। ये संघ या संगठन सरकारी तंत्र के कार्यकरण पर गहरा प्रभाव डालते हैं। रिग्स का मानना है कि समाज में जो तनाव तथा संघर्ष प्रचलित होते हैं नौकरशाही उनका प्रतिनिधित्व करती है। प्रत्येक देश में वर्गीय ढाँचा समाज की विचारधाराएँ निश्चित करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में काले-गोरे का भेद है तो भारत में जाति एक जटिल संरचना है।

भारतीय सामाजिक पर्यावरण का सर्वाधिक प्रभावी तथा जटिल बिन्दु **जाति** ही है जिसने लोक प्रशासन की सम्पूर्ण कार्यशैली को व्यापक रूप से निर्धारित और प्रभावित किया है। सदियों से शोषण, घृणा तथा अमानवीयता के शिकार पिछड़े वर्गों को सामाजिक-आर्थिक न्याय एवं समानता प्रदान करने तथा मानवीय अधिकार देने के लिए

बनी 'आरक्षण नीति' ने छ: दशक से सवर्ण जातियों को उद्वेलित कर रखा है। योग्यता बनाम आरक्षण की इस निरर्थक लड़ाई में प्रशासनिक तंत्र गम्भीरता से प्रभावित होता रहा है। जाति-आधारित सामाजिक संगठनों का निर्माण तथा उनमें राजनीतिक शक्तियों का हस्तक्षेप विगत तीन दशक में तेजी से बढ़ा है अत: आज के भारतीय प्रशासन में कार्यरत लोक सेवकों में जातिवाद की भावनाएँ स्वत: ही घर कर रही हैं। क्षेत्रवाद, स्त्री-पुरुष का अहं, टकराव, भाई भतीजावाद तथा भ्रष्टाचार की सामाजिक मान्यता इत्यादि जटिल समस्याओं ने नौकरशाही के कार्यकरण को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। यद्यपि भाई भतीजावाद की समस्या भारत, नाइजीरिया, श्रीलंका, पाकिस्तान तथा नेपाल से लेकर समस्त विकासशील राष्ट्रों में समान रूप से व्याप्त है तथापि इसके कारण सभी देशों में एक समान नहीं हैं। **माइकल क्रोजियर** ने फ्रांस की नौकरशाही के व्यवहार में वहाँ के सामाजिक-सांस्कृतिक नियमों की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी है। रूस के प्रशासन के आधुनिकीकरण का बीड़ा उठाने वाले पीटर महान् को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा था क्योंकि परम्परागत सामाजिक मान्यताएँ शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होती हैं।

परिवार, वंश, मूल निवास स्थान, सामुदायिक मान्यताएँ तथा सामाजिक मूल्य व्यक्ति के संस्कारों में अन्दर तक समाहित रहते हैं। यही कारण है कि पश्चिमी देशों में भाई भतीजावाद का प्रचलन कम है क्योंकि वहाँ व्यक्ति तथा परिवार (रक्त सम्बन्धी) की घनिष्ठता एवं आत्मीयता उस प्रकार की नहीं है जैसे कि भारत या अन्य विकासशील देशों में पाई जाती है। शहरी बनाम ग्रामीण समाज की जीवन शैली तथा उनकी महत्त्वपूर्ण प्रकृति के पदों पर शहरी एवं अंग्रेजी पृष्ठभूमि के व्यक्तियों का विशेषाधिकार एवं सेना में जवानों के पदों पर ग्रामीण युवाओं का चयन सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचे की स्वत: व्याख्या करते हैं।

वर्तमान भारतीय प्रशासन तथा समाज का अन्तरसम्बन्ध बहुत विचित्र तथा हास्यास्पद प्रकृति का है। आई.ए.एस., डॉक्टर, इंजीनियर, वकील तथा चार्टर्ड अकाउण्टेण्ट सम्मानित सेवाएँ मानी जाती हैं जबकि एक पुलिस कांस्टेबल की छवि लिपिक की तुलना में निम्न स्तरीय है। किसी भी लोक सेवा की पद सम्बन्धित सामाजिक छवि उसके मनोबल तथा अभिप्रेरणा को निर्णायक सीमा तक प्रभावित करती है। ब्रिटिश काल में पटवारी ही सर्वोच्च सत्ता माना जाता था किन्तु आज जिला कलक्टर की परम्परागत रौब-दाब वाली छवि भी धूमिल होती जा रही है। लोक प्रशासन के कार्यकरण के प्रति भी सामाजिक मान्यताएँ बहुत उत्साहजनक न होने के कारण विकास कार्यों में जनसहभागिता की दर प्रभावित होती है।

लोक प्रशासन एवं सांस्कृतिक पर्यावरण
(Public Administration and Cultural Environment)

सामान्यत: सभ्यता (Civilization) तथा संस्कृति (Culture) में वही अन्तर माना जाता है जो शरीर तथा आत्मा में है। सभ्यता बाह्य, भौतिकवादी तथा शीघ्र परिवर्तित होने वाले

सामाजिक सन्दर्भों की व्याख्या करती है जबकि संस्कृति आन्तरिक, आध्यात्मिक तथा मानव व्यवहार के पक्षों से जुड़ी है। सामाजिक मूल्य, सम्प्रदाय, रूढ़ियाँ, भाषा, संचार, रहन-सहन, खान-पान, बोली तथा धर्म संस्कृति के अंग माने जाते हैं।

लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले प्रमुख सांस्कृतिक पर्यावरणीय कारक निम्नांकित हैं—

1. धर्म एवं साम्प्रदायिक आस्थाएँ,
2. भाषा एवं बोली,
3. लिपि तथा संचार के साधन,
4. पहनावा तथा रीति रिवाज,
5. त्योहार तथा परम्पराएँ,
6. शिक्षा तथा मूल्य,
7. सांस्कृतिक सम्मिश्रण तथा ऐतिहासिक प्रभाव,
8. सांस्कृतिक परिवर्तन, तथा
9. मनोरंजन के साधन।

प्रत्येक युग में सभ्यता तथा संस्कृति का विशिष्ट स्वरूप रहा है जो शनै:-शनै: अनेक कारकों से प्रभावित होकर परिवर्तित एवं परिवर्धित हुआ है तथा आज के स्वरूप में ढला है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया कहीं पर तीव्र तो कहीं पर शिथिल रही है। व्यक्ति के व्यवहार तथा प्रशासन के कार्यकरण को प्रभावित करने में सम्बन्धित समाज की सांस्कृतिक विशेषताएँ अत्यधिक प्रभाव दिखाती हैं। ऐसा माना जाता है कि ईसाई एवं बौद्ध धर्मों के अनुयायी तुलनात्मक रूप में अधिक कर्मयोगी एवं निष्ठावान सिद्ध होते हैं। भारत वह देश है जहाँ विश्व की बहुत सी संस्कृतियों का मिलन हुआ है। वर्तमान भारतीय प्रशासन के समक्ष उपस्थित आतंकवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद तथा भ्रष्टाचार की समस्याएँ मूल्यों के पतन का परिणाम हैं। विगत एक दशक से भारतीय समाज में उत्पन्न हुई छद्म (Pseudo) आस्तिकता ने कई विकट प्रश्न खड़े कर दिए हैं। दिन-रात भ्रष्टाचार, अकर्मण्यता तथा स्वार्थ में अभिभूत महानुभाव माता का जागरण, सत्यनारायण, कीर्तन तथा अखण्ड रामायण पाठ करवा कर ईश्वरीय भक्ति का जो घिनौना रूप प्रस्तुत कर रहे हैं उसने सम्पूर्ण समाज तथा प्रशासन की उपादेयता को सन्देह के घेरे में ला दिया है। भारतीय अस्पतालों के वार्डों में टंगी देवी देवताओं की मूर्तियाँ तथा जयपुर के उद्योग भवन में स्थित 'रीको' के मुख्यालय में भगवान विश्वकर्मा की प्रतिमा प्रशासन के सांस्कृतिक परिवेश को ही स्पष्ट करती हैं।

परम्पराओं के पालन तथा इतिहास में जीने की विशिष्ट पहचान रखने वाले भारतीयों के लिए सुधार कठिन कार्य है। कुछ वर्ष पूर्व जब दिल्ली पुलिस की महिला कांस्टेबलों के लिए पेण्ट पहनना अनिवार्य किया गया तो नारीवादी संगठनों ने इसका विरोध किया था क्योंकि उनकी दृष्टि में भारतीय नारी और साड़ी एक-दूसरे के पर्याय

है। बेशक पुलिस के कार्य में पेण्ट पहनने से आसानी रहती है। इसी प्रकार भाषा तथा लोक प्रशासन का गहरा रिश्ता है। प्रशासन में कागजी कार्यवाही तथा लिखित अक्षर ही सत्य कहलाते हैं। यद्यपि देश की एक प्रतिशत जनता भी अंग्रेजी नहीं समझती है लेकिन प्रशासन का 90 प्रतिशत कार्य अंग्रेजी में होता है। दूसरी ओर भारतीय राजस्व, न्याय एवं पुलिस प्रशासन में आज भी **फारसी भाषा** का प्रयोग होता है जो पढ़े-लिखे व्यक्तियों को भी समझ में नहीं आता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रशासन को सांस्कृतिक पर्यावरण की कितनी चिन्ता है? जिन देशों में एक राजभाषा होती है वहाँ प्रशासनिक संचार शीघ्रता से होता है। विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम (भाषा) यदि विवादग्रस्त हो तो वह प्रशासन असफल सिद्ध होगा। भारतीय प्रशासन के साथ यह त्रासदी ही कही जाएगी कि यहाँ प्रशासन की भाषा, अधिकारियों का पहनावा एवं बोली तथा उनकी मानसिकता उन लोगों के रहन-सहन, भाषा तथा पहनावे से मेल नहीं खाती जिनके लिए प्रशासन बना है। प्रशासनिक व्यवहार को भलीभाँति समझने एवं उसका आर्थिक विश्लेषण करने के लिए प्रशासन के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण को समझना आवश्यक है। लेकिन हाल ही में उपजी **उत्तर आधुनिकता** की अवधारणा के आधार स्तम्भ फ्रांसिसी सिद्धान्तकार **ज्यां फ्रांक्वा ल्योतोर** ने कहा है कि इतिहास को पढ़ना, दिए गए तथ्यों को मानना तथा महावृत्तान्तों पर विश्वास करना छोड़ना पड़ेगा। अब हमें अतीत की कल्पना करनी होगी न कि उसकी छानबीन। हमें यह मान लेना चाहिए कि यथार्थवाद झूठ है क्योंकि मिथक उतने ही मान्य हो सकते हैं जितने पुरातात्त्विक सिद्धान्त। उत्तर आधुनिकता की यह अवधारणा सच्चाइयों से भागने की एक पलायनवादी प्रवृत्ति है। हमें लोक प्रशासन को समझने के लिए उत्तर आधुनिकता के सिद्धान्तों की नहीं बल्कि सामान्य बुद्धि की आवश्यकता है। वास्तव में प्रशासनिक व्यवहार को केवल सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक पर्यावरण में ही नहीं बल्कि **भौगोलिक, विधिक, वैज्ञानिक** तथा **तकनीकी** पर्यावरण की दृष्टि से भी समझना होगा। **वास्तव में किसी प्रशासनिक व्यवस्था तथा उसके बाह्य वातावरण की पारस्परिक अन्त:क्रिया के अध्ययन के बिना लोक प्रशासन का अध्ययन अधूरा है।**

गाई पीटर्स तथा माइकल क्रोजियर लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति या **प्रशासनिक संस्कृति** (Administrative Culture) के अध्ययन की भी आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। प्रशासनिक संस्कृति वे पारम्परिक तरीके या ढंग हैं जिसमें कार्मिक सोचते और कार्य करते हैं। प्रत्येक देश के लोक प्रशासन की आन्तरिक संस्कृति भिन्न होती है। निस्सन्देह वह संस्कृति बाह्य कारकों से अत्यधिक प्रभावित रहती है। भारत में बाबूराज, फाइल राज, **स्पीड मनी** (कार्य शीघ्र करने के लिए पैसा देना), साहब, मेमसाहब, बॉस, नेता संस्कृति तथा नियमों के चक्रव्यूह प्रशासनिक संस्कृति के पर्याय हैं।

सन्दर्भ

1. **इल्मदां**—शिक्षा देने वाले; **तकरीर**—सीख या निर्देश; **सियासतदां**—राजनीतिज्ञ या शासक; **हाकिम**—सरकारी अफसर; **हुक्मनामा**—आदेश; **कातिब**—लेखक; **कायदे**—नियम; **मिजाजेजहां**—जनता का स्वभाव या अभिवृत्ति; **नसीहत**—उपदेश।
2. डिमॉक एवं डिमॉक, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन**, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच. नई दिल्ली, 1975.
3. निमरोद रैफिली, **रिडिंग्स इन कम्पैरेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन**, एलंट बेकन, बोस्टन, 1967
4. हारून ए. खान, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: एन इण्ट्रोडक्शन**, केण्डल हण्ट पब्लिशिंग कं., डबीक, इओवा, 1997.
5. रॉबर्ट जेक्सन, **एन एनालाइसिस ऑफ द कम्पैरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन मूवमेण्ट**, कनेडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, खण्ड-15 (1966).
6. फैरेल हैडी, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: ए कम्पैरेटिव पर्सपेक्टिव**, एन.जे. प्रेण्टिस हाल, एंगलवुड क्लिफ, 1966.
7. सिबिल एल. स्टोक्स, **पेपर्स इन कम्पैरेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (सम्पादित)**, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन प्रेस, एनआर्बर, 1962.

●●●

2

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के उपागम
(Approaches to the Study of Comparative Public Administration)

तथ्यों पर आधारित क्रमबद्ध ज्ञान, विज्ञान कहलाता है। विज्ञान, सामान्य बातों या मान्यताओं को सहजतापूर्वक ज्यों का त्यों स्वीकारने की अपेक्षा तर्कों तथा सत्यों के आधार पर उनका परीक्षण करता है। सामान्यत: विज्ञान को दो प्रकार से विभक्त किया गया है। रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवविज्ञान तथा खगोल विज्ञान इत्यादि प्राकृतिक विज्ञान (Natural Sciences) हैं जिनके नियमों तथा सिद्धान्तों का आसानी से परीक्षण किया जा सकता है। दूसरी ओर सामाजिक विज्ञान (Social Sciences) मानव व्यवहार तथा समाज से जुड़े हुए हैं। लोक प्रशासन, मनोविज्ञान, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, नृशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा इतिहास इत्यादि सामाजिक विज्ञान हैं जिनके सिद्धान्त पूर्णतया प्राकृतिक विज्ञानों जैसे नहीं होते हैं क्योंकि समाज से जुड़े व्यवहार का परीक्षण नहीं किया जा सकता है जैसा कि प्राकृतिक विज्ञान की प्रयोगशालाओं में होता है। चूँकि मानव की बौद्धिक समस्याएँ अत्यन्त विकसित, जटिल तथा अस्थिर प्रकृति की हैं अत: स्वाभाविक रूप में बाधाएँ आती हैं। लेकिन कतिपय नियम ऐसे होते हैं जो समाज विज्ञानों में भी विकसित किए जा सकते हैं।

लोक प्रशासन को विज्ञान की तरह विकसित करने, इसके सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का परीक्षण करने एवं इस विषय का विधिवत् अध्ययन करने के लिए कुछ दृष्टिकोण अपनाए गए हैं। यहाँ अध्ययन से तात्पर्य विद्यार्थी द्वारा लोक प्रशासन की पुस्तक पढ़ना नहीं बल्कि अनुसंधान की दृष्टि से विषय को समझने से है। सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिए कुछ **अभिगम** या **उपागम** या **विचारधारा** या **अध्ययन पद्धति** या **दृष्टिकोण** (Approach) अथवा **पैराडाइम** (Paradigm) या **सिद्धान्त** (Theory) या स्कूल होते हैं। **वैचारिक प्रतिमान** (Model) या उपागम से तात्पर्य उस मार्ग या विधि या प्रणाली से है जो किसी लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होती है। ये उपागम लम्बे

अध्ययनों, शोधों तथा विश्लेषणों के पश्चात् निर्मित हो पाते हैं। उपागम की सामान्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

- यह विषय को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं।
- अध्ययन विधि को सरल तथा नियंत्रित बनाते हैं।
- इनके आधार पर नए सिद्धान्त बन सकते हैं या पूर्व के सिद्धान्तों का परीक्षण हो सकता है।
- उपागम किसी भी अध्ययन को भटकने, बिखरने तथा बाधाओं से बचाते हैं।
- विषय को प्रामाणिकता के साथ-साथ विश्वसनीयता प्रदान करते हैं।

एलवुड के अनुसार—"जीव विज्ञान के लिए जो महत्व सूक्ष्मदर्शी का तथा खगोल विज्ञान के लिए जो उपयोग दूरबीन का है; वही उपयोग और महत्व समाज विज्ञानों के लिए 'वैज्ञानिक पद्धति' का है।" यही वैज्ञानिक पद्धतियाँ, उपागम या अभिगम या दृष्टिकोण कहलाती हैं। ज्ञान के विस्तार तथा सिद्धान्तों की खोज में दो पद्धतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। **निगमनात्मक** (Deductive) **पद्धति** के अन्तर्गत सामान्य से विशेष की ओर सोचा जाता है, जैसे—मनुष्य मरणशील है; अत: राम भी मरणशील है। **आगमनात्मक** (Inductive) **पद्धति** में विशेष से सामान्य की ओर जाते हैं जैसे—राम मरणशील है, मोहन मरणशील है; अत: मनुष्य मरणशील है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की विचारधारा आगमनात्मक (Inductive) प्रकृति की है जिसमें विशेष से सामान्य की ओर बढ़ने का प्रयास किया जाता है।

एक विषय के रूप में लोक प्रशासन की शुरुआत सन् 1887 में युवा राजनीति विज्ञानी वुडरो विल्सन के लेख 'The Study of Administration' से मानी जा सकती है। उस समय लोक प्रशासन से सम्बन्धित अवधारणाएँ एवं व्याख्याएँ राजनीति विज्ञान विषय के साथ पढ़ाई जाती थी। शासन और प्रशासन के मध्य गहन सम्बन्ध को पृथक् करके नहीं देखा गया था। लेकिन कालान्तर में प्रशासनिक सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं तथा कार्यप्रणाली को राजनीति विज्ञान से पृथक् किया गया। इस प्रकार लोक प्रशासन में शुरुआती योगदान राजनीतिशास्त्रियों तथा सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित प्रचलित उपागमों का रहा है। सन् 1926 में **एल.डी. व्हाईट** की पुस्तक *Introduction to the Study of Public Administration* ने लोक प्रशासन की कार्य विधियों, अवधारणाओं, नियमों तथा सिद्धान्तों को सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया तथा इस विषय को सैद्धान्तिक मान्यता मिलने में सहायता प्राप्त हुई।

चूँकि लोक प्रशासन एक सामाजिक विज्ञान है तथा इसके कार्यकर्ता (लोक सेवक) स्वयं मनुष्य हैं जो सामाजिक व्यवहार से प्रभावित हैं तथा लोक प्रशासन का उद्देश्य लोक नीति, कानून एवं कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना है; अत: लोक प्रशासन के अध्ययन से सम्बन्धित उपागम भी अन्य सामाजिक विज्ञानों यथा—राजनीति विज्ञान तथा समाजशास्त्र इत्यादि में प्रचलित उपागमों से प्रभावित हैं। स्थूल रूप से लोक प्रशासन के अध्ययन के उपागम परम्परागत (Traditional) तथा आधुनिक दो भागों में विभक्त किए जा सकते हैं।

परम्परागत उपागम (Traditional Approach) को शास्त्रीय उपागम, यांत्रिक उपागम, संरचनात्मक उपागम, कुशलता तथा मितव्ययता उपागम, अभियांत्रिकी उपागम एवं औपचारिक संगठन उपागम इत्यादि नामों से जाना जाता है। लोक प्रशासन के आरम्भिक विद्वान् जैसे—हेनरी फेयोल, लूथर गुलिक, जे.डी. मूने, ए.सी. रैली, एल. उरविक, मेरी पार्कर फॉलेट, आर. शैल्टन, एफ.डब्ल्यू. टेलर, फ्रैंक जे. गुडनाऊ, एल.डी. व्हाईट, एफ.ए. क्लीवलैण्ड, एफ.डब्ल्यू. विलोबी तथा ए.ई. बक इत्यादि परम्परागत या संगठनात्मक उपागम के समर्थक रहे हैं। परम्परावादियों की यह मान्यता रही है कि लोक प्रशासन की मूल समस्याएँ संगठन के कानूनी ढाँचे में जन्म लेती हैं अतः संगठन की औपचारिक संरचना पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। परम्परावादी उपागम के समर्थकों ने ऐतिहासिक पद्धति, कानूनी पद्धति, विषयवस्तु पद्धति, वैज्ञानिक पद्धति, जीवनवृत्तात्मक पद्धति, राजनीतिक पद्धति तथा वर्णनात्मक पद्धति इत्यादि को आधार बनाकर प्रशासन की व्याख्या करने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक पद्धति में 'संस्थाएँ क्या थीं,' 'क्या हैं' तथा 'कैसे परिवर्तित हुईं' पर बल दिया जाता है जबकि कानूनी पद्धति में सरकार के अंगों, संविधान तथा कानूनों का अध्ययन किया जाता है। विषयवस्तु पद्धति में सेवाओं का कार्यक्षेत्र जैसे—पुलिस कार्य, चिकित्सा विभाग, इत्यादि को विशेषीकृत आधार पर वर्णित किया जाता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध में टेलरवाद तथा फेयोलवाद का प्रभाव है जो संगठन के वैज्ञानिक आधार, तर्कसंगत प्रक्रियाओं और सुस्थापित सिद्धान्तों पर बल देती है जबकि जीवनवृत्तात्मक पद्धति में प्रशासनिक संस्मरणों, वरिष्ठ प्रशासकों के अनुभवों तथा अभिलेखों को आधार बनाकर व्याख्या की जाती है। राजनीतिक पद्धति में प्रशासन को राजनीति का सम्बन्धी मानकर, साधन मानकर तथा सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का अंग मानकर अध्ययन किया जाता है। हाथोर्न प्रयोगों के पश्चात् परम्परागत विचारधारा का महत्त्व घट गया एवं मानव सम्बन्ध विचारधारा का जन्म हुआ।

मैक्स वेबर का नौकरशाही उपागम, हरबर्ट साइमन का निर्णयन उपागम, व्यवस्था उपागम, अन्तरविषयी उपागम, व्यवहारवादी उपागम, उत्तर व्यवहारवादी उपागम, पारिस्थितिकीय उपागम, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम, विकास प्रशासन उपागम, समाजशास्त्रीय उपागम, मानव-सम्बन्ध उपागम, ऑपरेशन्स रिसर्च उपागम तथा आकस्मिकता उपागम इत्यादि नए उपागम अब लोक प्रशासन में लोकप्रिय हो रहे हैं। वस्तुतः सभी उपागमों में गुण-दोष व्याप्त हैं। कोई भी उपागम अपने आपमें पूर्ण तथा त्रुटिरहित नहीं है। **ई.एन. ग्लेडन** लिखते हैं—"लोक प्रशासन में बहुत सी पाठ्यपुस्तकें हैं लेकिन किसी भी एक उपागम को सभी पुस्तकों में सर्वस्वीकार्य नहीं माना गया है। कुछ लेखक प्रशासनिक संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं की अपनी सरकारों के सन्दर्भ में व्याख्या करते हैं तो कतिपय लेखक केवल वर्णनात्मक उपागम बताते हैं।" इसी सन्दर्भ में **रॉबर्ट प्रेस्थस** कहते हैं—"चूँकि लोक प्रशासन, सामान्यीकृत रूप में एक मानवीय क्रिया है जो कुछ लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मानव एवं अन्य संसाधनों को व्यवस्थित ढंग से काम में लेने से सम्बन्धित है अतः इसमें अन्य सामाजिक विज्ञानों का

स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इसीलिए कानूनी, ऐतिहासिक तथा विशुद्ध नियमात्मक उपागमों का भरपूर प्रयोग होता है।"

तुलनात्मक लोक प्रशासन एक नई शाखा है जो विभिन्न देशों तथा अन्तर्देशीय प्रशासनिक संस्थाओं के अध्ययन पर बल देती है। विगत सदी में पचास के दशक से तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों को शैक्षिक महत्त्व मिलने के पश्चात् तुलनात्मक लोक प्रशासन की अध्ययन प्रणालियों या उपागमों की ओर सोचा जाने लगा। इस दिशा में 'व्यवस्था उपागम' का विशिष्ट योगदान माना जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन से सम्बन्धित प्रामाणिक अध्ययनों तथा विभिन्न उपागमों की उपादेयता के क्रम में **एफ.डब्ल्यू. रिग्ज** का योगदान सर्वाधिक है। यहाँ कतिपय महत्त्वपूर्ण उपागमों के बारे में व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम
(Structural-Functional Approach)

लोक प्रशासन सहित अधिकांश सामाजिक विज्ञानों में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम बहुतायत में प्रयोग होता है। इस उपागम को **व्यवस्था विश्लेषण** (System Analysis) के नाम से भी जाना जाता है। सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायक यह उपागम सामाजिक संरचना तथा उसके कार्यों (प्रकार्यों) पर बल प्रदान करता है। टालकॉट पारसन्स, रॉबर्ट मर्टन, मेरियन लेवी, गेब्रियल आमण्ड, डेविड एप्टर तथा रिग्ज इत्यादि विद्वानों ने इस उपागम का उपयोग किया है। वस्तुतः यह उपागम संरचनात्मक उपागम तथा प्रकार्यात्मक उपागम का संयुक्तीकरण करके बनाया गया है।

लोक प्रशासन में सर्वप्रथम सन् 1955 में ड्वाइट वाल्डो ने यह बताया कि लोक प्रशासन को सामाजिक व्यवस्था के एक भाग के रूप में विश्लेषित करने के क्रम में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम महत्त्वपूर्ण माध्यम है। सन् 1957 में **एफ.डब्ल्यू. रिग्ज ने अपना कृषका-औद्योगिका मॉडल इसी उपागम के आधार पर निर्मित किया** तथा यह निष्कर्ष सामने आया कि पश्चिमी देशों की प्रशासनिक व्यवस्था ही सर्वश्रेष्ठ नहीं है बल्कि प्रत्येक देश की प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषण वहाँ के स्थानीय सन्दर्भों में होना चाहिए। जो संरचना अमेरिका के सन्दर्भ में सर्वश्रेष्ठ है वह भारत के सन्दर्भ में निकृष्टतम हो सकती है।

लोक प्रशासन में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का यह सिद्धान्त समाजशास्त्र से आया है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास तथा बढ़ते महत्त्व ने इस उपागम को उपादेय बना दिया है। इस उपागम में दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं—

1. संरचना, तथा
2. प्रकार्य।

[यहाँ Function का हिन्दी अनुवाद प्रकार्य इसलिए बताया गया है कि यहाँ फंक्शन का आशय सामान्य कार्य (Work) से नहीं बल्कि विशिष्टता से है।] समस्त प्रकार

की सामाजिक संरचनाएँ कुछ न कुछ कार्य करती हैं अतः संरचना को कार्य (प्रकार्य) के आधार पर ही समझा जा सकता है। समस्त प्रकार की संरचनाएँ विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करती हैं अतः संरचना को विश्लेषित किया जा सकता है। लोक प्रशासन की संरचनाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं—

1. साकार या प्रत्यक्ष (Concrete), तथा
2. विश्लेषणात्मक (Analytic)।

साकार या प्रत्यक्ष संरचनाएँ वे हैं जो सामने प्रत्यक्ष दिखती हैं जैसे—विभाग, मंत्रालय या महाविद्यालय। जबकि विश्लेषणात्मक संरचनाएँ अप्रत्यक्ष स्वरूप लिए हुए होती हैं जैसे कि सत्ता या प्राधिकार। वास्तव में विश्लेषणात्मक संरचनाएँ, साकार संरचनाओं पर ही आधारित होती हैं। प्रत्येक प्रकार के संगठन 'संरचना' नहीं कहे जा सकते हैं केवल विशेष प्रकार्य करने पर ही वे संरचना कहलाते हैं।

प्रकार्य वह परिणाम है जो संरचना से प्राप्त होता है। **रॉबर्ट सी. बोन** के अनुसार—"एक प्रकार्य संरचना को बनाए रखने तथा उसे विकसित करने वाला ऐसा क्रिया-प्रतिमान है जो नियमित रूप से होता रहता है।" कतिपय विद्वानों का मानना है कि प्रकार्य बहुधा विकार्यात्मक (Dysfunctional) अर्थात् नकारात्मक भूमिका भी निभा सकता है। लेकिन प्रकार्य की श्रेणी में उन्हीं परिणामों को गिना जाना चाहिए जो किसी व्यवस्था को बनाए रखने या विकसित करने में सहायक हों तथा जो नियमित रूप से घटित होते हैं। समाजशास्त्रियों के अनुसार प्रकार्य का अर्थ दो या अधिक संरचनाओं के मध्य अन्तरनिर्भरता के प्रतिमानों से है। यह विभिन्न चरों (Variables) के मध्य अन्तरसम्बन्धों को भी दर्शाता है। एक संरचना का दूसरी संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव भी प्रकार्य की श्रेणी में आते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हमेशा संरचना तथा प्रकार्य के मध्य प्रत्यक्ष एवं गहरा सम्बन्ध हो ही। इसी प्रकार एक समान संरचनाएँ हमेशा एक समान प्रकार्य करें, यह भी आवश्यक नहीं है। अनुभवात्मक अनुसंधानों के आधार पर संरचना तथा प्रकार्य का आपसी प्रभाव ढूँढा जाता है। एक संरचना से कई प्रकार के प्रकार्य निष्पादित हो सकते हैं। उसी प्रकार एक प्रकार्य कई प्रकार की संरचनाओं के द्वारा भी निष्पादित हो सकता है। इस प्रकार यह उपागम यह सिद्ध करता है कि समान प्रकार की संरचनाएँ विभिन्न प्रकार के पर्यावरण में एक समान प्रकार्य निष्पादित नहीं करती हैं। प्रकार्यों को भी दो भागों में विभक्त किया गया है—

1. प्रकट प्रकार्य (Manifest), तथा
2. गुप्त प्रकार्य (Latent)।

समाजशास्त्री रॉबर्ट मर्टन के अनुसार प्रकट प्रकार्यों का सम्बन्ध उन क्रिया-प्रतिमानों से होता है जिनके परिणामों को उनके करने वाले चाहते हैं तथा मान्यता देते हैं जबकि गुप्त प्रकार्य (विकार्य) उन क्रिया-प्रतिमानों को कहा जाता है जिनके परिणामों को उनके करने वाले न तो चाहते हैं और न ही मान्यता देते हैं। इसी आधार पर यदि

प्रशासनिक संरचनाओं के प्रकार्यों का अध्ययन किया जाए तो बहुत से सार्थक निष्कर्ष सामने आते हैं। प्रत्येक प्रकार के प्रकार्य सभी प्रकार की सामाजिक तथा प्रशासनिक संरचनाओं द्वारा निष्पादित नहीं किए जाते हैं। किसी समाज में कुछ प्रकार्य 'पूर्वशर्त' होते हैं तो कुछ प्रकार्य 'आवश्यकता' होते हैं। ये प्रकार्य विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय सन्दर्भों में संरचना को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं।

रिग्ज के अनुसार किसी भी समाज में पाँच प्रकार के आवश्यक प्रकार्य हैं—आर्थिक, सामाजिक, संरचनात्मक, प्रतीकात्मक तथा राजनीतिक प्रकार्य; सभी समाजों के आवश्यक प्रकार्य हैं क्योंकि मनुष्य का व्यवहार तथा आवश्यकताएँ मूलतः इन्हीं पक्षों से जुड़ी हुई हैं। रिग्ज ने यही पाँच प्रकार्य प्रशासनिक उपव्यवस्थाओं को समझने के लिए आवश्यक बताए हैं।

सारांशतः संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की **विशेषताएँ** तथा मान्यताएँ इस प्रकार हैं—

1. प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में अनेक प्रकार की संरचनाएँ होती हैं।
2. संरचनाओं से जुड़े हुए कुछ प्रकार्य होते हैं।
3. सामान्यतः संरचना तथा प्रकार्य का आपस में सम्बन्ध होता है।
4. प्रत्येक संगठन तब तक संरचना नहीं माना जा सकता है जब तक कि उसमें विशेष प्रकार्य न हों।
5. यह प्रशासनिक संरचनाओं को समझने के लिए प्रकार्यात्मक निर्भरता पर बल देता है।
6. प्रत्येक संरचना में उसकी उपादेयता, विकास तथा औचित्य के लिए सामान्यतः कुछ प्रकार्य होते हैं।
7. प्रकार्य तथा संरचना आपस में अन्तरसम्बन्धित हैं।
8. यह एक मूल्य निरपेक्ष (स्वतंत्र) उपागम है।

प्रो. एस.पी. वर्मा ने इस उपागम के सम्बन्ध में तीन प्रमुख मान्यताएँ वर्णित की हैं जो इस उपागम में प्रायः ध्यान में रखी जाती हैं—

1. किस व्यवस्था में कौन से आधारभूत प्रकार्य पूरे किए जाते हैं?
2. ये प्रकार्य किन संरचनाओं द्वारा पूरे किए जाते हैं? तथा
3. ये प्रकार्य किन परिस्थितियों में पूरे किए जाते हैं?

इन तीनों प्रश्नों का उत्तर ढूँढना संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का उद्देश्य है। इस उपागम के समर्थक विद्वानों में इस बात पर मतभेद हैं कि संरचना पर जोर दिया जाए अथवा प्रकार्यों पर? रिग्ज का मानना है कि **संरचनाओं पर ही बल दिया जाना चाहिए।** उनके शब्दों में—"प्रकार्यों के विरुद्ध संरचनाओं पर जोर नहीं दिया जाता है तो विश्लेषण गुमराह करने वाला और अविश्वसनीय हो सकता है।" वस्तुतः व्यवस्था विश्लेषण में संरचना ही आधार है, प्रकार्य तो उसके क्रिया परिणाम हैं।

आलोचना (Criticism)

इस उपागम की उपादेयता सर्वसिद्ध है किन्तु कतिपय आलोचनाएँ भी की जाती है—

1. यह उपागम अपने आप में रूढ़िवादी है क्योंकि इसमें पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति उदासीनता है जबकि परिवर्तन सृष्टि का नियम है।
2. यह उपागम किसी व्यवस्था के बारे में यह नहीं बता सकता है कि किस परिस्थिति में वह संधारित होती है।
3. प्रत्येक संरचना तथा व्यवस्था के सन्दर्भ में प्रकार्यों की व्याख्या कठिन है।
4. यह उपागम प्राकृतिक संरचनाओं के पक्ष में तथा कृत्रिम संरचनाओं के विरुद्ध है।

व्यवहारवादी उपागम
(Behavioural Approach)

सामाजिक विज्ञानों में अध्ययन प्रणाली के रूप में व्यवहारवादी (Behavioural) उपागम एक नई पद्धति है जो द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् शुरू हुई। व्यवहारवादी उपागम, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों से अनुप्राणित है। राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन सहित अधिकांश सामाजिक विज्ञानों में व्यवहारवादी उपागम से पूर्व केवल संस्थागत अध्ययन होता था जिसमें सम्बन्धित संस्था जैसे—विधानमण्डल या नौकरशाही इत्यादि के ढाँचे, कार्य तथा शक्तियों इत्यादि की व्याख्या की जाती थी। वास्तव में इन अध्ययनों से यह पता नहीं चल पाता था कि यथार्थ (वास्तव) में व्यक्ति या कार्यकर्ता कैसा व्यवहार करते हैं। अतः परम्परागत अध्ययन प्रणालियों तथा सिद्धान्तों के विद्रोह स्वरूप व्यवहारवादी उपागम की शुरुआत हुई। यह एक अन्तरविषयी उपागम है जो वैज्ञानिक पद्धति तथा मूल्य निरपेक्ष दृष्टिकोण का समर्थन करता है।

लोक प्रशासन में व्यवहारवाद की प्रारम्भिक जड़ें सन् 1930 के मानव सम्बन्ध आन्दोलन से जुड़ी हुई हैं। इसके पश्चात् **चेस्टर बर्नार्ड** तथा **हरबर्ट साइमन** ने इस उपागम को लोक प्रशासन में प्रयुक्त किया। डेविड ईस्टन, वाइडनर, ब्लाऊ, मर्टन, सायर्स, हैडी, स्टॉक्स, रिग्ज, रॉबर्ट प्रेस्थस, माइकल क्रोजियर, रॉबर्ट डहाल तथा कैटलिन इत्यादि ने व्यवहारवादी उपागम को विकसित करने में योगदान दिया है। यह उपागम प्रशासनिक तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण करने का एक विशेष तरीका है जो संगठनात्मक '**व्यवहार**' पर ध्यान केन्द्रित करता है। व्यवहारवाद अनुभव आधारित शोध तथा प्रविधियों में निरन्तर सुधार की माँग करता है। इस उपागम में मानवीय कल्पनाओं, व्यक्तिगत मूल्यों तथा परम्पराओं को दरकिनार किया जाता है ताकि वैज्ञानिक ढंग से शोध निष्कर्ष प्राप्त हो सकें। चूँकि लोक प्रशासन में पूर्व प्रवर्तित अध्ययन विधियाँ तथा सिद्धान्त भी पूर्णतया वैज्ञानिक नहीं थे अतः व्यवहारवादी उपागम शीघ्र ही अपना लिया गया।

व्यवहारवाद के अर्थ के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में एक राय नहीं है। कतिपय विद्वान् इसे एक मनोवृत्ति मानते हैं जबकि अन्य इसे एक निश्चित विचार, सिद्धान्त तथा

कार्यविधि स्वीकारते हैं। लेकिन अब यह स्वीकारा जा चुका है कि व्यवहारवाद एक वैज्ञानिक पद्धति है। चूँकि इस पद्धति में अनुभव, व्यवहार तथा मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणाओं इत्यादि सामाजिक तथा मनोशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रयोग होता है अतः इसे **अनुभववाद का पर्याय** भी समझ लिया जाता है। इस सम्बन्ध में **एम.क्यू. सिल्वी** का मत है—"व्यवहारवादी उपागम प्राकृतिक विज्ञानों से प्रभावित है जो यह मानता है कि सामाजिक विज्ञानों तथा प्राकृतिक विज्ञानों के नियम एवं सिद्धान्त समान हो सकते हैं जबकि अनुभववाद, ऐतिहासिक आधारों, सांस्कृतिक प्रतिमानों तथा व्यक्तिगत अनुभवों को प्राथमिकता देता है।"

लोक प्रशासन में व्यवहारवाद को स्थापित करने के क्रम में हरबर्ट साइमन का नाम अग्रणी है। साइमन ने सन् 1946 में **लोक प्रशासन में लोकोक्तियाँ** (Proverbs in Public Administration) नामक लेख के माध्यम से सफलतापूर्वक यह सिद्ध कर दिया कि लोक प्रशासन में व्यावहारिक स्तर पर कोई सिद्धान्त नहीं है क्योंकि जैसे सिद्धान्त बने हुए हैं वैसा यथार्थ में देखने को नहीं मिलता है। इसी प्रकार सन् 1947 में साइमन ने अपनी पुस्तक 'प्रशासनिक व्यवहार' (Administrative Behaviour) में भी इस विषय को वैज्ञानिक स्वरूप देने पर बल दिया क्योंकि संगठन के औपचारिक तथा व्यावहारिक स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। व्यवहारवाद में औपचारिक स्वरूप को नकारा नहीं जाता है बल्कि उसके यथार्थ स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न किया जाता है। व्यवहारवादी उपागम के द्वारा प्रशासकीय तंत्र के व्यावहारिक (यथार्थ) पक्ष को उजागर किया जाता है क्योंकि प्रशासन का वास्तविक स्वरूप तो कार्यरत कार्मिक तय करते हैं।

डेविड ईस्टन ने व्यवहारवाद की मूल मान्यताएँ इस प्रकार वर्णित की हैं—

1. नियमितताएँ
2. सत्यापन
3. तकनीकें
4. परिमाणीकरण
5. मूल्य निरपेक्षता
6. क्रमबद्धता
7. विशुद्ध विज्ञान
8. एकीकरण।

इस प्रकार ईस्टन का मानना है कि व्यवहारवाद संस्थाओं की नियमित प्रक्रियाओं के सत्यापन को महत्त्व देता है। इस हेतु विशुद्ध विज्ञान की तकनीकें काम में ली जाती हैं। क्षेत्रीय अवलोकन, प्रयोग, प्रयोगशाला तथा समूह अध्ययन इत्यादि इसकी वैज्ञानिक पद्धतियाँ हैं। यह उपागम मात्रात्मक (Quantitative) बिन्दुओं पर बल देता है अर्थात् संख्या के आधार पर गणना की जाती है। इसी प्रकार एक विषय का दूसरे के साथ समन्वय, एकीकरण तथा सामंजस्यता लाना इसकी मान्यताएँ हैं।

अन्य विशेषताएँ या मान्यताएँ (Other Characteristics or Assumptions)

व्यवहारवादी उपागम की कुछ अन्य प्रमुख मान्यताएँ इस प्रकार हैं—

(1) **सूक्ष्म अध्ययनों पर बल :** व्यवहारवाद में किसी भी संगठन के समस्त अंगों, कार्यों या तंत्र को स्थूल रूप से समझने के बजाय व्यष्टि/सूक्ष्म (Micro) अध्ययन पर बल दिया जाता है अर्थात् बड़े या समष्टि (Macro) अध्ययन में गहनता नहीं आ पाती है जबकि व्यष्टि अध्ययन में लघुकरण तथा विशेषीकरण हो जाता है। व्यवहारवादी मानते हैं कि सम्पूर्ण संगठन के अध्ययन के प्रयास में अध्ययन की प्रासंगिकता समाप्त हो जाती है। प्रशासनिक सिद्धान्तों यथा-नियंत्रण, आदेश की एकता, केन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन तथा पर्यवेक्षण इत्यादि सभी पक्षों का अध्ययन एक साथ करने की बजाय एक-एक बिन्दु को सूक्ष्मता से जाँचना चाहिए। इसी प्रकार किसी देश या प्रांत के समस्त संगठनों का अध्ययन करने के स्थान पर किसी एक इकाई का अध्ययन ही सार्थक सिद्ध हो सकता है।

(2) **वैज्ञानिक आधार तथा प्रविधि पर बल :** व्यवहारवादी उपागम की मूल मान्यता सामाजिक विज्ञानों को प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति स्थापित करना है अतः अध्ययन में काम ली जाने वाली शोध प्रविधि विश्वसनीय, प्रामाणिक तथा प्रभावी होनी चाहिए। अध्ययन करते समय '**क्या होना चाहिए**' के बजाय '**क्या है**' का विवेचन तथा विश्लेषण करना चाहिए। साइमन का मानना है कि 'क्या होना चाहिए' की मान्यता आदर्शवादी तथा सैद्धान्तिक है जबकि 'क्या है' की मान्यता यथार्थ को सामने बताती है।

(3) **व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन :** व्यवहारवादी उपागम से सम्बन्धित अध्ययन व्याख्यात्मक तथा वर्णनात्मक होते हैं। उनमें यथावश्यक विश्लेषण का प्रभाव भी दिखाई देता है किन्तु निर्देशात्मक या उपचारात्मक विधि नहीं अपनाई जाती है। इस उपागम के द्वारा वास्तविकता को समझा जाता है न कि आदर्शात्मक निर्देश प्रदान किए जाते हैं।

(4) **अन्तरविषयी दृष्टिकोण :** संगठनात्मक व्यवहार को समझने के लिए केवल प्रशासकीय संरचना, नियम, प्रक्रिया, कानून तथा कार्यप्रणाली को जानना ही आवश्यक नहीं है बल्कि संगठन के सामाजिक परिवेश को समझना भी महत्त्वपूर्ण है अतः सन्दर्भ विशेष की उपादेयता को भी पहचाना जाता है। समाज से सम्बन्धित अन्य विज्ञानों जैसे—राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान इत्यादि को लोक प्रशासन के साथ अन्तरविषयी या अन्तरअनुशासनात्मक आधार पर एकीकृत करना इस उपागम की मान्यता है क्योंकि यह उपागम ज्ञान को कभी भी पूर्ण तथा निरपेक्ष नहीं मानता है।

(5) **अनुभवमूलक सिद्धान्त :** यह उपागम विज्ञान के सिद्धान्तों को सामाजिक विज्ञानों में प्रतिपादित करने का हिमायती है अतः लोक प्रशासन सहित सामाजिक विज्ञानों में अनुभव आधारित तथ्य प्रस्तुत किए जाने चाहिए। अनुभव, निरीक्षण, अवलोकन, सन्दर्भ सामग्री ज्ञान, पूर्व की प्रामाणिक घटनाएँ तथा यथार्थवादी परिस्थितियाँ इसकी अनुभवमूलक प्रकृति के लिए आवश्यक आधार बनती हैं।

आलोचना (Criticism)

यद्यपि व्यवहारवादी आन्दोलन ने सामाजिक विज्ञानों को दो दशक तक नवप्रेरणा तथा चिन्तन का आधार प्रदान किया तथा लोक प्रशासन सहित अधिकांश सामाजिक विषयों में पर्याप्त अनुसंधान भी हुए किन्तु इस उपागम में भी कुछ कमियाँ तथा सीमाएँ थीं जैसे—

1. बहुत से वैज्ञानिक इसे सिद्धान्त या अध्ययन का उपागम मानने की बजाय केवल एक मनोवृत्ति ही करार देते रहे, जो एक विशेष सोच से प्रेरित थी।
2. व्यवहारवादी विचारक इस उपागम से प्राप्त निष्कर्षों तथा मान्यताओं को सापेक्ष मानते हैं, साथ ही तथ्यों के माप-तौल (परिमाण) पर भी बल देते हैं। इस प्रकार ये मान्यताएँ विरोधाभासी बन जाती हैं।
3. व्यवहारवादी उपागम से अभी तक मानव व्यवहार का सटीक विश्लेषण नहीं हो सका है क्योंकि विश्व की सबसे जटिल अवधारणा, आश्चर्य तथा समस्या 'मानव व्यवहार' ही है। व्यवहारवादी भी मानव व्यवहार की स्पष्ट व्याख्या करने में असमर्थ हैं।
4. यह उपागम 'उत्तर आधुनिकता' के समर्थकों की भाँति जो बीत गया (इतिहास) उसे स्वीकारने तथा समझने में रुचि नहीं लेता है जबकि वर्तमान तो भूतकाल पर ही खड़ा है।
5. कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि इस उपागम में वैज्ञानिक पद्धति पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। ऐसे में पद्धति तथा तकनीक तो शुद्ध या प्रामाणिक हो सकती है किन्तु अध्ययन के अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष छूट जाते हैं।
6. वस्तुतः प्राकृतिक विज्ञानों तथा सामाजिक विज्ञानों की प्रकृति में मूलभूत अन्तर है। प्राकृतिक विज्ञान निर्जीव वस्तुओं पर प्रयोग कर निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं किन्तु सामाजिक विज्ञानों में मानव व्यवहार को समझना कठिन है। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि सामाजिक विज्ञानों को प्राकृतिक विज्ञानों का स्वरूप नहीं दिया जा सकता है।
7. व्यवहारवादी उपागम में सूक्ष्म (व्यष्टि) अध्ययन पर बल दिया जाता है जबकि वृहत् स्तरीय अध्ययन तथा समस्याएँ उपेक्षित रह गई हैं। अतः यह उपागम भी संकीर्णता से ग्रस्त है।
8. कुछ विद्वानों का कहना है कि व्यवहारवादी उपागम केवल सैद्धान्तिक व्याख्या-विश्लेषण करता है। संगठन की समस्याओं का वास्तविक समाधान इस उपागम के पास भी नहीं है क्योंकि यह केवल कल्पना आधारित अवधारणाएँ धारण करता है।

व्यवहारवादी उपागम की कमियों तथा आलोचनाओं के कारण ही सन् 1970 के आस-पास **उत्तर व्यवहारवादी आन्दोलन** शुरू हो चुका था। **प्रो. हेण्डरसन** की पुस्तक 'इमरजिंग सिन्थेसिस इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' इसी का परिणाम मानी जा सकती है। राजनीतिशास्त्री डेविड ईस्टन ने व्यवहारवाद को पर्याप्त मात्रा में विकसित किया तथा इन्होंने ही व्यवहारवाद की आलोचना होने पर उत्तर व्यवहारवाद की शुरुआत की। उत्तर

व्यवहारवाद में वास्तविकताओं को समझने, मानव कल्याण को गति देने, पूर्ण मूल्य निरपेक्षता से बचने तथा विचारों की संगतता को महत्त्व दिया गया है। अतः कहा जाता है कि परम्परावादी अध्ययन प्रणाली वाद (Thesis) थी, व्यवहारवादी आन्दोलन प्रतिवाद (Antithesis) बना उत्तर व्यवहारवाद संश्लेषण या संवाद (Synthesis) का पर्याय है।

विकास प्रशासन उपागम
(Development Administration Approach)

आधुनिक लोककल्याणकारी राज्यों विशेषतः विकासशील राष्ट्रों में 'विकास' एक गम्भीर तथा महत्त्वपूर्ण चुनौती है। सरकार द्वारा जनकल्याण के लिए अनेक योजनाएँ तथा कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। इन कार्यों को सम्पादित करने वाला प्रशासक ढाँचा तथा उसकी अवधारणा विकास प्रशासन कहलाती है। यद्यपि प्रशासन का विकासमयी स्वरूप सदैव से ही रहा है किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् नवस्वतंत्र राष्ट्रों ने विकास को सभ्यता का केन्द्रबिन्दु घोषित कर दिया है। उपनिवेशवाद में प्रशासन की प्रकृति नियामकीय अर्थात् शांति-व्यवस्था बनाए रखने की थी जबकि आज के सन्दर्भों में विकास कार्य प्रशासन की मुख्य गतिविधियाँ हैं।

विकास प्रशासन उपागम (Development Administration Approach) के प्रतिपादन का श्रेय **एडवर्ड वाइडनर** को जाता है। यद्यपि 'विकास प्रशासन' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1955 में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की पत्रिका (IJPA) में **श्री यू.एल. गोस्वामी** द्वारा किया गया था किन्तु इसे विकसित स्वरूप प्रदान करने का श्रेय एडवर्ड वाइडनर (1962) को ही दिया जाएगा क्योंकि उन्होंने विकास प्रशासन की मूलभूत विशेषताएँ प्रतिपादित की थीं। उनके अनुसार ऐसा प्रशासन जो **परिवर्तन उन्मुखी** (Change Oriented) तथा **लक्ष्य उन्मुखी** (Goal Oriented) हो वह विकास प्रशासन है। विकास प्रशासन परम्परागत प्रशासन की भाँति जड़ या स्थायित्व प्राप्त नहीं रहता है बल्कि उसमें समयानुकूल परिवर्तन आते रहते हैं। इसी प्रकार विकास प्रशासन, निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में तत्पर रहता है। विकास प्रशासन मानव जीवन के समस्त अंगों को प्रभावित करता है, यथा—

1. राजनीतिक विकास,
2. आर्थिक विकास,
3. सामाजिक विकास, तथा
4. सांस्कृतिक विकास।

विकास प्रशासन उपागम के समर्थक मानते हैं कि लोक प्रशासन का अध्ययन करते समय प्रशासन द्वारा किए जा रहे विकास कार्यों, विकास नीतियों, कार्यक्रमों तथा उनकी क्रियाओं का विश्लेषण किया जाना चाहिए। विकास प्रशासन में **चार 'पी'**—योजना (Plan), परियोजना (Project), नीति (Policy) तथा कार्यक्रम (Programme) बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। **विकास प्रशासन** एक प्रक्रिया है जो किसी संगठन को निर्देशित करती है कि वह

राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करे। इस सम्बन्ध में दो प्रमुख अवधारणाएँ हैं—

1. वे प्रशासनिक प्रक्रियाएँ तथा प्रयास जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों को लाने में भूमिका निभाते हैं, का अध्ययन करना **विकास प्रशासन** की अवधारणा है।
2. स्वयं प्रशासन अपने अन्दर या अपनी कार्यशैली में ऐसे परिवर्तन लाए जो विकास के लिए आवश्यक हैं, यह **प्रशासनिक विकास** की अवधारणा है।

वस्तुतः विकास प्रशासन समग्र लोक प्रशासन का एक स्वरूप है। यह परम्परागत लोक प्रशासन से पृथक् नहीं है वरन् आधुनिक लोक प्रशासन की एक विशेषता है जो समाज के विकास के लिए प्रशासन द्वारा किए जा रहे प्रयासों के रूप में प्रकट होती है। विकास प्रशासन तथा गैर विकास प्रशासन में बहुत भारी अन्तर नहीं है बल्कि किंचित् मात्रात्मक अन्तर ही है। विकास प्रशासन में अधिक समन्वय अपेक्षित है क्योंकि यह अधिक जटिल तथा नवाचार प्रयोगी प्रशासन है। **विलियम वुड** विकास प्रशासन तथा गैर विकास प्रशासन में कोई अन्तर नहीं मानते हैं जबकि **इरविंग स्वेइलो** यह मानते हैं कि विकास प्रशासन तथा गैर विकास प्रशासन में अन्तर है। कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि विकास प्रशासन की अवधारणा विकसित के बजाय विकासशील राष्ट्रों की ओर ज्यादा झुकी हुई है। यह आरोप भी पूर्णतया सही नहीं है क्योंकि अमेरिका में टेनेसी घाटी परियोजना को विकास प्रशासन का ही पर्याय माना गया था। सामान्यतः विकास प्रशासन उपागम की निम्नांकित **विशेषताएँ** या मान्यताएँ कही जा सकती हैं—

1. यह अवधारणा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास में प्रशासन की भूमिका पर बल देती है।
2. इसमें यह भी देखा जाता है कि विकास की दिशा में लोक प्रशासन आगे बढ़ते समय स्वयं के ढाँचे तथा प्रक्रियाओं में क्या परिवर्तन (प्रशासनिक विकास) लाता है?
3. प्रशासन द्वारा होने वाले परिवर्तनों तथा प्रयासों की दिशा, गति एवं प्रभाव क्या रहता है?
4. परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। ऐसी परिस्थिति में प्रशासन परिवर्तनों को किस स्वरूप में देखता है?
5. विकास कार्यों तथा सामाजिक परिवर्तनों के सन्दर्भ में प्रशासन कितना सजग एवं संवेदनशील है?
6. विकास प्रशासन उपागम के अनुसार किसी देश की स्थानीय समस्याओं, संसाधनों तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों के क्रम में प्रशासनिक संस्थाएँ एवं प्रक्रियाएँ कैसी हैं?
7. विकास प्रशासन एक मत्यात्मक प्रक्रिया है जो गतिशीलता तथा सामाजिक उपादेयता को महत्त्व देती है।

आलोचना (Criticism)

विकास प्रशासन उपागम एक महत्वपूर्ण अध्ययन दृष्टिकोण है किन्तु इस उपागम की कुछ मूलभूत कमियाँ भी हैं—

1. विकास अपने आपमें सापेक्ष (Relative) शब्द है। विकास को सभी स्थानों, प्रत्येक समय पर तथा सभी सन्दर्भों में एक समान नहीं समझा जा सकता है। जब विकास को ही पूर्ण निरपेक्ष (Absolute) रूप से नहीं समझा जा सकता है तो विकास प्रशासन का विश्लेषण कैसे हो सकता है?
2. यह अवधारणा विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों के प्रशासन के मध्य भेद उत्पन्न करती है।
3. इसमें विकास प्रशासन तथा गैर विकास प्रशासन की दो दृष्टियाँ समायोजित करनी पड़ती हैं जबकि इनका भेद ढूँढना अत्यन्त कठिन है।
4. विकास प्रशासन उपागम में भौतिक तत्त्वों का मापन तो किया जा सकता है, लेकिन मानव व्यवहार का विश्लेषण नहीं हो पाता है।

पारिस्थितिकीय उपागम
(Ecological Approach)

लोक प्रशासन में तुलनात्मक अध्ययनों के क्रम में पारिस्थितिकीय (Ecological) उपागम एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। Ecology शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द oikos से हुई है जिसका अर्थ है—घर या रहने का स्थान। यह उपागम जीव विज्ञान के पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसके अनुसार जीव-जन्तु एवं वनस्पति अपने बाह्य वातावरण के अनुकूल स्वयं को ढाल लेते हैं। इसीलिए पारिस्थितिकीय अध्ययनों को '**Study of Habitat**' कहा जाता है। यद्यपि लोक प्रशासन की संस्थाएँ तथा संगठन सावयवी नहीं हैं तथापि इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली अवश्य ही पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है। वस्तुत: प्रशासनिक व्यवस्थाओं का संचालन मनुष्यों द्वारा होता है और मानव अपने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक पर्यावरण से अत्यधिक प्रभावित होता है। अत: प्रशासनिक तंत्र को उसके आस-पास के वातावरण के सन्दर्भों में भी समझा जाना चाहिए।

पारिस्थितिकीय उपागम के समर्थक विद्वानों में जॉन एम. गॉस, रॉबर्ट ए. डहाल, रोस्को मार्टिन तथा एफ.डब्ल्यू. रिग्स प्रमुख हैं। पारिस्थितिकीय उपागम की मूल मान्यता यह है कि प्रशासनिक व्यवहार, बाह्य पर्यावरण जैसे—संस्कृति, समाज, मूल्य, परम्पराओं तथा समस्याओं इत्यादि का परिणाम है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रशासनिक प्रक्रिया एक ऐसी व्यवस्था है जिसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है जो निस्सन्देह बाह्य सामाजिक संस्कृति का तो विस्तार है। लोक प्रशासन में पारिस्थितिकीय उपागम की शुरुआत (1947) करने वाले विद्वान् **जॉन एम. गॉस** (Reflections on Public Administration) के अनुसार—"सरकारी कार्यों पर जनता, स्थान, भौतिक सुविधाओं, मूल्यों,

परम्पराओं तथा व्यक्तित्व इत्यादि का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। अत: लोक प्रशासन के अध्ययन में पारिस्थितिकीय कारकों को सम्मिलित किया जाना चाहिए क्योंकि पर्यावरण तथा प्रशासन आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।" प्रशासनिक संगठन अपने आपमें स्वतंत्र चर के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं बल्कि ये आस-पास के सामाजिक संगठनों इत्यादि से प्रभावित रहते हैं। अत: लोक प्रशासन में केवल संगठनों की आन्तरिक संरचना, कार्य, प्रक्रिया तथा व्यवस्था को जानना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि संगठन किस माहौल में कार्यरत है, यह जानना अधिक उपयोगी है।

रॉबर्ट डहाल के अनुसार—"एक स्थान पर लोक प्रशासन के अध्ययन में यदि कुछ निष्कर्ष प्राप्त हों तो उनका दूसरे स्थान पर स्थित प्रशासनिक संस्थाओं पर परीक्षण करके ही कुछ सिद्धान्त विकसित किए जा सकते हैं। प्रत्येक स्थान पर पारिस्थितिकी एक समान नहीं होती है। अत: इससे प्रशासनिक सिद्धान्तों का भलीभाँति परीक्षण हो जाता है। लोक प्रशासन में सामान्यीकृत नियम प्रतिपादित करने के लिए इसकी प्रविधियों तथा प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में ज्ञान का दायरा विस्तृत करना होगा। अत: प्रशासन के ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक सन्दर्भों को विश्लेषित किया जाना चाहिए।" इसी प्रकार के विचार रिग्स के हैं। उनके अनुसार—"जिन समाजों में आदिमकालीन तथा आधुनिक दोनों प्रकार की संगठनात्मक विशेषताएँ मिलती हैं, वहाँ अध्ययन की प्रवर्तित प्रणालियाँ उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती हैं क्योंकि मानव तथा प्रशासन की अपनी एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था होती है।" रिग्स ने विकास प्रशासन के सन्दर्भ में संकरसांस्कृतिक अध्ययनों को महत्त्व दिया है। नौकरशाही भी सामाजिक संगठन है अत: इसका पारिस्थितिकीय अध्ययन होना चाहिए। पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की निम्नांकित मान्यताएँ या **विशेषताएँ** हैं—

1. लोक प्रशासन शून्य में निवास नहीं करता है बल्कि यह मानव समाज का एक अंग है।
2. जिस प्रकार मानव, जीव-जन्तु तथा वनस्पतियाँ अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होते हैं, उसी प्रकार प्रशासनिक संगठन भी सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होते हैं।
3. प्रशासन केवल बाह्य वातावरण से प्रभावित ही नहीं होता बल्कि वह पर्यावरण को प्रभावित भी करता है।
4. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था बाह्य वातावरण से निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया करती रहती है।
5. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवहार, प्रशासन संगठनों के बाह्य पर्यावरण एवं विभिन्न कारकों का मिला-जुला परिणाम है।
6. किसी संगठन की आन्तरिक प्रशासनिक कार्य संस्कृति उस देश या समाज के मूल्यों तथा परम्पराओं से बहुत प्रभावित रहती है।

7. तुलनात्मक लोक प्रशासन के सार्वभौमिक नियम प्रतिपादित करने के लिए उनका तुलनात्मक पारिस्थितिकीय अध्ययन आवश्यक है।
8. रिग्ज के अनुसार समाज की कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जो परम्परागत, आधुनिक तथा संक्रमणकालीन सभी प्रकार के समाजों में समान रूप से पाई जाती हैं। इसी प्रकार कुछ प्रशासनिक आवश्यकताएँ भी हो सकती हैं। इसलिए **लुई ममफोर्ड** कहते हैं—''किसी भी प्रकार का जीवन दूसरे से अलग होकर नहीं रह सकता क्योंकि पर्यावरण के बिना किसी भी प्रकार का जीवन सम्भव नहीं है।''

आलोचना (Criticism)

पारिस्थितिकीय उपागम तुलनात्मक लोक प्रशासन का मुख्य उपागम बन चुका है। इस उपागम को प्रयोग में लाना सरल तो है किन्तु कुछ समस्याएँ सामने आती हैं—

1. प्रत्येक शोधकर्ता सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक मूल्यों को अपनी दृष्टि से देखता है अतः दूसरे देश की सांस्कृतिक विरासत को समझना एक जटिल कार्य है। भारतीय 'जाति' की अवधारणा को प्रशासन के साथ समझना सरल कार्य नहीं है।
2. चूँकि मानव व्यवहार तथा समाज जटिल संरचनाएँ हैं अतः यह अनुमान लगाना कठिन है कि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन, प्रशासन के द्वारा आ रहे हैं या अन्य कारकों से?
3. विश्व के सभी देशों तथा यहाँ तक कि भारत जैसे देश में जहाँ कुछ मील पर बोली तथा पानी बदल जाता है, वहाँ सामाजिक व्यवस्था तथा प्रशासनिक संस्कृति का विश्लेषण जटिल बन पड़ता है। सामान्यीकरण की ओर जाना तो बहुत दूर की बात है।

उपर्युक्त वर्णित सीमाएँ या कमियाँ पारिस्थितिकीय उपागम की कम तथा उपयोगकर्ताओं तथा समाज की अधिक हैं फिर भी यह उपागम बहुत रोचक तथा उपयोगी परिणाम दे सकता है। इसी उपागम की भाँति एक अन्य उपागम **फ्रेड लुथांस** ने प्रतिपादित किया है। आकस्मिकता (Contingency) उपागम नामक इस दृष्टिकोण में 'यदि—तो' (If-then) पर बल दिया जाता है अर्थात् 'यदि' बाह्य वातावरण में कुछ घटित हो 'तो' प्रबन्ध कैसे कदम उठाएगा? यह उपागम भी प्रशासन की पारिस्थितिकीय परिस्थितियों तथा घटनाओं पर ध्यान देता है।

फ्रेड रिग्ज का योगदान
(Contribution of Fred Riggs)

लोक प्रशासन के आधुनिक विद्वानों में फ्रेड रिग्ज का योगदान सर्वोच्च तथा अत्यन्त उल्लेखनीय है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की चर्चा करते समय फ्रेड रिग्ज का नाम स्वतः ही मस्तिष्क में कौंधने लगता है।

फ्रेड डब्ल्यू. रिग्ज का जन्म सन् 1917 में चीन के कुलिंग शहर में हुआ था। इन्होंने सन् 1941 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में एम.ए. उपाधि ग्रहण की तथा वर्ष 1948–51 के दौरान नीति संगठन में शोधकर्ता के रूप में कार्य किया। वर्ष 1951–55 तक रिग्ज ने न्यूयार्क स्थित लोक प्रशासन निपटान कार्यालय में निदेशक के रूप में कार्य किया तत्पश्चात् वर्ष 1956–67 तक इण्डियाना विश्वविद्यालय में कार्यरत रहे। सन् 1967 में हवाई विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसी बीच रिग्ज ने अमेरिका में गठित तुलनात्मक प्रशासनिक समूह (1963) के प्रथम अध्यक्ष का पदभार भी सम्भाला है। रिग्ज की प्रमुख चर्चित पुस्तकों में 'The Ecology of Administration,' 'Administration in Developing Countries,' 'The Theory of Prismatic Society,' 'Models & Priorities in the Comparative Study of Public Administration' तथा 'Prismatic Society Revisited' प्रमुख हैं। रिग्ज का योगदान संक्षेप में इस प्रकार है—

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रवृत्तियाँ

रिग्ज के योगदान के क्रम में **फेरल हैडी** का कथन है—''तुलनात्मक सिद्धान्त पर उनके समूचे लेखन से मात्र परिचित हो लेना ही कोई छोटी उपलब्धि नहीं है।'' तुलनात्मक लोक प्रशासन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने तथा लोकप्रिय बनाने में रिग्ज के अध्ययनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रिग्ज ने **तुलनात्मक लोक प्रशासन में तीन प्रकार की प्रवृत्तियों** यथा—आदर्शात्मक से अनुभवमूलक उन्मुखता, विशिष्टता (Ideographic) से सामान्यपरकता (Nomothetic) तथा गैर पारिस्थितिकीय से पारिस्थितिकीय की ओर बल दिया है। रिग्ज के प्रतिमानों से पहले विकसित हुए प्रशासनिक प्रतिमान मुख्यतः विकसित देशों से सम्बन्धित होते थे जो विकासशील देशों की सामाजिक, प्रशासनिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों की व्याख्या करने में असमर्थ थे। इस समस्या से मुक्ति पाने के लिए रिग्ज के पारिस्थितिकीय, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक तथा अन्य उपागमों के माध्यम से कुछ व्यावहारिक प्रतिमान विकसित किए। उन्होंने समाजशास्त्र, भौतिकशास्त्र तथा जीवविज्ञान इत्यादि विषयों की कतिपय अवधारणाओं को ग्रहण करके लोक प्रशासन में उनकी व्यावहारिकता सिद्ध की। मुख्यतः **आगमनात्मक उपागम** पर आधारित रिग्ज के आदर्श प्रारूप विकासशील राष्ट्रों के प्रशासन के अध्ययनों को एक राह दिखाते हैं।

2. पारिस्थितिकीय उपागम

प्रत्येक जीव अपने बाहरी वातावरण के विभिन्न घटकों से प्रभावित होता है। जीव विज्ञान की इस मान्यता को प्रशासनिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में भी सत्य पाया गया है। इस दृष्टिकोण में यह जानने का प्रयास किया जाता है कि प्रशासनिक संस्थाएँ तथा व्यवस्थाएँ किस प्रकार समाज, मूल्यों, परम्पराओं, परिवर्तनों, अर्थव्यवस्था, बाजार, राजनीतिक दलों तथा वर्गों से प्रभावित होती हैं। इन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक कारकों का प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभाव के अतिरिक्त

प्रशासन का इन कारकों पर होने वाला प्रभाव भी पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण में सम्मिलित है। चूँकि लोक प्रशासन मानव व्यवहार से युक्त एक जीवन्त संगठन है अतः प्रशासन एवं उसके पर्यावरण का परस्पर सहसम्बन्ध समझना अति आवश्यक है।

रिग्ज से पहले जे.एम. गॉस, रॉबर्ट डहाल तथा रॉबर्ट के. मर्टन इत्यादि ने पारिस्थितिकीय उपागम को प्रयुक्त कर इसकी महत्ता को रेखांकित कर दिया था किन्तु रिग्ज ने पारिस्थितिकीय उपागम को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं। उन्होंने थाईलैण्ड तथा फिलीपीन्स के अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि पर्यावरणीय परिस्थितियाँ किस प्रकार प्रशासन को प्रभावित करती हैं। **जे.एम. गॉस** के अनुसार—"लोक प्रशासन की पारिस्थितिकी जनता, क्षेत्रफल, लोगों की भौतिक, सामाजिक और प्रौद्योगिकी आवश्यकताओं, विचारों तथा व्यक्तिगत एवं आपातकालीन अवस्थाओं इत्यादि का अध्ययन करती है।" रिग्ज का मानना है कि केवल वही अध्ययन वास्तव में तुलनात्मक है जो अनुभवमूलक, सामान्यपरक तथा पारिस्थितिकीय प्रकृति के होते हैं। चूँकि प्रशासनिक तंत्र 'वृहद् समाज' का एक उप तंत्र या उप व्यवस्था के समान है अतः प्रशासनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक तंत्रों के मध्य होने वाली अन्तरक्रियाओं का समुचित विश्लेषण किया जाना चाहिए। रिग्ज की यह दृढ़ मान्यता रही है कि किसी भी देश के लोक प्रशासन की प्रकृति को उस देश के सामाजिक विन्यासों को भली-भाँति समझे बिना विश्लेषित नहीं किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, प्राचीन स्याम, फिलीपीन्स तथा थाईलैण्ड देशों के अध्ययन पर आधारित 'फ्यूज्ड', 'प्रिज्मेटिक' तथा 'डिफ्रेक्टेड' समाजों के आदर्श प्रारूपों की रचना में पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की महती भूमिका रही है।

3. संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम

फ्रेड रिग्ज के शोध कार्यों में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वास्तव में देखा जाए तो रिग्ज ने प्रशासनिक व्यवस्था को पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से विश्लेषित करने के लिए मुख्य रूप से संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का सहारा लिया है। समाजशास्त्री टालकॉट पारसन्स, रॉबर्ट के. मर्टन तथा आमण्ड इत्यादि के अध्ययनों में यह उपागम मुख्य केन्द्रबिन्दु रहा है। चूँकि समाज में अनेक प्रकार की संरचनाएँ होती हैं जो अपने-अपने विशिष्ट प्रकार्य सम्पादित करती हैं और कोई भी प्रकार्य हो, वह बिना संरचना सम्पादित नहीं हो सकता है। इसी तथ्य को आधार बनाकर रिग्ज ने प्रत्येक समाज में पाँच प्रकार के प्रकार्य महत्त्वपूर्ण माने हैं—

- आर्थिक,
- सामाजिक,
- संचार से सम्बन्धित,
- सांकेतिक, तथा
- राजनीतिक।

कार्यात्मक अपेक्षाओं का यही विन्यास रिग्ज ने प्रशासनिक उप प्रणालियों के लिए काम में लिया है किन्तु रिग्ज यह नहीं मानते हैं कि केवल इन्हीं पाँच आयामों को संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम में सम्मिलित करना चाहिए बल्कि उनकी व्यक्तिगत रुचि इन पाँच पर रही है। यद्यपि सर्वप्रथम ड्वाइट वाल्डो (1955) ने लोक प्रशासन में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक के प्रयोग पर बल दिया था तथापि इस उपागम के प्रयोगकर्ताओं में रिग्ज अग्रणी रहे हैं। रिग्ज ने सर्वप्रथम सन् 1956 में **'कृषका-औद्योगिका' प्रतिमान में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का प्रयोग किया था।**

4. कृषका-औद्योगिका प्रतिमान (Typology)

विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण के लिए रिग्ज ने कतिपय प्रतिमान विकसित किए हैं। रिग्ज ने सर्वप्रथम सन् 1956 में कृषका (Agraria) तथा औद्योगिका (Industria) प्रतिमान (टाइपोलॉजी) निर्मित किया। इस प्रतिमान के अनुसार कुछ समाज कृषि आधारित होते हैं तो कुछ समाज उद्योग प्रधान होते हैं। कृषि प्रधान समाजों में रिग्ज ने चीन को तथा औद्योगिक समाजों में संयुक्त राज्य अमेरिका को सम्मिलित किया। कृषका समाज की संरचनाओं में परम्पराओं का बाहुल्य, आरोपित या मिले हुए मूल्यों (Ascriptive Values) से प्रेम, बिखरे हुए ढाँचों (Diffused) की प्रधानता, सरल एवं स्थिर व्यावसायिक भिन्नताएँ, क्षेत्रीयता या विशिष्टता (Particularism), विभिन्न प्रकार के सामाजिक संस्तरण या स्तर (वर्ग) तथा सीमित सामाजिक तथा क्षेत्रीय गतिशीलता मुख्य विशेषताएँ बताईं। औद्योगिक समाजों की संरचनाओं में उपलब्धि प्रधान मानकों को महत्त्व, सार्वभौमिकता की प्रवृत्ति, कार्यों में विशेषीकरण, उच्चतर सामाजिक तथा क्षेत्रीय गतिशीलता, पूर्ण विकसित व्यावसायिक प्रतिमान तथा समानतावादी वर्ग व्यवस्था की उपस्थिति इत्यादि मुख्य विशेषताएँ वर्णित की गईं।

रिग्ज का मानना है कि निश्चित बिन्दु पर सभी समाज कृषका से औद्योगिका के रूप में रूपान्तरित होते हैं। इस सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों ने आपत्ति उठाई कि कोई भी समाज पूर्णतया कृषका या पूर्णतया औद्योगिका नहीं होता है क्योंकि सभी कृषका समाज न्यूनाधिक गति से औद्योगिका की ओर बढ़ रहे हैं जबकि औद्योगिका समाजों में भी कृषका समाज के लक्षण अनिवार्य रूप से व्याप्त हैं। कुछ समाज इन दोनों के बीच (मिश्रित) की स्थिति के भी हैं। अतः **सन् 1957 में रिग्ज ने संक्रमणकालीन** (Transitia) नामक साम्यावस्था का प्रतिमान प्रस्तुत किया। संक्रमणकालीन समाज वे माने गए जो कृषका से औद्योगिका की ओर रूपान्तरित हो रहे हैं। संक्रमणकालीन समाज में दोनों प्रकार के समाजों के लक्षण समाहित माने गए।

5. संयोजित-समपार्श्वीय-विवर्तित प्रतिमान

संयोजित (Fused)-समपार्श्वीय (Prismatic)-विवर्तित (Diffracted) मॉडल रिग्ज द्वारा सन् 1959 में प्रतिपादित किया गया था। इस प्रतिमान में संयोजित समाज, कृषका का; समपार्श्वीय समाज, संक्रमणकालीन का; तथा विवर्तित समाज, औद्योगिका का प्रतिनिधित्व करते हैं किन्तु इस मॉडल में रिग्ज ने बहुत से सुधार किए हैं।

रिग्ज के अनुसार किसी समाज को बहुकार्यात्मकता की दृष्टि से देखें तो संयोजित (Fused) समाज वे हैं जहाँ कार्य विसृत (Diffused) अर्थात् फैले हुए या बिखरे हुए रहते हैं। संयोजित समाजों में एक संरचना के पास नाना प्रकार के (बहुसंख्यक) कार्य करते हैं। कार्यात्मक दृष्टि से जिन समाजों में विशिष्टता (Specificity) आ जाती है वे विवर्तित (Diffracted) समाज हैं अर्थात् इन उच्च स्तरीय समाजों में प्रत्येक कार्य को कोई विशिष्ट संस्था या संरचना करती है। इन दोनों के बीच की स्थिति वाले समपार्श्वीय (Prismatic) समाज हैं जो संयोजित समाजों की अवस्था से विवर्तित समाजों की ओर बढ़ रहे होते हैं। रिग्ज इस तथ्य पर बहुत बल देते हैं कि—''मैंने संयोजित-समपार्श्वीय-विवर्तित समाजों का प्रतिमान एक आदर्श प्रारूप के रूप में प्रस्तुत किया है। यह आवश्यक नहीं है कि यथार्थ जगत् में ऐसे समाज विशुद्ध रूप से मिल भी जाएँ।'' फिर भी रिग्ज का मानना है कि प्राचीन थाईलैण्ड संयोजित समाज का पर्याय था, आज का अमेरिका विवर्तित समाज है तथा समपार्श्वीय समाज में थाईलैण्ड एवं फिलीपीन्स को (भारत एवं आधुनिक चीन भी) रखा जा सकता है।

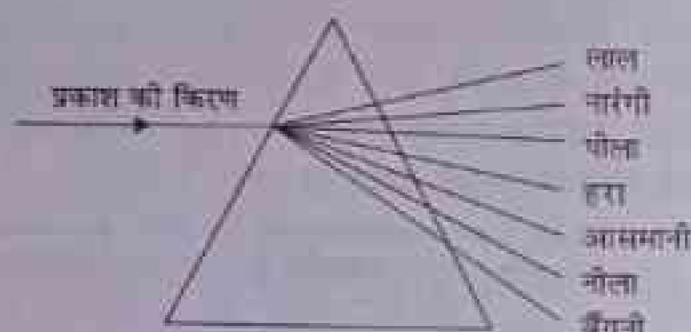

प्रिज्म

रिग्ज का यह प्रतिमान मूलतः भौतिकशास्त्र के एक सिद्धान्त पर आधारित है। काँच के त्रिकोणात्मक एवं पारदर्शी टुकड़े को प्रिज्म (Prism) कहते हैं। यह प्रिज्म किसी भी साधारण वैज्ञानिक प्रयोगशाला (स्कूल/महाविद्यालय) या बाजार में सहजता से मिल सकता है। प्रकाश की कोई किरण जब प्रिज्म में प्रवेश करके बाहर निकलती है तो वह सप्तरंगी इन्द्रधनुष के रूप में स्पैक्ट्रम (Spectrum) बनाती है।

यहाँ प्रकाश की किरण एक रूप में प्रिज्म में प्रवेश करने से पूर्व की स्थिति में संयोजित समाजों की प्रतीक है। प्रकाश की किरण में सात रंग प्राकृतिक रूप से विद्यमान हैं। उसी प्रकार संयोजित समाजों में एक संरचना कई प्रकार के कार्य करती है। प्रकाश की

किरण प्रिज्म अर्थात् समपार्श्व (जिसकी सभी बगल समान हों) में प्रवेश करके कम्पन के दौर से गुजरती है। उसी प्रकार संयोजित समाज भी संक्रमणकाल के दौर से गुजरते हैं। प्रिज्म से बाहर आकर किरण सात रंगों में स्पष्टतः विभक्त हो जाती है। ये सात प्राकृतिक रंग बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी तथा लाल (V.I.B.G.Y.O.R.) हैं। प्रिज्म से किरणों का बाहर निकल कर पृथक्-पृथक् छितराना विवर्तन (Diffraction) कहलाता है। रिग्ज ने विवर्तन के लिए पहले 'रिफ्रेक्शन' (Refraction) शब्द प्रयुक्त किया था। वस्तुतः रिफ्रेक्शन तो प्रकाश का मार्ग या कोण बदलने का (अपवर्तन) पर्याय था जो इस प्रतिमान की सही व्याख्या नहीं करता था अतः उन्होंने विवर्तित समाजों को Refracted के बजाय Diffracted नाम दिया। प्रकाश का सात रंगों में विभक्त होना या विवर्तित समाजों में प्रत्येक कार्य विशिष्ट संस्थाओं द्वारा सम्पादित करना समानार्थक है।

रिग्ज ने संयोजित समाजों या प्राचीन समाजों की पहचान में वस्तु-विनिमय (Barter), कार्य का वर्गीकरण नहीं, कृषि की प्रधानता, राज परिवारों के महत्त्व, परम्पराओं की प्रधानता, अनुत्तरदायी शासन, परिवार के महत्त्व, प्रदत्त प्रस्थिति के प्रभुत्व, संस्थाओं में विशेषीकरण के अभाव तथा योग्यता के बजाय सम्बन्धों के आधार पर आजीविका प्राप्ति को रेखांकित किया है। दूसरी ओर समपार्श्वीय समाजों की पहचान के रूप में रिग्ज ने **विजातीयता (Heterogeneity), औपचारिकतावाद (Formalism)** तथा **अतिराव (Overlapping)** को गिनाया है। जब एक साथ कई प्रकार की संस्कृतियाँ, रिवाज, प्रथाएँ तथा विचारधाराएँ चलती हैं तो यह विजातीयता कहलाती है। औपचारिकतावाद में कानूनों-तथ्यों तथा यथार्थ में भिन्नता रहती है तथा अतिराव से तात्पर्य एक समय में कई संस्थाओं द्वारा भिन्न-भिन्न कार्य किया जाना है। आर्थिक में राजनीतिक तथा राजनीतिक व्यवहार में आर्थिक या सामाजिक प्रभाव दिखते हैं। रिग्ज के समपार्श्वीय समाजों की आर्थिक उप व्यवस्था को **बाजार-कैण्टीन मॉडल** नाम देते हुए धनी-निर्धन का भेद, अल्प आय, व्यय अधिक, कर्मकाण्डों का महत्त्व, व्यापारियों द्वारा लूट तथा जमाखोरी, कालाबाजारी एवं मिलावट को गिनाया है।

समपार्श्वीय समाजों की प्रशासनिक उप व्यवस्था को रिग्ज ने **साला प्रतिमान** (Sala Model) के रूप में प्रस्तुत किया है। स्पेनिश शब्द 'साला' का अर्थ—सरकारी कार्यालय, कमरे या धार्मिक अधिवेशन से है। रिग्ज के अनुसार समपार्श्वीय समाजों में 'साला' है तो विवर्तित समाजों में 'ब्यूरो' (ऑफिस) तथा संयोजित समाजों में 'चेम्बर' होते हैं। साला प्रतिमान की विशेषताओं में भ्रष्टाचार, पक्षपात, स्वार्थ, असमानता, केन्द्रीकरण, आरक्षण, अकर्मण्यता तथा नौकरशाही के दोष पाए जाते हैं। भारत भी 'साला प्रतिमान' वाला देश है।

विकसित समाज प्रायः विवर्तित समाज होते हैं जहाँ उच्च स्तरीय राजनीतिकरण, पेशेवर अन्दाज, विशेषज्ञता, सार्वभौमवाद, विशेषीकरण, खुला समाज, व्यापारीकृत समाज, राष्ट्रप्रेम, बाजारी प्रवृत्तियाँ, गतिशील व्यवस्था तथा व्यक्ति के अर्जित प्रयासों को महत्त्व

देना महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। रिग्ज ने अपने नए मॉडल में 'एकीकरण' तथा 'समन्वय' के आधार पर कुछ परिवर्तन भी वर्णित किए हैं।

इसके अतिरिक्त रिग्ज ने **विकास की अवधारणा** भी प्रतिपादित की है। रिग्ज ने विकास की प्रक्रिया को विवर्तन के बढ़ते स्तर द्वारा सम्भव सामाजिक व्यवस्था की स्वायत्तता में वृद्धि करने वाली प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। समाज में विभेदीकरण (Differentiation) तथा एकीकरण (Integration) नामक दो प्रमुख तत्व विकास की गति को प्रभावित करते हैं।

सन्दर्भ

1. ई.एन. ग्लेडन, **एप्रोच टू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन**, स्टेपल प्रेस, लन्दन, 1966
2. यू.एल. गोस्वामी, **द स्ट्रक्चर ऑफ डिवेलपमेण्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया**, आई.जे.पी.ए. जनवरी-मार्च, 1955, वोल्यूम-1, नं.-1, पृ. 110-118
3. जॉन डी. मॉण्टगोमरी एण्ड विलियम जे. सिफिन, **अप्रोचेज टू डिवेलपमेण्ट पॉलिटिक्स, एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड चेंज**, मैक्ग्रा-हिल कम्पनी, न्यू यॉर्क, 1966
4. फ्रेड लुथांस, **ऑर्गेनाइजेशनल बिहेवियर**, मैक्ग्रा-हिल कम्पनी, न्यू यॉर्क, 1995

●●●

3

ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था
(Administrative System in United Kingdom)

सामान्यतः इंग्लैण्ड, ग्रेट ब्रिटेन तथा यूनाइटेड किंगडम (UK) को समानार्थक माना जाता है जबकि इनमें किंचित् अन्तर है। स्थिति यह है कि पश्चिमी यूरोप से अलग, अटलाण्टिक महासागर में कुछ द्वीप समूहों का नाम **'यूनाइटेड किंगडम'** है। यूनाइटेड किंगडम में ग्रेट ब्रिटेन सबसे बड़ा द्वीप है जिसमें इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, वेल्स (आइल्स ऑफ मैन या चैनल आइलैण्ड्स) सम्मिलित हैं। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन तथा उत्तरी आयरलैण्ड का संयुक्त नाम 'यूनाइटेड किंगडम' है। यह नन्हें-नन्हें द्वीपों का देश विश्व के अधिकांश भू-भाग का शासक रह चुका है जबकि इसकी भौगोलिक स्थिति इसे यूरोप से भी दूर रखती है। दिसम्बर, 1990 में फ्रांस तथा ग्रेट ब्रिटेन के मध्य इंग्लिश चैनल में 130 फीट नीचे बनी समुद्री सुरंग के उद्घाटन के साथ ही ग्रेट ब्रिटेन शेष यूरोप से जुड़ चुका है। **'चैनल टनल'** के नाम से बनी यह परियोजना समुद्र में रेलगाड़ी दौड़ाने का वैज्ञानिक चमत्कार है।

यूनाइटेड किंगडम : एक परिचय

राजधानी	—	लन्दन
क्षेत्रफल	—	2,44,108 वर्ग कि.मी.
जनसंख्या	—	6.04 करोड़ (सन् 2005)
भाषा	—	अंग्रेजी, वेल्श, स्कोट्स तथा गेलिक
साक्षरता	—	शत-प्रतिशत
धर्म	—	ईसाई
मुद्रा	—	पाउण्ड स्टर्लिंग [अमरीकी डॉलर (सन् 2005) = 0.56 पाउण्ड स्टर्लिंग]
प्रति व्यक्ति आय	—	31,460 डॉलर

झण्डा	—	सफेद एवं लाल रंग के क्रास से बना यह झण्डा 'यूनियन जैक' कहलाता है जिसमें ऊर्ध्व तथा क्षैतिजिक रेखाएँ हैं।
राष्ट्रीय दिवस	—	21 अप्रैल (महारानी दिवस)

ग्रेट ब्रिटेन का इतिहास मुख्यतः सन् 1066 में नार्मनों की विजय से प्रारम्भ होता है जब नार्मनों का राजकुमार विलियम प्रथम इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा था। इसके पश्चात् सन् 1215 में जॉन द्वितीय के शासन काल में इंग्लैण्ड के लोगों को स्वतंत्रता देने तथा न्यायपूर्ण कानूनी शासन के लिए **मैग्नाकार्टा** पर सम्राट ने हस्ताक्षर करके अंग्रेजी जनता की स्वतंत्रता की आधारशिला रखी। इसी मैग्नाकार्टा को 'ब्रिटिश संविधान की बाइबिल' कहा जाता है। सोलहवीं सदी के पुनर्जागरण काल में ग्रेट ब्रिटेन ने काफी प्रगति की तथा सन् 1603 में इंग्लैण्ड एवं स्कॉटलैण्ड का एकीकरण हुआ। सन् 1688 की **रक्तहीन या गौरवपूर्ण क्रांति** विश्व इतिहास का सुखद क्षण माना जाता है जिसके द्वारा वहाँ सरकार के ढाँचे में परिवर्तन हुआ। जर्मनी तथा फ्रांस से आधे एवं अमेरिका से 40 गुणा छोटे इस देश ने उन्नीसवीं शताब्दी में अपने साम्राज्य का विस्तार करना शुरू किया तथा औद्योगिक क्रांति के माध्यम से अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली शक्ति ग्रेट ब्रिटेन ने अपने अमेरिकी, एशियाई एवं अफ्रीकी उपनिवेश क्षेत्रों को शनैः-शनैः स्वतंत्र कर दिया है। लोहा, इस्पात, इंजीनियरिंग, रसायन, मोटर वाहन, वायुयान तथा वस्त्र उद्योग के लिए ब्रिटेन प्रसिद्ध है। अभी भी अंगुइला, बरमूडा, फॉकलैण्ड, जिब्राल्टर, मॉटसेराल, जूसी, सेण्ट हेलेना, साउथ जॉर्जिया, कैमान द्वीप, पिटकेरिन, हेण्डरसन एण्ड आयेनो तथा साउथ सैण्डविच द्वीप इत्यादि क्षेत्र ब्रिटेन पर निर्भर हैं। दिनांक 1 जुलाई, 1997 को ब्रिटेन ने हांगकांग का शासन चीन को सौंप दिया। ब्रिटेन की मात्र 7 प्रतिशत आबादी कृषि उद्योग में लगी हुई है। मशीनी उद्योग तथा तकनीकी संस्थानों की ब्रिटेन में अधिकता है।

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनेक ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने मानव सभ्यता को नई दिशा दी है। इनमें चार्ल्स डार्विन (प्राकृतिक विकास का सिद्धान्त), हेम्फ्रे डेवी (सेफ्टी लैम्प), माइकल फैराडे (विद्युत विश्लेषण), डाल्टन (परमाणु सिद्धान्त), जेम्स चैडविक (न्यूट्रॉन), हेनरी कैवण्डिश (हाइड्रोजन), हेनरी बेसेमर (इस्पात), रॉबर्ट वाटसन वाट (रेडार), जे.जे. थॉमसन (इलेक्ट्रॉन), रोनाल्ड रॉस (मलेरिया), रोजर बेकन (बारूद), जोसफ प्रिस्टले (ऑक्सीजन), जोसफ लिस्टर (एण्टीसेप्टिक सर्जरी), एडवर्ड जेनर (चेचक), विलियम हार्वे (रक्त संचार), एलैक्जेण्डर फ्लेमिंग (पेनिसिलीन), आइजक न्यूटन (गुरुत्वाकर्षण), एलैक्जेण्डर ग्राहम बेल (टेलीफोन), जेम्स वॉट (भाप का इंजन), जॉन बाथा डनलप (टायर), जॉन नेपियर (लोग्रीथम) तथा जे.बी.एस. हाल्डेन (आनुवंशिकी) प्रसिद्ध हैं। इसी तरह शिक्षाशास्त्री, कवि, लेखक तथा उपन्यासकारों में भी ब्रिटेन का एकछत्र राज रहा है। इस क्षेत्र में अर्नाल्ड टायनबी तथा मैकाले (दोनों इतिहासकार),

विलियम शेक्सपीयर, विलियम वर्ड्सवर्थ, रुडयार्ड किपलिंग, बर्ट्रेंड रसेल, फ्रेडरिक फोरसीथ, थॉमस हार्डी, जॉन मिल्टन, जॉन स्टुअर्ट मिल, हेराल्ड जोसफ लास्की, जॉन रस्किन, जॉर्ज गार्डन आयरन, जॉन कीट्स, ग्रीन ग्राहम, कानन आर्थर डायल, ऑस्कर वाइल्ड, एलैक्जेण्डर मिलिने, एडवर्ड गिब्सन, एडवर्ड फिट्ज गेराल्ड, टेनीसन, ई.एम. फोस्टर, एडम स्मिथ, आस्टिन जेन, अगाथा क्रिस्टी, अर्नाल्ड जोसफ तथा अल होउड हक्सले महत्त्वपूर्ण तथा चर्चित नाम हैं। बेन किंग्सले, रिचर्ड एटनबरो, तथा सीन कैनेरी (जेम्स बाण्ड) जैसी सिनेमाई हस्तियाँ भी ब्रिटेन की देन हैं। विश्व प्रसिद्ध **ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी** भी लन्दन में स्थित है, जहाँ विगत 900 वर्षों से ज्ञान की गंगा बह रही है।

संवैधानिक विकास (Constitutional Development)

'ग्रेट ब्रिटेन एवं उत्तरी आयरलैण्ड संयुक्त राजतंत्र' नामक देश, जिसे हम ब्रिटेन या इंग्लैण्ड के नाम से सम्बोधित कर रहे हैं, का संविधान अलिखित है एवं सदियों में विकसित हुआ है। यह संविधान निर्मित संविधान की श्रेणी में नहीं आता है बल्कि डेढ़ हजार वर्ष पुरानी विकास गाथा का पर्याय है। **लिटन स्ट्रेची** का कथन है कि—"ब्रिटिश संविधान संयोग और विवेक का शिशु है" (Child of Wisdom and Chance) अर्थात् परिस्थितियों के अनुसार बुद्धिमतापूर्ण ढंग से विकसित हुई परम्पराएँ ही इस संविधान का आधार हैं। पाँचवीं से ग्यारहवीं सदी तक ऐंग्लो-सैक्शन काल में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था थी किन्तु 'विटनेजमोट' (बुद्धिमानों की सभा) नामक संस्था नियंत्रण करती थी जिसमें सामन्त, सरदार तथा बिशप इत्यादि सम्मिलित थे। इसके पश्चात् नार्मन-ऐंजविन शासन काल में राजा विलियम ने 'विटनेजमोट' को समाप्त कर मैगनम कौंसिलियम (महान् परिषद्) तथा क्यूरिया रेजिस (शाही या राज्य परिषद्) गठित की। वास्तव में मैगनम कौंसिलियम, विटनेजमोट का परिवर्तित रूप थी जबकि क्यूरिया रेजिस छोटी संस्था थी। इसी से प्रिवी कौंसिल तथा प्रिवी कौंसिल से मंत्रिमण्डल का स्वरूप विकसित हुआ। सन् 1153 से 1399 के प्लैण्टेगैनट एवं लंकास्ट्रियम शासनकाल में क्यूरिया रेजिस को प्रिवी कौंसिल तथा एक्सचेकर में विभक्त कर दिया। इसी समय करों के एकत्रण हेतु जनप्रतिनिधियों से वार्ता करना प्रारम्भ हुआ।

सन् 1119 में इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर बैठे सम्राट जॉन के अत्याचारों से दुःखी होकर जनता ने विद्रोह किया। परिणामस्वरूप 15 जून, 1215 को रनीमेड नामक स्थान पर सम्राट को **मैग्नाकार्टा** (महान् अधिकार पत्र) पर हस्ताक्षर करने पड़े जिसमें सामन्तों एवं जनता को अधिकार मिल गए तथा राजा की निरंकुशता समाप्त हो गई। सन् 1295 में सम्राट एडवर्ड प्रथम के कर प्रस्तावों पर सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त करने के लिए पादरियों, सामन्तों एवं नगर के प्रतिनिधियों की सभा बुलवाई गई थी जो **मॉडल पार्लियामेण्ट** के नाम से जानी जाती है। ट्यूडर काल में राजकीय शक्ति, पोप के नियंत्रण से मुक्त हुई तथा स्टुअर्ट काल (1603–1714) में निरंकुश राजतंत्र के स्थान पर लोकतंत्र

की स्थापना के प्रयास हुए जब सन् 1628 में **अधिकार याचना पत्र** (Petition of Rights) पर चार्ल्स प्रथम ने सहमति प्रकट की। सहमति के बावजूद सम्राट ने जब संसद में इस प्रस्ताव (अधिकार याचना पत्र) को नहीं स्वीकारा तो विद्रोह एवं विरोध के स्वर उठे। सम्राट ने संसद को भंग करके 11 वर्ष तक शासन किया। गृहयुद्ध छिड़ जाने के पश्चात् संसदीय नेताओं की जीत हुई तथा सम्राट चार्ल्स पर मुकदमा चला कर मृत्युदण्ड दे दिया गया।

सन् 1649 में इंग्लैण्ड में राजतंत्र तथा लॉर्ड सभा समाप्त कर क्रामवेल की अध्यक्षता में गणतंत्र की स्थापना की गई एवं एक लिखित संविधान भी अपनाया गया किन्तु सन् 1658 में क्रामवेल की मृत्यु के साथ ही लिखित संविधान का प्रयोग भी दफन हो गया। सन् 1667 में चार्ल्स द्वितीय के शासनकाल में प्रिवी कौंसिल की विशालता को देखते हुए **'कबाल'** नामक संस्था बनाई गई जो केबिनेट का ही पर्याय थी। सन् 1679 में बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम पारित किया गया। सन् 1688 में जेम्स द्वितीय ने संसद की अनुमति के बिना कानून रद्द करने का अधिकार धारण कर लिया अतः अप्रसन्न संसदीय नेताओं ने ऑरेन्ज के राजकुमार विलियम तृतीय को इंग्लैण्ड पर आक्रमण के लिए आमंत्रित किया किन्तु डर के मारे जेम्स द्वितीय फ्रांस भाग गया। इसी घटना को **गौरवपूर्ण क्रांति** कहा जाता है जिसमें कोई रक्तपात नहीं हुआ। गौरवपूर्ण क्रांति के पश्चात् सन् 1688 में **अधिकार पत्र** (Bill of Rights) स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार संसद की पूर्व अनुमति के बिना राजा कर नहीं लगाएगा, राजा कम से कम एक बार संसद की बैठक बुलवाएगा, संसद की पूर्व अनुमति के बिना राजा सेना नहीं रखेगा, राजा की स्वार्थपूर्ति हेतु उच्चायुक्त या नए न्यायालय की स्थापना न की जा सकेगी तथा संसद में जनप्रतिनिधियों को भाषण की स्वतंत्रता होगी इत्यादि मुख्य प्रावधान थे। इस अधिकार पत्र से संसद की सर्वोच्चता स्थापित हो गई तथा हैनोवर काल में राजा की वास्तविक शक्तियों का पतन, मंत्रिमण्डल प्रणाली का विकास, लोक सदन की तुलना में लॉर्ड सभा की शक्तियों का पतन एवं संसदीय लोकतंत्र का विकास हुआ।

इस प्रकार कई सदियों लम्बी इस यात्रा के परिणामस्वरूप ब्रिटिश संवैधानिक परम्पराएँ विकसित हुईं। **मुनरो** का मानना है कि—**''पूर्व ने सभ्य मानव को आध्यात्मिक दर्शन प्रदान किया, मिस्र ने वर्णमाला प्रदान की, मूर (अफ्रीका, मध्य एशिया के निवासी) ने बीजगणित, यूनान ने शिल्पकला तथा रोम ने विश्व को कानून के आधार प्रदान किए तो ब्रिटेन ने विश्व को राजनीतिक विचार और संवैधानिक पद्धति प्रदान की।''** लेकिन टॉमस पेन, डी. टाकविले तथा जॉर्ज बर्नार्ड शॉ यह नहीं मानते कि ब्रिटेन में संविधान का अस्तित्व है क्योंकि यह न तो संविधान सभा द्वारा निर्मित है, न लेखबद्ध है, न संशोधन की विशेष प्रक्रिया निश्चित है तथा न संविधान की सर्वोच्चता का सिद्धान्त लागू है। किन्तु इतनी सब कमियाँ होते हुए भी ब्रिटिश संविधान का अस्तित्व माना जाता है क्योंकि लिखित संविधानों (जैसे अमेरिका) के होते हुए भी बहुत-सी संविधानेत्तर परम्पराएँ सभी जगह प्रचलित होती हैं अतः लिखित-अलिखित

का भेद महत्त्वपूर्ण नहीं है। वैसे भी **ब्रिटिश संविधान के कुछ अंश लिखित** भी हैं तथा कुछ आधारभूत नियम भी प्रतिपादित हैं।

ब्रिटिश संविधान के स्रोतों में मैग्नाकार्टा (1215), अधिकार याचना पत्र (1628), अधिकार पत्र (1689) सहित अनेक संसदीय अधिनियम जैसे बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (1679), व्यवस्था अधिनियम (1701), स्कॉटलैण्ड को मिलाने का अधिनियम (1737), सुधार अधिनियम (1832, 1867 तथा 1884), जनप्रतिनिधि अधिनियम (1918), वेस्टमिन्स्टर अधिनियम (1931), राजमुकुट के मंत्रियों का अधिनियम (1937) तथा पीयरेज अधिनियम (1958), कतिपय न्यायिक निर्णय, रीति-रिवाज, प्रथाएँ तथा परम्पराएँ इत्यादि सम्मिलित हैं।

ब्रिटिश संविधान की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of the British Constitution)

विश्व में अपनी किस्म का एकमात्र अनूठा यह संविधान ब्रिटिश निवासियों की परिपक्वता का परिचायक है जो कई सदियों से बिना लिखित आधार के आधुनिक लोकतांत्रिक शासन संचालित कर रहे हैं। ब्रिटिश संविधान की उल्लेखनीय विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(1) विकसित संविधान : ब्रिटिश संविधान पाँचवीं सदी से आज तक निरन्तर विकसित हुआ है और अभी भी विकास क्रम जारी है। यह संविधान निर्मित संविधानों की श्रेणी में नहीं आता है जो किसी विशेष संविधान सभा द्वारा तैयार किए जाते हैं। भारत, अमेरिका, जापान तथा फ्रांस इत्यादि के संविधान निर्मित संविधान हैं। राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्थाओं के दौरान उत्पन्न हुई परिस्थितियों तथा तत्कालीन संसदीय विचारधाराओं के समर्थक जागरूक नागरिकों ने ऐसी परम्पराओं की नींव डाल दी जो आज एक संविधान के रूप में हमारे सामने हैं। इसीलिए कहा जाता है कि ब्रिटिश संविधान उस विशालकाय तथा भव्य इमारत का पर्याय है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी शनैः-शनैः बनी है। किसी ने नींव भरी तो किसी पीढ़ी ने इसकी दीवारें खड़ी कीं। आज भी इस भवन (संविधान) पर आकर्षक रंग-रोगन का कार्य जारी है। ऑग एवं जिंक के अनुसार यह संविधान केवल हजारों वर्ष पुराने इतिहास के घटना चक्रों तथा विकसित हुए आचरण के अध्ययन से ही समझा जा सकता है।

(2) अलिखित संविधान : आधुनिक शासन व्यवस्थाओं के कार्य संचालन में जहाँ विधि और कागज का महत्त्व सर्वाधिक है, में संविधान का एक प्रलेख (Document) के रूप में होना नितान्त आवश्यक है। यह अंग्रेज लोगों की व्यावहारिक समझ का ही परिणाम है जो कोरे सिद्धान्तों की शेखी बघारने के बजाए आपसी समझ का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। ब्रिटिश संविधान किसी दस्तावेज या पुस्तक के रूप में लिखा हुआ नहीं है फिर भी संविधान का अस्तित्व माना जाता है। संविधान का अधिकांश भाग अलिखित होते हुए भी कुछ भाग लिखित भी है जिसमें अधिकार पत्र, संसद द्वारा पारित अधिनियम, न्यायिक निर्णय तथा परम्पराएँ प्रमुख हैं। अतः यह संविधान **अर्द्ध लिखित**

भी माना जा सकता है। मूल बात यह है कि ब्रिटिश संविधान किसी एक समय में जानबूझकर या योजनाबद्ध ढंग से निर्मित नहीं किया गया अतः लिखित दस्तावेज के रूप में उपलब्ध नहीं है। **लिटन स्ट्रेची** ने ब्रिटिश संविधान को 'संयोग और विवेक का शिशु' (The Child of Wisdom and Chance) कहा है।

(3) लचीला संविधान : अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा स्विट्जरलैण्ड के संविधान कठोर प्रकृति के माने जाते हैं क्योंकि इन संविधानों में संशोधन प्रक्रिया जटिल है जबकि ब्रिटिश संविधान एक लचीला तथा सुपरिवर्तनशील संविधान है अर्थात् इसकी परम्पराओं में ब्रिटिश संसद सामान्य बहुमत से परिवर्तन कर सकती है। यदि ब्रिटिश संविधान में लचीलापन नहीं होता तो यह संविधान तथा ब्रिटिश राजसत्ता कभी की समाप्त हो चुकी होती क्योंकि सामंजस्यशीलता और मानसिक परिपक्वता का परीक्षण समय की औचित्यता ही करती है। ब्रिटेन में सामान्य कानून तथा संवैधानिक कानून में कोई अन्तर नहीं है। सामान्यतया ब्रिटेन में यह परम्परा है कि जब तक आम चुनाव के द्वारा किसी विषय पर जन सहमति न हो जाए तब तक संविधान संशोधन नहीं किया जाता है।

(4) सिद्धान्त एवं व्यवहार में अन्तर : मुनरो के अनुसार—''ब्रिटिश संविधान की एक अद्भुत विशेषता यह है कि यह जैसा दिखता है, वैसा है नहीं और जैसा है, वैसा दिखता नहीं।'' यद्यपि सिद्धान्त तथा व्यवहार के मध्य न्यूनाधिक अन्तर सभी संविधानों, संस्थाओं तथा व्यक्तियों में पाया जाता है किन्तु ब्रिटिश संविधान में कुछ बिन्दु अधिक विचारणीय हैं—

(i) सिद्धान्ततः ब्रिटेन में राजतंत्र है जहाँ सम्राट के पास ही समस्त शक्तियाँ होती हैं किन्तु व्यवहार में यहाँ लोकतंत्र है अर्थात् सम्राट का पद वंशानुगत भी है तथा संसदीय व्यवस्था भी है।

(ii) सिद्धान्ततः शासन के अंगों के मध्य शक्ति-पृथक्करण (Separation of Powers) नियम प्रचलित है किन्तु यहाँ समस्त शक्तियाँ संसद में केन्द्रीकृत दिखाई देती हैं।

(iii) सिद्धान्ततः ब्रिटिश संसद, मंत्रिमण्डल पर नियंत्रण करती हैं किन्तु वास्तविकता यह हो चुकी है कि मंत्रिमण्डल, संसद को नियंत्रित करने लग गया है।

(5) संसदीय लोकतंत्र : ब्रिटेन को संसदीय लोकतंत्र शासन प्रणाली का प्रणेता माना जाता है। संसदीय लोकतंत्र में दोहरी कार्यपालिका का अस्तित्व होता है। ब्रिटिश सम्राट कार्यपालिका का नाममात्र का प्रमुख है। वास्तविक कार्यपालिका प्रधानमंत्री तथा उसका मंत्रिमण्डल होता है। इसी प्रकार कार्यपालिका, व्यवस्थापिका (विधायिका) तथा न्यायपालिका के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध भी संसदीय लोकतंत्र की पहचान हैं। कार्यपालिका का निर्माण भी व्यवस्थापिका के सदस्यों से होता है। स्पष्ट है कि कार्यपालिका (वास्तविक) को लोक सदन का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।

संसदीय लोकतंत्र के साथ-साथ ब्रिटेन में 'लोकतंत्रात्मक गणराज्य' का प्रचलन भी

है क्योंकि ब्रिटेन में शासन की वास्तविक शक्तियाँ जनता द्वारा चुने हुए व्यक्ति अर्थात् मंत्रिमण्डल के सदस्य काम में लाते हैं। यद्यपि गणराज्य में शासन का शीर्ष पद जनता द्वारा निर्वाचित होना चाहिए लेकिन ब्रिटेन में सम्राट का पद वंशानुगत होते हुए भी थोपा हुआ नहीं लगता क्योंकि ब्रिटिश जनता स्वभाव से राजा के प्रति श्रद्धा रखती है। उन्हें वैसा ही सम्मान प्राप्त है जैसा कि चुने हुए शासनाध्यक्ष को प्राप्त होता है। **लास्की** का मानना है कि राजतंत्र ने अपने आपको जनता के हाथों बेच दिया है। **ऑग** ने इसे 'मुकुटधारी गणतंत्र' नाम दिया है।

(6) संसद की सर्वोच्चता : राजतंत्र की सैद्धान्तिक उपस्थिति के उपरान्त भी ब्रिटिश संसद विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली संसद है जिसे असीम अधिकार प्राप्त हैं। इसीलिए **डी लोम्ब** कहते हैं—''**ब्रिटिश संसद, स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री बनाने के अतिरिक्त अन्य सब कुछ कर सकती है।**'' ब्रिटेन में एकात्मक शासन है। अतः सम्पूर्ण देश के कानून राष्ट्रीय स्तर पर संसद ही निर्मित करती है। संसद, साधारण बहुमत से किसी भी कानून को परिवर्तित कर सकती है। ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किसी भी विधेयक तथा प्रस्ताव को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है और न ही सम्राट या साम्राज्ञी उसे निरस्त कर सकते हैं। ब्रिटिश शाही परिवार को देय वेतन-भत्तों की प्रति 10 वर्ष पश्चात् समीक्षा की जाती है जो संसद के अधिकार क्षेत्र में है। ब्रिटिश न्यायालयों के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ भी नहीं हैं। ब्रिटिश सम्राट सर्वोच्च कार्यपालिका होते हुए भी अधिकार-शून्य है। वह संसद तथा मंत्रिमण्डल के हाथों की कठपुतली है। इसीलिए **बेजहॉट** लिखते हैं—''यदि संसद के दोनों सदन उसके (सम्राट) मृत्यु-आदेश को पारित कर उसके पास प्रेषित करें तो उस पर उसे हस्ताक्षर करने ही पड़ेंगे।'' ब्रिटिश संसद की असीमित शक्तियों को लोकमत, चुनाव, नैतिकता तथा अन्तरराष्ट्रीय कानून ही सीमित करते हैं।

(7) एकात्मक शासन : ग्रेट ब्रिटेन तथा उत्तरी आयरलैण्ड द्वीपों का शासन लन्दन से संचालित होता है। छोटा देश तथा सुसंगठित इकाई होने के कारण यहाँ एकात्मक शासन है। संसद ही समस्त देश के लिए कानून बनाती है तथा मंत्रिमण्डल के अधीन कार्यरत विभाग एवं उनके कार्यकारी अभिकरण प्रशासनिक सेवाएँ प्रदान करते हैं। प्रांत या राज्यों की सरकारों का कोई अस्तित्व नहीं है। नगरों एवं गाँवों में स्थापित स्थानीय सरकारें राष्ट्रीय सरकार के नियमों एवं निर्देशों का ही पालन करती हैं।

(8) विधि का शासन : ब्रिटिश संविधान की विकास यात्रा समानता तथा न्याय की स्थापना के लिए शुरू हुई थी जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में भेद को समाप्त करना प्रमुख उद्देश्य था। विधि के शासन में कानून के समक्ष सभी बराबर रहते हैं। ब्रिटेन में सभी नागरिकों, राजनेताओं, प्रशासनिक अधिकारियों तथा उच्चवर्गीय लोगों इत्यादि के लिए एक समान कानून है। फ्रांस की भाँति सामान्य एवं प्रशासकीय कानूनों का भेद ब्रिटेन में नहीं है। **डायसी** के अनुसार—''विधि के शासन के अनुसार प्रत्येक लोक सेवक,

प्रधानमंत्री से लेकर सामान्य सिपाही और कर संग्रह करने वाले कार्मिक तक, अपने अवैध कार्यों के लिए देश के कानून के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी हैं जैसे कोई अन्य नागरिक।" यद्यपि न्यायाधीशों, उच्च लोक सेवकों तथा सैनिकों को कुछ विशेषाधिकार देय होते हैं किन्तु वे परिस्थितिवश दिए जाते हैं।

(9) नागरिक अधिकार : मौलिक अधिकारों का लिखित में विस्तृत प्रावधान न होते हुए भी ब्रिटेन में स्वतंत्रता, समानता, न्याय, शोषण से रक्षा तथा न्यायिक उपचारों के मूल नागरिक अधिकार जनता को देय हैं। बन्दी प्रत्यक्षीकरण, शस्त्र धारण करने, आवेदन प्रस्तुत करने, अत्यधिक जुर्माने तथा अमानवीय दण्ड से रक्षा, सभा आन्दोलन करने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहित वे सभी मानवाधिकार ब्रिटिश नागरिकों को उपलब्ध हैं जो विश्व के अन्य सभ्य समाजों एवं कल्याणकारी राज्यों में प्रवर्तित हैं।

(10) मिश्रित शासन प्रणाली : सदियों से विकसित हुए ब्रिटिश संविधान में कई प्रकार की विरोधाभासी प्रवृत्तियाँ एक साथ परिलक्षित होने लग गई हैं जैसे—ब्रिटेन की शासन प्रणाली में राजतंत्र, कुलीनतंत्र तथा प्रजातंत्र तीनों का मिश्रण दिखाई देता है। सम्राट का पद वंशानुगत है अतः यह राजतंत्रात्मक व्यवस्था का पर्याय है। लॉर्ड सभा में कुलीन वर्ग का प्रभुत्व है एवं लॉर्ड सभा के पीयर आनुवांशिक आधार पर नियुक्त होते रहे हैं जो कुलीनतंत्र के द्योतक हैं। लोक सदन के सदस्यों तथा मंत्रिमण्डल का निर्वाचन जनता द्वारा होता है अतः प्रजातंत्र भी विद्यमान है। लेकिन वास्तविक रूप में वहाँ लोकतंत्र ही अधिक है क्योंकि सम्राट एवं लॉर्ड सभा की शक्तियाँ सीमित हो चुकी हैं।

(11) द्विदलीय पद्धति : भारत की भाँति बहुदलीय राजनीतिक व्यवस्था ब्रिटेन में दिखाई नहीं देती है बल्कि अनुदार दल (Conservative Party) तथा मजदूर दल (Labour Party) नामक दो दलों का अस्तित्व है। द्विदलीय राजनीतिक पद्धति में अस्थिरता की समस्या बहुत कम उत्पन्न होती है। ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था को बनाए रखने में द्विदलीय पद्धति का भी योगदान रहा है। ब्रिटेन में मुख्यतः दो दल हैं किन्तु अन्य दलों का भी अस्तित्व है जिसमें लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी प्रमुख है।

ब्रिटिश संविधान तथा शासन प्रणाली में **अभिसमय** या वैधानिक परम्पराओं (Conventions) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभिसमय उन प्रथाओं, रूढ़ियों तथा परम्पराओं से बनते हैं जो उपयोगिता के आधार पर सर्वप्रिय हो जाते हैं। इनका निर्माण कानून की भाँति इच्छापूर्वक नहीं किया जाता है बल्कि ये विकसित हो जाते हैं। मिल ने इन्हें 'संविधान के अलिखित नियम' करार दिया है जबकि **एन्सन** ने 'संवैधानिक परम्परा' बताया है। संसद के दो सदन, लोक सदन से प्रधानमंत्री, बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री पद देना, विधेयकों का तीन बार वाचन, मंत्रियों का लोक सदन का सदस्य होना, सम्राट द्वारा मंत्रिमण्डल की अध्यक्षता न करना तथा अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर विरोधी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना (सम्राट द्वारा) इत्यादि अभिसमय के उदाहरण हैं।

शासन व्यवस्था (System of Government)

ब्रिटिश शासन व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ तथा कार्यकुशल मानी जाती है। शासन व्यवस्था का मूल स्रोत अर्थात् संविधान अलिखित होते हुए भी कानूनी परम्पराओं के अनुसरण द्वारा ब्रिटिश शासन संचालित हो रहा है।

ब्रिटेन की शासन व्यवस्था

स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ महानगर निगम (ग्रेटर लन्दन), काउण्टी, काउण्टीबरों तथा ग्रामीण पेरिश में विभक्त हैं।

ब्रिटिश शासन व्यवस्था कार्यात्मक दृष्टि से शासन के तीन अंगों में विभक्त दिखाई देती है अन्यथा मूल प्रकृति केन्द्रीकरण की है। विधायिका या व्यवस्थापिका के रूप में **पार्लियामेण्ट** (संसद) कार्यरत है। ब्रिटिश संसद विश्व की सबसे प्राचीन लोकतांत्रिक संस्था तथा शक्तिशाली निकाय है। यह संसद द्विसदनीय है। उच्च सदन को **लॉर्ड सभा** तथा निम्न सदन को **हाउस ऑफ कॉमन्स** (House of Commons) या लोक सदन कहा जाता है। कुलीनतंत्रीय व्यवस्था की पर्याय लॉर्ड सभा की सदस्य संख्या निश्चित नहीं है क्योंकि प्रधानमंत्री की अनुशंसा पर सम्राट चाहे जितने सदस्य नियुक्त कर सकता है। अवकाश प्राप्त प्रधानमंत्री, लोक सदन के अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, पूर्व सेनापति, न्यायाधिपति तथा विज्ञान, साहित्य एवं कला क्षेत्र के विद्वान् भी इसके सदस्य बनाए जाते हैं। संवैधानिक सुधारों के पश्चात् वर्तमान में लॉर्ड सभा में 740 सदस्य हैं। लॉर्ड सभा में अग्रांकित प्रकार के सदस्य होते हैं—

1. राजवंश के सभी राजकुमार इसके सदस्य हैं जो प्रायः बैठकों में नहीं आते हैं।
2. लॉर्ड सभा में सर्वाधिक संख्या **वंश परम्परागत पियर्स** की है जो लगभग 90 प्रतिशत है। पियर सदस्य वंशानुगत हैं। सन् 1962 से पूर्व कोई पियर अपना वंशानुगत पद नहीं त्याग सकता था। अब यह विवशता नहीं है। सन् 1958 के 'लाइफ पियर्स अधिनियम' के पश्चात् महिलाएँ भी लॉर्ड सभा में मनोनीत की जाने लगी हैं। **पियर** (Peer) शब्द का अर्थ पद, स्तर, आयु तथा योग्यता में समानता है किन्तु यहाँ पियर्स भी पाँच श्रेणी के हैं जो क्रमशः उच्च से निम्न श्रेणी में **ड्यूक** (Duke), **मारक्यूइस** (Marquis), **अर्ल** (Earl), **विस्काउण्ट** (Viscount) तथा **बैरन** (Baron) कहलाते हैं। ये सम्मानसूचक श्रेणियाँ जमींदारों, सामन्तों, धनिकों तथा जागीरदारों को प्रदान की जाती थीं। फ्रांस तथा इटली सहित अन्य यूरोपीय देशों में ब्रिटिश अर्ल के समकक्ष श्रेणी या सम्मान **काउण्ट** (Count) कहलाता था। House of Lords Act, 1999 के द्वारा वंशानुगत पियर व्यवस्था समाप्त कर दी गई है।
3. सन् 1707 में स्कॉटलैण्ड को ब्रिटेन में मिलाते समय यूनियन एक्ट के अन्तर्गत स्कॉटलैण्ड के सभी पियर्स में से केवल 16 पियर चुने जाने का प्रावधान किया गया था। सन् 1963 से यह व्यवस्था है कि स्कॉटलैण्ड के सभी पियर्स लॉर्ड सभा के सदस्य होंगे, किन्तु नए पियर्स नहीं चुने जाएँगे। इस प्रकार स्कॉटलैण्ड का प्रतिनिधित्व शनैः-शनैः घटता रहा है। Scotland Act, 1998 के पश्चात् स्कॉटलैण्ड का प्रतिनिधित्व समाप्त हो गया है।
4. सन् 1958 के आजीवन पियर्स अधिनियम के अन्तर्गत कतिपय प्रसिद्ध एवं अनुभवी व्यक्तियों को भी लॉर्ड सभा का सदस्य बनाया जाता रहा है।
5. आध्यात्मिक लॉर्ड की संख्या 26 है जिनमें कैण्टरबरी, यार्क, लन्दन, डरहम तथा विन्चेस्टर के एक-एक आर्क बिशप या बिशप (उच्च पादरी) अवश्य चुने जाते हैं। अन्य बिशप इंग्लैण्ड की विभिन्न चर्चों के वरिष्ठ बिशप होते हैं।

सन् 2006 तक लॉर्ड सभा का पदेन अध्यक्ष **लॉर्ड चांसलर** कहलाता था जो प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किया जाता था एवं मंत्रिमण्डल का सदस्य माना जाता था। एक हजार वर्ष से चली आ रही **लॉर्ड चांसलर व्यवस्था के स्थान पर अब 'लॉर्ड स्पीकर'** पद सृजित किया गया है। पूर्व में सन् 1660 के **स्थायी आदेश** (Standing Order) संख्या-18 के अन्तर्गत लॉर्ड सभा की अध्यक्षता लॉर्ड चांसलर करता था। 'The Constitutional Reforms Act, 2005' के माध्यम से टोनी ब्लेयर सरकार ने लॉर्ड चांसलर पद समाप्त कर दिया है तथा वर्तमान में लॉर्ड स्पीकर लॉर्ड, सभा के पीयर्स द्वारा चुने जाते हैं। 28 जून, 2006 को हुए प्रथम निर्वाचन में **बैरोनेस हेलेन हायमन** (Baroness Helen Hayman) इस पद पर निर्वाचित हुईं। महारानी इस पद का नियुक्ति पत्र जारी करती हैं। यह पद पूर्व की भाँति आज भी केवल शोभायमान पद है जिसके पास अच्छे एवं सुविधाओं के अतिरिक्त अन्य कोई प्रभावी शक्ति नहीं है। लॉर्ड सभा के अधिवेशन लोक

सदन के साथ होते हैं तथा सोमवार से गुरुवार तक लॉर्ड सभा बैठक करती है। आवश्यकता होने पर ही शुक्रवार को बैठक होती है। सामान्यतः दो घंटे बैठक होती है। **न्यूनतम गणपूर्ति तीन लॉर्ड** की रखी गई है तथा विधेयक पारित करने हेतु 30 लॉर्ड (सदस्य) का समर्थन आवश्यक है। सात सौ से भी अधिक सदस्यों में प्रायः 50-250 सदस्य ही लॉर्ड सभा की बैठकों में आते हैं। लॉर्ड सभा में सदस्यों की न्यूनतम आयु 21 वर्ष निर्धारित है तथा अधिकांश सदस्यों को वेतन नहीं दिया जाता है। अधिवेशन के समय यात्रा एवं दैनिक भत्ता देय होता है। लॉर्ड सभा के सदस्य सम्राट से व्यक्तिगत रूप से मिल सकते हैं, जबकि लोक सदन के सदस्य (सांसद) अध्यक्ष की अनुमति से ही ऐसा कर सकते हैं। लॉर्ड सभा के सदस्यों को लोक सदन के चुनाव लड़ने तथा मत देने का अधिकार नहीं है। लॉर्ड सभा के सदस्य, अध्यक्ष को सम्बोधित न करके केवल 'माई लॉर्ड' कहते रहे हैं। अब यह परम्परा दम तोड़ रही है। एक सदस्य एक विषय पर एक बार ही बोल सकता है तथा विषय से हटकर नहीं बोल सकता है। सामान्यतः लॉर्ड सभा सूनी-सूनी तथा बहसमुक्त रहती है। लॉर्ड सभा गैर वित्त विधेयक को एक बार अस्वीकार कर अधिकतम एक वर्ष के लिए रोके रख सकती है। वित्त विधेयक को अधिकतम एक माह रोक सकती है। वित्त विधेयक पर लॉर्ड सभा के सुझाव, लोक सदन चाहे तो स्वीकार न करे। लॉर्ड सभा की निष्क्रियता तथा शक्तिहीनता के कारण **ऑग एवं जिंक** ने इसे **'संसद का दूसरा सदन'** नहीं बल्कि **'दूसरे दर्जे का सदन'** माना है। इसी प्रकार पूर्व प्रधानमंत्री **चर्चिल** ने लॉर्ड सभा को अप्रतिनिधिक, अनुत्तरदायी तथा अनुपस्थित संस्था कहा है। लॉर्ड सभा में प्रायः अनुदार दल का बहुमत रहता है।

संसद का दूसरा सदन, लोक सदन अर्थात् हाउस ऑफ कॉमन्स है। वर्तमान में इसकी सदस्य संख्या 646 है। 1 जनवरी, 1970 से 18 वर्ष आयु प्राप्त कर चुके मतदाता लोक सदन के सदस्यों का पाँच वर्ष के लिए चयन करते हैं। 21 वर्ष आयु पूर्ण कर चुका ब्रिटिश नागरिक जो देश के प्रति निष्ठा की शपथ लेने को तैयार हो, लोक सदन के लिए चुनाव लड़ सकता है किन्तु उसे लॉर्ड सभा का सदस्य, पियर, मेयर या शैरिफ, लोक सेवक तथा राज्य से लाभ लेने वाली स्थिति में नहीं होना चाहिए। लोक सदन का अध्यक्ष **स्पीकर** (Speaker) कहलाता है क्योंकि शुरू में वह सदन के विचार सम्राट को बताने का कार्य किया करता था। स्पीकर का चयन सत्ता एवं विपक्ष के सहयोग से सर्वमान्य व्यक्ति का किया जाता है। स्पीकर बार-बार भी निर्वाचित हो सकता है। प्रायः चुनावों में उसे निर्विरोध जिताने का प्रयास किया जाता है। लोक सदन में उसका गम्भीर व्यक्तित्व बहुत प्रभावी सिद्ध हुआ है। **एस. गार्डन** के अनुसार—"स्पीकर का पद विश्व के सर्वाधिक सम्मानप्रद, गौरवपूर्ण तथा कठिन कर्तव्यों वाले पदों में से एक है।" लोक सदन की अध्यक्षता करते हुए वह बहुत कम बोलता है किन्तु शोर-शराबा होने पर उसका सीट से उठना ही पर्याप्त है। सभी उत्तेजित सदस्य एकदम शान्त हो जाते हैं। लोक सदन के स्पीकर के पास यह अधिकार भी होता है कि वह किसी विधेयक के समस्त बिन्दुओं

(अनुच्छेदों) पर सदन में चर्चा न कराए बल्कि कुछ बिन्दुओं को लाँघ (Jump) सकता है, यह परम्परा कंगारू (Kangaroo) नाम से प्रसिद्ध है। लोक सदन की गणपूर्ति 40 है। सदन में दलीय सचेतक (Party Whip) भी होते हैं जो सदन में उपस्थिति, पक्ष में मतदान तथा व्यवस्था में सहायता करते हैं। **व्हिप** का अर्थ कोड़ा या चाबुक है जो जानवरों को नियंत्रित करने में काम आता है। ब्रिटेन में संसद की सर्वोच्चता का तात्पर्य लोक सदन की प्रभुसत्ता से ही है। सन् 1911 और सन् 1949 के संसदीय अधिनियमों के पश्चात् लोक सदन अधिक शक्तिशाली हो गया है। बजट स्वीकृति में, कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने में, मंत्रियों से प्रश्न पूछने में तथा सरकार को कटघरे में लाने के क्रम में लोक सदन एक प्रभावशाली निकाय है। संसद में दोनों सदनों के कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिए कई **समितियाँ** भी गठित की जाती हैं। सन् 1834 में आग में जलकर राख हुए शाही भवन, जिसका वर्ष 1840-60 तक पुनरुद्धार किया गया, आज **वेस्टमिन्स्टर** (Westminster) कहलाता है। इसी भवन में ब्रिटिश संसद कार्य करती है। विश्व प्रसिद्ध 'बिग बेन' घड़ी इसी भवन में है।

कार्यपालिका के कृत्यों पर नियंत्रण रखने तथा आम व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका कार्यरत है। निम्नतम स्तर पर मजिस्ट्रेट कोर्ट या जस्टिस ऑफ पीस कोर्ट होती है। जस्टिस ऑफ पीस अंशकालीन न्यायाधीश होते हैं। उन्हें पारिश्रमिक प्रदान नहीं किया जाता है तथा ये न्याय या विधि में डिग्री प्राप्त नहीं बल्कि सामान्य प्रशिक्षण प्राप्त रहते हैं। सामान्य प्रकृति के फ़ौजदारी एवं दीवानी मामलों को मजिस्ट्रेट कोर्ट सुनवाई कर लेती है। काउण्टी स्तर पर फौजदारी मामलों के लिए क्राउन कोर्ट तथा दीवानी मामलों के लिए काउण्टी कोर्ट होती है। इनके पश्चात् उच्च न्यायालय तथा अपील न्यायालय कार्यरत हैं। राष्ट्र के सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय के रूप में लॉर्ड सभा निर्णय करती रही है। अधिकांश निर्णय 12 सदस्यीय जूरी करती थी। न्यायाधीशों को पूर्ण स्वतंत्रता थी किन्तु संसद की सर्वोच्चता सुविदित रही है। ब्रिटेन में जून, 2003 में लिए गए निर्णय के द्वारा 1400 वर्ष पुरानी लॉर्ड चांसलर व्यवस्था को समाप्त किया गया तथा **01 अक्टूबर, 2009 से पृथक् से सर्वोच्च न्यायालय कार्यशील** हो गया है। संविधान की भाँति अधिकांश कानून असंहिताबद्ध हैं। बीमा, आयकर, आवासन, स्वास्थ्य, पेंशन, किराया, भूमि तथा परिवहन इत्यादि विभागों के मुकदमों की सुनवाई के लिए **प्रशासनिक न्यायाधिकरण** भी कार्यरत हैं लेकिन सम्पूर्ण राष्ट्र में एक ही 'सामान्य कानून' प्रवर्तित है।

शासन का तीसरा महत्त्वपूर्ण अंग कार्यपालिका है। **नाममात्र या संवैधानिक कार्यपालिका** के रूप में सम्राट होता है। **यहाँ सम्राट से तात्पर्य राजा या रानी दोनों से है** क्योंकि ब्रिटिश परम्पराओं में महिलाओं को भी राजसिंहासन प्राप्त होता है। सामान्यतः **सम्राट** (King) और **राजमुकुट** (Crown) को एक ही माना जाता है किन्तु दोनों के मध्य अन्तर किया गया है। **ग्लैडस्टन** के शब्दों में—"अंग्रेजी संविधान-साहित्य में अनेक सूक्ष्म भेद हैं उनमें इतना अधिक महत्त्वपूर्ण कोई नहीं है, जितना कि महत्त्वपूर्ण सम्राट एवं राजमुकुट का भेद है।" वस्तुतः सम्राट एक व्यक्ति है, राजमुकुट एक संस्था है। सम्राट अस्थायी है, राजमुकुट स्थायी है। सम्राट की मृत्यु हो सकती है किन्तु राजमुकुट अमर है। सम्राट एक व्यक्ति है किन्तु **राजमुकुट में सम्राट के अतिरिक्त, मंत्रिमण्डल एवं संसद भी सम्मिलित मानी जाती है।** सम्राट का पद वंशानुगत है तथा इसके स्थान पर निर्वाचित राष्ट्राध्यक्ष चुनने की ओर ब्रिटेनवासी कभी ध्यान भी नहीं देते क्योंकि न तो यह आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त प्रतीत होता है और न ही जनभावनाओं के अनुरूप है। ब्रिटिश सम्राट आस्ट्रेलिया का भी राष्ट्रपति होता है। इस राजतंत्रीय परम्परा के स्थान पर गणतंत्र की स्थापना सम्बन्धी जनमत संग्रह (6 नवम्बर, 1998) इसलिए रद्द हो गया कि लोग आज भी राजमुकुट में आस्था रखते हैं। ब्रिटिश राजवंश के प्रति जनता में अगाध श्रद्धा है। इसका स्पष्ट प्रभाव 31 अगस्त, 1997 को सबके सामने आया जब ब्रिटिश राजपरिवार की बहू (तलाकशुदा) प्रिंसेस ऑफ वेल्स डायना की पेरिस में कार दुर्घटना में मृत्यु हुई। उस समय जिस प्रकार इंग्लैण्ड सहित यूरोप गमगीन हुआ तो यह स्पष्ट हुआ कि अभी भी राजवंशों के प्रति असीम स्नेह तथा अन्धभक्ति है। ब्रिटिश सम्राट के पास वैसी ही शक्तियाँ हैं जैसी कि भारत के राष्ट्रपति के पास हैं। सम्राट की पदस्थिति 'रबर की मुहर' या 'स्वर्णिम शून्य' के समान ही मानी गई है। प्रधानमंत्री सहित उच्च पदों पर नियुक्ति, युद्ध की घोषणा, क्षमादान, राजकोष पर नियंत्रण, संसद के अधिवेशन बुलाने, अभिभाषण देने, कानूनों की स्वीकृति, चर्च के अधिकारियों जैसे—आर्क बिशप, बिशप, डीन, कैनन की नियुक्ति तथा सम्मान सूचक उपाधियाँ जैसे—नाइट (Knight), लॉर्ड, अर्ल या ड्यूक इत्यादि वितरित करने के कार्य सम्राट के हैं। नाइट (Knight) की सम्मान उपाधि प्राप्त व्यक्ति अपने नाम के आगे 'सर' लगाता है। ऐसा सामान्यतः ब्रिटिश व्यक्ति ही कर सकता है। ब्रिटिश संसद प्रतिवर्ष शाही परिवार के निजी खर्चों हेतु एक निश्चित राशि स्वीकृत करती है। इसे **Civil List** कहा जाता है।

शासन की वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमंत्री तथा उनके मंत्रिमण्डल द्वारा प्रयोग में लाई जाती हैं अतः प्रधानमंत्री की भूमिका ब्रिटिश शासन में महत्त्वपूर्ण है।

संसदीय व्यवस्था
(Parliamentary System)

ब्रिटेन को संसदीय लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का जनक माना जाता है जहाँ सदियों पूर्व मंत्रिमण्डल तथा संसद जैसी उत्तरदायी राजनीतिक संस्थाओं का उदय हुआ। ब्रिटेन की भाँति कनाडा, आस्ट्रेलिया, भारत तथा जापान में भी संसदीय लोकतंत्र है जो ब्रिटिश परम्पराओं से प्रभावित है। सामान्यतः संसदीय प्रणाली को 'केबिनेट प्रणाली' तथा 'उत्तरदायी शासन प्रणाली' भी कहा जाता है जिसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(1) दोहरी कार्यपालिका : विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों को क्रियान्वित करने के लिए राजनीतिक कार्यपालिका उत्तरदायी होती है। अध्यक्षीय शासन (जैसे अमेरिका) में

एकल कार्यपालिका का अस्तित्व होता है, जबकि संसदीय प्रणाली में दो प्रकार की कार्यपालिकाएँ यथा—'नाममात्र की' तथा 'वास्तविक' कार्यपालिका होती हैं। ब्रिटेन का सम्राट, नाममात्र की या संवैधानिक प्रमुख कार्यपालिका है जो वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री एवं उनकी मंत्रिपरिषद् के परामर्शानुसार कार्य करता है। शासन की समस्त जिम्मेदारियाँ वास्तविक कार्यपालिका द्वारा वहन की जाती हैं और कानून निर्माण, नीति निर्धारण तथा कार्यक्रम क्रियान्वयन में भी इसकी निर्णायक भूमिका रहती है। ब्रिटेन के सम्राट के बारे में कहा जाता है कि वह राज करता है, शासन नहीं। ब्रिटिश सम्राट का पद जापान की भाँति वंशानुगत है जबकि भारत में राष्ट्रपति का निर्वाचन किया जाता है। दोहरी कार्यपालिका के होने के उपरान्त भी संसदीय प्रणाली के विशिष्ट लाभ हैं जो शासन संचालन में सहयोग देते हैं।

(2) **विधायिका एवं कार्यपालिका में घनिष्ठता :** अध्यक्षीय शासन प्रणाली में शासन के अंगों के मध्य शक्ति-पृथक्करण तथा 'अवरोध एवं सन्तुलन' का सिद्धान्त प्रवर्तित रहता है किन्तु संसदीय कार्यपालिका में विधायिका (व्यवस्थापिका) तथा कार्यपालिका के मध्य पृथक्करण नहीं बल्कि संयुक्तीकरण पाया जाता है। ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् जो वास्तविक कार्यपालिका का पर्याय है, का निर्माण संसद के सदस्यों में से ही होता है। इसी प्रकार मंत्रिपरिषद् को लोक सदन में विश्वास मत बनाए रखना होता है। जहाँ एक ओर लोक सदन में विश्वास खोते ही मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना होता है, वहाँ दूसरी ओर मंत्रिपरिषद् की सलाह पर सम्राट लोक सदन को विघटित कर सकता है। वास्तविक कार्यपालिका इस प्रणाली में कानून निर्माण कर उसकी स्वीकृति में भी अहम् भूमिका निभाती है।

(3) **अनिश्चित कार्यकाल :** संसदीय प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका का कार्यकाल अनिश्चित रहता है क्योंकि नियमानुसार मंत्रिपरिषद् को विधायिका का समर्थन प्राप्त होना चाहिए। यदि किसी प्रकरण पर सरकार (मंत्रिपरिषद्) की हार होती है या अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता है अथवा अन्य परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तो कार्यपालिका समय से पूर्व ही पद त्याग कर देती है। ब्रिटेन में लोक सदन तथा मंत्रिपरिषद् दोनों का ही कार्यकाल पाँच वर्ष निश्चित है किन्तु अनिश्चितता के बादल हमेशा मंडराते रहते हैं। यदि लोक सदन में किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत न हो तो संसदीय प्रणाली के दोष अधिक उजागर होते हैं।

(4) **सामूहिक एवं व्यक्तिगत उत्तरदायित्व :** संसदीय शासन व्यवस्था में वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिपरिषद् एक इकाई के रूप में प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कार्य करती है। कार्यपालिका के समस्त निर्णय सामूहिक रूप में सभी मंत्रियों द्वारा लिए जाते हैं। अतः कहा जाता है कि 'मंत्री इकट्ठे ही तैरते हैं तथा इकट्ठे ही डूबते हैं।' किसी एक मंत्री या विभाग पर आरोप लगने का तात्पर्य सरकार पर आरोप लगना है। अतः हार की स्थिति में सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् त्यागपत्र देती है। यही सामूहिक उत्तरदायित्व है, लेकिन सामूहिक

उत्तरदायित्व के साथ-साथ व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धान्त भी लागू होता है। यदि कोई मंत्री अयोग्य, भ्रष्ट या अकर्मण्य हो तो यह आवश्यक नहीं है कि समस्त मंत्री दोषी माने जाएँ। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धान्त लागू किया जा सकता है तथा एक मंत्री त्यागपत्र दे देता है अथवा उसे पद से हटा दिया जाता है।

(5) **प्रधानमंत्री की प्रमुखता : बैजहॉट के अनुसार**—"मंत्रिपरिषद् संसद की एक समिति की भाँति है जिसे राष्ट्र पर शासन करने के लिए चुना जाता है।" मंत्रिपरिषद् का अध्यक्ष अथवा मुखिया प्रधानमंत्री होता है। प्रधानमंत्री को यह स्वतंत्रता रहती है कि वह अपनी इच्छा से मंत्रियों का चयन करे एवं उनका विभाग एवं स्तर निर्धारित करे। मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री की स्थिति समकक्षों में श्रेष्ठतम की हो जाती है। वह मंत्रिपरिषद् का अध्यक्ष ही नहीं बल्कि संरक्षक, निर्माता, नेतृत्वकर्ता तथा विनाशकर्ता भी होता है। प्रधानमंत्री के त्यागपत्र या मृत्यु की स्थिति में सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् भंग हो जाती है। संसदीय लोकतंत्र में प्रधानमंत्री केवल मंत्रिपरिषद् का ही प्रमुख नहीं होता बल्कि वह संसद में, सार्वजनिक कार्यक्रमों में, केन्द्रीय सचिवालय में तथा अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रवक्ता बन जाता है।

(6) **राजनीतिक सहजातीयता :** संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री एवं उनकी मंत्रिपरिषद् बहुमत वाले राजनीतिक दल के सदस्यों से युक्त होती है। यदि एकाधिक दलों की संयुक्त सरकार हो तो उनमें कतिपय सहमति के बिन्दु समान होते हैं। सामान्यतया एक ही दल के सदस्य मंत्रिपरिषद् में होने पर इसे राजनीतिक सहजातीयता का नाम दिया जाता है। ब्रिटेन में चूँकि दो दलों का ही प्रभुत्व है (कुछ छोटे दल भी हैं) अतः एक दल सत्ता में रहता है तो दूसरा विपक्ष में बैठता है। मंत्रिपरिषद् के सदस्यों में सहजातीयता होने से प्रायः सामूहिक उत्तरदायित्व एवं गोपनीयता की भावना बनाए रखना सरल हो जाता है।

(7) **गोपनीयता :** संसदीय लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में प्रधानमंत्री एवं अन्य मंत्रियों को **पद तथा गोपनीयता** की शपथ लेनी होती है। इस शपथ के अनुसार सरकार के महत्त्वपूर्ण निर्णयों को गुप्त रखना आवश्यक होता है। मंत्रिपरिषद् के निर्णय भी सामूहिक रूप में आपसी सहमति से लिए जाते हैं तथा किसी मुद्दे पर किसी मंत्री की असहमति की स्थिति में एक ही विकल्प रहता है कि वह मंत्रिपरिषद् से त्यागपत्र दे दे। विगत एक-दो दशक से ब्रिटेन एवं भारत में कतिपय प्रकरणों में गोपनीयता को भंग करते हुए कुछ राजनेताओं ने मीडिया का सहारा लिया है लेकिन सामान्यतया गोपनीयता बनी रहती है।

(8) **राजनीतिक सामंजस्यता :** संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका (वास्तविक) का निर्माण विधायिका के सदस्यों से होता है। ऐसी स्थिति में विपक्षी राजनीतिक दलों के साथ आपसी प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि होना स्वाभाविक है किन्तु कतिपय मुद्दे ऐसे होते हैं जो राष्ट्रीय हित से सम्बद्ध होते हैं। उन मुद्दों के समाधान या तत्सम्बन्धी कानून-निर्माण के लिए यह आवश्यक भी है कि राजनीतिक सामंजस्यशीलता बनी रहे। संसदीय प्रणाली में

अधिसंख्य विधेयक मंत्रिपरिषद् के सदस्यों द्वारा सदन में प्रस्तावित किए जाते हैं। विधेयकों को पारित करवाने एवं अन्य कामकाज निपटाने के लिए सत्तापक्ष को विपक्ष के सहयोग की दरकार रहती है। यद्यपि भारत एवं जापान में विधायिका राजनीतिक द्वंद्वों का अखाड़ा बन जाती है किन्तु ब्रिटिश परम्पराएँ किंचित् परिपक्वता एवं दायित्व बोध का प्रमाण देती रही हैं।

गुण अथवा लाभ (Merits or Advantages)

ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था के निम्नांकित गुण कहे जा सकते हैं—

(1) उत्तरदायी शासन : संसदीय प्रणाली का सर्वप्रमुख गुण यह है कि कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। लोक प्रशासन में जवाबदेयता की भावना के अभाव में कुशलता तथा श्रेष्ठता का पतन होता है। चूँकि संसदीय प्रणाली में मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल उतना ही होता है, जितने दिन वह संसद में विश्वास बनाए रखती है। ऐसी स्थिति में कोई भी सरकार यह नहीं चाहेगी कि विधायिका में उसके कार्यकरण के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव, काम रोको प्रस्ताव अथवा अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत हो। यही कारण है कि वास्तविक कार्यपालिका निरंकुश तथा लापरवाह होने के बजाए उत्तरदायी कार्यपालिका का स्वरूप धारण करती है।

(2) कार्यपालिका एवं विधायिका में घनिष्ठता : चूँकि संसदीय प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका, विधायिका का ही एक अंग होती है, अतः दोनों अंगों के मध्य समन्वय तथा घनिष्ठता का गुण विद्यमान रहता है। संसद में बहुमत दल का नेता सरकार का गठन करता है तथा सदन का विश्वास अर्जित करता है। सरकार द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाला बजट, विधेयक तथा अन्य प्रस्ताव तब ही पारित हो सकते हैं जबकि विपक्ष का भी समर्थन सरकार को मिले। वस्तुतः सशक्त विपक्ष के अभाव में घनिष्ठता तथा समन्वय की परम्परा भी लुप्त होने लगती है।

(3) लोचशीलता : संसदीय प्रणाली के बारे में कहा जाता है कि 'यह झुक जाती है, टूटती नहीं है।' लोचशीलता तथा नम्यता के इसी गुण के कारण संसदीय व्यवस्थाएँ वास्तविक लोकतंत्र की प्रतिनिधि मानी जाती हैं। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में शासन के अंग एक-दूसरे से स्वतंत्र रहने के कारण कठोरता, पृथक्ता तथा अहंभाव की समस्याओं से ग्रस्त हो जाते हैं जबकि संसदीय प्रणाली में संकटकालीन परिस्थितियों में समाधान का रास्ता शीघ्र खोज लिया जाता है। उदाहरण के लिए सन् 1999 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी सरकार का पतन उस परिस्थिति में हुआ जबकि बजट सत्र चल रहा था अतः सभी दलों ने मिलकर (विधायिका) सर्वप्रथम बजट को स्वीकृति दी ताकि वित्तीय संकट उत्पन्न न हो जबकि अमेरिका में नवम्बर, 1995 में कांग्रेस ने अड़ियल रुख अपनाते हुए एक सप्ताह तक वित्त के अभाव में प्रशासन को ठप्प करवा दिया था। ब्रिटेन में भी द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान चेम्बरलेन के स्थान पर चर्चिल को प्रधानमंत्री बनाना समय की माँग थी जिसे सभी पक्षों ने स्वीकारा।

(4) विरोध का आदर : जिस प्रकार दुःख उठाए बिना मनुष्य सुख का वास्तविक अनुभव नहीं कर सकता, बिना भूख व्यक्ति भोजन का आस्वादन नहीं कर सकता, उसी प्रकार लोकतंत्र में बिना विरोधी पक्ष के सत्ता का ज्ञान नहीं हो सकता है। संसदीय व्यवस्था में विरोधी पक्ष की दलीलों तथा आलोचनाओं को सहर्ष स्वीकार ही नहीं किया जाता है बल्कि कई बार तो प्रोत्साहन भी दिया जाता है क्योंकि विरोधी पक्ष ही सच्चाई का दर्पण दिखा सकता है। इसीलिए कहा जाता है 'निन्दक नियरे राखिए' ताकि स्वस्थ समालोचना से नीति, कार्यक्रम एवं कानून में सुधार हो सके। विभिन्न राजनीतिक दलों के मध्य सहनशीलता तथा समझौता करने की प्रवृत्ति रहती है क्योंकि किसी को भी सत्ता या विपक्ष में बैठना पड़ सकता है।

(5) योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों का शासन : संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री उन्हीं व्यक्तियों को मंत्रिमण्डल में सम्मिलित करता है जो योग्य, अनुभवी, चतुर तथा लोकप्रिय राजनेता होते हैं। चूँकि ये राजनेता जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं अतः उनकी क्षमताओं पर अँगुली उठाना अनावश्यक है जबकि अध्यक्षीय प्रणाली में राष्ट्रपति, अपने मंत्रिमण्डल में उन सदस्यों को सम्मिलित करता है जो उसकी निजी पसन्द होते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से संसदीय प्रणाली का मंत्रिमण्डल अधिक सन्तुलित एवं प्रभावी दिखाई पड़ता है।

(6) व्यावहारिक पद्धति : संसदीय लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति में जनता, राजनेता तथा प्रशासक तीनों ही प्रजातंत्र की शिक्षा एक साथ ग्रहण करते हैं। जनता को चुनावों, सभा-समारोहों तथा संसदीय वाद-विवादों से लोकतंत्र की शक्ति का आभास होता है तो राजनेताओं को विधायिका एवं कार्यपालिका का आपसी समन्वय शिक्षा देता है। भारत में सन् 1989 से सन् 1999 के मध्य हुए पाँच आम चुनावों ने निस्सन्देह राजनीतिक अस्थिरता का परिचय दिया है किन्तु यह भी सिद्ध किया है कि भीषण झंझावातों में भी संसदीय लोकतंत्र जीवित रहने की कूवत रखता है तथा मतदाता जब चाहे राजनेताओं को यथार्थ के कटु धरातल पर ला पटकते हैं।

संसदीय प्रणाली के दोष अथवा हानियाँ
(Demerits or Disadvantages of Parliamentary System)

संसदात्मक शासन प्रणाली के निम्नांकित दोष वर्णित किए जाते हैं—

(1) शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के विरुद्ध : शक्ति मनुष्य को निरंकुश बनाती है अतः शक्तियों का विकेन्द्रीकरण या विभाजन रहना श्रेयस्कर माना जाता है। माण्टेस्क्यू ने शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के क्रम में प्रतिपादित किया था किन्तु संसदीय लोकतंत्र में विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका पूर्णतः पृथक् होने के बजाए एक ही स्थान पर केन्द्रित दिखाई देती हैं। कार्यपालिका स्वयं विधायिका का ही एक अंश होती है। ऐसी स्थिति में निरंकुशता भी सम्भव हो सकती है। ब्रिटेन में संसद की सर्वोच्चता मानी जाती है किन्तु संसद की

शक्तियाँ भी **मंत्रिमण्डल** में केन्द्रित हो चुकी हैं। ब्रिटेन में लॉर्ड सभा ही सर्वोच्च न्यायालय है। प्रश्न यह है कि जब न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति शून्य हो तथा शासन की समस्त शक्तियाँ एक स्थान पर केन्द्रित हों तो शासन का स्वरूप कैसा होगा? यद्यपि ब्रिटेन में कई दशकों से इस सम्बन्ध में बड़ा विवाद सामने नहीं आया है तथापि यह एक अवगुण है जो केवल अंग्रेजों की समझबूझ तथा व्यावहारिकता से ढका पड़ा है।

(2) दलीय शासन : संसदीय प्रणाली में जहाँ एक ओर योग्य एवं अनुभवी मंत्रियों की मंत्रिमण्डल में सदस्यता की सम्भावना रहती है वहीं दूसरी ओर दलीय शासन के कारण धूर्त, चालाक तथा अवसरवादी राजनेता भी सरकार में आ जाते हैं। विशुद्ध रूप से राजनीतिक मान्यताओं पर आधारित इस शासन व्यवस्था में राजनीतिक संकीर्णताएँ स्पष्ट सामने आती हैं जो सत्ताधारी दल (या दलों) द्वारा 'लूट के माल को बाँटने' की परम्परा का निर्वहन करती हैं। भारत में एक दर्जन से भी अधिक राजनीतिक दलों की गठबन्धन सरकारों के समय लोकतंत्र महज एक तमाशा बन गया है क्योंकि जिनके विरुद्ध चुनाव लड़ा जाता है सत्ता में उन्हीं से हाथ मिलाना पड़ता है। ब्रिटेन में यद्यपि द्विदलीय राजनीति है फिर भी दलीय राजनीति के प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। बहुधा विपक्षी दल शासकीय कार्यों में अरुचि भी प्रकट करते रहते हैं।

(3) व्यवस्थापिका की शक्तियों का पतन : संसदीय लोकतंत्र की यह एक गम्भीर समस्या है क्योंकि जन भावनाओं का सामूहिक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था अर्थात् व्यवस्थापिका की शक्तियों का तुलनात्मक रूप से सर्वाधिक क्षरण हुआ है। सन् 1825 में **लॉर्ड ब्राइस** ने अपनी पुस्तक *Modern Democracies* में यह अहम् प्रश्न उठाया था कि क्या विधायिकाओं का पतन हो रहा है। भारत तथा ब्रिटेन के अनुभवों ने इस तथ्य को प्रमाणित कर दिया है कि कार्यपालिका की बढ़ती शक्तियों ने विधायिका की भूमिका गौण कर दी है। यदि व्यवस्थापिका में एक ही दल का अत्यधिक बहुमत हो (जैसा राजीव गाँधी के समय था) तो विपक्षी दलों सहित सम्पूर्ण विधायिका की स्थिति कार्यपालिका के सामने मूकदर्शक जैसी हो जाती है। ब्रिटेन में मंत्रिमण्डल की भूमिका एकाधिकार प्राप्त संस्था जैसी प्रतीत होती है।

(4) राष्ट्रीय हितों की अवहेलना : संसदीय व्यवस्था का एक दोष यह है कि इसमें राजनीतिक दलों की मानसिकता हमेशा दलीय नीतियों को आगे बढ़ाने तथा उनके हितों के संवर्द्धन में सहायक वाद-विवाद करने की रहती है फिर चाहे राष्ट्रीय महत्व को तिलांजलि ही क्यों न देनी पड़े। **लॉर्ड ब्राइस** के अनुसार—''इस प्रणाली में दलीय भावना बढ़ती है और सदा तीव्र बनी रहती है।'' बहुधा सरकार की गलत नीति का सत्ता पक्ष के सदस्य इसलिए विरोध नहीं कर पाते कि वे दलीय अनुशासन से आबद्ध रहते हैं। भारत में निरक्षरता, गरीबी, जनाधिक्य, शोषण, बेरोजगारी तथा भ्रष्टाचार जैसी राष्ट्रीय ज्वलन्त समस्याओं के समाधान के लिए कारगर नीति केवल इसीलिए नहीं बन पाई है या सफल नहीं हुई है कि कोई दल दूसरे दल को सफलता का श्रेय नहीं देना चाहता है।

(5) निर्बल एवं अस्थिर शासन : संसदीय प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका के

पास बहुमत तथा सदन का विश्वास होना चाहिए अन्यथा सरकार का पतन सुनिश्चित है। त्रिशंकु विधायिका या किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने की स्थिति में संसदीय प्रणाली के दोष अधिक उजागर होते हैं। भारत में निरन्तर हो रहे आम चुनाव तथा गठबन्धन सरकारों के पतन ने यह प्रश्न खड़ा किया है कि क्या यहाँ भी अध्यक्षीय शासन प्रणाली अपनाई जाए? संसदीय प्रणाली की कमियाँ बड़ी विचित्र हैं। यदि एक दल अधिक बहुमत में आता है तो वह निरंकुश वास्तविक कार्यपालिका का निर्माण कर सकता है। यदि बहुमत के आस-पास रहता है तो कुछ सदस्यों द्वारा दल छोड़ने की आशंका बनी रहती है और यदि किसी भी दल को बहुमत नहीं मिलता तो राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न होती है। **मंत्रिमण्डल द्वारा विधायिका को भंग करने की अनुशंसा वह हथियार है** जो विधायिका को सदैव भयाक्रांत बनाए रखता है।

(6) आपातकाल में अनुपयुक्तता : इस शासन प्रणाली की कार्यपद्धति विधायिका के साथ समन्वय करने एवं समुचित वाद-विवाद या विचार-विमर्श के पश्चात् निर्णय लेने से सम्बन्धित है। सामान्य दिनों में यह शासन प्रणाली उचित प्रतीत होती है किन्तु संकट के समय इसके दोष अधिक गहरे लगने लगते हैं। सन् 1999 में वाजपेयी सरकार के पतन के पश्चात् मध्यावधि चुनावों की तैयारी के दौरान ही पाकिस्तान के साथ हुए **'कारगिल संघर्ष'** के समय यह कमी उभर कर सामने आई। चूँकि लोकसभा भंग थी अतः राज्यसभा का सत्र बुलाने के लिए विपक्षी दलों ने माँग रखी जो सरकार ने स्वीकार नहीं की क्योंकि युद्ध जैसी स्थिति में भी राजनीतिक संकीर्णताएँ छुप नहीं पातीं। इसी के साथ प्रश्न यह भी उठा कि पराजित सरकार (जिसे **कामचलाऊ सरकार** कह दिया जाता है) किस सीमा तक नीतिगत निर्णय ले सकती है? इस सम्बन्ध में **गिलक्राइस्ट** का कथन है—''जो विचार-विमर्श शांतिकाल में संसदीय शासन का एक गुण होता है वही संकटकाल में उसका सबसे बड़ा दोष होता है।''

(7) नौकरशाही का दबदबा : संसदीय लोकतंत्र की इस व्यवस्था में वास्तविक कार्यपालिका के अधीन स्थायी एवं प्रशासनिक कार्यपालिका कार्य करती है। नौकरशाही के समस्त अवगुणों से भरपूर प्रशासनिक कार्यपालिका का मुख्य कार्य मंत्रियों को परामर्श देना तथा नीतियों एवं कानूनों का क्रियान्वयन करना है किन्तु अस्थिर सरकारों के समय नौकरशाही निरंकुश बन जाती है। इसी प्रकार 'प्रतिबद्धता' के अभाव में या छद्म तटस्थता के चलते नौकरशाही राजनीतिक कार्यपालिका को सम्पूर्ण सहयोग प्रदान नहीं करती है। लोक सेवाओं में अधिकारियों का स्थायी चयन तथा संवैधानिक सुरक्षा उनके कार्यकरण को अवश्य प्रभावित करती है। राजनीतिज्ञ मंत्रिगण प्रायः प्रशासनिक कार्यकलापों एवं नियमों से अनभिज्ञ होते हैं तथा राजनीतिक कार्यक्रमों में अधिक व्यस्त रहते हैं जिसका नौकरशाही लाभ उठाती है।

इस प्रकार ब्रिटेन की संसदीय शासन प्रणाली कई प्रकार के दोषों से युक्त है। इस सम्बन्ध में **सिजविक** का मानना है कि—''संसदीय शासन के गुणों को गम्भीर त्रुटियों

के द्वारा ही खरीदना पड़ता है।" संसदीय लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक दलों में परिपक्वता हो, विधायिका में पूर्ण बहुमत हो, विपक्ष सकारात्मक भूमिका निभाए, संसदीय मूल्यों में आस्था हो, बार-बार विधायिका (लोक सदन) भंग न किया जाए, सदन का अध्यक्ष निष्पक्षता प्रदर्शित करे, राष्ट्र की सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो तथा व्यक्ति पूजा के स्थान पर सामूहिकता को प्रश्रय दिया जाए।

प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमण्डल
(Prime Minister & Cabinet)

ब्रिटेन में प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमण्डल की व्यवस्था भी परम्परागत है। वस्तुतः सन् 1660 में प्रिवी कौंसिल से बनाई गई एक छोटी समिति ही मंत्रिमण्डल का प्रारम्भिक स्वरूप थी। **कबाल** नामक यह संस्था पाँच सदस्यों के नाम के प्रारम्भिक अक्षरों की परिचायक थी। कालान्तर में सन् 1937 में Ministers of the Crown Act पारित किया गया।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की विशेषताएँ

1. सम्राट की वास्तविक कार्यपालिका से पृथकता;
2. व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका में घनिष्ठता;
3. मंत्रिमण्डल का सामूहिक उत्तरदायित्व;
4. मंत्रिमण्डल के निर्णयों की गोपनीयता;
5. मंत्रिमण्डल में राजनीतिक सजातीयता; तथा
6. मंत्रिमण्डल पर प्रधानमंत्री का नेतृत्व।

वास्तव में **मंत्रिपरिषद्** (Council of Ministers) तथा **मंत्रिमण्डल** (Cabinet) में अन्तर है। मंत्रिपरिषद् में कई श्रेणियों के मंत्री सम्मिलित होते हैं जबकि मंत्रिमण्डल में केवल उच्च स्तरीय अर्थात् केबिनेट मंत्री सम्मिलित होते हैं। मंत्रिपरिषद् एक विशाल संस्था है जिसका मंत्रिमण्डल एक भाग होता है। इसके अतिरिक्त पद, स्तर, वेतन, कार्य एवं शक्तियों में भी भेद रहता है। भारत की भाँति ब्रिटेन में भी मंत्रिमण्डल ही सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् की तरह कार्य करने लग गया है। ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् में केबिनेट मंत्री (विभागीय या गैर विभागीय), संसदीय सचिव, जूनियर लॉर्ड तथा संसदीय निजी सचिव इत्यादि सम्मिलित होते हैं। सन् 1937 के अधिनियम के द्वारा मंत्रिमण्डल में निम्नांकित मंत्री सम्मिलित किए गए थे—

1. प्रधानमंत्री एवं राजकोष का प्रथम लॉर्ड
2. चांसलर ऑफ एक्सचेकर (वित्त मंत्री)
3. गृह विभाग का सचिव
4. उपनिवेशों का सचिव
5. विदेश विभाग का सचिव

6. वायुसेना का सचिव
7. युद्ध सचिव
8. जल सेना का लॉर्ड
9. स्कॉटलैण्ड का सचिव
10. व्यापार मण्डल का अध्यक्ष
11. शिक्षा बोर्ड का अध्यक्ष
12. कृषि एवं मत्स्य विभाग का सचिव
13. स्वास्थ्य मंत्री
14. यातायात मंत्री
15. श्रम मंत्री
16. लॉर्ड प्रिवी कौंसिल
17. पोस्ट मास्टर जनरल
18. लॉर्ड प्रेसीडेण्ट ऑफ कौंसिल
19. फर्स्ट कमिश्नर ऑफ वर्क्स एण्ड पेंशन
20. समन्वय मंत्री।

जून, 2001 में टोनी ब्लेयर सरकार द्वारा गठित केबिनेट में निम्नांकित मं सम्मिलित थे—

1. प्रधानमंत्री
2. उप प्रधानमंत्री
3. हाउस ऑफ कॉमन्स के नेता
4. वित्त मंत्री
5. लॉर्ड चांसलर
6. विदेश मंत्री
7. पर्यावरण, खाद्य तथा ग्रामीण मामलों का मंत्री
8. अन्तरराष्ट्रीय विकास मंत्री
9. श्रम एवं पेंशन मंत्री
10. स्थानीय स्वशासन तथा क्षेत्र मंत्री
11. स्वास्थ्य मंत्री
12. उत्तरी आयरलैण्ड मामलों का मंत्री
13. वेल्स मामलों के मंत्री
14. राजकोषीय मंत्री
15. स्कॉटलैण्ड मामलों के मंत्री
16. हाउस ऑफ लॉर्ड्स के नेता
17. व्यापार एवं उद्योग मंत्री
18. शिक्षा एवं दक्षता मंत्री

19. संस्कृति, मीडिया तथा खेल मंत्री
20. संसदीय कार्य मंत्री तथा मुख्य सचेतक
21. सार्वजनिक निर्माण मंत्री
22. परिवहन मंत्री
23. लार्ड्स मुख्य सचेतक
24. गृह मंत्री।

मंत्रिमण्डल में सदस्यों की संख्या प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर करती है। सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् में प्राय: 50-80 तक सदस्य होते हैं। मंत्रिपरिषद् की सम्पूर्ण बैठक कभी-कभी ही होती है। प्राय: सप्ताह में दो बार मंत्रिमण्डल की बैठकें होती हैं। कार्यपालिका से सम्बन्धित समस्त कार्य मंत्रिमण्डल सम्पादित करता है। सरकारी नीतियों का निर्माण तथा क्रियान्वयन, प्रशासन पर नियंत्रण, समन्वय की स्थापना, विधायी कार्यों का निष्पादन, बजट का निर्माण तथा क्रियान्वयन, उच्च पदों पर नियुक्ति तथा सम्राट के समस्त कार्य मंत्रिमण्डल ही पूरे करता है। इसीलिए **लास्की** का कहना है—''संसद नहीं, वरन् मंत्रिमण्डल ही ब्रिटेन की सर्वोच्च सत्ता है।'' इसी प्रकार **रेम्जेम्योर** ने मंत्रिमण्डल को **राज्य रूपी जहाज की स्टीयरिंग** नाम दिया है। वस्तुत: संसदीय लोकतंत्रात्मक शासन प्रणालियों में मंत्रिमण्डल की भूमिका वास्तविक कार्यपालिका के रूप में सर्वोच्च शासक की बनी रहती है। मंत्रिमण्डल को प्रशासनिक सहायता देने हेतु 'मंत्रिमण्डल सचिवालय' कार्यरत है। मंत्रिमण्डल के कार्यों को सम्पादित करने हेतु कई प्रकार की समितियाँ भी बनाई जाती हैं।

प्रधानमंत्री
(The Prime Minister)

जिस प्रकार अध्यक्षीय प्रणाली में राष्ट्रपति की स्थिति है उसी प्रकार संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री सर्वोच्च शासक होता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री को अमेरिकी राष्ट्रपति की भाँति शक्तिशाली पदस्थिति प्राप्त है। यद्यपि ब्रिटेन में मंत्रिमण्डल तथा प्रधानमंत्री जैसी संस्थाएँ बहुत प्राचीन हैं किन्तु आधुनिक संसदीय प्रणाली के अनुरूप **सन् 1721 में नियुक्त सर रॉबर्ट वाल्पोल को प्रथम प्रधानमंत्री** माना जाता है। जब सम्राट जॉर्ज प्रथम ने केबिनेट की बैठकों में आना बन्द किया तब से केबिनेट की अध्यक्षता के लिए प्रधानमंत्री पद बना। यद्यपि भारत की तरह ब्रिटेन में भी सामान्यत: उप प्रधानमंत्री पद सृजित नहीं किया जाता है किन्तु कभी-कभी उप प्रधानमंत्री भी बनाया जाता है।

योग्यताएँ

ब्रिटेन में प्रधानमंत्री पद के लिए कोई निश्चित योग्यताएँ निर्धारित नहीं हैं तथापि अग्रांकित परम्पराएँ निभाई जाती हैं—

1. उसे लोक सदन में बहुमत वाले राजनीतिक दल का नेता होना चाहिए। लॉर्ड सभा का सदस्य भी प्रधानमंत्री बनाया जा सकता है लेकिन सुस्थापित परम्परा यही है कि प्रधानमंत्री को लोक सदन का सदस्य होना चाहिए। यदि प्रधानमंत्री संसद का सदस्य नहीं है तो 6 माह में सदस्यता मिलनी आवश्यक है। यही शर्त मंत्रिपरिषद् के सदस्यों पर लागू होती है।
2. उसकी छवि जनसाधारण के बीच लोकप्रिय एवं विश्वसनीय होनी चाहिए।
3. यदि कोई सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमण्डल अविश्वास प्रस्ताव इत्यादि के कारण त्यागपत्र देता है तो विपक्षी दल के नेता को प्रधानमंत्री पद का अवसर मिलता है; यदि सदन में उसका बहुमत हो।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है तथा प्रधानमंत्री की अनुशंसा पर मंत्रिपरिषद् के अन्य सदस्यों की नियुक्ति भी सम्राट ही करता है।

पदमुक्ति

प्रधानमंत्री अपनी इच्छा से त्यागपत्र दे सकता है। नए आम चुनावों के पश्चात् नए मंत्रिमण्डल का गठन किया जाता है। लोक सदन में प्रधानमंत्री तथा उनके मंत्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित होने अथवा विश्वास मत में हार हो जाने पर प्रधानमंत्री को पद त्याग करना पड़ता है।

कार्य एवं भूमिका (Functions and Role)

ब्रिटिश प्रधानमंत्री के कार्य अत्यन्त गम्भीर तथा व्यापक हैं क्योंकि संसदीय प्रणाली होने के कारण वह वास्तविक कार्यपालिका का मुखिया होता है। संसद, देश तथा मंत्रिमण्डल के भीतर एवं बाहर दोनों ही स्थितियों में वह आकर्षण का मुख्य बिन्दु होता है। **सर आइवर जेनिंग्स** ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री को 'सम्पूर्ण विधान की आधारशिला' माना है। उसे 'समकक्षों में अग्रणी' माना जाता है अथवा 'समान पद वाले सहयोगियों का प्रमुख' भी कहा जाता है। सामान्यत: प्रधानमंत्री निम्नांकित कार्य सम्पादित करता है—

1. अपने राजनीतिक दल के वरिष्ठ सदस्यों से परामर्श करके सन्तुलित मंत्रिपरिषद् का निर्माण करना।
2. सम्राट को मंत्रिपरिषद् के सदस्यों एवं अन्य महत्त्वपूर्ण पदों के लिए नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों की सिफारिश करना।
3. सम्राट को ऐसी सहायता प्रदान करना ताकि वह संवैधानिक कार्यपालिका की भूमिका निभा सके।
4. मंत्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करना तथा शासन संचालन के लिए निर्णय लेना।
5. संसद के सत्र बुलाने, उन्हें स्थगित करने तथा लोक सदन को भंग करने की सिफारिश सम्राट से करना।
6. शासकीय नीतियों, कानूनों तथा नियमों का निर्माण करना।

7. संसद में सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों तथा निर्णयों से सदस्यों को अवगत कराना।
8. सरकार के कार्यकरण के विरुद्ध उठने वाली आपत्तियों एवं प्रश्नों के उत्तर देना।
9. प्रशासनिक कार्यप्रणाली को नियंत्रित करना।
10. विभिन्न विभागों, संगठनों तथा संस्थाओं के मध्य समन्वय करना।
11. ब्रिटेन एवं सम्बन्धित क्षेत्र का बजट निर्मित करना तथा क्रियान्वित कराना तथा वित्तीय नियंत्रण स्थापित करना।
12. विदेश नीति का निर्माण एवं उसकी अनुपालना करवाना।
13. राष्ट्र के समग्र विकास तथा आपदा नियंत्रण के लिए सार्थक प्रयास करना।
14. जनसाधारण, लोक प्रशासन, मित्र राष्ट्रों तथा राजनीतिक सहयोगियों की समस्याओं को जानना एवं समाधान करना।
15. उच्च स्तरीय विदेशी प्रतिनिधि मण्डलों का स्वागत, वार्ता, सन्धि करना तथा ब्रिटिश सरकार का पक्ष स्पष्ट करना।
16. विकासशील राष्ट्रों की सहायता तथा अन्तरराष्ट्रीय अभिकरणों के साथ समन्वय करना।
17. मंत्रिमण्डल एवं सम्राट के मध्य कड़ी का कार्य करना।
18. अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व करना।
19. लोक सेवाओं में कुशलता, प्रशासनिक सुधार तथा उत्तरदायित्व भावना विकसित करने हेतु नीतियाँ एवं नियम बनाना।
20. प्रशासनिक सुधार एवं पारदर्शिता के क्रम में तत्परता से प्रयास करना तथा संसद को सूचित करना।

वस्तुतः ब्रिटिश प्रधानमंत्री के कार्यों की सूची उतनी ही लम्बी है जितने कि कार्यपालिका के कार्य हैं। ब्रिटेन में इस पद को सर रॉबर्ट पील, ग्लैडस्टन, लॉयड जॉर्ज, विन्सटन चर्चिल, मार्गरेट थैचर तथा जॉन मेजर जैसे प्रधानमंत्रियों ने नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। इस सम्बन्ध में **सिडनी लॉ** कहते हैं—"संसद में निश्चित बहुमत के रहते ब्रिटेन का प्रधानमंत्री वह सब कार्य कर सकता है जिसको जर्मनी का सम्राट और अमेरिका का राष्ट्रपति भी नहीं कर सकता क्योंकि वह कानून में परिवर्तन कर सकता है, करारोपण कर सकता है, उसे समाप्त कर सकता है और वह राज्य की सभी शक्तियों का निर्देशन कर सकता है।" इस प्रकार '10 डाउनिंग स्ट्रीट' भी 'व्हाईट हाउस' की तरह विश्व की उत्सुकता का एक केन्द्र बना रहता है।

ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of the British Administrative System)

ब्रिटिश लोक प्रशासन तथा लोक सेवाएँ उन देशों की श्रेणी में आती हैं जहाँ कुशलता एवं संवेदनशीलता का ग्राफ अत्यन्त ऊँचा है। ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ अग्रांकित हैं—

(1) उत्तरदायी एवं कल्याणकारी प्रशासन : ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था को पदसोपानात्मक तथा वैधानिक प्रणालियों से प्रत्येक स्तर पर उत्तरदायी बनाया गया है। संसदीय शासन प्रणाली होने के कारण प्रत्येक प्रशासनिक विभाग को किसी-न-किसी मंत्री के अधीन रखा गया है। मंत्री को ही प्रशासनिक विफलताओं तथा अकर्मण्यताओं के क्रम में संसद में उत्तर देना पड़ता है। ब्रिटिश जनता की स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, परिवहन, भोजन तथा सुरक्षा सम्बन्धी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में राज्य द्वारा संचालित प्रशासनिक संगठनों द्वारा सहायता की जाती है। यद्यपि बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में सामाजिक सेवा क्षेत्र से लोक प्रशासन की भूमिका सीमित की गई है तथापि जनकल्याण की मूलभूत जिम्मेदारी अभी भी राज्य के कंधों पर ही है। प्रशासनिक निर्णय मूलतः मंत्रिमण्डलीय निर्णयों से प्रभावित होते हैं। इनका न्यायपालिका द्वारा पुनरीक्षण नहीं किया जा सकता है फिर भी कानूनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं होता है।

(2) राजनीतिक नेतृत्व तथा प्रशासनिक कुशलता : ब्रिटिश लोक प्रशासन का संरचनात्मक ढाँचा भारतीय प्रशासन से मिलता-जुलता है। प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त मंत्री, प्रशासनिक संगठनों के प्रमुख नीति निर्माता, नियंत्रणकर्ता, समन्वयकर्ता तथा संरक्षक होते हैं। संसद में उठने वाले प्रश्नों, वाद-विवाद, लेखा एवं अंकेक्षण प्रणाली तथा संसदीय समितियों के भय के कारण प्रशासनिक कुशलता व्याप्त रहती है। अत्याधुनिक मशीनों, कार्य-प्रक्रियाओं तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त बनाए रखा जाता है। वस्तुतः ब्रिटिश नागरिक स्वभावतः उत्तरदायी, संवेदनशील, राष्ट्रप्रेमी तथा सहयोगी होते हैं अतः प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रसार में उनकी स्वाभाविक रुचि होती है जो प्रशासनिक कुशलता का मूलाधार है। इस सन्दर्भ में ब्रिटेन की पुलिस (Scotland Yard) विश्वभर में अपनी कुशलता के लिए प्रसिद्ध है।

(3) निरन्तर परिवर्तनशील : पाँचवीं सदी से प्रारम्भ हुई ब्रिटिश लोकतंत्र की यात्रा ने स्वाभाविक रूप से लोक सेवाओं तथा प्रशासनिक व्यवस्था को भी प्रभावित किया है। ब्रिटिश नागरिकों ने अपनी शासन-प्रशासन व्यवस्था को आवश्यकतानुसार ढालने का सफल प्रयास किया है तथा वर्तमान में भी प्रयास जारी हैं। इसीलिए ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था को 'जीवन्त संगठन' का नाम भी दिया जाता है। सन् 1853 में नोर्थकोट-ट्रेवेलियन समिति की अनुशंसा पर लोक सेवाओं की योग्यता आधारित भर्ती प्रणाली को सुदृढ़ तथा संरक्षण प्रणाली को समाप्त किया गया। कालान्तर में प्लेफेयर कमीशन (1875), रिडले आयोग (1890), हाल्डेन समिति (1918), टामलिन आयोग (1931), एशैटन कमेटी (1944) तथा फुल्टन कमेटी (1966-68) इत्यादि की अनुशंसाओं पर अनेक सुधार प्रशासनिक व्यवस्थाओं में किए गए। सन् 1988 में **नेक्स्ट् स्टेप्स** कार्यक्रम के द्वारा लोक सेवाओं का आकार घटाया गया है; वहीं अधिक कुशलता के लिए बहुत से क्षेत्रों का **निजीकरण** भी कर दिया गया है जिनमें स्वास्थ्य जैसा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र भी सम्मिलित है। नागरिकों को सन् 2000 में 'सूचना का अधिकार' भी दे दिया गया है। ब्रिटेन में प्रशासन में किसी प्रकार के सुधार या नए कानून के निर्माण से पूर्व योग्य एवं

इच्छुक व्यक्ति की सेवाएँ भी ली जाती हैं। इस हेतु ब्रिटिश सरकार एक दस्तावेज... व्यक्ति को सौंपती है। इसे **Green Paper** कहा जाता है।

(4) विधि का शासन : यद्यपि ब्रिटिश शासन में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति व्याप्त है जिसके अन्तर्गत शासन की समस्त शक्तियाँ मंत्रिमण्डल नामक संस्था में समाहित होती जा रही हैं किन्तु 'विधि के शासन' के मूलभूत सिद्धान्त ब्रिटेन में प्रवर्तित हैं। ... अन्तर्गत कानून की सर्वोच्चता, सभी के लिए समानता तथा न्यायिक निर्णयों का ... सभी को सहजता से स्वीकार्य है। संविधान सहित बहुत से कानून संहिताबद्ध नहीं हैं फिर भी भ्रम या असमंजसता की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि प्राकृतिक न्याय एवं मानवाधिकारों में सरकार, प्रशासन एवं आम व्यक्ति की समान रुचि रहती है।

(5) ईमानदारी तथा प्रशासनिक पारदर्शिता : ब्रिटिश लोक प्रशासन प्राय: भ्रष्टाचार मुक्त रहा है। रिश्वतखोरी एवं भाई-भतीजावाद की व्याधियाँ दशकों पूर्व समाप्त हो चुकी हैं। नागरिक शिकायतों के निवारण हेतु सन् 1967 से **संसदीय आयुक्त** अथवा ब्रिटिश ओम्बुड्समैन नामक संस्था कार्यरत है। संसदीय आयुक्त लोक सेवकों के विरुद्ध अनियमितताओं, भ्रष्टाचार एवं लापरवाही की जाँच करता है। रोचक तथ्य यह है कि संसदीय आयुक्त के पास वर्ष भर में मात्र 400–500 शिकायतें ही आती हैं और उनमें भी अभी तक भ्रष्टाचार का बड़ा मामला सामने नहीं आया है। प्रशासनिक कार्यकुशलता तथा जवाबदेयता में वृद्धि करने के लिए अनेक ठोस कदम मार्गरेट थैचर सरकार द्वारा उठाए गए हैं। इसी प्रकार जॉन मेजर द्वारा जून, 1991 में नागरिक **अधिकार पत्र** (Citizen Charter) नामक व्यवस्था भी प्रारम्भ की गई है। नागरिक अधिकार पत्रों के माध्यम से प्रशासनिक पारदर्शिता सुनिश्चित हुई है। ब्रिटेन में नागरिक अधिकार पत्र न केवल अंग्रेजी भाषा में बल्कि पंजाबी, गुजराती, बंगाली, हिन्दी, चीनी तथा वियतनामी इत्यादि भाषाओं में भी उपलब्ध हैं। प्रशासनिक ईमानदारी, कार्यकुशलता तथा पारदर्शिता बनाए रखने के लिए प्रधानमंत्री स्वयं निगरानी रखते हैं तथा संसद में इसकी पृथक् से रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। नवम्बर, 2000 में निर्मित तथा जनवरी, 2005 से लागू **सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम** भी जनता को प्रशासन पर नियंत्रण की शक्ति प्रदान करता है।

(6) एकात्मक प्रशासन : इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड, वेल्स तथा उत्तरी आयरलैण्ड इत्यादि द्वीपों का क्षेत्रफल कम है तथा जनसंख्या भी सीमित है। अत: ब्रिटेन में एकात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। भारत तथा अमेरिका की तरह ब्रिटेन में केन्द्रीय एवं प्रांतीय दो स्तरों पर सरकारें नहीं होती हैं बल्कि एक ही सरकार के अन्तर्गत समस्त ब्रिटेन का प्रशासन संचालित होता है जो 'एकात्मक (Unitary) प्रशासन' का पर्याय है। यद्यपि नगरों एवं गाँवों में स्थानीय स्वशासन की स्वतंत्र सरकारें होती हैं किन्तु इन सरकारों को प्रधानमंत्री एवं उनके मंत्रिमण्डल द्वारा ही दिशा-निर्देश जारी किए जाते हैं। लन्दन स्थित प्रशासनिक विभागों, मंत्रालयों तथा उनके कार्यकारी संगठनों की शाखाएँ सम्पूर्ण देश (द्वीपों) में फैली हुई हैं जिनका नियंत्रण-निर्देशन सम्बन्धित विभाग का मंत्री ही करता है।

(7) विस्तृत प्रशासनिक ढाँचा (केन्द्रीय) : ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था में प्रत्येक विभाग का कोई न कोई राजनीतिक मंत्री अवश्य होता है। मंत्री को स्टेट लॉर्ड, चांसलर और एडमिरल, विभागीय मंत्री या बोर्ड अध्यक्ष या सचिव इत्यादि कई नामों से जाना जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी के नाम के साथ 'मंत्री' शब्द अनिवार्य रूप से प्रयुक्त हो। राजनीतिक मंत्री का कार्य नीति निर्माण तथा नियंत्रण से सम्बन्धित है। शेष सभी प्रशासकीय कार्य लोक सेवक सम्पादित करते हैं। बड़े विभागों के कैबिनेट मंत्री के अधीन दो या तीन कनिष्ठ मंत्री भी होते हैं जिन्हें 'Parliamentary under Secretary of State' कहा जाता है।

राजनीतिक नेतृत्व के अधीन प्रत्येक विभाग का प्रशासनिक प्रमुख 'Permanent Secretary' कहलाता है जो लोक सेवाओं का वरिष्ठ अधिकारी होता है। परमानेन्ट सेक्रेटरी के अधीन कई उप सचिव, अवर सचिव, सहायक सचिव, प्रिंसीपल तथा सहायक प्रिंसीपल अधिकारी एवं अन्य कर्मचारी कार्य करते हैं। राजनीतिज्ञों, न्यायाधीशों एवं औद्योगिक कार्मिकों के अतिरिक्त अन्य सभी कार्मिक लोक सेवक कहलाते हैं जो राज्य के सेवक माने जाते हैं। प्रशासनिक विभागों के अधिकांश मुख्यालय लन्दन में हैं जो वेस्टमिन्स्टर (संसद) भवन के पास स्थित व्हाईट हाल White Hall नामक गली में स्थित हैं। ब्रिटिश प्रशासनिक विभागों का भौगोलिक अधिकार क्षेत्र भी एक समान नहीं है, जैसे—

1. अधिकांश विभाग ऐसे हैं जो सम्पूर्ण 'यूनाइटेड किंगडम' में अधिकार रखते हैं जैसे—सीमा एवं उत्पाद शुल्क, वाणिज्य, खनन तथा रक्षा विभाग इत्यादि।
2. कुछ विभाग ऐसे हैं जिनका कार्यक्षेत्र केवल इंग्लैण्ड तक सीमित है, जैसे—स्वास्थ्य विभाग।
3. कुछ विभाग ऐसे हैं जिनका कार्यक्षेत्र इंग्लैण्ड, वेल्स तथा स्कॉटलैण्ड तक तो है किन्तु उत्तरी आयरलैण्ड के लिए नहीं है, जैसे—रोजगार विभाग।

प्रशासनिक विभागों की संख्या तथा कार्यक्षेत्र मंत्रिमण्डल द्वारा निर्धारित किया जाता है। The Ministers of Crown (Transfer of Functions) Act, 1946 के द्वारा यह शक्ति मंत्रिमण्डल को मिली है। सन् 1951 में तत्कालीन प्रधानमंत्री सर विन्सटन चर्चिल द्वारा ... विभागों की स्थापना की गई थी जिनकी संख्या सन् 1994 में 61 थी। इन विभागों में ... कैबिनेट विभाग हैं। प्रशासनिक विभागों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—

1. प्रथम श्रेणी में वे विभाग हैं जो बड़े महत्त्वपूर्ण तथा प्राचीन विभाग हैं और जिनका राजनीतिक प्रभारी कैबिनेट मंत्री होता है। ऐसे 9 विभाग कैबिनेट विभागों के नाम से जाने जाते हैं। इनमें राजकोष, गृह, उपनिवेशन, विदेश, वायु सेना, युद्ध, नौसेना, व्यापार, शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, श्रम, डाक, सार्वजनिक निर्माण, उद्योग, समन्वय एवं स्कॉटलैण्ड विभाग सम्मिलित हैं।
2. दूसरी श्रेणी के विभाग वे हैं जो कनिष्ठ स्तर के मंत्री के अधीन होते हैं। इन्हें गैर

केबिनेट विभाग भी कहा जाता है जैसे—कला एवं पुस्तकालय विभाग, ...
विभाग तथा सागरपार विकास प्रशासन इत्यादि।

3. गैर केबिनेट विभागों के पश्चात् तीसरी श्रेणी में वे विभाग आते हैं जिनका ... राजनीतिक मंत्री प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं करता बल्कि कोई अन्य मंत्री केवल ... कदा निर्देश देता है। इन विभागों को **नौकरशाही नेतृत्व विभाग** कहा जाता है। इनमें केन्द्रीय सांख्यिकी विभाग, चेरिटी कमीशन तथा वन आयोग इत्यादि सम्मिलित हैं।
4. चौथी श्रेणी में **गैर विभागीय निकाय** सम्मिलित हैं। इन्हें **राष्ट्रीयकृत उद्योग** (लोक उपक्रम) भी माना जाता है। ब्रिटिश रेलवे, ब्रिटिश स्टील, ब्रिटिश ... तथा नेशनल कोयला बोर्ड इत्यादि इसी श्रेणी में हैं। इसी श्रेणी में अर्द्ध गैर सरकारी संगठन भी सम्मिलित हैं जो स्वायत्तता प्राप्त विशिष्ट संगठन हैं।

कार्य-प्रकृति के आधार पर ब्रिटिश प्रशासनिक विभागों को पाँच ग्रुपों में विभाजित किया गया है। एक ग्रुप में कई विभाग हैं जो लगभग समान कार्यक्षेत्र रखते हैं—

1. **सामान्य विभाग :** राजकोष, गृह तथा स्कॉटलैण्ड विभाग।
2. **आर्थिक विभाग :** कृषि, मत्स्य, खाद्य, वाणिज्य, सीमा एवं उत्पाद शुल्क, ऊर्जा एवं ईंधन, श्रम, राष्ट्रीय सेवा, आपूर्ति, डाक, सार्वजनिक निर्माण, आवास, स्थानीय स्वशासन, परिवहन तथा नागर विमानन इत्यादि।
3. **सामाजिक कल्याण विभाग :** शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीकी सहयोग, पेंशन, ... वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान इत्यादि।
4. **शाही एवं वैदेशिक विभाग :** विदेश, उपनिवेश तथा राष्ट्रमण्डल सम्बन्ध विभाग।
5. **रक्षा विभाग :** नौसेना (Admirality), युद्ध, वायुसेना, विमानन तथा प्रतिरक्षा विभाग इत्यादि।

भारत तथा अमेरिका की भाँति ब्रिटेन में भी अनेक प्रकार की प्रशासनिक संस्थाएँ बोर्ड, आयोग, प्राधिकरण तथा न्यायाधिकरणों के रूप में कार्यरत हैं। ऐसी संस्थाएँ **Quango** (Quasi autonomous non governmental organisation) के नाम से ... पुकारी जाती हैं। 'Quango' शब्द ब्रिटेन में सन् 1975-80 के दौरान लोकप्रिय होता ... हुआ था। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार अनेक प्रशासकीय संगठन परिवर्तित किए जा रहे हैं, जैसे—सन् 1988 से 23 सदस्यीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को परिवर्तित करके 'विश्वविद्यालय वित्त परिषद्' के रूप में संचालित किया जा रहा है। प्रशासकीय प्रक्रियाओं में सुधार हेतु प्रत्येक विभाग में **ओ. एण्ड एम.** (O. & M.) इकाई अवश्य होती है।

(8) कुशल कार्मिक प्रशासन : ब्रिटिश लोक सेवाएँ कुशलता तथा निष्पक्षता की पर्याय हैं। लोक सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा वेतन इत्यादि सेवा शर्तों के सम्बन्ध में समयानुसार सुधार भी हुए हैं। **हरमन फाइनर** ने ब्रिटिश लोक सेवाओं की अग्रांकित विशेषताएँ वर्णित की हैं—

1. ब्रिटिश लोक सेवाएँ अमेरिकी तंत्र की भाँति 'लूट प्रणाली' से ग्रस्त नहीं हैं।
2. भर्ती का आधार योग्यता है अतः प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से चयन होता है।
3. प्रतियोगी परीक्षाएँ मुख्यतः स्कूली तथा विश्वविद्यालय शिक्षा पाठ्यक्रमों से सम्बद्ध होती हैं।
4. सामान्यतः कम आयु के व्यक्ति ही लोक सेवाओं में प्रवेश पाते हैं। अधिकांश पदों पर आयु प्रवेश सीमा 21–28 वर्ष है।
5. एक स्वतंत्र अभिकरण द्वारा भर्ती प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है।
6. स्कूली शिक्षा प्राप्त उम्मीदवार लिपिक पद तथा उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति प्रशासनिक सेवाओं में चयनित होते हैं।
7. लोक सेवकों के मूलभूत तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया जाता है।
8. अधिकांश लोक सेवक तटस्थ, ईमानदार तथा कार्यकुशल होते हैं।
9. लोक सेवाओं में अनामता का सिद्धान्त प्रचलित है।
10. लोक सेवकों को पर्याप्त राजनीतिक अधिकार दिए गए हैं।
11. कार्यकुशलता तथा सन्तुष्टि बनाए रखने के लिए पदोन्नति एवं अन्य अभिप्रेरणाएँ दी जाती हैं।
12. कार्मिकों की शिकायतों के समाधान हेतु बहुस्तरीय **व्हिटले परिषदें** (W.C.) कार्यरत हैं।

इसके अतिरिक्त **अन्य विशेषताएँ** भी उल्लेखनीय हैं—

1. ब्रिटिश लोक सेवाओं में कार्य करने वाले व्यक्तियों को सामाजिक सम्मान एवं प्रतिष्ठा मिलती है।
2. उच्च स्तरीय पदों पर प्रायः उच्च घरानों के व्यक्ति ही प्रवेश पाते हैं जो ऑक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज में अध्ययन करते हैं।
3. लोक सेवाओं में आकर्षक सुविधाएँ हैं अतः एक बार प्रवेश पाने के पश्चात् अधिकांश व्यक्ति सेवानिवृत्ति तक बने रहते हैं।
4. भारत की तरह ब्रिटेन में भी **रैंक वर्गीकरण** की व्यवस्था प्रचलित है जिसमें लोक सेवकों का वर्गीकरण उनकी व्यक्तिगत सेवा या स्थिति के आधार पर होता है। सामान्यतः प्रशासकीय, सामान्य निष्पादक, लिपिक, निम्न स्तरीय, औद्योगिक, गैर औद्योगिक, वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक वर्गों में वर्गीकरण किया गया है।
5. हड़ताल करना कानूनी अपराध नहीं माना गया है बल्कि इसे अनुशासनहीनता की श्रेणी में रखा गया है।

ब्रिटिश लोक सेवाओं में लगभग 8 लाख कार्मिक कार्यरत हैं। सन् 1979 से 1999 तक 20 प्रतिशत कार्मिकों के पद समाप्त कर दिए गए हैं। स्वास्थ्य, आवागमन, ऊर्जा तथा पर्यावरण जैसे विभागों की योजनाएँ एवं कार्यक्रम सीमित किए गए हैं। निजीकरण के इस दौर में लोक सेवा आयोग समाप्त कर दिया गया है तथा लोक सेवाओं को **सीमित एवं कुशलता** के दायरे में लाया जा रहा है।

(9) तटस्थता एवं प्रतिबद्धता : लोक सेवाओं में तटस्थता का सिद्धान्त ब्रिटेन से प्रतिपादित हुआ है। तटस्थता या निष्पक्षता से तात्पर्य लोक सेवकों का राजनैतिक रूप से तटस्थ रहना है। ब्रिटेन में चाहे कोई भी दल सत्ता में हो, मंत्री किसी भी राजनैतिक विचारधारा का हो तथा नीतियाँ किसी भी रूप में परिवर्तित की जाएँ, लोक सेवकों का कार्य निष्पक्ष भाव से उन्हें स्वीकारना है। प्रतिबद्धता (Commitment) का आशय आस्था एवं पूर्ण सहयोग से है। यद्यपि तटस्थता एवं प्रतिबद्धता दो विपरीत विचारधाराएँ हैं फिर भी ब्रिटेन में लोक सेवक तटस्थ होते हुए राष्ट्र, कानून, लोकतंत्र तथा जनकल्याण के उच्च आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता प्रकट करते हैं।

(10) समिति व्यवस्था : किसी बड़े उद्देश्य, कार्य या संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कुछ छोटे समूह या विशेषज्ञ इकाइयाँ उप कार्यों के अनुसार गठित कर दी जाती हैं। यही समिति (कमेटी) व्यवस्था है। विश्व के सभी देशों में समिति व्यवस्था प्रचलित है किन्तु ब्रिटेन तथा भारत में इसका प्रसार कुछ अधिक प्रतीत होता है। ब्रिटेन में संसद, मंत्रिमण्डल, मंत्रालयों, विभागों, स्थानीय निकायों तथा शिक्षा तंत्र में असंख्य समितियाँ कार्यरत होती हैं। समिति व्यवस्था के जहाँ अनेक लाभ हैं वहीं हानियाँ भी पर्याप्त हैं। ब्रिटेन की समिति व्यवस्था से दुःखी होकर **सर विन्सटन चर्चिल** ने कहा था—"मेरी समझ से ये समितियाँ समाप्त हो जानी चाहिए क्योंकि इन्होंने हमें इस तरह नियंत्रित कर लिया है जैसे कि आस्ट्रेलियावासी खरगोशों से नियंत्रित हैं।" (ज्ञात रहे एक समय खरगोशों की अधिक संख्या आस्ट्रेलिया की भीषण समस्या बन गई थी।)

(11) सामान्यज्ञों एवं विशेषज्ञों का समान महत्त्व : भारत में सामान्यज्ञों अर्थात् प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों का वर्चस्व है जबकि अमेरिका में विशेषज्ञों अर्थात् तकनीकी सेवाओं के अधिकारियों का वर्चस्व है। ब्रिटेन की लोक सेवाओं में अधिकांश समय सामान्यज्ञों का ही प्रभुत्व रहा है किन्तु विगत एक-दो दशक से स्थिति में परिवर्तन आया है तथा फ्रांस की तरह ब्रिटेन में भी अब सामान्यज्ञों एवं विशेषज्ञों का समान महत्त्व हो गया है। वस्तुतः निजीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण के इस युग में तकनीकी ज्ञान की उत्पादकता सामान्यज्ञों की तुलना में अधिक आँकी जा रही है जबकि सामान्यज्ञों का वर्चस्व परम्परागत नौकरशाही की विरासत को ढोना है।

(12) प्रभावी स्थानीय स्वशासन : यद्यपि ब्रिटेन में एकात्मक शासन पद्धति है तथापि नगरीय एवं ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की स्वतंत्र इकाइयाँ भी संगठित की गई हैं। सन् 1888 के कानून के माध्यम से प्राचीन लन्दन शहर में महानगरीय स्वशासन पद्धति है जबकि लन्दन के आस-पास बसी कॉलोनियों के लिए महानगरीय काउण्टी हैं। ब्रिटेन में स्थानीय स्वशासन की सबसे प्राचीन संस्था **काउण्टी** है। इन्हें शायर (Shire) भी कहा जाता है जैसे—हैम्पशायर तथा यॉर्कशायर। वस्तुतः काउण्टी ब्रिटिश प्रशासन तथा निर्वाचन की मूलभूत इकाई भी है। **काउण्टी भी दो प्रकार की हैं। प्रशासनिक काउण्टी तथा काउण्टी बरो इसके दो रूप हैं।** ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की मूल इकाई **पेरिश** (Parish) कहलाती है। पेरिश वे संस्था हैं जहाँ किसी गाँव में स्थानीय चर्च एवं

शासन संचालन की परिषद्/समिति हो। बहुत सारे पेरिश मिलकर जिले का निर्माण करते हैं। स्थानीय स्वशासन की अधिकांश इकाइयों में जनप्रतिनिधियों से युक्त संचालन समिति होती है जो प्रायः तीन वर्ष के लिए चुनी जाती है। जिस काउण्टी में निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं होते हैं वहाँ प्रिंसीपल अधिकारी (स्थानीय लेफ्टीनेण्ट), शैरिफ तथा जस्टिस ऑफ पीस काउण्टी प्रशासन को संचालित करते हैं। पेयजल, विद्युत स्वच्छता, टीकाकरण, शिक्षा तथा समाज कल्याण के कार्य स्थानीय स्वशासन के अधीन हैं।

एच.एम. स्टाउट ने अपनी पुस्तक *British Government* में ब्रिटिश प्रशासनिक तंत्र की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—"ग्रेट ब्रिटेन के नागरिकों की विश्व की सर्वश्रेष्ठ प्रशासनिक तंत्र द्वारा सेवा की जा रही है। यह राष्ट्रीय नीति के संचालन का एक प्रभावशाली माध्यम है। सत्ता एवं अधिकारों की दिशाएँ प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट हैं। लोक सेवक आज्ञाकारी, सक्षम तथा ईमानदार हैं। जब सार्वजनिक नीति घोषित कर दी जाती है तब उसकी क्रियान्विति को प्रशासनिक अधिकारियों के विरोध के बावजूद भी शायद ही कभी परिवर्तित किया जाता है। शांति एवं युद्ध में, राष्ट्रीय प्रशासन ने भारी उत्तरदायित्वों को निभाने तथा कार्यकुशलता बनाए रखने में सदैव अपनी योग्यता का प्रदर्शन किया है।"

नियंत्रण व्यवस्था (Control System)

ब्रिटिश लोक प्रशासन के संगठनों, कार्यों तथा प्रक्रियाओं को निर्देशित, नियंत्रित करने एवं लोक सेवकों में उत्तरदायित्व की भावना बनाए रखने के लिए नियंत्रण की कई विधियाँ प्रचलित हैं—

1. संसदीय नियंत्रण।
2. कार्यपालिका-नियंत्रण।
3. न्यायिक नियंत्रण।
4. अंकेक्षण द्वारा नियंत्रण।
5. जनमत एवं अन्य साधन।
6. ओम्बुड्समैन।

(1) संसदीय नियंत्रण : संसदीय शासन व्यवस्थाओं के संचालन में अग्रणी ब्रिटेन, संसद के द्वारा प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने में भी अग्रणी है। संसदीय या **विधायी नियंत्रण** की अनेक विधियाँ तथा प्रक्रियाएँ हैं। संसद के दोनों सदनों में प्रशासनिक कार्यकलापों के विरुद्ध अनेक प्रश्न विरोधी पक्ष द्वारा पूछे जाते हैं। प्रश्नकाल को संसदीय प्रजातंत्र में सबसे सशक्त विधि माना जाता है क्योंकि इसके द्वारा सम्पूर्ण प्रशासन को चौकन्ना रखा जा सकता है। **मुनरो** के अनुसार—"प्रश्नकाल, नौकरशाही की प्रवृत्तियों पर प्रभावशाली प्रतिबन्ध लगाता है।" यह विशेषज्ञों (लोक सेवकों) को साधारण ज्ञान रखने वाले लोगों (राजनेताओं) की संस्था के अधीन रखता है। प्रश्नकाल के अतिरिक्त वाद-विवाद, बजट पर चर्चा, स्थगन प्रस्ताव तथा अविश्वास प्रस्ताव इत्यादि के द्वारा

भी प्रशासन पर नियंत्रण रखा जाता है। चूँकि प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमण्डल लोक सदन के प्रति उत्तरदायी हैं अत: **संसदीय शासन प्रणाली में विधायी नियंत्रण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।** लोक प्रशासन की अनियमितताओं का दण्ड सत्तारूढ़ दल को उठाना पड़ता है।

लोक वित्त पर नियंत्रण रखने के लिए **लोक लेखा समिति,** अनुमान समिति एवं अन्य समितियाँ भी कार्यरत होती हैं। ये संसदीय समितियाँ प्रशासनिक प्रक्रियाओं, आय-व्यय के अनुमानों, लेखा एवं लेखा परीक्षण के तरीकों, मितव्ययता, नियमों एवं कार्यों के औचित्य के सम्बन्ध में गहन जाँच-पड़ताल करती हैं तथा संसद को रिपोर्ट देती हैं।

(2) कार्यपालिका-नियंत्रण : दोहरी कार्यपालिका की संसदीय व्यवस्था होने के कारण ब्रिटिश प्रशासन के शिखर पर सम्राट का पद होता है। संवैधानिक प्रमुख होने के नाते समस्त प्रशासनिक कार्य सम्राट की ओर से किए हुए माने जाते हैं। लेकिन वास्तविक कार्यपालिका के रूप में प्रधानमंत्री एवं उनका मंत्रिमण्डल समस्त प्रशासनिक कार्यों के लिए उत्तरदायी है। प्रशासन से सम्बन्धित समस्त नीतियाँ, कानून, नियम तथा प्रक्रियाएँ मंत्रिमण्डल ही निर्धारित करता है। लोक सेवकों की नियुक्ति एवं पदमुक्ति का अधिकार भी सम्राट की ओर से मंत्रिमण्डल के पास रहता है। प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार, संशोधन तथा पुनर्संरचना का कार्य भी मंत्रिमण्डल सम्पादित करता है। पदसोपान व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक कार्मिक उच्चाधिकारी के प्रति जवाबदेय है। विभिन्न प्रशासनिक नियमों, प्रक्रियाओं, आचार संहिता तथा कार्मिक संघों के द्वारा आन्तरिक नियंत्रण की भी व्यवस्था रहती है। सन् 1921 में पारित 'Tribunal of Enquiry Act' के अन्तर्गत विभिन्न प्रकरणों की जाँच कराने तथा तद्नुसार कार्यवाही करने के लिए राजनीतिक वास्तविक कार्यपालिका अधिकार सम्पन्न बनाई गई है। सन् 1991 से शुरू की गई **नागरिक अधिकार पत्र** योजना एवं प्रशासनिक पारदर्शिता कार्यक्रमों का मूल्यांकन एवं नियंत्रण प्रत्यक्षत: प्रधानमंत्री के अधीन है। **राजकोष** भी वित्तीय नियंत्रण तथा कार्मिक नियंत्रण में महती भूमिका अदा करता है।

(3) न्यायिक नियंत्रण : स्वतंत्र न्यायपालिका ही नागरिक अधिकारों की सजग प्रहरी हो सकती है। इसी प्रकार प्रशासनिक भेदभाव तथा अनियमितताओं से आम व्यक्ति को बचाए रखने एवं न्याय दिलाने के लिए भी न्यायपालिका ही एकमात्र रास्ता है क्योंकि विधायिका एवं कार्यपालिका पूर्ण निष्पक्षता बनाए नहीं रख सकती हैं। यद्यपि ब्रिटेन में सरकारी कानूनों एवं नीतियों का न्यायिक पुनरावलोकन सम्भव नहीं है और न ही न्यायपालिका को शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्तानुसार स्वतंत्रता दी गई है तथापि एक सीमा तक ब्रिटिश न्यायपालिका अपने कार्यक्षेत्र में स्वतंत्र है। फ्रांस की भाँति ब्रिटेन में सामान्य एवं प्रशासनिक कानून पृथक्-पृथक् नहीं हैं। एक ही सामान्य कानून है जिसके अन्तर्गत यदि किसी नागरिक को प्रशासनिक कृत्यों से हानि हुई हो तो उसके द्वारा न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जा सकता है। बहुत से कानून असंहिताबद्ध होते हुए भी सर्वस्वीकार्य हैं। अधिकांश प्रशासनिक विभागों से सम्बन्धित विवादों तथा अन्य

शिकायतों के निवारण के लिए **प्रशासनिक न्यायाधिकरण** भी स्थापित किए गए हैं जैसे—रेलवे न्यायाधिकरण, स्कूल न्यायाधिकरण, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा न्यायाधिकरण, राष्ट्रीय बीमा न्यायाधिकरण, पेन्शन न्यायाधिकरण, किराया न्यायाधिकरण तथा सड़क-यातायात न्यायाधिकरण इत्यादि।

(4) अंकेक्षण द्वारा नियंत्रण : अंकेक्षण या लेखा परीक्षण वह पद्धति है जिसके द्वारा आय-व्यय के लेखों सहित सामग्री के हिसाब-किताब की भी जाँच की जाती है तथा अनियमितताओं को उजागर किया जाता है। ब्रिटेन में **नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक** एक स्वतंत्रता प्राप्त प्रभावी संस्था है जो 'राजकोष एवं लेखा परीक्षण अधिनियम, 1921' के द्वारा पूर्ण अधिकार सम्पन्न है। पूर्व में 'राजकोष एवं लेखा परीक्षण अधिनियम, 1866' के अन्तर्गत यह व्यवस्था थी। वर्तमान में 'राष्ट्रीय अंकेक्षण अधिनियम, 1983' के द्वारा ब्रिटिश नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को लोक सदन का एक अधिकारी (अंग) बना गया है। इस प्रकार वह संसद का महत्त्वपूर्ण भाग होते हुए कार्यपालिका द्वारा संधारित लेखों का परीक्षण करता है। इस सम्बन्ध में लोक लेखा समिति भी सहायक सिद्ध होती है। ब्रिटेन में सरकारी आय-व्यय के सम्बन्ध में बहुत कम अनियमितताएँ सामने आती हैं क्योंकि प्रत्येक लोक सेवक यही चाहता है कि उसके विभाग की आलोचना संसद में न हो।

(5) जनमत एवं अन्य साधन : लोकतंत्र में जनता की समस्याओं, माँगों तथा मनोभावना को समझना और उसके अनुरूप शासन की नीतियाँ एवं कार्यप्रणाली सुनिश्चित करना आवश्यक है अन्यथा 'जनमत' शीघ्र ही विपरीत दिशा में मुड़ जाता है। राजनीतिक दलों को मतदाताओं की नाराजगी एवं आक्रोश की कीमत चुकानी पड़ती है। ब्रिटेन में आम व्यक्ति, सरकार के कार्यों में पर्याप्त सहयोग प्रदान करता है किन्तु जन शिकायतों की सुनवाई तत्परता से न होने की स्थिति में जनता असहयोगी व्यवहार प्रदर्शित करती है। प्रशासनिक अकर्मण्यताओं के विरुद्ध संसदीय आयुक्त से शिकायत की जा सकती है लेकिन इस प्रक्रिया में स्थानीय जनप्रतिनिधि की निर्णायक भूमिका रहती है। स्वतंत्र प्रेस, दबाव समूह, व्यावसायिक संघ तथा विपक्षी राजनीतिक दल भी प्रशासन को नियंत्रित करने में सहायक हैं। नवम्बर, 2000 में निर्मित **सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम** जो कि जनवरी, 2005 से लागू है जनता को प्रशासन से सूचनाएँ माँगने का अधिकार प्रदान करता है।

(6) ओम्बुड्समैन : ब्रिटिश ओम्बुड्समैन को 'पार्लियामेण्टरी कमिश्नर' कहा जाता है। इस सम्बन्ध में विवरण इस प्रकार है—

ब्रिटेन में ओम्बुड्समैन
(Ombudsman in UK)

जनसाधारण की शिकायतों का निवारण करने तथा लोक प्रशासन की कुशलता एवं निष्पक्षता को सुनिश्चित करने के लिए ब्रिटेन में सन् 1967 से संसदीय आयुक्त अर्थात्

पार्लियामेण्टरी कमिश्नर (Parliamentary Commissioner) की नियुक्ति की गई। ब्रिटेन की संसद द्वारा सन् 1967 में पारित अधिनियम के माध्यम से यह संस्था, प्रशासन में व्याप्त अनियमितताओं की जाँच कर अपनी अनुशंसा सरकार को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार ब्रिटेन की संसदीय आयुक्त प्रणाली भारत के लोकपाल/ लोकायुक्त या स्वीडन के ओम्बुड्समैन संस्था की प्रकृति से मिलती-जुलती है।

संसदीय आयुक्त की नियुक्ति मंत्रिमण्डल की सिफारिश पर ताज द्वारा की जाती है। इस पद हेतु सेवानिवृत्त उच्च स्तरीय लोक सेवक अथवा सार्वजनिक जीवन का कोई प्रसिद्ध व्यक्ति पात्र होता है। आयुक्त के अधीन 4-5 निदेशक तथा निदेशकों के अधीन अनुसंधान शाखाएँ होती हैं। संसदीय आयुक्त के कार्यालय के अधिकांश कार्मिक विभिन्न सरकारी विभागों से तीन वर्ष के लिए प्रतिनियुक्ति पर लिए जाते हैं। संसदीय आयुक्त के कार्यालय में लगभग 50-60 कर्मचारी कार्यरत हैं जो प्रतिवर्ष लगभग 500 शिकायतों की जाँच करते हैं। संसदीय आयुक्त प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. यह लोक सेवकों द्वारा की गई अनियमितताओं, भ्रष्टाचार तथा लापरवाही की जाँच करती है।
2. इसके लिए अधिकारी तथा कर्मचारी स्वयं लोक सेवक होते हैं।
3. किसी भी शिकायत को स्वीकार करने से पूर्व किसी सांसद (MP) की अनुशंसा आवश्यक है।
4. इसकी सिफारिशें सरकार के लिए परामर्श-स्वरूप हैं।
5. इसका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है क्योंकि ब्रिटेन में नगरीय संस्थाओं, स्वास्थ्य सेवाओं तथा उत्तरी आयरलैण्डवासियों के प्रशासन से सम्बन्धित समस्याओं के लिए पृथक् से आयुक्त (ओम्बुड्समैन) नियुक्त है।

संसदीय आयुक्त की कार्य परिधि से निम्नांकित बिन्दु बाहर रखे गए हैं—

1. ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य बाहरी संस्थाओं या सरकारों के मध्य समझौते एवं कार्यक्रम;
2. ग्रेट ब्रिटेन से सम्बन्धित मामलों पर देश से बाहर लिए गए निर्णय;
3. ताज के निर्णयाधीन प्रकरणों से सम्बन्धित मामले;
4. राज्य की सुरक्षा तथा पासपोर्ट से सम्बन्धित प्रशासनिक कृत्य;
5. नौसेना, वायु सेना तथा थल सेना से सम्बन्धित प्रकरण;
6. स्वास्थ्य सेवाओं से सम्बन्धित प्रशासनिक निर्णय;
7. व्यावसायिक, वाणिज्यिक तथा संविदात्मक कार्यों से सम्बन्धित कृत्य, जिनमें भूमि अधिग्रहण इत्यादि सम्मिलित हैं;
8. ताज द्वारा दिए गए पुरस्कार तथा सम्मान; और
9. कुछ सेवाओं (Cadet Forces) में भर्ती, वेतन तथा निलम्बन इत्यादि से सम्बन्धित मामलों की संसदीय आयुक्त सुनवाई नहीं कर सकता है।

ब्रिटेन में संसदीय आयुक्त के समक्ष मुख्यत: राजस्व, कर तथा सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित शिकायतें अधिक आती हैं। भारतीयों के लिए यह आश्चर्य तथा अविश्वास का

विषय हो सकता है कि ब्रिटेन में 30 वर्षों से प्रशासन में भ्रष्टाचार का कोई भी उल्लेखनीय मामला उजागर नहीं हुआ है। अधिकांश शिकायतों में प्रशासनिक अकर्मण्यता या लापरवाही ही दिखाई दी है किन्तु भारत की तरह घोटालों की संस्कृति ब्रिटेन में नहीं है। संसदीय आयुक्त के समक्ष प्रारम्भिक दिनों में प्रतिवर्ष 1000-1500 शिकायतें आती थीं जो अब 500 से भी कम हो गई हैं। ज्ञातव्य है कि अधिकांश शिकायतें तो संसदीय आयुक्त के जाँच क्षेत्र से बाहर की होती हैं। जिस किसी भी नागरिक को प्रशासनिक निर्णयों या कृत्यों के विरुद्ध शिकायत होती है वह सर्वप्रथम अपने क्षेत्र के सांसद को लिखित में शिकायत प्रस्तुत करता है। यदि कोई व्यक्ति चाहे तो किसी अन्य सांसद के माध्यम से भी शिकायत प्रस्तुत कर सकता है। ऐसी स्थिति में सम्बन्धित क्षेत्र के सांसद को नैतिकतावश सूचित किया जाता है। बहुत सी शिकायतें सांसद-स्तर पर ही सुलझा दी जाती हैं। जो शिकायतें सांसद द्वारा संसदीय आयुक्त तक अग्रेषित की जाती हैं उनमें कुछ शिकायतें आयुक्त द्वारा निर्धारित कार्यक्षेत्र एवं प्रक्रिया के निर्धारण के अनुसार अस्वीकार हो जाती हैं। जाँच हेतु स्वीकृत शिकायत के अनुसंधान के दौरान सम्बन्धित विभाग से गहन पूछताछ तथा सूचनाएँ एकत्र की जाती हैं। दोषी कर्मचारी या विभाग के विरुद्ध कार्यवाही करने की सिफारिश संसदीय आयुक्त द्वारा सरकार को की जाती है। यद्यपि संसदीय आयुक्त एक परामर्शदात्री निकाय है तथापि सरकार इसकी सिफारिशें प्राय: स्वीकार कर लेती है। इस संस्था की स्थापना के समय इसे '**लंगड़ा कुत्ता** (Lame Dog)', '**दंतविहीन बाघ** (Toothless Tiger)', '**तलवाररहित धर्मयोद्धा** (Swordless Crusader)' तथा '**ओम्बुड्स चूहा** (Ombuds Mouse)' नामक उपनामों से पुकारा गया था तथा इसकी सफलता के प्रति आशंकाएँ व्यक्त की गई थी। किन्तु इस संस्था ने अपने कार्यकरण से शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त कर ली। ब्रिटेनवासी मानते हैं कि संसदीय आयुक्त प्रणाली निष्पक्ष, योग्य तथा प्रभावी सिद्ध हुई है क्योंकि कुप्रशासन के अनेक मामलों का खुलासा संसदीय आयुक्त ने किया है किन्तु भ्रष्टाचार का मामला कभी प्रकाश में नहीं आया है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय
(Cabinet Secretariat)

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल तथा भारतीय मंत्रिमण्डल की कार्यशैली प्राय: एक समान है। अत: मंत्रिमण्डल सचिवालय की संगठनात्मक एवं कार्यात्मक प्रकृति भी एक-सी प्रतीत होती है। संसदीय शासन प्रणाली में मंत्रिमण्डल तथा विधायिका का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होता है अत: मंत्रिमण्डल की कार्यशैली, अध्यक्षीय प्रणाली के मंत्रिमण्डल से बहुत भिन्न होती है। विधायिका के प्रति जवाबदेयता बनाए रखने एवं विश्वासमत प्राप्ति के लिए संसदीय प्रणाली वाले मंत्रिमण्डलों को हमेशा सचिवालयी सहायता की आवश्यकता रहती है ताकि मंत्रिमण्डल के निर्णयों, उनकी क्रियान्विति तथा मूल्यांकन कार्यों में सहायता मिल सके। मंत्रिमण्डल सचिवालय मंत्रिगणों को तथ्य, आँकड़े, सूचना एवं प्रशासनिक परामर्श भी उपलब्ध करवाता है।

ब्रिटेन में मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना सन् 1916 में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान की गई। इससे पूर्व प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों के मध्य बैठकों का अनौपचारिक विवरण व्यक्तिगत स्तर पर मंत्रिगण स्वयं रखते थे। किसी प्रकार की औपचारिक एवं लिखित कार्यवाही प्राय: नहीं होती थी। **प्रो. हेराल्ड लास्की** ने अपनी पुस्तक *Parliamentary Government in Britain* में लिखा है कि कुछ मंत्रियों तथा पत्रकारों के मध्य विश्वासपूर्ण सम्बन्ध नहीं थे। सम्भवत: युद्ध की परिस्थितियों, मंत्रिमण्डलीय के निर्णयों तथा गोपनीयता की आवश्यकता ने एक ऐसे कार्यालय की स्थापना की आवश्यकता पैदा की जो नीतिगत निर्णयों को औपचारिक एवं गुप्त रूप से अभिलेखित कर सके। **लॉयड जॉर्ज** के प्रयासों से मंत्रिमण्डल सचिवालय की सन् 1916 में स्थापना कर दी गई तथा **लॉर्ड हेनके प्रथम मंत्रिमण्डल सचिव** नियुक्त किए गए। वस्तुत: यह सचिवालय अभी भी 'वार केबिनेट' के कार्यों के लिए ही स्थापित किया गया था जिसे युद्धोपरान्त समाप्त करना था। लेकिन सन् 1918 में 'कमेटी ऑन मशीनरी ऑफ गवर्नमेण्ट' (हाल्डेन कमेटी) ने सुझाव दिया कि मंत्रिमण्डल के विचारार्थ मुद्दों पर प्रशासनिक सहायता देने, अभिलेख रखने तथा सम्बन्धित विभागों तक मंत्रिमण्डलीय निर्णय पहुँचाने हेतु यह सचिवालय स्थायी रूप से बना रहना चाहिए। सन् 1922 में 'बोनर कानून' के अन्तर्गत इस सचिवालय को समाप्त करने की सिफारिश की गई किन्तु इसकी कार्यकुशलता तथा उपादेयता के कारण इसे समाप्त नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में फाइनर का कथन सार्थक लगता है कि—"यह एक साधन मात्र है किन्तु इसकी अत्यधिक प्रभावशीलता तो केवल इसकी अनुपस्थिति में ही प्रतीत होती है।"

संगठन (Organization)

मंत्रिमण्डल सचिवालय को ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था में एक पृथक् विभाग का स्तर प्राप्त नहीं है बल्कि इसे विशेष विभागों की श्रेणी में रखा गया है। प्रधानमंत्री इस सचिवालय के कार्यकरण में यदा-कदा निर्देश देते हैं। यद्यपि परम्परानुसार प्रधानमंत्री इस सचिवालय के राजनीतिक प्रभारी (मंत्री) भी हैं। कतिपय प्रधानमंत्रियों ने मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्यों पर नियंत्रण रखने के लिए द्वितीय श्रेणी के मंत्री नियुक्त किए थे लेकिन अधिकांश अवसरों पर इस सचिवालय (विभाग) का पृथक् से मंत्री नियुक्त नहीं किया जाता है। प्रशासनिक स्तर पर मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्यों को नियंत्रित, निर्देशित तथा समन्वित करने के लिए मंत्रिमण्डल सचिव होता है। मंत्रिमण्डल सचिव की भूमिका केवल मंत्रिमण्डल सचिवालय तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह अन्य प्रशासनिक विभागों के साथ भी सामंजस्य करता है। यद्यपि केन्द्रीय सांख्यिकीय कार्यालय, मुख्य वैज्ञानिक कार्यालय (1966), कार्यदक्षता इकाई (1983) तथा लोक सेवा मंत्री कार्यालय (1987) सहित ऐतिहासिक मामलों की इकाई भी इस सचिवालय से सम्बद्ध है तथापि उनका पृथक् अस्तित्व माना जाता रहा है।

मंत्रिमण्डल सचिव की सहायतार्थ एक स्थायी सचिव भी होता है जो सचिवालय के समस्त खण्डों के मध्य सहयोग एवं सामंजस्य की स्थापना करवाता है। स्थायी सचिव

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल सचिवालय का संगठनात्मक ढाँचा

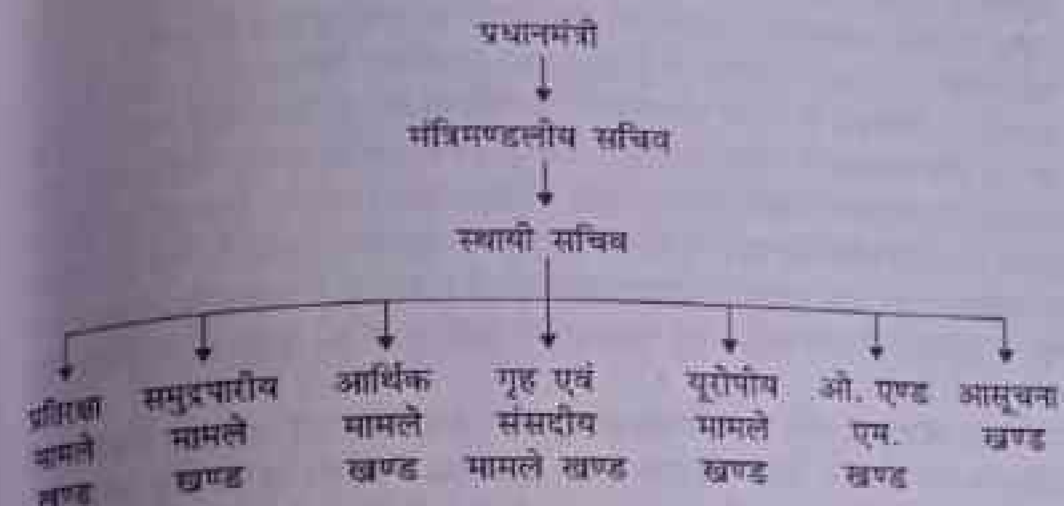

की सहायतार्थ उपसचिव, सहायक सचिव, वरिष्ठ सचिव, प्रिंसीपल, वरिष्ठ निष्पादक अधिकारी तथा अन्य कार्मिक कार्यरत रहते हैं। वर्तमान में ब्रिटिश मंत्रिमण्डल सचिवालय में लगभग एक सौ कार्मिक कार्यरत हैं जबकि सन् 1988 में इनकी संख्या 150 से भी अधिक थी। सचिवालय को कार्यों की प्रकृति के आधार पर सात खण्डों में विभक्त किया गया है—

1. प्रतिरक्षा मामले खण्ड;
2. समुद्रपारीय मामले खण्ड;
3. आर्थिक मामले खण्ड;
4. गृह एवं संसदीय मामले खण्ड;
5. यूरोपीय मामले खण्ड;
6. आसूचना खण्ड; तथा
7. ओ. एण्ड एम. खण्ड।

प्रत्येक खण्ड को एक अवर सचिव के अधीन किया जाता है। आसूचना खण्ड के पदाधिकारी पदसोपान का ध्यान रखे बिना सीधे ही गृह मंत्री तथा प्रधानमंत्री से सम्पर्क कर सकते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय को इस सचिवालय का एक भाग बनाया गया था जो अब स्वतंत्र विभाग है।

कार्य एवं भूमिका (Role and Functions)

ब्रिटेन के मंत्रिमण्डल सचिवालय का मुख्य कार्य मंत्रिमण्डल के लिए **थिंक टैंक** (Think Tank) की भूमिका निभाना है। संक्षिप्त में यह सचिवालय निम्नांकित कार्य सम्पादित करता है—

(1) **मंत्रिमण्डल को प्रशासकीय सहायता :** मंत्रिमण्डल सचिवालय को राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमण्डल का मित्र, दार्शनिक, सहयोगी, पथ-प्रदर्शक तथा सूचनादाता

माना जाता है। राजनीतिक मंत्री, प्रशासनिक कानूनों, नियमों, प्रक्रियाओं तथा सम्बन्ध प्रणालियों से अनभिज्ञ रहते हैं साथ ही उन्हें राजनीतिक गतिविधियों में भी समय देना पड़ता है अतः प्रशासनिक परामर्श एवं सहायता निर्णायक भूमिका निभाती है। यह प्रशासनिक सहायता प्रत्येक मंत्री को उसका सम्बन्धित विभाग प्रदान करता है। प्रशासनिक सहायता से तात्पर्य **मंत्रिमण्डल समितियों** को दी जाने वाली सहायता से है। ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की अनेक समितियाँ जैसे—राजनीतिक मामलात समिति, पूर्ति समिति, राष्ट्रमण्डल समिति, आर्थिक सेवा समिति, उद्योग समिति, समन्वय समिति तथा सुरक्षा मामलात समिति इत्यादि में आवश्यकतानुसार सदस्य रखे जाते हैं जिन्हें मंत्रिमण्डल सचिवालय तथ्य एवं सूचनाएँ उपलब्ध करवाता है। वस्तुतः मंत्रिमण्डल सचिवालय के पास पुरानी एवं नई तथा राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय सभी प्रकार की सूचनाओं का विश्वसनीय स्रोत रहता है।

(2) मंत्रिमण्डलीय बैठकों का आयोजन : प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में होने वाली मंत्रिमण्डलीय बैठकों की कार्यसूची (Agenda) का निर्धारण करके यह सचिवालय प्रत्येक मंत्री तक भिजवाता है। इस परिपत्र में बैठकों के मुद्दों सहित समय, दिनांक, बैठक-स्थल तथा विशिष्ट निर्देश भी होते हैं। इनका निर्धारण मंत्रिमण्डल सचिव प्रधानमंत्री के साथ मिलकर करता है। बैठक के लिए आवश्यक फाइलों, निर्धारित सुविधाओं तथा अन्य सूचनाओं की व्यवस्था करते समय सचिवालय को यह निर्देश रहते हैं कि वह गोपनीयता भंग न होने दे। मंत्रिमण्डल की विभिन्न समितियों की बैठकों की व्यवस्था भी यही कार्यालय करता है।

(3) मंत्रिमण्डल-निर्णयों का क्रियान्वयन : मंत्रिमण्डल की बैठकों में लिए जाने वाले निर्णयों को लिखित में रखना, उनके मिनिट्स तैयार करना तथा प्रधानमंत्री के अनुमोदन के पश्चात् उन्हें सम्बन्धित विभागों तक प्रेषित करना, इस सचिवालय का महत्त्वपूर्ण कार्य है। विभागों द्वारा प्राप्त Feedback या प्रत्युत्तर को अगली बैठकों में प्रस्तुत किया जाता है।

(4) अन्य कार्य

(i) विभिन्न प्रकार की सरकारी नीतियों, कानूनों एवं कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाना।

(ii) प्रशासनिक सुधारों, नवाचारों तथा कुशलता के लिए परामर्श देना।

(iii) अध्यादेश जारी करने की कार्यवाही करना।

(iv) विदेशी प्रतिनिधि मण्डलों का स्वागत व सन्धि-समझौते की रूपरेखा बनाना।

(v) संसद के सत्रों के आयोजन एवं स्थगन की तिथियाँ निर्धारित करना।

(vi) सम्राट को मंत्रिमण्डल एवं सरकार के निर्णयों से अवगत कराना।

(vii) मंत्रिमण्डलीय समितियों की रिपोर्ट का प्रकाशन एवं तत्सम्बन्धी कार्यवाही करना।

(viii) प्रधानमंत्री तथा सम्राट की औपचारिक बैठकों की कार्यवाही में प्रशासनिक सहायता देना।

(ix) ब्रिटेन के राष्ट्रीय सम्मान, क्षमादान के मामले, जाँच आयोगों का गठन तथा अन्य निर्दिष्ट कार्य करना।

(x) ब्रिटिश गुप्तचर शाखाओं M.I.-5 तथा 6 (Military Intelligence), Special Branch तथा Ultra Joint Intelligence Organisation इत्यादि के साथ समन्वय स्थापित करना।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल सचिवालय का मुख्य कार्य मंत्रिमण्डल के लिए प्रशासनिक परामर्शदाता तथा प्रधानमंत्री के सहयोगी की भूमिका निभाना है। यह सचिवालय सभी विभागों से सम्बन्धित निर्णयों से सम्बद्ध है अतः यह 'केन्द्रीय पुल' की स्थिति में गम्भीरता से दायित्वों की पूर्ति करता है। विभिन्न विभागों तथा स्तरों पर समन्वय स्थापित करने में भी मंत्रिमण्डल सचिवालय एक प्रभावी अभिकरण सिद्ध होता है।

गृह विभाग
(Home Department)

ब्रिटेन में गृह विभाग के कार्य एवं दायित्व भारत के गृह मंत्रालय के समान गम्भीर एवं विस्तृत हैं। सन् 1929 में गठित 'Committee on Ministers' Powers' के अध्यक्ष **लॉर्ड डॉनोमोर** ने ब्रिटिश मंत्रालयों में गृह विभाग को सर्वप्रथम मानते हुए इसका राजनीतिक नेतृत्व ऐसे व्यक्ति को सौंपने का सुझाव दिया था जो दूरदर्शी, सहनशील तथा चतुर हो क्योंकि जब कमेटी ने सन् 1932 में रिपोर्ट दी, उन दिनों विश्व परिदृश्य असमंजसता तथा अस्थिरता का शिकार था। स्पष्ट है कि आर्थिक मन्दी तथा राजनीतिक ध्रुवीकरण गृह विभाग, विदेश विभाग तथा वित्त विभाग के सम्मुख चुनौतियाँ उत्पन्न कर देते हैं। ब्रिटेन में गृह विभाग की स्थापना बहुत समय पहले हो गई थी। यह विभाग राजशाही शासन व्यवस्थाओं में भी वित्त तथा विदेश विभाग के साथ एक महत्त्वपूर्ण अंग था। पाँचवीं सदी में प्रारम्भिक स्वरूप लिए हुए गृह विभाग बारहवीं सदी तक पूर्णतया संगठित स्वरूप धारण कर चुका था।

संगठन (Organisation)

ब्रिटिश गृह विभाग का नीति-निर्माता एवं सर्वोच्च नियंत्रणकर्ता गृह मंत्री होता है। ब्रिटिश कैबिनेट के Five Star Departments में से एक गृह विभाग का मंत्री वरिष्ठ, अनुभवी तथा प्रधानमंत्री का विश्वासपात्र व्यक्ति होता है। गृह मंत्री के अधीन एक या दो अन्य सहायक मंत्री भी आवश्यकतानुसार पदस्थापित किए जाते हैं। राजनीतिक नेतृत्व के रूप में ये मंत्री, गृह विभाग को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। प्रशासनिक स्तर पर गृह विभाग का प्रमुख एक सचिव होता है जिसे स्थायी सचिव (Permanent Secretary) कहा जाता है। स्थायी सचिव को प्रशासनिक सहायता प्रदान करने के लिए अनेक उप सचिव, अवर सचिव, सहायक सचिव, प्रिंसीपल तथा निष्पादक अधिकारी कार्यरत होते हैं। गृह विभाग की इस सचिवालय व्यवस्था के साथ कुछ कार्यकारी संगठन जैसे—पुलिस

मुख्यालय, गुप्तचर ब्यूरो तथा प्रशासनिक न्यायाधिकरण भी सम्बद्ध हैं। गृह विभाग को अनेक खण्डों में विभक्त किया गया है।

ब्रिटिश गृह विभाग का संगठनात्मक ढाँचा

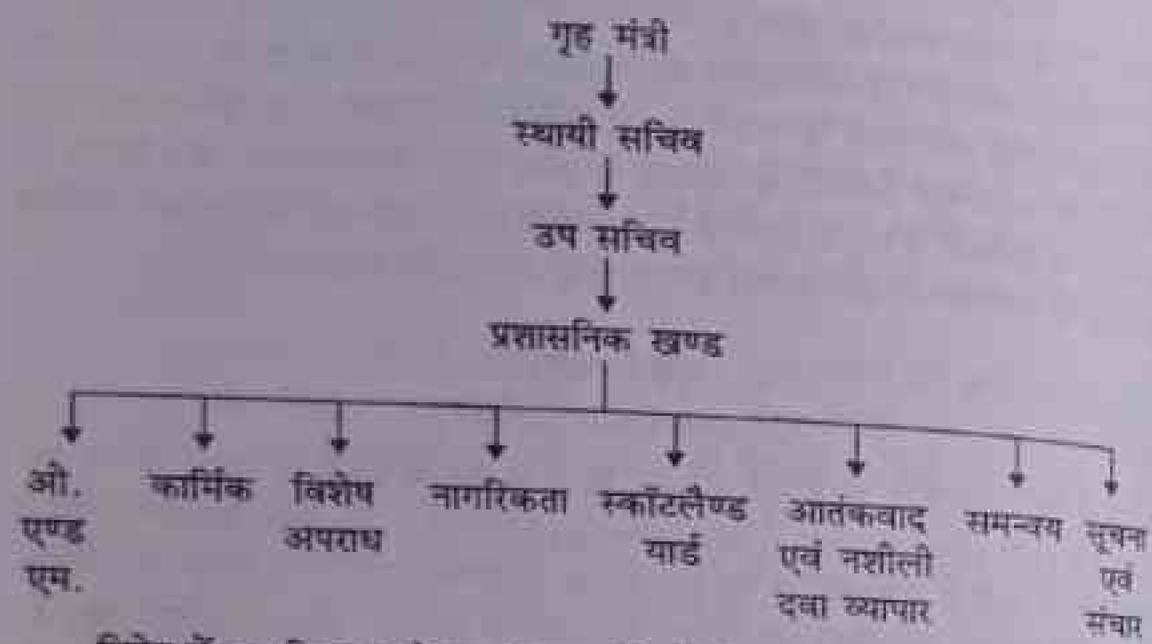

ब्रिटेन में गृह विभाग को कार्यात्मक दृष्टि से निम्नांकित खण्डों में विभक्त किया गया है—

1. ओ. एण्ड एम. खण्ड
2. कार्मिक खण्ड
3. विशेष अपराध खण्ड
4. नागरिकता खण्ड
5. स्कॉटलैण्ड यार्ड खण्ड
6. आतंकवाद एवं नशीली दवा व्यापार खण्ड
7. समन्वय खण्ड
8. सूचना एवं संचार खण्ड।

इस विभाग का कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण यूनाइटेड किंगडम तक विस्तारित है। ब्रिटेन सहित समस्त यूरोप में उच्च पुलिस अधिकारी का पद, पदोन्नति द्वारा भरा जाता है। अतः निम्न स्तरीय पदों पर भर्ती, प्रशिक्षण तथा सेवाकालीन पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। ब्रिटिश पुलिस (Scotland Yard) का प्रत्येक उच्च पदस्थ अधिकारी अपने सेवाकाल में कभी न कभी रात्रि पहरा अवश्य दे चुका होता है तथा बीट में कार्य कर चुका होता है। पुलिस महानिदेशक को चीफ कांस्टेबिल कहा जाता है। अतः उसे थाना, चौकी, दंगा, प्रदर्शन तथा अपराधी को पकड़ने इत्यादि के सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान रहता है। कार्मिक खण्ड पुलिसकर्मियों तथा जासूसों के प्रशिक्षण एवं पदोन्नति के कार्यक्रम निर्धारित करता है।

कार्य (Functions)

गृह विभाग का मुख्य कार्य शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना है। इसके अतिरिक्त निम्नांकित कार्य भी गृह विभाग करता है—

1. ब्रिटेन तथा इसमें सम्बद्ध राजकीय क्षेत्रों में अपराधों पर नियंत्रण करना एवं अनुशासन बनाए रखना।
2. ब्रिटेन में आने वाले विदेशी नागरिकों पर निगरानी रखना और उन्हें अनुमति देना। ब्रिटिश गृह मंत्री को यह अधिकार है कि वह किसी विदेशी नागरिक को ब्रिटेन में रहने की अनुमति या उस देश से बाहर जाने का आदेश दे दे।
3. विदेशी अपराधियों, आतंकवादी संगठनों, नशा व्यापारियों तथा जाली मुद्रा के धन्धे में लिप्त लोगों पर नियंत्रण करना।
4. अवैधानिक रूप से चलने वाले जुआघरों (Casino) पर छापा एवं कार्यवाही करना।
5. विभिन्न अपराधों में पकड़े गए व्यक्तियों को अदालत में प्रस्तुत करना तथा हिरासत में रखना।
6. आयरिश रिपब्लिकन आर्मी की आतंकवादी गतिविधियों पर नजर रखना एवं अन्य कट्टरवादी संगठनों से इसके तालमेल का पता करना।
7. आपातकालीन परिस्थितियों में नागरिकों को सहायता पहुँचाना जैसे—सड़क दुर्घटना, आगजनी, डकैती, बाढ़ तथा महामारी इत्यादि।
8. जाँच एजेन्सियों एवं गुप्तचर एजेन्सियों जैसे—M.I.5 & 6 अर्थात् Military Intelligence, Special Branch तथा Ultra Joint Intelligence Organisation के साथ समन्वय स्थापित करना।
9. बीट कांस्टेबिल (Bobby) तथा नागरिक सुरक्षा वार्डनों की रिपोर्ट का गहनता से अध्ययन करना एवं सहायता पहुँचाना।
10. राजशाही व्यवस्था के भवनों, सम्पत्तियों, पदवियों, वसीयत, विरासत, अवैध कब्जों तथा विघटनकारी मामलों की जाँच करना तथा सम्राट को सूचित करना।
11. पुलिस प्रशासन में सुधार एवं नवाचार के कार्यक्रम संचालित करना।
12. अन्तरराष्ट्रीय अपराधियों तथा आतंकवादियों का प्रत्यर्पण।
13. बन्दरगाहों पर नियंत्रण रखना तथा अवैध आप्रवासियों को रोकना।
14. पासपोर्ट तथा वीसा सम्बन्धी कार्य सम्पादित करना।
15. सिक्यूरिटी सर्विस एक्ट, 1989 तथा इण्टेलीजेन्स एक्ट, 1994 का क्रियान्वयन सुनिश्चित करना।

वस्तुतः ब्रिटिश गृह विभाग एक कार्यकुशल तथा उत्तरदायी संगठन का जीवन्त प्रमाण है। विश्व के अन्य देशों की भाँति ब्रिटिश पुलिस भी आतंकवाद तथा नशीले पदार्थों के अवैध व्यापार से जूझ रही है।

राजकोष
(Treasury)

ब्रिटिश राजकोष (Treasury) एक प्राचीन संगठन है जो निरन्तर विकसित संशोधित तथा परिवर्धित होता रहा है। अमेरिका एवं ब्रिटेन में वित्तीय कार्यों के निस्तारण करने वाले विभाग 'राजकोष' कहलाते हैं जबकि भारत एवं फ्रांस में इन्हें वित्त मंत्रालय (Finance Ministry) कहा जाता है। ब्रिटिश राजकोष किसी भी देश के वित्त विभाग की तुलना में अधिक सशक्त प्रशासनिक संगठन माना जाता है क्योंकि इसे परम्परागत रूप से कतिपय कार्य ऐसे मिले हुए हैं जो सामान्यतया अन्य देशों के वित्त विभाग या राजकोष के अधीन नहीं हैं।

संगठन (Organisation)

ब्रिटेन के राजकोष का सर्वोच्च पदाधिकारी वित्त मंत्री होता है जिसे Chancellor of Exchequer कहा जाता है यद्यपि वास्तविक कार्यपालिका का मुखिया अर्थात् प्रधानमंत्री को राजकोष का सर्वोच्च अधिकारी (First Lord of Treasury) माना जाता है तथापि प्रधानमंत्री राजकोष के मामलों में केवल बजट निर्माण तथा घोर वित्तीय अनियमितताओं के समय ही हस्तक्षेप करता है। चांसलर ऑफ एक्सचेकर मंत्रिमण्डल का सदस्य होता है तथा राजकोष की समस्त गतिविधियों पर निगरानी रखना उसका दायित्व है। राष्ट्रीय वित्त, अर्थव्यवस्था, उद्योग तथा व्यापार से सम्बन्धित नीतियों के निर्माण में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। चांसलर ऑफ एक्सचेकर के अधीन दो या तीन उप मंत्री या संसदीय सचिव भी नियुक्त किए जाते हैं क्योंकि राजकोष के कार्य विस्तृत एवं गम्भीर प्रकृति के होते हैं। ये सभी पदाधिकारी मंत्रिपरिषद् के सदस्य होते हैं।

प्रशासनिक स्तर पर राजकोष में एक स्थायी सचिव होता है जिसकी सहायतार्थ अनेक उप सचिव, सहायक सचिव, प्रिंसीपल वित्तीय अधिकारी, निष्पादक अधिकारी तथा लेखाधिकारी होते हैं। सुविधा की दृष्टि से राजकोष को निम्नांकित खण्डों में विभक्त किया गया है—

1. लोक सेवा संस्थापना खण्ड,
2. वित्तीय एवं बजट खण्ड,
3. आपूर्ति खण्ड,
4. करारोपण खण्ड,
5. बैंकिंग खण्ड,
6. बीमा एवं सहायता खण्ड,
7. ओ. एण्ड एम. खण्ड,
8. विकासशील राष्ट्र सहायता खण्ड,
9. अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा खण्ड

10. साख एवं नियंत्रण खण्ड, तथा
11. अंकेक्षण एवं नियम खण्ड।

ब्रिटिश राजकोष का संगठनात्मक ढाँचा

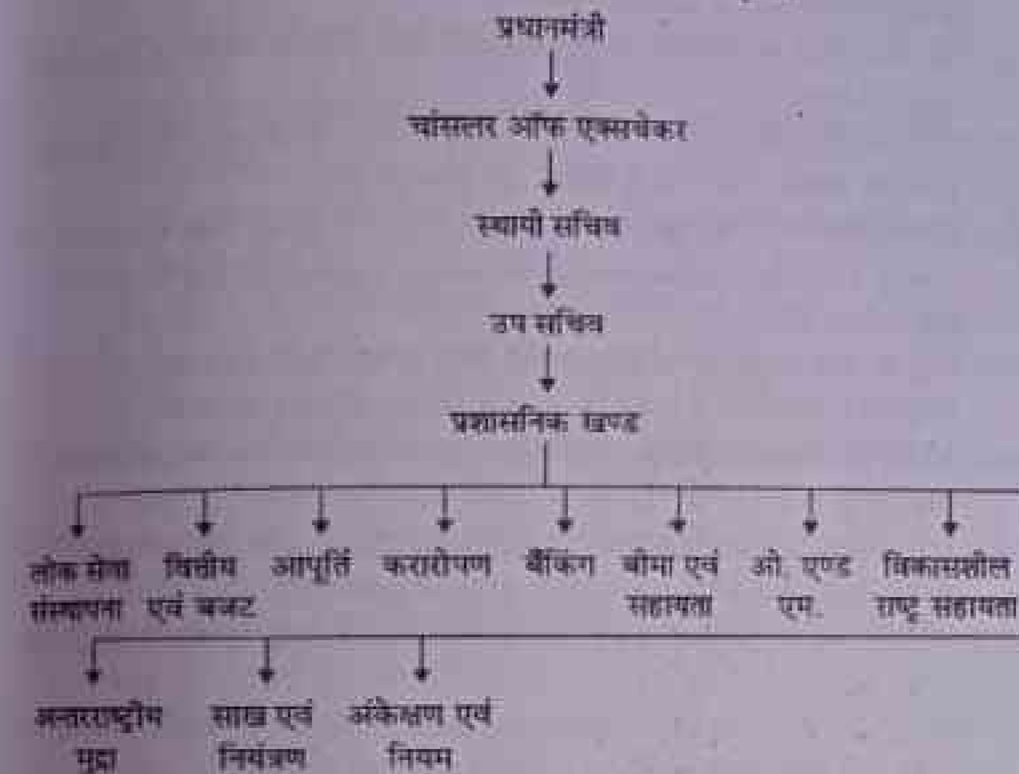

कार्य एवं भूमिका (Role & Functions)

आय-व्यय पर नियंत्रण एवं ब्रिटिश पौण्ड की साख सुदृढ़ बनाने के क्रम में राजकोष की महती भूमिका है। हैल्थ के अनुसार—"राजकोष एक ऐसा विभाग है जो कार्यपालिका के नियंत्रण एवं संसदीय सत्ता के अधीन रह कर देश के सार्वजनिक वित्त का प्रशासन संचालित करता है।" संक्षेप में ब्रिटिश राजकोष के निम्नांकित कार्य हैं—

1. संसद द्वारा पारित वित्तीय अनुमानों का क्रियान्वयन उसी रूप में करवाना जिस रूप में वे स्वीकृत किए गए हैं।
2. वित्त, अर्थव्यवस्था, उद्योग, वाणिज्य एवं व्यापार में सम्बन्धित नीतियों का निरूपण करना एवं मंत्रिमण्डल के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत करना।
3. राष्ट्रीय समेकित निधि की वित्तीय स्थिति नियंत्रित करने के लिए करारोपण एवं शुल्क सम्बन्धी नियम बनाना एवं करों का एकत्रण करवाना।
4. लोक सेवाओं के संचालन पर होने वाले व्यय को नियंत्रित करना भी राजकोष का मुख्य कार्य है। इस सम्बन्ध में राजकोष लोक सेवाओं के वर्गीकरण, नए पदों के सृजन, प्रचलित पदों में कटौती, लोक सेवाओं की भर्ती, प्रशिक्षण तथा पदोन्नति

सहित पैंशन एवं क्षतिपूर्ति दावों इत्यादि के क्रम में कठोरतापूर्वक कार्यवाही करता है।

5. सरकारी ऋण, साख, देनदारियाँ, लेनदारियाँ, बैंकिंग, बीमा तथा ब्याज के नियम बनाना एवं राष्ट्रहित में कार्यवाही करना।
6. सरकारी लेखों के संधारण के दिशा-निर्देश देना तथा अंकेक्षण की कार्यवाही सम्पादित करना।
7. अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा व्यापार, शेयर बाजार, वस्तु व्यापार, वाणिज्यिक संव्यवहार तथा साख को प्रभावित करने वाले कारकों पर नजर रखना।
8. विकासशील राष्ट्रों को ब्रिटिश सरकार द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता के सम्बन्ध में ओ.डी.ए. (Overseas Development Agency) एवं अन्य संस्थाओं से समन्वय करना।
9. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, लोक लेखा समिति तथा व्यय समिति (पूर्व में मितव्ययता समिति) की रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय नियंत्रण के प्रयास करना।
10. प्रशासनिक संगठनों में पदासीन वित्तीय अधिकारियों एवं कार्यालयाध्यक्षों से समन्वय स्थापित करना।
11. लोक सेवाओं, प्रशासनिक कार्यकरण, लोक उपक्रमों तथा स्वायत्त संगठनों में कार्यकुशलता बढ़ाने एवं लागत मूल्य घटाने के सुझाव देना।
12. प्रशासनिक विभागों से प्राप्त होने वाली नियमित रिपोर्ट का पुनरीक्षण करना एवं निर्देश प्रेषित करना।
13. ओ. एण्ड एम. (Organisation & Methods) से सम्बन्धित कार्यों पर निगरानी रखने तथा प्रशासनिक कार्यकरण को चुस्त बनाने का कार्य करना।

सारांशत: ब्रिटिश राजकोष राष्ट्रीय आर्थिक नीति, आर्थिक विकास, लोक सेवा-नियंत्रण और वित्तीय साख के निर्धारण में निर्णायक भूमिका निभाता है। फाइनर के अनुसार—"ब्रिटिश राजकोष दूसरे विभागों पर नियंत्रण (प्रत्यक्ष) करने की अपेक्षा उनके वित्तीय एवं कार्मिक प्रकरणों की समीक्षा का पुनरावलोकन करता है तथा चेतावनी दे सकता है। यदि यह उनको नियंत्रित कर ले तो भी उन्हें निर्देशित कभी नहीं करता है। हालाँकि लगता ऐसा है कि राजकोष, दूसरे विषयों को निर्देशित अधिक करता है।" सन् 1961 में 'Committee on Control of Expenditure (Pladon Committee)' ने सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए यह सुझाव दिया था कि व्यय करते समय दूरदर्शिता तथा आवश्यकतानुकूल नियोजन को ध्यान में रखा जाना चाहिए तथा बजट अनुमानों के स्वरूप का सरलीकरण करते हुए मात्रात्मक साधनों का अधिक प्रयोग होना चाहिए। इस सम्बन्ध में राजकोष को अपनी भूमिका और अधिक सार्थक सिद्ध करनी होगी। यूरोपीय संघ के 15 में से 12 देशों (फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, हालैण्ड, लक्जमबर्ग, स्पेन, पुर्तगाल, आस्ट्रिया, ग्रीस, इटली, आयरलैण्ड तथा फिनलैण्ड) ने **साझा मुद्रा यूरो** को 1 जनवरी, 1999 से प्रचलन की स्वीकृति दे दी है जबकि ब्रिटेन,

डेनमार्क, तथा स्वीडन द्वारा यह कदम उठाना शेष है। यूरो मुद्रा 1 जनवरी, 2002 से लागू हो गई है। यूरो के प्रचलन से डॉलर सहित अन्य मुद्राओं पर पड़ने वाले प्रभाव के सम्बन्ध में राजकोष मंथन कर रहा है।

सन्दर्भ

1. जॉन ग्रीनवुड एवं डेविड विल्सन, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ब्रिटेन**, जॉर्ज एलन एण्ड उनविन, लन्दन, 1984
2. श्री.पी. श्रीवास्तव, **सिविल सर्विस इन इण्डिया एण्ड इंग्लैण्ड**, जयप्रकाशनाथ एण्ड कं., मेरठ, 1956
3. एलन आर. बॉल, **मॉडर्न पॉलिटिक्स एण्ड गवर्नमेण्ट**, मैकमिलन कं., लन्दन, 1971
4. सी.एन. राय, **सिटिजंस चार्टर इन इण्डिया: एन ओवरव्यू**, आई.जे.पी.ए., अक्टूबर-दिसम्बर 1998, पृ. 803
5. रेम्जेम्योर, **हाऊ ब्रिटेन इज गवर्ण्ड: ए क्रिटिकल एनालिसिस ऑफ मॉडर्न डिवेलपमेण्ट इन ब्रिटिश सिस्टम ऑफ गवर्नमेण्ट**, रिचर्ड आर. स्मिथ, न्यू यॉर्क, 1930
6. हासन ए. खां, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: एन इण्ट्रोडक्शन**, केण्डल हण्ट पब्लिशिंग कं., डबोक, इओवा, 1997
7. हरमन फाइनर, **थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस ऑफ मॉडर्न गवर्नमेण्ट**, हेनरीहोल्ट कं. न्यू यॉर्क, 1949
8. बी.के. गुंगलु, **रोल ऑफ सी.ए.जी. इन इण्डिया**, आई.जे.पी.ए., जुलाई-सितम्बर 1997, पृ. 460

●●●

4

संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासनिक व्यवस्था

(Administrative System in USA)

सोवियत समाजवादी गणराज्यों के संघ (USSR) के विघटन (1991) के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका, अब विश्व की प्रमुख महाशक्ति है। उत्तरी अमेरिका महाद्वीप में स्थित 50 राज्यों का समूह जो एक संघीय गणतंत्र है, संयुक्त राज्य अमेरिका (United States of America) कहलाता है। कई बार संयुक्त राज्य अमेरिका को 'यूनाइटेड स्टेट्स' (U.S.) भी कह दिया जाता है। प्रवासी भारतीय तथा इनके रिश्तेदार तो केवल 'स्टेट्स' शब्द से ही काम चला लेते हैं। यू.एस. का दूसरा अर्थ **अंकल सैम** भी होता है। दरअसल, अंकल सैम 18वीं सदी के प्रसिद्ध व्यापारी सैमुअल विल्सन का 'निकनेम' था। कालान्तर में अंकल सैम के खूब कार्टून बने। सिर पर टोपी, सफेद दाढ़ी, सितारों जड़ी नीली, लाल तथा सफेद ड्रेस वाला यह कार्टून अब अमेरिका की संघीय सरकार का प्रतीक भी बन चुका है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 49 राज्य मुख्य भूमि पर तथा एक राज्य 'हवाई द्वीप' पृथक् से स्थित है। विश्व प्रसिद्ध रेगिस्तानी क्षेत्र नेवादा (शाब्दिक अर्थ = हिमाच्छादित) अमेरिका में ही है जहाँ 7 व्यक्ति प्रति मील निवास करते हैं। नेवादा राज्य को **'सिल्वर स्टेट'** तथा कैलीफोर्निया को **'गोल्डन स्टेट'** भी कहा जाता है। सन् 1492 में भारत की खोज में निकले इटली के क्रिस्टोफर कोलम्बस ने अज्ञानवश नई दुनिया अर्थात् अमेरिका की खोज की। कालान्तर में अमेरिका ब्रिटिश शासन के अधीन हो गया। सन् 1776 ई. ब्रिटिश साम्राज्य की दमनकारी नीतियों तथा अत्यधिक करों के विरोध में पूर्वी अमेरिका के निवासियों ने विद्रोह कर दिया एवं स्वाधीनता के घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर कर संयुक्त राज्य अमेरिका की शुरुआत की। लम्बी अवधि तक आपसी संघर्ष के पश्चात् अमेरिकावासियों की विजय हुई तथा स्वतंत्र अमेरिका के जॉर्ज वाशिंगटन (1789) प्रथम राष्ट्रपति बने। सदियों पुरानी दास प्रथा के विरोध में सन् 1861 में उत्तरी राज्यों में संघर्ष भी शुरू हुआ तथा सन् 1865 में यह प्रथा समाप्त हुई। मार्टिन लूथर किंग जूनियर यहाँ के प्रसिद्ध समाज सुधारक हुए हैं। सन् 1920 में सूसन बी. एंथोनी के संघर्ष के परिणामस्वरूप

यहाँ महिलाओं को मताधिकार दिया गया। इसी कारण अमेरिकी डॉलर पर जिस महिला की प्रथम फोटो आयी वह सूसन बी. एंथोनी थी। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्धों के समय अमेरिका की शक्ति का विश्व स्तर पर लोहा माना गया तथा वर्तमान में पूँजीवादी विचारधारा का समर्थक यह देश विश्व की एक ही महाशक्ति है। विश्व की इस महाशक्ति को सबसे बड़ा धक्का 11 सितम्बर, 2001 को तब लगा था जबकि इस्लामी आतंकवादियों ने **पेण्टागन** तथा **वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर** को हवाई जहाजों के माध्यम से आत्मघाती हमलों द्वारा उड़ा दिया था। इस घटना में हजारों व्यक्ति मारे गए। यहाँ तक कि 350 अग्निशमनकर्मी, राहत एवं बचाव कार्यों में अपनी जान गँवा बैठे तथा महिनों तक ध्वस्त बहुमंजिली इमारतों का मलबा न हटाया जा सका।

संयुक्त राज्य अमेरिका : एक परिचय

राजधानी	—	वाशिंगटन डी.सी.
क्षेत्रफल	—	93,72,614 वर्ग कि.मी.
जनसंख्या	—	30 करोड़ 40 लाख (सन् 2008)
भाषा	—	अंग्रेजी
साक्षरता	—	97 प्रतिशत
धर्म	—	ईसाई
मुद्रा	—	डॉलर (अमेरिकी)
प्रति व्यक्ति आय	—	39,710 डॉलर
झण्डा (राष्ट्रीय)	—	'स्टार्स एण्ड स्ट्राइप्स' के नाम से प्रसिद्ध इस झण्डे में 13 धारियाँ तथा 50 सितारे बने हैं जो राज्यों के प्रतीक हैं। राज्यों के झण्डे अलग-अलग हैं।
राष्ट्रीय दिवस	—	4 जुलाई (स्वतंत्रता दिवस)

संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्यों का विवरण निम्नलिखित है—

राज्य का नाम	*राजधानी*	*क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)*	*जनसंख्या (2008)*
1. अलाबामा (ए.एल.)	मोण्टगोमरी	1,33,916	46,61,900
2. अलास्का (ए.के.)	जुन्यू	15,30,700	6,86,293
3. एरीजोना (ए.जेड.)	फोनिक्स	2,95,260	65,00,180
4. अरकान्स (ए.आर.)	लिटिल रॉक	1,37,754	28,55,390
5. कैलीफोर्निया (सी.ए.)	सेक्रामेण्टो	4,11,049	3,67,56,666
6. कोलोरेडो (सी.ओ.)	डेनवर	2,69,596	49,39,456
7. कनेक्टीकट (सी.टी.)	हार्टफोर्ड	12,997	35,01,252
8. डेलीवेयर (डी.ई.)	डोवर	5,294	8,73,092

9. डिस्ट्रिक्ट ऑफ कोलम्बिया (डी.सी.)	वाशिंगटन डी.सी.	179	5,91,833
10. फ्लोरिडा (एफ.एल.)	टल्लाहस्सी	1,51,940	1,83,28,340
11. जॉर्जिया (जी.ए.)	अटलाण्टा	1,52,577	96,85,744
12. हवाई (एच.आई.)	होनोलूलू	16,760	12,88,198
13. इडाहो (आई.डी.)	बोआइसे	2,16,431	15,23,816
14. इलीनियास (आई.एल.)	स्प्रिंगफील्ड	1,45,934	1,29,01,563
15. इण्डियाना (आई.एन.)	इण्डियन अपोलिस	93,719	63,76,792
16. आयोवा (आई.ए.)	डेस मोआइन्स	1,45,752	30,02,555
17. कन्सास (के.एस.)	टोपेका	2,13,097	28,02,134
18. कैण्टुकि (के.वाई.)	फ्रैंकफोर्ट	1,04,659	42,69,245
19. लुईसियाना (एल.ए.)	बेटनरोगे	1,23,678	44,10,796
20. मेन (एम.ई.)	आगस्टा	86,156	13,16,456
21. मेरीलैण्ड (एम.डी.)	अन्नापोलिस	27,091	56,33,597
22. मेसाच्यूसेट्स (एम.ए.)	बोस्टन	21,456	64,97,967
23. मिशिगन (एम.आई.)	लानसिंग	1,51,585	1,00,03,422
24. मिन्नेसोटा (एम.एन.)	सेण्ट पॉल	2,18,601	52,20,393
25. मिसिसिप्पी (एम.एस.)	जैक्सन	1,23,515	29,38,618
26. मिसौरी (एम.ओ.)	जैफरसन सिटी	1,80,515	59,11,605
27. मोण्टाना (एम.टी.)	हेलेना	3,80,849	9,67,440
28. नेब्रास्का (एन.टी.)	लिंकन	2,00,349	17,83,432
29. नेवादा (एन.वी.)	कॉरसन सिटी	2,86,353	26,00,167
30. न्यू हैम्पशायर (एन.एच.)	कानकोर्ड	24,033	13,15,809
31. न्यू जर्सी (एन.जे.)	ट्रैन्टॉन	20,168	86,82,661
32. न्यू मैक्सिको (एन.एम.)	सान्ता फे	3,14,923	19,84,356
33. न्यू यॉर्क (एन.वाई.)	अल्बानी	1,27,190	1,94,90,297
34. नॉर्थ कैरोलीना (एन.सी.)	रैले	1,36,413	92,22,414
35. नॉर्थ डेकोटा (एन.डी.)	बिस्मार्क	1,83,118	6,41,481
36. ओहियो (ओ.एच.)	केलम्बस	1,07,045	1,14,85,910
37. ओक्लाआमा (ओ.के.)	ओक्लाओमे सिटी	1,81,186	36,42,361
38. ओरेगांव (ओ.आर.)	सलेम	2,51,419	37,90,060
39. पेन्सिलवेनिया (पी.ए.)	हेरिसबर्ग	1,17,348	1,24,48,279
40. रोडे आईलैण्ड (आर.आई.)	प्रेविडेन्स	3,139	10,50,788
41. साउथ कैरोलीना (एस.सी.)	कोलम्बिया	80,583	44,79,800

42. साउथ डेकोटा (एस.डी.)	पियरे	1,99,723	8,04,194
43. टेनेसी (टी.एन.)	नासाविले	1,09,153	62,14,888
44. टेक्सास (टी.एक्स.)	आस्टिन	6,91,030	2,43,26,974
45. यूटा (यू.टी.)	साल्टलेक सिटी	21,98,88	27,36,424
46. वरमाण्ट (वी.टी.)	मउण्ड पेलियर	24,900	6,21,270
47. वर्जीनिया (वी.ए.)	रिमाण्ड	1,05,587	77,69,089
48. वाशिंगटन (डब्ल्यू.ए.)	ओलम्पिया	1,76,480	65,49,224
49. वैस्ट वर्जीनिया (डब्ल्यू.वी.)	चार्ल्सटन	62,758	18,14,468
50. विस्कोन्सिन (डब्ल्यू.आई.)	मैडिसन	1,45,436	56,27,967
51. व्योमिंग (डब्ल्यू. वाई.)	चेयेने	2,53,325	5,32,668
• प्यूर्टो रीको (प्रादेशिक क्षेत्र)	सैन जुआन	137.4	39,54,037

नोट : क्रमांक 9 पर कोलम्बिया जिला, राज्यों में सम्मिलित न होकर पृथक् इकाई है। राज्यों का दो वर्णों में संक्षिप्तीकरण सन् 1963 से किया गया था। (डाक-संकेत या Zip Code)

ब्रिटेन की तरह अमेरिका में भी मानव संसाधन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। थॉमस एल्वा एडीसन (फोटोग्राफी, बल्ब, बैटरी), बैंजामिन फ्रैंकलिन (विद्युत् चालक), फुल्टन (स्टीम बोट), राइट बन्धु (हवाई जहाज) जैसे वैज्ञानिक तथा नार्मन अर्नेस्ट बॉरलाग के रूप में कृषिशास्त्री तथा जान केनेथ गालब्रेथ (अर्थशास्त्री), अर्नेस्ट हेमिंग्वे, एडगर एलन पो, पर्ल एस. बक तथा मार्क ट्वेन जैसे लेखक अमेरिका की देन हैं। मर्लिन मुनरो, माइकल जैक्सन, वाल्टर इलियास डिज्नी, मेडोना, हेनरी फोर्ड तथा हेलेन केलर (अंधी-गूंगी लेखिका इत्यादि) विश्वविख्यात हस्तियाँ हैं। खेलों की ओर अत्यधिक ध्यान देने के कारण अमेरिका के पास प्रत्येक क्षेत्र में विश्वस्तरीय खिलाड़ी हैं। प्राकृतिक संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता के कारण अमेरिका की अर्थव्यवस्था भी सुदृढ़ है। प्रतिभासम्पन्न तथा तकनीकी क्षमताधारकों को अमेरिका में शीघ्र ही सम्मानजनक स्थान प्राप्त हो जाता है। भारतीय मूल के डॉक्टर, इंजीनियर तथा कम्प्यूटर विशेषज्ञों सहित शिक्षाशास्त्रियों की अमेरिका में संख्या 10 लाख है। सन् 1996 में संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग 2.5 करोड़ (कुल आबादी का 10%) निवासी ऐसे थे जिनका जन्म अमेरिका से बाहर हुआ था। अमेरिका में विदेशी नागरिकों की संख्या सन् 1970 से 1993 के मध्य तेजी से बढ़ी है जिसे अब नियंत्रित करने हेतु कठोर प्रावधान किए जा रहे हैं। अमेरिका की कुल आबादी में 3.6% एशियाई मूल के हैं जो सन् 1990 में 2.8% थे। भारतीय मूल के नागरिकों की जनसंख्या 16.7 लाख है जो चीन तथा फिलीपीन्स के बाद तीसरे स्थान पर है। नासा में 36% कार्मिक भारतीय हैं। 38% डॉक्टर भारतीय हैं। 12% वैज्ञानिक भारतीय हैं। इसी प्रकार कम्प्यूटर कम्पनियाँ, जैसे—आई.बी.एम., माइक्रोसोफ्ट तथा इण्टेल के 20% कार्मिक भारतीय मूल के हैं। इसीलिए अप्रैल, 2006 में राष्ट्रपति बुश ने कहा था—

''यदि हमारे बच्चों ने भारत तथा चीन जैसी प्रतिभा विकसित नहीं की तो उन... नौकरियाँ छिन जाएँगी।'' अमेरिका में हथियार रखना मौलिक अधिकारों की श्रेणी... सम्मिलित है। अतः आपराधिक गतिविधियाँ भी बहुत होती हैं। शिक्षा, भौतिकवाद... कम्प्यूटर से युक्त आधुनिक अमेरिका पूर्णतया विशिष्ट जीवन शैली अपनाने वाला... है। अमेरिका में कर्ज लेना या उधार पर वस्तुएँ खरीदना शर्मनाक नहीं अपितु प्रतिष्ठा... पर्याय है। वहाँ पर उपभोक्ता वस्तुएँ, चिकित्सा सुविधाओं, टेलीफोन, बैंक तथा पेट्रोल (वहाँ गैस कहते हैं) इत्यादि सभी सुविधाएँ **क्रेडिट कार्ड** के माध्यम से उपलब्ध होती हैं।

सत्रहवीं सदी में बना हार्वर्ड विश्वविद्यालय किसी प्रकार की सरकारी या अर्ध... आर्थिक सहायता का मोहताज नहीं रहता बल्कि इस विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त... चुके पूर्व विद्यार्थी इसे वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं जो एक श्रेष्ठ परम्परा है। विश्व... महान् शक्ति अमेरिका को 'अपराधियों का स्वर्ग' भी कहा जाता है क्योंकि यहाँ के... प्रतिशत व्यक्ति जेलों में बन्द हैं या पैरोल, परिवीक्षा पर रिहा हैं। विश्व प्रसिद्ध हॉलीवुड तथा सिलिकन वैली, कैलीफोर्निया प्रांत में हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की वित्तीय एवं आर्थिक गतिविधियाँ न्यू यॉर्क की **'Wall Street'** से संचालित होती हैं। Golden **Eagle** यहाँ का राष्ट्रीय चिह्न है।

संवैधानिक विकास (Constitutional Development)

अमेरिका में संवैधानिक विकास जन चेतना तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना के संघर्ष का साक्षी रहा है। पन्द्रहवीं शताब्दी में कोलम्बस द्वारा 'नई दुनिया' की खोज के पश्चात् यूरोपीय देशों ने आर्थिक एवं धार्मिक हितों की पूर्ति हेतु अमेरिका की ओर रुख किया। अमेरिका में बसने वाले यूरोपीय व्यक्तियों में अधिसंख्य व्यक्ति अंग्रेज थे जिन्होंने... 1760 में ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति को संवारने हेतु अमेरिकावासियों पर अपने 13 उपनिवेशों के माध्यम से कर (Tax) तथा कठोर व्यापारिक कानून थोप दिए। स्वतंत्रता एवं सम्प्रभुता के प्रति जागृति हो चुके अमेरिकियों ने अनुचित कर देने से मना करते हुए कहा—'प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं' (No Taxation Without Representation)। असन्तोष एवं विद्रोह से भरे हुए सभी 13 उपनिवेश एकजुट होने लगे तथा सन् 1774 में फिलाडेल्फिया में प्रथम सम्मेलन के पश्चात् ब्रिटिश सम्राट के पास दमनकारी कानूनों के विरुद्ध याचिका भेजी गई किन्तु जॉर्ज तृतीय ने याचिका को ठुकरा दिया। ऐसी स्थिति में सन् 1775 में फिलाडेल्फिया में दूसरा सम्मेलन हुआ जिसमें उपनिवेशों ने युद्ध का प्रस्ताव रखा एवं जॉर्ज वाशिंगटन को नागरिक सेना का सर्वोच्च सेनापति भी नियुक्त कर दिया गया।

सभी प्रकार के शांति एवं समझौते प्रयास विफल हो जाने पर 4 जुलाई, 1776 को 13 उपनिवेशों ने ब्रिटिश सम्राट की भक्ति त्यागकर स्वयं को सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य

मानते हुए युद्ध की घोषणा कर दी। थॉमस जैफरसन द्वारा निर्मित **अमेरिका की स्वतंत्रता-घोषणा का सार यह था—**

''हम इन सत्यों को स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सभी मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं और उनके स्रष्टा ने इन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिए हैं जो उनसे छीने नहीं जा सकते हैं। इनमें जीवन, स्वतंत्रता और सुख प्राप्ति के लिए प्रयास करने का अधिकार भी है। इन अधिकारों की रक्षा हेतु ही मनुष्यों में सरकार की स्थापना होती है और उन्हें शासन का अधिकार भी जनता की अनुमति से ही प्राप्त होता है। जब कभी कोई शासन इन उद्देश्यों के लिए घातक बन जाए तब लोगों को अधिकार होता है कि वे उसे बदल दें या समाप्त कर दें और ऐसे नए शासन की स्थापना करें जिससे उनकी अपनी सुरक्षा और सुख समृद्धि स्थायी रहने की सबसे अधिक आशा हो।'' अमेरिकी उपनिवेशों द्वारा स्वयं को स्वतंत्र घोषित करने पर ब्रिटिश सरकार ने अपनी सैनिक शक्ति को युद्ध में झोंक दिया। इस 6 वर्षीय युद्ध में ब्रिटेन की हार हुई तथा ब्रिटेन ने अमेरिका की स्वतंत्रता को मान्यता दे दी। सन् 1783 में दोनों देशों के बीच सन्धि हो गई। स्वतंत्रता की घोषणा के पश्चात् ही 13 स्वप्रभु राज्यों ने एक परिसंघ बनाने की आवश्यकता अनुभव की थी। अतः 17 नवम्बर, 1777 को परिसंघ बनाने का प्रस्ताव पारित किया जा चुका था लेकिन सन् 1781 में ही परिसंघ की स्थापना हो सकी।

प्रस्ताव में परिसंघ की स्थापना के प्रलेख (Articles of Confederation) को 11 राज्यों ने तुरन्त तथा शेष ने कुछ समय पश्चात् स्वीकार कर लिया। लेकिन इस विधान की त्रुटियाँ अभी यथावत् थीं। अतः नया संविधान बनाने के लिए 25 मई, 1787 में फिलाडेल्फिया में एक सभा हुई जिसमें जेम्स मेडीसन, बेंजामिन फ्रेंकलिन, एलेक्जेण्डर हैमिल्टन, जॉर्ज मेसन, एडमण्ड रेण्डोल्फ, जेम्स विल्सन, रॉबर्ट मोरिस तथा जॉन डिकिन्सन जैसी हस्तियों सहित सभी 13 राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। जॉर्ज वाशिंगटन की अध्यक्षता में 10 दिन तक वाद-विवाद चलता रहा। अन्ततः 'महान् समझौता' हो गया जिसके अन्तर्गत संघीय विधायिका की सीनेट में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व तथा प्रतिनिधि सभा में जनसंख्या के आधार पर सदस्यों के निर्वाचन का निर्णय हुआ। संघवाद के प्रबल समर्थकों तथा विरोधियों के मध्य भी विवाद बना रहा जिसे आपसी सहमति से सुलझा लिया गया।

21 जून, 1782 को संविधान का अन्तिम प्रारूप स्वीकार कर लिया गया तथा 4 मार्च, 1789 को नई संघीय सरकार की शुरुआत की तिथि घोषित कर दी गई। यद्यपि नॉर्थ कैरोलिना तथा रोडे आईलैण्ड ने क्रमशः सन् 1789 तथा सन् 1790 में अपनी स्वीकृति प्रदान की थी। यह संविधान पूर्णतया स्थायी या अन्तिम दस्तावेज नहीं है जैसा कि डब्ल्यू. बी. मुनरो ने कहा है—''यह संविधान सन् 1787 का तिथिचिन्ह रखते हुए भी इन बीते हुए वर्षों में निरन्तर विकसित, विस्तृत और नवीन परिस्थितियों के अनुकूल होता गया है।'' इस संविधान को केवल हड्डियों का ढाँचा माना जाता है जिस पर रक्त एवं माँस आरोपण का कार्य शनैः-शनैः हुआ है। अमेरिका के संक्षिप्त संविधान में

शासन की प्रत्येक प्रक्रिया का विस्तृत उल्लेख नहीं है बल्कि विधायिका के द्वारा निर्मित कानूनों, कतिपय परम्पराओं तथा राष्ट्रपति के व्यक्तित्व एवं कार्यशैली से इसका विकास हुआ है। अमेरिकी लेखक **जॉन सी. शॉ** के अनुसार—''एक सीमा तक अमेरिकी **संविधान का जनक जेम्स मेडीसन** को माना जा सकता है यद्यपि अन्य कई व्यक्तियों का योगदान भी अत्यधिक था।'' विगत 200 वर्षों में अमेरिका में अनेक ऐसी परम्पराएँ विकसित हो चुकी हैं जो संविधान को पृथक् ढंग से वर्णित करती हैं। उदाहरणार्थ राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन की भाँति होने लग गया है। मंत्रिमण्डल परम्पराओं का ही परिणाम है। 'सीनेट की शिष्टता' तथा चुनावों में स्थानीय निवास के महत्त्व भी इसी तथ्य को रेखांकित करते हैं।

अमेरिकी संविधान की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of the American Constitution)

संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय तथा प्रांतीय दोनों स्तरों पर पृथक् संविधान निर्मित किए गए हैं। प्रस्तुत विवरण में संघीय संविधान की विशेषताओं का ही उल्लेख किया गया है। **ग्लेडस्टन** का कथन था—''अमेरिकी संविधान मानव जाति की आवश्यकता एवं मस्तिष्क से उत्पन्न किसी निश्चित समय की सर्वाधिक आश्चर्यपूर्ण कृति है।'' इस संविधान की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(1) निर्मित एवं लिखित संविधान : अमेरिका का संविधान सन् 1787 में निर्मित किया गया था अतः कहा जाता है कि अमेरिकी संविधान **विश्व का प्रथम लिखित संविधान** है। यद्यपि अमेरिका के संविधान का निर्माण फिलाडेल्फिया सम्मेलन में किया गया था तथापि इसका न्यायिक पुनरावलोकन, कांग्रेस द्वारा निर्मित अधिनियमों, संशोधनों, परम्पराओं तथा प्रशासनिक निर्णयों से निरन्तर विकास होता रहा है। यह संविधान एक निश्चित समय की कृति है न कि ब्रिटिश संविधान की भाँति क्रमिक विकास। निरन्तर विकसित हो रहे अमेरिकी संविधान का मूलभूत ढाँचा तथा दर्शन आज भी यथावत् है। इसलिए **लॉर्ड ब्राइस** ने अमेरिकी संविधान को विश्व के लिखित संविधानों में सर्वश्रेष्ठ माना है।

(2) सर्वाधिक संक्षिप्त संविधान : विश्व के लिखित संविधानों में संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान सर्वाधिक संक्षिप्त है। इस संविधान में मात्र 7 अनुच्छेद हैं जो ... के अनुसार—''इस संविधान में 4,000 शब्द हैं जो 10-12 पृष्ठों में मुद्रित हैं। ... घण्टे में पढ़े जा सकने वाले इस संविधान को सहजता से जेब में भी रखा जा सकता है।'' वस्तुतः अमेरिका का संविधान केवल केन्द्र या संघीय शासन व्यवस्था का उल्लेख करता है क्योंकि राज्यों में पृथक् संविधान हैं जबकि भारत का संविधान 395 अनुच्छेदों से युक्त एक विशाल संविधान इसलिए बना है कि इसमें राज्यों तथा केन्द्र के वर्णन सहित अनेक बातें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। अमेरिकी संविधान केवल मूलभूत प्रावधानों का उल्लेख करता है। विस्तृत व्याख्या प्रशासन तंत्र, कांग्रेस तथा न्यायिक पुनरावलोकन के आधार पर निर्भर करती है। सुप्रसिद्ध राजनीतिशास्त्री **हैरोल्ड जिंक** का कहना है—''अमेरिकी संविधान को स्थायित्व प्रदान करने का बहुत श्रेय इसकी संक्षिप्तता को ही है।'' स्थायित्व के अतिरिक्त इसकी संक्षिप्त व्याख्याओं के कारण भविष्य की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप शासन तंत्र को ढालना भी सहज बन सका है। लेकिन संक्षिप्त होने के कारण लोक सेवाओं में लूट प्रणाली का जन्म हुआ क्योंकि संविधान इस विषय पर मौन है। इसी प्रकार केन्द्र-राज्य विधायी शक्तियों के बँटवारे पर होने वाले विवाद भी संविधान की कमी को प्रदर्शित करते हैं लेकिन न्यायालयों ने इस सम्बन्ध में निहित शक्तियों के सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) को प्रमुखता प्रदान कर दी है।

(3) जन सम्प्रभुता पर आधारित : वर्तमान अमेरिकी संविधान जनसाधारण की शक्ति, इच्छा तथा सम्प्रभुता को महत्त्व प्रदान करता है जबकि पूर्व के 'परिसंघ के प्रलेख' में राज्यों में सम्प्रभुता निहित की गई थी। वर्तमान संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि—''हम संयुक्त राज्य अमेरिका के लोग, अधिक शक्तिशाली संघ बनाने, न्याय की स्थापना, आन्तरिक शांति की प्राप्ति, सामान्य प्रतिरक्षा की व्यवस्था करने, सामान्य कल्याण में वृद्धि करने एवं अपने और अपनी सन्तानों हेतु स्वतंत्रता के वरदान को सुरक्षित रखने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के इस संविधान को अंगीकार करते हैं।'' चूँकि संविधान का निर्माण जन प्रतिनिधियों द्वारा ही किया गया था तथा अन्तिम स्वीकृति जनता ने ही दी थी अतः लोकतंत्र में 'जन' ही सम्प्रभु है।

(4) संविधान की सर्वोच्चता : अमेरिकी संविधान के अनुच्छेद-6 में यह वर्णन है कि—''यह संविधान और इसके अनुसार बनाए गए सभी कानून एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के प्राधिकार के अधीन की गई अथवा भविष्य में की जाने वाली सभी सन्धियाँ, देश का सर्वोच्च कानून होगा और प्रत्येक राज्य के न्यायाधीश उससे बाध्य होंगे। कभी भी राज्य का संविधान या कानून कोई भी बात जो इस संविधान के विरुद्ध होगी, अवैध समझी जाएगी।'' इस प्रकार शासन के तीनों अंग यथा—व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका एवं सरकार की समस्त इकाइयाँ इस संविधान के अधीन हैं। **के.सी. व्हीयर** सहित बहुत से विद्वानों का मानना है कि अमेरिकी नागरिक अपने संविधान के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं जो विश्व में अन्यत्र कम ही देखने को मिलती है।

(5) कठोर संविधान : संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय शासन व्यवस्था अपनाने के कारण स्वाभाविक रूप से कठोर संविधान बनाया गया है। सम्भवतः संविधान निर्माताओं ने राज्यों की आन्तरिक विविधताओं तथा अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य के सम्भावित परिवर्तनों को देखते हुए यह कदम उठाया था। अमेरिकी कांग्रेस सामान्य कानून सरलता से निर्मित कर सकती है किन्तु संविधान-संशोधन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है। इसी कारण अमेरिकी संविधान अत्यधिक कठोर माना जाता है। अमेरिकी संविधान की कठोरता का प्रमाण यह है कि विगत 200 वर्षों से भी अधिक समय में इस संविधान में मात्र 27 संशोधन किए जा सके हैं जबकि संविधान संशोधन के पाँच हजार से भी अधिक प्रस्ताव आ चुके हैं। संविधान के शुरुआती 10 संशोधन, नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करने के लिए किए गए थे।

संविधान संशोधन की विधियाँ इस प्रकार हैं—

(i) संविधान संशोधन के प्रस्ताव को कांग्रेस के दोनों सदन, दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित करें तथा तीन चौथाई राज्यों के विधानमण्डल उसका अनुसमर्थन करें। (सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि कांग्रेस में मत देने वाले सदस्यों की संख्या को आधार माना जाए न कि सदन के समस्त सदस्यों को।)

(ii) दूसरी विधि के अनुसार दो तिहाई राज्यों के विधानमण्डल, कांग्रेस से संविधान संशोधन हेतु प्रार्थना करें। ऐसी स्थिति में कांग्रेस एक अधिवेशन बुलाकर प्रस्ताव को पारित करेगी तथा यह प्रस्ताव तीन चौथाई राज्यों के विधानमण्डलों के अधिवेशन में स्वीकृत होने पर ही मान्य होगा।

इस प्रकार संविधान की दूसरी विधि अत्यधिक जटिल है। यही कारण है कि अभी तक मात्र एक (21वाँ संशोधन) संविधान संशोधन दूसरी विधि से हुआ है। अमेरिकी संविधान संशोधन प्रक्रिया में राष्ट्रपति की कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं है। इसके अलावा संशोधन के क्रम में कांग्रेस द्वारा निर्णय लेने की अवधि भी निश्चित नहीं है। कोई राज्य एक बार संविधान-संशोधन प्रस्ताव के पक्ष में मत देने के पश्चात् उसे वापस नहीं कर सकता है। संविधान संशोधन की इस जटिल प्रक्रिया की प्रायः आलोचना होती रही है क्योंकि 16वाँ संशोधन 43 बार तथा 17वाँ संशोधन 198 बार प्रयत्न करने के पश्चात् पारित हो सके थे। इस प्रक्रिया में जनता की भूमिका भी निश्चित नहीं है। मात्र 35 सीनेटर तथा 13 राज्य (चाहे कितने ही छोटे हों) प्रस्ताव को पुष्टि न कर उसे निरर्थक बना सकते हैं। यही कारण है कि बहुत से निर्णय केवल न्यायिक व्याख्याओं तथा प्रशासनिक कार्यों के दौरान हो गए हैं यद्यपि उनकी प्रकृति संवैधानिक संशोधन जैसी है। अभी तक किए गए संशोधन महत्वपूर्ण तथा सर्वमान्य प्रकृति के हैं। संविधान संशोधनों के माध्यम से मौलिक अधिकार (प्रथम 10 संशोधन), राष्ट्रपति-उपराष्ट्रपति पृथक् चुनाव (12वाँ), दास प्रथा समाप्ति (13वाँ), सीनेट में प्रत्यक्ष निर्वाचन (17वाँ), राष्ट्रीय मद्य निषेध (18वाँ), मद्य निषेध समाप्त (20वाँ) तथा 21 के स्थान पर 18 वर्ष की आयु पर मतदान (26वाँ) इत्यादि प्रावधान किए गए हैं।

(6) गणतंत्र की स्थापना : अमेरिका के संविधान के अनुच्छेद-4 के भाग-4 में यह प्रावधान किया गया है कि संघीय एवं प्रांतीय दोनों स्तरों पर गणतंत्र (Republic) की स्थापना होगी। गणतंत्रात्मक व्यवस्था में शासन का अध्यक्ष पद वंशानुगत परम्परा पर आधारित न होकर जनता द्वारा निर्वाचित होता है तथा शासनाध्यक्ष की समस्त शक्तियों का स्रोत जनता ही होती है। संघीय स्तर पर राष्ट्रपति तथा राज्यों में गवर्नर का चयन जनता करती है अतः अमेरिका में गणतंत्रात्मक व्यवस्था है।

(7) संघीय शासन व्यवस्था : सन् 1787 में निर्मित अमेरिकी परिसंघ में 13 संघीय इकाइयाँ (राज्य) सम्मिलित थीं जिनकी संख्या अब 50 तक पहुँच चुकी है। संघीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य दोनों स्तरों पर पृथक् सरकारें होती हैं, शक्तियों का

स्पष्ट विभाजन होता है, संविधान की सर्वोच्चता रहती है, सर्वोच्च न्यायालय होता है तथा संघ में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाता है। अमेरिकी शासन व्यवस्था में यह सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। अमेरिकी संविधान में संघीय (केन्द्रीय) सरकार की शक्तियों अथवा विषयों का स्पष्ट वर्णन किया गया है तथा अवशिष्ट शक्तियाँ स्वतः ही राज्यों के अधीन मानी गई हैं। इसके अतिरिक्त दोहरी नागरिकता का भी प्रावधान किया गया है।

(8) अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली : जिस प्रकार संसदीय लोकतंत्रात्मक प्रणाली के लिए ब्रिटेन को आदर्श उदाहरण माना जाता है उसी प्रकार अध्यक्षीय शासन प्रणाली के सम्बन्ध में अमेरिका की चर्चा होती है। जहाँ संसदीय शासन प्रणाली में दोहरी कार्यपालिका (नाममात्र की एवं वास्तविक) कार्य करती है, वहीं अध्यक्षीय प्रणाली में एकल कार्यपालिका होती है। अमेरिका में राष्ट्रपति को कार्यपालिका की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं जो मूलतः लॉक एवं **माण्टेस्क्यू** के शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित हैं। राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के लिए जनता द्वारा चुना जाता है जो विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। राष्ट्रपति के सहयोगी मंत्रीगण, विधायिका के सदस्य भी नहीं होते हैं। वे केवल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(9) न्यायिक पुनरावलोकन : संघीय शासन व्यवस्थाओं में न्यायपालिका की सर्वोच्चता एक प्राथमिक आवश्यकता होती है ताकि संविधान की व्याख्या एवं केन्द्र-राज्य विवादों के क्रम में निष्पक्षता बनी रह सके। ब्रिटेन में जहाँ संसद की सर्वोच्चता है वहीं अमेरिका में न्यायपालिका को उच्च स्थान दिया गया है। यद्यपि अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार न्यायपालिका को परम्परा के रूप में प्राप्त हो चुका है तथापि वास्तव में यह संवैधानिक प्रावधान नहीं है। विगत दो शताब्दियों में अमेरिकी न्यायाधीशों ने राष्ट्रपति, कांग्रेस, राज्य विधानमण्डलों तथा प्रशासनिक संगठनों के अनेक कानूनों एवं निर्णयों की समीक्षा कर क्रांतिकारी निर्णय दिए हैं। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए **मुख्य न्यायाधीश ह्यूज** ने कहा था—"हम (न्यायपालिका) संविधान के अन्तर्गत हैं लेकिन संविधान वैसा ही है जैसा कि न्यायाधीश कहते हैं।"

(10) मौलिक अधिकार : यद्यपि अमेरिका की स्वतंत्रता के घोषणा पत्र में मौलिक अधिकारों की स्पष्ट झलक दिखती है किन्तु फिलाडेल्फिया सम्मेलन में निर्मित किए गए मूल संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश नहीं था। सन् 1791 में संविधान में किए गए **प्रथम दस संशोधनों के माध्यम से** संविधान में विधिवत् मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया। इसके पश्चात् 13वें, 14वें तथा 15वें संशोधनों के द्वारा भी मौलिक अधिकारों में वृद्धि की गई। अमेरिकी संविधान के अनुसार मौलिक अधिकार अग्रांकित हैं—

(i) धर्म, भाषण, प्रेस तथा आवेदन पत्र की स्वतंत्रता (पहला संशोधन)
(ii) शस्त्र रखने या धारण करने का अधिकार (दूसरा संशोधन)
(iii) शांतिकाल में कोई भी सैनिक किसी मकान में स्वामी की अनुमति के बिना

तथा युद्धकाल में राज्यादेश की निर्धारित प्रक्रिया अपनाए बिना नहीं [illegible] सकता है। (तीसरा संशोधन)

(iv) व्यक्ति, परिवार, घर तथा सामान की अनुचित तलाशी नहीं ली जाएगी। (चौथा संशोधन)

(v) उचित कानूनी प्रक्रिया को अपनाए बिना किसी के जीवन या सम्पत्ति को हानि नहीं पहुँचाई जा सकती है। एक अपराध के लिए एक बार सजा तथा स्वयं के विरुद्ध गवाही की बाध्यता से मुक्ति रहेगी। (पाँचवाँ संशोधन)

(vi) सभी फौजदारी अभियोगों में अभियुक्त को तुरन्त तथा सार्वजनिक न्यायिक कार्यवाही का अधिकार होगा तथा निष्पक्ष जूरी एवं वकील की सहायता मिल सकेगा। (छठा संशोधन)

(vii) बीस डॉलर से अधिक दीवानी मामलों में जूरी की माँग करने का अधिकार। (सातवाँ संशोधन)

(viii) अत्यधिक जमानत, अत्यधिक जुर्माने तथा अत्यधिक कठोर दण्ड से सुरक्षा। (आठवाँ संशोधन)

(ix) ऐसे मानवीय अधिकार जो इस संविधान में वर्णित नहीं हैं तथा मानव जीवन के लिए आवश्यक है, वे भी अमेरिकी नागरिकों को प्रदत्त किए जा सकेंगे। (नवाँ संशोधन)

(x) ऐसी शक्तियाँ जो संघ सरकार को नहीं दी गई हैं तथा राज्यों के लिए मना नहीं की गई हैं वे राज्यों या जनता के लिए सुरक्षित होंगी। (दसवाँ संशोधन)

(xi) दास प्रथा पर पूर्ण प्रतिबन्ध। (तेरहवाँ संशोधन)

(xii) कानून के समक्ष सभी को समान संरक्षण। (चौदहवाँ संशोधन)

(xiii) जाति, रंग या प्राचीन दासत्व के आधार पर नागरिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकेगा और न मताधिकार छीना जा सकेगा। (पन्द्रहवाँ संशोधन)

वास्तव में अमेरिकी संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों ने सम्पूर्ण विश्व को एक राह दिखाई है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रावधान यह है कि ये अधिकार भी मौलिक अधिकारों में सम्मिलित हैं जो संविधान में वर्णित नहीं हैं लेकिन राष्ट्रहित में मौलिक अधिकार कभी भी असीमित नहीं हो सकते हैं।

(11) दोहरी नागरिकता : संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय शासन व्यवस्था है अतः वहाँ संघ एवं राज्य दोनों स्तरों पर नागरिकता का प्रावधान है अर्थात् संयुक्त राज्य अमेरिका का निवासी राष्ट्रीय नागरिकता तथा सम्बन्धित राज्य जहाँ वह रहता है, की नागरिकता भी धारण करता है।

(12) शक्ति-पृथक्करण : अमेरिकी संविधान के किसी भी अनुच्छेद में स्पष्टतः यह वर्णित नहीं किया गया है कि शासन के तीनों अंग पूर्णतया पृथक् होंगे तथापि शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त क्रियान्वित दिखाई देता है। **अनुच्छेद-1** कानून निर्माण की समस्त शक्तियाँ कांग्रेस में निहित करता है जबकि **अनुच्छेद-2** के द्वारा कार्यपालिका-शक्तियाँ राष्ट्रपति को सौंपी गई हैं तथा **अनुच्छेद-3** में प्रावधान है कि समस्त न्यायिक शक्तियाँ सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य अधीनस्थ न्यायालयों में होंगी। शासन की शक्तियों के केन्द्रीकरण के माध्यम से निरंकुशता का प्रसार होता है अतः नागरिक स्वतंत्रता को संकट उत्पन्न हो सकता है। वस्तुतः अमेरिकी शासन व्यवस्था में शासन के तीनों अंगों को एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक् नहीं किया गया है बल्कि इन्हें एक-दूसरे से स्वतंत्र रखा गया है। तीनों अंग एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं बल्कि स्वतंत्रता प्राप्त है। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता करती है तथा उसे निर्धारित अवधि से पूर्व हटाया नहीं जा सकता है। महाभियोग प्रक्रिया से राष्ट्रपति को हटाया तो जा सकता है लेकिन यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल तथा समय साध्य है। इसी प्रकार राष्ट्रपति कांग्रेस को भंग नहीं कर सकता है। राष्ट्रपति, न्यायाधीशों की नियुक्ति तो करता है किन्तु उन्हें सिवाय महाभियोग के साधारण परिस्थिति में हटा नहीं सकता है। इसी प्रकार विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका स्वतंत्र रहकर कार्य करती हैं। हरमन फाइनर के शब्दों में—"अमेरिका का संविधान जानबूझकर बनाया गया शक्ति-पृथक्करण का एक विस्तृत लेख है जो इस सिद्धान्त पर चलने वाला विश्व का अग्रणी राज्य शासन है।"

(13) अवरोध एवं सन्तुलन : शासन के तीनों अंगों को जहाँ एक ओर परस्पर स्वतंत्र रखा गया है वहीं दूसरी ओर उन्हें आपस में नियंत्रित भी किया गया है। शासन व्यवस्था को प्रभावी, व्यावहारिक, कुशल तथा उत्तरदायी बनाने के लिए अवरोध एवं सन्तुलन (Check & Balance) का सिद्धान्त भी अपनाया गया है। संविधान निर्माताओं को यह स्पष्ट भान था कि किसी भी अंग की पूर्ण स्वतंत्रता या जवाबदेयता से मुक्ति का तात्पर्य निरंकुशता का प्रसार होगा। अतः तीनों अंगों को स्वतंत्रता के साथ-साथ नियंत्रण का स्वाद भी चखना पड़ता है।

(i) राष्ट्रपति सर्वोच्च कार्यपालक सत्ता अवश्य है किन्तु बजट का अनुमोदन कांग्रेस करती है। राष्ट्रपति सर्वोच्च सेनाध्यक्ष है तथा युद्ध की घोषणा कर सकता है किन्तु इस घोषणा की पुष्टि कांग्रेस ही कर सकती है। इसी प्रकार राष्ट्रपति द्वारा की गई संधियों तथा उच्च पदों पर नियुक्तियों को सीनेट के दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थन मिलना आवश्यक है। महाभियोग प्रक्रिया भी कांग्रेस का अन्तिम तथा सर्वोच्च प्रभावी अस्त्र है।

(ii) राष्ट्रपति के किसी भी आदेश या कृत्य को न्यायपालिका द्वारा परीक्षण तथा व्याख्या के अन्तर्गत लिया जा सकता है। यदि न्यायिक पुनरावलोकन में ऐसा आदेश संविधान विरुद्ध पाया जाए तो उसे असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है।

(iii) कांग्रेस पर भी राष्ट्रपति का किंचित् नियंत्रण होता है। उदाहरणस्वरूप कोई भी विधेयक (Bill) राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना अधिनियम (Act) नहीं बन सकता है क्योंकि राष्ट्रपति के पास विलम्बकारी निषेधाधिकार (Suspensive

Veto) तथा जेबी निषेधाधिकार (Pocket Veto) होते हैं। इसी तरह राष्ट्रपति कांग्रेस को संदेश भेजकर, राष्ट्र के नाम अपील करके तथा कांग्रेस के सदस्यों से सम्पर्क करके (राजनीतिक पार्टी के नेता के रूप में) वह कानून निर्माण प्रक्रिया में प्रभाव डाल सकता है।

(iv) कांग्रेस द्वारा निर्मित कानूनों का न्यायपालिका, पुनरावलोकन कर नियंत्रण स्थापित करती है।

(v) न्यायपालिका पर भी कांग्रेस तथा कार्यपालिका का नियंत्रण रखा गया है। कांग्रेस ही न्यायाधीशों की संख्या, वेतन, भत्ते तथा सेवा शर्तें निश्चित करती है तथा राष्ट्रपति द्वारा की गई न्यायाधीशों की नियुक्तियों का सीनेट अनुमोदन करती है। इसी प्रकार संघीय न्यायालय का अपीलीय अधिकार क्षेत्र भी कांग्रेस द्वारा सीमित किया जा सकता है। न्यायाधीशों पर महाभियोग लगाकर उन्हें पद से हटाने की शक्ति भी कांग्रेस में निहित है।

शक्ति-पृथक्करण तथा अवरोध एवं सन्तुलन के इन सिद्धान्तों के प्रवर्तन के पश्चात् भी अमेरिकी शासन व्यवस्था त्रुटिरहित नहीं है क्योंकि अव्यवस्था, कुप्रशासन, असफलता तथा विवादों के समय तीनों अंग एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं अतः समन्वय में कमी आती है।

(14) परम्पराएँ एवं रूढ़ियाँ : अमेरिकी संविधान अत्यन्त संक्षिप्त तथा सरल है जिसमें शासन के बहुत से पक्ष विस्तारपूर्वक एवं स्पष्टता से वर्णित नहीं किए गए हैं अतः संविधान-संशोधनों, कांग्रेस के कानूनों, प्रशासनिक आदेशों, न्यायिक व्याख्याओं के साथ-साथ कतिपय ऐसी परम्पराएँ भी विकसित हो गई हैं जो अमेरिकी जनमानस, शासन व्यवस्था तथा राजनीतिक दलों द्वारा स्वीकार की जा चुकी हैं।

(i) संविधान में राष्ट्रपति के मंत्रिमण्डल का प्रावधान नहीं है। संविधान में कहा गया है कि—"प्रत्येक कार्यकारी विभाग के प्रमुख अधिकारी से राष्ट्रपति लिखित रूप में विचार (परामर्श) माँग सकता है।" लेकिन राष्ट्रपति ने विभागीय मंत्रियों की नियुक्ति करनी प्रारम्भ कर दी जो मंत्रिमण्डल कहलाता है।

(ii) राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष विधि से न होकर प्रत्यक्ष विधि से होने लगा है जो संविधान में वर्णित आदर्शों के विपरीत होते हुए भी सर्वमान्य है।

(iii) नए राष्ट्रपति द्वारा पदग्रहण करने पर सभी राजदूतों द्वारा त्यागपत्र देने की परम्परा बन चुकी है ताकि राष्ट्रपति अपनी इच्छा से राजदूत नियुक्त कर सके।

(iv) परम्परानुसार सभी प्रत्यक्ष निर्वाचन मंगलवार को होते हैं।

(v) सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णय शुक्रवार को सुनाता है।

(vi) परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति को 'मिस्टर प्रेसीडेण्ट' तथा गवर्नर को 'हिज एक्सीलेन्सी (महामहिम)' सम्बोधन दिया जाता है।

(vii) कनाडा के संविधान में ईश्वर का वर्णन है जबकि अमेरिकी संविधान में कहीं

भी ईश्वर का उल्लेख नहीं है जबकि अमेरिकी कांग्रेस का सभा भवन ईश्वरीय सत्ता को श्रद्धापूर्वक स्वीकारता है। अध्यक्ष के आसन के ऊपर दीवार पर लिखा गया है **'In God We Trust (हमें ईश्वर में विश्वास है।)'**

(viii) अमेरिकी सीनेट में एक परम्परा के अनुसार किसी भी विधेयक या प्रस्ताव पर कोई भी सदस्य कितनी ही देर तक बोल सकता है। इस परम्परा का दुरुपयोग करते हुए बहुत से सदस्य कानून निर्माण में सुनियोजित व्यवधान उत्पन्न करते हैं जबकि अध्यक्ष (उप राष्ट्रपति) उन्हें रोकता नहीं है। यह व्यवस्था **फिलिबस्टर** (Filibuster) कहलाती है।

(ix) अमेरिकी राज्यों में गवर्नर को यह शक्ति है कि वह निर्वाचन जिला क्षेत्रों का सीमांकन करे। इस शक्ति का दुरुपयोग करते हुए गवर्नर ऐसा सीमांकन करते हैं कि उनके दल के समर्थकों को अधिक लाभ मिले। राज्यपाल 'जेरी' के नाम से प्रचलित यह परम्परा **जेरीमेण्डर** (Gerrymander) कहलाती है। न्यायिक निर्णयों से यह परम्परा अब कम हो चुकी है।

(x) **सीनेट का शिष्टाचार :** अमेरिकी राष्ट्रपति को बहुत से उच्च पदों पर नियुक्ति करने का अधिकार प्राप्त है। इन अधिकारियों को तीन श्रेणियों में रखा गया है—

- राजदूत तथा राजनयिक।
- केन्द्रीय विभागों में मंत्री, सचिवालयी अधिकारी तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश।
- राज्यों के कार्य करने वाले केन्द्रीय अधिकारी (आयकर तथा पोस्टल सर्विस)।

इन अधिकारियों की नियुक्ति से पूर्व सीनेट की स्वीकृति आवश्यक है। उपर्युक्त प्रथम दो श्रेणियों के अधिकारियों की सूची सीनेट के पूर्ण सदन में प्रस्तुत की जाती है जबकि अन्तिम श्रेणी के अधिकारियों की नियुक्ति की सूची सीनेट में रखने से पूर्व राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्य के सीनेटरों से परामर्श कर लेता है। ऐसी परिस्थिति में सीनेट के अन्य सदस्य भी अवरोध उत्पन्न नहीं करते हैं तथा सूची को स्वीकृति दे देते हैं। राष्ट्रपति सीनेटरों के प्रति और सीनेट के सदस्य, साथी सदस्यों के प्रति शिष्टाचार प्रदर्शित करते हैं, यही 'सीनेट का शिष्टाचार' कहलाता है। इस प्रकार अमेरिका में संविधान की कई परम्पराएँ विकसित हो चुकी हैं। इस सम्बन्ध में प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन ने कहा था—"सरकार के वास्तविक चरित्र के निर्धारण में समय और परम्पराएँ उतनी ही आवश्यक हैं जितनी कि वे किसी मानवीय संस्था के लिए हो सकती हैं।"

शासन व्यवस्था (System of Government)

संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय शासन व्यवस्था का प्रचलन है अतः केन्द्र एवं प्रांत दोनों स्तरों पर पृथक् सरकारें कार्यरत हैं। संघीय शासन व्यवस्था का स्वरूप अग्र प्रकार है—

संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन व्यवस्था

[राज्य स्तर पर पृथक् व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका हैं। स्थानीय संस्थाएँ काउण्टी, सिटी, टाउनशिप तथा गाँवों में विभक्त हैं तथा राज्यों के संविधान के अनुसार संचालित होती हैं।]

कानून निर्माण तथा संशोधन की सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न निकाय अर्थात् व्यवस्थापिका के रूप में 'कांग्रेस' होती है। (अमेरिका में संघीय तथा प्रान्तीय विधायिका भवनों को 'Capitol' कहा जाता है) अमेरिका की कांग्रेस के दो सदन हैं। उच्च सदन को सीनेट (Senate) कहा जाता है। सीनेट में प्रत्येक राज्य से दो प्रतिनिधि प्रत्यक्षतः जनता द्वारा चुनकर भेजे जाते हैं। अमेरिका में 50 राज्य हैं अतः सीनेट में सदस्यों की संख्या 100 है। सन् 1912 में 17वें संविधान संशोधन से पूर्व सीनेट सदस्यों का चयन राज्य विधानमण्डल ही करते थे। किन्तु आपसी विवाद तथा भ्रष्टाचार बढ़ने के पश्चात् सीनेटरों का निर्वाचन जनता द्वारा कराए जाने का प्रावधान किया गया है। सीनेट एक स्थायी सदन है। प्रत्येक सीनेटर का कार्यकाल 6 वर्ष होता है तथा प्रति दो वर्ष पश्चात् एक तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। अवकाश प्राप्त सीनेटरों के पुनर्निर्वाचन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। कांग्रेस का निम्न सदन **प्रतिनिधि सभा** (House of Representatives) कहलाता है जिसका कार्यकाल 2 वर्ष का होता है। इस सदन का कार्यकाल न तो घटाया जा सकता है और न बढ़ाया जा सकता है। शुरू में जहाँ सीनेट (उच्च सदन) में 26 सदस्यों का प्रावधान था वहीं प्रतिनिधि सभा में मात्र 65 सदस्यों का उपबन्ध किया गया था। सन् 1792 में प्रत्येक 30 हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य का निर्वाचन होता था। कालान्तर में जनसंख्या वृद्धि के साथ सदस्यों की संख्या बढ़ती गई तथा सन् 1962 में यह संख्या 435 निश्चित कर दी गई।

कानून निर्माण, महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति, सन्धियों को स्वीकृति, जाँच-पड़ताल करने की शक्ति तथा महाभियोग प्रस्तावों की जाँच से सम्बन्धित न्यायिक शक्ति इत्यादि सीनेट के हथियार हैं तो दूसरी ओर प्रतिनिधि सभा को सीनेट की तुलना में कम शक्तिशाली माना जाता है जबकि अन्य देशों की प्रतिनिधि सभा अधिक शक्तिशाली होती है। कानून निर्माण, संविधान संशोधन, बजट स्वीकृति तथा कतिपय जाँच सम्बन्धी न्यायिक शक्तियों के अतिरिक्त प्रतिनिधि सभा को यह भी अधिकार है कि वह राष्ट्रपति को निर्वाचित करे यदि निर्वाचन मण्डल द्वारा हुए चुनाव में किसी भी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत न मिला हो। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधि सभा प्रथम तीन उम्मीदवारों में से एक का निर्वाचन करती है। अन्य विधायिकाओं की भाँति अमेरिकी कांग्रेस की भी अनेक समितियाँ होती हैं जिनमें सदस्यों का चयन सदनों में उनकी संख्या (राजनीतिक दल) के आधार पर किया जाता है।

कांग्रेस द्वारा निर्मित कानूनों, संविधान संशोधनों, राष्ट्रपति के आदेशों तथा प्रशासनिक नियमों इत्यादि का पुनरावलोकन स्वतंत्र न्यायपालिका करती है। संघीय न्यायपालिका के अन्तर्गत दो प्रकार के न्यायालय हैं। **व्यवस्थापक न्यायालय** वे हैं जो कांग्रेस द्वारा अपनी शक्तियों के माध्यम से गठित किए जाते हैं। ये न्यायालय कांग्रेस द्वारा निर्मित कानूनों के क्रियान्वयन में प्रशासन की सहायता करते हैं जैसे—संयुक्त राज्य कस्टम न्यायालय। इन न्यायालयों के न्यायाधीशों को साधारण प्रशासनिक आदेशों से हटाया जा सकता है। दूसरे प्रकार के न्यायालय **संवैधानिक न्यायालय** कहलाते हैं जिनका गठन संविधान के तीसरे अनुच्छेद के अधीन किया गया है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय, तत्पश्चात् संघीय अपील न्यायालय तथा जिला न्यायालय इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। संघीय सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि वह संघीय या प्रांतीय विधानमण्डलों के कानूनों को अवैध घोषित कर दे यदि वे संविधान के विरुद्ध हों। राज्यों में भी पृथक् से न्यायिक तंत्र कार्यरत है जो सम्बन्धित राज्य के संविधान के अनुसार संचालित होता है लेकिन संघीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय सम्पूर्ण राष्ट्र पर लागू होते हैं। न्यायधीशों की सेवानिवृत्ति आयु निश्चित नहीं है। वे स्वेच्छा से या मानसिक स्थिति बिगड़ने पर ही रिटायर होते हैं।

अध्यक्षीय शासन प्रणाली
(Presidential System)

संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय एवं प्रांतीय दोनों स्तरों पर अध्यक्षीय शासन प्रणाली प्रचलित है। जिस प्रकार संसदीय व्यवस्था में ब्रिटेन का नाम अग्रणी है उसी प्रकार अध्यक्षीय शासन प्रणाली में अमेरिका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। भारत एवं ब्रिटेन, जहाँ संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया है, में कार्यपालिका के दो रूप हैं। नाममात्र की कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति (ब्रिटेन में सम्राट) होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका के रूप में प्रधानमंत्री होता है। अध्यक्षीय शासन प्रणाली में इकहरी कार्यपालिका होती है। इसी प्रकार अध्यक्षीय शासन प्रणाली में शासनाध्यक्ष का निर्वाचन जनता द्वारा होता है। वह (राष्ट्रपति) विधायिका का अंग नहीं होता है और न ही विधायिका के प्रति

उत्तरदायी बनाया गया है। अध्यक्षीय एवं संसदीय शासन प्रणाली के मध्य अन्तर को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

संसदीय प्रणाली

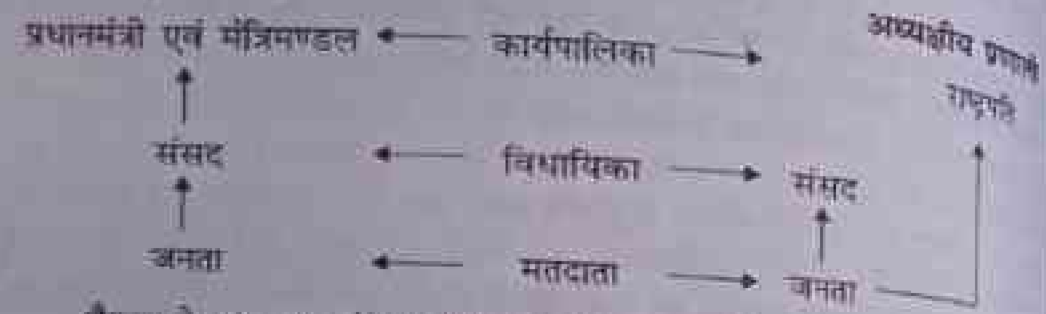

गैटल के अनुसार—"अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वह है, जिसमें कार्यपालिका प्रधान अपने कार्यकाल और बहुत कुछ सीमा तक अपनी नीतियों और कार्यों के लिए विधायिका से स्वतंत्र होता है।" संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति अपने कार्य स्वयं अथवा मंत्रिमण्डल के सदस्यों द्वारा निर्वाहित करता है। मंत्रिमण्डल के सदस्य न तो कांग्रेस के सदस्य होते हैं, न ही वे कांग्रेस की कार्यवाही में भाग लेते हैं और न ही कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अमेरिकी अध्यक्षीय प्रणाली की निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

(1) शक्ति-पृथक्करण : अध्यक्षीय शासन प्रणाली में विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के मध्य शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया जाता है। शासन के तीनों अंग एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं यद्यपि कुछ नियंत्रण-सिद्धान्त भी बने हुए हैं। संसदीय शासन व्यवस्था में विधायिका में ही वास्तविक कार्यपालिका समाहित रहती है। ऐसा अध्यक्षीय प्रणाली में नहीं होता है। अमेरिकी कांग्रेस विधि निर्माण में स्वतंत्र है जबकि राष्ट्रपति कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग में स्वतंत्र है। राष्ट्रपति के मंत्रिमण्डल के सदस्य न तो कांग्रेस में विधेयक प्रस्तुत करते हैं और न ही कांग्रेस द्वारा बनाए जा रहे कानूनों में बाधा उत्पन्न करते हैं।

(2) निश्चित कार्यकाल : अध्यक्षीय शासन प्रणाली में विधायिका तथा कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित रहता है। अमेरिकी राष्ट्रपति चार वर्ष के लिए चुना जाता है जिसे सिवाय महाभियोग के कांग्रेस पद से नहीं हटा सकती है और न ही राष्ट्रपति कांग्रेस को भंग कर सकता है। अमेरिकी कांग्रेस का उच्च सदन अर्थात् सीनेट स्थायी सदन है जिसमें सीनेटर का कार्यकाल 6 वर्ष निश्चित है जबकि निम्न सदन अर्थात् प्रतिनिधि सभा का कार्यकाल 2 वर्ष निश्चित है। जिस प्रकार भारत में सन् 1989 से सन् 1999 के मध्य पाँच बार लोक सभा चुनाव हुए हैं ऐसी स्थिति अमेरिका में सम्भव नहीं है। अमेरिकी राष्ट्रपति को संसदीय प्रणाली वाले प्रधानमंत्रियों की भाँति विश्वास मत या अविश्वास प्रस्ताव का सामना नहीं करना पड़ता है।

(3) एकल कार्यपालिका : अमेरिका में दोहरी कार्यपालिका नहीं है बल्कि एकल या इकहरी कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति पदस्थापित होता है। ब्रोगन के अनुसार—"अमेरिकी राष्ट्रपति ऐसा सम्राट है जो स्वयं ही अपना प्रधानमंत्री है" अर्थात् वहाँ प्रधानमंत्री-पद का अस्तित्व ही नहीं है बल्कि राष्ट्रपति ही कार्यपालिका का सर्वेसर्वा होता है। राज्याध्यक्ष, शासनाध्यक्ष तथा कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति कार्य करता है। दोहरी कार्यपालिका (जैसे भारत) की उलझनों का सामना अमेरिका को नहीं करना पड़ता है।

गुण (Merits)

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के निम्नांकित गुण माने जाते हैं—

(1) स्थिर शासन : चूँकि अध्यक्षीय शासन प्रणाली में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन रहता है तथा विधायिका एवं कार्यपालिका एक-दूसरे के कार्यक्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करती हैं अतः शासन की स्थिरता बनी रहती है। राष्ट्रपति तथा विधायिका दोनों ही अपना कार्यकाल पूरा करती हैं। यद्यपि राष्ट्रपति को महाभियोग प्रक्रिया द्वारा हटाया जा सकता है किन्तु ऐसा अत्यन्त विकट परिस्थितियों में ही किया जाता है। इसी प्रकार राष्ट्रपति प्रतिनिधि सभा को समय से पूर्व विघटित नहीं कर सकते हैं। कार्यपालिका एवं विधायिका का निश्चित कार्यकाल शासन को स्थिरता प्रदान करता है जिससे कानून, नीतियों एवं कार्यक्रमों का निरन्तर क्रियान्वयन सम्भव हो पाता है। यही कारण है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली के स्थान पर अध्यक्षीय प्रणाली को अपनाने के लिए बहस होती रहती है क्योंकि विगत एक दशक में अस्थिर सरकारें राष्ट्रीय विकास में बहुत कम योगदान कर पाई हैं।

(2) प्रभावी शासन संचालन : अध्यक्षीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति के पास समय, विकल्प तथा स्वतंत्रता पर्याप्त मात्रा में होती है क्योंकि उसे राजनीतिक संकीर्णताओं या बाध्यताओं का सामना नहीं करना पड़ता है जबकि संसदीय प्रणाली में (विशेषतः अल्पमत सरकारों में) प्रधानमंत्री बहुमत बनाए रखने, सम्बन्धित राजनीतिक दल या दलों के आकाओं को प्रसन्न रखने तथा सदन में छींटाकशी से बचने में ही अपनी ऊर्जा नष्ट करता रहता है। राष्ट्रपति को यह स्वतंत्रता रहती है कि वह अपनी इच्छा से मंत्रियों का चयन करे तथा आवश्यकतानुसार प्रशासनिक फेरबदल करे। अध्यक्षीय शासन प्रणाली में चूँकि राष्ट्रपति का कार्यकाल भी सुनिश्चित होता है। अतः नौकरशाही भी मानसिक रूप में राष्ट्रपति की नीतियों को समझने एवं उन्हें कुशलतापूर्वक निष्पादित करने के लिए तैयार रहती है। संसदीय लोकतंत्र में अस्थिर सरकारों के चलते प्रायः नौकरशाही निरंकुश तथा लापरवाह हो जाती है क्योंकि उच्च स्तरीय नियंत्रण व्यवस्था प्रभावी नहीं रह पाती है। वास्तव में कल्याणकारी एवं संसदीय लोकतंत्रात्मक राज्यों में प्रजातंत्र एक धोखा है, वास्तव में शासन तो नौकरशाही करती है, लेकिन यह धारणा अध्यक्षीय प्रणाली में किंचित् उचित प्रतीत नहीं होती है।

(3) आपातकालीन स्थितियों में अधिक उपयुक्त : ऐसा माना जाता है कि अध्यक्षीय शासन प्रणाली की उपादेयता उस समय सिद्ध होती है जबकि तुरन्त कोई निर्णय लेना हो। एकल कार्यपालिका तथा शक्ति-पृथक्करण के कारण अध्यक्षीय प्रणाली में शासनाध्यक्ष नीतिगत निर्णय सहजता से कर लेता है जबकि संसदीय प्रणाली में बहुत अधिक चिन्तन, मनन तथा दीर्घ प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। अमेरिकी राष्ट्रपति को युद्ध अधिनियम के अन्तर्गत सेना की कमान संभालने तथा आवश्यकतानुसार निर्णय लेने की छूट प्रदान की गई है। युद्ध की घोषणा करने तथा संचालन करने के अतिरिक्त अन्य कई आपात स्थितियों का सामना अध्यक्षीय शासन प्रणाली में बेहतर ढंग से होता आया है।

(4) राष्ट्रीय एकता में सहायक : अमेरिका विश्व का वह राष्ट्र है जहाँ सर्वाधिक राष्ट्रीयताओं के नागरिक निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त भाषा, धर्म, वंश, नस्ल सम्प्रदाय, जाति तथा अन्य सांस्कृतिक आधारों पर अमेरिका में विविधता परिलक्षित होती है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय एकता के सम्मुख चुनौतियाँ एवं बाधाएँ आती हैं लेकिन अध्यक्षीय शासन प्रणाली ने राष्ट्र को एकसूत्र में पिरोने में प्रभावी भूमिका निभाई है क्योंकि वहाँ न तो राजनीतिक दलों की अनगिनत संख्या है और न ही सामाजिक वैमनस्य का असीमित प्रसार हो पाता है। संसदीय लोकतंत्र में विधायिका में भी संकीर्ण राजनीतिक मानसिकता स्पष्ट दिखाई देती.है जिसका सीधा प्रभाव समाज पर पड़ता है।

(5) सन्तुलित सम्बन्ध : अध्यक्षीय प्रणाली में विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के बीच शक्तियों के स्पष्ट बँटवारे, एक-दूसरे से स्वतंत्रता के साथ नियंत्रण (Check & Balance) का भी प्रावधान रहता है। इस व्यवस्था के कारण शासन का कोई भी अंग व्यवस्था पर अधिक हावी नहीं हो पाता है तथा नागरिक-स्वतंत्रता बनी रहती है। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का कार्यक्षेत्र स्पष्ट रूप से विभाजित रहने के कारण संघर्ष एवं विवाद उस मात्रा में उत्पन्न नहीं होते हैं जितने कि संसदीय प्रणाली में होते हैं। जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों से युक्त विधायिका सशक्त अंग के रूप में कार्य करती है। जबकि संसदीय लोकतंत्र में विधायिका की भूमिका सीमित तथा अल्पप्रभावी होती जा रही है।

(6) अनावश्यक चुनाव-व्यय से मुक्ति : संसदीय शासन प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री की इच्छा से विधायिका को भंग किया जा सकता है, उसी प्रकार विधायिका में विश्वास खोते ही प्रधानमंत्री को पद त्याग करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में जबकि किसी एक दल का विधायिका में बहुमत न हो तो बार-बार सरकारें बनती-गिरती हैं। परिणामस्वरूप आम जनता एवं देश को नए चुनावों का सामना करना पड़ता है जो प्रशासनिक कार्यों को बाधित करता है तथा आर्थिक दृष्टि से एक बोझ सिद्ध होता है। इस प्रकार की समस्या अध्यक्षीय प्रणाली में उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि वहाँ मध्यावधि चुनावों का कोई प्रावधान नहीं होता है।

दोष (Demerits)

अध्यक्षीय शासन प्रणाली में जहाँ अनेक गुण व्याप्त हैं वहीं कमी अथवा दोष भी कम नहीं हैं। ये हैं—

(1) अनुत्तरदायी शासन : अध्यक्षीय शासन प्रणाली में शासन के तीनों अंगों को परस्पर स्वतंत्र रखने तथा शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के परिचालन के कारण उत्तरदायित्व की भावना में कमी आई है। राष्ट्रपति तथा उनका मंत्रिमण्डल कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है अत: वह निरंकुश शासन का पर्याय बन जाता है। विधायिका अधिक से अधिक कार्यपालिका की नीतियों एवं कृत्यों की निन्दा ही कर सकती है किसी प्रकार का दण्ड नहीं दे सकती है जबकि संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका को विधायिका के प्रति उत्तरदेय बनाया जाता है अत: निरंकुशता के स्थान पर उत्तरदायित्व का भाव बना रहता है।

(2) स्वेच्छाचारिता सम्भव : अध्यक्षीय प्रणाली में राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित होने तथा शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के अनुसरण में कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यक्षेत्र में स्वतंत्रता होने के परिणामस्वरूप शासन में स्वेच्छाचारिता का प्रसार हो सकता है क्योंकि उत्तरदायित्वों का बोध कम रहता है। **बैजहाट** के अनुसार—"एक बार शासनाध्यक्ष को निर्वाचित करने के पश्चात् चाहे वह उपयुक्त है अथवा नहीं, चाहे वह ठीक प्रकार से शासन करता है या नहीं, चाहे वह आपकी इच्छानुकूल शासन करे या नहीं, कानूनन आपको उसे रखना ही पड़ेगा।" इस बाध्यता के कारण कई बार अयोग्य एवं अनुत्तरदायी शासक को सहन करना पड़ सकता है। यद्यपि अध्यक्षीय प्रणाली वाले देशों में लोकतांत्रिक मूल्यों का अत्यधिक प्रसार हो चुका है तथा अधिसंख्य राष्ट्रपतियों ने कुशलतापूर्वक शासन-संचालन किया है तथापि शासन में स्वेच्छाचारिता की सम्भावनाएँ प्रबल बनी रहती हैं। यदि कार्यपालिका तथा विधायिका में एक ही दल का प्रतिनिधित्व हो तो निरंकुश शासन सामने आता है।

(3) आपसी मतभेदों में वृद्धि : अध्यक्षीय शासन प्रणाली में बहुधा ऐसा तब होता है कि जब कार्यपालिका तथा विधायिका में पृथक्-पृथक् राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिक स्वार्थ तथा पारस्परिक मतभेद खुलकर सामने आ जाते हैं। दोनों ही पक्ष एक-दूसरे को नीचा दिखाने एवं कार्यों में व्यवधान उत्पन्न करने के कुत्सित प्रयास करने लग जाते हैं। संसदीय प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका का चयन विधायिका में से किया जाता है। अत: एक सीमा तक कार्यपालिका एवं विधायिका में समन्वय बन जाता है। लेकिन अमेरिकी अध्यक्षीय व्यवस्था में प्राय: उस दल के राजनेता सरकार के विरुद्ध विधायिका में प्रस्ताव लाते हैं जिस दल के राष्ट्रपति होते हैं। अपनों से लड़ना तथा समझाना सदैव ही दुष्कर कार्य रहा है। दूसरी ओर विधायिका में विपक्षी दलों का बहुमत भी राष्ट्रपति के लिए संकट उत्पन्न कर सकता है जैसा कि नवम्बर, 1995 में अमेरिका में हुआ जबकि तत्कालीन राष्ट्रपति बिल

क्लिण्टन डेमोक्रेट थे तथा कांग्रेस में रिपब्लिकन्स का बहुमत था अतः समय पर बजट पारित न हो सका तथा एक सप्ताह तक अमेरिकी प्रशासन ठप्प पड़ गया था। अध्यक्षीय प्रणाली में राष्ट्रपति किसी कानून के निर्माण के लिए विधायिका पर दबाव नहीं डाल सकते हैं। इसी प्रकार विधायिका द्वारा निर्मित कानून का क्रियान्वयन करना या न करना राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करता है। यद्यपि ऐसी स्थितियाँ सामने कम आती हैं किन्तु मतभेद हमेशा बने रहते हैं।

(4) दोषारोपण-प्रवृत्ति : शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त पर विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका को स्वतंत्र रखा गया है लेकिन राजनीतिक दुरभिसन्धियाँ तथा मनवीय कुंठाएँ यहाँ भी हावी रहती हैं। सामान्य परिस्थितियों तथा कुशल कार्य संचालन के समय अध्यक्षीय प्रणाली श्रेष्ठ दिखाई देती हैं किन्तु नीति, कानून या कार्यक्रम की असफलताओं और विकट परिस्थितियों में शासन का प्रत्येक अंग दूसरे अंग पर दोषारोपण करने लग जाता है। किसी कानून की असफलता पर विधायिका राष्ट्रपति या कार्यपालिका पर यह आरोप लगाती है कि कानून का क्रियान्वयन समुचित ढंग से नहीं किया गया जबकि कार्यपालिका की दलील होती है कि विधायिका ने पूर्ण परिश्रम तथा सूक्ष्मता से विधि निर्माण नहीं किया।

(5) अनुकूलन एवं नम्यता का अभाव : परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप शासन की नीतियों या नियमों में संशोधन करना अध्यक्षीय प्रणाली में सहज कार्य नहीं माना जाता है। अमेरिकी शासन प्रणाली कठोरता की परिचायक है जहाँ संविधान-संशोधन से लेकर सामान्य कानून तक का परिवर्तन दुरूह माना जाता है। लोचशीलता तथा अनुकूलनशीलता के अभाव में कई बार अपरिहार्य परिस्थितियों के अनुरूप शासन तंत्र परिवर्तित नहीं हो पाता है। अकुशल तथा अनुत्तरदायी राष्ट्रपति को सरलता से हटाया नहीं जा सकता है।

(6) अवयव सिद्धान्त के विपरीत : ऐसा माना जाता है कि अध्यक्षीय प्रणाली में शासन के तीनों अंग अथवा अवयव (Organs) परस्पर घनिष्ठता से सम्बद्ध नहीं होते हैं बल्कि एक-दूसरे से स्वतंत्र रहकर कार्य करते हैं। अवयव सिद्धान्त की मान्यता है कि प्रत्येक अंग (जैसे कि हमारा शरीर) एक-दूसरे से जुड़ा हुआ, आश्रित तथा सहयोगी होना चाहिए अन्यथा व्यवस्था (System) पर आघात पहुँचता है। अमेरिकी अध्यक्षीय व्यवस्था में उठने वाले विवाद, प्रायः शासन के अवयवों द्वारा एक-दूसरे के विपरीत चलने, सोचने तथा कार्य करने का परिणाम रहे हैं।

राष्ट्रपति
(The President)

संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति विश्व का सर्वाधिक प्रभावशाली राजनीतिक व्यक्तित्व माना जाता है। **डब्ल्यू.ए. मुनरो** के शब्दों में—''अब तक एक लोकतंत्र में किसी भी व्यक्ति ने इतनी अधिक सत्ता का प्रयोग नहीं किया, जितना कि अमेरिकी राष्ट्रपति करता

है।'' इसी प्रकार के विचार **ऑग** के हैं जिनके अनुसार, अमेरिका का राष्ट्रपति संसार में सर्वाधिक महान् शासक हो गया है।

अमेरिकी संविधान में राष्ट्रपति का उल्लेख **अनुच्छेद-2** में एक छोटे से वाक्य में किया गया है कि—''अमेरिकी संघ की कार्यपालिका-शक्तियाँ एक राष्ट्रपति में निहित होंगी।'' इस वाक्य से राष्ट्रपति की पदस्थिति तथा शक्तियाँ पूर्णतया स्पष्ट नहीं होती हैं क्योंकि संविधान निर्माताओं के मनोमस्तिष्क में राष्ट्रपति को अत्यधिक शक्तिशाली बनाने की इच्छा नहीं थी लेकिन कालान्तर में अमेरिकी राष्ट्रपति सशक्त होता चला गया।

योग्यताएँ

संविधान के **अनुच्छेद 2(1)** के अनुसार राष्ट्रपति पद के लिए वही व्यक्ति पात्र होगा जो—

- संयुक्त राज्य अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो;
- 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो;
- संयुक्त राज्य अमेरिका का कम से कम 14 वर्ष निवासी रहा हो। (निरन्तर 14 वर्ष निवास करना आवश्यक नहीं है)

लॉर्ड ब्राइस के अनुसार—''व्यावहारिक रूप में अमेरिकी राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो सार्वजनिक जीवन में किसी क्षेत्र में विशेष कार्य के लिए प्रसिद्ध रहा हो। कांग्रेस का सदस्य, किसी राज्य का गवर्नर, किसी बड़े नगर का मेयर, राजदूत, न्यायाधीश या असाधारण रूप से प्रसिद्ध पत्रकार हो सकता है।'' सामान्यतः महत्त्वपूर्ण तथा घनी आबादी वाले राज्य का व्यक्ति राष्ट्रपति पद तक पहुँचता रहा है।

कार्यकाल

अमेरिकी राष्ट्रपति का कार्यकाल **चार वर्ष** निर्धारित है तथा एक व्यक्ति अधिकतम दो बार राष्ट्रपति रह सकता है। प्रारम्भिक दिनों में लोकप्रिय राष्ट्रपति जैफरसन, जेम्स मैडिसन तथा जेम्स मुनरो ने तीसरा कार्यकाल पसन्द नहीं किया था लेकिन फ्रेंकलिन डी. रूजवेल्ट लगातार चार बार निर्वाचित हुए थे। सन् 1951 में पारित 22वें संविधान संशोधन के द्वारा किसी व्यक्ति के दो बार से अधिक राष्ट्रपति चुने जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। यदि कोई उप राष्ट्रपति आपात परिस्थितियों में राष्ट्रपति पद ग्रहण करता है तो वह अधिकतम 10 वर्ष का कार्यकाल ही पूरा कर सकता है।

निर्वाचन

अमेरिकी संविधान में कहा गया था कि राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति का निर्वाचन करने के लिए प्रत्येक राज्य अपनी विधायिका के आदेशानुसार निर्वाचक चुने, जिनकी संख्या उस राज्य की सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधियों के बराबर हो। समय आने पर ये निर्वाचक अपने-अपने राज्य में एक स्थान पर एकत्र हों तथा लिखित रूप में अपने मत दो

व्यक्तियों को दें, जिसमें से कम से कम एक उस राज्य का निवासी न हो, जिस राज्य की ओर से वे निर्वाचक नियुक्त किए गए हैं। इसके पश्चात् मतों को एक पेटी में मुहर लगा कर सीनेट के अध्यक्ष के पास भेज दिया जाए जो कांग्रेस के दोनों सदनों की उपस्थिति में मतों को गिनकर परिणाम की घोषणा करे। जिस व्यक्ति को सर्वाधिक मत मिले तथा मतों का पूर्ण बहुमत भी मिले वह राष्ट्रपति तथा उससे कम मतों तथा उसी प्रकार के बहुमत वाला व्यक्ति उप राष्ट्रपति निर्वाचित होगा।

संविधान में वर्णित यह निर्वाचन-पद्धति अब परिवर्तित हो चुकी है। सन् 1800 में राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति को निर्वाचक मण्डलों से 73-73 मत मिले थे। अतः 12वें संविधान संशोधन (1804) द्वारा **राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति का निर्वाचन पृथक्** होने लगा है। इसी प्रकार 23वें संविधान संशोधन (1961) के द्वारा कोलम्बिया जिले (राजधानी क्षेत्र) से भी निर्वाचक मण्डल में 3 सदस्य लिए जाने का प्रावधान है। **वर्तमान में राष्ट्रपति चुनाव प्रक्रिया यह है—**

1. सर्वप्रथम राजनीतिक दल अपने उन उम्मीदवारों का निर्धारण करते हैं जिन्हें राष्ट्रपति या उप राष्ट्रपति का चुनाव लड़ना होता है। लेकिन इनका अनुमोदन प्रान्तों की जनता ही करती है। इसे '**Primary**' कहा जाता है। दूसरे चरण में पार्टियों के चयनित उम्मीदवार मिलकर अपना राष्ट्रीय उम्मीदवार (राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति हेतु) चुनते हैं। इसे '**Convention**' कहते हैं। इस हेतु पार्टी के सभा-सम्मेलनों में पर्याप्त भाषणबाजी, गुटबाजी तथा मतदान प्रक्रिया अपनाई जाती है। सामान्यतः राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति देश के पृथक्-पृथक् हिस्सों से लिए जाते हैं। यह एक परम्परा बन चुकी है।
2. उम्मीदवारों द्वारा चुनाव प्रचार तथा सम्बन्धित पार्टी द्वारा मतदाताओं को लुभाया जाता है। इसे 'Campaigning' कहते हैं।
3. राष्ट्रपति एवं उप राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष न होकर **निर्वाचक मण्डल** (Electoral College) द्वारा होता है। इस मण्डल में 538 सदस्य चुने जाते हैं। यह संख्या राज्यों से चुने जाने वाले सीनेटरों तथा प्रतिनिधि सभा के सदस्यों (435 + 100) के समान है। तीन सदस्य कोलम्बिया जिले से चुने जाते हैं। निर्वाचक मण्डल के लिए चुने जाने वाले सदस्यों या उम्मीदवारों की सूची राजनीतिक दल तैयार करते हैं। निर्वाचन मण्डल का चुनाव 'लीप वर्ष' में नवम्बर माह के पहले सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार को या सरकार द्वारा निर्धारित किसी तिथि को होता है। निर्वाचकों का चुनाव 'सूची प्रणाली' के अनुसार होता है जिसमें मतदाता अपना मत किसी उम्मीदवार के लिए नहीं वरन् दल की सूची के पक्ष में देता है। 'मतदान अधिकार अधिनियम, 1970' के अनुसरण में 18 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति मतदान कर सकता है। जिस राज्य में कुल वैध मतों का बहुमत जिस पार्टी को मिलता है उसके सभी निर्वाचक (उम्मीदवार) चुने हुए माने जाते हैं (जितने कि उस राज्य के निर्धारित हैं)। ऐसा **नेब्रास्का तथा मेइन प्रान्त पर लागू नहीं होता है।**

4. निर्वाचक मण्डल में चुने गए निर्वाचक, राष्ट्रपति तथा उप राष्ट्रपति का चयन करते हैं। ये निर्वाचक अपने ही दल के उम्मीदवार को मत देने के लिए बाध्य होते हैं। दिसम्बर माह के दूसरे बुधवार के बाद आने वाले सोमवार को निर्वाचक मण्डल के सदस्य राज्यों की राजधानियों में एकत्र होकर अपना मत देते हैं जिसे प्रमाणित करके सीनेट के अध्यक्ष के पास भेज दिया जाता है जो कांग्रेस की संयुक्त बैठक में 270 या अधिक निर्वाचकों का समर्थन प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को विजयी घोषित करता है। किसी एक उम्मीदवार को बहुमत न मिलने पर प्रतिनिधि सभा प्रथम तीन उम्मीदवारों में से एक का चुनाव करती है। सन् 1800 में जैफरसन तथा सन् 1824 में एडम्स प्रतिनिधि सभा द्वारा निर्वाचित हुए थे। उप राष्ट्रपति के मामले में सीनेट निर्णय करती है।

राष्ट्रपति के निर्वाचन की इस प्रणाली में अनेक दोष हैं जैसे कि थोड़े से कम मत प्राप्त होने पर राज्य के दूसरे स्थान वाली पार्टी के सभी निर्वाचक हारे हुए माने जाते हैं तथा कुल मतदाताओं के समर्थन एवं निर्वाचक मण्डलों के समर्थन के मध्य व्यावहारिक सन्तुलन नहीं रहता है क्योंकि यह राज्य की जनसंख्या पर भी निर्भर करता है। प्रतिनिधि सभा तक स्थिति पहुँचने पर परिणाम पूर्णतया विपरीत भी आ सकता है। सन् 2000 में हुए राष्ट्रपति चुनावों में हारे हुए प्रत्याशी अल गोर ने विजयी प्रत्याशी जॉर्ज डब्ल्यू. बुश से अधिक 'लोकप्रिय मत' प्राप्त किए थे किन्तु निर्वाचक कम चुने गए। यह मामला 2 माह तक कानूनी लड़ाई में उलझा रहा था। अभी तक अमेरिका में रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार अधिक बार राष्ट्रपति बने हैं।

शपथ

पहले अमेरिकी राष्ट्रपति 4 मार्च को शपथ ग्रहण करते थे किन्तु 20वें संविधान संशोधन (1933) के पश्चात् **अब 20 जनवरी** को नवनिर्वाचित राष्ट्रपति पद ग्रहण करता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के सम्मुख यह शपथ ली जाती है—

"मैं गम्भीरतापूर्वक शपथ लेता हूँ कि अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर निष्ठापूर्वक कार्य करूँगा और अपनी योग्यता के अनुसार अमेरिका के संविधान का संरक्षण एवं प्रतिरक्षण करूँगा।"

वेतन, भत्ते एवं उन्मुक्तियाँ

राष्ट्रपति के वेतन, भत्तों, निःशुल्क सरकारी आवास तथा अन्य सुविधाओं का निर्धारण कांग्रेस द्वारा किया जाता है। कार्यपालिका प्रधान के रूप में राष्ट्रपति को अनेक उन्मुक्तियाँ (छूट) प्राप्त होती हैं। यद्यपि संविधान में इनका वर्णन नहीं है तथापि परम्परा के रूप में इनका पालन अवश्य होता है। राष्ट्रपति को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है और न ही इनके विरुद्ध 'परमादेश' जारी किया जा सकता है। सामान्यतः किसी अदालत में आकर

साक्ष्य देने के क्रम में राष्ट्रपति को छूट प्राप्त है। महाभियोग के समय सीनेट में बुलाया जा सकता है।

पदमुक्ति

राष्ट्रपति अपनी इच्छा से पद त्याग सकते हैं अथवा उन्हें महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 2(4) के अनुसार देशद्रोह, भ्रष्टाचार या अन्य गम्भीर अपराध (कदाचार) के मामलों में **महाभियोग** लगाया जा सकता है। प्रतिनिधि सभा का कोई सदस्य या कुछ सदस्य राष्ट्रपति के विरुद्ध उपयुक्त आधार पर आरोप लगा सकते हैं जिनका न्यायिक या विशेष जाँच समिति द्वारा परीक्षण किया जाता है। जाँच समिति के प्रतिवेदन के पश्चात् यदि प्रतिनिधि सभा आवश्यक समझे तो एक प्रस्ताव बहुमत द्वारा पारित करती है तथा आरोप पत्र राष्ट्रपति को भेजा जाता है। इस प्रस्ताव पर सीनेट जाँच हेतु न्यायालय के रूप में बैठती है तथा सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बैठक की अध्यक्षता करता है। प्रतिनिधि सभा का एक सदस्य सीनेट को समस्त जानकारी (प्रस्ताव) प्रदान करता है। राष्ट्रपति स्वयं उपस्थित होकर या उनका वकील बचाव करता है। यदि सीनेट दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित कर दे तो राष्ट्रपति को पद त्यागना पड़ता है। अमेरिकी इतिहास में सर्वप्रथम सन् 1867 में राष्ट्रपति **एण्ड्रयू जॉनसन** के विरुद्ध महाभियोग प्रस्ताव मात्र एक वोट से गिर गया था जबकि सन् 1974 में तत्कालीन राष्ट्रपति **रिचर्ड निक्सन** ने बहुचर्चित वाटरगेट काण्ड के कारण प्रतिनिधि सभा की न्यायिक समिति की सिफारिश आते ही त्यागपत्र दे दिया था क्योंकि महाभियोग प्रस्ताव आने वाला था। तीसरी स्थिति सन् 1998 में राष्ट्रपति **बिल क्लिण्टन** के सम्मुख आई थी जबकि व्हाईट हाउस में कार्य करने वाली कर्मचारी मोनिका लेविन्स्की ने राष्ट्रपति पर यौन शोषण का आरोप लगाया था। शुरू में राष्ट्रपति ने शपथ लेकर आरोपों को झुठला दिया था लेकिन लेविन्स्की द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों (वस्त्र तथा टेप इत्यादि) से यह सिद्ध हो गया था कि बिल क्लिण्टन तथा मोनिका लेविन्सकी के मध्य अवैध शारीरिक सम्बन्ध थे। कांग्रेस द्वारा स्वतंत्र वकील केनेथ स्टार द्वारा जाँच करवाई गई। जाँच से आरोप सही सिद्ध हुए किन्तु अधिसंख्य अमेरिकी इसे महाभियोग लायक अपराध नहीं मानते थे। राष्ट्रपति ने इस कृत्य के लिए अपने परिवार एवं राष्ट्र से क्षमायाचना की तथा महाभियोग प्रस्ताव सीनेट में पारित न हो सका।

राष्ट्रपति की मृत्यु, त्यागपत्र या हटाए जाने के पश्चात् उप राष्ट्रपति को राष्ट्रपति पद धारण करना होता है। सन् 1967 में पारित 25वें संविधान संशोधन से पूर्व उप राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति पद ग्रहण कर लेने पर उप राष्ट्रपति का पद रिक्त रहता था किन्तु इस संशोधन से यह व्यवस्था की गई कि उप राष्ट्रपति का पद, राष्ट्रपति द्वारा नामजद व्यक्ति द्वारा भरा जाएगा, यदि कांग्रेस के दोनों सदन उसे स्वीकृति दे दें। सन् 1973 में उप राष्ट्रपति स्पाइरो टी. एग्नू द्वारा त्यागपत्र देने पर राष्ट्रपति रिचर्ड एम. निक्सन ने गेराल्ड आर. फोर्ड को उपराष्ट्रपति नामजद कर दिया जिसे कांग्रेस ने भी स्वीकृति दे दी। अगले

ही वर्ष राष्ट्रपति निक्सन ने वाटरगेट काण्ड के कारण त्यागपत्र दे दिया तथा फोर्ड अमेरिका के राष्ट्रपति बन गए। **बिना निर्वाचन के राष्ट्रपति बनने का यह विचित्र उदाहरण है जिसे अमेरिकी व्यवस्था ने सहजता से स्वीकार भी किया।**

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers & Functions)

संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति अत्यधिक व्यस्त तथा शक्ति सम्पन्न शासनाध्यक्ष है। यद्यपि संविधान के अनुसार राष्ट्रपति बहुत शक्तिशाली नहीं है तथापि विगत दो शताब्दियों की परम्पराओं ने राष्ट्रपति को महान् एवं सशक्त बना दिया है। **फरग्युसन एवं मैक हेनरी** ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए कहा है—"मंगल ग्रह से आने वाला व्यक्ति, अमेरिका के संविधान को पढ़ते हुए यही समझेगा कि राष्ट्रपति एक निर्बल कार्यपालिका है जो बहुत सीमा तक कांग्रेस की इच्छा के अधीन है। वह अमेरिका की शासन प्रणाली को कांग्रेस की सरकार कहेगा, किन्तु उन शक्तिशाली व्यक्तियों (राष्ट्रपति जैफरसन, जैक्सन, लिंकन, क्लीवलैण्ड, थियोडोर रूजवेल्ट, विल्सन तथा फ्रैंकलिन रूजवेल्ट) जिन्होंने इस पद को धारण किया, इस पद को अत्यधिक शक्तिशाली कार्यपालिकाओं में से एक बना दिया है।" अमेरिका का राष्ट्रपति निम्नांकित शक्तियों का प्रयोग करता है—

(1) कार्यपालिका-शक्तियाँ : एकल कार्यपालिका के रूप में अमेरिकी राष्ट्रपति शासन संचालन के समस्त व्यावहारिक कृत्य सम्पादित करता है। संविधान का अनुच्छेद-2 संघ की समस्त कार्यपालिका-शक्तियाँ, राष्ट्रपति में निहित करता है जो इन शक्तियों का प्रयोग निम्नानुसार करता है—

(i) अमेरिकी संविधान के **अनुच्छेद** 2(3) के अनुसार सभी संघीय कानूनों का समुचित रूप से क्रियान्वयन करवाना राष्ट्रपति का दायित्व है। कांग्रेस द्वारा पारित अधिनियमों तथा सन्धियों के निष्ठापूर्वक पालन से प्रशासनिक गतिविधियाँ नियंत्रित होती हैं।

(ii) संघीय कानूनों के अन्तर्गत आने वाले समस्त प्रशासनिक तंत्र को नियंत्रित-निर्देशित करता है।

(iii) सम्पूर्ण संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व निभाता है। चूँकि प्रत्येक राज्य में गणतंत्रात्मक सरकार बनाए रखने एवं राज्य को बाहरी आक्रमण तथा आन्तरिक हिंसा से बचाने का दायित्व संघीय सरकार का है अतः उपद्रव एवं अन्य हिंसक प्रदर्शनों के समय राष्ट्रपति राज्यों को सहायता प्रदान करता है।

(iv) संघीय प्रशासन से सम्बन्धित समस्त उच्च पदों पर नियुक्ति का कार्य राष्ट्रपति करता है। ज्योंही कोई नया राष्ट्रपति निर्वाचित होता है कांग्रेस 2-3 हजार महत्त्वपूर्ण पदों से सम्बन्धित सूची तैयार करती है इसे **प्लम बुक** (Plum Book) कहा जाता है। प्लम बुक में वर्णित पदों पर राष्ट्रपति अपने विश्वासपात्र

व्यक्तियों को नियुक्त करता है, चाहे वे लोक सेवक हों या नहीं। नीति निर्धारण से सम्बन्धित ये उच्च पद ही राष्ट्रपति की कार्यशैली को प्रमाणित करते हैं। राष्ट्रपति इन उच्च पदों जैसे—मंत्रियों, न्यायाधीशों, निदेशकों, राजदूतों, महान्यायवादी, राजस्व अधिकारियों, महाडाकपाल, आयोगों, निगमों तथा बोर्डों के अध्यक्ष एवं सदस्य इत्यादि पर अपने राजनीतिक प्रशंसकों, महिलाओं, अश्वेतों, अल्पसंख्यकों, क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व इत्यादि सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए नियुक्ति देते हैं। इन नियुक्तियों की तीन श्रेणियाँ बनाई गई हैं। कुछ उच्च पदों पर सीनेट के परामर्श तथा बहुमत से स्वीकृति पर नियुक्ति वैध मानी जाती है तो दूसरी श्रेणी में निम्न पद रखे गए हैं जो कांग्रेस की सहमति से राष्ट्रपति या विभागीय अध्यक्ष तथा न्यायालय स्वयं नियुक्ति दे देते हैं। संविधान में निम्न पदों का वर्णन नहीं है। उच्च पदों पर नियुक्ति में **सीनेट का शिष्टाचार** अवश्य निर्वाहित किया जाता है। सामान्यतः (कुछ अपवादों को छोड़कर) सीनेट द्वारा, उन नियुक्तियों की पुष्टि कर दी जाती है जो राष्ट्रपति ने की हैं। यद्यपि संविधान में राष्ट्रपति की नियुक्त किए गए पदाधिकारियों को पद से हटाने के क्रम में शक्ति का वर्णन नहीं किया गया है तथापि परम्परानुसार राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग करते हैं। 'मैयर्स बनाम संयुक्त राज्य' मुकदमे में यह कहा गया है कि राष्ट्रपति पद से हटाने की शक्ति रखता है।

(v) संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति को विदेशी सम्बन्धों एवं नीतियों के निर्धारण के क्रम में पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं। वह राजदूतों, वाणिज्य दूतों, प्रतिनिधियों तथा प्रतिनिधि मण्डलों की नियुक्ति कर सकता है, विदेश नीति निर्मित कर सकता है, अमेरिकी विदेश नीति का आधिकारिक प्रवक्ता बन सकता है, विदेशी सरकारों (राष्ट्रों) को मान्यता प्रदान कर सकता है तथा सन्धियाँ कर सकता है। इन सन्धियों की पुष्टि सीनेट के दो तिहाई बहुमत से होनी आवश्यक है। अतः कई बार उलझन से बचने के लिए सन्धि के स्थान पर प्रशासकीय समझौते भी कई राष्ट्रपति करते रहे हैं क्योंकि प्रशासकीय समझौते कार्यपालिका क्षेत्र में आते हैं जिनकी पुष्टि सीनेट से होनी आवश्यक नहीं है। राष्ट्रपति 'गुप्त समझौते' भी कर सकता है।

(vi) विदेश यात्रा करने वाले तथा प्रवासी अमेरिकियों को संरक्षण प्रदान करने तथा उनकी समस्याओं के समाधान का दायित्व राष्ट्रपति का है।

(vii) संविधान के अनुसार राष्ट्रपति सेनाओं तथा सशस्त्र बलों का प्रधान सेनापति है। राष्ट्र की प्रतिरक्षा में वह सेनाओं का प्रयोग कर सकता है। वह सशस्त्र बलों को आदेश देने तथा युद्ध का संचालन करने का दायित्व निभाता है किन्तु युद्ध की घोषणा कांग्रेस ही कर सकती है। वास्तविकता यह है कि

राष्ट्रपति तात्कालिक घटनाओं को देखते हुए सेनाओं को आदेश दे देता है तथा कांग्रेस को बाद में युद्ध की घोषणा करनी पड़ती है। वास्तव में युद्ध के समय अमेरिकी राष्ट्रपति अधिनायक हो जाता है।

(2) विधायी शक्तियाँ : यद्यपि विधायी शक्तियों का अधिकांश भाग कांग्रेस में निहित है तथापि राष्ट्रपति के पास भी कुछ विधायी शक्तियाँ हैं, जैसे—

(i) संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि वह समय-समय पर कांग्रेस को संघ की स्थिति के बारे में जानकारी दे और उसके विचार के लिए ऐसे सुझावों की अनुशंसा करे, जिन्हें वह आवश्यक समझता हो। राष्ट्रपति कांग्रेस को **वार्षिक संदेश** प्रेषित करते हैं जिसमें सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों सहित सुझाव भी होते हैं। सामान्यतः कांग्रेस, राष्ट्रपति के सुझावों पर अमल करती है।

(ii) राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह कांग्रेस के दोनों सदनों में मतभेद होने पर उन्हें स्थगित कर दे (सामान्य स्थिति में नहीं) तथा महत्त्वपूर्ण या अत्यावश्यक विषय पर विचार करने के लिए कांग्रेस के सत्र की अवधि बढ़ाने की सिफारिश कर सकता है। यदि कांग्रेस स्वीकार न करे तो वह अधिवेशन समाप्ति के पश्चात् 'विशेष अधिवेशन' बुलवा सकता है।

(iii) कांग्रेस द्वारा पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होते हैं। राष्ट्रपति को निषेधाधिकार (Veto Power) प्राप्त है। **विलम्बकारी निषेधाधिकार** (Suspensive Veto Power) के अन्तर्गत राष्ट्रपति किसी विधेयक को अपनी आपत्तियों सहित उस सदन को लौटा सकता है जहाँ से वह शुरू हुआ था। यदि पुनः वही विधेयक दोनों सदनों में दो तिहाई बहुमत से पारित हो जाए तो राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों की आवश्यकता नहीं रहती है। वस्तुतः इस वीटो से विधेयक प्रायः मृत हो जाता है क्योंकि दो तिहाई बहुमत मिलना आसान नहीं रहता है। **जेबी निषेधाधिकार** (Pocket Veto Power) से तात्पर्य उस वीटो से है जिसके द्वारा राष्ट्रपति किसी विधेयक पर निर्णय करना टाल देता है। ऐसा वह अवकाश के दिनों के अतिरिक्त 10 दिन तक कर सकता है। दस दिन पश्चात् विधेयक स्वीकृत माना जाता है, यदि उस समय कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त न हुआ हो। दूसरे शब्दों में कहें तो कांग्रेस के अधिवेशन के अन्तिम दिनों में आने वाले विधेयक राष्ट्रपति के जेबी वीटो के कारण निष्क्रिय हो सकते हैं। अमेरिका में सभी राष्ट्रपतियों ने वीटो शक्ति को पर्याप्त प्रयोग में लिया है।

(iv) कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों के विषय में विस्तृत नियम-विनियम बनाने का कार्य कार्यपालिका का है। प्रदत्त विधान की इस व्यवस्था के कारण राष्ट्रपति एवं प्रशासन की कानून निर्माण में भूमिका बढ़ जाती है।

(v) राष्ट्रपति अपने राजनीतिक दल के उन सदस्यों से जो कांग्रेस में हैं, के द्वारा विधान निर्माण एवं अन्य कार्यों में हस्तक्षेप करवा सकता है। अमेरिकी शासन व्यवस्था में **'लॉबी'** (Lobby) तथा **'कॉकस'** (Caucus) (बड़े संगठन में एक छोटा समूह जो गुप्त मंत्रणाएँ करता है) का बहुत महत्त्व है।

(3) न्यायिक शक्तियाँ : राष्ट्रपति को कतिपय न्यायिक शक्तियाँ भी दी गई हैं जैसे—दण्ड प्राप्त अपराधियों को राष्ट्रपति क्षमा कर सकता है, दण्ड को कम या स्थगित कर सकता है। साथ ही एक ही अपराध में दण्डित अनेक व्यक्तियों को सर्वक्षमा (Amnesty) कर सकता है जैसा कि सन् 1868 में राष्ट्रपति जॉनसन ने गृहयुद्ध में दक्षिण की ओर से लड़ने वालों को क्षमा किया था। राष्ट्रपति गेराल्ड फोर्ड ने सन् 1974 में पूर्व राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के मामलों में कानूनी कार्यवाही से पूर्व क्षमा कर दिया था। राष्ट्रपति की **क्षमादान** शक्तियों में दो शर्तें हैं—

(i) वह केवल संघीय विधि के मामलों में दण्डित व्यक्तियों को क्षमा कर सकता है, राज्यों की विधि के अन्तर्गत नहीं।

(ii) महाभियोग द्वारा दण्डित व्यक्तियों को क्षमा नहीं कर सकता है।

इसके अतिरिक्त संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है लेकिन उन्हें हटा नहीं सकता है।

(4) संकटकालीन शक्तियाँ : विश्व की महान् राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति अमेरिका का राष्ट्रपति सामरिक, वित्तीय, वाणिज्यिक, राजनीतिक, आन्तरिक अशांति तथा अन्य संकटों के समय तुरन्त निर्णय कर सकता है। संकटकाल में उसे असीम अधिकार दिए जा सकते हैं, शर्त यह है कि—

(i) संकट वास्तविक होना चाहिए;

(ii) संकट से सम्बन्धित कांग्रेस का पूर्व में कोई कानून बना हुआ न हो।

(iii) संकट की आकस्मिकता के कारण कांग्रेस को समुचित कदम उठाने का अवसर न मिल सका हो।

इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति **आइजनहावर** का मानना था कि यदि अमेरिकी राष्ट्रपति देश पर आक्रमण होने पर आक्रान्ता पर तत्काल कार्यवाही नहीं करता तो उसे (राष्ट्रपति) मृत्युदण्ड दिया जाना चाहिए। वस्तुत: अमेरिकी राष्ट्रपति की पदस्थिति संविधान निर्माण के पश्चात् निरन्तर सुदृढ़ होती जा रही है। वह विश्व के सभी देशों के मामलों में किसी-न-किसी से अवश्य सम्बद्ध हो जाता है क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका की तूती बोलती है। राष्ट्रपति के प्रमुख कार्यों में **बजट निर्माण** भी सम्मिलित है जिसे कांग्रेस द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है। अमेरिका की खुफिया एजेन्सियों को सुदृढ़ बनाने, अन्तरिक्ष एवं अन्य तकनीकी कार्यक्रमों की दूरगामी योजना बनाने तथा अन्य राष्ट्रीयताओं के नागरिकों के सम्बन्ध में नीति बनाने में अनेक कार्यकारी अभिकरण स्थापित हैं तथापि राष्ट्रपति की इच्छाशक्ति निर्णायक भूमिका निभाती है। अमेरिकी राष्ट्रपति प्रति सप्ताह जनता को रेडियो प्रसारण द्वारा संदेश भी देते हैं।

अमेरिकी राष्ट्रपति अपने राजनीतिक दल के नेता के रूप में राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष को नियुक्त करता है। दल की नीतियों का प्रचार-प्रसार एवं क्रियान्वयन करता है। राष्ट्र के सर्वोच्च नेता के रूप में वह जनता को अपील एवं अन्य माध्यमों से संदेश प्रदान करता है। **राष्ट्रपति विल्सन** ने कहा था कि—"अमेरिका का राष्ट्रपति यदि एक बार देश का विश्वास तथा प्रशंसा अर्जित कर ले तो कोई भी शक्ति उसका सामना नहीं कर सकती तथा कई शक्तियाँ भी उसे सरलता से हरा नहीं सकतीं।"

अमेरिकी राष्ट्रपति की भारत के राष्ट्रपति से तुलना
(Comparison between the American & the Indian President)

भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व के दो बड़े सफल लोकतंत्र माने जाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि अमेरिका एक विकसित देश है जबकि भारत विकासशील राष्ट्रों का अग्रज है। जहाँ तक शासन प्रणाली का प्रश्न है, वह इन दोनों देशों में सर्वथा पृथक् प्रकृति की है। भारत (भारत गणराज्य अर्थात् The Republic of India) में संसदीय लोकतंत्र (Parliamentary Democracy) पर आधारित शासन प्रणाली अपनाई गई है जिसमें दोहरी कार्यपालिका (नाममात्र की तथा वास्तविक) पायी जाती है। राष्ट्रपति मात्र राज्य या राष्ट्र के अध्यक्ष हैं तथा शासन के वास्तविक अध्यक्ष प्रधानमंत्री तथा उनकी मंत्रिपरिषद् होती है। भारत में प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद् वास्तविक सत्ताधीश हैं तथा वे विधायिका के भाग भी होते हैं। साथ ही विधायिका (लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी भी होते हैं। लोकसभा मंत्रिपरिषद् को हटा सकती है तो मंत्रिपरिषद् लोकसभा को भंग करवा सकती है। राष्ट्रपति की स्थिति नाममात्र की कार्यपालिका की है। भारत के संविधान के **अनुच्छेद-53** के अनुसार राष्ट्रपति संघ की समस्त कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से उपयोग करता है। अनुच्छेद-74 प्रावधान करता है कि राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी तथा राष्ट्रपति अपने कृत्य मंत्रिपरिषद् के परामर्शानुसार कार्य करेगा। इससे स्पष्ट है कि भारत का राष्ट्रपति सशक्त पदधारक कार्यपालिका नहीं है।

दूसरी ओर अमेरिका में अध्यक्षीय शासन (Presidential Government) प्रणाली प्रवर्तित है जिसमें दोहरी कार्यपालिका का प्रावधान नहीं है। एकल कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति का निर्वाचन सीधे जनता द्वारा होता है तथा शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त के कारण राष्ट्रपति, कांग्रेस (विधायिका) का हिस्सा भी नहीं होता है और न ही राष्ट्रपति के मंत्रिमण्डल में सम्मिलित मंत्रिगण (सचिव) कांग्रेस के सदस्य होते हैं। अमेरिकी मंत्रिमण्डल कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी भी नहीं होता है। वास्तव में अमेरिकी राष्ट्रपति तथा मंत्रियों का सम्बन्ध उतना गहरा तथा अन्योन्याश्रित नहीं होता है जितना कि संसदीय शासन प्रणालियों में प्रधानमंत्री तथा उनकी मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के मध्य होता है। जैसा कि पूर्व पृष्ठों पर बताया जा चुका है अमेरिकी संघीय व्यवस्था में राज्यों को पूर्ण स्वतंत्रता है, राज्यों के

भारत तथा अमेरिका के राष्ट्रपति पद में असमानताएँ

आधार	भारत	अमेरिका
1. शासन प्रणाली	संसदीय।	अध्यक्षीय।
2. पद स्थिति	राष्ट्राध्यक्ष।	राष्ट्राध्यक्ष एवं शासनाध्यक्ष
3. निर्वाचन	निर्वाचित सांसदों एवं विधायकों के माध्यम से दलविहीन निर्वाचन।	इलेक्टॉरल कॉलेज के माध्यम से तथा पार्टी आधारित होता है।
4. कार्यकाल	5 वर्ष	4 वर्ष।
5. कार्यकाल के अवसर	निश्चित नहीं।	अधिकतम दो बार
6. नागरिकता की शर्त	भारत का नागरिक हो।	अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो तथा कम से कम 14 वर्ष अमेरिका का निवासी रहा हो।
7. कार्यपालिका शक्तियाँ	नाममात्र की कार्यपालिका। मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर कार्य करता है।	वास्तविक एकल कार्यपालिका। स्वतंत्र रूप से शक्तियों का प्रयोग। वह सम्पूर्ण कार्यपालिका है।
8. विधायी शक्तियाँ	मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर कार्य। वीटो शक्ति सीमित है।	विधायी शक्तियाँ कम हैं किन्तु वीटो शक्ति कुछ अधिक प्रभावी है। नियम निर्माण शक्तियाँ अधिक हैं।
9. न्यायिक शक्तियाँ	एकीकृत न्यायपालिका है अतः क्षमादान शक्तियाँ राज्यपाल से अधिक हैं।	क्षमादान शक्तियाँ हैं किन्तु राज्यों की विधि के अन्तर्गत शक्ति प्राप्त नहीं है।
10. आपातकालीन शक्तियाँ	मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर आपातकाल लगा सकता है।	आपातकाल घोषित करने में अधिक स्वतंत्र है।
11. बजट	मंत्रिपरिषद् का कार्य है।	राष्ट्रपति का दायित्व है।
12. मंत्रिपरिषद् से सम्बन्ध	मंत्रिपरिषद्, प्रधानमंत्री के अधीन है जो राष्ट्रपति को परामर्श देती है।	राष्ट्रपति ही सर्वेसर्वा है। मंत्रिपरिषद् केवल सहायक अंग है।
13. प्रमुख नियुक्तियाँ	मंत्रिपरिषद् के परामर्शानुसार	अपनी इच्छानुसार जिन्हें सीनेट से प्रायः अनुमोदन मिल जाता है।
14. महाभियोग	संविधान के अतिक्रमण के आधार पर लग सकता है।	देशद्रोह, भ्रष्टाचार तथा कदाचार के आधार पर लग सकता है।
15. विधायिका को भंग करने की शक्ति	मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर लोकसभा भंग कर सकता है।	राष्ट्रपति प्रतिनिधि सभा को भंग नहीं कर सकता है।
16. अन्तरराष्ट्रीय छवि	नाममात्र की कार्यपालिका की है। 'रबर की मुहर' कहलाते हैं।	अत्यधिक शक्तिशाली पदधारक माने जाते हैं।
17. विधायिका में सांसदों का मनोनयन	मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर दो सदस्य लोकसभा में तथा 12 सदस्य राज्यसभा में मनोनीत करते हैं।	ऐसा कोई प्रावधान अमेरिका में नहीं है।
18. गवर्नर का मनोनयन	मंत्रिपरिषद् के परामर्शानुसार मनोनीत करते हैं।	राज्यों के गवर्नर सीधे जनता द्वारा चुने जाते हैं।
19. राज्य सरकारों से सम्बन्ध	राज्यपाल की रिपोर्ट तथा मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है।	अमेरिका में यह प्रावधान नहीं है।

अपने संविधान हैं तथा राज्यों के गवर्नर सीधे जनता द्वारा चुने जाते हैं अतः अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा गवर्नर का मनोनयन तथा राज्य सरकारों को भंग करने की कार्यवाही नहीं होती है। यह सर्वविदित है कि अमेरिकी राष्ट्रपति विश्व के शक्तिशाली शासकों में अग्रणी है जबकि भारत का राष्ट्रपति तुलनात्मक (पदस्थिति) रूप से काफी कमजोर पद है। दोनों देशों के राष्ट्रपतियों की पदस्थिति की समानताएँ एवं असमानताएँ यहाँ संक्षेप में वर्णित की जा रही हैं।

भारत तथा अमेरिका के राष्ट्रपति पद में समानताएँ (Similarities between Presidents of India and America)

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा भारत में भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन प्रणालियाँ प्रवर्तित हैं अतः अमेरिका तथा भारत के राष्ट्रपति पदों में पर्याप्त भिन्नताएँ हैं तथापि कुछ मिलती-जुलती **समानताएँ** (Similarities) भी हैं। यह समानताएँ पूर्णतया मेल नहीं खाती हैं। ये समानताएँ हैं—

1. दोनों देशों में राष्ट्रपति पद हेतु उम्मीदवार को 35 वर्ष आयु पूर्ण किया होना आवश्यक है।
2. दोनों देशों में संघीय व्यवस्था है अतः राज्यों का भी राष्ट्रपति निर्वाचन व्यवस्था में परिस्थिति (जनसंख्या) अनुसार प्रतिनिधित्व है।
3. दोनों ही राष्ट्रपतियों के पास वीटो तथा क्षमादान की शक्तियाँ हैं।
4. दोनों देशों के राष्ट्रपतियों को पद से हटाने हेतु महाभियोग की प्रक्रिया जटिल है।
5. यद्यपि शासन व्यवस्था दोनों देशों में भिन्न-भिन्न है तथापि न तो भारत के राष्ट्रपति और न ही अमेरिका के राष्ट्रपति संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

अमेरिकी प्रशासन की मुख्य विशेषताएँ (Salient Features of the American Administration)

संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़, कुशल तथा आधुनिक प्रवृत्तियों से युक्त मानी जाती है। स्वाभाविक रूप से इस प्रशासनिक व्यवस्था पर संविधान तथा शासन प्रणाली का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। अमेरिकी प्रशासन की प्रमुख उल्लेखनीय विशेषताएँ अग्रांकित हैं—

(1) लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी स्वरूप : अमेरिकी लोक प्रशासन का स्वरूप प्रजातांत्रिक मूल्यों से प्रभावित है क्योंकि संघीय स्तर पर राष्ट्रपति तथा राज्यों में गवर्नर का चयन जनता की इच्छा पर निर्भर करता है। इसी प्रकार विधानमण्डलों में जनप्रतिनिधियों का निर्वाचन भी जनता ही करती है। ये जनप्रतिनिधि प्रशासन के संचालन हेतु विविध प्रकार के कानून निर्मित करते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से शासन की समस्त शक्तियाँ जनता में समाहित हैं। इसी प्रकार अमेरिका में नागरिकों के कल्याण, विकास तथा सुरक्षा का दायित्व प्रशासन के कंधों पर है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन की न्यूनतम तथा मूलभूत

आवश्यकताओं यथा—भोजन, वस्त्र, आवास, सुरक्षा, परिवहन, बीमा, शिक्षा तथा स्वास्थ्य इत्यादि की पूर्ति में सरकार सहायता करती है। लोक प्रशासन द्वारा संचालित सामाजिक सेवाओं में शिथिलता किसी भी स्तर पर सहजता से स्वीकार्य नहीं है।

(2) विधि का शासन : आधुनिक कल्याणकारी राज्यों में 'विधि का शासन' प्राथमिक आवश्यकता है। विधि के शासन से आशय उस व्यवस्था से है जिसमें कानून की सर्वोच्चता रहती है तथा व्यक्ति या संस्था को विधि से अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। अमेरिकी प्रशासन के उद्देश्य, कार्यप्रणाली तथा व्यवहार उसी प्रकार निर्धारित किए जाते हैं जैसा कि संविधान में वर्णित आदर्शों तथा कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों में उल्लेख होता है। बहुभाषी, बहुराष्ट्रीयता तथा बहुनस्लों एवं विविध संस्कृतियों से युक्त अमेरिका में समान कानून लागू हैं यद्यपि कतिपय प्रकरणों में विशिष्टता का नियम भी प्रवर्तित है।

(3) संघीय शासन व्यवस्था का प्रभाव : संयुक्त राज्य अमेरिका एक ऐसा देश है जहाँ संघीय शासन प्रणाली है अतः केन्द्रीय एवं प्रांतीय सरकारों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व है। वर्तमान संविधान के निर्माण के समय 13 प्रांत संघ में सम्मिलित थे जिनकी संख्या वर्तमान में 50 है। संघीय विषयों का संचालन केन्द्र सरकार तथा प्रांतीय विषयों का संचालन राज्य सरकारें करती हैं। प्रत्येक राज्य का अपना पृथक् संविधान तथा तदनुसार राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था निर्धारित की गई है। प्रस्तुत सारणी में संघ सरकार एवं राज्य सरकारों का कार्यक्षेत्र स्पष्ट किया जा रहा है।

संघीय शक्तियाँ	राज्यों की शक्तियाँ
1. संघीय कार्यों के लिए करारोपण	1. स्थानीय कार्यों के लिए करारोपण
2. राष्ट्रीय साख पर ऋण प्राप्ति	2. राज्यों की साख पर ऋण प्राप्ति
3. विदेशी तथा अन्तरराज्यीय व्यापार का नियमन	3. राज्यों के आन्तरिक क्षेत्र में व्यापार का नियमन
4. मुद्रा एवं सिक्के	4. दीवानी और फौजदारी कानून
5. विदेशी सम्बन्ध एवं सन्धियाँ	5. पुलिस
6. सेना तथा नौसेना	6. शिक्षा
7. डाक सेवा एवं डाक मार्ग	7. स्थानीय स्वशासन
8. पेटेण्ट तथा स्वत्वाधिकार	8. समाज कल्याण एवं सुधार प्रशासन
9. नाप-तौल का नियमन	9. राजमार्ग तथा परिवहन
10. नवीन राज्य	10. निगमों का संगठन तथा नियंत्रण

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त संघीय शासन को अमेरिका की प्रतिरक्षा, युद्ध, संघीय जिलों का निर्माण, विज्ञान तथा उपयोगी कलाओं का विकास, संघीय सर्वोच्च न्यायालयों के अधीन न्यायालयों की स्थापना सहित कतिपय विशिष्ट सामाजिक विकास

सम्बन्धित विषयों से सम्बन्धित कार्य सौंपे गए हैं। संविधान के **अनुच्छेद-1 की आठवीं उपधारा** के अन्तर्गत संघीय विषयों का वर्णन है। जो विषय इस उपधारा में वर्णित नहीं हैं वे राज्य सूची के विषय माने गए हैं।

(4) सुदृढ़ केन्द्रीय प्रशासन : संघीय स्तर पर राष्ट्रपति कार्यपालिका-शक्तियों का निर्वहनकर्ता है। राष्ट्रपति की सहायतार्थ मंत्रिमण्डल तथा अन्य लोक सेवक पदस्थापित किए जाते हैं। अमेरिकी **संविधान में राष्ट्रपति के मंत्रिमण्डल नामक संस्था का कोई उल्लेख नहीं है।** संविधान में कहा गया है कि—"राष्ट्रपति सरकार के विभिन्न प्रशासनिक विभागों के अधिकारियों से उनके अपने विभागों से सम्बन्धित विषयों पर लिखित परामर्श ले सकता है।" प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन ने सीनेट तथा सर्वोच्च न्यायालय से कतिपय गम्भीर प्रकरणों पर परामर्श लेना चाहा था किन्तु उन्हें उत्साहजनक परिणाम नहीं मिला अतः कालान्तर में प्रशासनिक विभागों के अध्यक्षों से लिखित में परामर्श लिया जाने लगा तथा राष्ट्रपति के साथ उनकी बैठकें भी होने लगीं और **मंत्रिमण्डल** नामक संस्था का विकास हो गया।

अमेरिकी मंत्रिमण्डल का निर्माण राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत व्यक्तियों से होता है जिन्हें सीनेट द्वारा स्वीकृति मिलती है। राष्ट्रपति अपने दल की नीतियों के समर्थक, योग्य, अनुभवी, प्रतिभावान तथा लोकप्रिय व्यक्तियों को मंत्रिमण्डल में लेता है। **मंत्रियों को सचिव** (Secretary) **कहा जाता है।**

मंत्री ही राजनीतिज्ञ एवं सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी की भूमिका निभाता है। मंत्रिमण्डल के सदस्य ही विभागाध्यक्ष (Head of Department) कहलाते हैं। मंत्रियों के अधीन लोक सेवा के सदस्य कार्य करते हैं। राज्य विभाग, रक्षा विभाग ((Pentagon), राजकोष विभाग तथा न्याय विभाग प्रमुख रूप से महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। मंत्रिमण्डलीय स्तर के 14 विभाग होते हैं।

- राज्य विभाग (विदेश विभाग)।
- राजकोष विभाग।
- रक्षा विभाग।
- न्याय विभाग।
- आन्तरिक विभाग (Interior Department) (गृह विभाग)।
- कृषि विभाग।
- वाणिज्य विभाग।
- श्रम विभाग।
- स्वास्थ्य एवं मानव सेवा विभाग।
- आवास एवं नगरीय विकास विभाग।
- परिवहन विभाग।
- ऊर्जा विभाग।

- शिक्षा विभाग।
- आन्तरिक सुरक्षा (Homeland Securities) विभाग।

ऊर्जा एवं शिक्षा विभागों की स्थापना राष्ट्रपति जिमी कार्टर के शासनकाल में हुई थी जबकि प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन ने केवल चार विभाग ही बनाए थे। राज्य विभाग (State Department) का तात्पर्य प्रांतों के कार्यकरण से सम्बन्धित नहीं है बल्कि विदेशी राष्ट्रों से सम्बन्धित विदेश नीति एवं सन्धियों से सम्बद्ध है। आन्तरिक विभाग, अमेरिका का गृह विभाग है जो संघीय पुलिस तथा गुप्तचर एजेन्सियों एवं भूमि, वन, जल से सम्बन्धित कार्य भी सम्पादित करता है। **आन्तरिक सुरक्षा विभाग** की स्थापना 11 सितम्बर, 2001 को हुए आतंकवादी हमलों के बाद, जून, 2002 में की गई थी। यह विभाग अमेरिका की 100 खुफिया एजेन्सियों को एकीकृत करता है। न्याय विभाग के विभागाध्यक्ष को महान्यायवादी (Attorney General) कहा जाता है लेकिन उनका स्तर मंत्री के समान ही माना जाता है। 14 संघीय विभागों के अतिरिक्त अन्य विभाग जैसे—Veteran's Administration (पूर्व सैनिकों के कल्याण हेतु), डाक विभाग तथा विधि एवं न्यायिक कर्मचारी शाखा भी कार्यरत हैं जिनका प्रमुख मंत्री (सचिव) नहीं होता है। अधिसंख्य प्रशासनिक कार्य 'Administrative Procedure Act, 1946' के अन्तर्गत सम्पादित होते हैं।

संघीय स्तर पर नीति निर्माण एवं प्रशासनिक नियंत्रण का दायित्व राष्ट्रपति, व्हाईट हाउस कार्यालय तथा मंत्रिमण्डल निर्वाहित करते हैं। लेकिन विभागों का पुनर्गठन कांग्रेस ही कर सकती है। मंत्रिमण्डल की साप्ताहिक बैठकें होती हैं जिनमें प्रायः औपचारिकताओं का ही निर्वहन किया जाता है। कहा जाता है कि अब्राहम लिंकन जब राष्ट्रपति थे तो किसी मुद्दे पर मंत्रिमण्डल के सातों सदस्यों ने असहमति प्रकट की। अन्त में राष्ट्रपति ने कहा—"ठीक है, सात मत विपक्ष में हैं और एक पक्ष में; अतः प्रस्ताव के पक्ष में निर्णय हुआ।" संसदीय शासन प्रणाली की भाँति अध्यक्षीय प्रणाली में सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

प्रशासनिक विभागों को आन्तरिक रूप से **ब्यूरो** (Bureau), **डिवीजन** (Division), **ऑफिस** (Office) तथा **सर्विसेज** (Services) में विभक्त किया जाता है जिनके प्रशासनिक प्रमुख पदसोपानात्मक आधार पर नियुक्त किए जाते हैं। प्रशासनिक विभागों के अतिरिक्त अन्य प्रकृति के अभिकरण भी हैं, जैसे—

(i) **स्वतंत्र कार्यकारी अभिकरण** वे होते हैं जो प्रत्यक्षतः राष्ट्रपति के अधीन होते हैं, किसी मंत्री के अधीन नहीं। इनमें वेटरंस एडमिनिस्ट्रेशन, **नासा** (National Aeronautics & Space Administration), **सी.आई.ए.** (Central Intelligence Agency) नामक गुप्तचर संस्था एवं राष्ट्रीय विज्ञान फाउण्डेशन सम्मिलित हैं।

(ii) **स्वतंत्र नियामकीय अभिकरण** वे संगठन हैं जो आयुक्तों के एक मण्डल द्वारा संचालित होते हैं। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त ये आयुक्त अपने कार्यकरण में

स्वतंत्र होते हैं तथा विशिष्ट वैधानिक स्तर प्राप्त हैं। इनमें संघीय संचार आयोग, संघीय निर्वाचन आयोग, संघीय रिजर्व बोर्ड, अन्तरराज्यीय व्यापार आयोग तथा राष्ट्रीय श्रम आयोग इत्यादि सम्मिलित हैं।

(iii) **लोक उपक्रम** वे उद्योग हैं जो सरकार द्वारा संचालित होते हैं। इन्हें अर्द्ध स्वतंत्र निगम या संगठन भी कहा जाता है। अमेरिका में लोक निगमों की संख्या लगभग 155 है। इनमें टेनेसी घाटी प्राधिकरण (TVA), COMSAT (नासा के उत्पाद बेचने वाला उपक्रम), डाक सेवाएँ, AMTRAK (रेलवे सेवा) तथा CONRAIL (रेलवे) इत्यादि प्रमुख हैं।

इनके अतिरिक्त **राष्ट्रपति कार्यालय** भी केन्द्रीय प्रशासन के नियंत्रण-निर्देशन का महत्त्वपूर्ण अभिकरण है। पेण्टागन शहर स्थित अमेरिकी रक्षा विभाग, विश्व की सबसे बड़ी प्रशासनिक इमारत है जिसमें 23 हजार कार्मिक एक स्थान पर कार्य करते हैं।

(5) जटिल एवं उलझा हुआ प्रशासनिक तंत्र : भारत की भाँति अमेरिकी प्रशासन तंत्र भी अत्यन्त जटिल तथा उलझा हुआ है क्योंकि वहाँ पर विविध प्रकृति, आधार एवं उद्देश्यों से युक्त प्रशासनिक संरचनाएँ कार्यरत हैं। कुछ प्रशासनिक विभाग, उनके ब्यूरो, सेवाएँ तथा कार्यालय के नाम से बहुधा भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। कतिपय विभाग ऐसे भी हैं जो संघीय एवं प्रांतीय दोनों स्तरों पर कार्यरत हैं। मंत्रिमण्डल के प्रत्यक्ष नियंत्रण के प्रशासनिक विभागों के अतिरिक्त स्वतंत्र कार्यकारी अभिकरण, स्वतंत्र नियामकीय आयोग तथा लोक उपक्रमों के रूप में कई प्रकार के बोर्ड, निगम तथा आयोग कार्यरत हैं जो प्रशासनिक जटिलता एवं विविधता के परिचायक हैं। भारत की तरह अमेरिका में भी लोक उपक्रमों के नामकरण में अस्पष्टता है। उदाहरण के लिए 'National Rural Electric Cooperative Association' एक लोक उपक्रम है। विविध प्रकार के प्रशासनिक संगठनों के प्रवर्तन से कांग्रेस एवं राष्ट्रपति दोनों के लिए विधि निर्माण, नियंत्रण और समन्वय किंचित् कठिन हो जाता है।

(6) कुशल कार्मिक प्रशासन : संघीय अथवा केन्द्रीय स्तर पर संरचित प्रशासनिक संस्थाओं पर कांग्रेस के कानून प्रभावी होते हैं तथा इन संस्थाओं के कार्मिकों को वे कार्य सम्पादित करने पड़ते हैं जो संविधान की संघीय सूची में वर्णित किए गए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के संघीय प्रशासन के अधीन लगभग 32 लाख लोक सेवक कार्यरत हैं जबकि सभी राज्यों के कार्मिकों सहित यह संख्या सवा दो करोड़ से भी अधिक हो जाती है। कुशल, प्रतिबद्ध तथा आधुनिक प्रकृति के कार्मिक प्रशासन की कतिपय विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(i) संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक सेवाओं का वर्गीकरण पद की स्थिति (Position Classification) के आधार पर किया गया है। भारत या फ्रांस की तरह रैंक वर्गीकरण नहीं है। लोक सेवाओं को G.S. अर्थात् जनरल शिड्यूल (GenerakSchedule) 1 से 18 तक विभक्त किया गया है। सन् 1978 से सीनियर एक्जीक्यूटिव सर्विस (Senior Executive Service) भी शुरू की गई है जो सर्वोच्च लोक सेवाएँ हैं। अमेरिका में मध्य एवं निम्न स्तरीय कार्मिकों को प्रायः '**White Collar Workers**' नाम से भी पुकारा जाता है।

(ii) भर्ती का मुख्य आधार योग्यता को बनाया गया है तथापि लूट प्रणाली अभी भी प्रवर्तित है। सन् 1978 के सिविल सर्विस सुधारों के पश्चात् संघीय लोक सेवा आयोग को समाप्त कर दिया गया है तथा कार्मिक भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण एवं सेवा शर्तों से सम्बन्धित कार्य 'Office of Personnel Management' करता है।

(iii) भर्ती के लिए आयु सीमा 18 से 70 वर्ष है। कतिपय तकनीकी पदों को छोड़कर शेष पदों हेतु कोई शैक्षिक योग्यता निर्धारित नहीं है। केवल सम्बन्धित पद हेतु प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती है।

(iv) सेवापूर्व तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण सहित कम्प्यूटर के प्रयोग पर अत्यधिक बल दिया जाता है। विशेषज्ञों का वर्चस्व है।

(v) अमेरिकी प्रशासन में लोक सेवाओं को स्थायी कैरियर के रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि अच्छे अवसर मिलने पर बार-बार नौकरी छोड़ना एक साधारण प्रवृत्ति है। पदोन्नति में योग्यता तथा वरिष्ठता दोनों का महत्त्व रहता है। कार्य निष्पादन मूल्यांकन गम्भीरतापूर्वक किया जाता है।

(vi) वेतन प्रति सप्ताह दिया जाता है तथा निजी क्षेत्र की तुलना में लोक सेवाओं का वेतन कम आकर्षक माना जाता है।

(vii) टाफ्ट हार्टले अधिनियम, 1947 के बाद लोक सेवकों द्वारा हड़ताल करना पूर्णतया वर्जित है।

(viii) कार्मिकों के व्यावसायिक संघों की स्थिति सुदृढ़ है तथा ये सरकार पर दबाव डालने के अतिरिक्त सदस्यों की योग्यताओं, ज्ञान एवं व्यावसायिक आदर्शों में वृद्धि के प्रयास भी करते हैं।

इसी प्रकार कम्प्यूटर, फैक्स, इण्टरनेट, उपग्रह, पेजर, ई-मेल तथा अन्य फाइबर ऑप्टिकल इलेक्ट्रोनिक सुविधाओं से युक्त अमेरिकी प्रशासन **उन्नत एवं आधुनिकीकृत** माना जाता है। 30 जून, 2000 को राष्ट्रपति बिल क्लिण्टन ने इलेक्ट्रोनिक (Digital) हस्ताक्षर कर ई-कॉमर्स तथा ऑनलाइन अनुबन्धों को वैधता प्रदान कर दी है।

(7) लूट प्रणाली के अवशेष : अमेरिकी लोक सेवाएँ लूट प्रणाली (Spoil System) से सदैव ग्रस्त रही हैं। ज्योंही नया राष्ट्रपति या गवर्नर पद ग्रहण करता है वह अपने चहेतों को उच्च पदों पर नियुक्ति दे देता है। लूट प्रणाली की शुरुआत प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन ने की तथा राष्ट्रपति जेफरसन एवं एडम्स ने इसे पल्लवित किया। साथ ही एण्ड्रयू जैक्सन ने इस प्रणाली का दुरुपयोग शुरू किया। किन्तु सन् 1881 में एक हताश बेरोजगार द्वारा तत्कालीन राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या किए जाने से लोक सेवाओं में सुधार किए गए। सन् 1883 के पेण्डलटन अधिनियम के पश्चात् अब अधिकांश पद

योग्यता आधारित भर्ती प्रणाली से भरे जाते हैं किन्तु संघीय स्तर पर 2-3 हजार उच्च पद ऐसे हैं जो राष्ट्रपति अपनी इच्छा से भरता है। यद्यपि इन पदों पर की जाने वाली नियुक्तियों को सीनेट स्वीकृति देती है फिर भी ये लूट प्रणाली के ही अवशेष हैं।

(8) नौकरशाही का वर्चस्व : वर्तमान विश्व के अधिकांश देशों में चाहे वे विकसित हों या विकासशील, नौकरशाही एक बुराई या समस्या के रूप में आँकी जाती है लेकिन इस बुराई का अन्य कोई अच्छा विकल्प नहीं है। मंत्रियों को परामर्श, तथ्यों के प्रस्तुतीकरण, नियमों के निर्माण, कानूनों के क्रियान्वयन तथा जन सम्पर्क के सम्बन्ध में राजनीतिज्ञों को कुशल कार्मिकों की आवश्यकता है लेकिन इन कार्मिकों में सर्वत्र अहं तथा विशिष्ट प्रस्थिति का भाव व्याप्त है। **नॉर्मन जे. पावेल** के अनुसार—"संयुक्त राज्य अमेरिका की लोक सेवाएँ विशाल, महँगी तथा शक्तिशाली हैं।" उच्च पदों पर आसीन नौकरशाही तथा राजनीतिज्ञों का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है जो प्रशासनिक कुशलता में सार्थक अथवा सकारात्मक योगदान शायद ही कभी देता है। अमेरिकी सरकार ने आम जनता को सरकारी विभाग से **सूचना प्राप्त करने का अधिकार सन् 1966** (सन् 1978 में संशोधित) में ही दे दिया था। सन् 1993 में अल गोर की अध्यक्षता में बनी समिति (National Performance Review) की रिपोर्ट के पश्चात् 'Government Performance and Result Act, 1993' पारित किया जा चुका है जो अमेरिकी प्रशासन से अधिक मितव्ययता एवं कुशलता की माँग करता है। **Privacy Act** (1974) के माध्यम से लोक सेवकों की निजी सूचनाएँ भी जनता माँग सकती है।

(9) निजी क्षेत्र का वर्चस्व : यद्यपि लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दो पृथक् ध्रुव हैं तथापि सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संदर्भों में ये एक ही सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। अमेरिकी अर्थव्यवस्था पूँजीवाद की पोषक मानी जाती है। अतः प्रतिरक्षा, पुलिस, परमाणु अस्त्र-शस्त्र, अन्तरिक्ष कार्यक्रम तथा करेंसी नियंत्रण के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों में पूँजीपतियों का हस्तक्षेप इतना अधिक है कि सरकार की भूमिका लगभग गौण है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, वाणिज्य, संचार, व्यापार तथा अनुसंधान के क्षेत्रों में निजी क्षेत्र का बोलबाला है। आधुनिक तकनीक एवं उच्च प्रबन्धकीय योग्यताओं के कारण निजी क्षेत्र का संगठन, कार्यप्रणाली, उत्पादन तथा उसकी गुणवत्ता विश्वसनीय मानी जाती है। अतः अधिसंख्य योग्य एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियों का झुकाव निजी क्षेत्र की ओर पाया जाता है।

(10) हित समूहों की अधिकता : कार्ल मार्क्स के वर्गविहीन समाज के विपरीत अमेरिकी राजनीति, समाज तथा प्रशासन में अनेकानेक हित एवं दबाव समूह बने हुए हैं जो सम्पूर्ण तंत्र पर अपना प्रभाव डालते हैं। ये हित समूह व्यवसाय, नस्ल, लिंग, धर्म, क्षेत्र, कार्य, सेवा एवं जातीय आधारों पर बने हुए हैं। सरकारी कार्मिकों के संघ, राजनेताओं के समूह, पूँजीपतियों के वर्ग, श्रमिकों की यूनियनें, चर्च के संघ, कृषकों के संगठन तथा अन्य कई प्रकार के दबाव समूह अमेरिकी समाज में दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः अमेरिका में अधिक राष्ट्रीयताओं के नागरिकों के प्रवास ने भी वर्गीय भावनाओं में वृद्धि की है। दबाव

या हित समूह चुनावों में खुलकर अपना समर्थन व्यक्त करते हैं जो लोक प्रशासन पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव डालता है।

(11) स्वतंत्र राज्य प्रशासन : संघीय शासन व्यवस्था अपनाने के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय तथा प्रांतीय दोनों स्तरों पर पृथक्-पृथक् संविधान तथा प्रशासनिक तंत्र कार्यरत हैं। संघीय संविधान के अनुच्छेद-1 (8) में वर्णित विषयों के अतिरिक्त सभी विषय राज्य सूची या राज्य प्रशासन से सम्बन्धित माने गए हैं। प्रत्येक राज्य का अपना संविधान, विधानमण्डल, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका कार्यरत है जो उस राज्य की भौगोलिक परिस्थितियों, ऐतिहासिक संदर्भों, जनाकांक्षाओं और सामाजिक-आर्थिक परिवेश से प्रभावित है। राज्य प्रशासन में आपातकालीन या संकटकालीन परिस्थितियों के अतिरिक्त संघ सरकार का कभी कोई हस्तक्षेप नहीं रहता है।

(12) सुस्थापित स्थानीय स्वशासन : संयुक्त राज्य अमेरिका में नगरीय तथा ग्रामीण स्थानीय स्वशासन राज्य सूची का विषय है। अतः सम्बन्धित राज्य के संविधान में स्थानीय संस्थाओं का वर्णन किया गया है। स्थानीय स्वशासन की इन संस्थाओं को लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की पर्याय मानते हुए पर्याप्त शक्तियों एवं अधिकारों से युक्त किया गया है। बड़े नगरों में नगर निगम तथा छोटे नगरों में सिटी, काउण्टी, टाउनशिप तथा विशेष जिला नामक संस्थाएँ कार्यरत हैं जबकि गाँवों में भी स्थानीय स्वशासन की जड़ें व्याप्त हैं।

नियंत्रण व्यवस्था (Control Systems)

लोक प्रशासन से सम्बद्ध संस्थाओं तथा संगठनों को जनता के प्रति जवाबदेय बनाने, कानून के प्रति आस्था प्रकट करने और समूची व्यवस्था को अनुशासित ढंग से संचालित करने हेतु यह आवश्यक है कि नियंत्रण व्यवस्था कठोर, व्यावहारिक एवं प्रभावी हो। अमेरिकी प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु निम्नांकित प्रणालियाँ हैं—

1. कांग्रेस द्वारा नियंत्रण।
2. राष्ट्रपति द्वारा नियंत्रण।
3. न्यायालयों द्वारा नियंत्रण।
4. महालेखा नियंत्रक द्वारा नियंत्रण।
5. जनमत एवं अन्य माध्यमों द्वारा नियंत्रण।

(1) कांग्रेस द्वारा नियंत्रण : शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के अन्तर्गत जहाँ शासन के तीनों अंग एक दूसरे से स्वतंत्र हैं वहाँ 'अवरोध तथा संतुलन' का सिद्धान्त भी प्रभावी है। प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट द्वारा निर्मित कानूनों को ही कार्यपालिका क्रियान्वित करती है अतः कांग्रेस ऐसे कानून बनाती है या आवश्यकता पड़ने पर बना सकती है जिनसे प्रशासनिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित हो सके और लोक सेवक निरंकुश व्यवहार न करें। सरकार के प्रत्येक कार्य, गतिविधि एवं नीतियों की चर्चा कांग्रेस द्वारा की जा सकती है। प्रति वर्ष कांग्रेस में राष्ट्रपति द्वारा दिए जाने वाला संदेश अथवा अभिभाषण तथा उसमें

वर्णित नीतिगत सुझाव और भावी कार्यक्रम चर्चा के लिए मुख्याधार बनते हैं। लोक प्रशासन के महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति का कार्य राष्ट्रपति करता है किन्तु नियुक्तियों का अनुमोदन सीनेट करती है। अमेरिका में ऐसा कई बार हुआ है जब विवादास्पद या अयोग्य व्यक्ति को नियुक्ति को सीनेट ने मंजूरी नहीं दी है। विधायी नियंत्रण के इस स्वरूप के अन्तर्गत कांग्रेस के अधिकार व्यापक हैं। राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति सहित न्यायाधीशों द्वारा अनियमितताएँ प्रदर्शित करने पर कांग्रेस महाभियोग के माध्यम से उन्हें पद से हटा सकती है। प्रशासनिक विभागों द्वारा निर्मित बजट को कांग्रेस ही स्वीकृति देती है ताकि वित्तीय नियंत्रण बना रहे। सरकारी आय-व्यय के लेखों का परीक्षण करने वाला महालेखा नियंत्रक भी कांग्रेस का ही एक अंग माना जाता है। सरकार द्वारा की गई सन्धियों का अनुमोदन, महत्त्वपूर्ण प्रकरणों की जाँच या अन्वेषण तथा कांग्रेस की विभिन्न समितियों के द्वारा विशिष्ट विषयों पर प्रतिवेदन इत्यादि द्वारा भी विधायी नियंत्रण किया जाता है।

(2) राष्ट्रपति द्वारा नियंत्रण : राष्ट्रपति स्वयं कार्यपालिका के प्रमुख हैं अतः इसे प्रशासन पर **कार्यपालिका द्वारा नियंत्रण** भी कहा जाता है। अमेरिका में संघीय लोक प्रशासन पर नियंत्रण, निर्देशन, समन्वय, पर्यवेक्षण तथा जवाबदेयता का दायित्व राष्ट्रपति को सौंपा गया है। राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वे लोक प्रशासन के कार्यकरण एवं व्यवहार को संविधान की सीमा में रखते हुए इच्छानुसार परिवर्तित कर लें। इसी क्रम में मंत्रिमण्डल के सदस्यों, प्रशासनिक विभागों, आयोगों तथा अभिकरणों इत्यादि में राष्ट्रपति अपनी पसन्द के व्यक्ति नियुक्त करता है। स्पष्ट है राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति, सम्बन्धित राजनीतिक दल की नीतियों, घोषणाओं तथा राष्ट्रपति की भावनाओं से सहमत होते हैं। ये अधिकारी राष्ट्रपति के निर्देशानुसार सम्पूर्ण प्रशासनिक संगठन पर नियंत्रण स्थापित करते हैं। जिन अधिकारियों को राष्ट्रपति नियुक्त करता है उन्हें वह पद से हटा भी सकता है, यदि किसी प्रकार के विवादास्पद मुद्दे सामने आएँ। राष्ट्रपति कार्यालय में पदस्थापित सलाहकार एवं नियंत्रक शाखाएँ राष्ट्रपति को दैनिक सूचनाएँ प्रदान करती हैं। गम्भीर प्रकृति के अपराधों की **फेडरल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टीगेशन** (FBI) द्वारा जाँच करवाई जा सकती है। संघीय पुलिस (FBI), सेण्ट्रल इण्टेलीजेंस एजेन्सी (CIA), नेशनल व्हाईट क्राइम सेण्टर (NWCC) तथा अन्य जासूसी अभिकरण राष्ट्रपति के निरन्तर सम्पर्क में रहते हैं। विदेशी आसूचना निगरानी अधिनियम, 1978 के प्रवर्तन के पश्चात् अब अमेरिकी लोक प्रशासन तथा अन्य संगठनों में कार्य कर रहे विदेशी नागरिकों की गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। यद्यपि सूचना के अधिकार से सम्बन्धित अधिनियम सन् 1966 में पारित (1978 में संशोधित) हो चुका है फिर भी प्रशासनिक सूचनाएँ व्यक्तियों के बजाय व्यापार तथा व्यावसायिक संगठनों को ही दी जा रही हैं क्योंकि इससे प्रशासनिक नियंत्रण में कमी का भय अभी भी बना हुआ है। प्रशासनिक नियंत्रण के लिए राष्ट्रपति कार्यालय से निरन्तर आदेश भी जारी होते रहते हैं तथा प्रशासनिक संगठन अपनी कार्य-प्रगति से राष्ट्रपति को अवगत भी कराते रहते हैं।

यदि कोई सरकारी कार्मिक प्रशासन तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का खुलासा करता है तो उसे 'The Whistle Blower Protection Act, 1989' के अन्तर्गत संरक्षण प्राप्त होता है।

(3) न्यायालयों द्वारा नियंत्रण : कांग्रेस द्वारा निर्मित तथा कार्यपालिका द्वारा क्रियान्वित कानूनों की व्याख्या का अधिकार न्यायपालिका के पास सुरक्षित है। संवैधानिक उपबंधों के विरुद्ध किसी भी कानून को न्यायपालिका अवैधानिक करार दे सकती है। इसी प्रकार 'विधि के शासन' के विरुद्ध यदि कोई प्रशासनिक निर्णय, अवैधानिक प्रक्रिया तथा अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन से सम्बन्धित कृत्य होता है तो न्यायपालिका नियंत्रण स्थापित कर सकती है। कांग्रेस के कानूनों तथा प्रशासनिक निर्णयों का 'न्यायिक पुनरावलोकन' एक सार्थक प्रयास माना जाता है। कुछ नियामकीय आयोग जैसे—अन्तरराज्यीय व्यापार आयोग तथा कुछ प्रशासनिक विभाग जैसे—पेटेण्ट अपील बोर्ड भी अर्द्ध न्यायिक कार्य करते हैं।

(4) महालेखा नियंत्रक द्वारा नियंत्रण : संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय आय-व्यय के लेखों की जाँच के लिए एक स्वतंत्र महालेखा नियंत्रक होता है जिसे कांग्रेस का एक अंग माना जाता है। महालेखा नियंत्रक की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा पन्द्रह वर्ष के लिए की जाती है तथा अधिकतम 70 वर्ष की आयु तक वह इस पद पर रह सकता है। सीनेट की स्वीकृति से पदस्थापित महालेखा नियंत्रक को सरकार के समस्त वित्तीय लेखों, लेन-देन तथा बजट मामलों की छानबीन एवं जाँच का अधिकार प्राप्त है। अंकेक्षण द्वारा निस्संदेह वित्तीय अनियमितताओं पर अंकुश रखा जा सकता है तथा प्रशासनिक जवाबदेयता सुनिश्चित की जा सकती है।

(5) जनमत एवं अन्य माध्यमों द्वारा नियंत्रण : लोकतंत्र में जनता ही सम्प्रभु है क्योंकि आधुनिक शासन व्यवस्थाएँ जनता द्वारा चयनित प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होती हैं। यदि शासन की कार्यप्रणाली जनता की भावनाओं के विपरीत हो अथवा लोक प्रशासन की असफलता सामने आएँ तो जनमत शासन के विपरीत हो जाता है। स्पष्ट है जनमत का प्रत्यक्ष प्रभाव चुनावों में दिखाई देता है। जनमत को ध्यान में रखते हुए अनेक प्रशासनिक निर्णय प्रभावित होते रहे हैं क्योंकि प्रशासनिक नियंत्रण में जनता से बढ़कर कोई भी विधि नहीं है। इस प्रकार लोक सेवकों के लिए बनाई गई आचार संहिता, पदसोपान व्यवस्था, अनुशासनात्मक कार्यवाही, कार्मिक संघ तथा आन्तरिक कार्यप्रणाली भी नियंत्रण के प्रभावी साधन हैं। भारत की भाँति अमेरिका में भी प्रेस को स्वतंत्रता प्राप्त है अतः जनसंचार के माध्यमों से भी प्रशासनिक नियंत्रण सम्भव होता है। विश्व प्रसिद्ध 'वाटरगेट काण्ड' जिसके कारण तत्कालीन राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन को त्यागपत्र देना पड़ा था, एक खोजी पत्रकार द्वारा ही सामने लाया गया था। विपक्षी दल, औद्योगिक समूह, कार्मिक संघ, श्रमिक यूनियनें तथा अन्य कई दबाव समूह भी प्रशासन पर नियंत्रण में सहायक सिद्ध होते हैं। सूचना के अधिकार के अतिरिक्त **Privacy Act** (1974) तथा **Sunshine Act** (1976) भी जनता को प्रशासन में झाँकने का अवसर प्रदान करते हैं।

सारांशतः कहा जा सकता है कि विश्व की महान् शक्ति अमेरिका में प्रशासनिक नियंत्रण की कई प्रणालियाँ प्रभावी हैं क्योंकि लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी राज्यों में

प्रशासनिक शक्ति पर नियंत्रण रखना आवश्यक है अन्यथा नौकरशाही को निरंकुशता बढ़ने में समय नहीं लगता है।

राज्य प्रशासन
(State Administration)

संयुक्त राज्य अमेरिका, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि 50 राज्यों को संयुक्त करके बना संघीय शासन व्यवस्था वाला देश है। संघीय शासन व्यवस्था के समस्त गुणों एवं विशेषताओं से युक्त अमेरिकी तंत्र में राज्यों (प्रांतों) की स्थिति स्वतंत्रता प्राप्त शासन इकाइयों की है। प्रत्येक राज्य में अपना पृथक् संविधान तथा शासन प्रणाली प्रवर्तित है जो उस राज्य के ऐतिहासिक संदर्भों, भौगोलिक स्थिति, राजनीतिक परिदृश्य तथा अन्य कई कारकों से प्रभावित है। यद्यपि अमेरिका के प्रत्येक राज्य में प्रशासनिक तंत्र भिन्नता लिए हुए है तथापि कतिपय विशेषताएँ ऐसी हैं जो सभी राज्यों में न्यूनाधिक मात्रा में दिखाई पड़ती हैं।

1. प्रत्येक राज्य में पृथक् संविधान हैं जो राज्य प्रशासन को समस्त गतिविधियों का केन्द्रबिन्दु है।
2. प्रत्येक राज्य की पृथक् से नागरिकता है (अमेरिका में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है—राष्ट्रीय तथा प्रांतीय)।
3. सभी राज्यों में अध्यक्षीय शासन प्रणाली प्रवर्तित है। गवर्नर राज्य प्रशासन का संवैधानिक एवं वास्तविक मुखिया होता है जो जनता द्वारा निर्वाचित होता है।
4. प्रायः सभी राज्यों में (नेब्रास्का के अतिरिक्त) द्विसदनीय विधायिका है। उच्च सदन सीनेट तथा निम्न सदन प्रतिनिधि सभा कहलाता है।
5. राज्यों के संविधान भी उतने ही प्राचीन हैं जितना कि संघीय संविधान। सभी राज्यों के संविधानों में नागरिक अधिकारों, राज्य सरकार की संरचना, राज्य-वित्त, कार्यविधि नियम तथा जनकल्याणकारी गतिविधियों तथा संविधान संशोधन प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।
6. शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त को अपनाते हुए विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को पृथक् रखा गया है।
7. संघीय संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों (विषयों) का बँटवारा किया गया है। जो विषय केन्द्र के अधीन नहीं रखे गए हैं उन्हें अवशिष्ट शक्तियाँ मानकर राज्यों के अधिकार क्षेत्र में रखा गया है।
8. संघ की भाँति राज्यों में भी संविधान की सर्वोच्चता को स्वीकारा गया है।
9. दोहरी न्यायपालिका के अन्तर्गत राज्यों की न्यायपालिका एवं कानून पृथक् हैं किन्तु संघीय स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय, संविधान की व्याख्या करने, संघ एवं राज्यों के मध्य विवाद सुलझाने तथा राज्य एवं नागरिक के बीच विवादों की सुनवाई करता है।

10. यद्यपि राज्यों को पूर्ण स्वतंत्र शासन इकाइयाँ घोषित किया गया है फिर भी केन्द्र सरकार अधिक शक्तिशाली मानी जाती है।
11. शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क परिवहन तथा लोक कल्याण जैसे सामाजिक विषय राज्य प्रशासन के अधीन रखे गए हैं।
12. सभी राज्यों की लोक सेवाओं में 'लूट प्रणाली' के स्थान पर योग्यता प्रणाली प्रवर्तित है।
13. स्थानीय प्रशासन को वैधानिक आधार प्रदान करते हुए काउण्टी, सिटी, टाउन तथा ग्राम स्तरों में विभक्त किया गया है।
14. महत्त्वपूर्ण पद जैसे—महान्यायवादी, राज्य सचिव तथा शिक्षा अधीक्षक इत्यादि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा भरे जाते हैं।
15. साधारण प्रकृति के अपराध जनता द्वारा निर्वाचित 'जस्टिस ऑफ पीस' (Justice of Peace) नामक पदाधिकारी द्वारा सुलझाए जाते हैं जो कानूनी प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता बल्कि एक लोकप्रिय व्यक्ति होता है।

राज्य प्रशासन की संरचना

स्थानीय प्रशासन - काउण्टी → सिटी → टाउन → ग्राम

(1) विधायिका : राज्य प्रशासन को प्रदत्त विषयों पर कानून बनाने के लिए राज्यों में विधानमण्डल कार्यरत होते हैं। द्विसदनीय व्यवस्था के अनुसार उच्च सदन सीनेट कहलाता है जिसमें सदस्यों का चयन काउण्टी से होता है। राज्य सीनेट में सदस्यों की संख्या 15 से 50 तक होती है। दूसरा सदन प्रतिनिधि सभा कहलाता है जिसके सदस्यों का चयन जनता द्वारा किया जाता है। इस सदन में सदस्यों की संख्या 30 से 400 तक हो सकती है। यह सम्बन्धित राज्य की जनसंख्या, क्षेत्रफल तथा संविधान के प्रावधानों पर निर्भर करता है। अधिकांश राज्यों में सदन का कार्यकाल 4 वर्ष होता है। वार्षिक बजट की स्वीकृति विधानमण्डल द्वारा दी जाती है तथा राज्य के संविधान में संशोधन का कार्य भी विधायिका ही करती है। यद्यपि इस सम्बन्ध में बहुत से राज्यों में जनता द्वारा आरम्भक (Refrendum) लोक निर्णय की व्यवस्था भी अपनाई गई है ताकि लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रसार हो सके।

(2) कार्यपालिका : संघीय सरकार की भाँति राज्यों में भी अध्यक्षीय शासन प्रणाली होने के कारण इकहरी कार्यपालिका के रूप में गवर्नर पदासीन होता है। राज्य प्रशासन से सम्बन्धित समस्त प्रशासनिक, विधायी, न्यायिक तथा अन्य महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ गवर्नर में निहित होती हैं। गवर्नर, राज्य प्रशासन को संचालित करने के लिए कुछ सचिव तथा निदेशक भी नियुक्त करता है। निम्नांकित पदाधिकारी जनता द्वारा चुने जाते हैं।

(i) राज्य सचिव (Secretary of State)
(ii) महान्यायवादी (Attorney General)
(iii) शिक्षा अधीक्षक (Superintendent of Public Instructions)
(iv) राज्य कोषाधिकारी (State Treasurer)
(v) राज्य अंकेक्षक (State Auditor)

राज्य सचिव को सामान्यतः निर्वाचन सम्बन्धित कार्य निष्पादित करने होते हैं जबकि कतिपय राज्यों में उसे राजकीय प्रकाशन, शासकीय अभिलेख संधारण, दस्तावेज प्रमाणन, मोटर वाहन पंजीकरण तथा पुरातत्व से सम्बन्धित कार्य भी दिए जाते हैं। महान्यायवादी गवर्नर का प्रमुख विधि सलाहकार होता है तथा विधि विभाग के प्रमुख के रूप में वह सरकारी विभागों को कानूनी सहायता उपलब्ध कराता है। शिक्षा अधीक्षक के अधीन सैकण्डरी स्तर तक की शिक्षण संस्थाएँ रखी गई हैं। शिक्षा विभाग के मुखिया के रूप में वह कुछ अर्द्ध न्यायिक कार्य भी करता है। राज्य कोषाधिकारी राजकोष का प्रमुख होता है तथा सम्पूर्ण राज्य प्रशासन की वित्तीय गतिविधियाँ नियंत्रित करता है जबकि राज्य अंकेक्षक का कार्य आय-व्यय के लेखों की जाँच करना है।

(3) प्रशासनिक विभाग : सन् 1912 में **टैफ्ट आयोग** (Commission on Economy and Efficiency) की अनुशंसाओं के पश्चात् अमेरिका में प्रशासनिक पुनर्गठन तथा सुधारों के क्रम में प्रयास शुरू हुए। इससे पूर्व अधिसंख्य राज्यों में प्रशासनिक विभागों की संख्या 100-125 तक पहुँच चुकी थी। ऐसी विचित्र स्थिति में एक ही कार्य कई

प्रशासनिक संगठनों के अधिकार क्षेत्र में आ जाने से अनावश्यक संघर्ष एवं कार्य-अतिरात उत्पन्न होने लगा था। सन् 1917 में राज्यों की प्रशासनिक संरचना का पुनर्गठन होना प्रारम्भ हुआ तथा अधिकांश राज्यों में निम्नांकित 10 प्रशासनिक विभाग बना दिए गए, जो अभी भी यथावत् कार्यरत हैं।

(i) वित्त विभाग,
(ii) कृषि विभाग,
(iii) श्रम विभाग,
(iv) खान एवं खनिज विभाग,
(v) सार्वजनिक निर्माण एवं भवन विभाग,
(vi) लोक कल्याण विभाग,
(vii) लोक स्वास्थ्य विभाग,
(viii) संरक्षण विभाग,
(ix) पंजीकरण एवं शिक्षा विभाग, तथा
(x) बीमा विभाग।

सन् 1947 में गठित हूवर आयोग (Commission on Organisation of Executive Branch of the Government) की अनुशंसा पर भी राज्यों में प्रशासनिक सुधार किए गए। राज्यों के प्रशासनिक कार्यालयों में तीन प्रकार की व्यवस्थाएँ पाई जाती हैं—

- **एक मुखिया विभाग**—जिनमें शीर्ष पर एक ही नियंत्रणकर्ता होता है तथा शाखाओं को चीफ द्वारा नियंत्रित किया जाता है।
- **बोर्ड**—जिनमें बहुसदस्यीय व्यवस्था होती है।
- **संयुक्त**—इस प्रकृति के विभागों में बोर्ड तथा एक मुखिया विभागों का मिश्रित स्वरूप पाया जाता है।

(4) लोक सेवाएँ : प्रत्येक राज्य में लोक सेवाओं की पृथक् प्रकृति तथा ढाँचा पाया जाता है। राज्यों में स्थित 'सिविल सर्विस बोर्ड' लोक सेवकों की भर्ती करते हैं जो प्रतियोगी परीक्षाओं की आधुनिक प्रणाली पर आधारित होती है। गवर्नर द्वारा राज्य प्रशासन के विभागों एवं स्थानीय स्वशासन में राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर नियुक्ति देने की लूट प्रणाली (कम मात्रा में) अभी भी प्रचलित है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सभी राज्यों, लोक उपक्रमों तथा स्थानीय संस्थाओं में कुल 1.8 करोड़ कर्मचारी कार्यरत हैं।

(5) वित्तीय व्यवस्था : भारत की भाँति अमेरिका में भी राज्यों की वित्तीय स्थिति केन्द्र की तुलना में किंचित् दुर्बल कही जा सकती है। राज्य सरकारों को निम्नांकित स्रोतों से आय होती है—

(i) बिक्री कर।
(ii) मोटर ईंधन।
(iii) आय कर।

(iv) मोटरवाहन लाइसेंस।
(v) लोक उपक्रमों से लाभांश, व्यवसाय तथा शराब बिक्री इत्यादि।
(vi) सामाजिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत अनुदान।
(vii) ऋण।

राज्य सरकारों की आय का अधिकांश भाग स्वास्थ्य, चिकित्सा, सैकण्डरी शिक्षा, राजमार्ग रख-रखाव तथा सामाजिक कल्याण गतिविधियों पर व्यय होता है।

(6) न्यायपालिका : अमेरिका में दोहरी न्यायपालिका का प्रचलन है अर्थात् संघीय एवं प्रांतीय स्तरों पर न्यायप्रणाली एकीकृत नहीं है। संविधान की व्याख्या तथा न्यायिक पुनरावलोकन के लिए संघीय न्यायालय कार्यरत हैं। राज्यों में सर्वोच्च न्यायालय, अपील न्यायालय, मध्यस्थ न्यायालय, नगरीय न्यायालय तथा मजिस्ट्रेट या पुलिस न्यायालय स्थापित किए गए हैं। जस्टिस ऑफ पीस (Justice of Peace) नामक निर्वाचित प्रतिनिधि स्थानीय विवादों को बिना सिविल या फौजदारी कानूनों के, केवल सहमति के आधार पर सुलझाता है। उच्च स्तरीय न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति तीन प्रकार से होती है—

- मतदाताओं द्वारा निर्वाचन।
- गवर्नर द्वारा नियुक्ति।
- विधायिका द्वारा चयन।

अमेरिकी संघीय शासन व्यवस्था में राष्ट्रीय एकता, अखंडता तथा सौहार्द निरन्तर दो सदियों से यथावत् है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 171 राष्ट्रीयताओं तथा अनेक धर्मों, नस्लों एवं सम्प्रदायों के नागरिक निवास करते हैं। राज्य प्रशासन के समक्ष सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताएँ उपस्थित होते हुए भी प्रशासनिक रूप से अमेरिकी राज्य प्रशासन अत्यन्त सफलता से कार्य करता रहा है। भौगोलिक दृष्टि से भी संयुक्त राज्य अमेरिका का हवाई राज्य, मुख्य भूमि से 3,200 कि.मी. दूर प्रशांत महासागर में तथा अलास्का राज्य 3,170 कि.मी. (कनाडा होकर राजमार्ग से) दूर स्थित है। इन सब व्यावहारिक समस्याओं के होते हुए भी अमेरिकी शासन तंत्र एकीकृत दिखाई देता है जो उच्च स्तरीय राष्ट्रीय भावनाओं का पर्याय है।

अमेरिका में गवर्नर
(Governor in USA)

संयुक्त राज्य अमेरिका एक संघीय शासन व्यवस्था वाला देश है जहाँ केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर पृथक् सरकारें एवं पृथक् संविधान प्रवर्तित हैं। अमेरिका के सभी राज्यों में शासन व्यवस्था लगभग समान सी है किन्तु राज्यों के संविधान, गवर्नर के पद तथा प्रशासनिक व्यवस्था के किंचित् अन्तर भी हैं। यह अन्तर उनके ऐतिहासिक संदर्भों, परिस्थितियों तथा जनमानस की इच्छा पर निर्भर करता है।

जैसा कि स्पष्ट है अमेरिका में अध्यक्षीय शासन प्रणाली केन्द्र एवं प्रांत दोनों स्तरों पर कार्यरत है अर्थात् वहाँ पर इकहरी कार्यपालिका का प्रचलन है। भारत या ब्रिटेन की भाँति नाममात्र की (राष्ट्रपति या राज्यपाल) तथा वास्तविक (प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री) कार्यपालिका के दो रूप नहीं हैं। अमेरिका के राज्यों में गवर्नर ही सम्बन्धित राज्य का सर्वेसर्वा होता है जिसका चयन निर्वाचन पद्धति से किया जाता है।

योग्यताएँ : संयुक्त राज्य अमेरिका में किसी राज्य के गवर्नर पद हेतु चुनाव लड़ने वाले व्यक्ति की सामान्यतया अग्रांकित योग्यताएँ होनी चाहिए।

1. वह अमेरिका का नागरिक हो तथा सम्बन्धित राज्य का भी नागरिक हो (अमेरिका में दोहरी नागरिकता है) तथा कम से कम पाँच वर्ष से उस राज्य में निवास कर रहा हो।
2. सामान्यत: 30 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

पूर्व में गवर्नर पद के उम्मीदवार के लिए धार्मिक मान्यताओं की शर्तें भी थीं जो अब लगभग सभी राज्यों द्वारा हटा ली गई हैं लेकिन कटु सच्चाई का बहुत महत्त्व है। यदि कोई राज्य कृषि प्रधान है तो उम्मीदवार की ग्रामीण एवं कृषक पृष्ठभूमि, यदि राज्य उद्योग एवं व्यापार प्रधान है तो उम्मीदवार की व्यापारिक या उद्योगपति की प्रस्थिति सहायक बनती है लेकिन सर्वाधिक प्रभाव निस्संदेह राजनीतिक पार्टी का ही रहता है। भारत की भाँति संयुक्त राज्य अमेरिका में भी स्थानीय कारक बहुत प्रभाव दिखाते हैं।

पदावधि : पचास के दशक से पूर्व गवर्नर की पदावधि एक वर्ष के लिए होती थी जो वर्तमान में अधिकांश राज्यों में चार वर्ष है।

पदमुक्ति : गवर्नर अपने पद से स्वेच्छा से त्यागपत्र दे सकता है। कतिपय राज्यों में वापिस बुलाने का भी प्रावधान है। नॉर्थ डकोटा राज्य सन् 1921 में गवर्नर लीन जे. फ्रेजियर के अक्षम सिद्ध होने पर जनता ने वापिस बुला (Recall) लिया था। इसके अतिरिक्त गवर्नर को 'महाभियोग' प्रक्रिया द्वारा भी हटाया जा सकता है।

गवर्नर के कार्य एवं शक्तियाँ : संयुक्त राज्य अमेरिका में गवर्नर का पद, राष्ट्रपति की भाँति महत्त्वपूर्ण, प्रभावी तथा शक्तिशाली माना जाता है। गवर्नर से सम्बन्धित गतिविधियाँ निम्नांकित रहती हैं—

1. सम्बन्धित राज्य की प्रमुख कार्यपालिका होने के नाते गवर्नर को दिन-प्रतिदिन के प्रशासन को संचालित करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया है। अपने सचिवालयी स्टाफ के साथ गवर्नर, राज्य प्रशासन से सम्बन्धित नीति, कार्यक्रम, कानून, नियम एवं योजनागत कार्यवाहियाँ निष्पादित करता है। गवर्नर के पास फाइलों का हमेशा बोझ रहता है।
2. अमेरिका में गवर्नर के पास प्रतिदिन मिलने वाले लोगों तथा प्रतिनिधि समूहों की भरमार रहती है। अत: राज्य का गवर्नर चर्च के पादरियों, धार्मिक समूहों, करदाता संगठनों, कृषक संघों, श्रमिक संगठनों, वाणिज्य मण्डलों, अन्तर्प्रांतीय संघों तथा अन्तरराष्ट्रीय प्रतिनिधि मण्डलों से मुलाकात कर उनकी समस्या-समाधान करता है तथा उनके ज्ञापन सम्बन्धित विभाग तक अग्रेषित करता है।
3. जब राज्य विधानमण्डल का सत्र चल रहा हो तब गवर्नर का कार्य भी बढ़ जाता

है। वह विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयकों पर आगे की कार्यवाहियों तथा उनका निष्पादन सुनिश्चित करवाता है।

4. संघीय सरकार के साथ समन्वय स्थापित करने तथा अन्य नीतिगत निर्णय भी गवर्नर ही लेता है।
5. भारत की भाँति अमेरिका में भी गवर्नर को सभा-संगोष्ठियों तथा जनसाधारण द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में सम्मिलित होना पड़ता है। गवर्नर की उपस्थिति किसी भी कार्यक्रम की गरिमा तथा प्रभावशीलता दोनों में वृद्धि करती है। सामान्यतः फुटबाल तथा बेसबाल (अमेरिका का राष्ट्रीय खेल) मैचों का उद्घाटन गवर्नर द्वारा होता है। राज्य द्वारा आयोजित मेलों में गवर्नर का भाषण एक आम परम्परा है।

शक्तियाँ (Powers)

(1) नियुक्ति एवं पदमुक्ति की शक्तियाँ : राज्य प्रशासन का प्रमुख नियंत्रक होने के नाते गवर्नर को महत्त्वपूर्ण पदाधिकारियों की नियुक्ति करने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। प्रशासनिक संगठनों के प्रमुखों की नियुक्ति तथा उनके कार्यकरण पर नियंत्रण रखना गवर्नर का दायित्व है। वह कृषि, पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य, राष्ट्रीय राजमार्ग, बीमा तथा कल्याण नामक राज्य प्रशासन के विभागों के सचिवों एवं निदेशकों की नियुक्ति करता है। बहुत से राज्यों में राज्य प्रशासन के महत्त्वपूर्ण पदों जैसे—लेफ्टीनेण्ट गवर्नर, कोषागार नियंत्रक, महान्यायवादी, राज्य सचिव, शिक्षा अधीक्षक (Superintendent of Public Instructions) तथा लेखा अंकेक्षकों का चुनाव जनता द्वारा किया जाता है। अतः इन पदाधिकारियों की नियुक्ति के क्रम में गवर्नर के पास वास्तविक नियुक्ति-शक्तियाँ नहीं हैं। ये नियुक्तियाँ राज्य सीनेट द्वारा अनुमोदित की जाती हैं।

लोक सेवाओं में लूट या संरक्षण आधारित नौकरशाही का प्रचलन लगभग समाप्त हो चुका है किन्तु अपने समर्थकों को सचिवों (अर्थात् मंत्री) के रूप में नियुक्ति देना तथा काउण्टी, सिटी, कमेटी इत्यादि स्थानीय संस्थाओं में स्थान दिलाने में गवर्नर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रशासनिक अधिकारियों तथा मंत्रियों को पद से हटाने में गवर्नर को शक्तियाँ प्राप्त होती हैं किन्तु जनता से निर्वाचित पदाधिकारियों को वह मनमर्जी या सहजता से नहीं हटा सकता है।

(2) प्रशासन पर पर्यवेक्षण की शक्तियाँ : अधिकांश राज्यों के संविधान गवर्नर को कानूनों के वास्तविक तथा निष्पक्ष क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने की शक्तियाँ प्रदान करते हैं। यद्यपि जनता से निर्वाचित पदाधिकारियों के विभाग जैसे—अंकेक्षण या महान्यायवादी इत्यादि गवर्नर के प्रत्यक्ष कठोर नियंत्रण में नहीं हैं किन्तु राज्य प्रशासन के अन्य सभी विभाग गवर्नर के पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं। सरकारी विभागों से छमाही, वार्षिक तथा अन्य अवसरों पर निर्धारित प्रपत्र में गवर्नर को सूचनाएँ प्राप्त होती रहती हैं।

(3) बजटीय शक्तियाँ : उन्नीसवीं सदी में अमेरिका में विधानमण्डल ही बजट बनाया करते थे किन्तु वर्तमान में बजट का निर्माण, क्रियान्वयन तथा नियंत्रण की जिम्मेदारियाँ गवर्नर वहन करता है। **प्रो. विलबर्न** के अनुसार—"अधिकांश राज्यों में

गवर्नर के पास बजट सम्बन्धित शक्तियाँ बहुत प्रभावी हैं, हालाँकि कई राज्यों में राज्य विधानमण्डल गवर्नर के बजटीय प्रस्तावों में संशोधन करने में सक्षम हैं।" लेकिन न्यूनाधिक मात्रा में प्रतिवर्ष आय-व्यय तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों के वही प्रस्ताव स्वीकृत होते रहते हैं जो गवर्नर द्वारा तैयार किए जाते हैं।

(4) क्षमादान की शक्तियाँ : भारत के राष्ट्रपति तथा राज्यपाल की भाँति अमेरिका में भी गवर्नर को न्यायपालिका द्वारा दंडित व्यक्ति की सजा को कम करने, सजा की प्रकृति बदलने, सजा को निलम्बित करने तथा सजा की अवधि घटाने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। राज्य के महान्यायवादी तथा कुछ परामर्शकारी मण्डल इस सम्बन्ध में गवर्नर को सहायता उपलब्ध करवाते हैं।

(5) विधायी शक्तियाँ : कानून निर्माण की प्रक्रिया में अमेरिका के गवर्नर की शक्तियाँ पर्याप्त प्रभावी मानी जाती हैं क्योंकि उसे राष्ट्रपति की भाँति 'जेबी वीटो' की शक्तियाँ प्राप्त हैं। गवर्नर अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति से अधिक करते रहे हैं। राज्य विधानमण्डलों के सत्र में संदेश भेजना, वीटो करना तथा विशिष्ट सत्र को बुलाना इत्यादि गवर्नर की विधायी शक्तियाँ हैं। यदि विधानमण्डल का सत्र गवर्नर द्वारा भेजे गए संदेश, प्रस्ताव या प्रकरण पर विचार नहीं करता है तो वह 'विशेष सत्र' बुलवाकर विचार करवा सकता है।

(6) सैनिक शक्तियाँ : सामान्यतः गवर्नर के पास किसी प्रकार की सैनिक शक्तियाँ नहीं होती हैं किन्तु 'राष्ट्रीय आपातकाल' के समय नेशनल गार्ड सक्रिय हो जाते हैं। युद्ध के समय नागरिकों की सुरक्षा की समस्त जिम्मेदारियाँ गवर्नर में निहित हो जाती हैं। गवर्नर राज्य सुरक्षा समिति का गठन करके जनता को राहत पहुँचाने का कार्य करता है। आपातकालीन परिस्थिति में वह नेशनल गार्ड का कमाण्डर इन चीफ बन जाता है। उस समय गवर्नर की सहायता के लिए एक एडजुटेण्ट जनरल कार्यरत रहता है। बाढ़, भूकम्प, तूफान तथा चक्रवात इत्यादि के समय भी गवर्नर नेशनल गार्ड की सहायता लेता है।

लेफ्टिनेण्ट गवर्नर (Lieutenant Governer)

उप (लेफ्टिनेण्ट) गवर्नर का पद बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। यद्यपि उप गवर्नर की योग्यताएँ तथा चुनाव प्रक्रिया गवर्नर के ही समान है किन्तु उसकी पदस्थिति अल्प प्रभावी है। उप गवर्नर को राज्य सीनेट का अध्यक्ष/सभापति का दायित्व वहन करना होता है तथा गवर्नर की मृत्यु, त्यागपत्र या अन्य अक्षमता की स्थिति में वह गवर्नर का पद धारण करता है।

स्वतंत्र नियामकीय आयोग
(Independent Regulatory Commissions)

संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय शासन प्रणाली प्रवर्तित है जिसके अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य, दोनों स्तरों पर सरकारें कार्यरत होती हैं। अमेरिकी अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र का

हस्तक्षेप अत्यधिक रहा है। स्वाभाविक रूप से निजी उपक्रमों का मुख्य ध्येय लाभार्जन तथा पूँजीवादी गतिविधियों का संचालन करना है जबकि कल्याणकारी राज्य के रूप में सरकार का दायित्व आम व्यक्ति के हितों की रक्षा करना है। ऐसी स्थिति में सरकार के सम्मुख दो ही रास्ते होते हैं। प्रथमत: समाजवादी व्यवस्था के अनुरूप सरकार की भूमिका को विस्तृत करते हुए अर्थव्यवस्था को सम्पूर्ण शासकीय नियंत्रण में लाया जाए तथा दूसरा यह कि निजी अर्थव्यवस्था बनाए रखते हुए नीतिगत नियंत्रण सरकार के हाथों में हो। अमेरिका में दूसरा विकल्प अपनाते हुए औद्योगिक, कृषि, वित्तीय एवं वाणिज्यिक क्षेत्रों में निजी उपक्रमों को स्वीकारा जाता है किन्तु इन क्षेत्रों के निजी उपक्रमों पर सरकार ने नियंत्रण स्थापित करने (जैसे—कीमत निर्धारण), बाजार की गतिविधियों को संतुलित रूप से संचालित करने एवं केन्द्र-राज्य तथा अन्तरराज्यीय विवादों को निपटाने के लिए स्वतंत्रता प्राप्त आयोगों की स्थापना की है।

कारण (Causes or Need)

स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की स्थापना के मूल कारण यह हैं कि—

1. राष्ट्रपति की असीमित शक्तियों में कांग्रेस और वृद्धि नहीं करना चाहती थी अत: स्वतंत्र संस्थाएँ निर्मित कीं।
2. विभिन्न विषयों के तकनीकी एवं नियामकीय कार्यों में विशेषज्ञों से युक्त संस्था की आवश्यकता रहती है।
3. कांग्रेस के पास समय की कमी है अत: वह प्रशासन के सभी गम्भीर विषयों पर स्वयं अध्ययन नहीं कर सकती है अत: स्वतंत्र संस्थाएँ स्थापित कीं।
4. प्रशासनिक, न्यायिक तथा विधायी तीनों प्रकृति के कार्य एक ही संगठन को देने से कुशलता से कार्य निष्पादित हो जाता है।
5. कार्यपालिका के हस्तक्षेप से मुक्त रखने पर इनमें राजनीतिक हस्तक्षेप कम हो पाता है।

स्वतंत्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions) वे संस्थाएँ या संगठन हैं जो अमेरिका की कार्यपालिका या सरकार के किसी विभाग के अधीन न रहकर एक स्वतंत्र संगठन के रूप में कार्य करते हैं। यद्यपि इन संगठनों पर विधायिका तथा न्यायपालिका का नियंत्रण रहता है किन्तु यह नियंत्रण दैनन्दिन गतिविधियों के क्रम में नहीं बल्कि विशिष्ट परिस्थितियों में होता है। राष्ट्रपति के नियंत्रण से मुक्त ये आयोग या बोर्ड अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त हैं। चूँकि ये संगठन सम्बन्धित क्षेत्र की आर्थिक, वित्तीय एवं व्यापारिक गतिविधियों को नियमित (Regulate) या नियंत्रित करते हैं अत: 'नियामकीय' प्रकृति के संगठन कहलाते हैं। इन संगठनों की विशिष्ट प्रकृति के कारण इन्हें विविध उपनामों से पुकारा जाता है। चूँकि ये संगठन राष्ट्रपति के अधीन नहीं हैं अत: **शासन की शीर्षहीन शाखा** के रूप में पहचाने जाते हैं। इन संगठनों के

कार्यकरण में प्रशासनिक, अर्द्ध विधायी तथा अर्द्ध न्यायिक तीनों प्रकार के कृत्य सम्मिलित हैं अत: इन्हें **शासन की चतुर्थ शाखा** के रूप में भी जाना जाता है। इनकी स्थापना कांग्रेस द्वारा पारित अधिनियम के अन्तर्गत होती है अत: इन्हें **कांग्रेस की भुजाएँ** भी कहा जाता है और दैनन्दिन कार्यकरण में स्वतंत्र होने के कारण **स्वायत्तता के द्वीप** भी कहलाते हैं।

वस्तुत: स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की स्थापना के मूल में अमेरिकी कांग्रेस की यह इच्छा मानी जाती है कि राष्ट्रपति की असीमित शक्तियों के क्षेत्र में और वृद्धि न की जाए। अत: कांग्रेस के अधिनियमों के माध्यम से इन संगठनों की स्थापना की गई है तथा इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति की भूमिका को सीमित किया गया है। सर्वप्रथम सन् 1887 में अन्तरराज्यीय वाणिज्य आयोग की स्थापना की गई थी जो रेल परिवहन में भाड़े, शुल्क तथा अन्य व्यापारिक गतिविधियों को नियंत्रित करता था। कुछ समय पश्चात् इसे सड़क, वायुयानों, अन्तर्देशीय जलमार्ग, मोटरवाहन तथा परिवहन के अन्य विचाराधीन मामले दिए जाने लगे। इस प्रथम स्वतंत्र नियामकीय आयोग की सफलता के पश्चात् सन् 1913 में संघीय रिज़र्व बोर्ड स्थापित किया गया जो अपने 13 रिज़र्व बैंकों के माध्यम से समस्त अमेरिका में वाणिज्यिक बैंकों को नियंत्रित-निर्देशित करता है। सन् 1914 में संघीय व्यापार आयोग बनाया गया तथा सन् 1920 के संघीय जल विद्युत अधिनियम के अन्तर्गत सन् 1930 में संघीय विद्युत आयोग गठित किया गया। कालान्तर में अनेक आयोगों तथा मण्डलों की स्थापना की गई। संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ प्रमुख स्वतंत्र नियामकीय आयोग निम्नांकित हैं—

1. अन्तरराज्यीय वाणिज्य आयोग (Interstate Commerce Commission)
2. संघीय रिज़र्व बोर्ड (Federal Reserve Board)
3. संघीय व्यापार आयोग (Federal Trade Commission)
4. संघीय विद्युत आयोग (Federal Power Commission)
5. संघीय संचार आयोग (Federal Communication Commission)
6. राष्ट्रीय श्रमिक सम्बन्ध बोर्ड (National Labour Relations Board)
7. प्रतिभूति एवं विनिमय आयोग (Securities and Exchange Commission)
8. नागरिक विमानन बोर्ड (Civil Aeronautics Board)
9. प्रशुल्क आयोग (Tariff Commission)
10. संघीय पाईपलाईन (पेट्रोलियम) आयोग (Federal Pipeline Commission)
11. संघीय निर्वाचन आयोग (Federal Election Commission)
12. संघीय समुद्री बोर्ड (Federal Maritime Board)

विशेषताएँ (Characteristics)

स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की कतिपय महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नानुसार हैं—

1. इन संगठनों का निर्माण कांग्रेस (विधायिका) के अधिनियम द्वारा किया जाता है।

2. ये संगठन कार्यपालिका के किसी विभाग या मंत्रालय के अधीन नहीं होते बल्कि स्वतंत्र संगठन के रूप में कार्य करते हैं।
3. इन पर राष्ट्रपति या कार्यपालिका के अन्य अधिकारियों का नियंत्रण नहीं रहता है।
4. इन संगठनों की कार्य प्रकृति मिश्रित होती है जिसमें प्रशासकीय, न्यायिक एवं विधायी कार्य सम्मिलित होते हैं।
5. सामान्यतः इन संगठनों का कार्यक्षेत्र वित्तीय, वाणिज्यिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों से सम्बन्धित होता है।
6. इनकी स्थापना मुख्यतः सरकारी नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन, नियमन तथा ... हितों की रक्षार्थ की जाती है।
7. इन संगठनों के सदस्य विशेषज्ञ होते हैं।
8. कतिपय संगठन आयोग के स्थान पर 'बोर्ड' शब्द प्रयोग करते हैं। ... संगठन बहुसदस्यीय होते हैं तथा बहुमत के आधार पर निर्णय करते हैं।

संगठन एवं कार्यप्रणाली (Organisation and Functioning)

अमेरिका में स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की स्थापना कांग्रेस द्वारा की जाती है। कांग्रेस द्वारा पारित अधिनियम में सम्बन्धित आयोग (बोर्ड भी हो सकता है) की संरचना, सदस्यों की संख्या, कार्यकाल तथा अधिकार क्षेत्र इत्यादि का वर्णन कर दिया जाता है। आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सीनेट के अनुमोदन से की जाती है। इन आयोगों में सदस्यों की संख्या तथा कार्यकाल भिन्नता लिए हुए है। सामान्यतः आयोग में 3 से 11 तक सदस्य संख्या तथा 4 से 7 वर्ष तक उनकी पदावधि होती है। ये आयोग अपने कार्यकरण तथा निर्णयों के क्रम में राष्ट्रपति के प्रति नहीं बल्कि कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। आयोग का कार्य जिस तकनीकी क्षेत्र जैसे—कृषि, स्वास्थ्य, ऊर्जा, परिवहन, वाणिज्य या बैंकिंग इत्यादि से सम्बन्धित होता है उसमें उसी क्षेत्र के विशेषज्ञ सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाते हैं। इन आयोगों की प्रशासनिक संरचना प्रायः छोटी तथा कुशल होती है। कांग्रेस द्वारा प्रदत्त सत्ता का प्रयोग करते हुए ये आयोग अपनी कार्यविधि निश्चित करते हैं। कांग्रेस द्वारा ही इन संगठनों का वार्षिक बजट स्वीकृत किया जाता है। 'प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम, 1949' पर आधारित इन आयोगों की कार्यप्रणाली इन्हें प्रशासनिक न्यायाधिकरण (Tribunal) का रूप दे देती है।

जिस तकनीकी क्षेत्र में आयोग स्थापित किया जाता है उससे सम्बन्धित सरकारी नीतियों, संवैधानिक उपबंधों तथा प्रशासनिक नियमों की क्रियान्विति को सुनिश्चित करवाना उसका मुख्य कार्य होता है। नियामकीय आयोग का कार्य सम्बन्धित क्षेत्र की निजी कम्पनियों एवं अन्य संगठनों की उन गतिविधियों पर नियंत्रण रखना भी है जो सरकार के हितों पर कुठाराघात करती हों अथवा जनता के अधिकारों पर ठेस पहुँचाती हैं। इस सम्बन्ध में दोषी उपक्रम को दण्डित भी किया जा सकता है। गवाही लेने और ... करने, साक्ष्य एकत्र करने, सम्मन भेजने, चेतावनी देने तथा दण्डित करने की शक्तियाँ

स्वतंत्र नियामकीय आयोगों में निहित होती हैं। इसी कारण ये आयोग सफलतापूर्वक अपने उद्देश्य पूरे कर पाए हैं। स्वतंत्र नियामकीय आयोगों के निर्णयों को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। वैसे भी अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की श्रेष्ठ परम्पराएँ प्रारम्भ से विद्यमान रही हैं। प्रत्येक आयोग अपने कार्यकाल से सम्बन्धित वार्षिक प्रतिवेदन कांग्रेस को प्रस्तुत करता है।

कार्य (Functions)

स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की स्थापना किसी विशेष क्षेत्र की कुछ गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए की जाती है। किसी भी आयोग के कार्य तथा उद्देश्य उस अधिनियम में वर्णित किए जाते हैं जो कांग्रेस द्वारा पारित किया जाता है। यद्यपि सभी आयोगों के कार्य एक समान नहीं होते हैं तथापि फिफनर ने अग्रांकित कार्य वर्णित किए हैं—

1. उद्योग तथा सार्वजनिक नीति के उद्देश्यों की जानकारी उपलब्ध कराना।
2. शासकीय (सार्वजनिक) नीति को क्रियान्वित करने में सहायक नियम तथा विनियम बनाना तथा उनकी घोषणा करना।
3. इन नियमों को क्रियान्वित करने के क्रम में उठने वाले विवादों का निर्णय करना।
4. नीति एवं नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों या संस्थाओं पर अभियोग चलाना।
5. सम्बन्धित तकनीकी क्षेत्र के प्रशासकीय विभागों एवं निजी उपक्रमों के मध्य समन्वय स्थापित करना।
6. सार्वजनिक नीति तथा नियमों के संचालन में आने वाली बाधाओं का पता लगाना।
7. आर्थिक, व्यापारिक एवं वित्तीय गतिविधियों के सम्बन्ध में अनुभूत समस्याओं के समाधान के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।
8. सुझावों, समस्याओं तथा उपलब्धियों सहित वार्षिक प्रतिवेदन कांग्रेस को प्रस्तुत करना।

प्रकृति (Nature)

स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की प्रकृति स्वायत्तता प्राप्त संगठनों जैसी है जो मिश्रित कार्य सम्पादित करते हैं—

(1) **इन्हें स्वतंत्र या स्वायत्तता प्राप्त संगठनों** की श्रेणी में इसलिए रखा गया है कि ये राष्ट्रपति तथा किसी विभागीय नियंत्रण से मुक्त हैं। यद्यपि राष्ट्रपति इनके सदस्यों की नियुक्ति करता है तथा अकुशलता, कर्तव्य की उपेक्षा तथा दुर्व्यवहार के कारण सदस्यों को पद से हटा भी सकता है, लेकिन इस सम्बन्ध में भी कांग्रेस कतिपय प्रतिबंध आरोपित कर सकती है। राष्ट्रपति तथा स्वतंत्र नियामकीय आयोगों के सभी सदस्यों का

कार्यकाल भी एक समान नहीं रहता है अत: सभी सदस्य एक साथ हटाए नहीं जा सकते हैं। राष्ट्रपति इन आयोगों के निर्णयों के विरुद्ध वीटो भी नहीं कर सकता है।

(2) **प्रशासनिक संगठन** के रूप में ये संगठन उन कार्यों को सम्पादित करते हैं जो सचिवालय या कार्यकारी संस्थाओं के कार्यालय सम्पादित करते हैं। उदाहरण के लिए लाइसेंस, परमिट, अदेय प्रमाण पत्र, अनापत्ति तथा पंजीकरण से सम्बन्धित अन्य मामले जो सार्वजनिक नीति की क्रियान्विति के क्रम में प्रशासनिक संस्थाएँ पूर्ण करती हैं, वे इन आयोगों को भी दिए गए हैं।

(3) **अर्द्ध विधायी संगठन** के रूप में ये आयोग सरकार के नियम तथा विनियम निश्चित करते हैं यद्यपि विधि-निर्माण का मुख्य दायित्व विधायिका निर्वाहित करती है तथापि प्रदत्त विधान प्रक्रिया के अन्तर्गत कुछ शक्तियाँ इन्हें प्रदत्त कर दी जाती हैं।

(4) **अर्द्ध न्यायिक संगठन** की प्रकृति से तात्पर्य उन गतिविधियों से है जो स्वतंत्र नियामकीय आयोगों द्वारा आरोपी व्यक्ति या संस्था के विरुद्ध जाँच एवं वाद-निस्तारण के रूप में की जाती हैं। भारत में प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की कार्य-प्रकृति के अनुरूप ये आयोग अपने अधिकार एवं विषय क्षेत्र के मामलों में कतिपय न्यायिक कार्यवाहियाँ भी सम्पादित करते हैं।

लाभ तथा महत्त्व (Advantages & Importance)

1. स्वतंत्र नियामकीय आयोगों के माध्यम से गम्भीर तथा महत्त्वपूर्ण प्रकृति के कार्य निष्पक्ष एवं स्वतंत्र संस्था द्वारा सम्पादित हो जाते हैं।
2. नौकरशाही के परम्परागत दोषों यथा—लालफीताशाही, भाई-भतीजावाद एवं भ्रष्टाचार से ये संगठन प्राय: मुक्त हैं।
3. राष्ट्रपति एवं इन संगठनों के सदस्यों का कार्यकाल समान न होने से राजनीतिक हस्तक्षेप एवं द्वेष भावना उत्पन्न नहीं होती है।
4. विशेषज्ञ सदस्यों की सेवाएँ पाकर ये संगठन कुशलता से कार्य करते हैं।
5. कार्यकरण में स्वतंत्रता के कारण लोचशीलता बनी रहती है।
6. आर्थिक, वित्तीय, व्यापारिक तथा वाणिज्यिक विषयों में विशेषज्ञता के कारण ये संगठन राष्ट्रीय विकास में सार्थक भूमिका निभाते हैं।
7. कार्यपालिका के हस्तक्षेप से स्वतंत्र होने के कारण स्वयं के उत्तरदायित्वों के प्रति अधिक गम्भीर बने रहते हैं।
8. जनसाधारण में बढ़ती लोकप्रियता तथा प्रमाणित कार्यकुशलता ने इन संगठनों की महत्ता को स्वत: बढ़ा दिया है।
9. वस्तुओं के मूल्यों (कीमतों), उत्पादन की गुणवत्ता तथा व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के सम्बन्ध में ये संगठन पूर्ण निष्पक्ष एवं प्रभावी सिद्ध हुए हैं।
10. राजनीतिक दुरभिसन्धियों से मुक्त होने के कारण प्राय: दबाव समूहों का डटकर सामना करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं।

हूवर आयोग के कार्यदल ने स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की कार्यप्रणाली को इसलिए प्रभावी माना था कि इन आयोगों में सदस्यों की संख्या तथा पदावधि निश्चित होती है, पक्षपात से मुक्ति रहती है, कई सदस्यों के कारण निर्णय दृढ़ता एवं बहुमत से लिए जाते हैं, इनके कार्यकलाप आलोचना, आरोप-प्रत्यारोप के अधिक शिकार होते हैं अत: सतर्कता रहती है तथा अनुचित कार्यों को निपटाने के लिए इनके पास पर्याप्त साधन होते हैं।

आलोचना (Criticism)

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका में स्वतंत्र नियामकीय आयोगों (I.R.C.) ने कुशलता, लोकप्रियता तथा निष्पक्षता का परिचय दिया है किन्तु कतिपय मुद्दे ऐसे भी हैं जो आलोचना या दोष के रूप में रेखांकित किए जाते हैं—

1. सर्वप्रथम यह आलोचना की जाती है कि ये संगठन कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका अर्थात् शासन के तीनों अंगों के कार्य सम्पादित करते हैं। इससे 'शक्ति-पृथक्करण' सिद्धान्त का उल्लंघन होता है।
2. मुख्य कार्यपालिका (राष्ट्रपति) के नियंत्रण से स्वतंत्र होने के कारण इनमें स्वेच्छाचारिता का प्रसार होता है।
3. ये संगठन कार्यपालिका से सम्बन्धित विभागों की तुलना में स्वयं को श्रेष्ठ समझते हैं अत: अनावश्यक संघर्ष बढ़ता है।
4. राष्ट्रपति के नियंत्रण से मुक्त होने के कारण इनमें उत्तरदायित्व की भावना विकसित नहीं हो पाती है।
5. आयोगों को दिए गए कार्य, बहुधा प्रशासनिक कार्यालयों के अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन करते हैं। इसी कारण कई बार कार्य का दुहराव तथा नियमों में टकराव हो जाता है अत: समन्वय की समस्या उत्पन्न होती है।
6. ऐसा आरोप भी लगाया जाता है कि कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों के एक स्थान पर एकत्रीकरण से नागरिक अधिकार एवं स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाते हैं।
7. कई बार आयोगों में राजनीतिक पृष्ठभूमि के सदस्य भी नियुक्त किए जाते हैं जो नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन में पूर्ण तटस्थ नहीं रह पाते हैं अत: निष्पक्ष न्याय की कल्पना करना व्यर्थ है।
8. कार्यपालिका के निरीक्षण से मुक्त होने के कारण ये संगठन लापरवाही बरत सकते हैं।

स्वतंत्र नियामकीय आयोगों के कार्यकरण के सम्बन्ध में आलोचना करते हुए राष्ट्रपति की प्रशासकीय प्रबन्ध समिति (1937) या **ब्राउनलो समिति** ने कहा था—''ये आयोग अनुत्तरदायित्वपूर्ण तरीके से कार्य करते हैं तथा राष्ट्रपति को उत्तरदायित्व के संकटों में डाल देते हैं। राष्ट्रपति को इन आयोगों के सम्बन्ध में कोई नियंत्रणकारी शक्ति प्राप्त नहीं है जबकि मुख्य कार्यपालिका के रूप में वह सर्वाधिक उत्तरदायी व्यक्ति है।'' इसी प्रकार

की टिप्पणी **रॉबर्ट ई. कुशमैन** ने की है। वे कहते हैं—"नियामकीय आयोग उत्तरदायी
के संचालन तथा उत्तरदायित्व के क्षेत्र के बाहर अनुत्तरदायी संगठन हैं।" लेकिन महान्यायवादी
(Attorney General) की समिति, 1941 ने इन आयोगों की स्थापना को व्यावहारिक
माना है जबकि द्वितीय हूवर आयोग ने स्वतंत्र नियामकीय आयोगों को अधिकारी
सरकार में 'असाधारण विकास' करार दिया है तथा यह इंगित किया है कि इन आयोगों
का कार्य सरकार के मुख्य कार्यों से बहुत कम सम्बन्ध तथा समन्वय रख पाता है।

इन आयोगों की **कार्यप्रणाली में सुधार** के लिए ब्राऊनलो समिति ने सुझाव दिया कि
इन्हें सम्बन्धित प्रशासनिक विभागों के साथ मिला देना चाहिए तथा आयोग केवल
प्रशासनिक अधिनिर्णय के मामले स्वायत्ततापूर्ण तरीके से निपटाएँ और योजना, अनुसंधान
तथा अभियोजन की पहल जैसे कार्य प्रशासनिक विभागों के ब्यूरो द्वारा किए जाने चाहिए।
इसी प्रकार यह सुझाव भी दिया जाता है कि इन आयोगों की प्रशासनिक, विधायी एवं
न्यायिक शक्तियाँ पृथक् की जाएँ तथा कांग्रेस के नियंत्रण में वृद्धि करते हुए न्यायिक
समीक्षा का क्षेत्र भी विस्तृत किया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. जॉन सी. शी, **अमेरिकन गवर्नमेण्ट: द ग्रेट गेम ऑफ पॉलिटिक्स**, सैण्ट मार्टिन प्रेस, न्यू यॉर्क, 1984
2. हैरोल्ड ज़िंक, होवार्ड आर. पैनीमैन एण्ड गाय बी. हाथोर्न, **अमेरिकन गवर्नमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स (नेशनल, स्टेट एण्ड लोकल)**, डी.वान नोस्ट्रेण्ड कं. इनकॉर्पोरेटेड, प्रिंस्टन, 1958
3. चार्ल्स ई. ह्यूज, **एड्रेस**, हार्पर एण्ड ब्रदर्स, न्यू यॉर्क, 1908
4. हरमन फाइनर, **थ्यौरी एण्ड प्रेक्टिस ऑफ मॉडर्न गवर्नमेण्ट**, हेनरी होल्ट कं., न्यू यॉर्क, 1949
5. जॉन, सी. शी, **पूर्वोक्त** (देखिए सदन का चित्र, पृष्ठ संख्या 284)
6. रॉस के.बेकर, गेराल्ड एम. पॉम्पर एवं विल्सन सी. मैकविलियम्स, **अमेरिकन गवर्नमेण्ट**, मैकमिलन पब्लिशिंग कं. इनकॉर्पोरेटेड, न्यू यॉर्क, 1983

●●●

5

फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था
(Administrative System in France)

मध्यकालीन विश्व इतिहास तथा समसामयिक अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य में फ्रांस का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जर्मनी, स्पेन तथा इटली के मध्य स्थित फ्रांस पश्चिमी यूरोप का सबसे बड़ा देश है। फ्रेंच सदर्न, न्यू कैलेडोनिया, सेण्ट पियरी, मिक्वेलोन, मेयोट तथा कोर्सिका द्वीप (नेपोलियन की जन्मभूमि) फ्रांस के अधीन क्षेत्र हैं। प्राचीनकाल की राजतंत्र व्यवस्था (बूर्बोन वंश) से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध तक फ्रांस निरन्तर युद्धरत रहा है। सन् 1338 से लेकर सन् 1453 तक का **सौ वर्षीय युद्ध** फ्रांस तथा ब्रिटेन के इतिहास में प्रसिद्ध है जिसमें जॉन ऑफ आर्क की साहस कथा भी रोचकता से भरपूर है। सन् 1789 की फ्रांसिसी क्रांति विश्व प्रसिद्ध है क्योंकि 'समानता', 'स्वतंत्रता' तथा 'भाईचारे' के लिए, किसान एवं मजदूरों द्वारा की गई इस क्रांति में सम्राट लुई सोलहवें तथा महारानी एण्टोनोइट की हत्या (1793) कर दी गई थी। रूसो, वाल्टेयर तथा मोण्टेस्क्यू जैसे विचारकों ने फ्रांस को चेतना प्रदान की। इस क्रांति के पश्चात् नेपोलियन बोनापार्ट का उदय हुआ, जिसका मानना था कि संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है। यूरोप-विजय अभियान में नेपोलियन को ब्रिटेन से नील नदी के युद्ध (1798), ट्रेफालगर के युद्ध (1805) तथा वाटरलू के युद्ध (1814) में हार का सामना करना पड़ा। वर्तमान में फ्रांस में जनरल चार्ल्स डि गाल द्वारा सन् 1958 में स्थापित पंचम गणराज्य प्रवर्तित है। कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर फ्रांस रसायन, सूती वस्त्र, अंगूर, इत्र, विमान, मोटरवाहन, शराब, इलेक्ट्रोनिक उपकरणों तथा नाप-तौल की मशीनों के निर्यातक के रूप में जाना जाता है। विश्व प्रसिद्ध महँगी, सफेद तथा झागदार शराब **शैम्पेन** (Champagne) भी फ्रांस की देन है। विश्व पर्यटन संघ के अनुसार फ्रांस में सर्वाधिक पर्यटक प्रतिवर्ष आते हैं जिनकी संख्या सन् 1996 में 6 करोड़ थी। इसके पश्चात् पर्यटकों का रुझान स्पेन, अमेरिका, इटली, चीन, ब्रिटेन, हंगरी, मैक्सिको तथा पोलैण्ड की ओर है।

फ्रांस : एक परिचय

राजधानी	—	पेरिस
क्षेत्रफल	—	5,43,965 वर्ग कि.मी.
जनसंख्या	—	6.50 करोड़ (सन् 2009)
भाषा	—	फ्रेंच
साक्षरता	—	99 प्रतिशत
धर्म	—	ईसाई
मुद्रा	—	यूरो (एक अमेरिकी डॉलर = .92 यूरो) (सन् 2005)
प्रति व्यक्ति आय	—	29,320 डॉलर
झण्डा	—	खड़े रूप में नीला, सफेद तथा लाल रंग से बना है।
राष्ट्रीय दिवस	—	8 मई (स्वतंत्रता दिवस)

एफिल टावर के लिए विश्व प्रसिद्ध फ्रांस में अनेक महान् विभूतियाँ पैदा हुई हैं। इनमें जॉन ऑफ आर्क, नेपोलियन बोनापार्ट तथा वैज्ञानिकों में लुई पाश्चर (किण्वन क्रिया), हेनरी बैक्युरेल (गामा किरण), एण्डी मेरी एम्पियर (विद्युत् धारा), क्यूरी दम्पति (रेडियो विकिरण) तथा लुई ब्रेल (अंधों हेतु लिपि) प्रमुख हैं। दार्शनिकों में आगस्ट काम्टे, अल्बर्ट काम्द, वाल्टेयर तथा लेखकों में होगोरे डी बालजान, रोमेने हॉलेण्ड, विक्टर ह्यूगो, जीन पाल सार्त्र, जॉन डी ला फाउण्टेन, एलेक्जेण्डर ड्यूमा एवं रूसो प्रमुख हैं। नोबेल शांति पुरस्कार (1928) से सम्मानित आधुनिक ओलम्पिक खेलों के स्वप्नदृष्टा पियरे डी कुबर्तिन भी पेरिस के निवासी थे जिनके प्रयासों से सन् 1896 में यह प्रतिस्पर्द्धा पुनः शुरू हो सकी। इसी प्रकार सोलहवीं सदी की शुरुआत में विश्व का भविष्य लिखने वाले भविष्यवक्ता नास्त्रडेमस (1503–1560) और पनामा नहर, स्वेज नहर और एफिल टॉवर जैसे अद्भुत कार्य कर दिखाने वाले इंजीनियर भी फ्रांस की देन हैं।

आधुनिकता के साथ-साथ नैतिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए फ्रांस सदैव प्रयासरत रहा है। पेरिस की लोकल ट्रेन में यात्रा करने वालों को चॉकलेट इसलिए दी जाती है कि यात्री सिगरेट की तलब से बचे रहें। यद्यपि यह एक सामान्य बात है किन्तु फ्रांस इसे गम्भीर मानता है। इसी प्रकार फ्रांस में पर्यटकों की समस्याओं पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। विश्व की परिवर्तित होती अर्थव्यवस्था से फ्रांस भी प्रभावित हो रहा है। इसी संदर्भ में फ्रांस, भारत के अर्थशास्त्री एवं प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की आर्थिक सलाहकार के रूप में सेवाएँ ले चुका है। एक ओर प्रशासन के माध्यम से लोक कल्याण की अधिकांश गतिविधियाँ राज्य द्वारा संचालित की जा रही हैं वहीं दूसरी ओर निजीकरण तथा लोक सेवाओं में कमी करने का मानस भी फ्रांस में बन रहा है। आज पश्चिमी यूरोप में सर्वाधिक बेरोजगारी फ्रांस में है। वहाँ लगभग 6 करोड़ की कुल आबादी में 30 लाख व्यक्ति बेरोजगार हैं जो सेवानिवृत्ति की आयु 55 वर्ष करने की माँग

कर रहे हैं ताकि रोजगार के अवसरों में वृद्धि हो सके। बेरोजगारी के अतिरिक्त समान यूरोपीय मुद्रा को लेकर भी फ्रांस किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में खड़ा है। फ्रांस में प्रमुखतः परम्परावादी गालवादी पार्टी तथा वामपंथी समाजवादी पार्टी का बोलबाला रहता है। ऐसा भी कई बार हुआ है जब राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री भिन्न-भिन्न पार्टियों से चुन कर आए हैं। **वामपंथी** (Leftist) तथा **दक्षिणपंथी** (Rightist) शब्दों का प्रयोग भी फ्रांस से शुरू हुआ माना जाता है। फ्रांस की संसद में गणतंत्रवादी, समाजवादी तथा परिवर्तन के समर्थक और व्यवस्था विरोधी सदस्य सभाध्यक्ष के बायीं ओर बैठते थे अतः वे वामपंथी कहलाए तथा दायीं ओर बैठने वाले सदस्य दक्षिणपंथी कहलाए जो कि परम्परावादी थे।

संवैधानिक विकास (Constitutional Development)

अति प्राचीनकाल से ही फ्रांस, रोमन सभ्यता एवं संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थल रहा है। आज भी फ्रांस के कानूनों तथा जीवनशैली में रोमन संस्कृति स्पष्ट दिखाई देती है। सदियों तक राजशाही शासन व्यवस्था से जूझते रहे फ्रांस में आधुनिक लोकतांत्रिक विचारधारा का प्रसार रूसो, वाल्टेयर, मोण्टेस्क्यू तथा सॉरेल जैसे विद्वानों की प्रेरणा एवं पुनर्जागरण की लहर से हुआ। राजनीतिक रूप से नवीन प्रयोगों की प्रयोगशाला तथा दार्शनिकों की भूमि के रूप में प्रसिद्ध फ्रांस में आधुनिक शासन व्यवस्था तथा संविधान का विकास अठारहवीं सदी से शुरू हुआ।

सन् 1789 की महान् क्रांति के पश्चात् निरंकुश बूर्बोन वंश की राजशाही व्यवस्था का अन्त हुआ तथा सर्वप्रथम सन् 1791 में एक लिखित संविधान तैयार किया गया जिसमें सीमित राजतंत्र तथा निर्वाचित संसद की व्यवस्था की गई थी। जल्दबाजी में निर्मित यह व्यवस्था असफल सिद्ध हुई। अतः सन् 1793 में जैकोबिन्स द्वारा नया संविधान बनाया गया जिसमें **प्रथम बार गणतंत्र** की व्यवस्था की गई। इसमें प्रत्यक्ष निर्वाचन, वयस्क मताधिकार (केवल पुरुष) तथा 24 सदस्यों की मण्डलात्मक कार्यपालिका के प्रावधान सम्मिलित थे। यह संविधान भी असफल होने पर सन् 1795 में तीसरा संविधान बना जिसे 'डायरेक्टरी' का संविधान कहा गया है। इस संविधान में 500 व्यक्तियों से युक्त एक 'कौंसिल', दूसरी 'वृद्धों की कौंसिल' के रूप में विधायिका तथा 5 व्यक्तियों से युक्त 'डायरेक्टरी' नामक कार्यपालिका के प्रावधान किए गए। चार वर्ष तक डायरेक्टरी ने शासन संचालित किया किन्तु सन् 1799 में नेपोलियन ने एक नया तानाशाही प्रकृति का संविधान लागू किया तथा कौंसुलेट द्वारा शासन संचालन शुरू किया। स्वयं नेपोलियन बोनापार्ट इसका प्रथम कौन्सुल बना तथा सन् 1804 में उसने कौंसुलेट भंग करके स्वयं को सम्राट घोषित कर पुनः राजशाही व्यवस्था लागू कर दी। इस प्रकार फ्रांस में प्रथम गणतंत्र का पतन तथा प्रथम साम्राज्य का उदय हुआ। नेपोलियन ने अनेक सामाजिक, वैधानिक तथा प्रशासनिक (जैसे प्रीफेक्ट) सुधार किए जो आज भी फ्रांस में यथावत् हैं। **मुनरो** ने इस सम्बन्ध में कहा है—"फ्रांस, नेपोलियन की तलवार

की अपेक्षा उसकी कलम का अधिक ऋणी है।" सन् 1814 में वाटरलू युद्ध की हार के नेपोलियन के साम्राज्य का अन्त हुआ तथा ब्रिटेन की भाँति वैधानिक राजतंत्र एवं संसदीय पद्धति की शुरुआत की गई लेकिन यह प्रयोग भी विफल सिद्ध हुआ। सन् 1830 में आर्लियंस वंश का वैधानिक राजतंत्र स्थापित हुआ। लेकिन सन् 1848 की क्रांति के पश्चात् **द्वितीय गणतंत्र** की स्थापना की गई। यह गणतंत्र भी थोड़े ही दिन चल सका क्योंकि सन् 1852 में नेपोलियन तृतीय ने स्वयं को फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिया। सन् 1870 में जर्मनी से हारने के पश्चात् दूसरे साम्राज्य का भी पतन हो गया।

नेपोलियन तृतीय के पतन के पश्चात् राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् ने अन्तरिम सरकार की स्थापना की तथा स्थायी संविधान के निर्माण हेतु 30 सदस्यीय आयोग गठित किया। 5 वर्ष में संविधान बना जिसे सन् **1875** में लागू कर दिया गया। यह **तीसरा गणतंत्र** कहलाया। इसके लिखित एवं निर्मित संविधान में गणतंत्रात्मक शासन की व्यवस्था करते हुए कहा गया कि संसद (राष्ट्रीय सभा) भी इसका अन्त नहीं कर सकेगी। संसदीय प्रणाली के अनुरूप एक संवैधानिक कार्यपालिका तथा दूसरी वास्तविक कार्यपालिका (मंत्रिपरिषद्) बनाई गई। द्विसदनीय संसद में प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट की व्यवस्था थी। एकात्मक शासन के अन्तर्गत केवल सुविधा के लिए प्रशासनिक इकाइयाँ प्रांत, जिलों तथा कम्यूनों में विभक्त की गई थीं। ब्रिटेन की भाँति संसद की सर्वोच्चता रखी गई थी अतः न्यायपालिका पूर्ण स्वतंत्र न थी। 65 वर्ष पश्चात् सन् 1940 में तीसरा गणतंत्र भी समाप्त हो गया। सन् 1946 में द्वितीय संविधान सभा बनी तथा 27 अक्टूबर, 1946 से नया संविधान लागू हुआ।

चतुर्थ गणतंत्र का संविधान भी तृतीय गणतंत्र से मिलता-जुलता ही था। केवल कार्यपालिका तथा विधायिका के सम्बन्ध में किंचित् सुधार किए गए थे लेकिन वास्तविक कमियाँ यथावत् थीं। इस संविधान के 12 वर्षीय प्रवर्तन काल में 25 मंत्रिमण्डलों का निर्माण हुआ। अतः राजनीतिक अस्थिरता के कारण फ्रांस, **यूरोप का रुग्ण व्यक्ति** कहलाने लगा। सन् 1958 में अल्जीरिया में फ्रांसिसी सेना ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया अतः परिस्थितिवश फ्रांस का शासन जनरल चार्ल्स डी गाल को सौंप दिया गया। प्रधानमंत्री के रूप में जनरल चार्ल्स डी गाल ने नए संविधान के निर्माण का कार्य संभाला तथा 39 सदस्यों के सहयोग से नया संविधान 3 माह में निर्मित कर दिखाया। फ्रांस के 80 प्रतिशत नागरिकों ने जनमत संग्रह के द्वारा **सितम्बर, 1958** में **पंचम गणराज्य** का संविधान स्वीकृत कर दिया। 21 दिसम्बर, 1958 को जनरल चार्ल्स डी गाल फ्रांस के राष्ट्रपति बने। **जनरल चार्ल्स डि गाल** का मानना था कि—"चूँकि राजनेता जो कहता है, उस बात पर वह खुद भरोसा नहीं करता अतः जब लोग उस पर विश्वास करते हैं तो वह हैरत में पड़ जाता है।" वर्तमान में **यूरोपीय संघ के 25 देश एक सामान्य संविधान** बनाने हेतु प्रयासरत हैं किन्तु सन् 2004 में फ्रांसिसी जनता इस संविधान को ठुकरा चुकी है।

फ्रांसिसी संविधान की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of the French Constitution)

जनरल डी गाल द्वारा निर्मित संविधान जो 4 अक्टूबर, 1958 से प्रवर्तित है, फ्रांस के पंचम् गणराज्य (Repbulique Francaise) का संविधान कहलाता है जिसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(1) बिना संविधान सभा के निर्मित संविधान : सामान्यतः संविधान का निर्माण एक लोकप्रिय संविधान सभा या आयोग द्वारा किया जाता है जिसमें निर्वाचित, अनुभवी राजनेता, विधिवेत्ता तथा जनप्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। फ्रांस के वर्तमान संविधान का निर्माण जनरल चार्ल्स डी गाल, उनके मंत्रिमण्डल के सदस्यों तथा 39 सदस्यीय परामर्शदात्री सभा द्वारा किया गया था लेकिन इसे संविधान सभा इसलिए नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इन सदस्यों का निर्वाचन जनता ने नहीं किया था। यह संविधान निर्मित अवश्य कहलाता है क्योंकि इसका निर्माण जानबूझ कर किया गया है। अधिकांश विचारक इसे जनरल डी गाल की विचारधारा पर आधारित होने के कारण **डी गाल का संविधान** भी कहते हैं।

(2) लिखित एवं संक्षिप्त संविधान : फ्रांस का संविधान एक लिखित संविधान है जिसमें 15 अध्याय तथा 95 अनुच्छेद हैं। यह संविधान सन् 1946 के संविधान की तुलना में छोटा संविधान है। बहुत से विद्वान् फ्रांसिसी संविधान की संक्षिप्तता के कारण उसे अपूर्ण तथा अस्पष्ट भी मानते हैं क्योंकि इस संविधान में निर्वाचन कानून, विधायिका के गठन, विधि निर्माण की प्रक्रिया तथा आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् के कार्यों इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। इस प्रकार के प्रश्न विधायिका द्वारा निर्मित किए जाने वाले कानूनों के अनुरूप हल होते हैं।

(3) प्रस्तावना की महत्ता : संविधान के आदर्शों, लक्ष्यों, जनाकांक्षाओं तथा महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का समावेश संविधान की प्रस्तावना में किया जाता है। फ्रांस के संविधान की प्रस्तावना की महत्ता इसलिए अधिक है कि मौलिक अधिकार, अन्तरराष्ट्रीय कानूनों के प्रति वचनबद्धता तथा फ्रांसिसी संघ जैसी अवधारणाओं का उल्लेख प्रस्तावना में किया गया है लेकिन संविधान के अन्य अनुच्छेदों में इनका वर्णन नहीं है। इस प्रस्तावना का स्वरूप सन् 1946 के संविधान की प्रस्तावना के अनुरूप है जिसमें सभी नागरिकों को स्वतंत्रता तथा समानता सहित समुद्रपारीय प्रदेशों में लोकतांत्रिक व्यवस्था के आदर्श वर्णित किए गए थे। मौलिक या नागरिक अधिकार मूलतः सन् 1789 की क्रांति पर आधारित 'मानवाधिकारों की घोषणा' से प्रभावित हैं।

(4) संकटकाल का शिशु : यदि ब्रिटेन का संविधान 'संयोग और विवेक का शिशु' माना जाता है तो फ्रांस का संविधान 'संकटकाल का शिशु' (Child of Crisis) कहलाता है। वस्तुतः सन् 1946 के चतुर्थ गणतंत्र से प्रारम्भ हुई राजनीतिक अस्थिरता ने एक दशक से भी अधिक समय तक फ्रांस को झकझोर कर रखा दिया था। बार-बार सरकारों के पतन, आर्थिक अवनति तथा वैदेशिक सम्बन्धों में गिरावट के उस दौर में जब

सन् 1958 में सेना ने विद्रोह कर दिया तब फ्रांस की जनता भविष्य की अनिश्चितता से आशंकित थी, अतः गृहयुद्ध की उन परिस्थितियों में राष्ट्रपति को अधिक शक्तियाँ देकर मिश्रित प्रकृति की शासन व्यवस्था अपनाना उचित समझा गया। इसलिए कहा जाता है कि फ्रांस का वर्तमान संविधान तत्कालीन संकट में उत्पन्न हुआ शिशु है।

(5) कठोर संविधान : संविधान के लचीलेपन या कठोरता से तात्पर्य संविधान में संशोधन की प्रक्रिया से है। चतुर्थ गणतंत्र की भाँति पंचम् गणतंत्र का संविधान भी कठोर प्रकृति का है। **अनुच्छेद-89** के अनुसार फ्रांस के संविधान में संशोधन के दो तरीके हैं। प्रथम, राष्ट्रपति संविधान में संशोधन का विधेयक संसद में प्रस्तावित कर सकता है और यदि संसद के दोनों सदन इसे 60 प्रतिशत बहुमत से पारित कर दें तो संशोधन स्वीकृत हो जाता है। दूसरे तरीके के अनुसार प्रधानमंत्री के प्रस्ताव पर राष्ट्रपति या संसद का कोई सदस्य स्वयं संशोधन विधेयक प्रस्तावित कर सकता है। यदि ऐसा प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाए तो यह जनमत संग्रह के लिए निर्वाचकों के सम्मुख रखा जाता है तथा बहुमत मिलने पर संविधान में संशोधन हो जाता है। फ्रांस में दलीय राजनीति अत्यन्त जटिल है अतः संविधान संशोधन अब सरल कार्य नहीं है। पंचम् गणतंत्र के राष्ट्रपति जनरल डी गाल ने संशोधन प्रक्रिया का दुरुपयोग भी किया था। फ्रांस का संविधान यह उपबन्ध भी करता है कि **देश के भू-भाग तथा गणतंत्रात्मक स्वरूप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।**

(6) लोक सम्प्रभुता : फ्रांसिसी संविधान लोकप्रिय सम्प्रभुता को महत्त्व प्रदान करता है। संविधान के प्रथम अध्याय के **अनुच्छेद-3** में कहा गया है कि—"सम्प्रभुता जनता में निहित है और जनता अपनी इस शक्ति का प्रयोग अपने प्रतिनिधियों द्वारा या जनमत संग्रह (Refrendum) के द्वारा करेगी।" यद्यपि वर्तमान फ्रांसिसी संविधान का निर्माण निर्वाचित जनप्रतिनिधियों द्वारा नहीं किया गया था तथापि इस संविधान के निर्माण के पश्चात् लोक निर्णय या जनमत संग्रह के दौरान भारी जन समर्थन प्राप्त हुआ था अतः यह संविधान जनता की भावनाओं का दर्पण है।

(7) प्रजातंत्रात्मक गणराज्य : वर्तमान संविधान के **अनुच्छेद-2** में संविधान के लोकतांत्रिक गणराज्य स्वरूप को स्वीकारते हुए फ्रांस को एक अविभाज्य पंथ निरपेक्ष प्रजातंत्रात्मक तथा समाजवादी (संविधान में Social शब्द प्रयुक्त किया गया है) गणतंत्र घोषित किया गया है। इसी प्रकार संविधान में यह भी वर्णन है कि इसके गणतंत्रात्मक स्वरूप को संशोधित नहीं किया जा सकता है। लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित यह संविधान ऐसी शासन व्यवस्था का प्रावधान करता है जिसमें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि लोकप्रिय सरकार का संचालन करते हैं। संविधान संशोधन जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर जनमत संग्रह की व्यवस्था सचमुच लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रसार है।

(8) पंथ निरपेक्ष राज्य : फ्रांस में राज्य द्वारा पोषित तथा पोषित पंथ (धर्म) नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी धार्मिक भावनाओं, आस्थाओं तथा मान्यताओं को अपनाने के क्रम में पूर्ण स्वतंत्र है। प्राचीनकाल में फ्रांस में धर्म तथा राजनीति ही अराजकता की

स्थिति के लिए उत्तरदायी रही हैं अतः सन् 1789 की क्रांति से लेकर वर्तमान संविधान तक निरन्तर धार्मिक स्वतंत्रता के प्रयास हुए हैं। वर्तमान पंचम् गणराज्य का संविधान यह व्यवस्था करता है कि—"राज्य सभी विश्वासों का आदर करेगा और सभी नागरिकों के बीच जाति या पंथ के आधार पर भेदभाव किए बिना समानता स्थापित करेगा।"

(9) मौलिक अधिकार : भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति फ्रांस के संविधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन तो है किन्तु इनकी संक्षिप्त व्याख्या केवल संविधान की प्रस्तावना में की गई है। प्रस्तावना में सन् 1789 की मानवाधिकार घोषणा को स्वीकारा गया है। संविधान की प्रस्तावना में उदारवादी तथा समाजवादी दोनों प्रकार की विचाराधाराएँ दिखाई देती हैं। फ्रांस में स्त्री-पुरुष की समानता, काम पाने का अधिकार, हड़ताल करने का अधिकार, संघ बनाने की स्वतंत्रता, प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण के सम्बन्ध में राज्य में प्रयास, वृद्धों, विकलांगों तथा माताओं की विशेष रक्षा, सार्वजनिक एवं निःशुल्क शिक्षा तथा जाति, वर्ग, धर्म, लिंग इत्यादि के भेदभाव बिना समान अवसर प्रमुख मौलिक अधिकार हैं। फ्रांस में मौलिक अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्राप्त है।

(10) संसदीय एवं अध्यक्षीय शासन प्रणालियों का समन्वय : फ्रांस में न तो भारत एवं ब्रिटेन की भाँति संसदीय शासन प्रणाली है और न ही अमेरिका की तरह अध्यक्षीय शासन व्यवस्था है बल्कि पंचम् गणराज्य के संविधान द्वारा **मिश्रित शासन प्रणाली** को अपनाया गया है। इसे **'अर्द्ध अध्यक्षीय प्रणाली'** भी कहते हैं। चतुर्थ गणतंत्र के संविधान में संसदीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया था किन्तु इसकी दुर्बलताएँ फ्रांस की स्थिति को संवार न सकी अतः पूर्ण संसदीय शासन व्यवस्था का परित्याग कर दिया गया। वर्तमान में मंत्रिपरिषद् के सदस्य, संसद के सदस्य नहीं होते हैं लेकिन संसद की कार्यवाहियों में भाग लेते हैं तथा मताधिकार प्राप्त नहीं है। मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी भी है। राष्ट्रीय सभा, मंत्रिपरिषद् को निन्दित करके हटा सकती है। दूसरी ओर फ्रांस का राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका नहीं है। वह शक्तियों से युक्त कार्यपालिका है जो प्रधानमंत्री के परामर्श पर नहीं बल्कि स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य करता है। राष्ट्रपति ही मंत्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है। राष्ट्रपति ही प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद् की नियुक्ति करता है तथा प्रधानमंत्री के परामर्श पर यह राष्ट्रीय सभा को भंग भी कर सकता है। वस्तुतः यह मिश्रित प्रणाली तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल रही होगी तभी जनरल डी गाल ने अपनाया होगा।

(11) अधिकार सम्पन्न राष्ट्रपति तथा निर्बल विधायिका : जहाँ ब्रिटेन में संसद को सर्वाधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं तथा सम्राट प्रायः शक्ति शून्य है; वहाँ फ्रांस की स्थिति इसके विपरीत है। चतुर्थ गणतंत्र के संविधान में राजनीतिक अस्थिरता को समाप्त करने की व्यावहारिक शक्ति न थी अतः पंचम् गणराज्य के संविधान में राष्ट्रपति को शक्ति सम्पन्न कार्यपालिका बनाया गया है जिसे प्रत्येक कार्य के लिए प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद् की सहमति लेना आवश्यक नहीं है। संविधान के अनुच्छेद-5 के अनुसार—"राष्ट्रपति, संविधान तथा राज्य का संरक्षक है।" अब राष्ट्रपति 5 वर्ष के लिए चुना जाता है तथा

राष्ट्रीय सभा की अवधि भी 5 वर्ष है जिसे समय पूर्व भंग भी किया जा सकता है। संसद केवल उन्हीं विषयों पर कानून बना सकती है जिनकी सूची संविधान में दी गई है। वर्तमान में फ्रांस की विधायिका के दोनों सदनों को लगभग समान शक्तियाँ प्राप्त हैं लेकिन ये राष्ट्रपति तथा मंत्रिपरिषद् के समक्ष गौण प्रतीत होती हैं।

(12) राजनीतिक दलों की संवैधानिक मान्यता : फ्रांस के संविधान के **अनुच्छेद-4** में स्पष्ट कहा गया है कि मताधिकार की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन राजनीतिक दल होंगे। भारत, ब्रिटेन तथा अमेरिका सहित अधिकांश देशों के राजनीतिक दलों की स्थिति संविधानेत्तर है जबकि फ्रांस में इनकी व्याख्या संविधान में की गई है। वस्तुतः राजनीतिक दलों को संवैधानिक आधार मिलने से जहाँ एक ओर उनकी वैधानिक स्वतंत्रता सुनिश्चित होती है वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय राजनीति में उनकी भूमिका भी दायित्वपूर्ण हो जाती है।

(13) संवैधानिक परिषद् की स्थापना : पंचम् गणराज्य का संविधान एक संवैधानिक परिषद् की स्थापना भी करता है। इस प्रकार की परिषद् प्रायः अन्य देशों में नहीं होती है। यद्यपि चतुर्थ गणतंत्र में भी यह परिषद् थी किन्तु अब अधिक सुदृढ़ एवं व्यावहारिक बनाई गई है। इसमें 9 सदस्य होते हैं जो 9 वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते हैं। एक तिहाई सदस्य हर तीसरे वर्ष परिषद् छोड़ देते हैं तथा नए सदस्य पदग्रहण कर लेते हैं। यह परिषद् चुनाव, जनमत संग्रह (लोक निर्णय) तथा कानून की वैधानिकता की जाँच करती है। इसके अतिरिक्त संकटकाल की घोषणा से पूर्व राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक है कि वह संवैधानिक परिषद् से परामर्श ले। चुनावों की व्यवस्था, निरीक्षण तथा परिणामों की घोषणा भी यह परिषद् करती है। कुछ परिस्थितियों में इस परिषद् को न्यायिक पुनरवलोकन की शक्तियाँ प्राप्त हैं अतः कुछ विद्वान् इसे **संसद का तीसरा भदन** भी कहते हैं।

इस प्रकार फ्रांसिसी संविधान कई विशेषताओं से युक्त है। शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त के प्रतिपादक विचारक मोण्टेस्क्यू भी फ्रांस के थे। फ्रांस में विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का पृथक्करण पाया जाता है लेकिन पूर्ण संतुलन दिखाई नहीं देता है। **ब्रोगन के शब्दों में**—"यह न तो अमेरिकी ढंग का अध्यक्षीय संविधान है और न ही ब्रिटिश ढंग का संसदात्मक संविधान है वरन् यह दोनों का मिश्रण है। यह एक सुखद मिश्रण सिद्ध होगा या नहीं; यह देखना है।"

शासन व्यवस्था (System of Government)

फ्रांस में एकात्मक शासन व्यवस्था प्रवर्तित है। विधायिका के रूप में राष्ट्रीय संसद कार्यरत है। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से कुछ प्रादेशिक क्षेत्र (Regions) तथा जिले (Departments) कार्यरत हैं। द्विसदनीय संसद का उच्च सदन **सीनेट** कहलाता है जिसमें 343 सदस्य होते हैं। इन सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष विधि से 9 वर्ष के लिए किया जाता है। एक स्थायी सदन के रूप में सीनेट के एक तिहाई सदस्य प्रति तीन वर्ष पश्चात् अवकाश प्राप्त कर लेते हैं। सीनेट में फ्रांस के प्रादेशिक क्षेत्रों तथा प्रवासी नागरिकों के

फ्रांस की शासन व्यवस्था

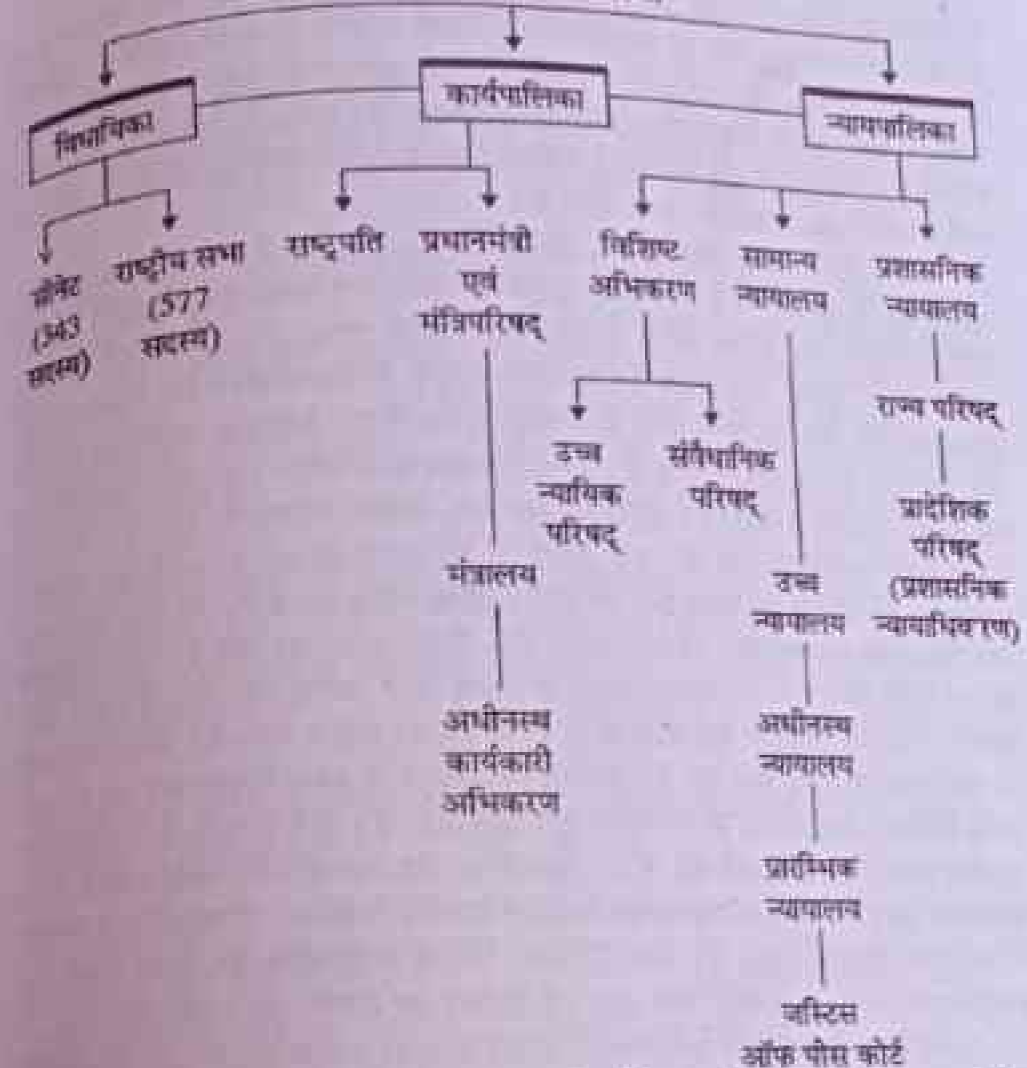

[स्थानीय प्रशासन की इकाइयाँ नगरपालिका, डिपार्टमेण्ट्स, एरोण्डाइजमेण्ट, कम्यून तथा कैण्टन में विभक्त हैं।]

प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। विगत वर्षों में सीनेटर्स की संख्या बढ़ती रही है। विशेष तथ्य यह है कि प्रत्येक सीनेटर का विकल्प उसी समय निर्धारित करना होता है जब कोई उम्मीदवार चुनाव हेतु आवेदन करता है। सीनेटर की मृत्यु या असमर्थता के समय उसका विकल्प पद संभालता है। सीनेटर की आयु 35 वर्ष होनी चाहिए। दूसरा तथा निम्न सदन राष्ट्रीय सभा (National Assembly) कहलाता है, जिसमें 577 सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। राष्ट्रीय सभा हेतु एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र और द्वितीय मतपत्र योजना की पद्धति प्रचलित है। द्वितीय मतपत्र योजना के अन्तर्गत निर्वाचन के लिए उम्मीदवार को स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना आवश्यक है अर्थात् जिन क्षेत्रों

में किसी उम्मीदवार को 50 प्रतिशत से अधिक मत नहीं मिलते हैं तो पुनः मतदान होता है। ऐसे में उन उम्मीदवारों को सम्मिलित नहीं किया जाता है जो प्रथम दौर में 10 प्रतिशत से कम मत प्राप्त करते हैं। निर्वाचित सांसद **डिप्टी** कहलाते हैं। राष्ट्रीय सभा की अवधि **5 वर्ष है** जिसे समय से पूर्व भी भंग किया जा सकता है। संसद के वर्ष में दो अधिवेशन होते हैं तथा कानून निर्माण एवं बजट स्वीकृति इसके मुख्य कार्य हैं। फ्रांस की सरकारी फाईल को **'Yellow Book'** कहा जाता है।

फ्रांस एक **प्रशासकीय राज्य** (Administrative State) है। वहाँ पर कानूनों एवं न्यायालयों के दो स्वरूप हैं। सामान्य कानून के अन्तर्गत दीवानी एवं फौजदारी मुकदमे आते हैं जबकि प्रशासनिक कार्यों से सम्बन्धित कानून पृथक् हैं। दोनों कानूनों के लिए न्यायालय भी पृथक् बनाए गए हैं। सामान्य कानूनों में क्रियान्वयन हेतु निम्नतम स्तर (Canton) पर जस्टिस ऑफ पीस कोर्ट होती है। छोटे एवं साधारण प्रकृति के मुकदमे इस अदालत द्वारा निपटाए जाते हैं। इसके पश्चात् एरोण्डाइजमेण्ट स्तर पर प्रथम श्रेणी प्रारम्भिक न्यायालय होते हैं। प्रादेशिक स्तर पर अपील न्यायालय होते हैं। फ्रांस में लगभग 27 प्रादेशिक क्षेत्र हैं। बड़े नगरों में फौजदारी मामले निपटाने के असाइज न्यायालय भी होते हैं। सर्वोच्च स्तर पर एक सर्वोच्च न्यायालय है जिसमें एक महाध्यक्ष, तीन विभागीय अध्यक्ष तथा 45 न्यायाधीश होते हैं जो पार्षद् कहलाते हैं। यह न्यायालय केवल विधि के प्रश्नों पर विचार करता है किन्तु कोई निर्णय नहीं देता है। यदि कोई निर्णय विधान के अनुरूप नहीं होता है तो अपने विचार सहित अभियोग अन्य न्यायालय के पास पुनर्विचार हेतु भेज देता है। फ्रांस में न्यायाधीश भी लोक सेवक माने गए हैं। एक अन्य विशेषता यह है कि सभी निर्णय जूरी द्वारा होते हैं। कम से कम तीन न्यायाधीश अवश्य होते हैं। न्यायालयों को चूँकि प्रशासनिक तंत्र का ही अंग माना गया है अतः **न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था नहीं है**। केवल संवैधानिक परिषद् को इस सम्बन्ध में कतिपय शक्तियाँ प्राप्त हैं। उच्च न्यायिक परिषद् न्यायाधीश का चयन करती है। सामान्यतया फ्रांस में न्यायपालिका द्वारा पूर्व में दिए गए निर्णय मान्य नहीं होते हैं।

प्रशासन तथा जनता के मध्य विवाद उत्पन्न होने पर प्रशासनिक कानूनों की व्याख्या करने के लिए प्रशासनिक न्यायालय पृथक् से हैं। सन् 1790 से शुरू हुई इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रादेशिक परिषदें (23) शुरुआती न्यायालय के रूप में हैं जबकि राज्य परिषद् (Conseil d'Etat) सर्वोच्च प्रशासनिक न्यायालय है।

अध्यक्षीय शासन व्यवस्था (Presidential System of Government)

शासन का तीसरा अंग अर्थात् कार्यपालिका कानूनों के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है। फ्रांस में कार्यपालिका के शीर्ष पर दो प्रमुख विद्यमान हैं। राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री दोनों को लगभग समान-सी शक्तियाँ प्राप्त हैं। द्विशीर्ष कार्यपालिका की यह शासन प्रणाली अपने आप में कई विशिष्टताओं से युक्त है। **फ्रांस की शासन प्रणाली न तो पूर्णतया अध्यक्षात्मक है और न ही संसदीय** बल्कि दोनों प्रणालियों की कुछ विशेषताएँ फ्रांस में दिखाई देती हैं।

संसदीय प्रणाली से तुलना

संसदीय शासन प्रणाली के लक्षण	फ्रांस की स्थिति
1. दोहरी कार्यपालिका (वास्तविक एवं नाममात्र की) होती है।	1. फ्रांस में नाममात्र की कार्यपालिका नहीं है बल्कि राष्ट्रपति सशक्त कार्यपालिका है।
2. प्रधानमंत्री तथा मंत्रीपरिषद् विधायिका के भाग होते हैं।	2. फ्रांस में प्रधानमंत्री तथा मंत्रिगण संसद के भाग (सदस्य) नहीं हो सकते हैं।
3. मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी होती है।	3. फ्रांस में भी मंत्रिपरिषद् राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी है।
4. मंत्रिपरिषद् का कार्यकाल प्रायः अनिश्चित रहता है।	4. फ्रांस में भी मंत्रिपरिषद् को निन्दा करके समय पूर्व संसद द्वारा हटाया जा सकता है।
5. मंत्रिपरिषदों की बैठकों की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करता है।	5. मंत्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है।
6. शासनाध्यक्ष मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर कार्य करता है।	6. फ्रांस का राष्ट्रपति प्रत्येक कार्य के लिए मंत्रिपरिषद् के परामर्श के लिए बाध्य नहीं है।
7. मंत्रिपरिषद् में सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त लागू होता है।	7. सैद्धान्तिक रूप में फ्रांस में भी ऐसा ही है।

अध्यक्षीय प्रणाली से तुलना

अध्यक्षीय शासन प्रणाली के लक्षण	फ्रांस की स्थिति
1. एकल कार्यपालिका होती है।	1. दोहरी कार्यपालिका है।
2. राष्ट्रपति कार्यपालिका की समस्त शक्तियाँ प्रयोग में लाता है।	2. राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री दोनों कार्य-पालिका शक्तियों का प्रयोग करते हैं।
3. मंत्रिपरिषद् विधायिका का भाग नहीं होती है।	3. मंत्रिपरिषद् विधायिका का भाग नहीं है।
4. कार्यपालिका समय से पूर्व संसद को भंग नहीं कर सकती है।	4. फ्रांस में राष्ट्रीय सभा को समय से पूर्व भंग किया जा सकता है।
5. मंत्रिपरिषद् संसद की कार्यवाही में भाग नहीं लेती है।	5. फ्रांस की मंत्रिपरिषद् संसद की कार्यवाही में भाग लेती है किन्तु मतदान नहीं कर सकती है।
6. शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त लागू होता है।	6. फ्रांस में भी शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त लागू है लेकिन शत-प्रतिशत नहीं।

फ्रांस की अध्यक्षीय प्रणाली में कतिपय विशिष्टताएँ अमेरिकी शासन प्रणाली के समान दिखाई देती हैं तो कुछ समानताएँ ब्रिटिश संसदीय प्रणाली जैसी हैं। विशुद्ध रूप से यह न तो अध्यक्षीय व्यवस्था कहला सकती है और न ही संसदीय व्यवस्था के दायरे में आती है। जनरल डी गाल ने यह मिश्रित व्यवस्था सन् 1958 में तत्कालीन गृह युद्ध की आशंका तथा अस्थिर राजनीति के परिप्रेक्ष्य में ग्रहण की थी लेकिन पंचम् गणराज्य की वर्तमान विशेषताओं तथा शासन व्यवस्था के द्वारा फ्रांस न केवल चार दशक से राजनीतिक रूप से स्थिर है बल्कि विश्व की गिनी चुनी महाशक्तियों में सम्मिलित है। प्रो. ड्यूवर्जे ने पंचम् गणतंत्र को '**अर्द्ध अध्यक्षीय राज्य**' कहा है लेकिन राष्ट्रपति की मंत्रिपरिषद् पर उच्च स्थिति को देखते हुए **फाइनर** ने इसे '**उच्च अध्यक्षीय राज्य**' नाम दिया है। निस्सन्देह शासन व्यवस्था में वर्तमान स्वरूप फ्रांस के लिए वरदान ही सिद्ध हुआ है भले ही इसमें कई प्रकार की विसंगतियाँ एवं अपूर्णताएँ ही क्यों न हों। फ्रांस की शासन व्यवस्था तथा कार्यपालिका के तीन मुख्य आधार स्तम्भ हैं—

- राष्ट्रपति (The President)
- प्रधानमंत्री (The Premier)
- मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers)

राष्ट्रपति
(The President)

फ्रांस का राष्ट्रपति केवल नाममात्र की या संवैधानिक कार्यपालिका का प्रतीक नहीं है बल्कि वह राज्य का वास्तविक अध्यक्ष, राष्ट्र का प्रतीक, शासन का प्रमुख तथा संविधान का संरक्षक है। तृतीय एवं चतुर्थ गणराज्य के संविधान में राष्ट्रपति की स्थिति भारत के राष्ट्रपति या ब्रिटेन के सम्राट के समान कमजोर थी। परिस्थितिवश राष्ट्रपति की पदस्थिति सुदृढ़ बनाई गई है। **मेण्डल फ्रांस** के अनुसार—"राष्ट्रपति एक अवंशानुगत सम्राट है जो अपने को वैधानिक अधिनायक बना सकता है।"

योग्यताएँ

पंचम् गणराज्य के संविधान में राष्ट्रपति की कोई योग्यता वर्णित नहीं है। अतः कोई भी मतदाता (18 वर्ष आयु) इस पद का प्रत्याशी बन सकता है लेकिन व्यावहारिक स्थिति इतनी सरल नहीं है। अत्यन्त लोकप्रिय, कुशल तथा अनुभवी राजनेता ही इस पद तक पहुँच सकता है।

निर्वाचन

पंचम् गणराज्य के मूल संविधान में राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था थी। एक 'महान् निर्वाचक मण्डल,' जिसमें 80 हजार सदस्य होते थे, के द्वारा राष्ट्रपति का चयन होता था किन्तु अक्टूबर, 1962 में किए गए संविधान संशोधन द्वारा अब राष्ट्रपति का

निर्वाचन सभी मतदाताओं के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। निर्वाचन के लिए पूर्ण बहुमत अर्थात् 50 प्रतिशत से अधिक मत आवश्यक है। यदि किसी भी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत नहीं मिलता है तो 15 दिन पश्चात् दूसरा मतदान होता है जिसमें केवल वे ही उम्मीदवार मैदान में रहते हैं जो प्रथम मतदान में प्रथम एवं द्वितीय स्थान पर थे। फ्रांस में प्रायः द्वितीय मतपत्र योजना का सहारा लेना पड़ता है। संवैधानिक परिषद् चुनाव से सम्बन्धित सभी नियंत्रणकारी प्रावधान करती है। चुनावी अनियमितताओं की सुनवाई तथा राष्ट्रपति के निर्वाचन की घोषणा भी संविधान परिषद् ही करती है। फ्रांस के राष्ट्रपति चुनाव में भारत में **पाण्डिचेरी में पंजीकृत** लगभग 2000 फ्रांसिसी मतदाता भी फ्रांसिसी वाणिज्य दूतावास के माध्यम से मतदान करते हैं।

कार्यकाल

फ्रांस में पूर्व में राष्ट्रपति 7 वर्ष के लिए चुना जाता था लेकिन जैक शिराक के प्रथम कार्यकाल (1997-2002) में यह अवधि **5 वर्ष** की जा चुकी है। राष्ट्रपति के पुनः निर्वाचित होने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। फ्रांस में **उप राष्ट्रपति के पद का प्रावधान नहीं है।** राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में सीनेट का सभापति अल्पकाल के लिए यह पद ग्रहण करता है लेकिन वह जनमत संग्रह (लोक निर्णय), सन्धियों के अनुसमर्थन तथा संविधान संशोधन जैसे गम्भीर मुद्दों पर निर्णय नहीं कर सकता है। ऐसा पूर्णकालिक राष्ट्रपति ही करता है। राष्ट्रपति की शारीरिक या मानसिक अस्वस्थता के समय संवैधानिक परिषद् सरकार की प्रार्थना पर पूर्ण बहुमत से निर्णय कर राष्ट्रपति का पद रिक्त घोषित कर सकती है। नए राष्ट्रपति का चुनाव कम से कम 20 तथा अधिकतम 35 दिनों के अन्दर अनिवार्य है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers & Functions)

फ्रांस का राष्ट्रपति अनेक दृष्टियों से शक्ति सम्पन्न कार्यपालिका है। वह संविधान का संरक्षक, राष्ट्र की एकता का प्रतीक तथा सर्वोच्च पदाधिकारी है।

कार्यपालिका शक्तियाँ

1. वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है तथा प्रधानमंत्री के प्रस्ताव पर सरकार के अन्य अधिकारियों को नियुक्त एवं पदमुक्त करता है। प्रधानमंत्री का त्यागपत्र भी राष्ट्रपति ही स्वीकारता है।
2. मंत्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
3. नागरिक एवं सैनिक पदों पर नियुक्तियाँ करता है।
4. फ्रांस के राजदूतों की नियुक्ति करता है तथा अन्य देशों के राजदूतों के नियुक्ति पत्र स्वीकारता है।

5. वह सेनाओं का प्रमुख सेनापति होता है। राष्ट्रपति सुरक्षा परिषद् तथा रक्षा समिति की अध्यक्षता करता है।
6. अन्य देशों के साथ सन्धि वार्ताएँ करता है तथा सन्धियों का अनुसमर्थन करता है।

विधायी शक्तियाँ

1. संसद द्वारा पारित विधेयकों को 15 दिन के अन्दर स्वीकृत कर कानून घोषित करता है। वह विधेयक को पुनर्विचार हेतु लौटा सकता है जिस पर संसद अनिवार्यतः विचार करती है।
2. मंत्रिपरिषद् द्वारा भेजे गए अध्यादेशों तथा विज्ञप्तियों पर हस्ताक्षर करता है।
3. संसद के दोनों सदनों में संदेश भेजता है किन्तु उस संदेश पर वाद-विवाद नहीं होता है।
4. संसद के असाधारण सत्र आयोजित करवा सकता है।
5. सरकार के अथवा संसद के दोनों सदनों के संयुक्त संकल्प पर विधेयकों को लोक निर्णय के लिए प्रसारित कर सकता है यदि मामला जनसमर्थन से सम्बन्धित हो।
6. प्रधानमंत्री तथा संसद के दोनों सदनों के सभापतियों के परामर्श पर राष्ट्रीय सभा को भंग कर सकता है।

न्यायिक शक्तियाँ

1. न्यायालयों द्वारा दण्डित व्यक्तियों को क्षमादान दे सकता है।
2. उच्च न्यायिक परिषद् में नौ सदस्यों को मनोनीत करता है।
3. उच्च न्यायिक परिषद् की अध्यक्षता करता है।
4. न्यायाधीशों की स्वतंत्रता बनाए रखने की गारण्टी देता है।

आपातकालीन शक्तियाँ

संविधान के **अनुच्छेद-16** के अनुसार—''जब कभी गणराज्य की संस्थाओं, राष्ट्र की स्वतंत्रता, फ्रांस के क्षेत्रों की अखण्डता या अन्तरराष्ट्रीय वचनबद्धताओं को पूरा करने में गम्भीर तथा तात्कालिक खतरा उत्पन्न हो जाता है और संवैधानिक सरकार की सत्ताओं के उचित एवं नियमित कार्यों में बाधा पड़ने लगती है तो राष्ट्रपति उस खतरे का सामना करने के लिए जिन उपायों को आवश्यक समझे, उठा सकता है।'' संविधानानुसार राष्ट्रपति इस संकट की सूचना राष्ट्र को देगा। प्रधानमंत्री संसद के दोनों सदनों के सभापतियों तथा संविधान परिषद् से परामर्श करेगा। लेकिन राष्ट्रपति परामर्श को मानने के लिए बाध्य है या नहीं, इस पर संविधान मौन है। आपातकाल आरम्भ होते ही राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन शुरू हो जाता है और उसे विघटित नहीं किया जा सकता है। वास्तव में इस समय राष्ट्रपति का **स्वविवेक ही निर्णायक** रहता है।

डोरोथी पिकल्स के अनुसार—''राष्ट्रपति, जज और जूरी दोनों हो जाता है।''

आपातकाल की समय सीमा निश्चित नहीं की गई है। ऐसे समय राष्ट्रपति भी निर्णय लेता है तथा राष्ट्रीय सभा भी उचित कदम उठा सकती है।

संविधान के **अनुच्छेद-5** के अनुसार राष्ट्रपति, संविधान का संरक्षक भी होता है। अस्तु: जनरल डी गाल से लेकर अद्यतन, फ्रांस में राष्ट्रपति की स्थिति सुदृढ़ एवं किंचित् सर्वेसर्वा जैसी प्रतीत हुई है।

प्रधानमंत्री
(The Premier)

फ्रांस के प्रधानमंत्री (Premier) की पदस्थिति भारत या ब्रिटेन के प्रधानमंत्री के समान सत्ताका कार्यपालिका की नहीं है। यद्यपि सन् 1789 की क्रांति से ही प्रधानमंत्री का पद महत्त्वपूर्ण रहा है किन्तु सर्वप्रथम चतुर्थ गणतंत्र के संविधान में यह पद वर्णित किया गया। वर्तमान (पंचम्) गणतंत्र में भी प्रधानमंत्री का पद कार्यपालिका का आवश्यक अंग है।

नियुक्ति

संविधान के **अनुच्छेद-8** के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति में समाहित है। फ्रांस की व्यवस्था में राष्ट्रपति की पसन्द अधिक महत्त्वपूर्ण है न कि बहुमत दल के नेता या अन्य संसदीय गुटों का प्रभाव है। राष्ट्रपति विभिन्न दलों से परामर्श लेने के लिए बाध्य नहीं है। चतुर्थ गणतंत्र में प्रधानमंत्री का पद 'राष्ट्रीय सभा के प्रतिनिधि' का पर्याय था क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति को राष्ट्रीय सभा का विश्वास मत प्राप्त करना होता था। उसके पश्चात् नियुक्ति होती थी। लेकिन अब यह व्यवस्था नहीं है। अत: फ्रांस का प्रधानमंत्री **राष्ट्रपति का प्रतिनिधि** माना जाता है।

पदमुक्ति

फ्रांस के प्रधानमंत्री को राष्ट्रपति का विश्वास खो देने या राष्ट्रीय सभा में विश्वास खो देने पर त्यागपत्र देना पड़ता है। **अनुच्छेद-50** के अनुसार सरकार के किसी कार्यक्रम या नीति को राष्ट्रीय सभा द्वारा अस्वीकार कर देने या निन्दा प्रस्ताव पारित करने पर प्रधानमंत्री को अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को सौंपना होता है। वह स्वेच्छा से भी पदत्याग कर सकता है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers & Functions)

फ्रांस में राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री नामक द्विशीर्षात्मक कार्यपालिका के होते हुए शक्तियों का बँटवारा स्पष्ट रूप से किया गया है। प्रधानमंत्री की निम्नांकित शक्तियाँ तथा कार्य है—

1. शासन संचालन के लिए यथावश्यक दिशा-निर्देश जारी करता है।
2. राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सशस्त्र सेनाओं को निर्देश देता है।

3. अनुच्छेद-13 में वर्णित महत्त्वपूर्ण पदों को छोड़, शेष पदों पर नियुक्तियाँ करता है।
4. विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है।
5. सरकार के समस्त अध्यादेशों तथा विज्ञप्तियों पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर करवाता है।
6. राष्ट्रपति द्वारा प्राप्त शक्तियों के अनुसरण में सुरक्षा परिषद् तथा अन्य समितियों की अध्यक्षता करता है।
7. विशिष्ट कार्यों, प्रदत्त शक्तियों तथा औपचारिक रूप में कभी-कभी मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
8. मंत्रिमण्डल के सदस्यों, उनके विभागों तथा कार्यक्षेत्र का निर्धारण कर राष्ट्रपति को अवगत कराता है।
9. लोक सेवाओं में सुधार, नियंत्रण-निर्देशन तथा कार्यकुशलता बनाए रखने के प्रयास करता है।
10. संसद में सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों तथा अन्य घोषणाओं का स्पष्टीकरण देता है तथा संसदीय प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करता है।
11. राष्ट्रीय सभा में विश्वास मत प्रस्तुत करता है।
12. विधि निर्माण के लिए विधेयक प्रस्तुत करने की पहल करता है।
13. विशिष्ट कार्यसूची के अन्तर्गत संसद का असाधारण सत्र आयोजित करने की प्रार्थना करता है।
14. राष्ट्रीय सभा को भंग करने या आपातकाल इत्यादि के सन्दर्भ में राष्ट्रपति को परामर्श देता है।

संविधान के **अनुच्छेद-21** के अनुसार प्रधानमंत्री राष्ट्र की नीतियों के लिए उत्तरदायी होता है अतः नीति निर्माण में उसकी भूमिका ही सर्वाधिक निर्णायक रहती है।

मंत्रिपरिषद्
(Council of Ministers)

फ्रांसिसी संविधान के **अनुच्छेद-20** में एक मंत्रिपरिषद् का उल्लेख करते हुए तीन प्रमुख तथ्य वर्णित किए गए हैं—

1. फ्रांस का प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रिगण मिलकर सरकार का निर्माण करेंगे;
2. सरकार राष्ट्र की नीतियों का निर्माण करेगी; तथा
3. सरकार अपनी नीतियों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होगी।

फ्रांस का राष्ट्रपति संविधान का संरक्षक तथा राष्ट्र का अध्यक्ष है किन्तु शासन करने की भूमिका मंत्रिपरिषद् को दी गई है।

गठन

फ्रांस का प्रधानमंत्री राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है तथा प्रधानमंत्री के परामर्श पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करता है। सामान्यतया प्रधानमंत्री के परामर्श को राष्ट्रपति स्वीकार कर लेता है। फ्रांस में प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्री संसद के सदस्य नहीं होते हैं। यदि कोई मंत्री या प्रधानमंत्री संसद का सदस्य है तो उसे संसद की सदस्यता से त्यागपत्र देना होता है। सामान्यतः फ्रांस की मंत्रिपरिषद् में विषय विशेषज्ञों एवं वरिष्ठ लोक सेवकों को सम्मिलित किया जाता रहा है। कोई भी मंत्रिपरिषद् तो उसे राष्ट्रपति के दल का समर्थन प्राप्त करना व्यावहारिक रूप से आवश्यक रहता है क्योंकि बहुदलीय व्यवस्था में प्रायः एकदल के पास स्पष्ट बहुमत नहीं रहता है। मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या, संविधान में वर्णित नहीं है किन्तु इसका आकार प्रायः छोटा ही रहता है।

मंत्रिपरिषद् में दो श्रेणियों के मंत्री होते हैं—
1. विभागों के अध्यक्ष मंत्री;
2. राज्यमंत्री तथा बिना विभागों के मंत्री।

मंत्रिपरिषद् की बैठकों में सभी प्रकार के मंत्रि सम्मिलित होते हैं। मंत्रिपरिषद्-बैठक की अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है। लेकिन कुछ मंत्रियों से युक्त **मंत्रिमण्डल** की बैठकों में कभी-कभार प्रधानमंत्री अध्यक्षता करता है। मंत्रिमण्डल एक अनौपचारिक संस्था है जबकि मंत्रिपरिषद् संवैधानिक एवं बड़ी संस्था है। मंत्रिपरिषद् की सप्ताह में दो बार बैठकें राष्ट्रपति भवन में होती हैं।

पदमुक्ति

मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को राष्ट्रपति पदमुक्त कर सकता है, यदि उन्होंने राष्ट्रपति या राष्ट्रीय सभा का विश्वास खो दिया हो। सरकार के किसी कार्यक्रम या नीति को राष्ट्रीय सभा अस्वीकृत कर दे, विश्वासमत अस्वीकृत हो जाए या राष्ट्रीय सभा निन्दा प्रस्ताव पारित कर दे तो मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है।

मंत्रिपरिषद् के **कार्यों** में राष्ट्रीय नीति, कानून तथा कार्यक्रम बनाना, बजट बनाना, कानूनों एवं बजट को लागू करना, प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करना, महत्त्वपूर्ण पदों जैसे—राजदूत, महाअंकेक्षक तथा कौंसिलर इत्यादि पर नियुक्ति करना तथा संसद में सरकार का पक्ष प्रस्तुत करना प्रमुख हैं। दरअसल, फ्रांस की मंत्रिपरिषद् एक शक्तिहीन कार्यपालिका का उदाहरण है।

फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of the French Administrative System)

सन् 1789 की महान् क्रांति के पश्चात् फ्रांस में लोकतांत्रिक मूल्यों, समानता, भाईचारे तथा मानवाधिकार के प्रसार हेतु कल्याणकारी शासन व्यवस्थाओं की माँग निरन्तर बलवती होती गई। सन् 1791 से सन् 1958 तक फ्रांस में बार-बार संविधान निर्मित किए गए, शासन-सत्ताएँ परिवर्तित हुईं तथा निरन्तर अस्थिरता का दौर जारी रहा

लेकिन समस्त भीषण झंझावातों से जूझकर **फ्रांसिसी प्रशासन** एक उत्कृष्ट एवं जन हितकारी प्रशासन के रूप में स्थापित हो गया है, जिसकी निम्नांकित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

(1) शास्त्रीय प्रशासन : फ्रांस का लोक प्रशासन अति उत्तम या शास्त्रीय (Classic) प्रशासनिक व्यवस्था का पर्याय माना जाता है क्योंकि लोक प्रशासन के सिद्धान्तों तथा मानवीय पक्षों के संयुक्त आधार पर निर्मित यह प्रशासन अत्यधिक औपचारिक एवं विधिवत् रूप से गठित है। **फैरेल हैडी** इस व्यवस्था को शास्त्रीय इसलिए मानते हैं कि राजनीतिक अस्थिरता के दौर में भी फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था ने कभी भी जनकल्याण एवं लोक महत्त्व के विषयों एवं कार्यों को तिलांजलि नहीं दी बल्कि प्रशासनिक निरन्तरता सदैव बनी रही। जर्मनी तथा फ्रांस के प्रशासन की यह विशेषता अस्थिर राजनीति वाले देशों के लिए एक उदाहरण है। लोक सेवाओं का सुदृढ़ ढाँचा तथा राष्ट्र के प्रति भक्ति सहित लोक सेवकों के विकास के समस्त आवश्यक प्रावधान इस व्यवस्था की विशेषताएँ हैं। प्रत्येक व्यक्ति के जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के पश्चात् तक लोक प्रशासन अपना दायित्व कदम-कदम पर निर्वाहित करता है। यद्यपि **वाल्टेयर तथा क्वेसने** जैसे फ्रांसिसी दार्शनिक 'अहस्तक्षेपवादी राज्य' के समर्थक रहे हैं तो भी फ्रांस में अधिकांशतः राज्य तथा लोक प्रशासन को जनहित एवं विकास का ही माध्यम माना जाता रहा है। फ्रांस में सरकारों का स्वरूप समयानुसार परिवर्तित होता रहा है किन्तु लोक प्रशासन यथावत् जनकल्याण से संलग्न रहा है। इसी क्रम में **अलफ्रेड डायमॉण्ट** ने कहा है—"गणराज्य समाप्त हो जाता है किन्तु प्रशासन बना रहता है।" **हरबर्ट लूथी** भी मानते हैं कि फ्रांस में जब संसद कार्य नहीं कर रही होती है तो पूर्व के निर्णयों से प्रशासन संचालित होता रहता है। सप्ताहों तक सरकार नहीं होती, तो भी सैकड़ों प्रीफेक्ट प्रशासन संचालित करते रहते हैं।

(2) राज्य की सर्वोच्चता : फ्रांस में प्राचीनकाल से ही रोमन सभ्यता, संस्कृति तथा कानूनों का प्रभाव रहा है। अतः 'राज्य' को महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में देखने की प्रवृत्ति रही है। राज्य द्वारा निर्मित कानून तथा नियम प्रशासनिक व्यवस्था के लिए मार्गदर्शक रहे हैं। आज भी फ्रांस की शासन व्यवस्था में लोक प्रशासनिक व्यवस्था कुशलतापूर्वक कार्य कर रही है किन्तु यह बड़े ही सहज ढंग से स्वयं को सर्वोच्च सत्ता अर्थात् राजनीतिक कार्यपालिका एवं संविधान के अधीन ही स्वीकारती है। सरकार राज्य का एक आवश्यक अंग होती है तथा प्रशासन सरकार के कार्यों के संचालन का एक माध्यम है। स्थायित्व के बावजूद भी लोक प्रशासन के अधिकारियों ने कभी भी राजनीतिक अस्थिरता का दुरुपयोग नहीं किया है।

(3) केन्द्रीकृत प्रशासन : फ्रांस का लोक प्रशासन प्राचीनकाल से ही केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों से युक्त रहा है। सम्भवतः राजनीतिक अस्थिरता के दौर ने प्रशासनिक व्यवस्था एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण की राह में व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न की हैं। गणराज्य की स्थापना के उपरान्त नेपोलियन बोनापार्ट द्वारा पुनः राजतंत्र स्थापित करना

तथा प्रशासन को केन्द्रीकृत कर पेरिस तक समेटना तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिफल है लेकिन आज भी प्रशासनिक कार्यकरण केन्द्रीकृत बना हुआ है। यद्यपि सन् 1982 के **सुधारों के पश्चात्** विकेन्द्रीकरण के प्रयास होने लगे हैं लेकिन अभी भी महत्त्वपूर्ण निर्णय पेरिस स्थित मंत्रालय तथा निदेशालय ही लेते हैं। केन्द्रीकृत प्रशासन का एक मुख्य कारण यह भी माना जाता है कि फ्रांस की कुल जनसंख्या का 20 प्रतिशत हिस्सा अभी भी पेरिस में रहता है। इसीलिए कहते हैं कि पेरिस को छींक आने का मतलब सम्पूर्ण फ्रांस को न्यूमोनिया हो जाना है। (इसी प्रकार की स्थिति फ्रांस की यूरोप महाद्वीप में है। कहा जाता है कि जब फ्रांस को सर्दी लगती है तो यूरोप को छींक आती है।) वस्तुतः फ्रांस में शक्तियों का बँटवारा नहीं बल्कि कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया हुआ है।

(4) एकात्मक शासन : ब्रिटेन की भाँति फ्रांस में भी शासन एक स्तरीय है अर्थात् सम्पूर्ण देश की एक ही विधायिका तथा सरकार होती है। भारत या अमेरिका की तरह राज्य सरकारों का अस्तित्व नहीं है। यद्यपि फ्रांस को प्रादेशिक क्षेत्रों में विभक्त किया गया है लेकिन ऐसा प्रशासनिक सुविधा के लिए है न कि शासन की दोहरी इकाइयाँ कार्य करती हैं। प्रादेशिक क्षेत्रों को डिपार्टमेण्ट्स (अर्थात् जिलों) में विभक्त किया गया है जहाँ प्रीफेक्ट नामक अधिकारी समस्त कार्य सम्पादित करता है। सम्पूर्ण देश में एक जैसा सामान्य एवं प्रशासकीय कानून तथा व्यवस्था प्रवर्तित है जो मूलतः राष्ट्रीय एकता में वृद्धि करती है।

(5) प्रशासकीय राज्य एवं विस्तृत कार्यक्षेत्र : वर्तमान विश्व के अधिसंख्य देशों में लोककल्याणकारी राज्य प्रवर्तित हैं। वस्तुतः लोककल्याणकारी राज्य तथा प्रशासकीय राज्य में बहुत भारी अन्तर नहीं है। **गारनर** के अनुसार—"राज्य की इच्छाओं की पूर्ति जिस संगठन द्वारा होती है उसका नाम सरकार है।" सरकार के तीनों अंगों यथा—विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में जब नागरिकों के कार्य एवं इच्छाएँ मुख्यतः कार्यपालिका के माध्यम से पूरी होने लगें तथा प्रशासन इसका माध्यम बन जाए तो वह प्रशासकीय राज्य कहलाता है। फ्रांस में कार्यपालिका की बढ़ती भूमिका, लोक सेवाओं में विस्तार, विशेषज्ञता में वृद्धि तथा नौकरशाही की जनमान्यता ऐसे कारक हैं जो लोक कल्याण, जन विकास तथा सार्वजनिक व्यवस्था में प्रशासनिक तंत्र की भूमिका को विस्तृत करते हैं। फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था के पास वे समस्त कार्य हैं जो मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास एवं संरक्षण हेतु आवश्यक होते हैं। पूँजीवादी देश होते हुए भी फ्रांस में समाजवादी विचारधारा को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है।

(6) दोहरे कानून : फ्रांस में सामान्य कानून (दीवानी तथा फौजदारी) तथा प्रशासनिक कानून पृथक्-पृथक् हैं। नागरिकों के आपसी विवाद तथा झगड़े सामान्य न्यायालयों द्वारा निपटाए जाते हैं जबकि प्रशासन एवं जनता के मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद प्रशासनिक कानूनों (Droit Administratif) के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रियानुसार सुलझाए जाते हैं। प्रशासनिक कानूनों के अन्तर्गत आने वाले मुकदमे प्रारम्भिक स्तर पर प्रादेशिक परिषदों या

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों द्वारा निपटाए जाते हैं। यद्यपि भारत एवं ब्रिटेन में भी प्रशासनिक न्यायाधिकरण हैं किन्तु फ्रांस की भाँति इन देशों में स्वतंत्र प्रशासनिक कानून नहीं है।

(7) **स्वच्छ, स्थायी एवं कुशल प्रशासन :** फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था साफ-सुथरी, अनुशासित तथा राष्ट्रहितों के प्रति प्रतिबद्ध मानी जाती है। अमेरिका की भाँति लूट प्रणाली का व्यापक प्रचलन फ्रांस में कभी भी नहीं रहा। भ्रष्टाचार, रिश्वत, लापरवाही तथा अकर्मण्यता के उदाहरण फ्रांसिसी प्रशासन में बहुत कम देखने को मिलते हैं। प्रशासनिक अनियमितताओं के कारण उत्पन्न होने वाले विवादों तथा जन शिकायतों की सुनवाई के लिए प्रशासनिक न्यायालय इसीलिए स्थापित किए गए हैं ताकि सामान्य न्यायालयों की दुरुह एवं लम्बी प्रक्रिया से छुटकारा मिले तथा प्रशासनिक अधिकारी चौकस रहकर कार्य करें। 'सूचना का अधिकार' नागरिकों को प्राप्त है। S.D.E.G.E. (Director General Service Exterinal) यहाँ की प्रमुख गुप्तचर संस्था है।

(8) **मिशनरी भावना :** फ्रांस के लोक सेवक प्रत्येक सरकारी कार्य को केवल ड्यूटी मानकर पूरा नहीं करते हैं बल्कि नागरिक सेवा को अपना ध्येय मानते हैं। एसप्रिट डी कोर्प्स (Esprit d' Corps) की भावना लिए फ्रांसिसी लोक सेवक मानव कल्याण को ईश्वर सेवा के समान स्वीकारते हैं। वस्तुतः फ्रांस की सरकार एक आदर्श नियोक्ता की भूमिका निभाती है तथा लोक सेवक एक आज्ञाकारी कार्मिक का दायित्व सहर्ष उठाते हैं। सामाजिक एवं मानसिक स्तर पर परिपक्वता प्राप्त फ्रांसिसी नागरिक भी प्रशासनिक कार्यों में पूर्ण सहभागिता प्रकट करना अपना दायित्व समझते हैं। राष्ट्रीय कानूनों में आस्था प्रकट करना सर्वोच्च नैतिकता की निशानी है। यह मान्यता लोक सेवक एवं आम व्यक्ति दोनों ही स्वीकारते हैं। अधिकारों एवं कर्तव्यों के बोध सहित मानव धर्म को प्रधानता दी गई है। नागरिकों को लोक प्रशासन से सूचना प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

(9) **सुदृढ़ एवं संगठित प्रशासन :** फ्रांस में कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं फिर भी प्रधानमंत्री तथा उनकी मंत्रिपरिषद् को राष्ट्रीय नीतियों के निर्माण, उनके क्रियान्वयन तथा सम्पूर्ण प्रशासनिक तंत्र पर नियंत्रण करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया है। फ्रांस की प्रशासनिक संरचनाओं के शीर्ष पर मंत्रालय होता है जिसका राजनीतिक अध्यक्ष मंत्री होता है। मंत्री की स्थिति भारतीय प्रशासन से मिलती-जुलती है। मंत्री को प्रशासनिक कार्यों में सहायता देने हेतु स्थायी कार्यपालिका अर्थात् प्रशासनिक अधिकारी होते हैं। मंत्रालयों के अधीन उनके कार्यकारी संगठन जैसे— निदेशालय, बोर्ड तथा लोक उपक्रम इत्यादि कार्यरत हैं। प्रशासनिक संगठनों को निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(i) **संवैधानिक निकाय :** ये ऐसे संगठन हैं जिनका संविधान में उल्लेख करते हुए महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए बनी उच्च न्यायिक परिषद् तथा चुनाव, लोक निर्णय एवं विधि परामर्श के लिए बनी संवैधानिक परिषद् इसी श्रेणी में रखी जा सकती हैं। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक विभाग (Core des Competus) भी संवैधानिक निकाय है।

(ii) **मंत्रालयिक विभाग :** ऐसे विभाग जो प्रत्यक्षतः किसी मंत्री के अधीन कार्य करते हैं वे मंत्रालय विभाग कहलाते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

- शिक्षा विभाग।
- आर्थिक एवं वित्त विभाग।
- आन्तरिक एवं विकेन्द्रीकरण विभाग।
- रक्षा विभाग।
- नगरीकरण एवं परिवहन विभाग।
- न्याय एवं वैदेशिक मामले विभाग।
- कृषि विभाग।
- सामाजिक मामले विभाग।
- संस्कृति विभाग।
- विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं ऊर्जा विभाग।
- पर्यावरण एवं विकास विभाग।
- तेल एवं खान विभाग।
- दूरसंचार विभाग।
- सार्वजनिक निर्माण विभाग।
- आपूर्ति एवं उपकरण विभाग।
- उद्योग विभाग।

सन् 1949 में फ्रांस में 10 विभाग थे जिनकी संख्या सन् 1982 में 42 तक जा पहुँची थी।

(iii) **लोक उपक्रम :** समाजवादी समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पूँजीवादी फ्रांस में कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण भी किया गया है। खनन, दूरसंचार, उद्योग, रेलवे तथा अन्य उत्पादन क्षेत्रों में कई प्रकार के लोक उपक्रम हैं, जिनका संचालन सरकार करती है। कुछ लोक उपक्रमों में स्वायत्ततावादियों का प्रभुत्व है तो कुछ में **सिण्डीकलवादियों** का (सिण्डीकलवाद वह समाजवादी आन्दोलन है जो फ्रांसिसी श्रम आन्दोलन की धारा है। इनकी मुख्य माँग श्रम संगठनों को राजनीति से दूर रख के उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों की सत्ता स्थापित करना है)।

(iv) **विशिष्ट अभिकरण :** इस श्रेणी में वे अभिकरण रखे गए हैं जो किसी मंत्रालयिक विभाग के अधीन नहीं हैं और न ही लोक उपक्रमों की श्रेणी में आते हैं। फ्रांस में आर्थिक नियोजन की योजनाएँ बनाने वाला **जनरल प्लानिंग कमीशन** तथा प्रशासनिक न्यायालय जैसे— राज्य परिषद् इसी श्रेणी में हैं। फ्रांस में न्यायिक सेवाएँ भी लोक सेवाओं की गिनती में आती हैं।

फ्रांस के सभी प्रकार के प्रशासनिक संगठनों में लगभग **20 लाख कार्मिक** कार्यरत हैं जबकि बेरोजगारी आज फ्रांस की सबसे बड़ी समस्या है।

(10) प्रभावी लोक सेवाएँ : फ्रांस की लोक सेवाएँ अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अनुशासित मानी जाती हैं। गारनर के शब्दों में—"यह बिना किसी सन्देह के कहा जा सकता है कि विश्व में अन्य कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ प्रशासनिक अधिकारियों की मनमानी, शक्ति के दुरुपयोग और अवैध आचरण के विरुद्ध निजी व्यक्तियों के अधिकार इतने अधिक सुरक्षित हों और जहाँ अधिकारियों द्वारा साधारण नागरिकों को हानि पहुँचाने पर नागरिक क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए इतने अधिक आश्वस्त हों जितना कि फ्रांस में है।" फ्रांस की लोक सेवाओं की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(i) फ्रांस में लोक सेवाओं को **कोर्प्स** (Corps) कहा जाता है। विभागीय कार्यों तथा श्रेणियों के अनुसार लगभग 1,600 कोर्प्स हैं।

(ii) भारत की भाँति फ्रांस में भी लोक सेवाओं को रैंक के आधार पर 'ए', 'बी', 'सी' तथा 'डी' श्रेणियों में विभक्त किया गया है। **'डी' श्रेणी समाप्त** की जा रही है। अतः वास्तविक रूप में तीन ही श्रेणियाँ हैं।

(iii) सामाजिक दृष्टि से लोक सेवाओं को प्रतिष्ठा प्राप्त है क्योंकि कठिन परीक्षा के माध्यम से ही चयन हो पाता है।

(iv) प्रशासनिक सेवाओं में विधि स्नातक को सर्वाधिक वरीयता दी जाती है।

(v) इकोल डी नेशनल एडमिनिस्ट्रेशन (ENA) द्वारा लोक सेवकों की भर्ती तथा प्रशिक्षण कार्य किया जाता है। इसका मुख्यालय पेरिस में तथा एक अन्य शाखा स्ट्रासबर्ग में है। Ecole d' National Administration एक विश्व प्रसिद्ध संगठन है।

(vi) उच्च लोक सेवाओं में प्रायः उच्च वर्गों के या विशिष्ट परिवारों के व्यक्ति ही प्रवेश पाते हैं।

(vii) प्रशिक्षण पर अत्यधिक जोर दिया जाता है। आधुनिक विधियों तथा व्यावहारिक कुशलता के मध्य सामंजस्य बैठाया जाता है।

(viii) फ्रांस में लोक सेवकों को पर्याप्त **राजनीतिक अधिकार** प्राप्त हैं। सेवा में रहते हुए लोक सेवक चुनाव लड़ सकते हैं तथा राजनीतिक दलों का प्रचार कर सकते हैं। राजनीतिक दलों की सहायता प्राप्त कर सकते हैं। राजनीति छोड़कर पुनः लोक सेवा में आ सकते हैं।

(ix) लोक सेवकों को **हड़ताल करने का अधिकार** दिया गया है।

(x) वेतन के अतिरिक्त परिवार के पालन पोषण हेतु अनेक प्रकार के भत्ते दिए जाते हैं।

(xi) पदोन्नति की अच्छी व्यवस्था है। कोई भी निम्न पदधारक यदि योग्य है तो उच्च पद पर पहुँच सकता है।

(xii) सामान्यज्ञों के साथ-साथ विशेषज्ञों को भी महत्त्व दिया गया है।

(11) प्रीफेक्ट व्यवस्था : आधुनिक फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था नेपोलियन बोनापार्ट की ऋणी है क्योंकि प्रीफेक्ट, कोर्प्स तथा तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान इत्यादि की स्थापना नेपोलियन ने ही की थी। फ्रांस को भौगोलिक आधार पर कुछ रीजन अर्थात्

प्रादेशिक सम्भागों में बाँटा गया है जिनके पश्चात् डिपार्टमेण्ट्स होते हैं। फ्रांस के डिपार्टमेण्ट्स भी जापान की भाँति भौगोलिक इकाई हैं जो भारत के जिलों के समकक्ष हैं। इन डिपार्टमेण्ट्स के अधिकारी प्रीफेक्ट तथा सबप्रीफेक्ट कहलाते हैं। (ब्रिटिश परम्परा के कारण भारत में कुछ पब्लिक स्कूलों में छात्र प्रीफेक्ट भी होते हैं जो अनुशासन स्थापना में सहायता करते हैं) प्रीफेक्ट (Prefect) की पदस्थिति बहुत कुछ भारत के जिला कलक्टर से मिलती-जुलती है। नेपोलियन ने शुरू में फ्रांस को 9 डिपार्टमेण्ट्स (जिलों) में बाँटा था जिनकी संख्या अब 23 है। प्रीफेक्ट (Prefect) नामक अधिकारी केन्द्र तथा स्थानीय प्रशासनिक संगठनों एवं जनता तथा सरकार के बीच समन्वयक की भूमिका निभाता है। वह सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कुछ छोटे-बड़े प्रशासनिक कार्य भी सम्पादित करता है। प्रीफेक्ट किसी एक विभाग का अधिकारी नहीं बल्कि सभी विभागों का सामान्य अधिकारी होता है। फ्रांस में पृथक् से प्रीफेक्ट कोर्प्स बनी हुई है जो सम्मानजनक लोक सेवा मानी जाती है।

(12) अर्द्ध स्वायत्त स्थानीय प्रशासन : एकात्मक तथा केन्द्रीकृत फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था में शहरी एवं ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ सदैव से ही केन्द्रीय प्रशासन के अधीन रही हैं। फ्रांस में स्थानीय स्वशासन का स्वरूप उतना स्वायत्त नहीं होता जैसा कि जापान, स्विट्जरलैण्ड तथा अमेरिका में है। फ्रांस में समाजवादी सरकार द्वारा 2 मार्च, 1982 को पारित कानून के पश्चात् 'प्रशासन का विकेन्द्रीकरण' प्रारम्भ हुआ जो अभी निरन्तर सुधारों की ओर अग्रसर है। इस कानून के द्वारा फ्रांस में स्थानीय प्रशासन की इकाइयों को उनके कार्यक्षेत्र में वैधानिक स्वतंत्रता दी गई है। मूलतः नगरपालिकाएँ, डिपार्टमेण्ट्स तथा प्रादेशिक सम्भाग स्थानीय प्रशासन के तीन स्तर हैं। इनमें एरोण्डाइजमेण्ट तथा कैण्टन तथा कम्यून भी बने हुए हैं। केन्द्रीय स्तर पर 'आन्तरिक एवं विकेन्द्रीकरण विभाग' स्थानीय प्रशासन की इकाइयों को दिशा-निर्देश प्रदान करता है। कम्यून में मेयर तथा डिपार्टमेण्ट्स में प्रीफेक्ट नामक अधिकारी स्थानीय प्रशासन संचालित करते हैं। स्थानीय निकायों में एक परिषद् होती है जो निम्न स्तरीय पदों पर भर्ती, प्रशिक्षण एवं पदोन्नति का कार्य सम्पादित करती है। भारत की भाँति 'स्थानीय निकाय निदेशालय' नियंत्रणकर्ता की भूमिका निभाता है। फ्रांस के स्थानीय निकायों में भी पूर्णतया योग्यता का सिद्धान्त लागू होता है।

(13) सुदृढ़ अर्थव्यवस्था एवं दबाव समूह : फ्रांस की अर्थव्यवस्था तुलनात्मक रूप से सुदृढ़ एवं विश्वसनीय मानी जाती है। यद्यपि फ्रांस में बेरोजगारी एक विकराल समस्या बन चुकी है तथापि आम फ्रांसिसी का जीवन स्तर अत्यन्त उच्च स्तरीय होता है। फ्रांस के नियोजन तंत्र को निर्देशित करने वाला 'सामान्य नियोजन आयोग' आर्थिक तंत्र में प्रभावी भूमिका निर्वाहित करता है। फ्रांस में केवल प्रतीकात्मक (Indicative) नियोजन किया जाता है। लोक एवं निजी दोनों ही प्रकार के उपक्रम आयोग के परामर्श को गम्भीरता से स्वीकार करते हैं। राजनीतिक जागरुकता की दृष्टि से फ्रांस अत्यन्त उच्च श्रेणी का राष्ट्र है। अतः लोक प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था में विभिन्न दबाव समूहों का पर्याप्त सम्मानजनक

रुझान रहता है। विश्व भर में जारी आर्थिक उदारीकरण की प्रवृत्तियाँ फ्रांस में भी स्पष्ट प्रभाव दिखाने लगी हैं। 1 जनवरी, 1999 से फ्रांस में भी 'यूरो मुद्रा' प्रचलित हो गई है जो यूरोपीय संघ के राष्ट्रों के मध्य नए समीकरण बनाएगी।

नियंत्रण व्यवस्था (Control System)

फ्रांसिसी लोक प्रशासन अति उत्तम श्रेणी का माना जाता है जहाँ प्रशासनिक कार्यकुशलता, प्रतिबद्धता तथा स्थायित्व प्रमुख गुण हैं। स्पष्ट है ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था में नियंत्रण प्रणालियाँ भी सुस्थापित होती हैं। नियंत्रण की प्रभावी व्यवस्था के बिना प्रशासनिक कार्यकुशलता की अपेक्षा करना व्यर्थ है। फ्रांस में अग्रांकित पद्धतियों से प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है—

1. विधायी नियंत्रण।
2. कार्यपालिका-नियंत्रण।
3. जनमत एवं अन्य साधन।
4. अंकेक्षण द्वारा नियंत्रण।
5. न्यायिक नियंत्रण।

(1) **विधायी नियंत्रण :** पंचम् गणराज्य के वर्तमान संविधान के अनुसार फ्रांस में संसदीय तथा अध्यक्षीय दोनों प्रकार की शासन प्रणालियों का समावेश है। संसद के दोनों सदन (सीनेट एवं राष्ट्रीय सभा) समस्त राष्ट्रीय कानूनों को स्वीकृत करते हैं। सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट तथा नीतियों का अनुमोदन भी संसद ही करती है। यद्यपि फ्रांस की मंत्रिपरिषद् संसद का भाग नहीं होती है तथापि संसद की कार्यवाहियों में भाग लेना एवं सरकार का पक्ष प्रस्तुत करना उसका दायित्व है। मंत्रिपरिषद् को राष्ट्रीय सभा में विश्वास मिलना आवश्यक है क्योंकि मंत्रिपरिषद् राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी है। सरकार के किसी कार्यक्रम, नीति, योजना अथवा प्रशासनिक अकर्मण्यता के विरुद्ध संसद में प्रश्न पूछे जा सकते हैं तथा वाद-विवाद हो सकता है। संसदीय प्रश्न किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था को कटघरे में लाने के लिए अचूक अस्त्र सिद्ध हो सकते हैं। **संवैधानिक परिषद्** नामक सशक्त निकाय भी कानूनों, निर्वाचन तथा अन्य जटिल मुद्दों पर परामर्श देने के कार्य करती है।

(2) **कार्यपालिका-नियंत्रण :** कार्यपालिका के शीर्ष पर विराजमान राष्ट्रपति संविधान तथा राष्ट्रीय मूल्यों का संरक्षक होता है लेकिन प्रधानमंत्री एवं उनकी मंत्रिपरिषद् को संविधान द्वारा सरकार-संचालन का दायित्व सौंपा गया है। प्रत्येक मंत्री अपने विभाग एवं अधीनस्थ कार्यालयों पर नियंत्रण रखता है। मंत्रिपरिषद् की अध्यक्षता करते समय राष्ट्रपति महत्वपूर्ण प्रशासनिक विषयों पर सूचनाएँ माँग सकता है। लोक प्रशासन के कुशल संचालन हेतु निर्मित अधिनियम तथा नियम एवं कार्मिक आचार संहिता के माध्यम से भी कार्यपालिका नियंत्रण करती है। नियुक्ति एवं पदमुक्ति की शक्तियाँ सदैव सर्वोच्च सत्ता के हाथों में रहती हैं।

लोक प्रशासन पर **आन्तरिक नियंत्रण** बनाए रखने के लिए प्रत्येक मंत्रालय में महानिरीक्षक का पद होता है। यह अधिकारी अन्य निरीक्षकों के साथ (जैसे वित्तीय निरीक्षक) प्रशासनिक कार्यकलापों एवं वित्तीय अनियमितताओं पर कड़ी नजर रखता है। निरन्तर दौरों, आकस्मिक निरीक्षण तथा सूक्ष्म जाँच के द्वारा पकड़ में आने वाली अनियमितताओं, प्रशासनिक लापरवाहियों तथा भ्रष्टाचार के प्रकरण उच्चाधिकारियों तक प्रस्तुत किए जाते हैं जिन पर तत्काल कार्यवाही होती है। ये निरीक्षक प्रशासनिक तंत्र में सुधार के उपाय भी सुझा सकते हैं तथा इनके परामर्श को प्रायः स्वीकार किया जाता है क्योंकि वैधानिक दृष्टि से ये पद स्वतंत्रता प्राप्त तथा अधिकार सम्पन्न हैं।

(3) **जनमत एवं अन्य साधन :** अन्य यूरोपीय देशों की भाँति फ्रांस की जनता भी अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति पूर्ण सजग है अतः किसी भी सरकार के कार्यकरण का प्रमाण जनमत के रुझान से मिल जाता है। विगत कई दशकों से फ्रांस में किसी भी दल को लम्बे समय तक पूर्ण बहुमत नहीं मिला है। बहुधा राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री पृथक्-पृथक् दलों से सम्बद्ध होते हैं। मतदाताओं के इस चतुराई भरे जनमत के कारण शासनतंत्र अधिक कुशल तथा लोककल्याणकारी बना रहता है। संवैधानिक संशोधनों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण अवसरों पर लोक निर्णय (Refrendum) की व्यवस्था भी फ्रांस में प्रचलित है। जनता द्वारा राज्य परिषद् में दायर होने वाले मुकदमे भी प्रशासन पर नियंत्रण में सहायक सिद्ध होते हैं। सन् 1978 से **सूचना का अधिकार** भी प्रवर्तित है। स्वतंत्र प्रेस, दबाव समूह, विपक्षी राजनीतिक पार्टियाँ तथा पादरियों की सोख भी प्रशासन के लिए नियंत्रणकर्ता की भूमिका निभाती हैं। यद्यपि फ्रांस एक पंथ निरपेक्ष राष्ट्र है तथापि लगभग सभी नागरिक रोमन कैथोलिक हैं। किसी समय जर्मनी के अधीन रहे क्षेत्र में आज भी फ्रांस सरकार पादरियों (Clergy) की नियुक्ति करती है जो लोक सेवक ही माने जाते हैं। फ्रांस की सर्वोच्च गुप्तचर संस्था 'एस.डी.ई.सी.ई.' भी सरकारी तंत्र पर परोक्ष नियंत्रण करती है।

(4) **अंकेक्षण द्वारा नियंत्रण :** फ्रांसिसी संविधान का **अनुच्छेद-47** यह व्यवस्था करता है कि संसद एवं सरकार को वित्तीय कानूनों में पर्यवेक्षणीय सहायता देने के लिए एक अधिकारी एवं अधीनस्थ तंत्र होगा। यह तंत्र **कोर डेस काम्पेटेस** कहलाता है जो भारतीय नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के समान स्वतंत्र एवं संवैधानिक निकाय है। यह अधिकारी यह देखता है कि सरकारी आय-व्यय एवं लेखा संधारण उन कानूनों के अनुसार हो रहा है या नहीं, जिन्हें संसद ने पारित किया था। कोर डेस काम्पेटस की सहायतार्थ लेखा न्यायालय भी बने होते हैं जिनके सदस्य न्यायाधीश पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होते हैं।

(5) **न्यायिक नियंत्रण :** फ्रांस में न्यायिक नियंत्रण की प्रकृति भारत या अमेरिका से भिन्न है। फ्रांस में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था नहीं है लेकिन प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण रहता है। वस्तुतः फ्रांस में दोहरे कानून प्रचलित हैं। सामान्य कानूनों के

साथ-साथ प्रशासनिक कानून भी होने के कारण फ्रांस में प्रशासनिक न्यायालय भी पृथक से हैं। प्रशासनिक न्यायाधिकरण तथा राज्य परिषद् के रूप में कार्यरत ये प्रशासनिक न्यायालय जनता एवं प्रशासन के मध्य उठने वाले विवादों का निपटारा करते हैं। इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है—

राज्य परिषद्
(Counsell d' Etat)

फ्रांस में प्रशासनिक विधि (Administrative Law) का प्रचलन है अर्थात् वहाँ प्रशासनिक कार्यप्रणाली तथा शिकायतों या विवादों की सुनवाई सामान्य न्यायालयों में न होकर प्रशासनिक न्यायालयों में होती है। भारत, अमेरिका तथा ब्रिटेन इत्यादि देशों में 'विधि का शासन' है जहाँ कानून के समक्ष सभी समान हैं; लेकिन फ्रांस में कानून एक नहीं है अतः न्यायालय भी दो प्रकृति के हैं एवं उनकी कार्यप्रणाली तथा क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न हैं।

विकास (Evolution)

ऐसा माना जाता है कि तेरहवीं सदी में सम्राट को विधि एवं न्याय कार्यों में सहायता देने हेतु 'राजा की परिषद्' नामक संस्था हुआ करती थी जो राजकार्यों के विरुद्ध जनशिकायतें भी सुनती थी किन्तु सन् 1789 की क्रांति के समय राजतंत्र के पतन के साथ ही इस प्रकार की परिषद् भी दफन हो गई। शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि सरकार (कार्यपालिका) के कार्यों एवं निर्णयों की स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि न्यायपालिका का हस्तक्षेप कम किया जाए क्योंकि न्यायपालिका सरकारी सुधारों एवं व्यवस्थापिका के कानूनों के समय अनावश्यक बाधाएँ उत्पन्न करती है। सन् 1790 में संसद ने एक अधिनियम पारित करके न्यायपालिका से कार्यपालिका के निर्णयों की समीक्षा करने का अधिकार छीन लिया। लेकिन कार्यपालिका के कार्यों की जाँच हेतु एक निष्पक्ष संस्था की आवश्यकता सभी ने अनुभव की, अतः सन् **1799 में नेपोलियन बोनापार्ट** ने राज्य परिषद् तथा प्रीफेक्चर कौंसिलों की स्थापना की। नेपोलियन ने 91 प्रीफेक्चर कौंसिल बनाई थीं जो जिला स्तर (डिपार्टमेण्ट्स) पर एक अधिकारी (प्रीफेक्ट) के अधीन प्रशासनिक न्याय एवं नियंत्रण सहित केन्द्रीय सत्ता से समन्वय स्थापित करने का कार्य भी करती थीं। सन् 1952 में प्रीफेक्चर कौंसिल का नाम प्रशासनिक न्यायाधिकरण (Tribunaux Administratifs) कर दिया तथा वर्तमान में इनकी संख्या 23 है।

इस प्रकार फ्रांस में प्रशासनिक न्यायालयों के दो स्तर हैं—

1. प्रशासनिक न्यायाधिकरण—प्रारम्भिक स्तर/स्थानीय।
2. राज्य परिषद्—अपील/राष्ट्रीय।

संगठन (Organisation)

प्रारम्भिक एवं निचले स्तर पर प्रशासनिक निर्णयों के विरुद्ध वादों के निपटारे के लिए

प्रशासनिक न्यायाधिकरण हैं। इनकी संख्या सन् 1926 से 23 है तथा इनमें एक अध्यक्ष एवं 4 या 5 सदस्य होते हैं। इन पदाधिकारियों की नियुक्ति आन्तरिक एवं विकेन्द्रीकरण विभाग के मंत्री द्वारा की जाती है। प्रत्येक न्यायाधिकरण के अधीन एक या कुछ डिपार्टमेण्ट्स (अर्थात् जिले) होते हैं। स्थानीय निकायों के कार्यकरण, निर्णयों, निर्माण कार्यों, करों के आरोपण तथा चुनावों से सम्बन्धित विवाद न्यायाधिकरण निपटाते हैं। इनके निर्णयों के विरुद्ध अपील राज्य परिषद् में की जा सकती है।

राज्य परिषद् का मुख्यालय पेरिस में है। यह प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध अपील तथा निर्धारित सूची के विषयों पर प्रारम्भिक मुकदमों की सुनवाई करती है। राज्य परिषद् में एक अध्यक्ष, फ्रांस का विधि एवं न्यायमंत्री ही होता है। पदेन अध्यक्ष के रूप में विधि एवं न्यायमंत्री बहुत कम समय राज्य परिषद् को देता है। केवल अति गम्भीर मामलों में अध्यक्ष की भूमिका निर्णायक होती है अन्यथा राज्य परिषद् के अन्य सदस्य तथा अधिकारी अधिसंख्य मामलों का निस्तारण कर देते हैं। परिषद् में लगभग 220 सदस्य हैं। अधिकांश सदस्य साधारण सदस्यों की श्रेणी में आते हैं जबकि अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, परिषद् के सम्भागाध्यक्ष तथा कतिपय अन्य विशेषज्ञ इसके असाधारण सदस्य माने जाते हैं। राज्य परिषद् में **एक उपाध्यक्ष** होता है जो फ्रांस की लोक सेवाओं का वरिष्ठतम अधिकारी होता है। उपाध्यक्ष का यह दायित्व है कि राज्य परिषद् एवं इसके सहयोगी प्रशासनिक न्यायाधिकरणों का प्रशासन भलीभाँति संचालित होता रहे एवं वादों का निस्तारण शीघ्रता से हो।

राज्य परिषद् का आन्तरिक ढाँचा कई सम्भागों जैसे—परामर्शकारी सम्भाग, न्यायिक सम्भाग, मुकदमा सम्भाग तथा प्रशासन सम्भाग इत्यादि में विभक्त है। प्रत्येक सम्भाग का

फ्रांस में राज्य परिषद् का संगठनात्मक ढाँचा

अध्यक्ष (विधि एवं न्यायमंत्री)

↓

उपाध्यक्ष (वरिष्ठतम लोक सेवक)

↓

सम्भागीय अध्यक्ष

↓

कौंसिलर्स

↓

मैट्रे-डेस-रिक्वेट्स

↓

ऑडीटर

↓

अन्य प्रशासनिक अधिकारी/कर्मचारी

एक अध्यक्ष होता है। अध्यक्ष की सहायतार्थ कई अधिकारी जैसे—कौंसिलर, मैट्रे-डेस-रिक्वेट्स तथा ऑडिटर इत्यादि होते हैं। इस प्रकार एक सम्भाग में लगभग 30-40 सदस्य एवं वरिष्ठ पदाधिकारी होते हैं। ऑडीटर, मैट्रे-डेस-रिक्वेट्स तथा रैपर्टियर अपने-अपने सम्भाग से सम्बन्धित मामलों की प्राथमिक प्रशासनिक प्रक्रियाएँ सम्पादित करते हैं। ये अधिकारी राज्य परिषद् के कार्यों में पुलिस, न्यायालय या शोध संस्था के कुशल अन्वेषणकर्ताओं की भूमिका निभाते हैं।

शक्तियाँ (Powers)

राज्य परिषद् को न्यायिक कार्यवाही सम्पादित करने के लिए सन् 1790 के एवं अन्य संसदीय कानूनों के द्वारा पर्याप्त शक्तियाँ दी गई हैं। दायर किए जाने वाले मुकदमों की सुनवाई हेतु सम्मन भेजना, गवाही लेना तथा निर्णय देना जिसमें क्षतिपूर्ति के आदेश भी सम्मिलित हैं, राज्य परिषद् के अधिकार क्षेत्र में हैं। राज्य परिषद् के निर्णय सरकार के लिए बाध्यकारी होते हैं तथा इसके निर्णयों के विरुद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकती है। इस प्रकार प्रशासकीय न्यायालयों में यह सर्वोच्च न्यायालय है।

कार्य (Functions)

राज्य परिषद् के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं—

1. प्रशासनिक कानूनों के क्रियान्वयन के सन्दर्भ में हुई अनियमितताओं, देरी, अन्याय तथा भ्रष्टाचार के वे मुकदमे निपटाना जो इसकी परिधि में रखे गए हैं।
2. प्रशासनिक न्यायाधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों के विरुद्ध दायर की गई अपीलों की सुनवाई करना।
3. प्रशासनिक संगठनों, अधिकारियों, आदेशों, निर्णयों तथा कानूनों के सन्दर्भ में नागरिक अधिकारों के उल्लंघन के मामलों का निर्णय करना।
4. आम जनता तथा प्रशासन के मध्य समस्त प्रकार के विवादों का निस्तारण करना।
5. विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक संगठनों, कार्यालयों, पदाधिकारियों तथा प्रक्रियाओं के कारण होने वाले विवादों का निपटारा करना।
6. संविधान के **अनुच्छेद-39** के अन्तर्गत सरकारी विधेयकों को संसद में प्रस्तुत करने से पूर्व मंत्रिपरिषद् को यथावश्यक परामर्श देना।
7. राष्ट्र के सर्वोच्च प्रशासनिक न्यायालय के रूप में कार्य करना तथा सरकार को प्रशासनिक कानूनों के सन्दर्भ में समुचित परामर्श प्रदान करना।

कार्यक्षेत्र (Jurisdiction)

राज्य परिषद् तथा प्रशासनिक न्यायाधिकरण (जो स्थानीय स्तर पर होते हैं) के क्षेत्राधिकार में बँटवारा किया गया है ताकि आम जनता सीधे ही प्रत्येक मुकदमे को राज्य परिषद् में

दायर न करे। स्थानीय प्रकृति जैसे—करारोपण, सफाई, सार्वजनिक शिक्षा, निर्माण कार्य तथा पेयजल इत्यादि क्षेत्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में वाद योग्य हैं जबकि अन्य बड़े मुकदमे सीधे ही राज्य परिषद् में दायर किए जा सकते हैं। राज्य परिषद् के क्षेत्राधिकार में अपील मामले भी आते हैं।

वैधानिक शक्तियों के अतिक्रमण, परस्पर विरोधी कार्य, गैर फ्रांसिसी क्षेत्रों से सम्बन्धित कानूनी कार्य तथा अत्यधिक राशि के मामलों में राज्य परिषद् ही सुनवाई करती है। राज्य परिषद् तथा प्रशासनिक न्यायाधिकरण निम्नांकित मामलों में कार्यवाही नहीं कर सकते हैं—

1. साधारण न्यायालयों के कार्य-संचालन, न्यायिक पुलिस के कार्य तथा न्यायाधीशों द्वारा की जाने वाली जाँच-पड़ताल।
2. नागरिकों की स्वतंत्रता से सम्बन्धित मामले (ऐतिहासिक कारणों से इनकी सुनवाई हमेशा सामान्य न्यायालय करते हैं, चाहे मामला लोक सेवा से सम्बन्धित क्यों न हो)।
3. राष्ट्रीयकृत उद्योगों या लोक उपक्रमों से सम्बन्धित मामले।

यदि किसी मामले पर यह निर्धारण न हो पाए कि वह प्रशासकीय न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में आता है अथवा सामान्य न्यायालयों के; तो ऐसी परिस्थिति में एक **विशेष न्यायालय** (Tribunaux des Conflictus) निर्णय करता है। इस विशेष न्यायालय में सामान्य कानूनों के सर्वोच्च न्यायालय तथा प्रशासनिक कानूनों की राज्य परिषद् से आधे-आधे सदस्य लिए जाते हैं। वस्तुतः फ्रांसिसी राज्य परिषद् इतनी सशक्त तथा व्यापक क्षेत्राधिकार वाली कोर्ट है जिसमें राष्ट्रपति से लेकर निम्नतम कर्मचारी तक के विरुद्ध वाद लाया जा सकता है। युद्ध, आन्तरिक या बाहरी संकट, आपातकालीन स्थितियों तथा कतिपय विशिष्ट कार्यों के सन्दर्भ में राष्ट्रपति के विरुद्ध परिषद् में वाद दायर नहीं किया जा सकता है।

आधार (Bases)

राज्य परिषद् एवं प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में आने वाले मुकदमों या वादों की सुनवाई मुख्यतः दो आधारों पर होती है। प्रथम प्रकार के अभियोग वे हैं जिनमें किसी प्रशासनिक कार्य या निर्णय को गैर कानूनी मानकर चुनौती दी जाती है। दूसरे प्रकार के अभियोग वे हैं जो किसी प्रशासनिक निर्णय को इस आधार पर चुनौती देते हैं कि उस निर्णय से किसी विशिष्ट नागरिक अधिकार का हनन हुआ है। कार्यवाही के दौरान राज्य परिषद् यह देखती है कि—

1. क्या किसी प्रशासनिक कानून, आदेश, नियम, अध्यादेश या परम्परा का उल्लंघन हुआ है?
2. क्या व्यक्ति के मौलिक अधिकारों पर चोट पहुँचती है?

3. क्या समुचित एवं निर्धारित प्रक्रियानुसार प्रशासनिक निर्णय हुआ था?
4. क्या निर्णयकर्ता या आदेशकर्ता अधिकारी उस कृत्य के लिए सक्षम प्राधिकारी है?
5. क्या प्रशासनिक निर्णय या आदेश से घोर अनियमितता या भेदभाव प्रकट होता है?
6. क्या लोक सेवक के कृत्य से किसी नागरिक को आर्थिक या मानसिक हानि हुई है?

कार्यप्रणाली (Working)

राज्य परिषद् तथा अन्य प्रशासनिक न्यायाधिकरणों द्वारा स्वयं पहल करके कोई कार्यवाही नहीं की जाती है बल्कि पीड़ित पक्ष को स्वयं इन न्यायालयों में आना होता है। यद्यपि शिकायत डाक से भी भेजी जा सकती है। एक निर्धारित प्रपत्र में मुकदमा या शिकायत प्रस्तुत करनी पड़ती है। वादी को प्रशासनिक निर्णय के क्रम में विस्तारपूर्वक अपना पक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है जिसमें यह बताना आवश्यक है कि उसने किस आधार पर न्यायालय की शरण ली है। इस सम्बन्ध में सभी आवश्यक दस्तावेज एवं प्रमाण संलग्न करने पड़ते हैं। मुकदमे के पंजीकरण एवं सुनवाई हेतु थोड़ा-सा प्रशासनिक शुल्क भी अदा करना पड़ता है। यदि मुकदमे का निर्णय वादी के पक्ष में हो जाता है तो लिया गया प्रशासनिक शुल्क वापिस कर दिया जाता है। प्राप्त हुए वाद या अपील का सम्बन्धित सम्भाग के ऑडीटर सूक्ष्मता से परीक्षण करते हैं तथा विधि विशेषज्ञ एवं वकील इत्यादि मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। इसके पश्चात् सम्बन्धित विभाग या कार्यालय से विस्तृत विवरण माँगा जाता है। दोनों पक्षों की सुनवाई के पश्चात् जूरी द्वारा निर्णय दिया जाता है। इस क्रम में वादी को क्षतिपूर्ति यदि आवश्यक प्रतीत हो, तो दिलवाने के आदेश भी प्रसारित किए जाते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राजकार्यों के दौरान होने वाली गलतियों की भरपाई सरकार करती है किन्तु कोई कृत्य पूर्णतया लोक सेवक की व्यक्तिगत त्रुटि या व्यवहार का परिणाम होता है तो उसकी क्षतिपूर्ति एवं दण्ड का भार सम्बन्धित लोक सेवक को ही वहन करना पड़ता है।

सारांशत: राज्य परिषद् की कार्यप्रणाली अत्यन्त लोकप्रिय तथा विश्वसनीय मानी जाती है। फ्रांस की लोक सेवाओं में प्रवेश पाने वाले प्रत्येक युवा की प्रथम पसन्द राज्य परिषद् में स्थान पाना होता है। प्रशासनिक न्यायालयों के कार्मिक चूँकि लोक सेवक माने जाते हैं अत: उन पर लोक सेवा अधिनियम के समस्त प्रावधान लागू होते हैं। प्रशासनिक न्यायाधिकरणों, राज्य परिषद् तथा अन्य मंत्रालयों के लोक सेवक परस्पर स्थानान्तरित भी हो सकते हैं लेकिन व्यवहार में इसकी कई बाध्यताएं हैं। फ्रांस में नागरिक अधिकारों के संरक्षण, प्रशासनिक जवाबदेयता तथा कार्यकुशलता में वृद्धि के क्रम में राज्य परिषद् ने नियंत्रणकर्ता, परामर्शदाता, समन्वयकर्ता तथा संरक्षक की भूमिका सफलतापूर्वक निर्वाहित की है।

सन्दर्भ

1. जॉन आरदेघ, **न्यू फ्रेंच रिवोल्यूशन एण्ड सोशियल एण्ड इकोनॉमिक सर्वे ऑफ फ्रांस (1945-1968)**, लन्दन, 1969
2. फ़ैरेल हैडी, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: ए कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव**, एन.जे. प्रेन्टिस हाल, एंगलवुड क्लिफ़, 1966
3. एलेक्स डी. टाकविल, **द ओल्ड रिज़ीम एण्ड द फ्रेंच रिवोल्यूशन**, एंकर, न्यू यॉर्क, 1958
4. एफ. रिडले एवं जे. ब्लोन्डेल, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन फ्रांस**, राउटलेज एण्ड केगन पॉल, लन्दन, 1963
5. निकोल डी. मोण्ट्रीचर, **लोकल गवर्नमेण्ट इन फ्रांस**, (लोकल गवर्नमेण्ट इन ब्रिटेन, फ्रांस एण्ड अमेरिका, द्वारा प्रो. होशियार सिंह, किताब महल, नई दिल्ली, 1997)
6. **लोकल गवर्नमेण्ट पर्सोनेल सिस्टम**, संयुक्त राष्ट्र, न्यू यॉर्क, 1966 (एस.टी./टी.ए.ओ./एम./33)

•••

6

चीन की प्रशासनिक व्यवस्था
(Administrative System in China)

दुनिया की सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश चीन, अति प्राचीनकाल से ही समृद्ध सभ्यता एवं संस्कृति का धनी रहा है। विश्व की लगभग एक चौथाई जनसंख्या चीन में निवास करती है अतः चीनी एवं कबीलाई भाषा बोलने वालों की संख्या विश्व में सर्वाधिक (117 करोड़) है। ऐसा माना जाता है कि सिंधुघाटी, सुमेरियन तथा मिस्र की सभ्यताओं के पश्चात् 2850 ई.पू. में चीन में पारम्परिक सभ्यता-जीवन की शुरुआत हुई। ई.पू. 2200 में यहाँ हंसिया राजवंश, ई.पू. 1027 में चाऊ राजवंश की स्थापना हुई तथा ई.पू. 221 में शीह हुआंग तीह ने समस्त चीनी राज्यों पर विजय पताका फहराई। ई.पू. 214 में **चीन की दीवार** का निर्माण किया गया। चीन की उत्तरी सीमा पर स्थित 3,219 किलोमीटर लम्बी यह दीवार न केवल विश्व का घोर आश्चर्य है बल्कि अन्तरिक्ष से पृथ्वी की मात्र एक यही वस्तु दिखाई देती है। यांगटिसी क्यांग (5,980 कि.मी.) तथा हेवांग हो (4,845 कि.मी.) यहाँ की विश्व प्रसिद्ध नदियाँ हैं।

कागज (105 ई. पू.), यांत्रिक घड़ी (1725 ई.), रेशम उत्पादन (50 ई.पू.) तथा प्रथम मुद्रित पुस्तक (868 ई.) के आविष्कार का श्रेय चीन को ही जाता है। इसके अतिरिक्त चाय, चावल, सूती वस्त्र तथा टंगस्टन की जन्मस्थली भी चीन को ही माना जाता है। ईस्वी सन् 6 में यहाँ लोक सेवाओं का विकास प्रारम्भ हो चुका था। ईस्वी पूर्व 551 में जन्मे कन्फ्यूशियस (कुंग फू सु या कन्फूत्स) विश्व प्रसिद्ध सन्त एवं दार्शनिक थे जिनकी शिक्षाओं ने चीनियों को सदैव नैतिक बल प्रदान किया है। सन् 1908 में मंचू राजवंश की बूढ़ी राजमाता तथा उसके भतीजे सम्राट दोनों के मरने के पश्चात् राजतंत्र विरोधी भावना प्रबल हो गई। फलस्वरूप कुओ-मिन-तांग दल ने सन् 1911 में विश्व प्रसिद्ध चीनी क्रांति की तथा मध्य एवं दक्षिणी चीन गणराज्य घोषित कर दिए गए। प्रथम राजधानी नानकिंग बनी तथा डॉ. सनयात सेन प्रथम राष्ट्रपति बने। सन् 1949 में जनरल

माओत्से तुंग तथा चाऊ एन लाई के नेतृत्व में च्यांग काई शेक को हटा चीन में साम्यवादी सरकार बनी तथा च्यांग काई शेक फारमूसा (ताइवान) भाग गया। इस प्रकार जनवादी चीन गणराज्य अस्तित्व में आया। एक जुलाई, 1997 को ब्रिटेन से **हांगकांग** तथा 19 दिसम्बर, 1999 को पुर्तगाल से **मकाऊ** द्वीप प्राप्त कर चीन सुदृढ़ हुआ है।

चीन : एक परिचय

राजधानी	—	बीजिंग
क्षेत्रफल	—	95,61,000 वर्ग किलोमीटर
जनसंख्या	—	137 करोड़ (सन् 2011)
भाषा	—	चीनी (मन्दारिन)
साक्षरता	—	86 प्रतिशत (सन् 2005)
धर्म	—	बौद्ध तथा ताओ धर्म
मुद्रा	—	युआन (एक अमेरिकी डॉलर = 8.11 युआन)
प्रति व्यक्ति आय	—	5,530 डॉलर
राष्ट्रीय दिवस	—	1 अक्टूबर (स्थापना दिवस)

चावल, चाय, रेशम, गन्ना, जूट, सोयाबीन, मूँगफली तथा यीक और टिंग वन तेलों के लिए प्रसिद्ध चीन एक कृषि प्रधान देश है। सूती, ऊनी तथा रेशमी कपड़े, लोहा, चमड़ा तथा बिजली के उपकरण मुख्य उद्योग हैं। अन्तरिक्ष तथा आणविक विज्ञान में उन्नत चीन एक शक्ति के रूप में उभर रहा है। क्षेत्रफल की दृष्टि से अत्यन्त विशाल चीन में 22 प्रांत, 5 स्वायत्तशासी क्षेत्र, 2 विशेष क्षेत्र तथा चार नगर क्षेत्र हैं जिनमें— पीकिंग, शंघाई एवं तीण्टसिन प्रमुख हैं। शंघाई शहर चीन की वाणिज्यिक राजधानी माना जाता है। अपने नागरिकों में देशभक्ति की भावना प्रोत्साहित करने के लिए चीन, प्रतिवर्ष 7 सितम्बर को 'राष्ट्रीय सुरक्षा दिवस' मनाता है।

भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ मिलकर चीन के प्रधानमंत्री द्वारा सन् 1954 में **पंचशील** सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था जो निम्नांकित थे—

- प्रत्येक देश द्वारा अन्य देशों की प्रभुसत्ता तथा क्षेत्रीय एकता का सम्मान करना;
- एक-दूसरे पर आक्रमण न करना;
- एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना;
- परस्पर समानता एवं सद्भाव बनाए रखना; तथा
- शांतिपूर्ण सह अस्तित्व तथा आर्थिक सहयोग बनाए रखना।

लेकिन सन् 1962 में चीन द्वारा भारत पर किए गए आक्रमण से इस सिद्धान्त की धज्जियाँ उड़ा दी गईं। दूसरी ओर एक सामान्य चीनी भारतीयों (इन्दुरन) को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है क्योंकि बुद्ध (चीनी भाषा में शाक्य मुनि) की भूमि को चीनी समाज पवित्र मानता है। दूसरी ओर 4 जून, 1989 को लोकतांत्रिक अधिकारों की माँग कर रहे हजारों छात्रों पर बीजिंग के थ्येन आन मन चौक पर गोलियाँ [illegible]

लगभग एक हजार छात्र मारे गए थे। सैद्धान्तिक रूप से चीनी शासन व्यवस्था संसदीय लोकतंत्र पर आधारित लोकप्रिय प्रणाली दिखाई देती है किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। विशाल भौगोलिक आकार, विपुल जनसंख्या तथा क्रांतिकारी इतिहास सहित साम्यवादी व्यवस्था में चीनी प्रशासन आज भी न्यूनाधिक मात्रा में तानाशाही प्रवृत्तियाँ लिए हुए है। **नेपोलियन बोनापार्ट** ने चीन के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए कहा था—''यह एक सोया हुआ दानव है, इसे सोने दो, अन्यथा जब यह जागेगा तो संसार को हिला देगा।''

संवैधानिक विकास (Constitutional Development)

माओत्से तुंग के नेतृत्व में 1 अक्टूबर, 1949 को चीन के जनवादी गणराज्य की स्थापना से लेकर अद्यतन कई बार संविधान परिवर्तित हो चुके हैं। सर्वप्रथम 4 नवम्बर, 1954 को सोवियत संघ के मॉडल पर **जनवादी चीन** (People's Republic of China) जिसे चीनी भाषा में 'Zhoaghuta Renmin Gonghe Guo' कहते हैं, का संविधान निर्मित हुआ जिसका आधार 'जनवादी लोकतांत्रिक अधिनायक' था। इस दौरान चीन में लोकतांत्रिक केन्द्रवाद के अन्तर्गत व्यवस्था संचालित होती रही। सन् 1975 में चीन की संसद द्वारा नया संविधान अपनाया गया। **मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद** के संयुक्त साम्यवादी दर्शन पर आधारित इस संविधान में चार अध्याय तथा 30 अनुच्छेद थे। संविधान में कहा गया था कि चीन का जनवादी गणराज्य, सर्वहारा वर्ग के अधिनायक का समाजवादी राज्य है। संविधान में साम्यवादी दल को नेतृत्व का केन्द्रबिन्दु वर्णित किया गया था। सन् 1976 में माओत्से तुंग की मृत्यु के पश्चात् चीन के नए शासकों ने संविधान में पुनः व्यापक संशोधन की इच्छा प्रकट की। अतः 5 मार्च, 1978 को चीन ने नया संविधान लागू किया जिसमें 60 अनुच्छेद थे। शासन की समस्त शक्तियाँ जनता में निहित करते हुए **अनुच्छेद-1** में कहा गया था—''जनवादी चीन सर्वहारा वर्ग की तानाशाही वाला एक समाजवादी राज्य है जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथों में है और श्रमिकों तथा कृषकों के बीच अटूट मैत्री के सम्बन्ध विद्यमान हैं।'' **अनुच्छेद-2** में शासन के तीनों अंगों तथा जीवन के समस्त क्षेत्रों में साम्यवादी दल का एकाधिकार स्वीकार किया गया। चीन के इस तीसरे संविधान के निर्माण के कुछ समय पश्चात् ही यह अनुभव होने लगा कि परिवर्तित अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों तथा सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के अनुरूप चीन के संवैधानिक ढाँचे में संशोधन की आवश्यकता है। अतः सन् 1978 में संविधान पर विचार करने के लिए 'पुनरीक्षण समिति' गठित की गई। इस समिति की अनुशंसा पर **4 दिसम्बर, 1982 को नया संविधान** लागू हुआ जो वर्तमान में प्रवर्तित है। नए संविधान के अनुसार चीन में शोषक वर्ग समाप्त हो चुका है तथा वर्ग संघर्ष की स्थिति भी नहीं है। यह मान्यता माओत्से तुंग की उस मान्यता के विपरीत है जिसमें कहा गया था कि सतत् क्रांति साम्यवाद की मूल आवश्यकता है। नए संविधान में पुनः राज्याध्यक्ष पद सृजित कर दिया गया है जो बीच में समाप्त कर दिया गया था।

जनवादी चीन के संविधान की मुख्य विशेषताएँ (Salient Features of Constitution of the People's Republic of China)

सन् 1982 में बना चीन का नया संविधान पूर्व के संविधानों की तुलना में अधिक परिष्कृत तथा समयानुकूल संशोधित संविधान है जिसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(1) लिखित तथा संक्षिप्त संविधान : जनवादी चीन के वर्तमान संविधान में चार अध्याय तथा 138 अनुच्छेद हैं। संविधान के प्रथम अध्याय में सामान्य सिद्धान्तों, दूसरे अध्याय में नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा कर्तव्यों, तीसरे अध्याय में राज्य की संरचना तथा चौथे अध्याय में राष्ट्र ध्वज, राज्य चिह्न एवं राजधानी का वर्णन किया गया है। यद्यपि यह संविधान सन् 1975 तथा सन् 1978 के संविधानों की तुलना में व्यापक है किन्तु विश्व के अन्य देशों की तुलना में इसे संक्षिप्त ही कहा जाएगा। चीन का संविधान 'निर्मित संविधान' है क्योंकि इसकी रचना विशेष रूप से गठित एक समिति द्वारा की गई है।

(2) सैद्धान्तिक रूप से कठोर लेकिन व्यावहारिक रूप से लचीला संविधान : चीन का संविधान न तो बहुत कठोर कहा जा सकता है और न ही पूर्णतया लचीला माना जा सकता है बल्कि मध्यम श्रेणी का है। संविधान के **अनुच्छेद-64** के अनुसार, संशोधन का प्रस्ताव राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की स्थायी समिति द्वारा या जनवादी कांग्रेस के 1/5 सदस्यों द्वारा लाया जा सकता है जो राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के कुल सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृत होना आवश्यक है। यह प्रक्रिया सैद्धान्तिक रूप से कठोर प्रतीत होती है लेकिन वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस में एकदलीय स्थिति होने के कारण दो तिहाई बहुमत सरलता से प्राप्त हो जाता है। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस ही साधारण कानूनों का निर्माण करती है जिनके लिए साधारण बहुमत ही पर्याप्त होता है।

(3) जनवादी लोकतांत्रिक तानाशाही : वर्तमान संविधान के **प्रथम अनुच्छेद** में कहा गया है कि—''जनवादी चीन, जनवादी लोकतांत्रिक तानाशाही वाला एक समाजवादी राज्य है, जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग के हाथों में है और जहाँ श्रमिकों तथा किसानों के बीच अटूट मैत्री के सम्बन्ध विद्यमान हैं।'' यहाँ जनवादी लोकतांत्रिक तानाशाही से आशय उस व्यवस्था से है जिसमें शासन के प्रत्येक स्तर पर किसान, श्रमिक तथा निम्न वर्ग के लोग अपने विधानमण्डलों के माध्यम से सरकारी तंत्र पर नियंत्रण रखते हैं। तानाशाही शब्द केवल आधिपत्य स्थापित करने से सम्बन्धित नहीं है बल्कि यह इस तथ्य को रेखांकित करता है कि चीन में अल्पसंख्यक पूँजीपतियों, जमींदारों एवं धनिकों पर बहुसंख्यक किसान एवं श्रमिक नियंत्रण करते हैं। अतः कहा जाता है कि श्रमिकों की तानाशाही, पूँजीपतियों की तानाशाही की तुलना में अधिक लोकतांत्रिक एवं समाजोपयोगी रहती है।

(4) जनवादी गणतंत्र : संविधान के **अनुच्छेद-2** के अनुसार चीन के जनवादी

गणतंत्र में सम्पूर्ण सत्ता जनता में समाहित है। जनता अपनी सत्ता का प्रयोग राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा स्थानीय स्तर पर गठित विधानमण्डलों के माध्यम से करती है। जनता अपने शासकों का चयन करती है तथा प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाते हुए सत्ता में भागीदारी निभाती है। **अनुच्छेद-3** स्थानीय स्तरों पर निर्वाचित जनप्रतिनिधियों से युक्त जन कांग्रेस का प्रावधान करता है। यह व्यवस्था पूर्व के संविधानों में नहीं थी।

(5) लोकतांत्रिक केन्द्रवाद : चीनी संविधान तथा शासन व्यवस्था की यह अनूठी विशेषता है जो लोकतंत्र तथा केन्द्रीकरण की दो विपरीत मान्यताओं के मध्य समन्वय स्थापित करती है। संविधान का **अनुच्छेद-3** यह उपबन्ध करता है कि—"चीन के सभी शासकीय अंग, लोकतांत्रिक केन्द्रवाद के सिद्धान्त का पालन करें।" चूँकि शासन की समस्त शक्तियाँ जनता में निहित हैं अतः यह लोकतांत्रिक स्वरूप है लेकिन साथ में **शासन का प्रत्येक स्तर तथा अंग अपने उच्च अंग के अधीन है,** अतः केन्द्रीकरण भी विद्यमान है। चीनी शासन व्यवस्था मूलतः केन्द्रवादी है जिसमें समस्त शक्तियाँ एक स्थान पर केन्द्रित हैं। क्षेत्रीय या अधीनस्थ विधानमण्डलों एवं प्रशासनिक इकाइयों को केवल दैनन्दिन कार्यों को सम्पादित करने योग्य शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। साम्यवादी दल ही सत्ता का केन्द्र है।

(6) एकात्मक शासन व्यवस्था : भौगोलिक तथा जनसांख्यिकीय दृष्टि से चीन एक विशाल राष्ट्र है किन्तु आदिकाल से ही चीन में प्रायः एकात्मक शासन व्यवस्थाएँ प्रवर्तित रही हैं। जब किसी शासन व्यवस्था का संचालन एक ही स्तर से होता हो तथा अन्य इकाइयाँ अधीनस्थ के रूप में कार्य करती हों तो वह शासन व्यवस्था एकात्मक (Unitary) प्रकृति की होती है। यद्यपि चीन में अनेक प्रांत तथा स्वायत्तशासी क्षेत्र हैं लेकिन शासन प्रणाली भारत, कनाडा, आस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैण्ड तथा अमेरिका की भाँति संघीय प्रकृति की नहीं है। संविधान की प्रस्तावना में चीन को एकात्मक शासन प्रणाली तथा बहुराष्ट्रीयताओं से युक्त राज्य कहा गया है। लोकतांत्रिक केन्द्रवाद की मान्यता तथा एकात्मक शासन पद्धति को अपनाते हुए भी चीन में क्षेत्रीय प्रशासन निम्नानुसार वर्गीकृत है—

प्रांत, स्वायत्तशासी प्रदेश तथा केन्द्र के अधीन नगर निगम

↓

जिले, स्वायत्तशासी जिले तथा नगर

↓

कम्यून तथा टाउन

चीन में स्वायत्तशासी प्रांत तथा जनपद उन क्षेत्रों में बनाए गए हैं जहाँ विभिन्न राष्ट्रीयताओं से युक्त अल्पसंख्यकों का निवास है। **अनुच्छेद-31** राज्य को नए एवं विशेष प्रशासनिक क्षेत्रों के निर्माण की शक्तियाँ प्रदान करता है।

(7) मौलिक अधिकार एवं कर्तव्य : चीन के वर्तमान संविधान के अध्याय-दो के अन्तर्गत **अनुच्छेद-33-56** में नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। **अनुच्छेद-33** सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समान स्वीकारता है तथा लिंग, सम्पत्ति, वंश, जाति, नस्ल, शिक्षा, धर्म, निवास तथा व्यवसाय इत्यादि के आधार पर असमानता को अस्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को चुनाव लड़ने, भाषण, पत्राचार तथा प्रेस की स्वतंत्रता, धार्मिक विश्वास की स्वतंत्रता, व्यक्तिगत हितों की रक्षा, आलोचना करने की स्वतंत्रता, काम करने या रोजगार पाने की गारण्टी, विश्राम तथा अवकाश की सुनिश्चितता, वृद्धावस्था एवं शारीरिक अयोग्यता के समय भरण-पोषण, शिक्षा प्राप्ति, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा कलात्मक कार्यों को करने की स्वतंत्रता के मूल अधिकार प्रदान किए गए हैं। **अनुच्छेद-48** विशेष रूप से महिलाओं को पुरुषों के समान मानने तथा अवसर प्रदान करने का अधिकार देता है। संविधान के द्वारा वैवाहिक जीवन, परिवार, मातृत्व तथा शिशु कल्याण का दायित्व सरकार के कंधों पर डालते हुए स्त्रियों एवं बच्चों के प्रति शोषण, अत्याचार तथा दुर्व्यवहार की मनाही की गई है। विदेशियों को चीन में शरण लेने का अधिकार प्रदान किया गया है जो किन्हीं कारणों से प्रताड़ित हुए हों। मार्च, 2004 में किए गए संविधान संशोधन (चौथा) के पश्चात् चीन में भी **निजी सम्पत्ति का अधिकार** दे दिया गया है। इसी संशोधन के द्वारा **'मार्शल लॉ' के स्थान पर 'आपात स्थिति' लगाने का प्रावधान** भी कर दिया गया है। मौलिक अधिकारों के साथ-साथ नागरिकों के **कर्तव्य** भी संविधान में वर्णित किए गए हैं। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य बताया गया है कि वह राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को सुनिश्चित रखे, संविधान एवं राष्ट्रीय कानूनों का पालन करे, मातृभूमि की रक्षा करे, प्रतिष्ठा तथा राष्ट्रीय हितों की रक्षा करे, देश पर होने वाले आक्रमणों का प्रतिरोध करे, अवसर आने पर प्रसन्नतापूर्वक सेना में भर्ती हो, नियमानुसार करों का भुगतान करे तथा काम पाने के अधिकार को अपना कर्तव्य समझ योगदान करे। **संविधान का अनुच्छेद-49 प्रत्येक दम्पत्ति से यह अपेक्षा करता है कि वह परिवार नियोजन को अपनाए।**

(8) बहुराष्ट्रीयताओं का राज्य : भारत की भाँति चीन भी सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध राष्ट्र है। चीन में 56 राष्ट्रीयताओं से युक्त नागरिक निवास करते हैं। सर्वाधिक (93.3%) **हान संस्कृति** के नागरिक हैं। अन्य राष्ट्रीयताओं के नागरिक अल्पसंख्यक हैं अतः उन सभी की भाषा, लिपि, सभ्यता एवं संस्कृति सहित परम्पराओं को सुरक्षित रखने एवं समान व्यवहार करने के लिए संवैधानिक उपबन्ध किए गए हैं। साम्यवादी व्यवस्था में 'धर्म' का कोई स्थान नहीं है किंतु अक्टूबर, 2007 के निर्णय के पश्चात् चीन के संविधान में परिवर्तन कर **धर्म को मान्यता दी जा चुकी है।**

(9) समाजवादी अर्थव्यवस्था : चीन का संविधान सामाजिक-आर्थिक न्याय एवं समानता को सुनिश्चित करने के लिए संसाधनों के समान वितरण एवं शोषण से मुक्ति

का प्रावधान करता है। उत्पादन के साधनों पर सरकार तथा जनता का स्वामित्व है। यह स्वामित्व सम्पूर्ण जनता द्वारा समाजवादी स्वामित्व तथा श्रमजीवी जनता द्वारा समाजवादी स्वामित्व के रूप में है जो मूलतः सामूहिक स्वामित्व को स्वीकारता है। अधिकांश उद्यम एवं कृषि, राज्य द्वारा निर्देशित एवं नियंत्रित हैं। कम्यूनों के द्वारा सामूहिक कृषि होती है तथा बड़े उपक्रम (औद्योगिक) सरकार द्वारा संचालित हैं। **अनुच्छेद-12** के अनुसार समाजवादी सम्पत्ति की चोरी, हानि तथा ऐसी योजनाओं एवं अर्थव्यवस्था को नकारना दण्डनीय अपराध है। साथ ही **अनुच्छेद-13** राज्य के माध्यम से नागरिकों को कानून के अनुसार अर्जित व्यक्तिगत आय, बचत, मकान इत्यादि की सुरक्षा प्रदान करता है। सन् 1979 में चीन ने विदेशी कम्पनियों के लिए अपनी अर्थव्यवस्था खोली थी। वर्ष 1992-93 के दौरान किए गए सुधारों के पश्चात् चीन में भी आर्थिक उदारीकरण तथा निजीकरण को बढ़ावा मिलने लगा है।

(10) एक दलीय शासन : चीन का संविधान सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान करता है। इसी प्रकार राजनीतिक दलों के गठन तथा उनके संचालन के क्रम में भी पर्याप्त स्वतंत्रता है लेकिन संविधान की प्रस्तावना में साम्यवादी दल की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि साम्यवादी दल तथा चीन की शासन व्यवस्था एक-दूसरे के पर्याय बन चुके हैं। जनवादी चीन में लगभग 10 राजनीतिक दल हैं किन्तु विगत कई दशकों से निरन्तर साम्यवादी दल ही शासन कर रहा है। इस दल को सम्पूर्ण चीनी जनता का नेतृत्वकर्ता दल मानते हुए सभी उपलब्धियों का श्रेय प्रदान किया जाता रहा है। अतः अन्य दल विकसित नहीं हो पा रहे हैं। वस्तुतः चीन में साम्यवादी दल का निरंकुश शासन है जिसने लोकतंत्र का आवरण चढ़ा रखा है।

(11) केन्द्रीय सैनिक आयोग की स्थापना : वर्तमान चीनी संविधान में एक केन्द्रीय सैनिक आयोग का प्रावधान है जो पूर्व के संविधानों में वर्णित नहीं था। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी इस संवैधानिक आयोग में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा अन्य सदस्य सम्मिलित होते हैं। केन्द्रीय सैनिक आयोग को सेना के नियंत्रण-निर्देशन सम्बन्धित कार्य सौंपे गए हैं।

(12) विदेश नीति के सिद्धान्त : वर्तमान संविधान में चीन की विदेश नीति को वर्णित करते हुए कहा गया है कि—

- चीन का भविष्य सम्पूर्ण विश्व से सम्बद्धता रखता है;
- चीन, 'पंचशील' के सिद्धान्तों का पालन करते हुए दूसरे देशों की प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान करता है तथा शांतिपूर्ण सह अस्तित्व में विश्वास करता है;
- चीन, साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद का विरोध करता है तथा विकासशील देशों की राष्ट्रीय स्वतंत्रता का समर्थन करता है।

संवैधानिक रूप से चीन की विदेश नीति **'शांतिपूर्ण सह अस्तित्व'** की दिशा में कदम बढ़ाती है।

(13) न्यायपालिका की अधीनस्थ स्थिति : शासन के तीनों अंगों के मध्य शक्ति सन्तुलन तथा पृथक्करण के सिद्धान्त को चीन में तिलांजलि दी गई है। चीनी व्यवस्था में न्यायपालिका को स्वतंत्र स्तर प्राप्त नहीं है बल्कि न्यायपालिका को प्रशासन का एक अधीनस्थ अंग माना गया है जो संविधान की व्याख्या करने, सरकारी हस्तक्षेप को कम करने, विधायिका के कानूनों की समीक्षा करने तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में असमर्थ है। **चीन के सर्वोच्च न्यायालय को राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी** बनाया गया है। प्रोक्यूरेटरों की व्यवस्था के माध्यम से समानान्तर नियंत्रण प्रणाली कार्यरत है जो वास्तव में साम्यवादी दल की ओर झुकाव रखती है। अन्य देशों की भाँति न्यायपालिका को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं।

(14) संसदीय व्यवस्था : चीन में सैद्धान्तिक दृष्टि से संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था है क्योंकि नए संविधान में **राष्ट्रपति** का पद बनाया गया है जिसे नाममात्र की शक्तियाँ दी गई हैं। किन्तु **प्रधानमंत्री एवं राज्य परिषद्** (मंत्रिपरिषद्) को कार्यपालिका-शक्तियाँ सौंपते हुए, इनसे सम्बन्धित अनेक कार्य एवं शक्तियाँ राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की **स्थायी समिति** को प्रदान कर विचित्र प्रकृति की शासन व्यवस्था संचालित की जा रही है। राज्य परिषद् को राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है।

वस्तुतः चीन की शासन व्यवस्था पूर्णतया उन सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है जैसा कि संविधान में वर्णन किया गया है बल्कि अन्य कई कारकों ने इसके व्यावहारिक स्वरूप को परिवर्तित किया हुआ है।

शासन व्यवस्था (System of Government)

चीन की शासन व्यवस्था संसदीय अथवा अध्यक्षीय शासन प्रणाली वाले देशों से मिलती-जुलती नहीं है और न ही संघात्मक या पूर्ण एकात्मक शासन व्यवस्था कही जा सकती है। वस्तुतः पूर्व सोवियत संघ की साम्यवादी शासन व्यवस्था से किंचित् मेल खाती चीन की शासन व्यवस्था अपने आपमें विशिष्टतायुक्त है। शासन का प्रमुख अंग व्यवस्थापिका है जो कानून-निर्माण, योजना स्वीकृति, बजट स्वीकृति का कार्य करती है। चीन की राष्ट्रीय व्यवस्थापिका में मात्र एक सदन है जिसे **राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस** (National Peoples Congress) कहा जाता है। सदन में सदस्यों को **डिप्टी** (Deputy) कहा जाता है। इस सदन में सन् 1982 में संविधान स्वीकृति के समय सदस्यों की **संख्या** 3,037 थी। इस प्रकार चीन की राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस, विश्व की **सबसे बड़ी** विधायिका है। चीन में 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके स्त्री एवं पुरुष डिप्टी का **चयन** करते हैं। **अनुच्छेद-59** के अनुसार राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस में निम्नांकित क्षेत्रों से प्रतिनिधि चुनकर आते हैं—

1. प्रांतों से निर्वाचित प्रतिनिधि।
2. स्वशासित क्षेत्रों के प्रतिनिधि।

जनवादी चीन की शासन व्यवस्था

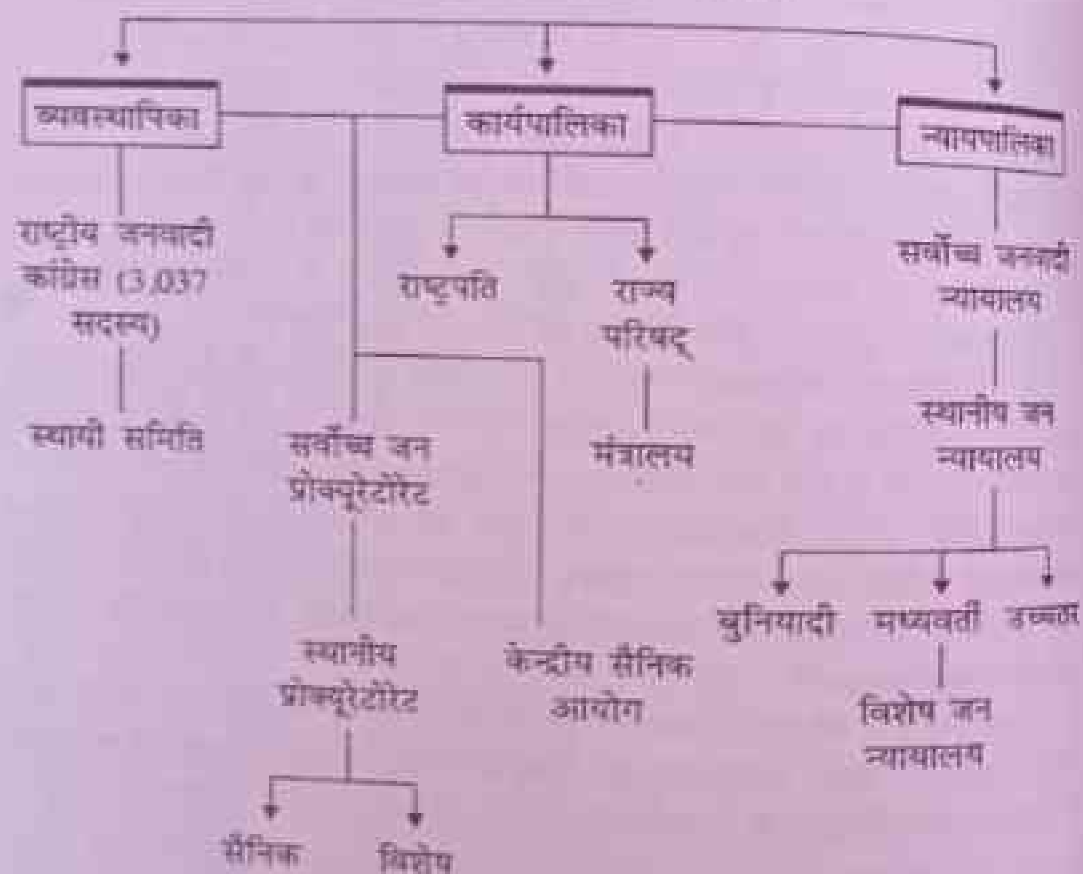

[प्रांतों तथा स्वायत्तशासी क्षेत्रों में स्थानीय विधायिका (जन कांग्रेस) होती है।]

3. केन्द्र शासित क्षेत्रों की नगरपालिकाओं के प्रतिनिधि।
4. जनवादी मुक्ति सेना के प्रतिनिधि।

राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस का कार्यकाल 5 वर्ष है। इस सदन का वर्ष में एक बार अधिवेशन होता है। चूँकि सदन में सदस्यों की संख्या अत्यधिक है अतः स्थायी समिति को सदन के कार्य सौंपे गए हैं। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस, अपने पहले अधिवेशन में ही कार्यवाही संचालन हेतु 'प्रेसीडियम' का चुनाव करती है। संविधान में संशोधन, कानून निर्माण, राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, स्टेट कौंसिलर, मंत्रियों, महालेखा परीक्षक, केन्द्रीय सैनिक आयोग के अध्यक्ष, सर्वोच्च जनवादी न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट के प्रोक्यूरेटर जनरल का चयन, बजट को स्वीकृति, स्थायी समिति के निर्णयों का पुनरीक्षण, युद्ध एवं शांति के मामलों का निस्तारण करती है। यह कांग्रेस राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्री, स्टेट कौंसिलर, मंत्रियों, महालेखा परीक्षक, राज्य परिषद् के महासचिव, केन्द्रीय सैनिक आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों, सर्वोच्च न्यायाधीश तथा प्रोक्यूरेटर जनरल को उनके पद से हटा भी सकती है।

संविधान के **अनुच्छेद-65** के अनुसरण में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस की एक **स्थायी समिति** (Standing Committee) होती है जिसमें एक अध्यक्ष, कई उपाध्यक्ष, महासचिव तथा अन्य साधारण सदस्य होते हैं। राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस, स्थायी समिति का चयन करती है अतः 'वापिस बुलाने' का अधिकार भी रखती है। यह समिति भी 5 वर्ष अथवा नई समिति चुने जाने तक कार्य करती है। स्थायी समिति को **संविधान की व्याख्या** करने, संविधान के क्रियान्वयन का निरीक्षण करने, कांग्रेस के सत्रावसान के समय कानून बनाने, योजना एवं बजट को स्वीकृति देने, राज्य परिषद्, केन्द्रीय सैनिक आयोग, सर्वोच्च जन न्यायालय, सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट इत्यादि का निरीक्षण एवं जाँच करने, न्यायाधीशों की नियुक्ति करने, राजदूतों की नियुक्ति करने, क्षमादान करने, मार्शल लॉ लागू करने, संधियों की पुष्टि करने तथा युद्ध की स्थिति में निर्णय लेने के अधिसंख्य महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपे गए हैं। चीन में राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस नाममात्र की विधायिका है क्योंकि **स्थायी समिति ही सर्वोच्च सत्ता बन चुकी है।**

चीन का राष्ट्रपति भी नाममात्र की सत्ता है जिसे 5 वर्ष के लिए राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा चुना जाता है। कोई भी चीनी नागरिक जो 45 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका है अधिकतम दो बार राष्ट्रपति बन सकता है। राष्ट्रपति को कांग्रेस द्वारा चयनित महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति देने एवं हटाने (जैसे—प्रधानमंत्री तथा महालेखा परीक्षक), कानूनों एवं अध्यादेशों को पारित करने, उपाधियाँ वितरित करने, क्षमादान देने तथा सैनिक कानून लागू करने के क्रम में औपचारिक शक्तियाँ दी गई हैं। राष्ट्रपति की सहायता के लिए उप राष्ट्रपति भी होता है। कार्यपालिका के वास्तविक कार्य 'राज्य परिषद्' करती है। संविधान के **अनुच्छेद-85** में प्रावधान है कि—"**राज्य परिषद्** केन्द्रीय जन सरकार है। राज्य परिषद् (State Council) राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस तथा उसकी स्थायी समिति के प्रति उत्तरदायी एवं जवाबदेय है।" राज्य परिषद् में **प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्री,** स्टेट कौंसिलर, मंत्रालयों के प्रभारी मंत्रिगण, आयोगों के प्रभारी मंत्री, ऑडीटर जनरल तथा महासचिव सम्मिलित होते हैं जिनकी संख्या प्रायः 40-50 होती है। 5 वर्ष के लिए इस राज्य परिषद् का चयन राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा किया जाता है। संविधान में प्रधानमंत्री के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है लेकिन वह सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् अर्थात् राज्य परिषद् का अध्यक्ष होता है तथा महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक निर्णय लेता है। राज्य परिषद् को प्रशासनिक कार्यों को सम्पादित करने, विधेयकों का प्रारूप तैयार करने, योजनाओं एवं बजट को क्रियान्वित करने, व्यापार पर नियंत्रण करने, सामाजिक सेवाओं के संचालन को सुनिश्चित करने तथा क्षेत्रीय प्रशासन को नियंत्रित करने के दायित्व सौंपे गए हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि चीन के प्रधानमंत्री तथा राज्य परिषद् को अन्य संसदीय लोकतंत्र अपनाने वाले देशों के प्रधानमंत्रियों जैसी सुदृढ़ स्थिति प्राप्त नहीं है। वह केवल साम्यवादी दल के पार्टी नियंत्रणकर्ताओं की इच्छानुसार कार्य करता है।

चीन में शासन का तीसरा अंग न्यायपालिका, वास्तव में स्वतंत्र अंग नहीं है बल्कि प्रशासनिक व्यवस्था का ही एक भाग है जो केन्द्रीय सत्ता के अधीन कार्य करता है। साम्यवादी व्यवस्था में कानून को शोषित वर्ग के उत्थान का साधन माना जाता है जिसे शासनाधीश अपने निर्देशानुसार संचालित करते हैं। यहाँ शासन एवं जनता को एक ही माना जाता है। शासन के विरुद्ध किया गया कार्य जनता के विरुद्ध क्रांति का पर्याय समझा जाता है। न्यायालयों को जन कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है। चीन में सर्वोच्च जन न्यायालय, स्थानीय जन न्यायालय तथा विशेष जन न्यायालय के रूप में तीन प्रकार के न्यायालय कार्यरत हैं। सामान्यतः न्यायाधीशों को 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है। 'लोकतांत्रिक केन्द्रवाद' का प्रभाव न्यायपालिका पर भी दिखाई देता है।

चीन की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of the Administrative System in China)

चीन की प्रशासनिक व्यवस्था साम्यवादी दर्शन से प्रभावित है जिसमें शासन के अंगों के स्पष्ट विभाजन के स्थान पर सत्ता का केन्द्रीकरण रहता है। श्रमिकों एवं निम्न वर्ग के कल्याण, उत्थान एवं समाजवाद के लक्ष्य को समर्पित चीन की प्रशासनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(1) साम्यवादी दल से प्रभावित : चीन का संविधान साम्यवादी दल की क्रांतिकारी भूमिका को स्पष्टतः स्वीकारता है। दल का संगठनात्मक ढाँचा सम्पूर्ण समाज एवं प्रशासन में फैला हुआ है। सम्पूर्ण चीनी प्रशासनिक तंत्र राजनीतिक साम्यवाद के प्रति **प्रतिबद्ध है**। सन् 1993 से पूर्व अधिकांश लोक सेवक राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर भर्ती किए जाते थे। इस प्रवृत्ति में अब कमी आ रही है किन्तु उच्च नीति निर्माण, विधि निर्माण तथा कार्यक्रम निरूपण स्तर पर उन्हीं अधिकारियों को पदस्थापित किया जाता है जो सत्तारूढ़ साम्यवादी पार्टी की नीतियों को पोषित कर सकते हैं। सन् 1993 में पारित 'Regulation on State Functionaries' के प्रावधानों के अनुसरण में वैज्ञानिक तथा कुशल प्रबन्ध की ओर कदम बढ़ाए जा रहे हैं।

(2) परम्परागत चीनी संस्कृति, समाजवाद तथा विकास से प्रभावित : चीनी प्रशासन में निर्णय प्रक्रिया तथा प्रशासनिक कार्यप्रणाली उपर्युक्त तीन तत्वों से अधिक प्रभावित दिखाई देती है। **आंगडेन** के अनुसार—"चीन की परम्परागत संस्कृति में कन्फ्यूशियसवाद, प्रतियोगी परीक्षाएँ, विशिष्ट प्रकार का व्यक्तिवाद (चीनी भाषा में इसे **गुनाक्सी** कहते हैं) तथा योग्य व्यक्ति द्वारा शासन संचालन की मान्यताएँ गहराई से व्याप्त हैं।" इसी प्रकार समाजवादी मूल्यों में पार्टी, केडर, कार्य इकाई तथा समता की भावना निर्णायक रहती है। जहाँ तक चीन में विकास का प्रश्न है वह चीन के विशाल आकार, शक्ति तथा शिक्षा के स्तर से अत्यधिक प्रभावित माना जा सकता है। चीन की कुल

जनसंख्या का पाँच प्रतिशत हिस्सा साम्यवादी दल का सदस्य है अतः राजनीतिक प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

(3) मंत्रालयी व्यवस्था : कार्यपालिका के दायित्वों की पूर्ति हेतु चीन में विशाल प्रशासनिक तंत्र कार्यरत है। केन्द्रीय स्तर पर प्रशासनिक विभागों को मंत्रालयों में विभक्त किया गया है। मंत्रालयों के अतिरिक्त अन्य अभिकरण, आयोग, बोर्ड, लोक उपक्रम तथा प्रशासनिक संगठन भी कार्यरत हैं जो केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् (राज्य परिषद्) के किसी मंत्री के प्रत्यक्ष नियंत्रण-निर्देशन में कार्य करते हैं। मंत्री को नीति, कानून एवं निर्णय सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने के लिए नौकरशाह पदस्थापित हैं जिनकी भूमिका अत्यन्त प्रभावशाली बनी हुई है। केन्द्रीय स्तर पर लगभग 30 मंत्रालयों एवं अन्य संगठनों सहित कुल 68 बड़े प्रशासनिक संगठन कार्यरत हैं।

प्रत्येक प्रशासनिक विभाग में निम्नांकित तीन प्रकार के ब्यूरो प्रवर्तित हैं—

- योजना ब्यूरो,
- सांख्यिकी ब्यूरो, तथा
- वित्त एवं लेखा ब्यूरो।

सरकार के सभी कार्यालयों की शाखाएँ या अनुभाग, ब्यूरो में विभक्त हैं। प्रत्येक ब्यूरो (इकाई) को एक विशिष्ट प्रकार का कार्य दिया जाता है। अधिकांश ब्यूरो के नियंत्रक अधिकारी साम्यवादी दल के समर्थक लोक सेवक बनाए जाते हैं ताकि सरकार की नीतियाँ सुचारू ढंग से निष्पादित हो सकें। केन्द्रीय स्तर पर छः उच्चाधिकारी मेजर स्टाफ **ऑफीसर्स** के रूप में नियुक्त हैं जो क्रमशः विदेश मामले, राजनीति एवं विधि प्रकरण, संस्कृति एवं शिक्षा, उद्योग एवं संचार, वित्त एवं व्यापार तथा कृषि एवं वानिकी मंत्रालयों से सम्बन्धित हैं।

(4) केन्द्रीकृत प्रशासन : भौगोलिक जनसांख्यिकीय दृष्टि से विशाल चीन में लोक प्रशासन का विकेन्द्रीकरण नहीं हो पाया है क्योंकि साम्यवादी व्यवस्था में लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाते हुए भी शक्तियों के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। यद्यपि चीन में अनेक प्रांत, स्वायत्तशासी क्षेत्र एवं जिले कार्यरत हैं किन्तु प्रशासन के अधिकांश प्रमुख निर्णय उच्च स्तरीय सत्ता द्वारा ही लिए जाते हैं। कम महत्त्व के 70 प्रशासनिक कार्यालय प्रांतीय स्तर पर, 50 सिटी एवं प्रीफेक्चर स्तर पर तथा 45 काउण्टी स्तर पर स्थानीय संस्थाओं के अधीन किए गए हैं। चूँकि चीन में प्रत्येक स्तर पर निर्वाचित जन प्रतिनिधियों द्वारा गठित जन कांग्रेस, शासन संचालित करती हैं। अतः वे अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले प्रशासनिक संगठनों को नियंत्रित भी करती हैं लेकिन चीन का संविधान मूलतः केन्द्रवाद का हामी है अतः प्रांत एवं अन्य स्थानीय स्तर की इकाइयाँ केवल केन्द्र सरकार के अधीनस्थ की भाँति कार्य करती हैं।

चीन की प्रशासनिक व्यवस्था

स्तर	नाम	प्रकार	
1.	प्रान्तीय स्तर	• प्रांत (Province)	— 22
		• स्वायत्त क्षेत्र (Autonomous Regions)	— 05
		• नगरपालिकाएँ (Municipalities)	— 04
		• विशेष प्रशासनिक क्षेत्र (Special Administrative Regions)	— 02
2.	प्रीफेक्चर स्तर	• प्रीफेक्चर्स (Prefectures)	— 17
		• स्वायत्त प्रीफेक्चर्स (Autonomous Prefectures)	— 30
		• प्रीफेक्चर स्तरीय नगर (Prefectures-level Cities)	— 283
		• लीग (Leagues)	— 03
3.	काउण्टी स्तर	• काउण्टी (Counties)	—1464
		• स्वायत्त काउण्टी (Autonomous Counties)	— 117
		• काउण्टी स्तरीय नगर (County-level Cities)	— 374
		• जिले (Districts)	— 852
		• बैनर्स (Banners)	— 49
		• स्वायत्त बैनर्स (Autonomous Banners)	— 03
		• वानिकी क्षेत्र (Forestry Areas)	— 01
		• विशेष जिले (Special Districts)	— 02
4.	टाउनशिप स्तर	• टाउनशिप (Township)	— 14677
		• नृजातीय टाउनशिप (Ethnic Township)	— 1092
		• कस्बे (Towns)	— 19522
		• उप जिले (Sub Districts)	— 5152
		• जिला सार्वजनिक कार्यालय (District Public Offices)	— 11
		• सूमू* (Sumu)	— 181
		• नृजातीय सूमू (Ethnic Sumu)	— 01
5.	ग्राम स्तर (अनौपचारिक)	• पड़ोस समितियाँ (Neighbourhood Committees)	— 80717
		• ग्राम समितियाँ (Village Committees)	—623669

* मंगोलिया क्षेत्र में गाँव से बड़ी किन्तु कस्बों से छोटी इकाई 'सूमू' कहलाती है।

(5) विशिष्ट नियंत्रणकारी संगठन : चीन में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में स्पष्ट विभाजन दृष्टिगोचर नहीं होता है बल्कि राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस

तथा कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति एवं पोलित ब्यूरो ही वास्तविक सत्ता हैं। न्यायपालिका की शक्तियों को सीमित करते हुए **सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट** नामक अभिकरण की स्थापना की गई है जो **पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण** का सर्वप्रमुख संगठन है। इसके प्रमुख प्रोक्यूरेटर जनरल का निर्वाचन राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा किया जाता है। सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट के अधीन स्थानीय स्तर पर अनेक प्रोक्यूरेटोरेट कार्यरत हैं जिनकी सैनिक एवं विशेष शाखाएँ, दो प्रकार की शाखाएँ हैं। ये प्रोक्यूरेटोरेट मूलतः इस बात पर निगरानी रखते हैं कि सरकार द्वारा निर्मित कानूनों, नियमों, नीतियों तथा संविधान के प्रावधानों का पालन हो रहा है अथवा नहीं। इनमें अधिकांश साम्यवादी पार्टी के कार्यकर्ता नियुक्त रहते हैं। सरकारी तंत्र एवं आम जनता दोनों पर पर्यवेक्षण करने, पुलिस एवं न्यायिक तंत्र की गतिविधियों पर कड़ी नजर रखने तथा आपराधिक गतिविधियों पर नियंत्रण करने के महत्त्वपूर्ण कार्य प्रोक्यूरेटोरेट को दिए गए हैं। समाजवादी व्यवस्था, राष्ट्रीय सुरक्षा, फौजदारी मुकदमों तथा राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र के मामलों में प्रोक्यूरेटोरेट स्वयं जाँच करते हैं। किसी भी **व्यक्ति को इन प्रोक्यूरेटोरेट या जन न्यायालय की अनुमति के बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।** प्रोक्यूरेटोरेट नामक यह संस्था 'चीन का ओम्बुड्समैन' कही जा सकती है।

केन्द्रीय सैनिक आयोग दूसरा विशिष्ट संगठन है जो सर्वोच्च जन प्रोक्यूरेटोरेट की भाँति प्रत्यक्षतः राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के नियंत्रण में कार्य करता है। यह आयोग देश की **सेना का नियंत्रण एवं निर्देशन** करता है। इस आयोग का अध्यक्ष ही सेना का सर्वोच्च कमाण्डर होता है। केन्द्रीय सैनिक आयोग में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा अन्य सदस्य आवश्यकतानुसार नियुक्त किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त चीन की गुप्तचर संस्था 'सेण्ट्रल एक्सर्नल लेजां डिपार्टमेण्टल' भी प्रभावी भूमिका निभाता है।

(6) नौकरशाही एवं भाई-भतीजावाद : विश्व के अन्य विकासशील राष्ट्रों की भाँति चीन भी निरंकुश नौकरशाही तथा भाई-भतीजावाद की समस्या से ग्रस्त है। यद्यपि चीन की नौकरशाही पर साम्यवादी पार्टी का नियंत्रण है, किन्तु साम्यवादी विचारधारा में लोक सेवक एक विशिष्ट अहं, निरंकुशता तथा स्वार्थों से घिरे हुए हैं। चीन में योग्यता पर आधारित नौकरशाही में अनेक अधिकारी ऐसे भी चयनित होते हैं जो साम्यवादी विचारधारा के समर्थक नहीं होते हैं अतः ऐसे नौकरशाही पर वैचारिक नियंत्रण स्थापित करने के लिए पार्टी आधारित आन्तरिक नौकरशाही, प्रशासनिक नौकरशाही के ढाँचे में सुनियोजित ढंग से कार्य करती है। नौकरशाही के इन दो विभिन्न रूपों में संघर्ष होते हुए भी प्रायः सामने नहीं आ पाता है। सन् 1989 में निर्मित 'राष्ट्रीय प्रशासन स्कूल' में प्रशिक्षण के दौरान साम्यवादी शिक्षाएँ लोक सेवकों को दे दी जाती हैं।

चीनी लोक सेवाएँ तीन प्रकार की हैं—

- प्रशासनिक कार्यपालक।
- व्यावसायिक या तकनीकी कार्मिक।
- कार्यालयी सेवा स्टाफ।

नौकरशाही में पदों का विभाजन तथा नियुक्ति को शिक्षा और योग्यता के आधार

पर केडर में बाँटा जाता है। लोक सेवाओं में प्राचीन काल से ही योग्यता, प्रतिस्पर्द्धा एवं समानता को महत्त्व दिया जाता रहा है लेकिन कटु सत्य यह है कि सन् 1993 से पूर्व अधिकांश उच्च पद पार्टी में समर्थकों द्वारा धारित किए जाते थे। स्थानीय संस्थाओं एवं लोक सेवाओं में निम्न पद प्राय: भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचार से पीड़ित रहे हैं। अल्पसंख्यकों तथा अनुभवी व्यक्तियों को नौकरशाही में पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिलवाना चीनी प्रशासन की नीति का अंग है। वर्तमान में चीनी लोक सेवाओं को व्यावसायिक स्वरूप में ढालने के प्रयास जारी हैं। 'Party School of Central Committee of Communist Party of China' यहाँ का प्रमुख प्रशिक्षण एवं शोध संस्थान है। साथ ही लोक प्रशासन के प्रशिक्षण हेतु सन् 1994 में बना 'Chinese National School of Administration, Beijing' एवं विश्वविद्यालयों में स्थित लोक प्रशासन विद्यालय महत्त्वपूर्ण निकाय हैं।

(7) **समयानुकूल परिवर्तनशीलता** : चीनी लोग प्राय: कहते हैं—'**ली, लौ, ता ओऊ, काई काई**' अर्थात् 'कार्य करो, कार्य करो, निस्संदेह कुछ गलतियाँ होंगी, उन्हें सुधारो, सुधारो।' चीन और जापान दोनों देशों के लोग कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं को जीवन में उतारते हैं। आज से पचास वर्ष पूर्व चीन में खेती का अधिकांश कार्य सामूहिक रूप में 20,000 कम्यूनों के द्वारा किया जाता था। चीन में 1.65 करोड़ मोऊ (भूमि नाप की इकाई) भूमि को सिंचाई सुविधा प्रदान कर तथा सामूहिक स्वामित्व के अधीन रखकर अन्न उत्पादित किया जाने लगा। निस्संदेह इस समाजवादी व्यवस्था से क्रांतिकारी परिणाम सामने आए। लेकिन कालान्तर में आलसी तथा स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा सामूहिक खेती में कम रुचि लेने के कारण वर्ष 1978-79 से पुन: भूमि एवं खेती का निजीकरण शुरू हुआ। इसी प्रकार माओत्से तुंग ने सन् 1956 में गाँव-गाँव में लोहा बनाने एवं उद्योग लगाने में क्रांतिकारी प्रयास किए लेकिन गुणवत्ता में गिरावट एवं अव्यवस्था के कारण सरकार को ग्रामीण कुटीर उद्योगों के स्थान पर वृहद् राष्ट्रीय लोक उपक्रम स्थापित करने पड़े। भारत की भाँति चीन के लोक उपक्रम भी 'सफेद हाथी' सिद्ध हुए हैं अत: अब पुनर्विचार हो रहा है। डेंग शाओ पिंग के नेतृत्व में चीन ने सन् 1978 से **आर्थिक सुधारों** की शुरुआत की जिन्हें सन् 1993 से गति मिली है। सन् 1948 के गैट समझौते से पृथक् हुआ चीन सन् 1986 से पुन: इसमें सम्मिलित होने हेतु प्रयासरत था। सन् **2001 के दोहा सम्मेलन के द्वारा चीन विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बन चुका है।** आर्थिक सुधारों के साथ ही **प्रशासनिक सुधार** भी किए गए हैं जिनके अन्तर्गत विदेशी विशेषज्ञों को चीन आमंत्रित किया गया तथा चीनी अधिकारियों ने विश्व के अन्य देशों की प्रशासनिक व्यवस्था का अवलोकन कर यह निष्कर्ष निकाला कि राज्य द्वारा विशुद्ध समाजवाद की स्थापना एक दुष्कर कार्य है अत: निजीकरण की ओर कदम उठाना अप्रासंगिक नहीं है। इसी क्रम में राज्याधीन 120 उद्योगों की संख्या घटकर मात्र 33 रह गई है तथा कृषि क्षेत्र में भी केवल अन्न, कपास, तिलहन, चीनी, तम्बाकू, सोना, खनिज उत्पादन, वन क्षेत्र तथा प्राकृतिक रबड़ ही सरकार के अधीन हैं। शेष उद्योग निजी क्षेत्र को प्रदत्त कर दिए गए हैं। **इसी प्रकार नौकरशाही की स्थूल काया में 5 लाख अधिशेष**

(Surplus) कार्मिकों को अन्यत्र समायोजित करने की योजना बनाई जा रही है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी चीन को विवश कर रही हैं।

(8) **नियोजित आर्थिक विकास** : रूसी नियोजन तंत्र 'गॉसप्लान' की तरह चीन में भी सामाजिक-आर्थिक विकास के नियोजित प्रयास राज्य द्वारा किए जाते हैं। साम्यवादी व्यवस्था के कारण योजनाओं का स्वरूप निर्देशात्मक न होकर अनिवार्य प्रकृति का है। योजना तंत्र के दो प्रमुख निकाय हैं—

- राज्य योजना आयोग।
- राज्य आर्थिक आयोग।

राज्य योजना आयोग, राज्य परिषद् के परामर्शानुसार दीर्घकालीन योजनाएँ निर्मित करता है जबकि राज्य आर्थिक आयोग अल्पकालीन योजनाएँ बनाता है। योजनाओं को राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस द्वारा स्वीकृति आवश्यक है। सन् 1993 के पश्चात् सामग्री क्रय, उत्पादन, वितरण तथा कार्मिक प्रशासन के क्रम में राज्य के लोक उपक्रमों को सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त किया जाने लगा है तथा अधिकांश योजना क्षेत्रों में अनिवार्य योजना के स्थान पर निजी उद्यमियों को महत्त्व दिया जा रहा है। आर्थिक सुधारों में वैमानिक मंत्रालय को वायु उद्योग निगम, वस्त्र मंत्रालय को चीनी वस्त्र एसोसिएशन में परिवर्तित कर दिया गया है। चीनी अर्थव्यवस्था मुक्त व्यापार, तकनीकी विकास, लोक सेवा सुधार, लोक कल्याण एवं कार्यकुशलता की ओर उन्मुख है।

(9) **स्थानीय प्रशासन** : चीन एक एकात्मक शासन व्यवस्था वाला देश है लेकिन प्रांतों, स्वायत्तशासी क्षेत्रों तथा स्वायत्तशासी जिलों को कुछ मामलों में छूट भी प्रदान की गई है। बड़े नगरों की नगरपालिकाएँ प्रत्यक्षत: केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित हैं। प्रांतों में जिला, प्रशासन की एक इकाई है किन्तु स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ प्रीफेक्चर्स, काउण्टी तथा सिटी में विभक्त हैं। प्रत्येक स्तर पर जन प्रतिनिधियों से युक्त 'जन कांग्रेस' स्थानीय स्वशासन को संचालित करती है। चीन में गाँवों को 20 हजार कम्यूनों में एकीकृत किया गया है जो स्थानीय समस्याओं के समाधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। '**बेअर फुट डॉक्टर विधि**' के माध्यम से चीन में रोगी को घर पर रखते हुए एकीकृत चिकित्सा पद्धति (आधुनिक तथा चीनी देशी पद्धति का एकीकरण) के द्वारा श्रेष्ठ स्वास्थ्य सेवाएँ देने का जिम्मा भी स्थानीय संस्थाएँ निभाती हैं।

सन्दर्भ

1. हारून ए. खान, **पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : एन इण्ट्रोडक्शन**, केण्डल हण्ट पब्लिशिंग कं., डब्यीक, इओवा, 1997
2. फ्रेड रिग्ज, **द एडमिनिस्ट्रेशन इन डिवेलपिंग कण्ट्रीज : द थ्योरी ऑफ प्रिज्मेटिक सोसायटी**, हाउटन मिफलिन, बोस्टन, 1964
3. **न्यूज लैटर**, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, जुलाई, 1998

●●●

7

नेपाल की प्रशासनिक व्यवस्था
(Administrative System in Nepal)

नेपाल, भारत और चीन के मध्य हिमालय की गोद में स्थित एक हिन्दू बहुल राष्ट्र है। **संघीय लोकतांत्रिक गणतंत्र नेपाल** (Federal Democratic Republic of Nepal) की राजधानी काठमाण्डू का नामकरण यहाँ के प्रसिद्ध काष्ठ (लकड़ी) मन्दिरों एवं मण्डपों के कारण हुआ है। गौतम बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी यहाँ का प्रसिद्ध पर्यटक स्थल है। वन सम्पदा तथा क्वार्ट्ज भण्डारों से समृद्ध नेपाल पटसन, चावल, पशु खालें तथा जड़ी-बूटियाँ निर्यात करता है किन्तु यहाँ की अर्थव्यवस्था बहुत समृद्ध नहीं है।

नेपाल : एक परिचय

राजधानी	—	काठमाण्डू
क्षेत्रफल	—	1,47,181 वर्ग किलोमीटर
जनसंख्या	—	2.93 करोड़ (सन् 2008)
भाषा	—	नेपाली, मैथिर तथा भोजपुरी
साक्षरता	—	45.2 प्रतिशत (सन् 2005)
धर्म	—	हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम
मुद्रा	—	नेपाली रुपया (एक अमेरिकी डॉलर = 69.25 नेपाली रुपये)
प्रति व्यक्ति आय	—	1,470 डॉलर

नेपाल के नामकरण के सन्दर्भ में दो मान्यताएँ प्रचलित हैं। एक पौराणिक कथा के अनुसार नेपाल, भारतीय मुनि 'ने' द्वारा बसाया गया था। ने मुनि द्वारा पाला गया क्षेत्र नेपाल कहलाया। दूसरी मान्यता यह है कि तिब्बती भाषा में नेपाल का अर्थ तीर्थ (ने) एवं उन (पाल) से सम्बन्धित होता है। अतः हिमाचल की तराई में स्थित यह धार्मिक एवं ठण्डा

क्षेत्र नेपाल कहलाया। भारतीय इतिहास के प्राचीन ग्रन्थों में इस बात का प्रमाण है कि नेपाल में प्राचीनकाल में गणराज्य व्यवस्था थी जो कालान्तर में राजतंत्र में परिवर्तित हो गई। तेरहवीं सदी के 'माला' राजाओं के शासनकाल से नेपाल का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध होता है। नेपाल उन गिने-चुने देशों में सम्मिलित है जिन्हें कभी भी शक्तिशाली देशों का उपनिवेश नहीं बनना पड़ा। आधुनिक नेपाल का इतिहास वर्ष 1768-69 से प्रारम्भ होता है जबकि पृथ्वीनारायण शाह ने इस क्षेत्र का एकीकरण किया तथा 'शाह वंश' की नींव डाली। शाह वंश से पूर्व नेपाल बाइसी, चौबीसी तथा काठमाण्डू जैसे छोटे-छोटे कबीलों या राज्यों में विभक्त था। पृथ्वीनारायण शाह ने सभी राज्यों को जीतकर केन्द्रीकृत एवं निरंकुश शासन संचालित किया। कालान्तर में शाह वंश की सत्ता कमजोर पड़ने पर सन् 1846 में कुँवर जंगबहादुर ने राजा से समस्त शक्तियाँ छीनकर 'राणा शासन' प्रारम्भ किया। राजा के स्थान पर राणा, प्रधानमंत्री के रूप में सर्वशक्तिमान सत्ता बन गया। शनैः-शनैः राणा शासन के विरुद्ध भी जन विद्रोह भड़कने लगा तथा सन् 1951 में राणा के विरुद्ध क्रांति हो गई। इससे पूर्व ही सन् 1924 में नेपाल में **दास प्रथा** (Slavery) समाप्त हो चुकी थी। नेपाली राजपरिवार का इतिहास भी कम रक्तरंजित नहीं है। एक जून, 2001 को राजकुमार दीपेन्द्र ने अपने माता-पिता (महाराज बिरेन्द्र-महारानी ऐश्वर्या) तथा भाई-बहिन सहित 12 लोगों को गोलियों से भून दिया था तथा स्वयं ने भी आत्महत्या कर ली थी। इसके पश्चात् युवराज ज्ञानेन्द्र नेपाल के नरेश बने। नेपाल में आज भी राजशाही परम्पराओं के प्रति अगाध आस्था है। तभी तो इस हत्याकाण्ड की जाँच कर रही समिति (न्यायमूर्ति केशव प्रसाद उपाध्याय समिति) ने जब यह रिपोर्ट दी कि युवराज दीपेन्द्र हत्याकाण्ड के लिए उत्तरदायी थे, तो नेपालवासियों को विश्वास ही नहीं हुआ। कामतापुर स्टेट की माँग करते रहे माओवादी संगठन के आन्दोलन से भी नेपाल की स्थिरता भंग होती रही है।

संवैधानिक विकास (Constitutional Development)

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौर में नेपाल में भी लोकतंत्र की स्थापना हेतु संघर्ष शुरू हो गया था। राणा प्रधानमंत्री ने सन् 1946 में सुधारों की घोषणा की थी अतः सन् 1948 में भारत के प्रधानमंत्री पण्डित नेहरू के परामर्श पर राणा प्रधानमंत्री पद्म शमशेर जंग बहादुर ने नेपाल के **प्रथम संविधान** की घोषणा की। नेपाल शासन अधिनियम, 2004 (विक्रमी संवत्) के नाम से बने इस संविधान में मौलिक अधिकार, द्विसदनीय विधायिका तथा स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान था। यह संविधान लागू नहीं हो सका तथा राणा के प्रति विरोध बढ़ता गया।

सन् 1951 में राणा के विरुद्ध हुई क्रांति को निर्देशित करने में भारत की अहम् भूमिका रही। फरवरी, 1951 में नेपाल नरेश, राणा शासकों तथा नेपाली कांग्रेस के नेताओं के मध्य एक समझौता हुआ जिसे दिल्ली सैटलमेण्ट कहा जाता है। समझौते के अनुसार—

1. पूर्ण निर्वाचित संविधान सभा द्वारा संविधान निर्मित किया जाएगा।

2. संविधान सभा का चुनाव होने तक एक अन्तरिम सरकार बनेगी जो राणा की अध्यक्षता में सभी पक्षों के प्रतिनिधियों से युक्त होगी।
3. राज्य के हित में नरेश त्रिभुवन को राजा बने रहने दिया जाएगा।

इस प्रकार नरेश त्रिभुवन ने सन् 1951 में घोषणा कर दी कि नेपाल में जनता द्वारा निर्वाचित एक संविधान सभा द्वारा निर्मित एक लोकतांत्रिक संविधान से शासन किया जाएगा। इस वर्ष देश का अन्तरिम संविधान, 2008 वि.सं. निर्मित हुआ तथा लोकप्रिय मंत्रिमण्डल के निर्माण सहित अनेक प्रशासनिक संगठनों जैसे-केन्द्रीय सचिवालय, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक तथा लोक सेवा आयोग इत्यादि की स्थापना हुई। सन् 1959 में नरेश महेन्द्र द्वारा नए संसदीय संविधान की घोषणा की गई तथा इसी वर्ष नए संविधान के अन्तर्गत प्रथम आम चुनाव करवाए गए। प्रधानमंत्री बी.पी. कोइराला ने अनेक सुधार कार्यक्रम संचालित कर लोकप्रिय एवं प्रजातांत्रिक सरकार देने का प्रयास किया। किन्तु अगले ही वर्ष राजा महेन्द्र ने कोइराला सरकार को बर्खास्त कर लोकप्रिय सरकार के सदस्यों एवं प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इसे 'शाही विप्लव' का नाम दिया गया। सन् 1962 में नरेश महेन्द्र ने नेपाल में नया संविधान तथा नई '**पंचायत व्यवस्था**' प्रारम्भ की जिसमें दलविहीन लोकतंत्र की नींव रखी गई। नरेश महेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् राजकुमार बिरेन्द्र बीर विक्रम शाह देव नेपाल के शासक बने किन्तु लोकतांत्रिक प्रक्रिया बहाल न हो सकी। यद्यपि सुधारवादियों के दबाव में नरेश ने सन् 1975 में संविधान सुधार आयोग गठित किया जिसने **दलविहीन पंचायत व्यवस्था** की सिफारिश की। इस सिफारिश के क्रम में सन् 1980 में जनमत संग्रह करवाया गया जिसे जनता ने स्वीकृति दे दी। इसी वर्ष आम चुनाव हुए किन्तु राजनीतिक दलों ने बहिष्कार किया। चुनावों के पश्चात् सूर्य प्रकाश थापा प्रधानमंत्री बने तथा बार-बार नई सरकारें आती रहीं। सन् 1990 में आन्दोलनकारियों तथा नरेश बिरेन्द्र के मध्य समझौता हो गया तथा समझौते के अनुरूप सन् 1990 में नेपाल का नया संविधान निर्मित हुआ तथा सन् 1991 में संसदीय चुनाव करवाए गए। नेपाली कांग्रेस नामक पार्टी को चुनावों में अभूतपूर्व सफलता मिली किन्तु आन्तरिक कलह के कारण सन् 1994 में मध्यावधि चुनावों की स्थिति आ गई। इस बार किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला लेकिन सबसे बड़े दल के रूप में उभरी कम्युनिस्ट पार्टी (लेनिनवादी) ने सत्ता सम्भाल कर एक इतिहास (प्रधानमंत्री मनमोहन अधिकारी) रच दिया क्योंकि विश्व भर में साम्यवाद के पतन के इस दौर में यह अनूठी मिसाल थी। नेपाल में अस्पष्ट बहुमत तथा अस्थिर सरकारों का दौर लम्बे समय से जारी रहा है। सन् 1991-2005 तक नेपाल में 14 सरकारें बनी हैं। फरवरी, 2005 में नेपाल नरेश ज्ञानेन्द्र ने प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा को बर्खास्त कर स्वयं ने सत्ता संभाली तो सम्पूर्ण नेपाल सड़कों पर उतर आया। अन्ततः सवा साल पश्चात् नरेश ने सत्ता छोड़ दी तथा संसदीय प्रभुता को स्वीकार कर लिया।

सन् 1990 के नेपाली संविधान की प्रमुख विशेषताएँ

सन् 1990 में निर्मित नेपाल के पाँचवें संविधान (नेपाल अधिराज्य का संविधान समूह, 2047 विक्रमी संवत्) में प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे—

1. 133 धाराओं तथा 23 परिच्छेदों से युक्त यह संविधान लिखित एवं निर्मित संविधान था।
2. नरेश को '**श्री 5**' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। संवैधानिक राजतंत्र की इस व्यवस्था में नेपाल का नाम '**किंगडम ऑफ नेपाल**' था।
3. नरेश की भूमिका संसदीय प्रणालियों के राष्ट्रपति जैसी तथा प्रधानमंत्री की भूमिका वास्तविक कार्यपालिका की थी लेकिन **सिंह दरबार** (प्रधानमंत्री हाउस) राजनीतिक अस्थिरता का शिकार रहा करता था।
4. इस संविधान के द्वारा नेपाल को लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी राज्य घोषित किया गया था।
5. मौलिक अधिकारों की व्यवस्था थी। अप्रैल, 1999 में मृत्युदण्ड समाप्त किया गया था।
6. न्यायपालिका को स्वतंत्रता प्रदान की गई थी। न्यायिक परिषद् न्यायाधीशों की नियुक्ति करती थी।
7. नेपाल नरेश से लेकर आमजन तक 'विधि का शासन' घोषित किया गया था।
8. सन् 2006 तक नेपाल **विश्व का एकमात्र घोषित हिन्दू राष्ट्र था।**
9. बहुदलीय शासन व्यवस्था को मान्यता दी गई थी।
10. भारत की भाँति आपातकाल के प्रावधान विद्यमान थे।

पूर्ववर्ती शासन व्यवस्था (Erstwhile System of Government)

नेपाल की शासन व्यवस्था संसदीय प्रणाली के आदर्शों से प्रभावित रही है। पहले संसद को राष्ट्रीय **पंचायत** कहा जाता था। फिर यह संसद कहलाने लगी। **संसद** द्विसदनीय थी। उच्च सदन को **राष्ट्रीय सभा** कहा जाता था जिसमें 60 सदस्य होते थे। इस स्थायी सदन में प्रति 2 वर्ष के पश्चात् एक तिहाई सदस्य पदमुक्त हो जाते थे। निम्न सदन को **प्रतिनिधि सभा** कहा जाता था जिसमें प्रति 5 वर्ष पश्चात् 205 सदस्यों का आम जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन किया जाता था। राष्ट्रीय संसद ही विधायिका थी जो राष्ट्रीय कानूनों के निर्माण, प्रशासन पर नियंत्रण तथा बजट स्वीकृति का कार्य करती थी।

शासन के शीर्ष पर संवैधानिक एवं नाममात्र की कार्यपालिका के रूप में नरेश (राजा) होता था जिसे सन् 1990 के संविधान के अनुसार अनेक कार्यपालिका शक्तियाँ दी गई थी किन्तु उन शक्तियों का प्रयोग वह मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर ही कर सकता था। सन् 2006 के सुधारों के पश्चात् नेपाल नरेश मात्र एक प्रतीकात्मक पद रह गया था। समस्त लोक सेवक नेपाल नरेश के प्रसादपर्यन्त पदधारण करते थे। शासन के सभी कार्य नरेश की ओर से किए जाते थे। प्रधानमंत्री, मंत्रियों, न्यायाधीशों, राजदूतों तथा अन्य

नेपाल की शासन व्यवस्था

महत्त्वपूर्ण पदाधिकारियों की नियुक्ति एवं पदमुक्ति का अधिकार नरेश में निहित थे। प्रधानमंत्री एवं उसकी मंत्रिपरिषद् शासन संचालन के लिए उत्तरदायी बनाए गए थे। अतः देश की समस्त नीतियों, कानूनों, बजट तथा प्रशासनिक नियंत्रण-निर्देशन का दायित्व मंत्रिपरिषद् का था।

विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्यों का संवैधानिक आधार पर परीक्षण करने, कानूनों की व्याख्या करने तथा **नागरिक अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए नेपाल में स्वतंत्र न्यायपालिका रही है।**

राष्ट्रीय स्तर पर **सर्वोच्च न्यायालय है जिसके अधीन** अपील न्यायालय तथा जिला न्यायालय कार्यरत हैं। सत्ता के दुरुपयोग की जाँच के लिए बना संवैधानिक आयोग भी अर्द्ध न्यायिक कार्य सम्पादित करता है। इसके अतिरिक्त नेपाल में **राज परिषद्** नामक संस्था भी रही है जिसमें शाही परिवार, मंत्रिपरिषद् तथा धर्माधिकारी सहित महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नरेश द्वारा मनोनीत होते थे। फिर यह कार्य संसद करने लगी। यह परिषद् नरेश की मृत्यु या अशक्तता इत्यादि अवसरों पर बैठक कर निर्णय लेती थी।

गणतंत्र की दिशा में कदम

दो सदियों तक राजशाही व्यवस्था के अधीन रहा नेपाल अब एक संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य है। सन् 1996 में नेपाल के साम्यवादी दल (माओवादी) ने शाही संसदीय व्यवस्था के स्थान पर जनवादी समाजवादी गणराज्य की स्थापना हेतु आन्दोलन शुरू किया जिसमें एक दशक में 12 हजार व्यक्तियों ने प्राण गँवाए। राजशाही के प्रति बढ़ते

विद्रोह के दौर में नरेश ज्ञानेन्द्र ने 01 फरवरी, 2005 को सरकार को भंग कर आपातकाल लागू कर समस्त सत्ता अपने हाथों में ले ली ताकि माओवादियों पर नियंत्रण पाया जा सके किन्तु हिंसा बढ़ती रही। अन्ततः 01 सितम्बर, 2005 को दोनों पक्षों में युद्धविराम पर सहमति हो गई तथा समझौते के अनुसार नरेश ने 24 अप्रैल, 2006 को प्रतिनिधि सभा को बहाल कर दिया। 18 मई, 2006 को प्रतिनिधि सभा ने नरेश की शक्तियाँ कम करने का प्रस्ताव पारित किया तथा **नेपाल को हिन्दू राष्ट्र के स्थान पर पंथ निरपेक्ष** (Secular) **राज्य घोषित किया।** नवम्बर, 2006 में नेपाल सरकार तथा सात राजनीतिक दलों एवं माओवादियों के बीच **नए संविधान निर्माण हेतु समझौता** हुआ तथा 15 जनवरी, 2007 से **अन्तिम अन्तरिम संविधान** लागू हुआ। इसे **न्यायमूर्ति लक्ष्मण प्रसाद आरयल** समिति ने बनाया है। अप्रैल, 2007 में माओवादी विद्रोही अन्तरिम सरकार में सम्मिलित हुए। सन् 2007 में अन्तरिम संविधान में भी कई संशोधन हुए।

यद्यपि जून, 2007 में 601 सदस्यीय संविधान सभा के चुनाव होने थे किन्तु ये चुनाव 10 अप्रैल, 2008 को सम्पन्न हो सके तथा इनमें माओवादियों ने सर्वाधिक स्थान (220) प्राप्त किए। 27 मई, 2008 को संविधान सभा ने शपथ ली तथा अगले ही दिन 28 मई, 2008 को संविधान सभा से निर्णय कर नेपाल में 240 वर्ष पुरानी राजशाही को समाप्त घोषित किया तथा 560 सदस्यों ने इसका समर्थन किया। केवल राजशाही व्यवस्था की समर्थक पार्टी 'राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक पार्टी' ने प्रस्ताव के विरुद्ध मत प्रकट किया। नरेश को 'नारायणहिती शाही महल' खाली करने हेतु 15 दिन का समय दिया गया। 11 जून, 2008 को नरेश ज्ञानेन्द्र एवं महारानी ऐश्वर्या ने नारायणहिती खाली कर दिया।

नयी अन्तरिम व्यवस्था में **राम बरन यादव** को **प्रथम राष्ट्रपति, परमानन्द झा** को उप राष्ट्रपति तथा **पुष्प कमल प्रचण्ड** को प्रधानमंत्री पदभार दिया गया।

अन्तरिम संविधान की प्रमुख विशेषताएँ
(Salient Features of Interim Constitution)

15 जनवरी, 2007 से लागू **अन्तरिम संविधान, 2063** (सन् 2007) की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. नेपाल के सन् 2007 के अन्तरिम संविधान में 26 भाग, 167 अनुच्छेद तथा 2 परिशिष्ट हैं।
2. **राष्ट्र का नया प्रतीक चिन्ह** (Logo or Coat of Arms) एवं **नया राष्ट्र गीत** होगा।
3. लोगों की **सम्प्रभुता** होगी।
4. 330 सदस्यों से युक्त **एक सदनीय विधायिका** होगी।
5. संसद में **महिलाओं हेतु 33 प्रतिशत सीटें** आरक्षित होंगी।
6. **प्रधानमंत्री संसद का सत्र** आयोजित करेंगे तथा सरकार की वार्षिक नीति एवं कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगे।
7. कार्यकारी शक्तियाँ मंत्रिपरिषद् में निहित होंगी।

8. 601 सदस्यीय **संविधान सभा** के चुनाव कराए जाएँगे।
9. संविधान सभा का (इसकी प्रथम बैठक से) **कार्यकाल 2 वर्ष** होगा।
10. संविधान सभा के निर्वाचन सम्बन्धी मामलों के निपटाने हेतु **'संविधान सभा—अदालत'** होगी।
11. मानवाधिकार राज्य के प्रमुख निर्देशक सिद्धान्त होंगे।
12. राष्ट्रीय **मानवाधिकार आयोग को संवैधानिक स्तर** प्रदान किया जाएगा।
13. जिला विकास समितियों, नगरपालिकाओं तथा ग्राम विकास समितियों के रूप में **अन्तरिम स्थानीय सरकार** होगी।
14. नए **राजनीतिक दल** के निर्माण तथा उसके चुनावों में भाग लेने हेतु कम-से-कम **10 हजार मतदाताओं** के हस्ताक्षर अनिवार्य होंगे।
15. मंत्रिपरिषद् **'सैन्य प्रमुख'** की नियुक्ति करेगी।
16. **संविधान में संशोधन** हेतु दो तिहाई सांसदों का मत आवश्यक होगा।
17. राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्न पर **जनमत संग्रह** करवाया जाएगा।
18. **राज्य के प्रमुख** के रूप में प्रधानमंत्री शक्तियों का प्रयोग करेंगे।
19. संविधान सभा के प्रथम सत्र में **राजशाही व्यवस्था** पर निर्णय किया जाएगा।
20. नरेश **ज्ञानेन्द्र** तथा **महारानी ऐश्वर्या** और इनके **सगे-सम्बन्धियों की सम्पत्ति** का सरकार द्वारा गठित एक **ट्रस्ट** को स्थानान्तरित किया जाएगा तथा ट्रस्ट द्वारा राष्ट्रहित में इसका प्रबन्ध किया जाएगा।
21. **नरेश** के रूप में ज्ञानेन्द्र द्वारा पैतृक रूप से प्राप्त **सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण** किया जाएगा।
22. सर्वोच्च न्यायालय, अपील न्यायालयों तथा जिला न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा **नयी शपथ** ली जाएगी।
23. अन्तरिम संविधान के लागू होते ही प्रवर्तित प्रतिनिधि सभा तथा राष्ट्रीय सभा **स्वत: ही भंग** हो जाएँगी।
24. अन्तरिम संविधान के लागू होते ही **सन् 1990 का नेपाली संविधान** समाप्त माना जाएगा।

अभी नेपाल में नए संविधान, नयी शासन व्यवस्था तथा संघीय प्रणाली की **प्रक्रिया निर्माणाधीन है।** 28 मई, 2011 को नए संविधान प्रवर्तन के बाद नेपाल की नयी शासन व्यवस्था हमारे सामने होगी।

नेपाल की प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of the Nepalese Administrative System)

यद्यपि नेपाल कभी भी ब्रिटिश शासन के अधीन नहीं रहा है फिर भी इसकी प्रशासनिक व्यवस्था भारत एवं ब्रिटेन के लोक प्रशासन से मिलती-जुलती प्रतीत होती है। चूँकि भारत एवं नेपाल का सामाजिक, **सांस्कृतिक तथा आर्थिक** परिवेश एक जैसा है तथा

सदियों से वैचारिक आदान-प्रदान भी रहा है। साथ ही सन् 1951 के दिल्ली सैटलमेण्ट के पश्चात् नेपाल में गठित हुई लोकतांत्रिक एवं प्रशासनिक संरचनाओं में भारतीय प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है जिन्हें निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से वर्णित किया जा सकता है—

(1) एकात्मक शासन : पश्चिम से पूर्व की ओर फैला सम्भवत् नेपाल एक छोटा-सा देश है। अत: यहाँ भारत या अमेरिका की तरह संघीय शासन व्यवस्था नहीं है। यहाँ सम्पूर्ण देश का प्रशासन संचालित करने के लिए एक ही सरकार होती है। हाँ, **अन्तरिम संविधान इस दिशा (संघीय प्रणाली) में कार्य कर रहा है।** एकात्मक शासन की यह पद्धति फ्रांस एवं ब्रिटेन के समान है। नेपाल में स्थित सभी प्रशासनिक संगठन केन्द्रीय सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करते हैं। प्रशासनिक कार्यों को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने तथा नियंत्रण व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए सम्पूर्ण नेपाल को पूर्वी, मध्य (केन्द्रीय), पश्चिमी तथा सुदूर पश्चिमी क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। इसके पश्चात् नेपाल को 14 अंचलों में बाँटा गया है जहाँ अंचल कार्यालय (प्रशासनिक व्यवस्था) कार्यरत है। अंचलों के पश्चात् 34 डिवीजन हैं तथा डिवीजन के पश्चात् जिला प्रशासन (75) कार्यरत हैं।

(2) केन्द्रीय सचिवालयी व्यवस्था : नेपाल में सन् 1951 में केन्द्रीय सचिवालय की स्थापना की गई थी। यद्यपि इससे पूर्व भी राजा को प्रशासनिक सहायता प्रदान करने के लिए कई विभाग एवं समितियाँ थीं किन्तु उनका विधिवत् गठन एवं वैधानिक आधार सन् 1951 के संविधान से शुरू हुआ। मंत्रिपरिषद् के मंत्रिगण, केन्द्रीय सचिवालय के मंत्रालयों के राजनीतिक प्रभारी होते हैं। राजनीतिक मंत्री, सम्बन्धित मंत्रालय की नीतियों, कानूनों तथा योजनाओं के संचालन एवं प्रशासनिक नियंत्रण के लिए उत्तरदायी होता है। मंत्री को सहायता एवं परामर्श प्रदान करने के लिए प्रशासनिक अधिकारी एवं कर्मचारी होते हैं। प्रत्येक मंत्रालय के अधीन कार्य प्रकृति के अनुसार कई कार्यकारी संगठन तथा आयोग, बोर्ड, संस्थान तथा समितियाँ इत्यादि होती हैं।

(3) विशिष्ट अभिकरणों की स्थापना : भारत की भाँति नेपाल में भी अनेक संवैधानिक तथा गैर संवैधानिक विशिष्ट अभिकरण स्थापित किए गए हैं जो सम्बन्धित मंत्रालयों एवं कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त होकर अपने कार्यक्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करते हैं।

(i) संवैधानिक संस्थाएँ
- लोक सेवा आयोग (Public Service Commission)
- महालेखा परीक्षक (Auditor General)
- चुनाव आयोग (Election Commission)
- महान्यायवादी (Attorney General)
- न्यायिक परिषद् (Judicial Council)

- सत्ता-दुरुपयोग जाँच आयोग (Commission for Investigation of Abuse of Authority—CIAA)

(ii) **गैर संवैधानिक संस्थाएँ**

- राष्ट्रीय योजना आयोग
- राष्ट्रीय विकास परिषद्
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
- लोक प्रशासन संस्थान
- केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन
- राष्ट्रीय शैक्षणिक समिति

उपर्युक्त वर्णित संस्थान केवल कुछ दृष्टान्त हैं। प्रशासनिक संगठनों की सूची उतनी ही विस्तृत है जितने कि सरकार के कार्य एवं विभाग होते हैं।

(4) **पंचायत व्यवस्था एवं स्थानीय प्रशासन :** नेपाल एक एकात्मक शासन व्यवस्था वाला देश है जहाँ एक ही विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका राष्ट्र का शासन संचालित करती है। सरकार बहुस्तरीय नहीं है। पूर्व में (सन् 1962 के संविधान) नेपाल में पंचायत से तात्पर्य उस संस्था से होता था जो विधि निर्माण का कार्य करने वाला अभिकरण होती थी। निम्नतम स्तर पर **ग्राम पंचायत तथा कस्बा पंचायतें** होती थीं जिनका चुनाव प्रत्यक्ष मतदान से वयस्क मताधिकारी करते थे। ग्राम पंचायतों की संख्या लगभग 2,200 थी। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की पर्याय ग्राम पंचायतें अपने कार्यक्षेत्र में स्वतंत्र होती थीं। इसके पश्चात् **जिला पंचायतें** होती थीं। नेपाल में ग्राम पंचायतों के सदस्य जिला पंचायत का चयन करते थे। जिला पंचायत के पश्चात् **अंचल पंचायतें** होती थीं। अंचल पंचायत का चयन जिला पंचायत के सदस्य करते थे। सर्वोच्च स्तर पर राष्ट्रीय पंचायत (संसद) होती थी जिसके सदस्य प्रत्यक्षतः जनता द्वारा चुने जाते थे।

सन् 1962 के प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण आयोग की अनुशंसा पर बने स्थानीय सरकार कानून के द्वारा ग्राम पंचायतों, जिला पंचायतों तथा अंचल पंचायतों को वैधानिक आधार प्रदान किया गया था। स्थानीय सरकार के रूप में इन संस्थाओं को नेपाली प्रशासनिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था क्योंकि स्थानीय योजनाओं एवं नीतियों का क्रियान्वयन यही संस्थाएँ करती थीं। **सन् 1990 के संविधान के पश्चात् नेपाल में दलविहीन राष्ट्रीय पंचायत व्यवस्था समाप्त हो गई तथा स्थानीय स्वशासन का स्वरूप परिवर्तित कर दिया गया।** नेपाल में स्थानीय प्रशासन के कर्मचारी सामान्य प्रशासन के विभागों में स्थानान्तरित हो सकते हैं। उन्हें लोक सेवा के समस्त लाभ देय होते हैं। पंचायती राज मंत्रालय इन संस्थाओं को निर्देशित-नियंत्रित करता है।

(5) **विकास प्रशासन :** सन् 1990 के तथा वर्तमान अन्तरिम संविधान के नीति

निर्देशक तत्वों में राज्य से यह अपेक्षा की गई है कि वह सामाजिक-आर्थिक समानता की स्थापना तथा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का प्रयास करेगा। अतः नेपाल का वर्तमान प्रशासनिक ढाँचा मूलतः विकास प्रशासन का पर्याय है जो विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों के संचालन में रत है। राष्ट्रीय स्तर पर गठित राष्ट्रीय योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् विभिन्न क्षेत्रों जैसे—कृषि, शिक्षा, सिंचाई, स्वास्थ्य, उद्योग तथा परिवहन इत्यादि की योजनाएँ निर्मित करती है जिन्हें विभिन्न मंत्रालय क्रियान्वित करते हैं। सम्पूर्ण योजना तंत्र को विकेन्द्रीकृत स्वरूप प्रदान किया गया है। प्रशासनिक कार्यों तथा भौगोलिक आधार पर नेपाल पाँच क्षेत्रों यथा—पूर्वी, मध्य (केन्द्रीय), पश्चिमी, उत्तरी तथा सुदूर पश्चिमी क्षेत्रों में विभक्त है। प्रशासनिक दृष्टि से 14 अंचलों (Zones) में विकास प्रशासन संचालित होता है। अंचल स्तर पर **अंचल आयुक्त** कार्यरत होता है जो समस्त प्रशासनिक विभागों के मध्य समन्वय करता है। अंचल आयुक्त के अधीन डिवीजन बने हुए हैं। ये डिवीजन केवल प्रशासनिक कार्यों को सम्पादित करते हैं न कि स्थानीय प्रशासन की इकाइयाँ हैं। एक डिवीजन लगभग 2–3 जिलों को नियंत्रित करता है। नेपाल में 34 डिवीजन हैं। डिवीजन का प्रशासनिक मुखिया सहायक अंचल आयुक्त होता है। इसके पश्चात् जिला प्रशासन विकास कार्य देखता है। नेपाल में 75 जिले बनाए गए हैं जो **मुख्य जिला अधिकारी** (CDO) के नियंत्रण में कार्य करते हैं।

नेपाल में प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण

विकास प्रशासन

क्षेत्र (5)

↓

अंचल (14)

↓

डिवीजन (सम्भाग) (34)

↓

जिला प्रशासन (75)

नेपाल में जिला प्रशासन एक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक स्तर है। मुख्य जिला अधिकारी को भारत के जिला कलक्टर की भाँति अनेक कार्यपालक एवं न्यायिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। निस्संदेह जिला स्तरीय विभागों के साथ वार्ता करके विकास कार्यों में गति लाना उसका मुख्य दायित्व है।

(6) **लोक सेवाएँ :** नेपाल में लोक सेवकों को नरेश अर्थात् शासनाध्यक्ष के प्रसादपर्यन्त लोक सेवाओं में पदस्थापित रखा जाता रहा है तथापि लोक सेवकों को सेवाकाल की सुरक्षा संविधान के द्वारा प्रदत्त की गई है। कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित उल्लेखनीय प्रावधान अग्रांकित हैं—

(i) भर्ती का मुख्याधार योग्यता है जिसका निर्धारण प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा होता है जो लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित होती है।
(ii) सेवा पूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण की सुविधाओं का प्रसार किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली भी सहायता एवं परामर्श प्रदान करता है।
(iii) पदोन्नति का आधार योग्यता एवं वरिष्ठता दोनों को बनाया गया है।
(iv) अवकाश, वेतन, भत्तों, पेंशन तथा अन्य सेवा शर्तों में लाभकारी परिवर्तन किए जा चुके हैं।
(v) सामान्यतः सरकारी अधिकारियों को समाज में प्रतिष्ठाजनक प्रस्थिति प्राप्त होती है।
(vi) लोक सेवक अनाम तथा राजनीतिक रूप से तटस्थ रहकर अपना कर्तव्य निर्वाहित करते हैं।
(vii) भारत की तरह प्रशासनिक अकार्यकुशलता, अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार तथा नौकरशाही के दुष्प्रभाव नेपाली प्रशासन में भी स्पष्ट दिखाई देते हैं।

यही कारण है कि नेपाल सरकार ने मार्च, 2002 में अपने लोक सेवकों की भ्रष्टाचार में लिप्तता की जाँच हेतु **न्यायमूर्ति भैरव प्रसाद लांसाल आयोग** गठित किया था। नेपाल में सन् 1951 में मात्र 27 हजार लोक सेवक थे जिनकी संख्या सन् 1990 में 1 लाख 2 हजार तक जा पहुँची थी जो अब कम की जा रही है।

(7) **वर्गीय एवं व्यावसायिक संगठनों का प्रभाव :** नेपाल में पूर्व में प्रचलित दलविहीन पंचायत व्यवस्था के समय कतिपय वर्गीय एवं व्यावसायिक संगठनों की स्थापना की गई थी। ये दबाव समूह मुख्यतः अपने-अपने हितों की रक्षा के लिए शासन से वार्ता एवं परामर्श करते थे। कालान्तर में बहुदलीय राजनीतिक व्यवस्था को मान्यता मिलने से वर्गीय संगठनों का महत्व किंचित् कम अवश्य हुआ किन्तु लोक प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित करने में इनकी भूमिका अभी भी उल्लेखनीय बनी हुई है। ये संगठन हैं—

(i) नेपाल भूतपूर्व सैनिक संगठन।
(ii) नेपाल श्रमिक संगठन।
(iii) नेपाल कृषक संगठन।
(iv) नेपाल महिला संगठन।
(v) नेपाल युवा संगठन।
(vi) नेपाल विद्यार्थी संगठन।

इन संगठनों की सदस्य संख्या बहुत बड़ी है तथा इनका संगठनात्मक ढाँचा प्राथमिक, जिला एवं केन्द्रीय स्तर पर विभक्त है। प्रत्येक स्तर का संगठन सम्बन्धित क्षेत्र की शासकीय संरचना से वार्ता कर समस्या समाधान करवाता है। राजनीतिक क्षेत्र में इन

दबाव समूहों का सशक्त स्थान है। **हेनरी एडम** का कथन है—"आधुनिक राजनीति मुद्दों का नहीं अपितु शक्तियों का संघर्ष है।"

सारांशतः नेपाल की प्रशासनिक व्यवस्था संवैधानिक आदर्शों की प्राप्ति हेतु बनी एक उत्तरदायी व्यवस्था है जो कल्याणकारी राज्य एवं विकास प्रशासन के लक्ष्यों की प्राप्ति में संलग्न है किन्तु अन्य विकासशील राष्ट्रों की भाँति नेपाल भी अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं से जूझ रहा है। **सत्ता-दुरुपयोग जाँच आयोग** के प्रतिवेदन इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि नेपाली राजनीतिज्ञ एवं लोक सेवक किस सीमा तक अपने अधिकार क्षेत्र का अवैधानिक लाभ उठाते हैं।

सन्दर्भ

1. एस.एन. अग्रवाल, **द एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ नेपाल**, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1976
2. **लोकल गवर्नमेण्ट पर्सोनेल सिस्टम्स**, संयुक्त राष्ट्र, न्यू यॉर्क, 1966 (एसटी/टी ए ओ/एम/33)
3. डॉ. शिव बहादुर सिंह, नेपाल : **शासन एवं राजनीति**, गंगासरन एण्ड ग्रैण्ड संस, वाराणसी, 2001

●●●

8

स्वीडन में ओम्बुड्समैन
(Ombudsman in Sweden)

लोक सेवाओं में सच्चरित्रता की स्थापना तथा उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करने की समस्या प्रत्येक युग में एवं प्रत्येक शासन व्यवस्था के समक्ष रही है। स्वीडिश ओम्बुड्समैन नामक संस्था अधिकांश देशों में किसी-न-किसी समय से अवश्य ही प्रवर्तित है क्योंकि प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाना समय की माँग बन चुकी है।

ओम्बुड्समैन, स्वीडिश शब्द 'ओम्बुड' (Ombud) से बना है जिसका अर्थ है—**''ऐसा व्यक्ति जो दूसरों का प्रतिनिधित्व करता है।''** स्वीडन में ओम्बुड्समैन से तात्पर्य उस संस्था से है जो व्यवस्थापिका द्वारा चयनित तथा राजनीतिक रूप से तटस्थ होती है और प्रशासनिक अनियमितताओं के विरुद्ध जनता की शिकायतें सुनती एवं उनकी जाँच करती है। ओम्बुड्समैन अर्थात् जनता का प्रतिनिधि या वकील, एक संवैधानिक संस्था है जो नागरिक अधिकारों की रक्षा सहित प्रशासनिक कार्यकुशलता में अभिवृद्धि करती है। **न्यू वेबेस्टर बीसवीं सदी विश्वकोश** के अनुसार—''ओम्बुड्समैन एक ऐसा जन अधिकारी है जो नागरिकों (व्यक्ति) के अधिकारों के उल्लंघन करने वाले प्रशासनिक अभिकरणों के विरुद्ध जाँच करता है।''

डोनाल्ड सी. रोवट के शब्दों में—''यह व्यवस्थापिका का एक स्वतंत्र और राजनीतिक रूप से तटस्थ अधिकारी है। प्राय: इस संस्था या पद का संविधान में उल्लेख होता है। यह प्रशासनिक कार्यकलापों के विरुद्ध जनता की शिकायतें सुनता है तथा आवश्यक जाँच करता है। यह प्रशासनिक कार्यों की आलोचना कर सकता है तथा उसे जनता में प्रचारित कर सकता है किन्तु प्रशासनिक कृत्य को परिवर्तित नहीं कर सकता है।''

विकास यात्रा (Evolution)

नागरिक शिकायतों की सुनवाई तथा प्रशासनिक जवाबदेयता सुनिश्चित करने के लिए

प्रत्येक देश में किसी-न-किसी प्रकार की नियंत्रण व्यवस्था अवश्य ही रही है लेकिन आधुनिक लोकतांत्रिक जनकल्याणकारी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में स्वीडन की ओम्बुड्समैन पद्धति सर्वाधिक लोकप्रिय एवं अनुकरणीय मानी जाती है।

प्राचीन काल में, रोमन साम्राज्य में 'Tribune of the People' तथा चीन में 'Censors' (ई.पू. 206) ओम्बुड्समैन का ही रूप थे। अठारहवीं सदी में स्वीडन सहित अन्य स्केण्डनेवियन देशों में सम्राट द्वारा 'Chancellor of Justice' नियुक्त किया जाता था जो राजकार्यों के विरुद्ध जनसाधारण की परिवेदनाएँ ग्रहण कर उनकी जाँच करता था। सन् 1809 में जब स्वीडन में संविधान पर चर्चा हो रही थी तब यह आवश्यकता अनुभव की गई कि स्वीडन की संसद का कोई प्रतिनिधि लोक सेवकों के विधि विरुद्ध व्यवहार एवं कृत्यों पर पर्यवेक्षण करे। चूँकि स्वीडन में मंत्रिमण्डल के सदस्य न तो संसद के सदस्य होते हैं और न ही प्रशासनिक विभागों के अधिकारी, प्रभारी मंत्रियों के प्रति जवाबदेय होते हैं। अत: ओम्बुड्समैन संस्था की स्थापना अधिक महत्त्वपूर्ण मानी गई। इस प्रकार **स्वीडन में सन् 1809 में ओम्बुड्समैन** की स्थापना कर दी गई। स्वीडन के पश्चात् ओम्बुड्समैन संस्था का प्रचार-प्रसार अन्य देशों में होने लगा, किन्तु एक शताब्दी के पश्चात्। स्वीडन के बाद सन् 1919 में फिनलैण्ड में तथा डेनमार्क (1955), पश्चिमी जर्मनी (1957), नार्वे (1961), तंजानिया (1966), गुयाना (1967), मॉरीशस (1970), इजरायल (1971), फिजी (1972) तथा जाम्बिया (1973) इत्यादि में ओम्बुड्समैन की स्थापना हुई। सन् 1962 में न्यूजीलैण्ड तथा 1967 में ब्रिटेन में ओम्बुड्समैन की भाँति 'संसदीय आयुक्त' की स्थापना की गई। संघीय शासन व्यवस्थाओं वाले देशों जैसे-संयुक्त राज्य अमेरिका के हवाई (1969), नेब्रास्का (1971), ईओवा (1972) तथा अलास्का (1975) प्रांतों में, आस्ट्रेलिया के पश्चिमी आस्ट्रेलिया (1971), दक्षिणी आस्ट्रेलिया (1972), विक्टोरिया (1973), क्वींसलैण्ड (1974) तथा न्यू साउथवेल्स में, कनाडा के अल्बेरटा, न्यू बर्नस्टिक, क्यूबेक एवं ओन्तारियो और स्विट्जरलैण्ड के ज्यूरिच कैण्टन में सन् 1971 में तथा इटली के टस्केनी क्षेत्र में सन् 1975 में ओम्बुड्समैन संस्था गठित हुई।

भारत में लोकपाल तथा लोकायुक्त नामक संस्थाएँ स्वीडन की ओम्बुड्समैन संरचना का अनुसरण मानी जाती हैं। भारत में सर्वप्रथम सन् 1963 में राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति (हरिश्चन्द्र माथुर समिति) ने यह सुझाव दिया था कि ओम्बुड्समैन जैसी संस्था भारत में होनी चाहिए। संसद सदस्य एवं विधिवेत्ता डॉ. एल.एम. सिंघवी ने यह माँग संसद में उठाई तथा **प्रशासनिक सुधार आयोग** ने अपने 'नागरिक शिकायत निवारण-समस्या' नामक प्रतिवेदन में सुझाया था कि भारत में केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल तथा प्रांतों में लोकायुक्त की स्थापना की जाए। केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल विधेयक कई बार संसद में प्रस्तुत हो चुका है किन्तु अभी तक पारित नहीं हो सका है; अलबत्ता राज्यों में लोकायुक्त संस्थाएँ अवश्य कार्यरत हैं। सर्वप्रथम उड़ीसा राज्य में सन् 1970 में

तत्पश्चात् महाराष्ट्र (1971) तथा राजस्थान (1973) में लोकायुक्त संस्था का गठन हुआ। वर्तमान में भारत के अधिकांश राज्यों में लोकायुक्त कार्यरत हैं। लेकिन स्वीडन की ओम्बुड्समैन संस्था के प्रतिमान पर आधारित ये संस्थाएँ विकासशील देशों में प्राय: निष्प्रभावी सिद्ध हुई हैं क्योंकि स्वीडन जैसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ न तो दूसरे देशों में हैं और न ही जनजागरुकता एवं प्रतिबद्धता दिखाई देती है।

सन् 1809 में ओम्बुड्समैन की स्थापना के पश्चात् स्वीडन में यह संस्था उत्तरोत्तर लोकप्रियता प्राप्त करती गई। कालान्तर में सन् 1951 में सैनिक सेवा क्षेत्र के लिए पृथक् से ओम्बुड्समैन संस्था का गठन किया गया। स्वीडिश ओम्बुड्समैन की **प्रमुख विशेषताएँ** निम्नांकित हैं—

1. यह नागरिक अधिकार संरक्षण एवं प्रशासनिक अनियमितताओं के विरुद्ध जाँच करने वाली आधुनिक संस्थाओं में अग्रणी है। विश्व के अधिकांश देशों ने स्वीडिश मॉडल को अपनाया है।
2. यह एक संवैधानिक स्तर प्राप्त, स्वतंत्र तथा कुशल संगठन है।
3. इसकी नियुक्ति संसद द्वारा की जाती है तथा संसद के प्रति यह संस्था उत्तरदायी है।
4. प्रसिद्ध न्यायविद् या विधिवेत्ता को इस पद पर प्रथमत: चार वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है जो बार-बार भी नियुक्त हो सकता है।
5. ओम्बुड्समैन को यह अधिकार है कि वह लोक सेवकों, सैन्य अधिकारियों एवं न्यायाधीशों के विरुद्ध शिकायत सुने एवं आवश्यक जाँच कर सिफारिश दे।
6. स्वीडिश ओम्बुड्समैन प्रतिदिन अपनी विगत दिवस की रिपोर्ट एवं सूचनाएँ निष्पक्षतापूर्वक 'प्रेस' को बताता है।
7. स्वीडन में ओम्बुड्समैन के निर्णयों के विरुद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकती है।
8. इसके अधिकार क्षेत्र में प्रधानमंत्री एवं अन्य मंत्री सम्मिलित नहीं हैं। लोक सेवक, न्यायाधीश, स्थानीय स्वशासन एवं सैन्य कार्मिक सम्मिलित हैं।

चयन एवं कार्यकाल (Selection & Tenure)

स्वीडन में ओम्बुड्समैन का चयन संसद सदस्यों से युक्त एक निर्वाचक मण्डल द्वारा किया जाता है जिसमें दोनों सदनों से 24-24 सदस्य सम्मिलित होते हैं। इस पद पर प्राय: ख्यातिनाम न्यायविद् या विधिवेत्ता को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। ओम्बुड्समैन का कार्यकाल 4 वर्ष का होता है किन्तु अधिकांश ओम्बुड्समैन एकाधिक बार इस पद पर चयनित किए जाते रहे हैं। ओम्बुड्समैन संसद के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है तथा इसके कार्यकरण पर निगरानी रखने के लिए एक संसदीय समिति भी गठित की जाती है।

स्वीडन में ओम्बुड्समैन

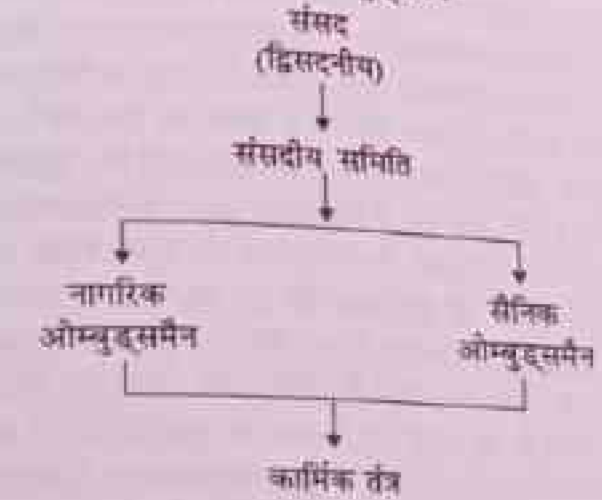

यदि समिति को ऐसा प्रतीत हो कि ओम्बुड्समैन संस्था भली प्रकार से कार्य निष्पादित नहीं कर रही है तो समिति को यह अधिकार होता है कि वह संसद से ओम्बुड्समैन को पदमुक्त करने की प्रार्थना करे।

वेतन-भत्ते (Salary and Allowances)

ओम्बुड्समैन पद पर आसीन व्यक्ति को संविधान एवं विधिसम्मत अधिकार, सम्मान एवं सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। स्वीडन में ओम्बुड्समैन को सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश के समकक्ष वेतन, भत्ते, सुविधाएँ दी जाती हैं तथा गरिमा से युक्त यह पद सामाजिक प्रतिष्ठा का भी पर्याय बन चुका है।

कार्यक्षेत्र (Jurisdiction)

स्वीडन में दो ओम्बुड्समैन कार्य करते हैं। प्रथम ओम्बुड्समैन के अधीन लोक प्रशासन के संस्थान (संगठन), न्यायिक अधिकारी तथा स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ रखी गई हैं जबकि दूसरे ओम्बुड्समैन को केवल सैनिक प्रशासन से सम्बन्धित कार्य दिया गया है। प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्री ओम्बुड्समैन के अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित नहीं हैं क्योंकि स्वीडन का मंत्रिमण्डल प्रशासनिक निर्णयों के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से उत्तरदायी नहीं है बल्कि प्रशासनिक अधिकारी ही उत्तरदायी हैं।

कार्य (Functions)

स्वीडन में ओम्बुड्समैन के निम्नांकित कार्य हैं—

(1) लोक प्रशासन पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण : स्वीडन में प्रशासनिक संस्थाओं पर नियंत्रण स्थापित करने के कई स्तर एवं व्यवस्था कार्यरत हैं किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर

ओम्बुड्समैन की स्थिति सर्वोच्च है। संविधानसम्मत यह संस्था लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली को न केवल नियंत्रित रखती है बल्कि समयानुकूल सुझाव भी देती है। जनसाधारण की स्वतंत्रता, अधिकार तथा गरिमा की रक्षा के लिए ओम्बुड्समैन एक लोकप्रिय जाँच हथियार है। प्रशासन के विरुद्ध प्राप्त जन शिकायतों की ओम्बुड्समैन जाँच करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर न्यायिक कार्यवाही की अनुशंसा भी कर सकता है। स्वीडन में ओम्बुड्समैन देश भर में किसी भी कार्यालय का अचानक निरीक्षण कर सकता है। इस हेतु सम्बन्धित जिले के प्रशासनिक अधिकारियों से सम्पर्क करता है। प्राय: एक बार के दौरे में किसी कार्यालय की 20-30 फाइलों को दैवनिदर्शन पद्धति (Random Sampling) द्वारा चुना जाता है तथा उन फाइलों का ओम्बुड्समैन एवं उनके सहायक अधिकारी गहन अध्ययन करते हैं। यदि किसी प्रकार की वैधानिक या प्रक्रिया सम्बन्धी त्रुटि पाई जाती है तो सम्बन्धित विभाग के उच्चाधिकारियों को सूचित किया जाता है एवं आगे की जाँच प्रारम्भ हो जाती है। लोक प्रशासन में सामान्य अनियमितता मिलने पर ओम्बुड्समैन व्यावहारिक सुझाव भी प्रस्तुत करता है। ओम्बुड्समैन का ध्यान **प्रशासनिक निर्णयों** पर केन्द्रित रहता है। क्षेत्रीय दौरों के समय स्थानीय कारागृहों, नगरपालिकाओं, अनाथाश्रमों, बाल विद्यालयों तथा अन्य सामाजिक कल्याण संस्थाओं का निरीक्षण भी किया जाता है। सन् 1957 से स्थानीय स्वशासन को भी नागरिक ओम्बुड्समैन के जाँच दायरे में सम्मिलित किया गया है।

(2) सैन्य प्रशासन पर नियंत्रण : विश्व के अन्य देशों की भाँति स्वीडन में भी सैनिक प्रशासन, लोक प्रशासन से पृथक् तथा गोपनीयता युक्त है किन्तु स्वीडन में सन् 1951 में सैनिक प्रशासन के लिए पृथक् से नियुक्त ओम्बुड्समैन को यह अधिकार दिया गया है कि वह सैन्य सेवाओं के संचालन, आन्तरिक कार्यप्रणाली, सामान्य नीतिगत निर्णयों तथा सैनिक प्रशासन के विरुद्ध शिकायतों की जाँच कर सकता है। सैनिक ओम्बुड्समैन के माध्यम से स्वीडिश संसद ने सेना पर परोक्ष नियंत्रण स्थापित किया हुआ है जो एक सीमा तक प्रभावी माना जाता है।

(3) न्यायिक अधिकारियों पर नियंत्रण : सामान्यत: न्यायपालिका की स्थिति स्वतंत्र एवं विशेषाधिकारों से युक्त अंग की रहती है किन्तु स्वीडन में ओम्बुड्समैन को सर्वोच्च न्यायालय एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालयों में कार्यरत न्यायाधीशों के आचरण से सम्बन्धित शिकायतों की जाँच का अधिकार दिया गया है। फ्रांस एवं अन्य यूरोपीय देशों की भाँति स्वीडन में भी **प्रशासनिक विधि** का प्रचलन है। अत: सामान्य न्यायालय एवं प्रशासनिक न्यायालय पृथक्-पृथक् हैं। ओम्बुड्समैन इन दोनों प्रकार के न्यायालयों में कार्यरत न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार सम्बन्धी शिकायतों की सुनवाई करता है। स्वीडन के ओम्बुड्समैन को लुथेरन चर्च के सरकारी पादरी (Clergy) के विरुद्ध भी शिकायत सुनने का अधिकार है क्योंकि फ्रांस की भाँति स्वीडन में भी यह पद लोक सेवकों की श्रेणी में रखा गया है। यहाँ यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि ओम्बुड्समैन न्यायिक निर्णयों के विरुद्ध जाँच नहीं करता बल्कि न्यायिक निर्णयों में जानबूझकर

की गई देरी तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध जाँच करता है। न्यायिक निर्णयों के विरुद्ध यदि किसी को आपत्ति है तो वह नियमानुसार उच्च अदालत में अपील कर सकता है।

(4) प्रचार एवं जन सम्पर्क : स्वीडन में ओम्बुड्समैन संस्था दो शताब्दी से सफलतापूर्वक कार्य कर रही है क्योंकि इसे जनता, प्रशासन एवं प्रेस सहित राजनेताओं का भी समर्थन मिलता रहा है। स्वीडन में प्रेस को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है तथा प्रशासनिक पारदर्शिता वहाँ की प्रमुख विशेषता है। स्वीडिश प्रेस ब्यूरो का एक प्रतिनिधि प्रतिदिन प्रात: 11 बजे ओम्बुड्समैन से मुलाकात करता है तथा पूर्व-दिन की समस्त शिकायतों एवं ओम्बुड्समैन द्वारा की गई कार्यवाही की जानकारी एकत्र कर पत्र-पत्रिकाओं एवं अन्य जनसंचार माध्यमों को प्रदान करता है। इससे आम जनता को प्रशासनिक अनियमितताओं का ज्ञान होता रहता है, साथ ही ओम्बुड्समैन द्वारा की जा रही जाँच का भी पता चल जाता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्वीडिश प्रेस ओम्बुड्समैन द्वारा बरती जा रही अकर्मण्यता या भेदभाव को जगजाहिर करने में किंचित् भी हिचक प्रदर्शित नहीं करती है। प्रेस के अतिरिक्त आम नागरिक भी किसी भी केस की फाइल देख सकता है अत: ओम्बुड्समैन भी चौकन्ना रहता है।

(5) संसद को रिपोर्ट : ओम्बुड्समैन एक संवैधानिक अभिकरण है जो संसद के प्रति जवाबदेय बनाया गया है। संसदीय समिति इस अभिकरण या संस्था पर नियंत्रण रखती है। ओम्बुड्समैन प्रतिवर्ष एक प्रतिवेदन तैयार करता है जिसे संसद के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है। इस वार्षिक प्रतिवेदन में गतवर्ष की कार्यवाहियाँ, प्राप्त शिकायतों, जाँच के निष्कर्षों, की गई अनुशंसाओं, प्रवर्तित कानूनों तथा नियमों की कमियों तथा प्रशासनिक संगठन की कार्यप्रणाली पर बिन्दुवार वर्णन होता है। सामान्यत: प्रतिवेदन में उन लोक सेवकों का नाम वर्णित नहीं किया जाता है जिनके विरुद्ध जाँच की गई है।

कार्यप्रणाली एवं शक्तियाँ (Working & Powers)

स्वीडन में ओम्बुड्समैन के समक्ष कोई भी नागरिक प्रशासनिक कार्यों, निर्णयों तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपनी शिकायत दर्ज करवा सकता है। इसके लिए यह प्रावधान किया गया है कि शिकायतकर्ता स्वयं पीड़ित पक्ष से सम्बन्धित हो अन्यथा द्वेषवश शिकायतें भी हो सकती हैं। सामान्यत: पीड़ित नागरिक को लिखित में स्वयं ओम्बुड्समैन को शिकायत प्रस्तुत करनी पड़ती है किन्तु विशिष्ट परिस्थितियों में टेलीफोन एवं अन्य साधनों से भी शिकायत दर्ज की जा सकती है। ओम्बुड्समैन अधिनियम के अनुसार यदि जनहित में कोई प्रकरण ओम्बुड्समैन की दृष्टि में आए या जानकारी में लाया जाए तो स्वयं की पहल पर ओम्बुड्समैन जाँच कार्य प्रारम्भ कर सकता है। सामान्यत: प्रशासनिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध घटना के एक वर्ष के भीतर शिकायत प्रस्तुत करना सुविधाजनक माना गया है लेकिन स्वीडन में यह समय सीमा कानूनी बाध्यता नहीं है अर्थात् कभी भी शिकायत प्रस्तुत की जा सकती है। गुमनाम शिकायतों को स्वीकार नहीं किया जाता है।

ओम्बुड्समैन को शिकायत प्राप्त होने पर वह निम्नांकित कार्यवाही करता है—

- सर्वप्रथम यह देखता है कि क्या यह शिकायत उसके अधिकार क्षेत्र में है?
- क्या सचमुच किसी प्रकार के कानून या नियम का उल्लंघन हुआ है?
- क्या घटना सचमुच गम्भीर है अथवा केवल शरारत या द्वेषयुक्त है?

शिकायतों को स्वीकारने के पश्चात् ओम्बुड्समैन कार्यालय प्रशासनिक विभागों के अनुसार उन्हें वर्गीकृत करता है तथा सम्बन्धित प्रभारी जाँच अधिकारी को सौंप देता है। तत्पश्चात् शिकायत से सम्बन्धित कार्यालय अथवा अधिकारी को नोटिस भेजा जाता है तथा आवश्यकता पड़ने पर सम्बन्धित प्रकरण की समस्त पत्रावलियाँ ओम्बुड्समैन अपने पास मँगवा लेता है। इसी प्रकार आवश्यकता होने पर शिकायतकर्ता तथा सम्बन्धित प्रशासनिक अधिकारी एवं कर्मचारियों को साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए सम्मन भेजा जा सकता है। ओम्बुड्समैन प्रायः अनौपचारिक ढंग से साक्षात्कार के द्वारा सूचनाएँ एकत्र करता है तथा गहनता से जाँच करने के पश्चात् अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देता है जिसमें सामान्य प्रशासनिक दण्ड से लेकर न्यायिक जाँच प्रक्रिया इत्यादि की अनुशंसा की जा सकती है। ओम्बुड्समैन की जाँच प्रक्रिया एवं निर्णय के विरुद्ध अपील का प्रावधान नहीं है।

उपादेयता (Utility)

स्वीडन में ओम्बुड्समैन संस्था अत्यन्त व्यावहारिक, प्रभावी एवं लोकप्रिय मानी जाती है। अपनी स्थापना के प्रारम्भिक दिनों में इस संस्था के सम्मुख प्रतिवर्ष 70–80 शिकायतें प्रस्तुत होती थीं जो वर्ष 1980–90 के दशक में 120–140 प्रतिवर्ष हो चुकी थी किन्तु वर्तमान में ओम्बुड्समैन के समक्ष 100 से भी कम शिकायतें प्रस्तुत होती हैं। स्वीडन सहित लगभग सभी स्केण्डेनेवियन देशों में नागरिक शिकायत निवारण की यह संस्था पूर्ण सफल रही है। **ब्रियां चैपमैन** के शब्दों में—"स्केण्डेनेवियन देशों के निवासियों को इस संस्था की सफलता की बधाई दी जानी चाहिए। इस संस्था की स्थापना की मौजूदगी के कारण ही स्वीडिश लोक सेवाएँ ईमानदार, निष्पक्ष तथा कुशल बनी हुई हैं।"

स्वीडन सहित अधिकांश देशों में ओम्बुड्समैन संस्था निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति करती है—

1. देश के संवैधानिक आदर्शों की रक्षा करना;
2. राष्ट्रीय कानूनों एवं प्रशासनिक नियमों का पालन सुनिश्चित करना;
3. जनसाधारण के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना;
4. लोक प्रशासन एवं अन्य सम्बद्ध अभिकरणों में अनियमितताओं तथा भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना;
5. प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं जवाबदेयता में वृद्धि करना;
6. प्रशासनिक अधिकारियों की स्वविवेकीय शक्तियों एवं विशेषाधिकारों को नियंत्रित बनाए रखना;

7. जनसाधारण तथा लोक सेवकों में कानून के प्रति आस्था में वृद्धि करना;
8. राष्ट्रीय संसाधनों के सदुपयोग तथा विकास को सुनिश्चित करना;
9. प्रशासनिक कानूनों, प्रक्रियाओं तथा कार्यप्रणाली के क्रम में सुझाव प्रस्तुत करना;
10. लोक सेवकों में ईमानदारी, निष्ठा, कर्मण्यता तथा प्रतिबद्धता का भाव उत्पन्न करना; तथा
11. नैतिक मूल्यों के प्रसार में भूमिका निभाना।

वस्तुतः ओम्बुड्समैन संस्था की उपादेयता केवल स्वीडन में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में समान रूप में सिद्ध हो चुकी है लेकिन मूल समस्या सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कारणों से जुड़ी हुई है। कानूनों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने, जनता के अधिकारों की रक्षा करने, शीघ्र एवं निष्पक्ष जाँच करने तथा प्रशासनिक कार्यकुशलता बनाए रखने में ओम्बुड्समैन सर्वाधिक प्रभावी संस्था है।

प्रायः कहा जाता है कि ओम्बुड्समैन संस्था को जितनी सफलता स्वीडन, नार्वे, फिनलैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों में प्राप्त हुई है उतनी एशियाई एवं लेटिन अमेरिकी देशों में प्राप्त नहीं हुई। स्वीडन के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि वहाँ नागरिक अधिकारों के प्रति चेतना तथा राजनीतिक प्रतिबद्धता सहित सामाजिक स्तर पर नैतिक मूल्यों की जड़ें अत्यन्त गहरी हैं। चूँकि ओम्बुड्समैन की संस्था लगभग 200 वर्ष पुरानी हो चुकी है तथा लोक प्रशासन सहित न्याय प्रशासन, सैन्य प्रशासन एवं स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ इसके जाँच क्षेत्र में सम्मिलित हैं अतः इस संस्था की प्रभावशीलता स्पष्टतः दिखाई देती है। स्वीडन में प्रेस की स्वतंत्रता, प्रेस द्वारा ओम्बुड्समैन के कार्यकरण पर टिप्पणी तथा आम जनता द्वारा उन फाइलों का निरीक्षण-अधिकार जो ओम्बुड्समैन ने बन्द कर दी हैं, ऐसे निर्णायक बिन्दु हैं जो ओम्बुड्समैन संस्था को प्रभावी सिद्ध करते हैं। कटु वास्तविकता यही है कि स्वीडन के नागरिक स्वभावतः राष्ट्रभक्त, चरित्रवान एवं कानूनों के प्रति आदर भाव रखने वाले व्यक्ति हैं। इसी कारण स्वीडन में एक वर्ष में सौ से भी कम शिकायतें प्रशासन के विरुद्ध दायर होती हैं। यद्यपि ओम्बुड्समैन की सिफारिशें सरकार के लिए केवल परामर्श भर होती हैं किन्तु स्वीडिश सरकार उन्हें सम्मानपूर्वक स्वीकार करती आई है तथा यथावश्यक कदम भी उठाए हैं।

आलोचना (Criticism)

निस्संदेह ओम्बुड्समैन संस्था एक प्रभावी एवं लोकप्रिय मंच है किन्तु कोई भी व्यवस्था अपने आप में त्रुटिरहित अथवा दोषमुक्त नहीं होती है। इस संस्था के कार्यकरण से सम्बन्धित कतिपय दोष या सीमाएँ इस प्रकार वर्णित की जा सकती हैं—

1. स्वीडन में ओम्बुड्समैन को प्रशासनिक निर्णयों की आलोचना करने का अधिकार है किन्तु वह निर्णय को परिवर्तित नहीं कर सकता है।
2. पीड़ित पक्ष को क्षतिपूर्ति उपलब्ध कराने की शक्तियाँ ओम्बुड्समैन के पास नहीं

है। उसे न तो पूर्ण कार्यपालिका शक्तियाँ प्राप्त हैं और न ही पूरी तरह न्यायिक शक्तियाँ दी गई हैं।

3. ओम्बुड्समैन केवल एक **परामर्शदात्री निकाय** है अर्थात् उसकी जाँच तथा निष्कर्षों पर आधारित अनुशंसाओं को मानने के लिए सरकार बाध्य नहीं है।
4. गम्भीर वैधानिक त्रुटि के प्रकरण प्रायः उच्च न्यायालय द्वारा ही निर्णित हो पाते हैं।
5. ओम्बुड्समैन की उपस्थिति के कारण प्रशासन में कठोरता या नियमबद्धता की ओर झुकाव बढ़ता है तथा लोक सेवकों में पहल करने की क्षमता कम हो जाती है।
6. **गैलहोर्न** तथा अन्य विचारकों का मानना है कि ओम्बुड्समैन संस्था कई बार अति उत्साह में प्रशासनिक कार्यक्षेत्र में अतिक्रमण कर लेती है तो दूसरी ओर लोक सेवक आवश्यकता से अधिक सावधानियाँ बरतने लगते हैं। परिणामस्वरूप प्रशासन में मानवीय संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं रह पाता है।

स्वीडन में ओम्बुड्समैन तथा भारत में लोकपाल या लोकायुक्त संस्था की तुलना

प्रशासनिक अकर्मण्यता तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनसाधारण की शिकायतों की सुनवाई के लिए आधुनिक ओम्बुड्समैन संस्था की स्थापना का जनक स्वीडन को माना जाता है। आज भी स्वीडन में ओम्बुड्समैन संस्था किसी भी अन्य देश की तुलना में सर्वाधिक सफल तथा लोकप्रिय सिद्ध हो रही है। भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-69) की अनुशंसा पर केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल तथा राज्यों में लोकायुक्त संस्थाओं के निर्माण के प्रयास विगत तीन दशकों से जारी हैं। यद्यपि केन्द्र सरकार ने लोकपाल विधेयक 8 बार संसद में प्रस्तुत किया है किन्तु अभी तक यह विधेयक पारित नहीं हो सका है लेकिन आधे से अधिक राज्यों में लोकायुक्त संस्था स्थापित हो चुकी है।

यद्यपि लोकायुक्त को स्वीडन के ओम्बुड्समैन का प्रतिरूप माना जाता है तथापि वास्तविकता इस तथ्य को प्रमाणित नहीं करती है क्योंकि तीन दशक से राज्यों में कार्यरत लोकायुक्त संस्था न्यूनाधिक मात्रा में निष्प्रभावी सिद्ध हुई है। लोकायुक्त संस्था को न तो विधिसम्मत आवश्यकतानुसार अधिकार एवं शक्तियाँ प्रदान की गई हैं और न ही राजनीतिक स्तर पर इस संस्था के प्रति प्रतिबद्धता ही दिखाई दी है। यही कारण है कि संसद में लोकपाल विधेयक पारित न हो पाया है। प्रत्येक राज्य में लोकायुक्त की संरचना, कार्यप्रणाली, पदावधि, कार्यक्षेत्र तथा शक्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। केवल हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा तथा केरल राज्य में लोकायुक्त के जाँच दायरे में मुख्यमंत्री को भी सम्मिलित किया गया है अन्य राज्यों में नहीं। इसी प्रकार भारत में लोकपाल या लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र में न्यायाधीशों, सैन्य प्रशासन एवं स्थानीय संस्थाओं को सम्मिलित नहीं किया गया है और न ही प्रेस को लोकायुक्त किसी प्रकार सूचनाएँ उपलब्ध कराते हैं। अधिकांश लोकायुक्तों ने इस संस्था को नख-दन्त विहीन निष्प्रभावी संस्था के रूप में स्वीकार किया है। मध्यप्रदेश सरकार ने जब (2001) लोकायुक्त को

स्वीडन एवं भारत के ओम्बुड्समैन में अन्तर

	स्वीडन	भारत (लोकायुक्त)
1.	संवैधानिक तथा प्रभावी संस्था है।	राज्यों के लोकायुक्त वैधानिक तथा अल्पप्रभावी संस्थाएँ हैं।
2.	प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों के विरुद्ध जाँच नहीं कर सकता है।	मंत्रियों तथा कुछ राज्यों में मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध लोकायुक्त जाँच कर सकते हैं।
3.	न्यायाधीश, सैनिक प्रशासन, स्थानीय संस्थाओं सहित समस्त लोक सेवक जाँच दायरे में हैं।	केवल मंत्रियों तथा लोक सेवकों के विरुद्ध जाँच कर सकता है।
4.	प्रेस को जानकारी दे सकता है।	प्रेस को जानकारी नहीं दी जाती है।
5.	निर्णित प्रकरण की पत्रावली कोई भी देख सकता है।	भारत में प्रशासनिक गोपनीयता के कारण फाइल नहीं दिखाई जाती है।
6.	स्वयं की पहल पर कार्यालय का दौरा कर जाँच कर सकते हैं।	सामान्यतः लोकायुक्त ऐसी कार्यवाही नहीं करते हैं।
7.	प्रतिवर्ष लगभग 100 शिकायतें आती हैं।	प्रत्येक राज्य में एक माह में 100 से ज्यादा शिकायतें आ जाती हैं।
8.	सरकार अधिकांश सिफारिशें स्वीकार करती है।	अधिकांश सिफारिशें लम्बे समय तक विचाराधीन पड़ी रहती हैं।
9.	लोक प्रशासन तथा जनता में ओम्बुड्समैन के प्रति भय एवं सम्मान है।	सामान्यतः लोक सेवक, लोकायुक्त से भय नहीं खाते और न ही जनता इसे प्रभावी संस्था मानती है।

अवमानना सम्बन्धी अधिकार प्रदान करते हुए विधेयक पारित किया तो भाजपा के विरोध के चलते राष्ट्रपति ने सहमति प्रदान नहीं की थी।

निष्कर्षतः भारत में विदेशी प्रतिमानों तथा मूल्यों को अपनाने का केवल फैशन (दिखावटी) प्रचलित है। किसी भी कार्य के प्रति भारतीय जनमानस पूर्ण गम्भीर एवं प्रतिबद्ध नहीं हो पाता है। प्रत्येक स्तर पर छिद्रान्वेषी स्वभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यही कारण है कि लोकायुक्त संस्था प्रभावी नहीं बन पाई है। कटु सत्य यह भी है कि लोकायुक्त के वार्षिक प्रतिवेदन तक को जनप्रतिनिधि गम्भीरतापूर्वक नहीं पढ़ते हैं अतः स्वीडन के ओम्बुड्समैन की भारत के लोकायुक्त से तुलना करना उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि दोनों देशों की सामाजिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न प्रकृति की हैं। स्थिति यह है कि स्वीडन में **सन् 1766** में 'Freedom of Press Act' के माध्यम से जनता को सूचना का अधिकार दिया जा चुका था, जबकि शेष विश्व में यह अधिकार इसके 200-250 वर्ष पश्चात् मिलने लगा है।

BAPA(N)- 301

कार्मिक प्रशासन

PERSONNEL ADMINISTRATION

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी
फोन नं. 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं.18001804025
ई – मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर अल्का धमेजा, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रोफेसर उमा मैदुरी, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली	प्रोफेसर बी0 अरूण कुमार, लोक प्रशासन विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
डॉ0 घनश्याम जोशी, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री सुमित सिंह, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
श्री शुभांकर शुक्ला, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री प्रमोद चन्याल, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन

डॉ0 घनश्याम जोशी(असिस्टेन्ट प्रोफेसर)

कार्यक्रम समन्वयक, लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

इकाई- 1 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, स्वरूप और क्षेत्र इकाई- 2 प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवा एवं उसकी भूमिका इकाई- 3 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताऐं इकाई-4 कार्मिक प्रशासन के कार्य और महत्व	**कार्मिक प्रशासन (MAPA- 602) से साभार**
इकाई- 5 आधुनिक नौकरशाही के संदर्भ में लोक सेवा इकाई- 6 नौकरशाही के आधार इकाई- 7 सेवाओं का वर्गीकरण इकाई- 8 भारत में लोक सेवाओं का वर्गीकरण इकाई- 9 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ	
इकाई- 10 कार्मिक नीति इकाई- 11 भर्ती (सेवाओं में आरक्षण) इकाई- 12 पदोन्नति इकाई- 13 प्रशिक्षण का अर्थ, तहत्व एवं प्रकार इकाई- 14 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रणाली एवं संस्थाऐं	
इकाई-15 निष्पादन मूल्यांकन	लेखक- श्री सुमित सिंह, लोक प्रशासन विभाग, यू0 ओ0 यू0, हल्द्वानी

प्रकाशन वर्ष- 2025

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन- निदेशालय अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

BAPA(N)- 301 कार्मिक प्रशासन

अनुक्रम

	खण्ड 1 -कार्मिक प्रशासन	
1	कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, स्वरूप और क्षेत्र	1 – 13
2	प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवा एवं उनकी भूमिका	14 – 27
3	भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं	28 – 38
4	कार्मिक प्रशासन के कार्य और महत्व	39 – 48
	खण्ड 2 -भारत में लोक सेवा	
5	आधुनिक नौकरशाही के सन्दर्भ में लोक सेवा	49 – 61
6	नौकरशाही के आधार	62 – 71
7	सेवाओं का वर्गीकरण	72 – 83
8	भारत में लोक सेवा का विकास	84 – 96
9	सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ	97 – 108
	खण्ड 3 -कार्मिक प्रबन्धन: नीति और व्यवहार	
10	कार्मिक नीति	109 – 122
11	भर्ती (सेवाओं में आरक्षण)	123 – 139
12	पदोन्नति	140 – 155
13	प्रशिक्षण का अर्थ, महत्व एवं प्रकार	156 – 166
14	लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रणाली एवं संस्थाएं	167 – 177
15	निष्पादन मूल्यांकन (Performance appraisal)	178 – 188

इकाई- 1 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, स्वरूप एवं क्षेत्र

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा

1.2.1 कार्मिक प्रशासन: परिभाषा एवं अर्थ

1.3 कार्मिक प्रशासन: विकास के चरण

1.4 कार्मिक प्रशासन: स्वरूप

1.5 कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र

1.6 निष्कर्ष

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

किसी भी देश के उद्देश्यों की प्राप्ति में सबसे महत्वपूर्ण इकाई संगठन ही होता है एक सफल संगठन ही देश की सफलता की सबसे प्रथम आवश्यकता होती है। किसी भी संगठन को सफल बनाने हेतु दो बातें आवश्यक होती हैं। प्रथम, उसमें उपलब्ध मानव शक्ति की गुणवत्ता, द्वितीय नेतृत्व की गुणवत्ता। अर्थात, शक्ति संगठन को सफल नहीं बना सकती सफलता के लिये मानव शक्ति की आवश्यकता होती है। यद्यपि, संगठन के सफलतापूर्वक संचालन में वित्तीय, तकनीकी एवं अन्य प्रकार के साधनों का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है, परन्तु सबसे श्रेष्ठ स्थान या भूमिका उसमें उपस्थित मानव संसाधन की होती है। कार्मिक प्रशासन मानव साधनों के उचित प्रबंधन से जुड़ा होता है। इस इकाई में हम कार्मिक प्रशासन के इन्हीं पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन के विकास के विभिन्न चरणों के बारे में जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को समझ पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन की विभिन्न परिभाषा ओं के आधार पर उसके अर्थ को जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के स्वरूप की विवेचन कर पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र को विस्तार पूर्वक समझ पाएंगे।

1.2 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा

आधुनिक युगलोक कल्याणकारी राज्यों का युग है, जहां विकास एवं कल्याण से संबंधित सभी कार्य प्रशासन का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। सरकार का यही उत्तरदायित्व संगठनों के कार्य, उत्तरदायित्व, गतिविधियों आदि में

सीमित वृद्धि करता है इसके परिणाम स्वरूप संगठनों की मांग तो बढ़ती ही है साथ ही साथ उनसे कार्यकुशलता की अपेक्षाएं भी बढ़ती जाती हैं, क्योंकि संगठन की सफलता इस बात पर ही निर्भर करती है कि उस में कार्यरत कर्मचारी विकास की बढ़ती गति एवं मांग के साथ किस प्रकार से सामंजस्य बिठाता है एवं संगठन के हितों के लिए कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को समझने के लिए हम इसके विकास के चरणों इसकी परिभाषा अर्थ एवं प्रकृति के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं।

1.2.1 कार्मिक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा

आदि काल से लेकर अब तक मानव सभ्यताओं तथा संस्कृति का अत्यधिक विकास हुआ है। विश्व इतिहास के पन्नों में वर्णित तथा अवर्णित शासन व्यवस्थाओं ने भी विकास की इस प्रक्रिया में व्यापक भूमिका निभायी है।

विकास की ये सदियों पुरानी प्रक्रिया संगठनात्मक प्रयासों तथा संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर करती रही है।विकास के लिए आवश्यक संसाधनों में मशीन, प्राकृतिक सामग्री,तकनीक,वित्त तथा श्रम शक्ति की उपलब्धता प्राथमिक शर्त है।समस्त प्रकारके संसाधनों में मानव श्रम शक्ति अर्थात कर्मचारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि शेष संसाधनों का सदुपयोग मानवीय कुशलता तथा प्रतिबद्धता पर ही निर्भर करता है। अतः वर्तमान प्रशासनिक परिदृश्य में सर्वाधिक ध्यान मानव संसाधन विकास (Human Resource Development) पर दिया जा रहा है।प्रशासन तथा प्रबंध से संबद्ध इकाइयों में कार्मिक प्रशासन को अब एच. आर. डी.(H.R.D.) भी कहते हैं, क्योंकि संगठनात्मक लक्ष्यों की संपूर्ति तथा उस संगठन की छवि उसमें कार्यरत कार्मिकों पर ही निर्भर करती है। इसलिए ई. एन. ग्लैडेन कहते हैं- "लोक प्रशासन में कर्मचारी ही मुख्य तत्व है।" है परंतु वास्तविक रूप में वह अकेला कुछ नहीं कर सकता। वास्तविक रूप में उसमें काम करने वाले स्त्री-पुरुष जो विभिन्न उच्च और निम्न पदों पर नियुक्त होते हैं वो बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। यदि संगठन में से कार्मिक को निकाल दें तो वह एक अमूर्त वस्तु बन जाता है, अर्थात वह पारस्परिक संबंधों की एक ऐसी व्यवस्था मात्र रह जाता है जो संगठन के मस्तिष्क में अथवा काग़ज़ पर ही होती है। संगठन के भीतर विविध पदों पर कार्य करने वाले कार्यकर्ता, अधिकारी अथवा सेवक सामूहिक रूप से कार्मिक अथवा सेवकों के नाम से पुकारे जाते हैं।

किसी भी देश का प्रशासन वास्तविक रूप में सेवीवर्ग अथवा कार्मिक वर्ग द्वारा ही किया जाता है।शासन में नीति-निर्माण का कार्य राजनीतिक नेतृत्व द्वारा किया जाता है, लेकिन उन नीतियों को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व सेवीवर्ग पर है। राज्य की कल्याणकारी स्वरूप के विस्तार के साथ-साथ सेवीवर्ग अथवा कार्मिक प्रशासन का महत्व बढ़ता जा रहा है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सफल सेवीवर्ग प्रशासन जहाँ एक ओर प्रशासन की सफलता के लिए परमावश्यक है, वहीं दूसरी ओर लोक-कल्याण की अभिवृद्धि का भी आधार-स्तंभ है। अत: प्रशासन-यन्त्र को संचालित करने वाले इन लोगों का ध्यान रखें बिना सम्पूर्ण प्रशासकीय ढांचा चरमरा जाएगा और प्रशासकीय प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाएगी। अर्थात प्रशासन के मानवीय पहलू की अपेक्षा अधिक घातक होगी। व्यवहार में, वहीं प्रशासन सफल हो सकता है जो मानव-स्वभाव और मानवीय आकांक्षाओं के अनुरूप हो। सेवीवर्ग प्रशासन अथवा कार्मिक प्रबन्ध वह केन्द्र बिन्दु है जिसके इर्द-गिर्द प्रशासन की विविध समस्याएं छायी रहती हैं। सुयोग्य और कुशल कर्मचारी प्रशासकीय ढांचे और प्रशासकीय प्रक्रिया की निर्बलताओं को दूर करके प्रशासन के उद्देश्यों की पूर्ति को संभव बनाते हैं, जबकि अयोग्य और अकुशल कर्मचारी श्रेष्ठ प्रशासनिक ढांचे और प्रक्रिया को निर्बल और अस्त-व्यस्त बना देते हैं। इस संबंध में हरमन फ़ाइनर का कहना है, "लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।" इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सुगठित तथा सुविचारित सेवीवर्ग प्रशासन ही किसी प्रशासनिक संगठन की सफलता का मुख्य आधार है। नीग्रो का मानना है कि, कार्मिकों की कुशलता तथा योग्यता ही संगठन की सफलता को निर्धारित करती है। योग्य तथा

प्रतिबद्ध कर्मचारी, कमजोर प्रशासनिक व्यवस्था की कमियों को दूर कर उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल रहते है जबकि अयोग्य तथा निकृष्ट कर्मचारी सर्वोत्कृष्ट प्रशासनिक व्यवस्था को भी असफल सिद्ध कर सकते है।"

उपरोक्त वर्णित अवधारणा की विवेचना के उपरान्त अब कार्मिक प्रशासन के अर्थ को विस्तार से समझते हैं। कार्मिक प्रशासन लोक प्रशासन की वह शाखा है जो कार्मिक संसाधनों के प्रबंधन में संगठन की सहायता करती है,इसके लिए पूर्व विचारित नियमों,परंपराओं और विवेकपूर्ण तकनीकों का प्रयोग कार्मिकों के विकास, प्रतिधारण और चयन में किया जाता है ताकि वैज्ञानिक और व्यवस्थित ढंग से संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। सरल शब्दों में कार्मिक प्रशासन कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन, भत्ते, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश, परिवेदना निवारण, पेंशन, सेवा निवृत्ति आदि आयामों को समाहित किया जाता है ।

कार्मिक प्रशासन को सेवीवर्गीय या स्टाफ़ प्रबंध या जनशक्ति प्रबंध के नाम से भी जाना जाता है। औद्योगिक संस्थानों में कार्मिक प्रशासन से सम्बंधित प्रकरण "कर्मचारी प्रबन्ध", मानव संसाधन प्रबन्ध या "श्रम सम्बन्ध" या "औद्योगिक सम्बन्ध" के नाम से भी समझे जाते हैं। कार्मिक प्रशासन के प्रति गम्भीर चिन्तन उत्पन्न कराने में एफ. डब्लू. टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान है ।

कार्मिक प्रशासन के अर्थ को और स्पष्टता से समझने के लिए आइए इसकी कुछ परिभाषाओं को देखा जाए-

नैशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ़ पर्सोनेल मैनेजमेंट (National Institute of Personnel Management) ने कार्मिक प्रशासन को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है, ''कार्मिक प्रबन्ध प्रबन्धन कार्य का वह भाग है जिसका सम्बन्ध प्रमुखतया संगठन के भीतर मानवीय रिश्तों से होता है। इसका उद्देश्य इन रिश्तों को ऐसे आधार पर बनाए रखना है जो व्यक्ति की भलाई को ध्यान में रखते हुए उन सभी को जो उस संगठन में कार्य करते हैं, इस योग्य बनाता है कि वे संगठन के प्रभावकारी रूप से चलने में अपना योगदान दें।''

पीयर्स और मायर्स का कथन है कि ''कार्मिक प्रबन्ध, कर्मचारियों की समर्थता को विकसित करने का एक तरीक़ा है ताकि वे अपने कार्य से अधिकतम संतोष प्राप्ति करें और संगठन के लिए अपने उत्तम प्रयास करें।''

मार्शल ई. डिमॉक के अनुसार, ''कार्मिक प्रशासन ऐसी प्रशासनिक प्रक्रियाओं का नाम है जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार लक्ष्यों का नियम तथा परिवर्तन किया जाता है।''

एडविन फ़िलपो के विचरानुसार, "सेवीवर्ग प्रबन्ध, कार्य करने वालों लोगों अर्थात कर्मचारियों की कार्य सम्पन्नता को नियोजित, संगठित, निर्देशित तथा नियंत्रित करता है।"

इस प्रकार विभिन्न परिभाषाओं के द्वारा कार्मिक प्रशासन का अर्थ विस्तार से जान लेने के बाद ये भी जान लें कि सरकारी कार्यालयों एवं निजी संगठनों में कार्मिक प्रशासन से सम्बंधित व्यवस्था भी अलग अलग प्रकार से देखी जा सकती है या उपस्थित होती है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में चूँकि कार्यों की प्रकृति, उत्पादन, वितरण, विनियोजन, कार्मिक प्रकरणों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है, अतः वहाँ कार्मिक कार्यों को सम्पादित करने के लिए एक पृथक से इकाई, शाखा या विभाग होता है, जो एक वरिष्ठ प्रबन्धक के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसके विपरीत सरकारी विभागों या कार्यालयों में प्रायःअलग से कार्मिक प्रशासन की कोई इकाई नहीं होती है, बल्कि सम्बन्धित कार्यालय या विभाग में कार्मिकों के लिए दी जाने वाली प्रक्रियाएं ही सामूहिक रूप से कार्मिक प्रशासन कहलाती हैं। संबंधित कार्यालय का अधिकारी ही कार्मिक अधिकारी होता है। सरकारी कार्यालयों में सामान्य रूप से दो शाखाएं अवश्य होती है- संस्थापना शाखा(Establishment branch) और लेखा शाखा (Accounts branch)। इन दो शाखाओं के अतिरिक्त अन्य प्रशासनिक शाखाएं भी संबंधित कार्यालय की कार्य प्रकृति के अनुसार गठित की जाती है।

संस्थापना शाखा को कार्मिक प्रशासन का लघु रूप माना जाता है। कर्मचारियों की भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, वेतनवृद्धि, पदोन्नति इत्यादि का कार्य इसी शाखा के द्वारा देखा जाता है। सरकारी पैसे को राजकोष से निकालने, व्यय करने, बिल तैयार करने तथा वेतन इत्यादि का समस्त कार्य लेखा शाखा द्वारा सम्पादित होता है। कार्मिक

प्रकरणों के सभी वित्तीय मामले इसी शाखा के द्वारा निपटाए जाते हैं।अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि, कार्मिकों से सम्बंधित विभिन्न कार्य एवं उनका कार्यान्वयन कार्मिक प्रशासन कहला सकता है ,फिर चाहे वह किसी भी शाखा से संपादित किया जाए।

उपरोक्त वर्णित सभी परिभाषाओं के माध्यम से कार्मिक प्रशासन की कुछ विशेषताओं को इंगित किया जा सकता है-

- कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में कार्य करने वाले लोगों अर्थात मानवीय तत्वो से सम्बंधित होता है।
- संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में आवश्यक होता है।
- कर्मचारियों को संगठनमें लाने, उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से सम्बन्धित कार्य करता है।
- कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर से प्रभावित होता है।
- कर्मचारियों की क्षमताओं, इच्छाओं तथा सन्तुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करता है।
- संगठात्मक विकास के लिए यह एक आवश्यक एवं निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।
- समग्र प्रशासन का वह भाग है जो कार्मिक मामलों से सम्बंधित है।

1.3 कार्मिक प्रशासन के विकास के चरण

राष्ट्रीय स्तर पर कार्मिक प्रशासन के विकास के चरणों को देखने से पहले आइए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्मिक प्रशासन के विकास को समझते हैं। ब्रिटेन में कुछ उद्यमियों ने कल्याणकारी विचारधारा को अपनाया, जिसके कारण वहां पर स्वत: ही आधुनिक कार्मिक प्रशासन की स्थापना हो गई। जबकि दूसरी तरफ अमेरिका की बात करें तो कार्मिक प्रबंध की धारणा का विकास वास्तव में यही पर हुआ माना जाता है। इस तथ्य को समझने के लिए निकोलस हेनरी द्वारा अमेरिका में सरकारी तंत्र के कार्मिक प्रशासन अर्थात लोक कार्मिक प्रशासन द्वारा विश्लेषित 7 चरणों को देखते हैं- प्रथम चरण(1789-1829), द्वितीय चरण(1829-1883), तृतीय चरण(1883-1906), चतुर्थ चरण(1906-1937), पंचम चरण (1937-1955), षष्टम चरण(1955-1970), सप्तम चरण (1970-tl ll date)

प्रथम काल को एल0 डी0 व्हाइट ने भद्रजनों द्वारा शासन माना, क्योंकि इस समय अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज वॉशिंगटन ने संघीय नौकरशाही में योग्य तथा प्रतिभावान लोगों को नियुक्त करने को प्राथमिकता दी। 1832 में अमरीकी सीनेटर विलियम एल. आर. मर्की ने 'लूट प्रणाली' का नाम दिया था, क्योंकि उस समय एंड्रयू जैक्सन के काल में नौकरशाही लूट प्रणाली से भरी थी। चतुर्थ काल एफ0 डब्लू0 टेलर के वैज्ञानिक प्रबंधन का दौर था। वैज्ञानिक प्रबंधन का यह सिद्धांत ही वास्तव में कार्मिक प्रशासन की आधारशिला था।

टेलर ने कार्मिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन या भर्ती, व्यवस्थित प्रशिक्षण व्यवस्था तथा कार्मिकों के व्यक्तिगत विकास पर अत्यधिक बल दिया था और उनके ही सहयोगी एच0 एल0 गेंट ने कहा था कि इस वैज्ञानिक प्रबंध आंदोलन को सफल बनाने में कार्मिकों की भागीदारी होना अति आवश्यक है। गेंट ने कहा कि कार्मिकों को केवल यह बताना ही काफी नहीं होगा कि उन्हें कैसे काम करना चाहिए बल्कि उन्हें इस बात के लिए भी तैयार करना होगा कि वे अपना काम अपनी पूरी काबिलियत के साथ निभा सके। इसी के साथ मेरी पार्कर फ़ौलेट ने भी प्रबंध

के प्रशिक्षण तथा विकास आयामों पर जोर दिया।अर्थात इस दौर में वैज्ञानिक प्रबंधन का समर्थन करने वाले सभी लोगों ने कार्मिकों में कार्यकुशलता बढ़ाने तथा उनमें से अपने कार्य के प्रति उदासीनता को रोकने का प्रयास किया।

इसके बाद कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में करीब करीब इसी काल में भारी हलचल एल्टन मेयो के हार्थॉर्न प्रयोगों के द्वारा मची प। इन प्रयोगों के द्वारा मानव संबंधों के अध्ययन का आंदोलन प्रारंभ हुआ। आगे जाकर इसी के कारण कार्मिक प्रबंध के सिद्धांत तथा व्यवहार विकसित होने लगे।

पंचम चरण में ब्राउन्लो समिति की प्रशासनिक प्रबंधन पर एक रिपोर्ट आई जिसने लोक प्रशासन को प्रबंध की ओर झुकाया। षष्ठम् चरण में लोक सेवाओं में पेशेवर अंदाज को बढ़ावा मिला। सप्तम चरण में राजनीति और प्रशासन में आपस में समीपता बहुत बढ़ी।

इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत में सरकार के अथक प्रयासों के कारण ही कार्मिक प्रशासन की उन्नति हुई है। भारत में कार्मिक प्रबंधन के क्षेत्र में सरकार की रुचि ऐसे ही नहीं बनी थी। इसके पीछे अनेक कारण उत्तरदायी थे, जैसे उत्पादन के स्तर में कमी श्रमिकों का असंतोष एवं भर्ती के अव्यवस्थित तरीके आदि। वास्तव में तो कार में प्रबंध की धारणा का विकास तो संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था । हमारे देश भारत में कार्मिक प्रबंध के विकास का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। 1920 के दशक में पैदा हुए औद्योगिक विवादों ने सरकार व उद्योगपतियों का ध्यान श्रमिक समस्याओं का उचित कार्मिक प्रबंधन व्यवस्था के द्वारा समझाने की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया। यही कारण रहा कि 1920 में ही कई बड़े औद्योगिक संस्थानों व कल कारखानों में श्रमिक कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति की गई। इन अधिकारियों ने श्रमिकों की शिकायतों को निपटाने के साथ-साथ औद्योगिक भाईचारे को भी बढ़ाने का काम किया। इसके पश्चात वर्ष 1937 में बंगाल सरकार के सुझाव पर भारतीय जूट मिल परिषद ने पहले तो एक श्रमिक कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की एवं इसके द्वारा श्रमिकों की शिकायतों का सफल रूप से सुलझायें जाना देख, बाद में 1939 में पांच अन्य अधिकारियों की भी नियुक्ति की गई। इसके बाद भारतीय चाय परिषद तथा भारतीय इंजीनियरिंग परिषद ने भी इस व्यवस्था का अनुसरण अपने अपने संस्थानों में किया। वर्ष 1941 में भारत सरकार ने एक त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन बुलाया जिसमें सरकार, श्रमिकों तथा कर्मचारियों के प्रवक्ता शामिल हुए। इस सम्मेलन का उद्देश्य एक समान विधान के काम को बढ़ावा देना, औद्योगिक विवादों को सुलझाने की एक निश्चित कार्य विधि सुझाना तथा औद्योगिक मामलों के संदर्भ में सलाह मशवरे को बढ़ावा देना था। वर्ष 1948 में जो कारखानों का अधिनियम बनाया गया, उसके तहत हर उद्योग में एक कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गई और साथ ही इनके नियुक्ति की प्रणाली, कर्तव्य और योग्यताओं के बारे में भी बताया गया इसी प्रकार से बाद के वर्षों में भी और इसी प्रकार के एक और अधिकारी की नियुक्ति की गई और उसे 'कार्मिक अधिकारी' का नाम दिया गया। यह अधिकारी श्रमिक कल्याण, औद्योगिक संबंधों तथा कार्मिक प्रशासन की समस्याओं को निपटाता है। यही कारण है कि अब भारत की लगभग हर कंपनी में ना केवल विशेषीकृत कार्मिक विभाग पाए जाते हैं, बल्कि इनमें पूर्णकालिक कार्मिक अधिकारी भी नियुक्त किए जाते हैं।

1.4 कार्मिक प्रशासन का स्वरूप

अब तक आप यह तो समझ ही गए होंगे कि, संगठन में, चाहे वह सरकारी हो या गैर-सरकारी अर्थात निजी, कार्मिक प्रशासन एक महत्वपूर्ण तत्व होता है एवं उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। इसको और स्पष्ट तौर पर ऐसे भी समझा जा सकता है कि, हर संगठन के कुछ निश्चित उद्देश्य तथा लक्षण होते हैं एवं उन लक्षण एवं उद्देश्यों की प्राप्ति का एकमात्र साधन कार्मिक प्रशासन ही होता है। संगठन स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होता है अर्थात यदि सामाजिक-आर्थिक या राजनीतिक पर्यावरण में परिवर्तन आता है तो संगठन के प्रबंधन को भी सामंजस्य स्थापित करने हेतु परिवर्तित होना पड़ता है और क्योंकि प्रबंधन परिवर्तित होता है तो कार्मिक प्रशासन

भी प्रभावित होता है। कार्मिक प्रशासन पर यह प्रभाव कार्मिकों के बदलते जीवन मूल्यों उनकी संगठन से अपेक्षाओं, कार्यकुशलता आदि के रूप में प्रदर्शित होता है।

आपको ज्ञात होगा कि किसी भी संगठन में कार्मिकों द्वारा संपादित की जाने वाली गतिविधियों को दो श्रेणियों में बांटा जाता है- लाइन एवं स्टाफ।

किसी भी संगठन की ऐसी गतिविधियां जो उस संगठन के आधारभूत या बुनियादी लक्ष्यों से संबंधित होती हैं वह लाइन गतिविधियों की श्रेणी में आती हैं एवं स्टाफ गतिविधियां वह होती हैं जो कि कार्य क्षेत्र से संबंधित भूमिकाओं के निष्पादन में सहायक होती हैं। अर्थात किसी भी संगठन के सफल संचालन में, लाइन तथा स्टाफ कार्मिकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है या यूँ कहें कि इनके बिना संगठन कार्य नहीं कर सकता तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कार्मिकों द्वारा संपादित की जाने वाली यह गतिविधियां ही प्रशासनिक गतिविधियां है।

कार्मिक प्रशासन की प्रकृति में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। जैसे- देश की सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक परिस्थितियों परिवर्तित होती है तदनुरूप कार्मिक प्रशासन के कार्य, प्राथमिकताएं एवं गतिविधियां भी परिवर्तित होती हैं एवं प्रशासन की प्रकृति के अनुरूप ही कार्मिक प्रशासन की प्रकृति भी परिवर्तित होती है। भारत के संदर्भ में यदि भारतीय प्रशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से लेकर वर्तमान काल तक यदि प्रकाश डाला जाए तो हम पाते हैं कि भारतीय प्रशासन का स्वरूप ब्रिटिश काल से लेकर वर्तमान कल्याणकारी राज्य एवं लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों की उत्पत्ति एवं प्रसार के पश्चात अत्यधिक परिवर्तित हो चुकी हैं। इसी कारण कारण प्रशासन में लोक कल्याणकारी, संकल्पना, आकार में विस्तार, जन-सहभागिता, अपेक्षा, लोकतांत्रिकता में विश्वास जैसी विशेषताओं का समागम किया। कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं के आधार पर ही कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को अग्रलिखित बिंदुओं में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **कार्मिकों की संख्या में बढ़ोतरी-** आधुनिक युग में शासन के समस्त कार्यकलाप प्रशासन के माध्यम से ही संचालित होते हैं।लोक कल्याणकारी प्रकृति को अपनाने के कारण ये कार्य दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। इन सब कार्यों के संपादन का उत्तरदायित्व प्रशासन अर्थात अप्रत्यक्ष रूप से कार्मिक प्रशासन का ही है, क्योंकि प्रशासन तो अपने कार्यों का संपादन कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही करता है। इन बढ़ते कार्यों का निष्पादन करने के लिए बड़ी संख्या में कार्मिकों की आवश्यकता महसूस की जाती है और यह दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। कहा जा सकता है कि बहुत बड़ी संख्या में कार्मिकों का होना भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति के तौर पर ही देखा जाता है।
2. **गंभीर प्रकृति के दायित्व-** कार्मिक वर्ग प्रशासन के संगठन में मानव शक्ति के साथ व्यवहार करता है, जिसका अर्थ है इसका संबंध उन प्रक्रियाओं से है, जिनके द्वारा कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पद ग्रहण तथा पदोन्नति निश्चित की जाती है। परंतु अब कार्मिक प्रशासन के दायित्व गंभीर प्रकृति के हो गए हैं। अब कार्मिक प्रशासन को जनता की संतुष्टि, कार्मिकों की संतुष्टि का स्तर बनाए रखना, संगठन के लक्ष्यों को कुशलता पूर्वक प्राप्त करना तथा कार्मिकों का विकास करना भी होता है। अतः अब गंभीर प्रकृति के दायित्वों का निर्वहन भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति ही मानी जाती है।
3. **मानवीय संबंधों तथा व्यवहारों के अनुरूप-** जैसा कि आपने जाना कि कार्मिक प्रशासन कार्मिकों से संबंधित है। कार्मिक स्वयं मनुष्य है, अतः कार्मिक प्रशासन का स्वरूप पूरी तरह से मानवीय संबंधों, व्यवहार तथा इसकी जटिलताओं से जुड़ी है। अलग-अलग स्थानों पर कार्मिकों का व्यवहार अलग-अलग मिल सकता है। परंतु अधिकांश कार्मिकों का चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, देश, भाषा से संबंधित हो मूल स्वभाव तो समान ही होता है। बदलती हुई दुनिया में मानवीय अपेक्षाओं तथा चेतना में भी परिवर्तन आता रहता है अतः कार्मिक प्रशासन को भी उसके अनुरूप स्वयं को ढालना होता होता है।

4. **उच्च योग्यताधारी कार्मिक-** आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान के युग में ज्ञान अर्जित करना बहुत आसान हो गया है। ऐसे में कार्मिक प्रशासन में उच्च योग्यता धारी कार्मिक पाए जाते हैं यह भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति ही बन गई है। अब योग्य, मेधावी, तथा गुणवान कार्मिक पहुंच सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। यह कार्मिक निरंतर अपनी योग्यताओं व गुणों में वृद्धि के लिए भी प्रयास करते रहते हैं।
5. **परिवर्तित प्रवृतियां-** बदलते समय के साथ-साथ कार्य करने की दशाएं, परिस्थितियां, परम्पराएँ, संस्कृतियां, सब परिवर्तित हो रही हैं। ऐसे में कार्मिक प्रशासन की प्रवृतियां भी ना केवल परिवर्तित होने लगी हैं, बल्कि मनोवृत्तियाँ तथा कार्यशैली भी परिवर्तित होने लगी है।
6. **विशेषीकरण-** प्राकृतिक विज्ञान की भांति ही सामाजिक विज्ञान में भी अब सामान्य से विशेष की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है। कारणवश लोक प्रशासन का कार्य क्षेत्र भी विशेषीकृत होने लगा है। अर्थात प्रशासनिक इकाइयाँ एवं संस्थाएं कार्य विशेष की ओर केंद्रित होती हैं। अब एक ही संगठन या एक ही व्यक्ति से बहुत से कार्यों की अपेक्षा नहीं की जाती, बल्कि ऐसा माना जाता है कि, एक संगठन या व्यक्ति एक विशेष प्रकार का कार्य ही करें। इसके लिए आवश्यक शर्त यह होती है कि उस कार्य में वह निपुण हो तथा उसे सक्षम तरीके से क्रियान्वित करें। यही सब कारण है कि अब कार्मिकों की योग्यताएं, पद तथा अपेक्षाएं सब विशेषीकृत होते जा रहे हैं।
7. **भेदभाव रहित-** कार्मिक प्रशासन की प्रकृति भेदभाव रहित मानी जाती है। कार्मिक प्रशासन में किसी भी धर्म, जाति, लिंग, रंग वंश के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। अर्थात उच्च अधिकारी एवं निम्न अधिकारी के संबंध निर्दिष्ट हैं और वे धर्म, जाति आदि तत्वों से अप्रभावित रहते हैं।
8. **सहभागिता का बढ़ता महत्व-** लोक सेवाओं के कार्मिक प्रशासन की परंपरागत मान्यताओं तथा विचारधाराओं में परिवर्तन आया है। अब नए परिवेश में आम सहमति से ही सारे निर्णय लिए जाते हैं। एक दूसरे के साथ समन्वय तथा सहभागिता को महत्व दिया जाने लगा है। यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन का स्वरूप भी लोकतांत्रिक हो गया है। प्रशासन का यह प्रयास रहता है कि ना केवल लोक सेवक, बल्कि जन सहभागिता को भी अधिक से अधिक प्राप्त करने का प्रयास करें।
9. **अभिप्रेरणाओं की पोषक-** वर्तमान में कार्मिक प्रशासन की प्रकृति सकारात्मक अभिप्रेरणाओं की पोषक है। संगठन की मानव संबंध एवं व्यवहारवादी विचारधाराओं के आधार पर अब यह माना जाने लगा है कि सेवक से दंड एवं प्रताड़ना के द्वारा नहीं बल्कि, पुरस्कार, प्रशंसा, अनौपचारिक संबंधों एवं सहयोगी पर्यवेक्षण आदि को बढ़ावा देकर ही श्रेष्ठ कार्य निष्पादन करवाया जा सकता है। इसके द्वारा संगठन की कार्यकुशलता एवं कार्मिकों की संतुष्टि को भी उच्च स्तर प्रदान किया जा सकता है।
10. **क्षेत्रीयता की ओर उन्मुख-** कार्मिक प्रशासन की प्रकृति क्षेत्रीयता की ओर उन्मुखता भी है। लोक प्रशासन के बढ़ते हुए क्षेत्र तथा कार्य क्षेत्र के कारण अब कार्मिक प्रशासन का भी विस्तार केंद्रीय स्तर से लेकर क्षेत्रीय स्तर तक होने लगा है। राज्य की लोक कल्याणकारी अवधारणा के कारण प्रशासन की जनकल्याण की गतिविधियों में वृद्धि हुई एवं उनके संपादन हेतु कार्मिकों की संख्या बढ़ने लगी है। प्रशासनिक विकेंद्रीकरण की अवधारणा भी क्षेत्रीयता की उन्मुखता को बढ़ावा देती है। प्रशासनिक अधिकारी राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन उनके नेतृत्व में ही कार्य करते हैं। उन्हें सत्तारुढ़ दल की नीतियों तथा चुनावी घोषणाओं के अनुरूप ही कार्य करना पड़ता है। सभी प्रशासनिक अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे पूर्णतया निष्पक्ष तथा तटस्थ भाव से जनता की सेवा करें ताकि जनता को प्रदान की जाने वाली सेवाएं राजनीतिक भेदभाव से मुक्त हो।

उपरोक्त बिंदुओं के आधार पर कार्मिक प्रशासन के स्वरूप को समझने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि अब परंपरागत मान्यताओं को सिद्धांतों की कसौटी पर परखा जाता है। आज कार्मिक प्रशासन की कार्यशैली पूरी तरह

से ऐसे सिद्धांतों पर आधारित है जो बहुत से परीक्षणों से गुजरे हैं, तर्कों पर आधारित हैं एवं अनुभव के आधार पर उनको उपयोगी भी पाया गया है। कार्मिक प्रशासन के स्वरूप को भलीभांति जानने के बाद आइए कुछ ऐसे सिद्धांतों को भी जानें जो मान्यता प्राप्त है एवं इसके स्वरूप को और स्पष्टता से समझने में सहायक है। यह सिद्धांत कुछ इस प्रकार हैं-

1. **योग्यता का सिद्धांत-** आधुनिक लोक सेवा तथा नौकरशाही, वेबर प्रतिमान के योग्यता सिद्धांत को मंजूरी देती है। इस सिद्धांत के अनुसार योग्य व्यक्तियों के समूह में से बिना किसी भेदभाव के योग्यतम व्यक्ति का चयन किया जाता है। कार्मिक प्रशासन का यह दायित्व होता है कि वह संबंधित पदों पर भर्ती करने से पहले ही उन पदों के लिए आवश्यक योग्यताओं का स्पष्ट निर्धारण कर उनके लिए विज्ञप्ति जारी करें, सभी को आवेदन करने का अवसर प्रदान करें, निष्पक्ष चयन प्रक्रिया को अपनाते हुए चयन करें एवं योग्यता क्रम को निर्धारित करें।
2. **अवसर की समानता का सिद्धांत-** भारत एक लोकतांत्रिक देश है। इसका अपना लिखित संविधान है, जिसमें इस के नागरिकों को दी जाने वाली स्वतंत्रताएं, दायित्व एवं मौलिक अधिकार सभी स्पष्ट रूप से वर्णित हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-15 में प्रावधान किया गया है कि, राज्य के द्वारा किसी भी व्यक्ति से केवल धर्म, जाति, वंश, लिंग, वर्ण तथा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। अर्थात विधि के समक्ष भारत का हर नागरिक समान है। इसी समानता के सिद्धांत के आधार पर लोक सेवाओं में प्रवेश के अवसर भी सभी को समानता के साथ प्राप्त हैं। लोक सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था सदा से ही विवाद का विषय है, जिसे अवसर की समानता के सिद्धांत के मार्ग में बाधा के तौर पर देखा जाता है। इस प्रकार अवसर की समानता भी कार्मिक प्रशासन के स्वरूप को और स्पष्ट करता है।
3. **व्यक्तिगत विकास का सिद्धांत-** प्रत्येक कार्मिक का कौशल,क्षमताएँ आदि भिन्न-भिन्न होती है। राज्य की सेवाओं में काम करने वाले ऐसे भिन्न भिन्न प्रकृति के कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, आत्मविश्वास आदि में वृद्धि करना कार्मिक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। अतः कार्मिकों की व्यक्तिगत मान्यताओं तथा आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही कार्मिकों के विकास के कार्यक्रम निर्धारित करने चाहिए।
4. **उचित पुरस्कार का सिद्धांत-** किसी भी संगठन को उसके उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु ऐसे कार्मिकों की आवश्यकता होती हैं, जिन का मनोबल उच्च है। कार्मिकों का मनोबल तो तभी उच्च होता है जब संगठन के द्वारा कार्मिकों को सकारात्मक रूप से अभिप्रेरित किया जाए। अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार देना, प्रशंसा करना या प्रमाण पत्र देना हो सकता है। अतः कार्मिक प्रशासन की सकारात्मक अभिप्रेरणा की प्रकृति का विस्तार रूप ही उचित पुरस्कार का सिद्धांत है।
5. **माननीय व्यवहार का सिद्धांत-** संगठन की परंपरागत मान्यताओं के विपरीत आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार अब यह सिद्ध हो चुका है कि, मानव संबंध तथा समूह व्यवहार जिसमें कार्मिकों के मध्य भाईचारा, प्रेम तथा सहयोगी संगठन की सफलता की कुंजी है इसके अनुसार संगठन में उच्च अधिकारियों के मध्य एक सामान्य व्यवहार रहना चाहिए।
6. **उचित पारिश्रमिक का सिद्धांत-** समान कार्य के लिए समान वेतन एक ऐसा सर्वमान्य सिद्धांत है, जो यह प्रावधान करता है कि, समान प्रकृति के कार्य के लिए समान वेतन होना चाहिए। यह वेतन श्रमिक की योग्यता, निर्धारित अनुबंध एवं निश्चित रूप से कार्य की प्रकृति के आधार पर तय होना चाहिए। हमारे देश के संविधान में समान कार्य के लिए समान वेतन को राज्य के नीति-निर्देशक तत्व में सम्मिलित किया गया है। यही कारण है कि केंद्र व राज्य कर्मचारियों के वेतनमान में अंतर पाया जाता है। यह सिद्धांत का

उल्लंघन माना जाता है उनकी वेतन, मजदूरी, क्षतिपूर्ति तथा अवकाश मौलिक अधिकार नहीं है। अतः इस संदर्भ में कार्मिक प्रशासन से इस नियम के पालन की अपेक्षा ही की जा सकती है।

7. **विभिन्न हितों के मध्य समन्वय का सिद्धांत-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारी, सरकार तथा जनता तीनों से संबंधित होता है और तीनों पक्षों की अपेक्षाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। जनता की अपेक्षाएं होती हैं कि सरकार महंगाई कम करें, कम कर लगाए तथा लोकसेवक पूरी कुशलता के साथ कार्य करें। वहीं सरकार यह चाहती है कि कम से कम खर्चे में अधिक से अधिक कार्य संपादित हो और इन सबके बीच कर्मचारी चाहते हैं कि उन्हें अधिक वेतन, रोजगार की सुरक्षा, सुविधाएं, अधिक स्वतंत्रता तथा पर्याप्त पदोन्नति के अवसर प्रदान किए जाएं। एक श्रेष्ठ कार्मिक व्यवस्था वही है जिसमें इन तीनों (जनता, सरकार तथा कर्मचारी) के मध्य सामंजस्य तथा समन्वय स्थापित हो।
8. **कर्मचारियों की राजनीतिक तटस्थता का सिद्धांत-** भारतीय लोकतांत्रिक प्रशासनिक व्यवस्था में विभागीय मंत्री ना केवल सरकार का प्रतिनिधि होता है, बल्कि प्रशासनिक अधिकारी राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन, उनके नेतृत्व में ही कार्य करते हैं। उन्हें सत्तारूढ़ दल की नीतियों तथा चुनावी घोषणाओं के अनुरूप ही कार्य करना पड़ता है। सभी प्रशासनिक अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे पूर्णतया निष्पक्ष तथा तटस्थ भाव से जनता की सेवा करें ताकि जनता को प्रदान की जाने वाली सेवाएं राजनीतिक भेदभाव से मुक्त हो।
9. **काम की प्रतिष्ठा का सिद्धांत-** उच्चाधिकारियों को अपने निम्न अधिकारियों के द्वारा किए जाने वाले कार्यों को छोटा नहीं समझना चाहिए और ना ही उनके साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। वहीं दूसरी ओर निम्न अधिकारियों को भी अपने काम को निम्न नहीं समझना चाहिए।
10. **सहकारिता का सिद्धांत-** एक सबके लिए; सब एक के लिए, सहकारिता का सिद्धांत संगठनात्मक शक्ति का मजबूत आधार माना जाता है। इस सिद्धांत का तात्पर्य सामूहिक प्रयास होते हैं। कार्मिक प्रशासन के लिए यह सिद्धांत सबसे उपयुक्त माना जाता है। कार्मिक प्रशासन तथा सेवा का कार्य किसी एक कर्मचारी के द्वारा नहीं, बल्कि सामूहिक प्रयासों के द्वारा ही संभव है। प्रशासन का संपूर्ण कार्य किसी एक व्यक्ति एक स्तर के द्वारा ही नहीं संपादित किया जा सकता है, बल्कि यह समस्त कर्मचारियों, विभागों तथा स्तरों से संबंधित होता है और सब के द्वारा मिल-जुल कर ही पूरा किया जाता है। व्यावहारिक तौर पर नियमित कार्यों की विशेषज्ञता और कार्य विभाजन के बहाने से इस सिद्धांत की अवहेलना प्रशासनिक संगठनों में पाई जाती है, जो अपने आप में एक विकट समस्या है।
11. **राष्ट्रीय विकास का सिद्धांत-** कार्मिक प्रशासन का यह भी एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, कि, लोक सेवकों के दिलों में देश के संविधान जनता तथा कानून के प्रति एक विशेष प्रकार की आस्था होनी चाहिए। इस भावना के तहत वे निरंतर जनकल्याण एवं राष्ट्रीय विकास के लिए कार्य करते रहें।

इस प्रकार कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को वर्णित करते उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर आप स्पष्ट रूप से ये समझ ही गये होंगे कि, लोक प्रशासन में कार्मिक प्रशासन का संबंध संगठन के मानवीय तत्वों से होता है। कार्मिक-प्रशासन एक ऐसी प्रशासनिक प्रक्रिया है, जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन और परिवर्तन किया जा सके। कल्याणकारी प्रवृत्तियों में वृद्धि और प्रशासन की सफलता एक कुशल कार्मिक प्रशासन पर ही निर्भर करती है, यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की सभी इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक प्रशासन ही है। आधुनिक समय में राज्य संबंधी दर्शन अहस्तक्षेप नीति से अलग होकर सामाजिक कल्याण की नीति पर आधारित हो गया है और विकास के कार्यों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य कार्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी

कार्मिक-प्रशासन ने अपने कंधों पर ले लिया है। तथा विकासशील देशों के कार्मिक प्रशासन के स्वरूप में ज्यादा अंतर नहीं होता है या यूँ कहें कि अधिकांश बातें एक समान सी ही होती हैं।

1.5 कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र

कार्मिक प्रशासन की प्रकृति उसकी विशेषताओं, आदि को समझने के बाद अब हम कार्मिक प्रशासन के कार्य क्षेत्र के बारे में जानने का प्रयास करेंगे। जैसा कि आपने अब तक जाना कि, कार्मिक प्रशासन किसी भी संगठन में कार्यरत कार्मिकों से संबंधित होता है। कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और इसमें किसी भी संगठन में काम करने वाले लोगों के प्रबंध के सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही किसी भी संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति होती है। कार्मिक प्रशासन का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। निम्न बिंदुओं के आधार पर हम कार्मिक प्रशासन के विस्तृत कार्य क्षेत्र को समझने का प्रयास करेंगे:-

1. **कार्मिक नीति का निर्माण-** किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए यह ज़रूरी है कि उसे नीतिगत ढंग से किया जाए। नीति न केवल मार्गदर्शक का काम करती है, बल्कि संबंधित कार्यों को नियंत्रित भी रखती है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि नीति ही वह आधार होती है जिस पर किसी भी कार्य या कार्यक्रम का भविष्य एवं कुशलता निर्भर करती है। ठीक इसी प्रकार कार्मिक प्रशासन की कुशलता के लिए भी एक स्वस्थ कार्मिक या सेवीवर्गीय नीति की आवश्यकता होती है। यह कार्मिक प्रशासन का सबसे प्राथमिक दायित्व होता है कि वह संगठन के लक्ष्यों, आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप कार्मिक नीति का निर्माण करे। कार्मिक नीति में कर्मचारियों के वर्गीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन एवं भत्ते, पेंशन तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। एक अच्छी एवं व्यावहारिक कार्मिक-नीति सदैव उद्देश्यपरक, गतिशील, समानता की समर्थक, स्पष्ट, निष्पक्ष, समन्वयकारी, सर्व पक्ष स्वीकार्य तथा संतुलन के गुणों से भरपूर होनी चाहिए। कार्मिकों की माँग एवं उस माँग की आपूर्ति का अनुमान लगाना तथा कार्मिकों का नियोजन करना एक अत्यंत गंभीर तथा चिंतनशील कार्य है, जिसका क्रियान्वयन कार्मिक प्रशासन के अधिकारियों द्वारा ही कुशलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। कार्मिक नीति का निर्माण तथा क्रियान्वयन सदा एक केंद्रीय कार्मिक अभिकरण द्वारा किया जाता है । भारत में यह दायित्व कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय द्वारा संपन्न किया जाता है।
2. **पद वर्गीकरण-** पद वर्गीकरण के द्वारा संगठन में ऊपर से लेकर नीचे तक के सभी पदों के कार्यों की स्पष्ट परिभाषा की जाती है। एक समान योग्यता, वेतन तथा दायित्वों के अनुरूप पदों को विभाजित करने से वेतन, प्रशिक्षण एवं पदोन्नति इत्यादि से संबंधित सभी कार्य सरलतापूर्वक संपन्न हो जाते हैं। पद वर्गीकरण की प्रक्रिया मुख्यतः केंद्रीय स्तर का कार्य है अथवा कार्मिक या वित्त विभाग जैसे संगठन इस कार्य का संपादन करते हैं। संगठन के प्रत्येक स्तर पर चाहे उत्पाद वर्गीकरण का कार्य व्यापक रूप से नहीं होता हो फिर भी पद वर्गीकरण का कार्य कार्मिक प्रशासन से ही संबद्ध माना जाता है, क्योंकि कार्मिकों से संबंधित ज़्यादातर कार्य कार्मिक प्रशासन से ही संबंधित होते हैं।
3. **सेवी वर्ग की भर्ती-** कार्मिकों की भर्ती करना सेवी वर्ग प्रशासन का प्रथम तथा मूल भूत तत्व होता है। योग्य तथा उपयुक्त व्यक्ति को संगठन में लाने की प्रक्रिया ही भर्ती कहलाती है। किसी भी संगठन की कार्य कुशलता का आधार भी इसी बात पर निर्भर करता है कि भर्ती को कितनी निष्पक्षता तथा प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न किया गया है। योग्यता आधारित भर्ती ही सबसे निष्पक्ष भर्ती व्यवस्था मानी जाती है एवं इसके द्वारा ही कर्मठ तथा प्रतिभावान व्यक्तियों को संगठन में भर्ती किया जा सकता है। कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है भर्ती के लिए योग्यता निर्धारण, पदों हेतु विज्ञापन, प्राप्त आवेदनों की छँटनी,

भर्ती हेतु प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन, साक्षात्कार तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही माना जाता है।

4. **प्रशिक्षण-** प्रशिक्षण का अभिप्राय एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, मनोबल तथा समन्वय में वृद्धि की जाती है। प्रशिक्षण के द्वारा ही कर्मचारी पदोन्नति के योग्य बन पाता है। कार्मिक प्रशासन के प्रमुख उत्तरदायित्वों में से एक यह भी माना जाता है कि वह संगठन में कार्यरत विभिन्न पदों के कार्मिकों को यथावश्यक प्रशिक्षण दे अथवा इसकी समुचित व्यवस्था करे।
5. **पदोन्नति-** किसी भी संगठन या विभाग में योग्य तथा श्रेष्ठ कार्मिकों को भर्ती करने के पश्चात उन्हें संगठन में बनाए रखना भी कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण दायित्व होता है। कार्मिकों को अभिप्रेरित करने हेतु पदोन्नति की व्यवस्था प्राचीन काल से ही चली आ रही हैं। पदोन्नति के माध्यम से ही कर्मचारियों को संतुष्टि तथा अच्छे कार्य का पुरस्कार प्राप्त होता है। निम्न पद से उच्च पद पर जाने की यह प्रक्रिया पदोन्नति के साथ साथ आंतरिक भर्ती भी कहलाती है। कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों की पदोन्नति हेतु विभिन्न सिद्धान्त भी निर्धारित करता है। पदोन्नति का आधार योग्यता, वरिष्ठता अथवा योग्यता एवं वरिष्ठता का संयुक्तिकरण हो सकता है जो संबंधित विभाग के सेवा नियमों तथा पदों की प्रकृति पर निर्भर करता है। पदोन्नति की प्रक्रिया कार्मिक प्रशासन के लिए बहुत ही अहम एवं संवेदनशील मुद्दा होती है, क्योंकि पदोन्नति की प्रक्रिया में यदि कहीं कोई कमी रह जाती है तो वह कार्मिकों की संतुष्टि तथा कार्य शैली को प्रभावित करती है जिसका सीधा असर संगठन पर पड़ता है।
6. **वेतन एवं भत्ते-** किसी भी कार्मिक को कार्य निष्पादन के पश्चात नियमानुसार पारिश्रमिक दिया जाना एक सामान्य सिद्धांत है। प्रत्येक कार्मिक के लिए वेतन निर्धारण में उसकी स्वयं की योग्यता, पद के दायित्वों का स्तर, सेवा की अवधि, कार्य की प्रकृति तथा सेवानियमों को ही आधार बनाया जाता है। निर्धारित वेतन के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के भत्ते जैसे- ओवरटाइम भत्ता, यात्रा भत्ता आदि भी दिए जाते हैं।
7. **आनुषंगिक (Frinze Benefit) लाभ-** आनुषंगिक लाभ से तात्पर्य होता है, निर्धारित मौद्रिक वेतन के अतिरिक्त नियोक्ता द्वारा अपने कार्मिकों को दी जाने वाली सुविधाएँ। आनुषंगिक लाभ में वर्दी, अवकाश, ऋण, चिकित्सा व्यय पुनर्भरण, आवास तथा एल.टी.सी. जैसी सुविधाएँ भी कार्मिकों को नियमानुसार दी जाती हैं।
8. **निष्पादन मूल्यांकन-** कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों का एक निर्धारित अंतराल पर मूल्यांकन करना, संगठन तथा कर्मचारी दोनों के हित में होता है। सामान्य भाषा में इसे वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन (Annual Confidential Report) कहा जाता है और यह पदोन्नति की प्रक्रिया में एक सहायक दस्तावेज़ सिद्ध होता है। ऐसा करके संगठन के योग्य तथा सक्षम कर्मचारियों की पहचान करके उनकी व्यक्तिगत योग्यताओं का संगठन के हित में श्रेष्ठतम उपयोग किया जाता है।
9. **अभिलेख रखना-** प्रत्येक संगठन में प्रत्येक कर्मचारी की एक निजी सेवा पुस्तिका (service book) भी प्रशासन द्वारा संधारित की जाती है। इस पुस्तिका में कर्मचारी की नियुक्ति, वेतन, अवकाश, पदोन्नति तथा प्रशिक्षण इत्यादि का भी सम्पूर्ण ब्यौरा रखा जाता है।
10. **अनुशासनात्मक कार्यवाही एवं आचार संहिता-** किसी भी संगठन में व्यवस्था बनाए रखने हेतु अनुशासन नितांत आवश्यक होता है। लोक सेवाओं में अनुशासन बनाए रखने हेतु कुछ क़ानून एवं नियम निर्मित किए गए हैं, तथा प्रत्येक कार्मिक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन नियमों का पालन करें। किसी भी कर्मचारी द्वारा इन नियमों और कानूनों का उल्लंघन या उपेक्षा ही अनुशासनहीनता कहलाती है। अनुशासनहीनता की स्थिति उत्पन्न होने पर संबंधित कर्मचारी के विरुद्ध नियमानुसार अनुशासनात्मक

कार्यवाही की जाती है। संगठन में व्यवस्था बनाए रखने हेतु दोषी कार्मिक को दंडित भी किया जाता है। इस प्रकार की कार्यवाही कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। लोक सेवाओं में कर्मचारियों के व्यवहार को नियंत्रित करने तथा उसमें नैतिकता को बनाए रखने के लिए आचार संहिता भी निर्मित की जाती है।

11. **श्रम संबंध-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों के साथ सहज वार्ताएँ करता है, परिवेदना की प्रक्रिया में भाग भी लेता है, साथ ही परिवेदना के कारणों का पता लगाकर शांतिपूर्वक कर्मचारियों की विभिन्न समस्याओं का समाधान भी करता है। यह कर्मचारी संघों तथा संगठनों से वार्ता करने,नीतियों एवं योजनाओं के संबंध में सुझाव तथा सहयोग भी देता है।

जैसा की अब तक के सम्पूर्ण विवरण से आप को ज्ञात हो चुका होगा कि कार्मिक प्रशासन का कार्य-क्षेत्र कार्मिकों की सभी प्रकार की गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। उपरोक्त वर्णित सभी तत्वों के अतिरिक्त भी कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में कुछ और गतिविधियों को भी शामिल किया जा सकता है जो कुछ इस प्रकार से हैं-

- कर्मचारियों की प्रशंसा, पुरस्कार तथा प्रोत्साहन प्रदान करना;
- कर्मचारियों की सभी शिकायतों का निवारण करना;
- कर्मचारियों को कैरियर के अवसर उपलब्ध करवाना। जैसे-उच्च अध्ययन पर भेजना;
- कार्मिक पक्ष पर अनुसंधान के प्रयास करना;
- कर्मचारियों का स्थानांतरण करना और
- पेंशन तथा सेवा निवृत्ति से संबंधित कार्य।
- कार्मिक संगठनों तथा कार्मिक संघों से वार्ता करना तथा उनके साथ एक सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना।

1.6 निष्कर्ष

सम्पूर्ण इकाई के अध्ययन के पश्चात निष्कर्ष के तौर पर ये कहा जा सकता है कि कार्मिक प्रशासन कार्मिकों से सम्बन्धित है एवं लोक प्रशासन की वह शाखा है जो कार्मिक संसाधनों के प्रबंधन में संगठन की सहायता करती है। इसके लिए पूर्व विचारित नियमों,परंपराओं और विवेकपूर्ण तकनीकों का प्रयोग कार्मिकों के विकास, प्रतिधारण और चयन में किया जाता है ताकि वैज्ञानिक और अधिक व्यवस्थित ढंग से संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

अभ्यास प्रश्न-

1. यह किसने कहा कि ''लोक प्रशासन में कर्मचारी ही मुख्य तत्व है।''
2. यह कथन किसका है कि ''लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।''
3. नौकरशाही में 'लूट प्रणाली' किस देश से संबंधित है?

1.7 सारांश

कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में कार्य करने वाले लोगों अर्थात मानवीय तत्वों से सम्बंधित होता है। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में आवश्यक होता है। कर्मचारियों को संगठन में लाने, उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से सम्बन्धित कार्य करता है। कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर से प्रभावित होता है। कर्मचारियों की क्षमताओं, इच्छाओं तथा सन्तुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करता है।

संगठनात्मक विकास के लिए यह एक आवश्यक एवं निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। यह समग्र प्रशासन का वह भाग है जो कार्मिक मामलों से संबंधित है।

संगठन में, चाहे वह सरकारी हो या गैर-सरकारी अर्थात निजी, कार्मिक प्रशासन एक महत्वपूर्ण तत्व होता है एवं उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। संगठन स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होता है। अर्थात यदि सामाजिक-आर्थिक या राजनीतिक पर्यावरण में परिवर्तन आता है तो संगठन के प्रबंधन को भी सामंजस्य स्थापित करने हेतु परिवर्तित होना पड़ता है और क्योंकि प्रबंधन परिवर्तित होता है तो कार्मिक प्रशासन भी प्रभावित होता है। कार्मिक प्रशासन पर यह प्रभाव कार्मिकों के बदलते जीवन मूल्यों उनकी संगठन से अपेक्षाओं, कार्यकुशलता आदि के रूप में प्रदर्शित होता है। कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और इसमें किसी भी संगठन में काम करने वाले लोगों के प्रबंध के सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही किसी भी संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति होती है।

1.8 शब्दावली

उत्तरदायित्व- किसी कार्य की जिम्मेदारी, परमआवश्यक- बहुत अधिक आवश्यक, पूर्णतया निष्पक्ष- किसी के भी पक्ष में न होना, अनुशासनात्मक कार्यवाही- कार्य या दायित्वों के विरूद्ध किए जाने वाले कार्यों पर दण्डात्मक कार्यवाही, राज्य का कल्याणकारी स्वरूप- राज्य या सरकरों द्वारा जनता के हित में किए जाने वाले कार्य, राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को दर्शाते हैं,

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. एन. ग्लैडेन, **2.** हरमन फाइनर, **3.** अमेरिका

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा, बी. एम. 1986, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कांसेप्टस एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
2. गोयल, एस. एल.1984, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा,1999, लोक सेवीवर्गीय प्रशासन; रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र 2008, कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006, लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014, भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016, भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके विकास के चरणों की चर्चा करें।
2. कार्मिक प्रशासन की परिभाषा देते हुए इसकी प्रकृति पर प्रकाश डालें।
3. कार्मिक प्रशासन के अर्थ और परिभाषा की व्याख्या करते हुए इसके क्षेत्र की व्याख्या करें।

इकाई- 2 प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवा एवं उनकी भूमिका

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 लोक सेवा का अर्थ परिभाषाएं
2.3 नौकरशाही एवं लोक सेवाएं
2.4 विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं
2.5 आधुनिक लोक सेवा की विशेषताएं
2.6 लोक सेवा की नवीन प्रवृतियां
2.7 लोक सेवा तथा संवैधानिक संरक्षण
2.8 लोक सेवाओं की भूमिका
2.9 निष्कर्ष
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
2.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.15 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

लोक सेवा राज्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। इसे असैनिक सेवा, सरकारी सेवा, सिविल सेवा, सार्वजनिक सेवा जैसे कई नामों से जाना जाता है। सरकार का कार्य केवल राज्य- सचिव तथा विभागों के अन्य प्रधानों, मंडलों के सभापति, संसदीय अवर सचिवों, कनिष्ठ अधिपतियों तथा वरीय अधिकारियों, दूसरे शब्दों में मंत्रीगण द्वारा अकेले ही पूरा नहीं किया जा सकता है। इन लोगों से यह आशा भी नहीं की जाती है कि वह कर एकत्र करें, लेखा-परीक्षण, कारखानों का निरीक्षण, जनगणना आदि कार्य करें; हिसाब-किताब रखने, डाक के वितरण और समाचार ले जाने की तो बात ही दूर है। ऐसे बहुमुखी कार्य तो उन अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा किए जाते हैं जिन्हें स्थाई लोक सेवक कहा जाता है। स्त्री-पुरुषों का यह विशाल समूह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक कानून का पालन करवाता है और इन्हीं के द्वारा आम जनता सरकार के संपर्क में आती है। आम जनता की दृष्टि में लोक सेवक का महत्व भले ही कम हो लेकिन मंत्रालयों के लिए काम करने वालों की यह जमात सरकार के उन उद्देश्यों को जिनके लिए सरकार विद्यमान है, पूर्ण करने के लिए कम आवश्यक नहीं है। राज्य के उत्तरदायित्व एवं कार्य को पूरा करने के लिए जिन स्थाई कर्मचारियों की सहायता ली जाती है, उन्हें 'लोक सेवक' कहा जाता है। उनके द्वारा जो कार्य संपादित किए जाते हैं, वे लोक सेवा के कार्य कहे जाते हैं। पिफनर के अनुसार, "सेवी वर्ग को प्रशासन की आधारशिला कहा जाता है।" लोक सेवाएं राष्ट्र के प्रशासनिक और सामाजिक जीवन को सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं। राष्ट्र के बहुमुखी विकास हेतु जो निर्णय लिए जाते हैं, योजनाएं बनाई जाती है, उन्हें कार्यान्वित करने का मुख्य उत्तरदायित्व लोक सेवा पर ही होता है।

आधुनिक राज्य एफ. एम. मार्क्स के शब्दों में, "प्रशासकीय राज्य" बन गया है। प्रशासकीय राज्य में व्यक्ति की निर्भरता प्रशासन पर इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसके बिना व्यक्ति अपने आम दिनचर्या की पूर्ति नहीं कर

सकता है। प्रशासन की जिम्मेदारियां भी काफी बढ़ जाती हैं। जिस अनुपात में प्रशासन की जिम्मेदारियां बढ़ी हैं उसी अनुपात में लोक सेवा का महत्व भी महत्व भी बढ़ा है। सच्चाई तो यह है कि किसी भी देश का शासन या प्रशासन अपने लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में तब तक एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता जब तक लोक सेवाओं के कर्मचारी सरकार की नीतियों के क्रियान्वयन के लिए कृत संकल्प ना हो। लोक सेवाएं जनता के कल्याण के लिए ही समर्पित होती हैं। आज के आधुनिक राज्य का प्रमुख उद्देश्य लोक-कल्याण ही है, यह लोक-इच्छा पर आधारित होता है और लोक सेवा के सहयोग से पूरा किया जाता है।

प्रारंभ में जो सरकारें थी वह अहस्तक्षेप की नीति में ज्यादा विश्वास रखती थी। उनका कार्य समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखना तथा अपने राज्य की रक्षा करने तक ही सीमित था। फलतः उस समय असैनिक सेवाओं के कार्यक्षेत्र भी सीमित थे। जन कल्याण के कार्य नाम मात्र को ही संपन्न किए जाते थे, परंतु आज प्रायः विश्व के हर देश में जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने की बात सरकार सोचती है। अतः नागरिक सुविधाओं को पूरे देश में संचालित करने के लिए प्रशासन अपने कार्यालयों और लोक सेवकों का हर क्षेत्र में एक जलसा दिखाता है ताकि सभी नागरिक उसकी पहुंच में आ सके। आज लोक सेवा की सफलता पर राज्य के नागरिकों का सुख और प्रजातंत्र की सफलता निर्भर करती है। लोक सेवा के अभाव में ना तो सरकार अपना कार्य सफलतापूर्वक कर सकती है और ना ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास पूरा कर सकता है। लोक सेवाएं देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था एवं शांति प्रदान करती हैं डॉक्टर हरमन फाइनर ने लोक सेवाओं को प्रशासन पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक सेवा की परिभाषाओं के साथ लोक सेवा का अर्थ समझ जाएंगे।
- लोक सेवा एवं नौकरशाही में अंतर को भी समझ पाएंगे।
- विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं में अंतर को भी जान पाएंगे।
- आधुनिक लोक सेवाओं की विशेषताओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- लोक सेवा की नवीन प्रवृतियां के बारे में भी ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- भारत में लोक सेवाओं को दिए जाने वाले संवैधानिक संरक्षण के बारे में भी जान जाएंगे।
- लोक सेवाओं की भूमिका को विस्तार से जान पाएंगे।

2.2 लोक सेवा का अर्थ और परिभाषा

प्रायः प्रत्येक देश में मोटे तौर पर दो प्रकार की सेवाएं पाई जाती है- प्रथम, सैनिक सेवा और द्वितीय, असैनिक सेवा। सैनिक सेवा का तात्पर्य ऐसी सेवाओं से होता है जो देश की सेवा और सुरक्षा व्यवस्था से संबंधित होती है। दूसरी तरफ, असैनिक सेवा का संबंध व्यक्तियों के उन समूहों से है जो लोक सेवा करते हैं, सरकार द्वारा निर्देशित जनकल्याण के कार्यक्रमों को पूरा करते हैं। एक अन्य बात इससे संबंधित यह भी है कि सरकार की कार्यपालिका शाखा भी मुख्यतः दो भागों में बंटी होती है- राजनीतिक कार्यपालिका तथा स्थाई कार्यपालिका। राजनीतिक कार्यपालिका के अंतर्गत वे लोग आते हैं जिनका संबंध योजनाओं के निर्माण, नीतियों के निर्धारण तथा निर्णय लेने से हैं। यह अस्थाई होते हैं तथा इनकी सेवा की अवधि राजनीतिक कारणों पर निर्भर करती है। दूसरी तरफ, अराजनीतिक एवं स्थाई कार्यपालिका है जो राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा निर्मित योजनाओं तथा निर्धारित

नीतियों को पूरा करने में सहयोग प्रदान करती है। यह स्थाई होते हैं तथा इनकी निश्चित सेवा- अवधि होती है। वस्तुतः ये ही लोक सेवा के कर्मचारी अर्थात लोक सेवक हैं। सरकार अपना कार्य मंत्रियों तथा विभाग के राजनीतिक आदेशों के माध्यम से ही पूरा नहीं कर सकती बल्कि उन कार्यों को लागू करने तथा विस्तृत रूप से जनता तक पहुंचाने के लिए कुछ ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो उत्तरदायित्व की भावना से काम करें। इन उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों को पूरा करने के लिए जिन कर्मचारियों और अधिकारियों की बहाली की जाती है, उन्हें ही लोक सेवक कहा जाता है। लोक सेवाओं की महत्ता को बताते हुए एल. डी. व्हाइट ने कहा है कि "एक अच्छा लोक प्रशासन बहुत से तत्वों के संयोजन से बनता है, जैसे- नेतृत्व, संगठन, वित्त, आदर्श विधियां और प्रक्रियाएं किंतु किसी भी दूसरे तत्व से बड़ा तत्व है मानव शक्ति।"

'लोक सेवा' अर्थात सिविल सर्विस शब्द की शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी में व्यापारिक तथा प्रशासनिक कार्य करने वाले कार्मिकों के लिए हुई। आधुनिक लोक सेवाओं का उद्भव भी पश्चिमी यूरोप में ही हुआ जबकि प्राचीन काल में लोक सेवाओं का जन्म ईस्वी सन् 6 में चीन में हुआ।

विभिन्न विचारकों ने लोक सेवाओं के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए जो कुछ इस प्रकार से हैं-

फाइनर के अनुसार, " लोक सेवा अधिकारियों का एक ऐसा पेशेवर निकाय है जो स्थाई, वेतन भोगी, कार्यकुशल या दक्ष होता है।"

एल. डी. व्हाइट के शब्दों में, " लोक सेवाएं प्रशासनिक संगठन का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सरकार अपने लक्ष्यों को प्राप्त करती है।"

भारतीय दंड संहिता की धारा- 21 के 12वें विवरण के अनुसार, "सरकारी सेवारत या वेतन पाने वाला अथवा सरकारी कार्य के लिए शुल्क या कमीशन पाने वाला व्यक्ति 'लोक सेवक' की श्रेणी में आता है।"

भारत की लोक सेवा के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में कहा था, मुख्यमंत्री और मंत्री भी लोक सेवक की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि वह सरकारी वेतन प्राप्त करते हैं। सैनिक, न्यायिक तथा औद्योगिक सेवाओं के सेवीवर्ग लोक सेवक में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं।

ब्रिटेन में 'लोक सेवा' का आशय उन कर्मचारियों से हैं जो "राजनीतिक या न्यायिक पदाधिकारियों के अतिरिक्त ताज(महाराजा/महारानी) के सेवक जो असैनिक रूप से सेवायोजित हो और जिनका पारिश्रमिक पूर्णतया तथा प्रत्यक्षतः उस धनराशि में से दिया जाता है जो संसद द्वारा इस हेतु स्वीकृत की गई हो।"

अमेरिकन विश्व कोष में दी गई परिभाषा के अनुसार, "लोक सेवाएं उन संगठित वेतन भोगी सेवी वर्ग के निकाय को कहते हैं जो सरकार के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। यह सेवाएं तथा इनका नामकरण विभिन्न देशों की परंपराओं के अनुसार हो सकता है। यद्यपि आधुनिक राज्य में अधिकांश सेवाएं लोक सेवाएं ही हैं तथापि 'चुने हुए जन-जनप्रतिनिधि तथा रक्षा सेवी वर्ग' लोक सेवा से बाहर माने जाते हैं।"

न्यू वेबेस्टर बीसवीं सदी विश्व कोष के अनुसार लोक सेवाओं से आश्य निम्नलिखित सेवाओं या कार्मिकों से है-

- रक्षा तथा न्यायिक कार्यो के अतिरिक्त वे सभी कार्मिक जो सरकारी प्रशासन में नियुक्त हैं;
- ऐसी सरकारी सेवा जिसमें कार्मिक का कार्यकाल सुरक्षित है तथा प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से प्रवेश पाया है; और
- सरकारी विनियमों के अधीन गठित सेवा लोक सेवा है।

वस्तुतः लोक सेवा या लोक सेवक की अभी तक स्पष्ट तथा सर्वमान्य परिभाषा विकसित नहीं हो सकी है, क्योंकि प्रत्येक देश की कार्मिक सेवा तथा पदों का वर्गीकरण स्थानीय संस्कारों एवं पर्यावरण से प्रभावित है। भारत में मंत्री लोक सेवक तो माने जा सकते हैं किंतु वे किसी 'लोक सेवा' के स्थाई सदस्य नहीं कहला सकते हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि लोक सेवा से तात्पर्य उन सरकारी सेवाओं से हैं, जिसके पदाधिकारियों को वेतन सरकारी

खजाने से मिलता है तथा जिन पर सरकार नियंत्रण रखती है लेकिन इनमें सैनिक सेवा तथा न्यायिक सेवा के अधिकारी शामिल नहीं है, क्योंकि इनकी पद स्थिति विशिष्टता प्राप्त है। लोक प्रशासन से संबंधित साहित्य में 'लोक सेवा' के वर्णन तथा वर्गीकरण में प्रायः प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को ही समाहित किया जाता है जो संकुचित दृष्टिकोण है। आधुनिक कल्याणकारी राज्य के उद्भव से पूर्व प्रचलित रही राजशाही व्यवस्थाएं मुख्यतः 'सैनिक' प्रकृति की थी जिनमें राजा के अधिकांश कार्मिक या सेवक सेना दल के सदस्य होते थे। यद्यपि बहुत से राजाओं ने कल्याणकारी गतिविधियों पर ध्यान दिया फिर भी राज्य की सुरक्षा तथा विस्तार उनकी प्राथमिक गतिविधि होती थी।

2.3 नौकरशाही एवं लोक सेवाएं

सामान्यतः लोक सेवाओं और नौकरशाही को समानार्थक माना जाता है, लेकिन यह सही मत नहीं है। इन दोनों में मूल उत्तरदायित्व एवं संबंध में कोई अंतर ना होते हुए भी दोनों शब्दों के उच्चारण मात्र में अंतर दिखाई देता है। वस्तुतः नौकरशाही और लोक सेवा में समानता का भाव वेबर के आदर्श प्रतिमान के बाद उत्पन्न हुआ। अपने एक प्रतिमान में वेबर ने नौकरशाही की कुछ विशेषताओं का वर्णन किया था जो लोक सेवाओं में भी देखने को मिलती है और इसी कारण इन दोनों को समान माना जाने लगा। वास्तव में दोनों में अंतर है। एक प्रकार से नौकरशाही लोक सेवा में व्याप्त बुराई का नाम है। लोकसेवा व्यापक एवं सकारात्मक पक्ष को उजागर करती है, वही नौकरशाही संकीर्णता को दर्शाती है। लोक सेवाओं का कार्य देश की परिस्थितियों के अनुसार प्रभावित होता रहता है। लोक सेवाओं को वर्तमान में राज्य तथा संविधान के माध्यम से गठित कर विशिष्ट दायित्वों के अनुरूप ढाला जाता है। यह लोक सेवाएं राजनीतिक सत्ता की नीतियों एवं कार्यक्रमों को न केवल निष्पादित करती है बल्कि राजनीतिक सत्ता को आवश्यक सूचना तथा परामर्श भी उपलब्ध कराती हैं। नौकरशाही इनसे एकदम भिन्न अवधारणा है।

लोक सेवा एवं नौकरशाही को और अच्छे से समझने के लिए आइए इन दोनों के बीच अंतर को इस तालिका के द्वारा समझने का प्रयास करते हैं-

लोक सेवा	नौकरशाही
1. लोक सेवाओं की अवधारणा मानव सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के साथ ही प्रारंभ हो गई थी।	**1.** इनका जन्म 18वीं सदी से प्रारंभ होता है।
2. लोक सेवाएं, असैनिक सेवाएं हैं।	**2.** यह सैनिक एवं और सैनिक दोनों ही सेवा में विद्यमान है।
3. इन का तात्पर्य आम जनता के लिए सुविधाएं एवं सेवाएं प्रदान करने वाले सरकारी तंत्र के कार्मिकों से है।	**3.** यह कर्मचारियों की कार्यशैली एवं व्यवहार का नाम है।
4. इन का गठन संविधान एवं राज्य सरकार द्वारा किया जाता है।	**4.** विधिवत गठित नहीं बल्कि लोक सेवाओं में परिलक्षित होती है।
5. यह लोक प्रशासन का विस्तृत एवं बहुआयामी पक्ष हैं।	**5.** नौकरशाही इन लोक सेवाओं में व्याप्त एक कार्यशैली एवं मानसिकता है।

6. यह सकारात्मक कार्य कुशलता का प्रतीक है।	**6.** नकारात्मक तथा अकार्यकुशलता का प्रतीक है।
7. जन सेवक तथा व्यापकता को दर्शाती हैं।	**7.** संकीर्णता का परिचायक है।
8. लोकसेवा पद के लिए प्रतियोगिता द्वारा भर्ती होती है और वेतनमान होता है।	**8.** नौकरशाही पद नहीं है अतः भर्ती नहीं होती और ना ही परीक्षा होत।
9. लोक सेवाएं मानव शरीर की संरचना की भांति है।	**9.** नौकरशाही मानव शरीर की कार्यप्रणाली की भांति कहीं जा सकती हैं।

2.4 विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं

अब तक के अध्ययन के द्वारा आप लोक सेवा का अभिप्राय स्पष्ट रूप से समझ गए होंगे। आप यह भी समझ गए होंगे कि किस प्रकार लोकसेवा और नौकरशाही में भी अंतर होता है। भारत के संदर्भ में विशेष रूप से लोक सेवाओं को समझने से पूर्व विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं को जान लेना चाहिए। इन्हें जान लेना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि जो तत्व विभिन्न देशों में लोक सेवा की विशेषताओं में परिवर्तन लेकर आते हैं या उनका निर्धारण करते हैं या प्रभावित करते हैं वही तत्व लोक सेवाओं की भूमिका में भी उसी प्रकार का परिवर्तन लेकर आते हैं या प्रभावित करते हैं।

विकसित देशों में लोक सेवा की प्रवृत्ति और प्रकृति विकासशील देशों से बिल्कुल अलग होती है। यद्यपि आज विभिन्न प्रकार के सूचना एवं प्रसार के साधनों का विकास हो जाने से यह अंतर काफी कम हो गया है, फिर भी आर्थिक एवं तकनीकी स्तरों का अंतर होने के कारण लोक सेवा की परंपराओं के बीच अंतर होना स्वाभाविक सा है। विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं को नीचे दी जा रही तालिका के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

विकासशील देशों में लोक सेवाएं	विकसित देशों में लोक सेवा
1. इन देशों में लोक सेवाएं अधिकांशतः15 वीं सदी के पश्चात के उपनिवेशवाद का परिणाम है।	**1.** इन देशों में लोक सेवाएं मुख्यतः संबंधित देश की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा से सम्बद्ध हैं।
2. इन देशों का समाज रूढ़िवादी अशिक्षित तथा कृषि को का होने के कारण यहां लोक सेवाओं पर जाति, भाषा एवं परंपरा का प्रभाव होता है।	**2.** इन देशों में इस प्रकार का प्रभाव ना के बराबर होता है।
3. लोक सेवक कर्तव्य हीनता तथा अहम की भावना रखते हैं।	**3.** लोक सेवकों में उत्तरदायित्व की भावना पाई जाती है।
4. लोक सेवाओं का वर्गीकरण बहुत उलझा हुआ होता हैI अनेक वेतनमान तथा कार्मिकों में वर्ग भेद पाया जाता है।	**4.** इन देशों में लोक सेवाओं का वर्गीकरण स्पष्ट तथा सरल होता है जिससे वेतनमान ओं की संख्या भी कम होती है।
5. इन देशों की लोक सेवाओं में सामान्यज्ञ अधिकारियों का प्रभुत्व रहता है।	**5.** इन देशों में विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व दिया जाता है।

6. कार्य निष्पादन- मूल्यांकन या तो होता ही नहीं है अथवा केवल औपचारिकता की पूर्ति भर होता है।	**6.** कार्य निष्पादन- मूल्यांकन व्यवस्था सुदृढ़ होती है।
7. लोक सेवाओं के वेतन भत्ते निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक होते हैं।	**7.** निजी क्षेत्र में लोक सेवाओं से अधिक वेतन भत्ते दिए जाते हैं।
8. पदोन्नति का आधार अधिकांशतः वरिष्ठता को ही माना जाता है।	**8.** पदोन्नति सामान्य तौर पर योग्यता एवं वरिष्ठता दोनों पर आधारित होती है।
9. देश की बहुत कम प्रतिशत जनसंख्या को ही लोक सेवाओं से रोजगार प्राप्त होता है।	**9.** देश की जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत लोक सेवाओं में कार्यरत होता है।
10. उच्च वेतन तथा पदोन्नति लोक सेवाओं में अभिप्रेरणा के मुख्य स्रोत होते हैं।	**10.** लोक सेवकों को अनेक प्रकार की अभिप्रेरणा है तथा वृत्तिका विकास के अवसर उपलब्ध होते हैं।
11. इन देशों में कार्मिक प्रशासन में अनुसंधान परिवर्तन तथा नवाचार को महत्व नहीं दिया जाता है।	**11.** अनुसंधान तथा नवाचार बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

2.5 आधुनिक लोक सेवा की विशेषताएं

विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवा की विभिन्न विशेषताओं को पढ़ने के बाद आप यह तो समझ ही गए होंगे कि दोनों प्रकृति के देशों की व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन उन देशों की लोक सेवाओं की विशेषताओं तथा स्वरूप को भी प्रभावित करते हैं। आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रचार प्रसार ने विकसित एवं विकासशील दोनों ही प्रकृति के देशों की लोक सेवाओं पर बहुत प्रभाव डाला है। आधुनिक लोक सेवा की विशेषताओं के संबंध में ग्लैडन ने कहा है कि "लोक सेवा से यह अपेक्षाएं हैं कि यह बिना पक्षपात के चुनी जाएगी, प्रशासनिक दृष्टि से कार्य कुशल होगी, राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ होगी तथा समाज सेवा की भावना से ओतप्रोत होगी।" लोकसेवा आज के आधुनिक युग में कुशल, प्रशिक्षित तथा विशेषज्ञ बन गई है। प्रशासन के हर क्षेत्र में विशेषीकरण बढ़ गया है। अतः आज के लोक प्रशासन में पहले के लोक सेवकों की अपेक्षा ज्यादा योग्य, कर्मठ और शिक्षित व्यक्ति प्रवेश कर रहे हैं। आधुनिक लोक सेवा की प्रमुख विशेषताओं को निम्न बिंदुओं के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

1. **प्रशिक्षित एवं कुशल कार्यकर्ता-** आधुनिक लोक सेवा योग्य, प्रशिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों का एक ऐसा समूह होती है जो अनेक उत्तरदायित्व को निर्धारित सीमा के भीतर ही बेहतर ढंग से पूरा करता है। आधुनिक लोक सेवा की प्रवृत्ति व्यवसायिक है। इसमें कार्यरत लोग उसी तरह से अपने अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं, जिस प्रकार से एक व्यवसायिक संगठन में लोग रहते हैं। आज प्रशासन भी ठीक उसी तरह कई व्यवसायों में बंटा है, जैसे अलग-अलग प्रकार के व्यवसाय बटे होते हैं। अब लोक सेवाओं में नियुक्ति का आधार पहले जैसा सामान्य नहीं रहा बल्कि बदल गया है। आज प्रशासन में कार्मिकों का चयन कठिन योग्यता परीक्षा और जांच के आधार पर किया जाता है जिसके कारण प्रशासन को योग्य, प्रशिक्षित और कुशल कर्मचारी प्राप्त होने लगे हैं।

2. **वेतनभोगी कार्यकर्ता-** लोक सेवा में योग्यता के आधार पर सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का चुनाव होने के बाद उन्हें उनकी योग्यता और पद के अनुसार निर्धारित वेतन दिया जाता है तथा उनकी सेवा के अनुसार उन्हें अन्य सुविधाएं और साधन भी उपलब्ध कराए जाते हैं। अतः यह भी लोक सेवाओं की एक विशेषता है कि यह अवैतनिक कार्यकर्ताओं का निकाय नहीं है।
3. **स्थाई कार्यकाल-** राजनीतिक कार्यपालिका के सदस्य अस्थाई होते हैं, परंतु लोक सेवा के कर्मचारी स्थाई प्रकृति के होते हैं। अर्थात लोक सेवा में अपनी प्रविष्टि के बाद सभी लोक सेवक निर्धारित समय और उम्र तक अपने पद पर कार्य करते रहते हैं। राजनीतिक सत्ता के बदलने पर भी इनके कार्यकाल पर कोई असर नहीं होता है, यही कारण है कि लोक सेवा को लोग जीवनयापन और जीवन वृति के रूप में अपनाते हैं।
4. **तटस्थ एवं निष्पक्ष-** लोक सेवकों की अन्य विशेषताओं की तरह उनकी तटस्थ एवं निष्पक्ष प्रवृत्ति भी उनकी एक विशेषता मानी जाती है। लोक सेवक राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ होते हैं। तटस्थता से अभिप्राय यह है कि किसी भी राजनीतिक दल के सत्ता में आने का या उनके सत्ता से जाने का लोक सेवकों की निष्ठा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लोक सेवक सत्ता में आए प्रत्येक राजनीतिक दल के निर्णय को राज्य का आदेश मानकर पूरा करते हैं। प्रशासन के नियम और कानूनों को लागू करने में लोक सेवक निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाते हैं और किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करते हैं।
5. **पद सोपान का सिद्धांत-** लोक सेवा का संपूर्ण संगठन पदसोपान एक व्यवस्था के आधार पर स्थापित होता है। यह संगठन पिरामिड की भांति होता है जिसमें प्रत्येक अधिनस्थ कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के नियंत्रण और पर्यवेक्षण में कार्य करता है तथा अपने कार्यों के लिए वह सदैव अपने उच्च अधिकारी से सत्ता प्राप्त करता है तथा उसी के प्रति उत्तरदाई भी होता है। इसका मूल उद्देश्य लोक सेवा के विभिन्न सोपानों में अनुशासन, उत्तरदायित्व एवं कुशलता बनाए रखना है।
6. **अनामता का सिद्धांत-** लोकसभा के सदस्यों का कार्य प्रचारात्मक तथा अपना नाम कमाने का ही होता है जबकि लोकसेवक ही वे व्यक्ति होते हैं जो पर्दे के पीछे रहकर अपना नाम सामने लाए बिना ही अपने उत्तरदायित्व को पूरा करते हैं। नाम कमाने और परदे के आगे रहने का अधिकार केवल राजनीतिक कार्यपालिका के मंत्रियों और अन्य अध्यक्षों के पास ही होता है।
7. **औपचारिक दृष्टिकोण-** लोक सेवा के सदस्य औपचारिक दृष्टिकोण से नियमों और कानूनों के अनुसार कार्य करते हैं। इनमें मानव संबंधों, भावनाओं और विचारधाराओं का स्थान नहीं होता है। साथ ही यह अनौपचारिकता से भी दूर रहकर कार्य करते हैं।
8. **राज्य व्यवस्था का अनिवार्य अंग-** प्रत्येक प्रकार की शासन व्यवस्था के संचालन करने के लिए लोक सेवा ही एकमात्र साधन होता है। लोक सेवकों की अनिवार्यता को समाप्त नहीं किया जा सकता है। लोक सेवा के बिना राज्य अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।

इस प्रकार आधुनिक लोक सेवा अनेक विशेषताओं को लिए हुए होती है जो इसकी आवश्यकता एवं महत्व को भी इंगित करती है। लोक सेवाओं की इन विशेषताओं को जानने के बाद आइए अब हम लोक सेवाओं की आधुनिक व नवीन प्रवृत्तियों पर भी एक नजर डालते हैं और यह समझने का प्रयास करते हैं कि बदलते परिवेश में लोक सेवाओं की प्रवृत्तियों में किस प्रकार के बदलाव आ रहे हैं।

2.6 लोक सेवा की नवीन प्रवृतियां

आज के इस विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में जीवन के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। बढ़ते हुए संचार साधनों एवं आधुनिक आविष्कारों ने लोक सेवा के समक्ष अनेक नई समस्याओं को भी जन्म दिया है। लोकसेवा एक गत्यात्मक संस्था है। बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल लेना लोक सेवा की मुख्य विशेषता मानी जाती है। भारत के संदर्भ में, आधुनिक समय में लोक सेवाओं में पाई जाने वाली निम्नलिखित आधुनिक प्रवृतियां हैं-

1. लोक सेवकों की संख्या में तेजी से वृद्धि।
2. लोक सेवा में अधिकाधिक विशेषज्ञों तथा प्रविधिज्ञों की नियुक्ति के कारण बढ़ती हुई विभिन्नता।
3. लोक सेवकों की शक्तियों में निरंतर वृद्धि हो रही है।
4. लोक सेवाओं में गुणों की आवश्यकता पड़ रही है।
5. नकारात्मकता से सकारात्मक कार्य की ओर लोक सेवा के दायित्वों में झुकाव है।
6. लोक सेवा की तटस्थता की परंपरागत अवधारणा में परिवर्तन हो रहा है।
7. लोक सेवा के लिए नैतिक तथा व्यवसायिक मापदंडों पर अधिक बल दिया जा रहा है।
8. मानव संसाधन विकास की ओर झुकाव बढ़ रहा है।
9. लोक सेवा की विकास प्रशासन में भूमिका बढ़ रही है।
10. संरचना और कार्यों में लोकतांत्रिक तत्व।
11. पर्यावरणीय अनुकूलता।
12. सदस्यों के बीच आंतरिक संबंध एवं पारस्परिक निर्भरता।
13. गिरती हुई बदनाम छवि।

लोक सेवा के कार्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। दिन-प्रतिदिन उन पर नई जिम्मेदारियां डाली जा रही है। यही कारण है कि, भारत, अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन और सोवियत संघ में लोक सेवकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। लोक सेवा में आज विशेषज्ञता का प्रचलन बढ़ गया है तथा तकनीकी कर्मचारियों की संख्या पहले की अपेक्षा ज्यादा होती जा रही है। हर छोटे-छोटे कार्यो के लिए भी विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है और उनका अलग-अलग विभाग कारों के आधार पर गठित किया जाता है। अतः लोकसेवा की नई प्रवृत्ति में विभिन्नता विशेषज्ञता दोनों ही पायी जाती हैं। लोक सेवकों पर बढ़ती हुई जिम्मेदारियों और उत्तरदायित्वों के कारण ही लोक सेवकों की शक्तियों में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। जब तक लोक सेवा के कार्य में वृद्धि होती रहेगी लोक सेवकों की शक्तियों में प्रचार होता रहेगा। लोक प्रशासन का स्वरूप आज सकारात्मक कार्यों की तरफ पहले से कई गुना ज्यादा बढ़ गया है। लोकसेवा को जनहित में जनकल्याण की भावना से कार्य करना पड़ता है, अर्थात जनता की सहमति प्राप्त करना ही लोक सेवा की सकारात्मक प्रवृत्ति माना जाता है। लोक सेवा की सदस्यता की परंपरागत अवधारणा में परिवर्तन हुआ है। आज लोकसेवक राजनीतिक रूप से ज्यादा जागरूक होते हैं। यह राजनीतिक कार्यपालिका को अपने निर्णयों से प्रभावित भी करने लगे हैं। अंत में यही कहा जा सकता है कि आज लोक सेवा की नई प्रवृत्ति में नैतिक एवं व्यवसायिक मापदंड पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। लोक सेवकों का मनोबल बना रहे, इसके लिए उनके जीवन से जुड़े हुए होते, मानसिक और भावनात्मक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाता है। अनौपचारिक संबंधों तथा राजनीतिक कार्यपालिका के व्यवहारों के द्वारा भी नैतिकता और मनोबल को बढ़ावा मिलता है। अपने कार्यों के प्रति लोकसेवक व्यवसायिक मापदंड अपना कर पहले से कहीं ज्यादा कुशलतापूर्वक एवं कर्तव्य निष्ठा से लोक सेवा में अपना योगदान दे रहे हैं।

2.7 लोक सेवा तथा संवैधानिक संरक्षण

लोक सेवक सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों और निर्णय को निष्पक्ष होकर लागू करने का प्रयास करते हैं। देशों का विकास और उनकी सफलता इन लोक सेवकों के कुशल, प्रभाव शील कार्यकरण पर ही निर्भर करती है। लोक सेवक तो सरकार की सफलता और देश के विकास को सुनिश्चित करते हैं परंतु लोक सेवकों का किसी भी प्रकार से उत्पीड़न ना हो इस बात का ध्यान रखना भी देश की सरकारों का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। सरकार लोक सेवकों के साथ कोई पक्षपात पूर्ण व्यवहार ना करें, इसके लिए विश्व के सभी देशों के लोक सेवकों को संवैधानिक संरक्षण की आवश्यकता होती है। लोकतांत्रिक समाज कानून के शासन पर आधारित होता है। भारत भी एक लोकतांत्रिक समाज है। अतः यहां पर लोक सेवकों को ''संवैधानिक संरक्षण' प्रदान किया जाता है। आइए भारत में लोक सेवकों को प्रदान किए जाने वाले संवैधानिक संरक्षण के बारे में विस्तार से जान लेते हैं-

1. अनुच्छेद- 309 के अंतर्गत केंद्र एवं राज्य के लोक सेवकों की भर्ती एवं नियुक्ति की सेवा शर्तें संसद/राज्य विधानसभा के अधिनियम द्वारा नियंत्रित की जाएगी।
2. अनुच्छेद- 310 के अनुसार लोक सेवक राष्ट्रपति, राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद पर रह सकेगा।
3. अनुच्छेद- 311 के अनुसार कानूनी और वैध सेवा मुक्ति, अपदस्थता या पदोन्नति के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं- सेवामुक्ति, अपदस्थ करना या पदावनति आदेश सक्षम सत्ता द्वारा दिए जाएं और प्रभावित व्यक्तियों को कार्यवाही के संबंध में स्पष्टीकरण देने का अवसर प्रदान करना।
4. अनुच्छेद- 360 के अंतर्गत वित्तीय आपात स्थिति में केंद्र शासन राज्य के समस्त या वर्ग विशेष के लोक सेवकों को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों में कटौती के निर्देश दे सकता है।
5. मौलिक अधिकारों के अंतर्गत नागरिकों को समानता के अधिकार के अंतर्गत रोजगार के मामले में सबको अवसर की समानता प्रदान करता है।
6. संविधान के अनुच्छेद 308 से 323 के अंतर्गत निम्न संघीय एवं राज्यों की सेवाओं का वर्णन किया गया है-
   - केंद्र और राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान।
   - अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना का प्रावधान।
   - सेवा की सुरक्षा लोक सेवाओं को प्रदान की गई है।
   - लोक सेवकों के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना(1976)

इस प्रकार भारत में लोक सेवकों को किसी भी प्रकार के उत्पीड़न और पक्षपातपूर्ण व्यवहार से सुरक्षा प्रदान करने हेतु भारतीय संविधान में विभिन्न उपबंधों द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया है।

2.8 लोक सेवाओं की भूमिका

उपरोक्त संपूर्ण वर्णन के द्वारा आप इस बात को भलीभांति जानते होंगे कि राज्य के विकास की विभिन्न इकाइयां कार्यरत हैं उनमें लोकसेवा एक महत्वपूर्ण परिसंपत्ति है। इसे शासन की चतुर्थ शाखा भी माना जाता है। शासन की तीन शाखाएं विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। इस शाखाओं के प्रयोजन तो स्पष्ट है। परंतु एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि फिर लोक सेवा का क्या प्रयोजन है? सामान्य रूप से लोकसेवा तीनों शाखाओं से बनी हुई है। प्रत्यक्ष रुप से लोकसेवा सरकार के नियंत्रण में कार्य करती है। लोक सेवा का प्रमुख कार्य सरकार के दैनिक कार्यों को संपन्न करना तथा कानूनों को लागू करना है। विधायिका की परिसीमन के संदर्भ में लोक सेवा के निर्णायक भूमिका समझी जा सकती है। जो प्रतिनिधि चुनकर विधायिका में आते हैं उनके पास सामाजिक और आर्थिक जीवन के समस्त पहलुओं की ना तो जानकारी होती है और ना समझने का समय ही। साथ में क्रियान्वित

करने के तरीकों की भी जानकारी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में लोकसेवा अधिक उत्तरदायित्व ग्रहण करती है। लोकसेवा को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। लोक सेवा नीतियों, निर्णय और कार्यक्रमों को बनाने में सहायता प्रदान करती है, नीति को व्यवहारिक रूप प्रदान करती है और जनता की बढ़ती हुई मांगों को संभालती है। वह विधि निर्माण की पहल नहीं करती है परंतु कानून को बनाने में विशेषज्ञ सलाह और आवश्यक आंकड़े उपलब्ध कराती है, जिसके बिना कानून बनाना संभव नहीं है। नौकरशाही नीति संघर्ष में सदैव विजय नहीं होती है, परंतु उसमें उसकी हमेशा सहभागिता उल्लेखनीय बात है।

लोक सेवा की इन सभी विशेषताओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य के प्रशासन में लोक सेवा का एक विशेष महत्व है। लोक सेवा को आज अनेक महत्वपूर्ण कार्यों का संपादन करना पड़ता है। वर्तमान विश्व की किसी भी शासन व्यवस्था में लोक सेवाओं के बिना शासन की नीतियों और कार्यक्रमों की क्रियान्वयन की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। जैसा कि आपने विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषता को पढ़कर जाना की,विकसित देशों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्रियाओं में आधुनिकता आ गई है और उन्हीं क्रियाओं के संदर्भ में वहां का लोक प्रशासन भी प्रभावित हो चुका है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के परंपरागत गढ़ धराशायी होने लगे तथा एशिया, लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और मध्य पूर्व में नए स्वतंत्र अर्थात विकासशील देशों का उदय होने लगा। यह विकासशील देश जिनमें भारत भी शामिल है अपनी रूढ़िवादी परंपराओं, शिक्षा, धार्मिक कट्टरता, जाति तथा वर्ग में भेद, संसाधनों की भिन्नता तथा कमजोर आर्थिक व्यवस्था से पीड़ित है। यहां का प्रशासन तंत्र मुख्य रूप से उपनिवेश कालीन संस्कृति से प्रभावित है जिसमें कठोर नौकरशाही के अवगुण तथा विशेषज्ञता का अभाव है। परंतु इन सब विसंगतियों के होने के बावजूद इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि दोनों ही प्रकार के देशों में लोकसेवा प्रशासन की आधारशिला है। राज्य के प्रत्येक नए कार्य और प्रत्येक नई योजना से लोक सेवा पर एक नई जिम्मेदारी आ पड़ती है। लोक सेवा के कार्यों को संपन्न करने के लिए ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ तथा कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि उन्हें ना सिर्फ जनता के कल्याण से संबंधित कार्यों को करना पड़ता है बल्कि राजनीतिक कार्यपालिका को परामर्श देने का कार्य संपादित करना पड़ता है। लोकसेवा को अनेक तरह के और अराजनीतिक, प्रशासनिक तथा कल्याण से संबंधित प्रमुख कार्य संपादित करने पड़ते हैं। हालांकि लोक सेवा द्वारा इतने असंख्य कार्य संपन्न करने पड़ते हैं कि उन्हें सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता है, परंतु फिर भी इन देशों की परिवर्तित परिस्थितियों तथा नव आकांक्षाओं में लोक सेवाओं की बढ़ती भूमिका को निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा रूप से समझा जा सकता है-

1. **राजनीतिक कार्यपालिका को परामर्श देना-** राजनीतिक कार्यपालिका को उपलब्ध परिस्थितियों में उचित परामर्श देना लोक सेवा का प्रथम कर्तव्य माना जाता है। लोक सेवक प्रशासन के कार्यों में कुशल तथा विशेषज्ञ होते हैं। अतः शासन की नीतियों और कार्यक्रमों के निरूपण में मंत्री को सूचना एवं परामर्श उपलब्ध करवाने का दायित्व लोक सेवक अर्थात प्रशासनिक अधिकारियों का ही होता है। राजनीतिक गतिविधियों में कार्यरत मंत्रियों के पास ना तो इतना समय होता है कि वे प्रशासनिक कार्यों में गंभीरतापूर्वक रूचि ले सके और ना ही वे इतने कुशल होते हैं कि प्रशासन की प्रत्येक गतिविधियों को सूक्ष्मता से समझ सके। अतः लोक सेवकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कर्तव्य का पालन निष्पक्ष भावना से इमानदारी पूर्वक करते हुए राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात मंत्रियों को अच्छी से अच्छी सलाह देंगे। इस संबंध में ब्रिटिश प्रधानमंत्री चैंबरलेन का कथन है कि "संभवतः लोक सेवक मंत्रिमंडल के सदस्यों के बिना कार्य कर सकते हैं किंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मंत्रीमंडल के सदस्य बिना लोक सेवकों के कार्य नहीं कर सकते हैं।" सर जोसिया स्टाम्प ने भी इस संदर्भ में अपना मत देते हुए कहा कि "मैं इस बात के बारे में स्पष्ट हूं कि, कर्मचारियों को नए समाज का स्रोत होना चाहिए तथा प्रत्येक

अवस्था में उन्हें सुझाव तथा परामर्श देना चाहिए।" वस्तुतः एक कुशल मंत्री हमेशा अपने अधिकारियों की सलाह पर ही काम करता है और उनके द्वारा प्रस्तुत कागजातों पर हस्ताक्षर कर देता है।

2. **सरकारी नीतियों को क्रियान्वित करना-** राजनीतिक कार्यपालिका या व्यवस्थापिका लोक सेवकों के सहयोग और परामर्श से राष्ट्र के लिए योजनाओं और नीतियों का निर्माण करती है। लोक सेवक का कार्य इन नीतियों और योजनाओं के निर्माण में ना केवल सहायता प्रदान करना होता हैं, बल्कि उन नीतियों की क्रियाविधि भी लोक सेवकों का भी उत्तर दायित्व होता है। लोक सेवक द्वारा प्रदत विभिन्न प्रकार के आंकड़े और सूचनाएं, प्रस्तावित कार्य का प्रारूप तैयार करने तथा योजना मद में लगने वाले अनुमानित उपकरणों की जानकारी विभागीय मंत्री को देते हैं। इस जानकारी के आधार पर ही जब योजनाएं और कार्यक्रम बनकर तैयार हो जाते हैं तो सरकार द्वारा निर्धारित उन कार्यक्रमों, योजनाओं और नीतियों का क्रियान्वयन लोक सेवा के सदस्यों को करना पड़ता है।
3. **जनता की सेवा करना-** लोक सेवा का प्रमुख उद्देश्य आम जनता की सेवा करना है। आज के आधुनिक प्रशासन में सरकार का प्रयास यही रहता है कि आम नागरिकों को अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान करके उनके व्यक्तित्व का चहुमुखी विकास भी किया जाए। इसके लिए लोकसेवा को स्वास्थ्य तथा चिकित्सा का प्रबंध, शिक्षा तथा रोजगार का प्रबंध, सड़क निर्माण, भवन निर्माण, स्टेडियम निर्माण आदि से संबंधित भूमिकाओं का भी निर्वाह करना पड़ता है। नागरिकों के जीवन यापन से संबंधित आवश्यक वस्तुओं को भी उपलब्ध कराना पड़ता है। इन सब कार्यों को पूरा करने के लिए योग्य, कौशल एवं कर्मठ कर्मचारियों का होना अत्यधिक आवश्यक होता है। वस्तुतः लोक सेवक के कंधों पर ही प्रत्यक्ष रूप से लोक कल्याण संबंधी योजनाओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व जाता है।
4. **प्रत्यायोजित विधि निर्माण-** व्यवस्थापिका का मुख्य कार्यविधि का निर्माण होता है। कई बार कार्य के बोझ तले दबे होने के कारण विधायिका अनेक विषयों में विधि का केवल ढांचा ही तैयार कर पाती है। उन विधियों को सुख में तथा व्यापक रूपरेखा बनाने राजनीतिक कार्यपालिका ओ सहायता उपलब्ध कराने की भूमिका भी लोक सेवकों के द्वारा ही निभाई जाती है। इस व्यवस्था को प्रदत्त व्यवस्थापन कहा जाता है। इसके अंतर्गत समस्त नियम और नियमों का निर्माण प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा ही किया जाता है।
5. **बदलते परिवेश के साथ सामंजस्य बैठाना-** आधुनिक युग में लोक सेवाओं की भूमिका भीतर तथा बाहर प्रौद्योगिकी, विज्ञान एवं औद्योगिकरण के बढ़ते हुए प्रभाव ने लोक सेवकों की भूमिकाओं में एक नया आयाम जोड़ दिया है। आधुनिक प्रकार की वैज्ञानिक प्रगति ने लोक सेवकों के समक्ष अनेक नई नई चुनौतियों को खड़ा कर दिया है। आज इस बदलते परिवेश में सामाजिक समस्याओं का स्वरूप बदल गया है, जिनके समाधान के लिए लोक सेवकों को विशेष दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है। साथ ही लोक सेवा के क्षेत्र में भी कंप्यूटर तथा आधुनिक तकनीकों की आवश्यकता पड़ने लगी है जिसके कारण लोक सेवा में भी विशेषज्ञता का प्रसार हो रहा है। इन नई चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रशासन को आधुनिक तकनीकी का प्रशिक्षण तथा कंप्यूटर का ज्ञान अपने सेवी वर्ग को कराना पड़ता है। आज लोक सेवा को पर्यावरण तथा प्रदूषण जैसी समस्याओं के समाधान मैं भी अपनी भूमिका का निर्वाहन करना पड़ रहा है जो पहले इतना अधिक नहीं हुआ करती थी।
6. **सामाजिक न्याय और समता की स्थापना-** विकासशील देशों की सामाजिक संरचना अत्यधिक जटिल, भेदभावपूर्ण तथा विविध संस्कृतियों से युक्त होती है। अतः इन देशों की सामाजिक संरचना में सामाजिक न्याय तथा समानता की प्राप्ति करना और लोगों को शोषण से मुक्ति दिलवाना एक महत्वपूर्ण प्रशासकीय कार्य माना जाता है। यह संविधान अपने समस्त नागरिकों को समानता तथा न्याय का मूल

अधिकार प्रदान करता है। नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से पिछड़े, असहाय, गरीब, महिला, वृद्ध, विकलांग तथा अल्पसंख्यक नागरिकों की सुरक्षा विकास और कल्याण की जिम्मेदारी भी सरकार को सौंपी गई है।

7. **सामाजिक-आर्थिक विकास को गति प्रदान करना-** काशी देशों की अर्थव्यवस्था विकसित देशों की तुलना में पिछड़ी हुई तथा विसंगतियों से परिपूर्ण होती है। अर्थव्यवस्था में सुधार या गति लाने हेतु स्वतंत्रता के समय भारत में विकसित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया गया था जो अब निजीकरण की ओर अग्रसर है किंतु लोक उद्यमों की भूमिका अभी भी महत्वपूर्ण बनी हुई है। पूर्व के अनुभव यही सिद्ध करते हैं कि समाजवादी तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं आर्थिक विकास को सार्थक गति प्रदान करती रही है। वस्तुतः आर्थिक विकास तथा सामाजिक विकास दोनों प्रत्यक्षतः सम्बद्ध है। एक के बिना दूसरे की प्रगति कठिन है। लोक सेवाएं इन दोनों क्षेत्रों में ही सुधार और विकास के लिए प्रतिबद्ध और प्रयासरत है।
8. **लोक कल्याणकारी राज्य की लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक-** आधुनिक युग में सभी प्रकार की सरकारों का एकमात्र कर्तव्य लोक कल्याण ही होता है। विकासशील देशों में लोक सेवाओं की भूमिका इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि नव स्वतंत्र देश विकास की दौड़ में विकसित देशों से बहुत पीछे हैं तथा यहां पर लोक कल्याण की मूलभूत सेवाएं संपादित करने का संपूर्ण उत्तरदायित्व शासन का होता है। चिकित्सा, स्वास्थ्य, आवास, भोजन, पेयजल, शिक्षा तथा रोजगार जैसी न्यूनतम आवश्यकताएं को सामाजिक सेवाओं के रूप में प्रशासन द्वारा प्रदान किया जाता है।
9. **राष्ट्रीय एकता में सहायक-** भारत तथा भारत जैसे ही विकासशील देशों में क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद तथा सांप्रदायिकता की सामाजिक समस्याएं विद्यमान है। इन समस्याओं की तीव्रता को कम करने में लोक सेवकों की दोहरी भूमिका होती है। एक और दो लोक सेवाएं तटस्थता तथा समानता के आधार पर काम करती हैं वहीं दूसरी ओर इन सेवाओं की प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र राष्ट्रीय स्तर का है। अखिल भारतीय सेवाओं का अधिकारी एक राज्य का अनुभव दूसरे राज्य के अधिकारियों में बांटता है अथवा केंद्रीय सेवाओं का अधिकारी समस्त भारत की संस्कृति एवं तदनुकूल परिस्थितियों से अवगत होता है। लोक सेवाओं की यह प्रकृति लोक सेवकों में संकीर्णता त्याग कर व्यापक दृष्टिकोण अपनाने में सहायता प्रदान करती है। लोक सेवाओं में सभी जाति, वर्गों, भाषाओं, क्षेत्रों तथा संप्रदायों के कार्मिक कार्य करते हैं जो राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं।
10. **आजीविका का माध्यम-** सरकारी कार्यों की पूर्ति के निमित्त विशाल संख्या में विशिष्ट योग्यता धारी लोक सेवकों की आवश्यकता होती है। लोक कल्याणकारी राज्य के उत्तरदायित्व भी चहुँमुखी होते हैं। अतः लोक सेवाओं के माध्यम से जहां एक और सरकार जन कल्याण के कार्य संपादित करवाती है वहीं दूसरी ओर इन लोक सेवक सेवाओं में भारी संख्या में युवक और युवतियों को रोजगार भी दे सकती है। विकासशील देशों में सरकारी नौकरियों के प्रति विशेष रुझान पाया जाता है क्योंकि इन देशों में अधिकांश कार्य सरकारों द्वारा ही संपादित किए जाते हैं। अतः सरकार एक बड़ी नियोक्ता के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं।
11. **लोकतंत्र एवं सभ्यता की संरक्षक-** वर्तमान राज्य लोक सेवाओं पर अत्यधिक निर्भर है इसी कारण इसे प्रशासकीय राज्य के रूप में भी जाना जाता है। राजनीतिक स्तर पर जनसाधारण की सहभागिता सुनिश्चित करने, सामाजिक चेतना में अभिवृत्ति करने, विकास की गति को तेज ही प्रदान करने तथा आधुनिकता का परिवेश तैयार करने में लोक सेवकों की निर्णायक भूमिका है। अतः विकासशील देशों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना संक्रमण काल से गुजरती है जहां पुराने और नए विचारों तथा

सभ्यताओं में द्वंद होता है। इस संक्रमण काल का कुशलतापूर्वक सामना करने तथा परिवर्तनों को मनोवांछित दिशा प्रदान करना लोक सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

2.9 निष्कर्ष

इस प्रकार आज लोक सेवा समाज की प्रगति और विकास का एक अविभाज्य आधार बन गई है। विकसित समाज की अपेक्षा विकासशील समाज की व्यवस्था में भिन्नता अधिक होती है। इन भिन्नताओं का मुख्य कारण जनसंख्या की बहुलता, विभिन्न संस्कृतियों, जिससे उस देश की राजनीतिक संस्कृति प्रतिबिंबित होती है, साथ ही प्रत्येक समाज और देश के ऐतिहासिक अनुभव भी होते हैं। विशेषताओं के आधार पर ही विकास ही समाज में लोक सेवकों को अपनी भूमिका अदा करनी होती है। दूसरे विश्व युद्ध के उपरांत एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के देश विकासशील देशों की श्रेणी में आ जाने के कारण इस संक्रमणकारी समय में लोक सेवकों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गई है। इन देशों में जहां नौकरशाही से जुड़े संगठन अल्पविकसित अवस्था में थे, वे अब निरंतर विकास की ओर अग्रसर है। सारांश अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कल्याणकारी शासन व्यवस्था में लोक सेवाएं एक महत्वपूर्ण निकाय हैं जो संपूर्ण विकास तंत्र का मुख्य आधार भी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. एल0डी0 व्हाइट ने अच्छे लोक प्रशासन के लिए किन तत्वों के संयोजन को आवश्यक बताया?
2. लोक सेवाओं का जन्म कब और कहां हुआ था?
3. विकसित देशों में लोक सेवाओं की कोई चार विशेषताएं बताइए।
4. आधुनिक लोक सेवा की कोई दो विशेषताएं बताइए।
5. लोक सेवक किसे कहा जाता है?

2.10 सारांश

लोकसेवा राज्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। आज लोक सेवा की सफलता पर राज्य के नागरिकों का सुख और प्रजातंत्र की सफलता निर्भर करती है। लोक सेवा के अभाव में ना तो सरकार अपना कार्य सफलतापूर्वक कर सकती है और ना ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास पूरा कर सकता है। लोक सेवाएं देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था एवं शांति प्रदान करती हैं। डॉक्टर हरमन फाइनर ने लोक सेवाओं को प्रशासन पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना है। लोक सेवाएं राजनीतिक सत्ता की नीतियों एवं कार्यक्रमों को न केवल निष्पादित करती हैं, बल्कि राजनीतिक सत्ता को आवश्यक सूचना तथा परामर्श भी उपलब्ध कराती हैं नौकरशाही इनसे एकदम भिन्न अवधारणा है। लोकसेवा विकास प्रक्रिया का आंतरिक अंग है और इस दिशा में उसकी भूमिका अहम होती है। अब अधिक से अधिक देश, विशेषकर विकासशील देश, और संयुक्त राष्ट्र संघ, लोक सेवा को, राष्ट्र निर्माण और सामाजिक आर्थिक विकास में एक माध्यम के रूप में एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। आधुनिक समाजों में लोक सेवाएं राष्ट्र निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती है। लोक सेवाओं की निष्पादन क्षमता पर ही सामाजिक आर्थिक विकास की सफलता और असफलता निर्भर करती है।

2.11 शब्दावली

तटस्थ- परस्पर विरोधी पक्षों से अलग रहने वाला, आजीविका- रोज़गार, विसंगति- समकालीन जीवन की वह स्थिति जहां प्रत्येक मूल्य या धारणा का उल्टा रूप दिखाई पड़ता है, प्रत्यायोजन- किसी उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारी को विशिष्ट सत्ता एवं अधिकार प्रदान करना, सामंजस्य- अनुकूलता, उपयुक्तता

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नेतृत्व, संगठन, वित्त, आदर्श विधियां एवं प्रक्रिया, मानव शक्ति। **2.** ईसवी सन् 6 में चीन में हुआ था। **3.** उत्तरदायित्व की भावना, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा से संबंधित, विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व, कार्य निष्पादन मूल्यांकन व्यवस्था सुदृढ़ होती है। **4.** प्रशिक्षित एवं कुशल कार्यकर्ता, वेतन भोगी कार्यकर्ता, तटस्थ एवं निष्पक्ष, पद सोपान का सिद्धांत। **5.** राज्य के उत्तरदायित्व एवं कार्य को पूरा करने के लिए जिन स्थाई कर्मचारियों की सहायता ली जाती है, उन्हें "लोक सेवक" कहा जाता है।

2.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिन्हा, वी. एम. 1986. पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कंसेप्ट एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
2. गोयल, एस. एल, 1984.पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999. लोक सेवीवर्गीय प्रशासन;रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र , 2008. कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006. लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, प्रभुदत्त, 2011. प्रशासनिक सिद्धांत; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
7. पाण्डेय,आशुतोष, 2009. कार्मिक प्रशासन; विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

2.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014. भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016. भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

2.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक सेवा की आधुनिक प्रवृत्तियों पर एक निबंध लिखिए।
2. आधुनिक लोक सेवा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. विकासशील देशों में लोक सेवाओं की भूमिका पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
4. भारतीय संविधान में लोक सेवाओं के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

इकाई- 3 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षण
3.3 भारत में कार्मिक प्रशासन से संबंधित संवैधानिक प्रावधान
3.4 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं
3.5 निष्कर्ष
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन की प्रक्रियाओं को संपादित करने के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता होती है और इस तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्मिकों की एक विशाल संख्या की आवश्यकता पड़ती है। किसी संगठन में इन्हीं कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा शर्तों आदि का अध्ययन कार्मिक प्रशासन के अंतर्गत किया जाता है। हम अब तक पढ़ चुके हैं कि कार्मिक प्रशासन का सामान्य अर्थ है लोक सेवकों की भर्ती, सेवा शर्तों आदि से संबंधित समस्याओं और उनके निराकरण का विज्ञान। लोक प्रशासन में कार्मिक प्रशासन का संबंध संगठन के मानवीय तत्वों से होता है। कार्मिक- प्रशासन एक ऐसी प्रशासनिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन और परिवर्तन किया जा सके। हरमन फाइनर के अनुसार "कार्मिक प्रशासन अधिकारियों की एक ऐसी पेशेवर इकाई है जो स्थाई वेतन भोगी और कार्य कुशल होती है। कल्याणकारी प्रवृत्तियों में वृद्धि और प्रशासन की सफलता एक कुशल कार्मिक प्रशासन पर निर्भर करती है, यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में प्रशासनिक प्रक्रिया और प्रशासन के संचालन में आम लोगों का पूरा ध्यान रखना पड़ता है वरना सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। निष्ठ और कुशल कार्मिक- प्रशासन की कमजोरियों और समस्याओं को दूर करने में सक्षम होते हैं, साथ ही प्रशासन के उद्देश्यों को पूरा करना आसान बना देते हैं। अतः लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक प्रशासन ही है। आधुनिक समय में राज्य संबंधी दर्शन आ हस्तक्षेप नीति से अलग होकर सामाजिक कल्याण की नीति पर आधारित हो गया है और विकास के कार्यों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य कार्यो को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी कार्मिक प्रशासन ने अपने कंधों पर ले लिया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षणों को जान जाएंगे;
- भारतीय संविधान में कार्मिक प्रशासन से संबंधित प्रावधानों के बारे में जान जाएंगे;

- भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को विस्तार से समझ पाएंगे।

3.2 आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षण

सेवीवर्ग प्रशासन के लक्षण के संबंध में कोई सामान्य करण नियम नहीं बनाए जा सकते हैं। यदि एक सेवीवर्ग प्रशासन के लक्षण किसी देश विशेष में सफल तथा प्रभावशाली सिद्ध होते हैं तो आवश्यक नहीं है कि अन्य देशों में भी यह उतने ही प्रभावशाली प्रमाणित होंगे। प्रत्येक देश की परिस्थितियां, वातावरण, समस्याएं तथा अपेक्षाएं होती हैं। इन को ध्यान में रखकर ही सेवीवर्ग प्रशासन के आदर्श लक्षण निर्धारित किए जाने चाहिए। लोक प्रशासन के विद्वानों ने आदर्श अथवा स्वस्थ सेवीवर्ग प्रशासन के आवश्यक लक्षणों के बारे में चिंतन करने के बाद मुख्यतः निम्नलिखित को महत्वपूर्ण माना है-

1. संगठन के लक्ष्य तथा उद्देश्यों की दृष्टि से उपयोगी एवं सार्थक प्रशासन होना आवश्यक है।
2. प्रशासन सदैव गत्यात्मक होना चाहिए ताकि समय, परिवर्तित परिस्थितियों एवं नई चुनौतियों के साथ स्वयं को ढाल सके। ऐसा करने से सेवीवर्ग के सभी सदस्य उत्साह के साथ काम करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।
3. इसमें कर्मचारियों की भर्ती का आधार प्रत्याशियों की सापेक्षिक योग्यता एवं क्षमता होनी चाहिए जो लूट प्रणाली से प्रभावित ना हो।
4. इसमें आजीवन सेवाओं की व्यवस्था की जाती है, जिसमें कर्मचारियों को भविष्य के प्रति आशाएं रहती हैं अतः पदोन्नति के पर्याप्त पर्याप्त अवसर होने चाहिए।
5. सेवीवर्ग में स्पष्ट पदसोपान की व्यवस्था की जानी चाहिए। सभी कर्मचारियों को उनके कर्तव्य तथा दायित्व स्पष्ट बता दिए जाने चाहिए तथा उच्च अधिकारी एवं अधीनस्थ अधिकारियों के साथ संबंध स्पष्ट कर देना चाहिए।
6. प्रशासन कर्मचारियों को राजनीतिक गतिविधियों से अलग रखने का प्रयास करता है। यह राजनीतिक तटस्थता इसलिए वांछनीय है क्योंकि राजनीतिक दल सत्ता में आते और जाते रहते हैं किंतु लोक सेवकों को इन परिवर्तनों से प्रभावित रहकर तटस्थ भाव से अपना कार्य करते रहना चाहिए।
7. प्रशासन में कर्मचारी अनाम रहकर कार्य करते हैं। उनके द्वारा संपन्न की जाने वाली सेवाओं में कर्ता का भाव नहीं रहता वरन सेवक का भाव रहता है। कर्ता के रूप में नाम राजनीतिज्ञ का होता है।
8. प्रशासन कर्मचारियों में ऐसे मूल्य स्थापित करता है ताकि वे जीवित व्यक्तियों के साथ एक जैसा व्यवहार कर सकें तथा किसी के भी साथ भेदभाव पूर्ण नीति ना अपनाए।
9. प्रशासन ने किसी भी व्यक्ति के साथ जाति, जन्म स्थान, लिंग, धर्म और प्रजाति का भेदभाव किए बिना ही उसे अवसर की समानता प्रदान की जानी चाहिए। इससे सरकारी सेवाओं का आधार व्यापक होगा और इसकी विश्व सनीयता में भी वृद्धि होगी।
10. आदर्श सेवीवर्ग प्रशासन का निर्धारण करते समय इस तथ्य पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि सरकारी सेवाओं पर समाज के उच्च वर्गों अभिजात वर्गों का ही प्रभुत्व नहीं रहे। समाज के जनसाधारण का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। अगर सरकारी सेवाओं में समाज के सभी वर्गों को समुचित प्रतिनिधित्व दिया गया तो इससे ना केवल इसका सामाजिक आधार विस्तृत होगा बल्कि इससे समाज में अनुचित असंतोष भी उत्पन्न नहीं होगा।
11. सेवीवर्ग प्रशासन का संबंध सामान्य रूप में तीन वर्गों- जनता, सरकार तथा कार्मिकों से है। अतः इस बारे में प्रशासनिक संरचना निर्धारित करते समय इस तथ्य पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए कि इनमें

किसी प्रकार का असंतुलन उत्पन्न ना हो। इन तीनों में उचित और सही संतुलन स्थापित करके ही एक आदर्श प्रशासन को लागू किया जा सकता है।

3.3 भारत में कार्मिक प्रशासन से संबंधित संवैधानिक प्रावधान

जैसा कि आप जानते हैं कि भारत एक लोकतांत्रिक देश है। यहां सभी कार्य नियमानुसार किए जाते हैं। इसी प्रकार भारतीय लोक प्रशासन व्यवस्था भी संविधान के उपबंधो के अनुसार ही संचालित होती है क्योंकि संविधान ही किसी देश के शासन की मूल आत्मा है। यद्यपि कार्मिक प्रशासन की दिन प्रतिदिन की गतिविधियों को संचालित करने हेतु अनेक प्रकार के नियम, प्रक्रियाएं आदि विधिवत रूप से गठित की जाती हैं परंतु फिर भी कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने वाले कुछ संवैधानिक प्रावधान भी हैं। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं पर चर्चा करने से पहले आइए हम कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने या निर्देशित करने वाले मुख्य संवैधानिक प्रावधानों की विस्तार में चर्चा करें-

1. अनुच्छेद- 53, भारतीय संविधान का अनुच्छेद- 53 यह प्रावधान करता है कि भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही या राष्ट्रपति के नाम से ही सम्पादित की जाती है। इसी प्रकार अनुच्छेद- 166 यह प्रावधान करता है राज्य सरकार की सभी कार्यपालिका शक्तियां राज्यपाल के द्वारा अथवा उसके अधीन अधिकारियों के द्वारा ही संपादित होंगी।
2. अनुच्छेद- 14, अनुच्छेद- 14 के अनुसार यह प्रावधान किया जाता है कि, भारत राज्य क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जाएगा।
3. अनुच्छेद- 15(1), यह अनुच्छेद केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी भी आधार पर नागरिकों के विरुद्ध कोई विभेद करने से राज्य को निश्चित करता है।
4. अनुच्छेद- 16, यह उपबंधित करता है कि, राज्य के अधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।
    - राज्य को पूर्ण अधिकार देता है कि वह लोक सेवाओं के लिए आवश्यक अर्हताए एवं मानदंडों को निर्धारित कर सकता है। राज्य द्वारा निर्धारित अर्हताओं में मानसिक योग्यता के अतिरिक्त शारीरिक योग्यता पुष्टि, अनुशासन, बौद्धिक स्तर और जनहित आदि भी सम्मिलित है। इसी प्रकार तकनीकी अर्हताए भी निर्धारित की जा सकती है।
    - यह भी प्रावधान करता है कि राज्य, लोक सेवाओं में विभिन्न श्रेणियों की सृष्टि कर सकता है।
    - इस अनुच्छेद के अधीन राज्य, अनिवार्य सेवानिवृत्ति भी कर सकता है। अतः से न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।
    - अनुच्छेद- 16(1) के अनुसार, राज्य केवल प्रारंभिक नियुक्तियों के मामले में ही नहीं बल्कि पदोन्नति, पद मुक्ति, वेतन, अवकाश, ग्रेच्युटी, पेंशन और अधिवार्षिकी भत्ता इत्यादि पर भी नियम निर्धारित कर सकता है।
    - अनुच्छेद- 16(2) के अनुसार, ‘ वंशक्रम’ तथा ‘निवास स्थान’ के आधार पर लोक सेवा में विभेद नहीं किया जा सकता है।
    - अनुच्छेद-16(3), अनुच्छेद-16(2) का अपवाद है कि “ सरकार कुछ सेवाओं को केवल राज्य के निवासियों के लिए आरक्षित कर सकती है ,बशर्ते कि इसके लिए उचित कारण हो तथा व्यवस्थापिका द्वारा अधिनियम पारित किया जाए।”

- अनुच्छेद- 16(4) राज्य को यह शक्ति देता है कि वह पिछड़ी जातियों के लिए, जिनको उसकी राय में लोक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका है है, लोक पदों को आरक्षित कर सकता है। इसके लिए 2 शर्तें हैं- वर्ग पिछड़ा हो अर्थात सामाजिक आर्थिक दृष्टि से तथा उससे राज्य के अधीन पदों पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका हो। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि केवल दूसरी शर्त एकमात्र कसौटी नहीं हो सकती।

5. अनुच्छेद- 19 (1) 'क' के अंतर्गत हड़ताल कोई मूल अधिकार नहीं है अतः किसी भी व्यक्ति को हड़ताल करने से रोका जा सकता है क्योंकि प्रदर्शन जब हड़ताल का रूप धारण कर लेता है तो वह विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र नहीं रह जाता है।
6. अनुच्छेद- 19(1) 'ग' भारत के समस्त नागरिकों को संस्थान या संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है किंतु इस अनुच्छेद का खंड 4 राज्य को इस अधिकार पर लोक व्यवस्था या नैतिकता के हित में 'युक्ति युक्त प्रतिबंध' लगाने की शक्ति भी प्रदान करता है क्योंकि संघ बनाने के अधिकार में हड़ताल करने का अधिकार सम्मिलित नहीं है।
7. अनुच्छेद- 23 (2) के अंतर्गत राज्य को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अनिवार्य सेवाएं लागू करने की शक्ति प्राप्त है और राज्य ऐसे कार्यों को करने के लिए किसी भी व्यक्ति को बाध्य कर सकता है। लेकिन शर्त यह है कि इस प्रकार की सार्वजनिक अनिवार्य सेवाओं को लागू करने में राज्य धर्म, वंश, जाति या वर्ग आदि के आधार पर विभेद ना करें।
8. अनुच्छेद- 38 एवं 39 के अनुसार न्याय का सामान वितरण अपेक्षित है। आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए 'समान कार्य के लिए समान वेतन' एक नीति-निर्देशक तत्व है, मूल अधिकार नहीं है किंतु निश्चय ही यह एक संवैधानिक लक्ष्य है और यदि राज्य इस मामले में विभेद करता है तो न्यायालय इसका पालन कराने के लिए- अनुच्छेद- 32 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है।
9. अनुच्छेद- 265, यह उपबंध करता है की विधि के प्राधिकार के कोई 'कर' अधिरोपित या संग्रहित नहीं किया जाएगा।
10. अनुच्छेद- 309, यह उपबंध करता है कि संसद तथा राज्य विधानमंडल संविधान के उपबंधो के अधीन रहते हुए संज्ञा राज्य के कार्यों से संबद्ध लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा-शर्तों का विनियमन करेंगे।
11. अनुच्छेद -310, यह उपबंध करता है कि प्रत्येक व्यक्ति दूध संघ की प्रतिरक्षा सेवा या असैनिक सेवा या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन प्रतिरक्षा से संबंधित किसी पद को अथवा किसी और सैनिक पद को धारण करता है, राष्ट्रपति के 'प्रसादपर्यंत' पद धारण करता है। इसी तरह राज्य सेवाओं के सदस्य गण राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं किंतु इस नियम के अपवाद भी हैं। प्रसाद का सिद्धांत मूल अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकता तथा अनुच्छेद-311 में विहित प्रक्रिया का पालन आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह नियम उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय, नियंत्रक एवं महालेखा, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य एवं मुख्य चुनाव आयुक्त पर लागू नहीं होता है, क्योंकि यह पद राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पर निर्भर नहीं करते हैं।
12. अनुच्छेद- 311 के अंतर्गत लोक सेवकों को उनके पद से मनमाने ढंग से पदच्युत किए जाने के विरुद्ध अग्र लिखित संवैधानिक संरक्षण प्रदान किए गए हैं-
   - कोई भी लोकसेवक अपनी नियुक्ति करता से नीचे के किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा। अनुच्छेद-311(1)

- कोई भी व्यक्ति तब तक पदच्युत या पद से हटाया या पंक्तिच्युत नहीं किया जाएगाजब तक कि उसे अपने विरुद्ध दोष आरोपों से अवगत ना करा दिया गया हो और उसके संबंध में सुनवाई का युक्ति युक्त अवसर ना दे दिया गया हो। अनुच्छेद-311(2) यह उपबंध सैनिक सेवाओं पर लागू नहीं होते हैं।

13. अनुच्छेद- 312, संसद को विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन करने की शक्ति प्रदान करता है। यदि राज्य सभा राष्ट्रहित में आवश्यक समझे तो सदन दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से संकल्प पारित कर ऐसी सेवाओं का सृजन कर सकती है।

14. अनुच्छेद- 312 (क), संविधान के 28 वें संशोधन अधिनियम, 1972 द्वारा जोड़ा गया है तथा अनुच्छेद-314 हटाया गया है जिसके अंतर्गत भारतीय सिविल सेवा(I.C.S.) में नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तें, पारिश्रमिक, अवकाश तथा पेंशन इत्यादि के बारे में विशेषाधिकार देय थे। यह अनुच्छेद संसद को उक्त सेवा में कार्यरत सदस्यों के विशेष अधिकारों को समाप्त करने की शक्ति प्रदान करता है, किंतु इसका प्रभाव उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों एवं मुख्य चुनाव आयुक्त पर लागू नहीं है।

15. अनुच्छेद- 315, संघ के लिए एक लोक सेवा आयोग तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग या दो या अधिक राज्यों के लिए संयुक्त लोक सेवा आयोग गठित करने का प्रावधान करता है।

16. अनुच्छेद- 323 (क), यह उपबंधित करता है कि संसद विधि द्वारा संघ या किसी राज्य या भारत राज्य के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व नियंत्रण में किसी निगम के कार्यों से संबंध लोक सेवाओं और पदों के लिए तथा उनकी सेवा शर्तों से संबंधित विवादों और परिवादों के न्याय- निर्णयन या विचारण के लिए प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का उपबंध करेगी। दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक अधिकरण(Tribunal) की स्थापना की जा सकती है।

17. अनुच्छेद- 343 में यह प्रावधान है कि, संघ की राजभाषा (0fficial Language) हिंदी और लिपि देवनागरी होगी किंतु संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा साथ ही राष्ट्रपति इस दिशा में अन्य आवश्यक प्रावधान भी कर सकेंगे।

उपरोक्त वर्णित संवैधानिक प्रावधान कार्मिक प्रशासन एवं लोक सेवाओं को प्रभावित करते हैं। परंतु साथ ही यह भी प्रावधान है कि परिवर्तित परिस्थितियों या नई आवश्यकताओं के अनुसार यदि चाहे तो व्यवस्थापिका भी इन प्रावधानों में परिवर्तन कर सकती है।

इस प्रकार आप यह भली-भांति समझ गए होंगे कि भारतीय संविधान में कार्मिक प्रशासन से संबंधित प्रावधान किए गए हैं। यह सभी प्रावधान भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं तथा एक आधार प्रदान करते हैं।

3.4 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं

भारत में कार्मिक प्रशासन तथा लोक सेवाओं का जो स्वरूप वर्तमान में उपस्थित है, वह ब्रिटिश शासन की देन ही माना जाता है। वर्तमान में भारत सहित सभी लोक कल्याणकारी राज्यों में कार्मिक प्रशासन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता जा रहा है। कार्मिक प्रशासन की सफलता ही जन कल्याण की वृद्धि का आधार स्तंभ है। सेवीवर्ग उन व्यक्तियों का एक समूह है जो प्रशासन की विस्तृत क्रियाओं को अपनी क्षमता, योग्यता एवं स्थिति के अनुसार संपन्न करते हैं। अतः प्रशासन तंत्र को संचालित करने वाले इन व्यक्तियों अर्थात कार्मिकों की यदि उपेक्षा की जाएगी तो समस्त प्रशासकीय व्यवस्था पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। कार्मिक प्रशासन ही वह केंद्र बिंदु है जिसके चारों ओर प्रशासन की विभिन्न समस्याएं छाई रहती हैं। प्रशासन की सफलता हेतु यह अत्यधिक

आवश्यक होता है कि प्रशासन में मानवीय पहलू और मानवीय संबंधों एवं व्यवहारों पर समुचित ध्यान एवं महत्व दिया जाए। मानवीय व्यवहार के द्वारा ही सेबी वर्ग की कार्य कुशलता में वृद्धि भी की जा सकती है तथा अयोग्य कर्मचारियों को भी कार्य करने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। वर्तमान संदर्भ में लोक कल्याणकारी राज्य में प्रशासनिक कार्यों का विस्तार दिन प्रतिदिन होता जा रहा है। फलस्वरूप राज्य के बढ़ते हुए कार्यों को संपन्न करने हेतु एक बड़ी मात्रा में कर्मचारियों की आवश्यकता महसूस की जाती है। वर्तमान लोक कल्याणकारी राज्य में प्रशासन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रहती है तथा प्रशासन के उद्देश्यों की पूर्ति से भी वर्ग रूपी बृहद मानव समूह के द्वारा ही की जाती है।

कर भी प्रशासन की इतनी बड़ी संख्या तथा इस वर्ग का इतना महत्व है कि हरमन फाइनर ने कहा कि "लोक प्रशासन में सभी वर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।" कार्मिक प्रशासन में सभी वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा वर्गीकरण आदि सभी बातों का समावेश होता है। कार्मिक प्रशासन में वे सारी प्रक्रियाएं शामिल होती है जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन किया जाता है। इसके अतिरिक्त से विवाद के संबंध में एक उपयुक्त नीति को अपनाया जाना या निर्धारण किया जाना भी अत्यधिक आवश्यक होता है। यूं तो प्रत्येक संगठन के लिए एक अच्छी सेवीवर्ग नीति का होना आवश्यक होता है परंतु सरकारी संगठनों में इसकी उपयोगिता एवं प्रभाव अपेक्षाकृत कुछ अधिक होता है। सेवीवर्ग से संबंधित उपयुक्त नीति को अपनाकर एक देश के प्रशासन को सार्थक, कार्य कुशल, उपयोगी, प्रभावशील, मितव्ययी और उत्तरदाई बनाया जा सकता है। परंतु इस संदर्भ में यह भी जान लेना आवश्यक है किसी भी वर्ग के संबंध में कोई एक ऐसी नीति निर्धारित नहीं की जा सकती है जो प्रत्येक देश में समान रूप से लागू की जा सके। प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ, वातावरण, समस्याएं, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियां भिन्न भिन्न होती हैं। इन सभी तरह की विविधताओं का ध्यान रखकर ही सेवी वर्ग नीति का निर्धारण किया जा सकता है। सेवीवर्ग या कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं में कार्मिकों से संबंधित उन सभी क्रियाओं को शामिल किया जा सकता है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रशासन की कार्यकुशलता एवं उपयोगिता को प्रभावित करती हैं। लोक कार्मिक प्रशासन की कुछ ऐसी विशेषताएं भी होती हैं जो निजी प्रशासन से भिन्न होती हैं। सरकार अपने कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए लोक कार्मिक तंत्र पर निर्भर करती है। भारत में कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं को हम विस्तृत रूप में निम्न बिंदुओं के आधार पर समझ सकते हैं-

1. **ब्रिटिश काल का प्रभाव-** भारत में संपूर्ण अधिकारी तंत्र ब्रिटिश शासन से विरासत के रूप में प्राप्त किया गया है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत पर शासन करते समय अपने व्यापारिक हितों को पूरा करने के लिए एक सेवा संरचना का विकास किया। ईस्ट इंडिया कंपनी के बाद 1858 में ब्रिटिश सरकार ने भारत के प्रशासन की बागडोर प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथों में ले ली थी। ऐसा करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का प्रमुख उद्देश्य भारत के संसाधनों का उपयोग स्वयं के हित में करना था। इस कार्य को संपन्न करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारत पर अपनी प्रशासनिक नियंत्रण को बहुत कठोर रखा। देश में आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण तथा विकास के लिए किसी भी प्रकार की गतिविधि का संचालन करने पर न्यूनतम ध्यान दिया। ब्रिटिश भारतीय लोक सेवा केवल अंग्रेजों के लिए खुली थी। इसमें भारतीयों का प्रवेश केवल प्रथम विश्व युद्ध के बाद हुआ। अंग्रेज अधिकारी शासक होने के अहम तथा श्रेष्ठ गोरी नस्ल की उच्चता की भावना से पीड़ित थे। ऐसी नौकरशाही पूर्णत: सत्तावादी,एकीकृत, असंगठित, अन उत्तरदाई, स्वेच्छाचारी तथा अप्रजातांत्रिक थी तथा इसका लक्ष्य देश का आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, जनहित की उपलब्धि तथा जन सुविधाएं जुटाना नहीं था। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय नौकरशाही को परिवर्तित परिवेश में नया दृष्टिकोण अपनाकर अपनी कार्यशैली का निर्धारण करना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वह आज भी अतीत की विरासत से ग्रस्त है।

2. **लोक कल्याणकारी स्वरूप-** स्वतंत्रता के पश्चात 1950 में जब हमारा अपना संविधान लागू हुआ तो उसके द्वारा हमारे देश के प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार एवं परिवर्तन लाने के लिए संविधान में प्रावधान किए गए। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन को एक विकास तथा जन कल्याण उन्मुख प्रशासन में बदलना पड़ा। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अपनाने के परिणाम स्वरूप अब देश में सेवीवर्ग प्रशासन के द्वारा लोक कल्याण से संबंधित सभी कार्यों का संपादन करना पड़ता है। कार्मिक प्रशासन का लोक कल्याणकारी स्वरूप वर्तमान में भारतीय लोक कार्मिक प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता मानी जा सकती है।
3. **लोकतांत्रिक स्वरूप-** सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत पश्चात एक कुशल कार्मिक तंत्र की स्थापना करने में बहुत सारी बाधाएं विद्यमान थी। परंतु 1950 में जब भारत का अपना संविधान लागू हुआ तो अतीत के अधिनायक वादी कार्मिक प्रशासन का स्थान कार्मिक प्रशासन के एक लोकतांत्रिक स्वरूप ने ले लिया। आज लोक कार्मिक प्रशासन बिना किसी भेदभाव के समाज के सभी वर्गों के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का संचालन करता है। समाज के सभी वर्गों को समान रूप से सभी योजनाओं का लाभ मिले यही लोक कार्मिक प्रशासन का प्रथम प्रयास रहता है।
4. **सरकार के लक्ष्यों की प्राप्ति-** भारत में लोक कार्मिक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य सरकार के लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। सरकार के द्वारा जब लक्ष्यों का निर्धारण कर लिया जाता है तो उसके पश्चात लोक कार्मिक तंत्र का यह उद्देश्य होता है कि वह सरकार द्वारा निर्धारित सभी लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों और नीतियों का कुशल क्रियान्वयन करें।
5. **प्रशासन का संवैधानिक आधार-** भारतीय लोक प्रशासन व्यवस्था संविधान के उपबन्धों के अनुसार ही संचालित होती है। यद्यपि कार्मिक प्रशासन की दैनिक गतिविधियों को संचालित करने हेतु अनेक प्रकार के नियम, विनियमन तथा प्रक्रिया निर्धारित की जाती है परंतु फिर भी कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने वाले या निर्देशित करने वाले विभिन्न संवैधानिक प्रावधान भी किए गए हैं। भारत में लोक कार्मिक प्रशासन को इन्हीं संवैधानिक प्रावधानों के दायरे में रहते हुए ही अपनी गतिविधियों का संचालन करना पड़ता है।
6. **विकासोन्मुख-** भारत में कार्मिक लोक प्रशासन विकास से संबंधित सभी प्रकार की गतिविधियों का संचालन करता है। कार्मिक लोक प्रशासन का यह दायित्व होता है कि वह सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन करते हुए विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सरकार की सहायता करें। यह तो आप सब को ज्ञात ही है कि कार्मिक लोक प्रशासन की उचित नीतियों के बिना किसी भी देश का विकास के तत्व को प्राप्त कर पाना लगभग असंभव सा ही होता है।
7. **योग्यता पर आधारित भर्ती-** कार्मिक प्रशासन की आधारभूत विशेषता भर्ती ही होती है। भर्ती से ही प्रशासनिक सेवाओं में पदों के रिक्त होने पर सामान्य नागरिकों द्वारा उनको भरे जाने के लिए आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं। प्रत्येक पद के लिए एक निश्चित योग्यता पहले से ही निर्धारित कर दी जाती है तथा उसकी योग्यता की जांच हेतु प्रतियोगिता परीक्षाओं का आयोजन करवाया जाता है। इन प्रतियोगिता परीक्षाओं में जो भी प्रत्याशी सफल होते हैं उनको अंकों के आधार पर योग्यता सूची मैं शामिल किया जाता है और उसके बाद बहुत से पदों के लिए साक्षात्कार का भी प्रावधान होता है। साक्षात्कार के बाद सफल प्रत्याशियों को कुछ और औपचारिकताओं के बाद सेवी वर्ग में शामिल कर लिया जाता है। कार्मिक लोक प्रशासन कि यह महत्वपूर्ण विशेषता भी होती है और दायित्व भी होता है कि वह प्रशासन में भर्ती हेतु उचित व्यवस्था करें।

8. **अवसर की समानता-** प्रशासन में प्रवेश हेतु अवसर की समानता प्रदान करना भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण विशेषता है।
भारतीय संविधान की धारा- 15(1) के अनुसार राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। इसकी धारा- 16(1) में यह उल्लेख किया गया है कि राज्य के अधीन नौकरी और पदों के बारे में सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त होंगे। भारतीय लोक सेवाओं में प्रवेश अवसर की समानता हेतु संवैधानिक, संस्थागत, व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक सभी दृष्टियों से विभिन्न उपाय किए गए हैं। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के द्वारा सभी लोगों को प्रशासन में अवसर प्रदान करने हेतु उचित नीति का निर्माण किया जाता है।
9. **लोक सेवाओं का व्यापक आकार-** भारत में जनसंख्या वृद्धि एवं राज्य के दायित्व में वृद्धि के बाद लोक सेवकों की संख्या काफी बढ़ी है। केंद्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर लोक सेवकों की संख्या में कमी नहीं आई है बल्कि इसमें दिनोंदिन बढ़ोतरी होती जा रही है। भारत में लोक सेवाओं के इस बड़े हुए आकार के लिए कई कारण उत्तरदाई हैं। जैसे- स्वतंत्रता के बाद देश में बहुत सारे नए मंत्रालय की स्थापना हुई तथा प्रायः सभी मंत्रालयों ने अपने व्यापक कार्यों एवं दायित्वों के निर्वाह के लिए अधिक लोक सेवकों की नियुक्ति की है। साथ ही साथ लोक सेवकों के कार्यों का समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है तथा कार्य के न्यूनतम मापदंड तय नहीं किए जा सके अतः लोक सेवकों की संख्या अनियंत्रित एवं असंगठित रुप से बढ़ती ही जा रही है। सरकारी नौकरी में सेवा की सुरक्षा और निश्चितता का होना तथा समाज में सरकारी नौकरी का बड़ा सम्मान होना भी भारत में लोक सेवाओं के व्यापक आकार लेने का प्रमुख उत्तरदाई कारण माना जाता है।
10. **आरक्षण की व्यवस्था-** भारतीय कार्मिक लोक प्रशासन लोक सेवाओं में आरक्षण का भी प्रावधान करता है। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के द्वारा सभी प्रकार के सरकारी संगठनों में कार्मिकों की भर्ती एवं पदोन्नति की प्रक्रिया में विशेष वर्गों के लिए आरक्षण का भी प्रावधान किया गया है।
11. **जनाकांक्षाओं का प्रतीक-** भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की ओर जनता का विशेष आकर्षण है। जनता अपनी सभी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु लोक कार्मिक प्रशासन की ओर ही देखती है। अतः भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से ही एक विशेषता यह भी है कि यहां कार्मिक लोक प्रशासन जनाकांक्षाओं का प्रतीक होता है। सेवीवर्ग का यह एक प्रमुख दायित्व होता है कि वह जनता की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अपने सभी कार्यों का संपादन करें। कार्मिकों का सदैव यही प्रयास रहता है कि जनता की समस्त आवश्यकता और प्रशासन से उनकी आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अपने कार्यों का सकारात्मक रूप से संपादन करते हुए सरकार के समस्त लक्ष्यों को प्राप्त करें। ऐसा करने से ना केवल सरकार के लक्ष्यों की प्राप्ति साधारण एवं सरल तरीके से हो सकती है वरन जनता द्वारा प्रशासन से की गई सभी अपेक्षाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति हो जाती है।
12. **भ्रष्टाचार तथा अकर्मण्यता की समस्या-** भारतीय कार्मिक लोक प्रशासन भ्रष्टाचार तथा अकर्मण्यता से ग्रसित है। भारतीय लोक सेवा के अधिकांश सदस्य धनी बनने की अभिलाषा से अपनी सत्ता एवं पद का निजी हित के लिए दुरुपयोग करने लगते हैं। उनकी सारी नीतियां और नीतियां संपन्न वर्ग के हितों की रक्षा का काम करती हैं। यह इनकी महत्वाकांक्षाएं इन्हें कार्यकुशलता की ओर प्रेरित करने की अपेक्षा उन्नति के भ्रष्ट तरीके अपनाने को प्रेरित करती है प्रेरित करती है। यह धन दौलत एवं प्रतिष्ठा तथा शक्ति की दौड़ में शामिल हो जाते हैं। इनका पूरा दृष्टिकोण ही बदल जाता है। ये स्वयं को जनसेवक मानने की अपेक्षा जनता को अपना सेवक मानने लगते हैं।

13. **सामान्यज्ञों का वर्चस्व-** भारतीय लोक सेवा में सामान्य के प्रशासकों का वर्चस्व है। अखिल भारतीय तथा राज्यों के लोक सेवा, दोनों पर ही यह बात समान रूप से लागू होती है। विशेषज्ञों को सामान यज्ञ के नेतृत्व और नियंत्रण में रहकर कार्य करना होता है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से विशेषज्ञ प्रशासकों का भी महत्व बढ़ता जा रहा है, फिर भी भारतीय लोक सेवाओं से सामान्यज्ञ प्रशासकों के वर्चस्व को तोड़ने में काफी समय लगेगा।
14. **विधि के शासन पर आधारित-** भारतीय लोक सेवाएं विधि के शासन पर आधारित हैं। इसके द्वारा सारे कार्य विधि या कानून के अनुरूप ही संपादित किए जाते हैं। कोई भी अधिकारी या कर्मचारी ना तो विधि के शासन से ऊपर है और ना ही अपनी कार्य पद्धति में विधि के शासन की अवहेलना कर सकता है।
15. **सकारात्मक प्रवृत्ति-** भारतीय लोक सेवाओं की नकारात्मक प्रवृत्ति पर बहुत कुछ कहा जाता है, लेकिन इसका मतलब यह बिल्कुल भी नहीं है कि भारतीय लोक सेवाओं की कोई सकारात्मक प्रकृति नहीं है। भारतीय लोक सेवाओ में योग्यता, कुशलता, संविधान के प्रति प्रतिबद्धता, राजनीतिक नेतृत्व द्वारा लिए गए निर्णय को क्रियान्वित करने की क्षमता, विधि के शासन का अनुशीलन, अनुशासन तथा परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने की क्षमता जैसे गुण भी विद्यमान है। यह सब गुण ही लोक सेवाओं की क्षमता है।
16. **सेवाकाल की सुरक्षा-** भारतीय संविधान की धारा- 309 केंद्रीय संस्था राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को उनके क्षेत्र में लोक सेवाओं की नियुक्ति तथा सेवा शर्तों के नियमन का अधिकार देती है। धारा- 310 में उल्लेख है कि लोक सेवा के कर्मचारी केंद्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपालों के प्रसादपर्यंत ही अपने पद पर कार्य करेंगे। इस प्रावधान का यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति और राज्यपाल स्वेच्छा पूर्वक कभी भी किसी अधिकारी को उसके पद से हटा देंगे। संविधान में लोक सेवकों की सेवा सुरक्षा के लिए भी उपयुक्त व्यवस्था की गई है। धारा- 311 के अनुसार लोक सेवा के किसी भी सदस्य को उसके नियुक्त करने वाले अधिकारी द्वारा नहीं हटाया जा सकता। किसी भी कर्मचारी को हटाने अथवा पदावनत करने से पूर्व उसे अपने पक्ष में सफाई देने का पूरा अवसर दिया जाएगा।
17. **राजनीतिक हस्तक्षेप-** भारत में कार्मिक प्रशासन राजनीति के शिकंजे से ग्रस्त है। मंत्रियों और सांसदों तथा विधायकों द्वारा से भी वर्ग की भर्ती, पदोन्नति, अनुशासन, स्थानांतरण आदि पर अनुचित दबाव डाला जाता है। इस बात का कर्मचारियों की कार्यकुशलता पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। यही नहीं राजनीतिक स्वार्थ के लिए प्रशासनिक नियमों में भी बदलाव कर दिए जाते हैं। राजनीतिक हस्तक्षेप और पक्षपात संगठन के कुछ सदस्यों को लापरवाह बना देता है।
18. **समुचित कार्मिक नीति का अभाव-** मैक्स वेबर के अनुसार एक आदर्श सेवी वर्ग नीति वह होती है, जिसमें सभी कर्मचारियों के कर्तव्य निर्धारित कर उन कर्तव्यों की पूर्ति के लिए उन्हें पर्याप्त सत्ता सौंपी जाए तथा कार्य की एक उचित पद्धति एवं व्यवस्था भी निर्धारित की जाए। उपयुक्त सेवी वर्ग प्रशासन की नीति प्रत्येक शासन व्यवस्था की एक वांछनीय विशेषता होती है। निजी संगठनों की अपेक्षा सरकारी संगठनों में इसकी उपयोगिता एवं प्रभाव अधिक होता है। इसकी सहायता से ही एक देश के प्रशासन को सार्थक, उपयोगी, कार्य कुशल, प्रभावशाली, मितव्ययी तथा उत्तरदाई बनाया जा सकता है।

भारतीय नौकरशाही के विरुद्ध की गई सारी बुराइयों और नकारात्मक सोच की वास्तविक जड़ें सेवीवर्ग प्रशासन की दोषपूर्ण नीति होती है। अधिकारियों का असहायपूर्ण दृष्टिकोण, कार्य संपन्नता में अनावश्यक देरी, भ्रष्टाचार, आवश्यक वस्तुओं की अनुपलब्धि, जनसाधारण को सेवाएं प्रदान करने वाले अभिकरणों द्वारा अवहेलना, भाई-भतीजावाद और पक्षपात का प्रभाव, जनता की शिकायतें सुनने और उनका निवारण करने की पर्याप्त व्यवस्था आदि का दोष किसी ना किसी रूप में सेवीवर्ग प्रशासन की समुचित कार्मिक नीति के अभाव की परिचायक हैं।

3.5 निष्कर्ष

लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक प्रशासन ही है। आदर्श कार्मिक प्रशासन में स्पष्ट पदसोपान की व्यवस्था होनी चाहिए, योग्यता के आधार पर भर्ती होनी चाहिए, व्यक्ति के साथ जाति,जन्म स्थान, लिंग, धर्म,और प्रजाति के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव ना करते हुए अवसर की समानता प्रदान करनी चाहिए। भारत में संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं तथा एक आधार भी प्रदान करते हैं। भारतीय लोक कार्मिक प्रशासन पर ब्रिटिश काल का प्रभाव, प्रशासन का लोक कल्याणकारी तथा लोकतांत्रिक स्वरूप, प्रशासन का संवैधानिक आधार, योग्यता पर आधारित भर्ती, अवसर की समानता, विकासोन्मुख प्रशासन, आरक्षण की व्यवस्था लोक सेवाओं का व्यापक आकार, भ्रष्टाचार की समस्या आदि प्रमुख विशेषताएं पाई जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. आदर्श कार्मिक प्रशासन के कोई दो लक्षण बताइए।
2. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की कोई दो विशेषताएं बताइए।
3. संविधान का अनुच्छेद-166 क्या प्रावधान करता है?
4. विकासोन्मुख प्रशासन की अवधारणा क्या है?
5. भारतीय संविधान की कौन सी धारा में अवसर की समानता के बारे में बताया गया है?

3.6 सारांश

इस अध्याय में भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को विस्तार से जानने के बाद यह कहा जा सकता है की देवी वर्ग प्रशासन के लक्षण के संदर्भ में कोई सामान्य नियम नहीं बनाए जा सकते हैं। कोई भी प्रशासनिक तंत्र तब तक भली-भांति काम नहीं कर सकता है जब तक कि उसमें काम करने वाले व्यक्ति स्वयं कुशल और इमानदार ना हो। इसके साथ-साथ इस बात की भी आवश्यकता है कि सेवा में प्रवेश करने वाले कार्मिकों की भर्ती का तरीका उपयुक्त होना चाहिए एवं पदोन्नति तथा प्रशिक्षण की भी समुचित व्यवस्था के साथ-साथ उन्हें अन्य लाभ भी प्रदान किए जाने चाहिए। लोक कार्मिक तंत्र के कुछ विशेष लक्षण ही इन्हें निजी संगठनों में मौजूद कार्मिक व्यवस्था से प्रथक करते हैं। विकास तथा जन कल्याण के बढ़ते हुए कार्यों से लोग कार्मिक तंत्र के समक्ष कई नवीन चुनौतियां सामने आ रही हैं। वर्तमान व्यवस्था को हमने ब्रिटिश शासन से विरासत में प्राप्त किया है। ब्रिटिश काल से प्राप्त कई विशेषताओं एवं कार्यों का अब कोई महत्व नहीं रह गया है, अतः उन को बदलने की आवश्यकता है। जनता की बढ़ती हुई आकांक्षाओं तथा कर्मचारियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन तथा विकासात्मक गतिविधियों पर अधिक जोर होने के कारण प्रशासनिक तंत्र में व्यापक फेरबदल की आवश्यकता है।

3.7 शब्दावली

अकर्मण्यता- निकम्मापन, आलस्य, सामान्यज्ञ- व्यापक सामान्य ज्ञान वाला व्यक्ति, विकासोन्मुख- किसी विशेष दिशा या स्थिति की ओर जाता हुआ, परिवाद- शिकायत, पारिश्रमिक- वह धन जो किसी को किसी परिश्रम को करने के बाद पारितोषिक के रूप में दिया जाता है

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कर्मचारियों की भर्ती का आधार प्रत्याशियों की शैक्षिक योग्यता, स्पष्ट की व्यवस्था। **2.** लोक कल्याणकारी स्वरूप, अवसर की समानता। **3.** राज्य सरकार की सभी कार्यपालिका शक्तियां राज्यपाल के द्वारा उसके अधीन

अधिकारियों के द्वारा ही संपादित होंगी। **4.** कार्मिक लोक प्रशासन सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन करते हुए विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने में सरकार की सहायता करें। **5.** भारतीय संविधान की धारा- 15(1), 16(1)

3.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिन्हा, वी. एम. 1986. पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन :कंसेप्ट एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
2. गोयल, एस. एल.1984.पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999. लोक सेवीवर्गीय प्रशासन;रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र, 2008.कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006. लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, प्रभुदत्त, 2011. प्रशासनिक सिद्धांत; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
7. पाण्डेय,आशुतोष, 2009 . कार्मिक प्रशासन; विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, एल. पी. 1987. पब्लिक परसोनेल सिस्टम इन इंडिया; अनमोल: नई दिल्ली।
2. माहेश्वरी, एस.आर. एंड ए. अवस्थी, 1987. पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल: आगरा।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदर्श सेवीवर्ग प्रशासन की लक्षणों की विवेचना कीजिए।
2. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के संदर्भ में किए गए संवैधानिक प्रावधानों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई- 4 कार्मिक प्रशासन के कार्य एवं महत्व

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य
4.3 कार्मिक प्रशासन के कार्य
4.4 कार्मिक प्रशासन का महत्व
4.5 निष्कर्ष
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा ही होगा कि कार्मिक प्रशासन को सेवी वर्गीय या स्टाफ प्रबंध या जनशक्ति प्रबंध के नाम से भी जाना जाता है। साधारण शब्दों में कार्मिक प्रशासन समग्र प्रबंध या प्रशासन का वह भाग होता है जो कार्यरत कर्मचारियों अर्थात कार्मिकों तथा संगठन के भीतर के संबंधों से जुड़ा होता है। कार्मिक प्रशासन ही संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यों को करता है। यदि यह कहा जाए कि किसी भी संगठन की सफलता उसके कार्मिक तंत्र की प्रभावशीलता पर ही निर्भर करती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पिछले अध्याय के अध्ययन से आप यह तो जान ही गए होंगे कि कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में कार्मिकों से संबंधित विभिन्न तत्व सम्मिलित होते हैं, जैसे- कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, अनुशासन, कार्य दशाएं आदि। अब इस इकाई के अंतर्गत हम कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों तथा कार्मिक प्रशासन के महत्व के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों जैसे मानव शक्ति प्रबंधन, भर्ती, पदोन्नति, प्रशिक्षण, मनोबल, कर्मचारी कल्याण आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के महत्व को भली प्रकार से बिंदुवार जान पाएंगे।

4.2 कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य

कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में काम करने वाले लोगों अर्थात मानवीय तत्वों से संबंधित होता है। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में कार्मिक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों को संगठन में ना केवल लाने, बल्कि उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से संबंधित कार्य

को संपादित करने के लिए भी प्रमुख रूप से उत्तरदाई होता है। कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर को बनाए रखना और कर्मचारियों की क्षमता, इच्छाओं तथा संतुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करना भी कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य ही होता है। संगठनात्मक विकास के लिए कार्मिक प्रशासन की प्रक्रिया का निरंतर चलते रहना आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन ही समग्र प्रशासन का वह महत्वपूर्ण भाग होता है जो कार्मिक मामलों से संबंधित होता है।

पिछले अध्याय में कार्मिक प्रशासन की प्रकृति और क्षेत्र को विस्तार से पढ़ने के बाद आप इसके महत्व बल्कि इसके विस्तृत कार्यों को भी आसानी से समझ सकते हैं। कार्मिक प्रशासन का विस्तृत क्षेत्र ही इसके विविध कार्यों की ओर संकेत देता है। किसी भी संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्मिक प्रशासन की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता है। कार्मिक प्रशासन ही संगठन का वह भाग होता है जो कार्मिकों से संबंधित सभी कार्यों का संपादन करता है। कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों को समझने से पहले आइए इसके उद्देश्यों पर एक दृष्टि डालें ताकि कार्मिक प्रशासन के कार्यों को समझने में सुविधा हो। कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को निम्न बिंदुओं के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

1. किसी भी संगठन के कार्मिकों से संबंधित नीति एवं योजना का निर्माण कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।
2. कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य आवश्यक सेवा शर्तों का निर्धारण।
3. कार्मिकों के मनोबल तथा अभिप्रेरणा से संबंधित समस्त कार्य।
4. परिवर्तित परिवेश में कार्मिक नीतियों का पुनरीक्षण करना।
5. कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना।
6. संगठन में कार्यकुशलता को बढ़ाना।
7. संगठन में अनुशासन को बनाए रखने के प्रयास करना।
8. कार्मिकों के लिए सेवा की संतोषजनक सेवा शर्तों का निर्माण करना।
9. योग्य और कुशल कार्मिकों को संगठन की ओर आकर्षित करना।
10. गतिशील और परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य की क्षमता को विकसित करना।
11. संगठन की प्रतिष्ठा को बढ़ाने हेतु प्रयास करना।
12. कर्मचारियों की शिकायतों के निवारण की व्यवस्था करना।
13. संगठन में अनुसंधान को बढ़ावा देना।
14. संगठन में कुशलता तथा विकास की वृद्धि हेतु प्रयास करना।

उपरोक्त बिंदुओं के द्वारा दर्शाए गए समस्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्मिक प्रशासन नियंत्रण प्रयत्नशील रहता है। कार्मिक प्रशासन के कार्य की सूची में इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्यों की एक लंबी सूची होती है जिनके आधार पर कार्मिक प्रशासन विविध कार्यों का संपादन करता है। इसी आधार पर, आइए अब कार्मिक प्रशासन के कार्यों को भी बिंदुओं के आधार पर समझे।

4.3 कार्मिक प्रशासन के कार्य

कार्मिक प्रशासन के उपरोक्त वर्णित सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु किए जाने वाले सभी प्रयास कार्मिक प्रशासन के कार्यों के अंतर्गत शामिल किए जा सकते हैं। कार्मिक प्रशासन द्वारा जितने प्रकार के कार्य किए जाते हैं वही उसका क्षेत्र भी बन जाता है। कार्मिक प्रशासन के कार्यों का निम्न बिंदुओं के आधार पर विस्तृत रूप से विवेचन किया जा सकता है-

1. **मानव शक्ति प्रबंधन-** औपचारिक तथा अनौपचारिक हर प्रकृति वाले संगठनों में मानव शक्ति की आवश्यकता अवश्यंभावी है। सभी प्रकार के संगठनों के द्वारा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जितने भी कार्य संपादित किए जाने होते हैं उनको करने के लिए हर संगठन में मानव शक्ति सबसे महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। मानव शक्ति प्रबंधन से संबंधित प्रक्रिया कर्मचारियों के चयन की प्रक्रिया से पहले ही संपन्न की जाती है। मानव शक्ति प्रबंधन की प्रक्रिया के अंतर्गत संगठन में आवश्यक कर्मचारियों की संख्या से लेकर उनकी नियुक्ति प्रशिक्षण तथा पदोन्नति आदि से संबंधित सभी बातों का पूर्वानुमान लगाया जाता है।

   मानव शक्ति प्रबंधन के अंतर्गत संगठन में उपलब्ध रिक्त पद, उन पदों से संबंधित कार्य, भर्ती हेतु आवश्यक योग्यताएं एवं विशेषज्ञता, कार्य की प्रकृति और कर्मचारियों की नियुक्ति से संबंधित सभी तथ्य सम्मिलित होते हैं।
2. **सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन-** व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत एवं कार्यपालिका अर्थात सरकार द्वारा प्रसारित किए जाने वाले सभी आदेशों को कार्य रूप प्रदान करने का दायित्व कार्मिक प्रशासन का ही होता है। संगठन में कार्यरत कर्मचारियों द्वारा अपने दायित्व का सही रूप में निर्वाह किया जा सकें ऐसी परिस्थितियां कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही उपलब्ध कराई जाती हैं।
3. **सही स्थान पर सही व्यक्ति की नियुक्ति-** कार्मिक प्रशासन द्वारा इस बात का प्रबंध किया जाता है कि जो व्यक्ति जिस कार्य के लिए उपयुक्त है उसे उसी कार्य हेतु नियुक्त किया जाए। उदाहरण के तौर पर एक डॉक्टर की आवश्यकता के स्थान पर इंजीनियर को नियुक्त किया नहीं किया जा सकता है। क्षेत्रीय कार्यालयों में उत्तम कार्य को करने में सक्षम हो उन्हें यदि मुख्य कार्यालय में लगा दिया जाए तो उनके कार्यों की गुणवत्ता इतनी अच्छी नहीं होगी। अतः यह कार्मिक प्रशासन का ही कार्य होता है कि वे अपने संगठन में सभी कर्मचारियों के लिए ऐसी नीतियों का निर्माण करें जिससे प्रत्येक कर्मचारी अपनी रूचि और योग्यता के अनुरूप उचित पद पर नियुक्त किया जा सके। ऐसा करने से न केवल संगठन को मानव शक्ति का संपूर्ण योगदान मिलेगा वरन् कर्मचारी को भी अपने कार्य से पूर्ण संतुष्टि प्राप्त होगी जो किसी भी प्रकृति के संगठन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
4. **योग्य तथा कुशल सेवीवर्ग की नियुक्ति-** कार्मिक प्रशासन द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न प्रशासनिक पदों पर सबसे योग्य कर्मचारी की ही नियुक्ति की जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्मिक प्रशासन के द्वारा संगठन में भर्ती हेतु वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया जाता है। नियुक्ति से पहले सभी प्रत्याशियों की योग्यता और क्षमताओं को क्वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा नापने का प्रयास किया जाता है। भर्ती में वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने का लाभ यह होता है कि संगठन में भी भी कोई अयोग्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हो पाता है।
5. **प्रशिक्षण की व्यवस्था-** प्रशासन में पदाधिकारियों को परिवर्तित समय के साथ नए दायित्वों का निर्वाह करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षण द्वारा ना केवल कर्मचारी की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है, बल्कि वह पदोन्नति के योग्य भी बन जाता है। प्रशिक्षण अप्रत्यक्ष रूप से लोक सेवाओं को आजीवन व्यवसाय बनाने में योगदान प्रदान करता है। इसी तथ्य के आधार पर कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में कुशल सेवीवर्ग की नियुक्ति के साथ-साथ इन नवनियुक्त तथा पूर्व में कार्यरत सभी कर्मचारियों के लिए प्रवेश पूर्व तथा प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण का प्रबंध किया जाना भी कार्मिक प्रशासन के अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यों की श्रेणी में आता है।
6. **पदोन्नति-** किसी भी संगठन की सफलता का मूल सूत्र यही होता है उसमें कर्मचारियों को तरक्की के उचित अवसर प्रदान किए जाएं। प्रशिक्षण की भांति ही संगठनों में कार्मिकों की पदोन्नति के लिए भी

उचित सिद्धांतों का होना अत्यंत आवश्यक है। यह कार्मिक प्रशासन का ही दायित्व होता है कि वह संगठन में कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए विभिन्न सिद्धांत निर्धारित करें। पदोन्नति की उचित व्यवस्था ही एकमात्र ऐसा साधन होती है जिससे कर्मचारियों में अपने कार्य के प्रति रुचि और संगठन के प्रति कर्तव्य निष्ठा बनी रहती है। वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर कर्मचारियों की पदोन्नति के उचित अवसरों का प्रबंध करना कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है।

7. **कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण एवं वेतन व्यवस्था-** कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में सभी पदों के कार्यों की स्पष्ट परिभाषा की जाती है। ये कार्य व्यापक, व्यवस्थित एवं स्पष्ट होते हैं जिनके आधार पर ही कर्मचारियों के वेतन भी निर्धारित किए जाते हैं।कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण करके कार्मिक प्रशासन संगठन में अवांछित टकराव को भी रोकता है।
8. **कार्यों का मूल्यांकन-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वर्गीकरण के साथ-साथ कार्मिकों की योग्यता के मूल्यांकन का अति आवश्यक कार्य भी संपादित किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही संगठन में ऐसी व्यवस्था की जाती है जिससे प्रत्येक कार्मिक की योग्यता एवं प्रभावशीलता का सही एवं समय पर मूल्यांकन किया जा सके। ऐसी व्यवस्था को अपनाने से संगठन के योग्य तथा सक्षम कर्मचारियों को पहचान कर उनकी व्यक्तिगत योग्यता तथा क्षमताओं का श्रेष्ठतम उपयोग किया जा सकता है और कार्मिकों को संगठन में बने रहने के लिए प्रेरित भी किया जाता है।
9. **संतोषजनक सेवा शर्तें-** किसी भी संगठन में प्रवर्तित संतोषजनक सेवा शर्तें संगठन में योग्य कार्मिकों कोआकर्षित करती है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा लोक सेवकों के लिए कार्य की उपयुक्त शर्तों की व्यवस्था भी की जाती है, ताकि वह संतोष का अनुभव करते हुए अपने पद के दायित्व को पूरा कर सकें। सेवा शर्तों के अंतर्गत- पर्याप्त वेतन, कार्य के उपयुक्त घंटे, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएं, आकस्मिक संकट के समय सहायता, पदोन्नति लाभ तथा सेवानिवृत्ति लाभों का समुचित प्रबंधन किया जाता है। इन प्रयासों के माध्यम से संगठन में दक्ष कर्मचारियों को आकर्षित भी किया जाता है और यह भी प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक कर्मचारी की योग्यता और क्षमता का संगठन को पूरा लाभ प्राप्त हो।
10. **अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहन-** प्रशासन का उद्देश्य अच्छे कार्य के लिए कर्मचारियों को प्रोत्साहित करना होता है। प्रोत्साहन कर्मचारियों को संगठन में ईमानदारी तथा पूरी क्षमता के साथ काम करने के लिए प्रेरित करता है। इस उद्देश्य से कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के कार्यों पर एक दृष्टि रखी जाती है, समय-समय पर उनके कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है और विशेष योग्य तथा कार्य कुशल कर्मचारियों को अतिरिक्त वेतन वृद्धि, पदोन्नति, विशेष सम्मान तथा कार्य कुशलता के प्रमाण पत्र आदि के रूप में पुरस्कृत किया जाता है। ऐसा करने से ना केवल अच्छा काम करने वाले कर्मचारियों को संतुष्टि की प्राप्ति होती है, बल्कि अन्य कर्मचारियों के लिए भी यह एक अभिप्रेरक के तौर पर कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन द्वारा यह कार्य सजगता से संपन्न किया जाता है।
11. **प्रशासन में अनुशासन की स्थापना-** प्रशासनिक संगठनों के कर्मचारियों में पर्याप्त अनुशासन का होना आवश्यक ही नहीं, बल्कि वांछनीय है। यदि संगठन में अनुशासन नहीं होगा तो कोई भी कर्मचारी अपने अपेक्षित कार्यों को संपन्न नहीं करेगा। ऐसा होने से संगठन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल हो जाएगा। अतः कार्मिक प्रशासन द्वारा यह व्यवस्था की जाती है कि प्रत्येक कर्मचारी अनुशासित रूप में अपना दायित्व पूरा करें तथा दूसरों के कार्यों में भी ना करें। अनुशासन के द्वारा ही कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में व्यवस्था की जाती है कि संगठन का कोई भी कर्मचारी संगठन के लक्ष्यों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करें तथा अपने साथी कर्मचारियों के साथ आवश्यक मानव संबंधों को भी बनाए रखें। यदि कोई कर्मचारी इन अपेक्षाओं की अवहेलना करके संगठन के अनुशासन को छोड़ता है तो कार्मिक प्रशासन उसके विरुद्ध

अनुशासनात्मक कार्यवाही करता है। यह अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रतिरोधात्मक और सुधारात्मक दोनों प्रकार की होती है।

12. **जन संतोष की उपलब्धि-** किसी भी संगठन की गतिविधियों के द्वारा जन संतोष की प्राप्ति बहुत महत्वपूर्ण होती है। कार्मिक प्रशासन जन संतोष की उपलब्धि के लिए उन साधनों तथा मार्गों को अपनाता है जो सरकार द्वारा निर्धारित किए गए हैं। कार्मिक प्रशासन का यह भी दायित्व होता है कि वह ऐसा वातावरण प्रस्तुत करें जिसमें सभी सरकारी कर्मचारी जनहित के कार्यों में लगे रहे तथा अपने आचरण से जनता में असंतोष पैदा ना होने दें। कर्मचारियों को सदा इस बात का ध्यान रखना होता है कि केवल अच्छे व्यक्ति या कार्यकर्ता का होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि दूसरों को अच्छा लगना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में जन सहयोग तभी प्राप्त हो सकता है, जबकि जनता प्रशासनिक कार्यों के प्रति संतोष का अनुभव करती हो।
13. **उत्तरदायित्व की भावना-** लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में प्रशासन जनता के सेवक की भूमिका निभाता है। अतः लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रशासन के द्वारा सदा ऐसे कार्यों का संपादन किया जाता है जिससे उसके उन कार्यों में जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना परिलक्षित हो। इस कार्य के लिए कार्मिक प्रशासन द्वारा ही समुचित व्यवस्था की जाती है। कार्मिकों की भर्ती के समय यह ध्यान रखा जाता है कि ऐसे ही व्यक्तियों का चयन किया जाए जो जनता की सेवा करना चाहते हैं। ऐसे कर्मचारी जो अनुउत्तरदायी रूप में अपनी शक्तियों का उपयोग करता है, उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की भी व्यवस्था कार्मिक प्रशासन द्वारा की जाती है। कर्मचारी के आचरण संहिता में इन सभी बातों का उल्लेख किया जाता है, जो कर्मचारी को उत्तरदायित्व पूर्ण आचरण के लिए प्रेरित कर सकें। देश की व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के द्वारा लोक सेवकों के कार्यों पर नियंत्रण रखा जाता है।
14. **गतिशील एवं परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य की क्षमता-** कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में बदली हुई परिस्थितियों का सामना करने के लिए उचित व्यवस्था करना अति आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ऐसी व्यवस्था की जाती है कि बदली हुई परिस्थितियों का सामना करने में प्रशासनिक संगठन पूरी तरह से सक्षम रह सके तथा असामयिक ना बन जाए। प्रशासन परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल कर ही अपनी गतिशीलता और वैधता बनाए रख सकता है।
15. **संगठन के सिद्धांतों का अनुशीलन-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा संगठन के आधारभूत सिद्धांतों जैसे कि पदसोपान, आदेश की एकता, नियंत्रण का क्षेत्र, संचार व्यवस्था, प्रत्यायोजन आदि का समुचित ध्यान रखा जाता है और इन सिद्धांतों के समुचित निर्वहन की दृष्टि से ही कार्मिक नीतियों को अपनाया जाता है।
16. **संतोषजनक संगठनात्मक संरचना की स्थापना-** कार्मिक प्रशासन के अन्य दायित्वों की भांति ही संतोषजनक संगठनात्मक संरचना की स्थापना करना भी उसका एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। संतोषजनक संगठनात्मक संरचना ना केवल उसमें काम करने वाले कार्मिकों बल्कि जिन लोगों को वह संगठन सेवाएं प्रदान कर रहा है, संतोष प्रदान करती है।
17. **कर्मचारियों में संगठन के मूल लक्ष्यों के प्रति रुचि-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा विभिन्न आकर्षक कार्मिक नीतियों और कार्य के वातावरण का निर्माण किया जाता है, जिसके द्वारा संगठन में काम करने वाले सभी कर्मचारियों की अपने संगठन के मूल लक्ष्यों की प्राप्ति में रुचि जागृत की जा सके। ऐसा करने से संगठन सफलता प्राप्त करता है।
18. **कर्मचारियों में उच्च मनोबल तथा अभिप्रेरणा का निर्माण करना-** किसी भी प्रशासनिक संगठन में उद्देश्यों की प्राप्ति तथा गतिशीलता लाने के लिए ना केवल एक समुचित संरचना का होना आवश्यक है,

बल्कि उस संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों का मनोबल सदा उच्च बनाए रखना भी आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन का यह भी उत्तरदायित्व होता है कि वह संगठन में काम करने वाले सभी कर्मचारियों को अभिप्रेरित रखें जिससे इस संगठन में पूरी कार्य कुशलता के साथ कार्य कर सकें।

19. **अभिलेख रखना-** कार्मिक प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्यों में से कर्मचारियों की सेवा के संबंध में विभिन्न प्रकार के अभिलेख रखना भी एक माना जाता है। कार्मिक प्रशासन का उत्तरदायित्व होता है कि वह कर्मचारियों की सेवा के संबंध में विभिन्न प्रकार के अभिलेख रखता है, जिससे उनका कार्यकाल एवं वेतन क्रम, अवकाश, सेवानिवृत्ति तथा अन्य विषयों संबंधी आंकड़े आवश्यक कार्यवाही के समय आसानी से उपलब्ध रहें।
20. **श्रम संबंध-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों के साथ सह-वार्ताएं करता है, परिवेदना प्रक्रिया में भाग लेता है, परिवेदना के कारणों का पता लगाता है तथा शांति पूर्वक कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान भी कराता है। यह कर्मचारी संघों तथा संगठनों से वार्ता करने, नीतियों एवं योजनाओं के संबंध में सुझाव तथा सहयोग भी देता है।
21. **चिकित्सा संबंधी कार्य-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के लिए चिकित्सा सेवाओं की दृष्टि से स्वास्थ्य स्तरों का का निर्धारण, सफाई प्रबंधन, व्यवसाय चिकित्सा सेवा का प्रबंध आदि भी किया जाता है।
22. **सेवानिवृत्ति लाभ-** सेवा में नियुक्त सभी कर्मचारियों को सेवानिवृत्ति के समय समुचित लाभ प्रदान करने के लिए कार्मिक प्रशासन के द्वारा उचित नीति का निर्माण किया जाता है। संगठन की तरफ योग्य एवं कुशल कर्मचारियों को आकर्षित करने हेतु नियुक्ति एवं सेवानिवृत्ति लाभ दोनों से संबंधित आकर्षक नीतियां बहुत महत्व रखती हैं।
23. **कार्मिक नीति का मूल्यांकन-** संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन कार्मिक प्रशासन के कार्य की सूची में शामिल होता है। इसके साथ ही कार्मिक प्रशासन के लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह समय-समय पर अपनी कार्मिक नीति का भी मूल्यांकन करता रहे ताकि उसमें उत्पन्न दोष एवं कमियों को समय रहते दूर करके कर्मचारियों को संतुष्ट रख सके।
24. **सेवी वर्ग सेवाएं-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के लिए अल्पाहारग्रह तथा अन्य मनोरंजन की सुविधाएं भी उपलब्ध कराई जाती है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही सभी कर्मचारियों को उनकी निजी समस्याओं में भी परामर्श दिया जाता है। ऐसा करने से कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन के द्वारा आप यह भली-भांति समझ गए होंगे कि कार्मिक प्रशासन के अपने कुछ उद्देश्य होते हैं और उन उद्देश्यों के अनुरूप तथा उनकी प्राप्ति हेतु ही कार्मिक प्रशासन कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन के कार्यों की उपरोक्त दी गई लंबी सूची के द्वारा आप को यह बताने का प्रयास किया गया है कि कार्मिक प्रशासन संगठन के कुशल संचालन हेतु सभी प्रकार की गतिविधियों के संचालन के लिए उत्तरदाई होता है। कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य होता है कि वह संगठन में कार्य की उचित दशाओं का निर्माण करें तथा कर्मचारियों का मनोबल भी उच्च बनाए रखें जिससे संगठन सफल हो सके।

4.4 कार्मिक प्रशासन का महत्व

आधुनिक युग लोक कल्याणकारी राज्य का युग है। लोक कल्याणकारी राज्य पर लोक कल्याण अर्थात जनकल्याण का उत्तरदायित्व होता है। यही कारण है कि आधुनिक समय में राज्यों का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। जैसा कि आप जानते हैं, राज्य द्वारा संकल्पित सभी कार्यों का संपादन कार्मिकों के द्वारा ही किया जाता है। अतः इन असीमित कार्यों के संपादन हेतु अप्रत्यक्ष रूप से कार्मिकों की संख्या में भी निरंतर वृद्धि होती जा रही है।

कार्मिकों के विस्तृत समूह को पूर्ण रूप से नियंत्रित रखने तथा उनसे आवश्यकता अनुसार कार्य करवाने हेतु कार्मिक प्रशासन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। कार्मिकों की संख्या अधिक है और वह बहुत महत्वपूर्ण भी है। इस बात को बताते हुए हरमन फाइनर ने कहा, "लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है। सेवीवर्ग प्रशासन कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, समन्वय तथा प्रत्यायोजन आदि व्यवस्थाओं का नियमन करता है तथा कर्मचारियों से अधिकतम एवं कुशलतम कार्य संपन्न कराने हेतु प्रयत्नशील रहता है। सेवीवर्ग प्रशासन संगठन के मानवीय तत्व को भी यथोचित महत्व देता है।"

कार्मिक प्रशासन के महत्व को समझने के लिए यही बात काफी है कि संगठन में कार्मिक स्थाई घटक होता है। कार्मिकों के बिना संगठन नहीं बन सकते हैं। यंत्र नए मंगवा सकते हैं, नई तकनीक अपनाई जा सकती हैं पर लोकतांत्रिक व्यवस्था में सारे कार्मिकों को हटाकर नए कार्मिक नहीं लगाए जा सकते हैं। कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तकनीकी विशेषज्ञों को अतिरिक्त तौर पर बुलाया जा सकता है, परंतु सामान्य तौर पर इस काम को किया जाना बहुत मुश्किल है। निरंतर कार्मिकों को हटाकर नए कार्मिकों को नियुक्त करना यथार्थ से बहुत परे नजर आता है। अतः यह समझ लेना और जान लेना अब आसान हो जाता है कि यदि कार्मिक संगठन में इतना महत्व रखते हैं तो कार्मिक प्रशासन का महत्व भी इसके समानांतर ही होता है।

आपने अब तक के अपने अध्ययन में जाना कि किस प्रकार कार्मिक प्रशासन की प्रकृति होती है, उसका क्षेत्र होता है, कुछ उद्देश्य होते हैं जिन की प्राप्ति के लिए ही कार्मिक प्रशासन के कार्य भी होते हैं। इस पूरे अध्ययन के बाद आपके लिए यह समझना ज्यादा मुश्किल नहीं होगा कि कार्मिक प्रशासन का महत्व भी उसके द्वारा संपादित कार्यों पर ही आधारित होता है। कार्मिक प्रशासन के महत्व को अग्रलिखित बिंदुओं के आधार पर और आसानी से समझा जा सकता है-

1. **योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन-** राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप में जनता के संपूर्ण कल्याण का उत्तरदायित्व प्रशासन पर ही होता है। प्रशासन के द्वारा जन कल्याण हेतु विभिन्न नीतियों का निर्धारण किया जाता है तथा विभिन्न प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों का भी निर्माण किया जाता है। इन सभी प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों को कार्य रूप में परिणित करने का उत्तरदायित्व कार्मिकों पर होता है और इसमें कार्मिक प्रशासन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे-जैसे सरकार के द्वारा जनकल्याण के लिए नीतियों का निर्माण किया जाता है अप्रत्यक्ष रूप से देश की नौकरशाही पर नए दायित्व आ जाते हैं और परिवर्तित और नवीन दायित्व के अनुसार ही लोक सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, कार्य की शर्तें एवं अन्य सेवा शर्तों में भी आवश्यक परिवर्तन किया जाता है। इन सभी कार्यों को करने का उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से कार्मिक प्रशासन का ही होता है।
2. **जनहित की भावना का विकास-** कार्मिक प्रशासन सदा लोक कल्याण हेतु प्रयत्नशील रहता है। इस कार्य के लिए वह सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का ही पालन करता है। कार्मिक प्रशासन का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह कार्मिकों के लिए एक ऐसा वातावरण प्रस्तुत करें जिससे सभी कर्मचारी जनहित के कार्यों में पूर्ण रूप से रुचि लेने लगे तथा अधिकतम मात्रा में जन संतोष उत्पन्न करने का प्रयास करें। कर्मचारियों में कार्मिक प्रशासन को यह भावना भी उत्पन्न करनी पड़ती है कि वह इस बात का ध्यान रखें कि केवल कुशलता पूर्वक कार्य करना ही उनकी सफलता का मापदंड नहीं है, बल्कि उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनके प्रयासों से कितना सार्वजनिक कल्याण होता है तथा कितना जन संतोष उत्पन्न होता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो ऐसी भावना और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था में प्रशासन जनता की इच्छा पर निर्भर करता है। प्रशासन को जनता का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक होता है और यह समर्थन वे तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब वे प्रशासनिक कार्यों से

जनता को पूर्ण संतुष्टि प्रदान करें। कार्मिक प्रशासन सार्वजनिक कल्याण हेतु बनाई गई योजनाओं को क्रियान्वित कर के जन संतोष उत्पन्न करता है।

3. **कार्य कुशलता में वृद्धि-** कार्मिक प्रशासन का महत्व इस तथ्य में भी समाहित होता है कि वह कर्मचारियों की कार्य क्षमता में वृद्धि करने का भी निरंतर प्रयास करता रहता है। सक्षम कर्मचारियों के अभाव में संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। इसके लिए कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों को लोक सेवा में प्रवेश से पहले तथा प्रवेश के पश्चात भी प्रशिक्षण प्रदान करता है। इसके अलावा अपनी नीतियों में ऐसे तत्वों को समाहित करने का प्रयास करता है जिसके कारण प्रशासन अपने कर्मचारियों को संतुष्ट रख सके। ऐसा करने के लिए कार्मिक प्रशासन के द्वारा अपने कार्मिकों को पर्याप्त वेतन, कार्य के समुचित घंटे, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएं, सेवानिवृत्ति लाभ आदि सुविधाएं उपलब्ध कराने का प्रबंध किया जाता है। यही सब वह व्यवस्थाएं हैं, जिनके द्वारा किसी भी संगठन में कार्यरत कर्मचारी संतुष्ट रहता है और कर्मचारी की संतुष्टि ही उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि का एक बहुत महत्वपूर्ण कारक होता है।
4. **उत्तरदायी प्रशासन-** उत्तरदायी प्रशासन का निर्माण करना कार्मिक प्रशासन की महत्ता को प्रदर्शित करने वाला एक और तत्व होता है। लोकतांत्रिक प्रशासन उत्तरदायी होता है कि वह अपने कार्यों का संपादन कुछ इस प्रकार से करता है, कि उन कार्यों में प्रशासन की जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना अभिव्यक्त हो सके। इसके लिए प्रशासन के द्वारा समुचित व्यवस्था की जाती है। प्रशासन के द्वारा ऐसा प्रबंध किया जाता है कि यदि कोई अधिकारी कभी भी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है अथवा अनुत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करता है तो कार्मिक प्रशासन उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करता है। संगठन में कर्मचारी के अपेक्षित व्यवहार के बारे में आचार संहिता में उल्लेख किया जाता है जो कर्मचारी को उत्तरदायित्व पूर्ण आचरण के लिए प्रेरित कर सकें।
5. **मनोबल का निर्माण-** संगठन में कर्मचारी की उत्पादकता तभी बनी रह सकती है या बढ़ सकती है जब कर्मचारी में कार्य करने की इच्छा बनी रहे। कर्मचारियों में कार्य करने की इच्छा बनाए रखने के लिए उनका मनोबल बनाए रखना आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करने के लिए निरंतर प्रयास किए जाते रहते हैं।
6. **परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य-** देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन निरंतर बने रहते हैं और यह परिवर्तन प्रशासन के समक्ष नवीन उत्तरदायित्व एवं चुनौतियां उत्पन्न कर देते हैं। कार्मिक प्रशासन का महत्व इस बात में भी निहित है कि वह परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। कार्मिक प्रशासन परिवर्तनशील परिस्थितियों के प्रति सजग रहकर इस प्रकार की व्यवस्था करता है कि प्रशासनिक संगठन परिवर्तित परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम रह सके। कार्मिक प्रशासन गतिशील एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य स्थापित करने की अद्भुत क्षमता रखता है।
7. **समन्वय-** कार्मिक प्रशासन संगठन के विभिन्न सिद्धांतों का समुचित ध्यान रखता है तथा इन सिद्धांतों के निर्वहन की दृष्टि से वह विभिन्न नीतियों का निर्माण करता है। विभिन्न नीतियों की क्रियाओं में समन्वय उत्पन्न करने का प्रयास कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही किया जाता है। समन्वय का होना इसलिए अत्यधिक आवश्यक होता है कि मानवीय अथवा भौतिक साधनों का दुरुपयोग ना हो सके तथा कार्यों के दोहराव को भी रोका जा सके।
8. **नियंत्रण-** संगठन द्वारा अपने वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यह आवश्यक होता है कि उसके कर्मचारी वर्ग उचित रीति से अपने कार्यों का संपादन करते रहे और ऐसा कर्मचारियों पर नियंत्रण स्थापित किए बिना

संभव नहीं हो सकता है। कर्मचारियों पर नियंत्रण तथा उनकी क्रियाओं में समन्वय उत्पन्न करने की दृष्टि से कार्मिक प्रशासन का विशेष महत्व होता है।

4.5 निष्कर्ष

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से आप यह बात स्पष्ट रूप से समझ गए होंगे कि किसी भी संगठन में कार्मिक प्रशासन उसका कितना महत्वपूर्ण भाग होता है। कार्मिक प्रशासन के अपने कुछ उद्देश्य निर्धारित होते हैं जिन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में ही कार्मिक प्रशासन के द्वारा विभिन्न कार्यों का संपादन किया जाता है। कार्मिक प्रशासन द्वारा संपादित किए जाने वाले यह कार्य कार्मिक प्रशासन का महत्व भी इंगित करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. कार्मिक प्रशासन के कोई दो उद्देश्य बताइए।
2. कार्मिक प्रशासन के महत्व को इंगित करने वाले दो बिंदु बताइए।
3. उत्तरदायी प्रशासन से आप क्या समझते हैं?
4. कार्मिक प्रशासन के कोई चार कार्य बताइए

4.6 सारांश

कार्मिक प्रशासन संगठन में कार्मिकों से संबंधित सभी प्रकार की नीतियों के निर्माण, उनके क्रियान्वयन तथा कार्मिकों पर निरीक्षण और नियंत्रण का कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन वर्तमान संदर्भ में संगठनों का जीवन प्राण होता है, क्योंकि परिस्थितिकी निरंतर परिवर्तित होती रहती है ऐसे में कार्मिकों का ना केवल मनोबल बनाए रखना आवश्यक होता है बल्कि उनके लिए समुचित प्रभावी नीतियों का निर्माण भी उतना ही आवश्यक होता है जो कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही संपादित किया जाता है। बदलते समय में कार्मिकों के द्वारा कार्मिक प्रशासन से अच्छी कार्मिक नीतियों की अपेक्षा की जाती है साथ ही कार्मिक प्रशासन का भी यह प्रमुख उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह अपने कार्यों का निष्पादन कुशलतापूर्वक करें।

4.7 शब्दावली

मनोबल- व्यक्तियों के समूह की संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने की निरंतर क्षमता।

प्रतिफल- कर्मचारियों को उनके कार्य के बदले में दिए जाने वाले वेतन के एक निश्चित क्रमबद्ध तरीका।

कार्य मूल्यांकन- कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कार्य की विधियों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन कर कार्य विवरण को विकसित करना।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य आवश्यक सेवा शर्तों का निर्धारण, कार्मिकों के मनोबल तथा अभिप्रेरणा से संबंधित समस्त कार्य, **2.** मनोबल का निर्माण, परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य, **3.** कार्मिक प्रशासन द्वारा जब अपने कार्यों का संपादन कुछ इस प्रकार से किया जाए कि, उन कार्यों में प्रशासन की जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना अभिव्यक्त हो सके, **4.** मानव शक्ति प्रबंधन,श्रम संबंध, प्रशासन में अनुशासन की स्थापना,कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण एवं वेतन व्यवस्था

4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिन्हा, बी. एम. 1986, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कांसेप्टस एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
2. गोयल, एस. एल.1984, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999, लोक सेवीवर्गीय प्रशासन; रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र 2008, कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006, लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014, भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016, भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को बताइए।
2. कार्मिक प्रशासन के कार्य पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
3. कार्मिक प्रशासन के महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 5 आधुनिक नौकरशाही के संदर्भ में लोक सेवा

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 लोक सेवा का अर्थ एवं उद्देश्य
5.3 आधुनिक लोक सेवा के विकास का इतिहास
5.4 आधुनिक लोक सेवा के अभिलक्षण
5.5 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताऐं
5.6 लोक सेवा का अर्थ तथा नौकरशाही से अन्तर
5.7 लोक सेवा और नौकरशाही में सम्बन्ध
5.8 आधुनिक नौकरशाही के ऐतिहासिक निर्धारक तत्व
5.9 लोक सेवा की प्रकृति और परिस्थिति
5.10 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताऐं
5.11 लोक सेवा के संदर्भ में नौकरशाही- भारतीय परिप्रेक्ष्य
5.12 नौकरशाही बनाम लोकसेवा के सकारात्मक पहलू
5.13 सारांश
5.14 शब्दावली
5.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.18 निबेधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

लोक सेवा वास्तव में लोक प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने स्वस्थ रूप में लोक सेवा एक पवित्र सेवा है, लेकिन अपने विकृत रूप में यह एक मानसिकता बन जाती है, जिसका लक्ष्य सेवा कम प्रभाव, नियंत्रण और प्रताड़ना अधिक होता है। लोक सेवा के इस विकृत रूप को 'नौकरशाही' कहा जाता है, जो आधुनिक जटिल समाज में अपरिहार्य बन गयी है। इसकी इसी परिहार्यता ने इस तार्किक और प्रासंगिक बनाये रखा है।

जैसे-जैसे समाज आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की ओर बढ़ता जाता है, लोक सेवा की भूमिका भी बढ़ती है और इसी के साथ एक लोक सेवक एक नौकरशाह का रूप धारण कर लेता है। राजनीतिक चिन्तकों ने नौकरशाही के चरित्र और नौकरशाह की मानसिकता पर बहुत कुछ लिखा है।

विकासशील देशों में लोक सेवा बनाम नौकरशाही की समन्वय और द्वन्द्व की प्रक्रिया बड़ी स्पष्ट होती है, जिसका सरलता से वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। इसी अध्ययन के आधार पर विकसित देशों में उनके अतीत से वर्तमान तक लोक सेवा और नौकरशाही के अन्तः सम्बन्धों के विकास की प्रक्रिया को समझना सरल हुआ है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आधुनिक नौकरशाही की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- लोक सेवा के अर्थ और महत्व को समझ सकेंगे।
- नौकरशाही और ओर लोक सेवा के सम्बन्धों को जान पायेंगे।
- नौकरशाही और लोक सेवा के अन्तर को समझ सकेंगे।
- नौकरशाही की मानसिकता किस प्रकार लोक सेवा के मार्ग में बाधायें डालती है, यह जान पायेंगे।

5.2 लोक सेवा का अर्थ एवं उद्देश्य

लोक-सेवा वास्तव में प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने शुद्ध एवं पवित्र रूप में यह एक पवित्र सेवा है, लेकिन विकृत रूप में यह एक मानसिकता बन जाती है, जिसका लक्ष्य सेवा कम स्वयंसेवा अधिक होता है, जो यह नियंत्रण, प्रभाव और प्रताड़ना का प्रयोग करके प्राप्त करती है। लोक-सेवा के इस विकृत रूप को नौकरशाही कहा जाता है।

किसी भी प्रकार के प्रशासन के तीन अंग होते हैं- (1) संस्थागत प्रशासनिक ढांचा, जो विभिन्न सोपानों और अभिकरणों पर आधारित होता है, (2) इन अभिकरणों में कार्यरत व्यक्ति, जिनको सेवी-वर्ग का नाम दिया जाता है; तथा (3) नीतियाँ, नियम तथा विनियम, जिनको राजनीतिक प्रशासन तैय और तैयार करता है और जिनके तहत सेवी-वर्ग सरकारी प्रशासन तंत्र का संचालन करता है। प्रशासन के यह तीनों अंग मिलकर लोक सेवा को मूर्त रूप देते हैं। इस तरह लोक सेवा वास्तव में प्रशासन की आत्मा बन जाती है, जिसके अभाव में नीतियों के क्रियान्वयन की सफलता असम्भव हो जाती है।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि शासन की सफलता प्रशासन पर निर्भर करती है और प्रशासन की सफलता कुशल लोक सेवा पर निर्भर करती है। कुशल लोक सेवा के लिये, योग्य, प्रशिक्षित अनुभवी और साहसी सेवी-वर्ग का सर्वाधिक महत्व होता है। प्रो0 एल0डी0 व्हाइट इसी प्रकार के सेवी वर्ग को ''मानव शक्ति'' मानते हैं। यह मानव शक्ति स्थायी, वेतन भोगी, जीवन के अन्त तक पूरी तरह सुरक्षित और पेशेवर होती है, जिसमें नियमों, विनियमों तथा कानूनों की बारीकियों को समझने और उनको लागू करने की क्षमता होती है।

5.3 आधुनिक लोक सेवा के विकास का इतिहास

लोक सेवा की अवधारणा अथवा संस्था का इतिहास प्राचीन भारत राजनीतिक व्यवस्था से लेकर मुगल-शासन तथा ब्रिटिश शासन के इतिहास के पन्नों तक खोजा जा सकता है। लेकिन मुगल कालीन भारत प्रशासन में किसी भी प्रकार की अखिल भारतीय सेवाओं का गठन नहीं किया गया था। जो लोक सेवाएं गठित की गयीं थीं, उनका सम्बन्ध राजस्व, समाज-कल्याण तथा शान्ति व्यवस्था से था।

अंग्रेज शासन काल दो कालों में विभक्त है- ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल, जिसमें लूट-प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा ने योग्यता आधारित प्रशासकीय सेवाओं के विकास में बाधा पहुँचाई। लेकिन जिस तरह वारेन हेस्टिंग्ज तथा लार्ड कार्नवोलिस जैसे गवर्नर जनरलों ने भू-राजस्व की वसूली तथा कानून और व्यवस्था के क्षेत्रों में लोक सेवाओं की आधारशिला रखी वे स्वयं में लोक सेवा के इतिहास में मील का पत्थर है। ब्रिटिश शासन के प्रथम चरण में लार्ड क्लाइव, लार्ड वेलेजली तथा लार्ड मैकाले ने लोक सेवाओं को एक नया आयाम दिया। न्याय प्रशासन एकीकृत किया गया और यहाँ भारतीय लोक सेवाओं की स्थापना की गयी; चयन व प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया; असैनिक सेवकों को प्रतिज्ञाबद्ध नागरिक सेवा का नाम दिया गया; कर्मचारियों पर अनुशासित रखने के लिये कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये लेकिन उसी के साथ अनेक रियायतें भी दी गयीं; खुली प्रतियोगिता पद्धति लागू की गयी। इस

काल के अन्त में 1854 सर्वाधिक महत्वपूण है। लार्ड मैकाले ने इसी वर्ष आई0सी0एस0 के लिये जो सिफारिशें की वे आज भी भारतीय लोक सेवाओं के लिए सार्थक बनी हुई हैं।

सन् 1858 में कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और ब्रिटिश क्राउन की सरकार अस्तित्व में आ गई। यहाँ से शब्द 'सरकार' का सफर आरंभ हुआ। अभी तक कम्पनी का प्रशासन कम्पनी के उच्च अधिकारियों के प्रति जबावदेह था लेकिन क्राउन की सरकार ब्रिटिश संसद और कुछ सीमा तक प्रजा के प्रति जवाबदेह बन गयीं। यहाँ लोक सेवाओं का तीव्र गति से विकास होने लगा। सामान्य सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर दी गयी, जिन्हें भारतीय नागरिक सेवा, प्रान्तीय सेवा तथा अधीनस्थ सेवा का नाम दिया गया; भारतीय नागरिक सेवाओं की भर्ती के लिये इंग्लैण्ड में प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित की गयीं लेकिन अन्य दो प्रकार की सेवाओं की भर्ती प्रान्तीय स्तर पर की जाने लगी। इस तरह लोक सेवाओं के भरतीयकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गयी।

धीरे-धीरे अनेक सुधारों के साथ तथा अनेक समितियों के माध्यम से 1912 से लेकर 1935 तक भारतीय लोक सेवाओं का विकास होता गया। 1935 के भारत शासन अधिनियम ने लोक सेवाओं को एक नई दिशा दी। लोक सेवा आयोग की स्थापना की गयी; चिकित्सा सेवा के अतिरिक्त सभी सेवाओं को भारत मन्त्री के अधिकार क्षेत्र से निकाल दिया गया।

भारत की स्वतंत्रता के साथ लोक सेवा का तीसरी चरण आरंभ होता है। अब यहाँ लोक सेवाओं का विकास नई परिस्थितियों, नई चुनौतियों तथा नई आवश्यकताओं के अनुरूप होना था। नतीजा यह निकला कि परम्परागत लोक सेवाओं की संरचना, मानवशक्ति की योग्यता, प्रशिक्षण तथा सेवा शर्तों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जाने लगे। भारतीय सिविल सेवा (ICS) का स्थान भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) ने लिया तथा भारतीय विदेश सेवा (IFS) तथा भारतीय वन सेवा की स्थापना की गयी।

5.4 आधुनिक लोक सेवा के अभिलक्षण

स्वतंत्रता के पश्चात् यह तथ्य स्वीकार किया जाने लगा कि देश का चहुमुखि विकास पूरी तरह प्रशासनिक लोक सेवा पर निर्भर है। लोक-सेवा का वैज्ञानिक अध्ययन तथा वैज्ञानिक प्रबन्धन प्रशासन की सफलता की कुंजी है। अतः जिन बातों ने लोक सेवा को नया रूप तथा नई दिशा दी उनका सम्बन्ध मानव शक्ति से था। मानव शक्ति अर्थात सेवी-वर्ग को केन्द्रीय बिन्दु मानकर प्रशासनिक चिन्तकों ने जो कदम उठाये उन्हीं से लोक सेवा के विशिष्ट अभिलक्षण सामने आने लगे। सारांश में यह अभिलक्षण इस प्रकार हैं-

1. सेवी-वर्ग का कुशल, प्रशिक्षित तथा विशेषज्ञ होना;
2. प्रशासन के हर क्षेत्र में विशिष्टिकरण बढ़ जाना;
3. पक्षपात रहित सेवी-वर्ग का चयन, प्रशासनिक दृष्टि से कुशल, राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ जो अपने आचरण
4. से संवेदनशील लोक सेवा जो समाज के प्रति समर्पित हो।
5. वैतनिक कार्यकर्ताओं का निकाय; लोक सेवकों का स्थायी पेशेवर होना;
6. राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ तथा निष्पक्ष होना;
7. संगठनात्मक दृष्टि से लोक सेवा का पद-सोपानीय स्वरूप तथा सेवी वर्ग का दृष्टिकोण औपचारिक होना।
8. किसी भी शासन व्यवस्था में सेवी वर्ग का अनिवार्य अंग होना चाहे यह शासन व्यवस्था किसी भी विचारधारा से जुड़ी हो अथवा किसी भी राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित हो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लोक सेवा की विशेषताएं आधुनिक समाज के तकाजों के अनुरूप हैं।

5.5 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताऐं

सर्वप्रथम हमें नौकरशाही को समझना होगा। नौकरशाही ब्यूरॉक्रेसी (Bureaucracy) की पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है अधिकारी वर्ग या अधिकारी तंत्र। जब इस अधिकारी वर्ग का रवैया शाहों जैसा होता है तब इसे नौकरशाही का नाम दिया जाता है, जिसका साधारण अर्थ यह है कि यह अधिकारी कहने को तो ''नौकर'' या सेवक हैं लेकिन इनका आरचण शाहों जैसा है, क्योंकि इन अधिकारियों का रवैया लोकतांत्रिक समाज के अनुकूल नहीं होता है, इसलिये नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन गया है।

नौकरशाही के विचार अथवा सिद्धान्त का सब से महान प्रवक्ता मैक्स वेबर है। उसके अनुसार ब्यूरा (ठनतमंन) अथवा लोक कार्यालय किसी न किसी रूप में विश्व की संगठित सरकारों का अनुशब्द रहे हैं। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी0 गोरने ने किया, लेकिन मैक्स वेबर वह पहला जर्मन चिन्तक है, जिसने वैज्ञानिक आधार पर नौकरशाही या 'ब्योरॉकरसी' का विधिवत अध्ययन करके नौकरशाही का प्रतिमान (Model) तैयार किया और इसके विशिष्ट लक्षण समझाए। वेबर ने इस प्रतिमान को विधिक-तार्किक (Legal-rational) नौकरशाही का नाम दिया है। इस प्रतिमान की निम्न विशेषताएँ हैं-

1. शायकीय कार्य में निरन्तरता बनी रहती है।
2. एक प्रशासनिक अभिरकण निश्चित तय शुदा नियमों के अनुसार काम करता है। इस सम्बन्ध में तीन नियमों का पालन किया जाता है। पहला, अधिकारी की कार्य सम्पन्न करते समय निर्वैयक्तीकरण की हैसियत रखता है; दूसरे, अधिकारी उसको सौंपी गयी जिम्मेदारी के अनुसार सत्ता दी जाती है; तीसरे, उसको काम पूरा करने के लिए जो साधन (धन इत्यादि) दिये जाते हैं। उनका प्रयोग वह कानूनी दायरे में रहकर ही कर सकता है।
3. प्रत्येक अधिकारी सत्ता की सोपनियता का अंग होता है;
4. अधिकारी मन मर्जी से मुहैय्या कराये गये संसाधनों का प्रयोग नहीं कर सकते। वे संसाधनों के प्रयोग के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होते हैं।
5. कार्यालयों में भर्ती पदाधारियों द्वारा निजी सम्पत्ति के रूप में नहीं की जा सकती।
6. केवल लिखित दस्तावेजों के आधार पर प्रशासन चलता है।

वेबर ने लोक सेवा या नौकरशाही के अभिलक्षणों के आधार पर एक अधिकारी की विशेषताएं भी तय की हैं, जो इस प्रकार हैं-

- एक अधिकारी किसी अन्य व्यक्ति का व्यक्तिगत तौर पर सेवक नहीं होता है;
- वह उस सत्ता का प्रयोग करता है, जो उसको निर्वैयक्तिक नियमों की ओर से प्रदत्त होते हैं;
- उसकी वफादारी का मापदण्ड उसका पूरी निष्ठा के साथ कर्तव्य को अन्जाम देना है;
- उसकी प्रशासनिक योग्यता के अनुसार उसको नियुक्ति दी जाती है;
- प्रशासनिक कार्य उसका पूर्ण-कालिक पेशा होता है, तथा
- काम के बदले उसे निरन्तर वेतन दिया जाता है तथा उसको विश्वास होता है कि उसे पूरी सेवा काल में पदोन्नति के अवसर प्राप्त होंगे।

उक्त विलक्षणों के कारण वेबर ने नौकरशाही को वर्तमान परिस्थितियों में अपरिहार्य माना। उसके अनुसार विधिक-तार्किक नौकरशाही तकनीकी दृष्टि से किसी भी दूसरी प्रशासनिक व्यवस्था से उच्चतर है। लोगों का इस से मुक्ति पाना कठिन है। इसलिए यह स्थायी और अनिवार्य है।

सारांश में नौकरशाही के वेबेरियन प्रतिमान में नौकरशाही के मुख्य तत्व हैं: निर्वैयक्तिक व्यवस्था, नियम, दक्षता, पदसोपनियता, नीति और जन ध्येय, लिखित दस्तावेज, तथा यक्ति का शासन। आधुनिक नौकरशाही का वर्तमान में यही रूप सार्वभौमिक है।

5.6 लोक सेवा का अर्थ तथा नौकरशाही से अंतर

नौकरशाही को समझने के बादे अब यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न किया जा सकता है कि लोक सेवा (Civil Services) तथा नौकरशाही में अन्तर क्या है तथा इन दोनों संस्थाओं के पारस्परिक रिश्ते क्या हैं? इन सवालों का उत्तर देने से पहले हमें लोक सेवा को सारांश में समझना होगा। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, लोक सेवा कल्याण-राज्य का अन्तिम लक्ष्य है। भारतीय कल्याण राज्य की कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं। यह एक विकासशील देश है, जिसका आर्थिक विकास वास्तविक मंजिल है। स्वतंत्रता के बाद लागू किये गये संविधान ने इसके विकास की वास्तविक दिशायें स्पष्ट रूप से तय की हैं। क्योंकि यह एक बहुलवादी संस्कृति का देश है, इसलिए प्रत्येक वर्ग और सम्प्रदाय का ध्यान रखा गया है, जिसका सार इस प्रकार है-

- एक जनतंत्रीय, संसदात्मक गणराज्य की स्थापना;
- समाजवादी ढंग के समाज की रचना;
- धर्मनिरपेक्षता पर आधारित राज्य;
- मानव अधिकारों के आधार पर व्यक्ति को मूल-अधिकारों की सुरक्षा;
- स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना;
- स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व के सार्वभौमिक विचारों को सार्थक करना;
- देश के पिछड़ों, कमजोर तबकों, महिलाओं और बच्चों को आगे बढ़ाना;
- छुआ-छूत जैसी सामाजिक बुराई का उन्मूलन करना; तथा
- अल्पसंख्यकों की संस्कृति को सुरक्षित रखने की गारन्टी देना।

उक्त सभी तत्व भारतीय संविधान का सार है, जिनको 'राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों' के माध्यम से सुरक्षा की गारन्टी दी गयी है।

लोक सेवा का एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य सवास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक विकास से सम्बन्धित है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में साधारण बीमारियों से लेकर आकास्मिक महामारियों की स्थिति से निपटने के लिये लोक सेवा को पूरी तरह तैयार रहना पड़ता है। ऐसी आकस्मिक चुनौतियों का भार पूरी तरह मुस्तैद लोक सेवकों की तत्परता, सूझ-बूझ और निर्णय-निर्माण की योग्यता और उनके क्रियान्वयन पर निर्भर करता है। इनमें स्वास्थ्य कर्मियों से लेकर प्रशासनिक मशीनरी तक सबकी अहम भूमिका होती है।

यही स्थिति आकस्मिक प्राकृतिक आपदा की है। कुछ ऐसी आपदाऐं हैं, जिनका अनुमान पहले से लगाया जा सकता है लेकिन जो आपदा अचानक आती है, लोक सेवा को उससे निपटने के लिये भी हर समय तैयार रहना पड़ता है। इस संकट से निपटने के लिए प्रत्येक देश में आपदा-प्रबन्धन विभाग होते हैं। यदि लोक सेवक हर समय परिस्थितियों का सामना करने के लिये तत्पर और सजग रहते हैं, तो जन-साधारण की सुरक्षा की जा सकती है और जान-माल की कम से कम क्षति होती है। कुशल लोक सेवा की यही परीक्षा है और उसकी तत्परता की यही कसौटी है।

जहाँ तक शिक्षा का क्षेत्र है, सब कुछ-आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास अच्छी शिक्षा पर निर्भर रकता है। प्राईमरी शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक सब कुछ सक्रिय लोक सेवा पर निर्भर करता है।

बड़े दु:ख की बात है कि भारत में सब से अधिक अनदेखी स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र की जाती रही है। शिक्षा मानव संसाधनों का आधार है और यह मानव संसाधन स्वस्थ हों, यह स्वस्थ समाज के लिये अनिवार्य शर्त है।
लोक सेवा का एक अन्य गहरा सम्बन्ध जन-कल्याण योजनाओं से है। इसका एक बड़ा पहलू रोजगार के अवसर पैदा करना है। कृषि प्रधान विकासशील देशों में जो बड़ी समस्या है वह बेरोजगारी की है। लोक सेवा के लिए यह एक बड़ी चुनौती है।

5.7 लोक सेवा और नौकरशाही के सम्बन्ध

वास्तव मं लोक सेवा और नौकरशाही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संस्था एक ही है, संगठनात्मक संरचना भी एक ही है, मानव शक्ति में भी कोई अन्तर नहीं है। सैद्धान्तिक पहलू भी समान हैं, कार्य-विधि भी लगभग एक ही है, लेकिन यदि दोनों में कोई अन्तर है तो मनोवैज्ञानिक हैं। दोनों में सोच और व्यवहार का अन्तर है। लोक सेवक अपने पेशे (Career) के आरम्भिक दौर में अत्यंत उत्साही, कर्मठ, गतिशील और निष्ठावान नजर आता है। वह समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये कदम उठाता है। संवैधानिक तकाजों को पूरा करने के लिए प्रतिबद्धता दिखाता है। वह प्रगतिशील, उदार, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी नजरियों का परिचय देता है। यहाँ उसका दृष्टिकोण पूरी तरह सामाजिक हित से ओत-प्रोत होता है। वह परहित की बात करता है, जो लोक सेवा का ध्येय है। जब तक उसकी यह सोच बनी रहती है, वह लोक सेवा के तकाजों को पूरा कराने का प्रयास करता है।
लेकिन धीरे-धीरे उसकी मानसिकता बदलने लगती है। वह अपने वरिष्ठों की लीक पर चलने लगता है। अब एक लोक सेवक जो कुछ करता है, उसका सम्बन्ध आत्म-हित अधिक और परहित कम हो जाता है। जो परिवर्तन उसके आचरण में उभरते हैं, वे हैं- दम्भी होना, सामाजिक अलगाववाद की भावना, कठोर, निष्ठुर और उदासीन आचरण, संवेदनहीनता, आत्म-प्रगति और पदोन्नति के बारे में सक्रिय रहना, सरकारी संसाधनों का दुरूपयोग, अकर्मठता और निष्क्रियता, राजनीतिक तटस्थता और निष्पक्षता का ह्रास तथा तत्कालीन राजनीतिक विचारधारा में रंग जाना तथा पूंजीपतियों और दबंगों के प्रभाव में आकर उनके हितों का साधन बन जाना।
उक्त सब बातें नौकरशाही की विशेषताएं बन जाती हैं और इस तरह लोक सेवा का स्वरूप दूषित, विकृत और भ्रष्ट हो जाता है।

5.8 आधुनिक नौकरशाही के ऐतिहासिक निर्धारक तत्व

नौकरशाही के बारे में ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है, वह आधुनिक नौकरशाही के स्वरूप और चरित्र को दर्शाता है, लेकिन उसका स्वरूप उसको विरासत में मिला है। भारत को लोकसेवा की विरासत इंग्लैण्ड से मिली है जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और क्राउन का शासन आरम्भ हुआ। ब्रिटेन में आधुनिक लोक सेवा का प्रारम्भ 1853 से हुआ जब चार्ल्स ट्रेवेलियन तथा सर स्टेफर्ड द्वारा विभागीय जांचों के आधार पर मुख्य सिफारिशें कीं। इन सिफारिशों में योग्य कर्मचारियों की भर्ती के लिये उपयुक्त परीक्षा की व्यवस्था, लोक सेवकों के प्रशिक्षण के द्वारा उनकी योग्यता को बढ़ाना, इस योग्यता को उनकी पदोन्नति का आधार बनाना; योग्यता प्राप्त सेवी वर्ग को विशेष पद पाने का अवसर देना; सेवा में एकता के तत्वों को लाया जाना, समाज आधारों पर नियुक्तियाँ करना; तथा दूसरे विभागों में पदोन्नति के अवसर प्रदान करन।
ट्रेवील्यन-नार्थकोट के प्रस्तावों के आधार पर 1855 में एक आदेश द्वारा तीन सदस्यीय लोक सेवा आयोग की नियुक्ति की गयी। नियुक्तियों में अभी भी राजनीतिक दखल बना रहा। इसलिए लोक सेवकों का राजनीति तौर पर तटस्थ एवं निष्पक्ष बना रहना कठिन था। लेकिन 1870 के सपरिषद आदेश द्वारा जब कुछ विभागों तथा पदों पर प्रतियोगी परीक्षाऐं बाध्य कर दी गईं, और खुली प्रतियोगिताओं का रास्ता साफ कर दिया गया तब लोक सेवाओं में आमूल परविर्तन आने लगा। इसी काल में लोक सेवा परीक्षाओं की दृष्टि से लोक सेवाओं को दो भागों में

विभाजित किया गया-प्रथम वर्ग में उच्चतर तथा श्रेष्ठतर कर्मी। यह वर्ग सेवा की बौद्धिक मांग को पूरा करता था, जबकि दूसरा वर्ग दिन-प्रतिदिन के नियमित कार्यों का संचालित करता था।

ब्रिटेन में 1920 से लेकर 1939 तक के काल को लोक सेवाओं की दृष्टि से पुनर्गठन काल कहा जाता है। प्रथम विश्व युद्ध में लोक सेवाओं के दायित्वों में पंचायत काफी बढ़ौत्तरी हुई। उनको परिवर्तित प्रशासनिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की आवश्यकता बनी रही।

लोक सेवा के विकास में राष्ट्रीय व्हिटले समिति का बड़ा योगदान है। यह पुनर्गठन समिति के नाम से जानी जाती है। पुनर्गठन समिति द्वारा प्रस्ताविक संरचना इस मान्यता पर आधारित थी कि लोक सेवा के प्रशासनिक तथा लिपिकीय कार्य दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं, तथा लिपिकीय कार्य दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं- नीति रचना सम्बन्धी कार्य तथा विशुद्ध रूप से यांत्रिक प्रकृति के कार्य।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान तथा उसके बाद लोक सेवा की संरचना में कुछ और परिवर्तन किये गये। 1946 में सामान्य व्यावयासिक वर्गों की श्रंखलायें आरंभ की गयीं। तकनीकी सेवाओं को सामान्य संरचना प्रदान की गई। सामान्य वर्गों की स्थापना की गई। राल्फ एशेटन समिति (1943) के प्रतिवेदन के अनुसार प्रशिक्षण क लिए, नियोजित कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये; संगठन एवं प्रविधि कार्य का विकास हुआ; वेतन तथा सेवा की शर्तों की पुनरीक्षा के लिये स्वतंत्र निकायों की स्थापना की गई।

अन्त में फुल्टन कमेटी ने तीन प्रमुख सुझाव दिये- लोक सेवा विभाग की स्थापना; लोक सेवा महाविद्यालयों की स्थापना; एकीकृत ग्रेडितंग संरचना। फुल्टन कमेटी के सभी सुझावों को धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया गया।

लोक सेवा के उक्त सभी निर्धारक तत्वों ने लोक सेवा की प्रकृति को तय किया है।

5.9 लोक सेवा की प्रकृति और परिस्थिति

अब लोक सेवा की जो प्रकृति उभर कर सामने आती है, उसे आठ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जो इस प्रकार से है -

1. लोक सेवा विकास का परिणाम हैः विशेषकर इंग्लैण्ड में लोक सेवा को उसके इतिहास के झरोके से देखा जाना चाहिये। यहाँ उसका धीरे-धीरे विकास हुआ है, जो 1854 से ट्रेवील्यन-नार्थकोट रिपोर्ट के परिणामस्वरूप आंरभ हुआ और आगे तक चलता रहता है।
2. स्टाउंट ने ब्रिटिश लोक सेवा को पाँच वर्गों में विभाजित किया है- प्रशासनिक वर्ग, अधिशासी वर्ग, लिपिक वर्ग, लिपिक सहायक और टंकण वर्ग। यह सभी लोक सेवा के तौर पर प्रशासनिक एवं लिपिकीय कार्य सम्पन्न करते हैं। विभागीय और व्यासायिक वर्ग भी होते हैं। इस वर्ग में विशेष यांत्रिक योग्यता वाले अधिकारी आते हैं। व्यावसायिक वर्ग में बैरिस्टर, डॉक्टर, शिल्पी, इंजीनियर, वैज्ञानिक इत्यादि। इनकी सेवा शर्तें वैसी हो होती हैं, जैसी प्रशासनिक अधिकारियों की होती है। लेकिन इन पदों पर नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा नहीं होती हे।
3. लोक सेवी ब्रिटिश ताज के सेवक होते हैं, इसलिये वे मंत्रियों के समान हैं। यह सभी राजा के नाम से अपन कार्य सम्पन्न करते हैं, लेकिन सही व गलत कार्यों के लिये स्वयं जिम्मेदार होते हैं।
4. न्यायालय के नियंत्रण क्षेत्र से बाहर रहते हैं और इस तरह न्यायपालिकायें लोक सेवकों से सम्बन्ध नहीं रखती। इन लोक सेवकों से सम्बन्धित जो भी विवाद सामने उन्हें विभागीय आधार पर विवेक के माध्यम से सुलझाया जाता है।
5. प्रशासनिक आदेशों द्वारा नियमनों की व्यवस्था है। 1855 में लोक सेवाओं का पुनर्गठन सपरिषद आदेश के आधार पर किया गया था। उसके बाद समय-समय पर प्रशासनिक आदेश प्रसारित होते रहे हैं। प्रशासनिक आदेशों द्वारा नागरिक सेवा आयोग की स्थापना की गई है। लोक सेवाओं की भर्ती,

स्तरीकरण, वेतन, पदोन्नति, काम के घण्टे, सेवा निवृत्ति की आयु आदि का नियमन सेवा आयोग करता है, जिसके पीदे मंत्री का निर्णय सर्वोपरि होता है।

6. लोक सेवा में सेवा सुरक्षा की गारंटी दी गई है। विभागों के आन्तरिक कारण नागरिक सेवकों को कुछ अधिकार देते हैं। वे विभाग द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरूद्ध कार्यवाही का अधिकार रखते हैं। उनको अपना नजरिया रखने का पूरा अधिकार है। अतः वह तभी दण्डित हो सकते हैं जब सुरक्षा अथवा आत्म रक्षा सारे माध्यम असफल हो जाते हैं।
7. इंग्लैण्ड में लोक सेवक राजनीतिक दृष्टि से पूरी तरह तटस्थ होते हैं। वह किसी राजनीतिक दल के प्रति वफादार नहीं होते हैं। वह पूरी निष्ठा के साथ पदासीन सरकार की सेवा करते हैं। 1954 में निर्मित संहिता के अनुसार वह देश की राजनीति में भाग नहीं ले सकते।
8. लोक सेवा की अनुकूल शर्तें तय की गई हैं ताकि लोक सेवकों को उज्ज्वल भविष्य का अवसर प्राप्त होता रहे और नये प्रवेशार्थी लोक सेवा के प्रति आकर्षित होते रहे। यह शर्तें उनको भविष्य के प्रति आश्वस्त रखती हैं। उन्हें पदोन्नति के अवसरों की आशा बनी रहती है। इसके अतिरिक्त उनको अच्छा वेतन और अन्य सुख-सुविधायें देकर उनको भविष्य की चिन्ताओं से मुक्त रखा जाता है।
9. अन्य विशिष्ट लक्षणों में ब्रिटेन की लोक सेवा में लोक-कल्याणकारी राज्य की प्रवृत्ति के कारण प्रशासनिक वृद्धि के साथ-साथ लोक सेवकों की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होना, नवीन विभागों और मंत्रालयों की स्थापना। दूसरे, लोक सेवा का अभिजनवादी स्वरूप होना। सारांश यह है कि ब्रिटिश लोक सेवा एक सम्मानीय सेवा है, जिसको पाकर अधिकारियों को गर्व होता है।

5.10 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताऐं

अब प्रश्न यह उठता है कि आधुनिक नौकरशाही क्या है? सच तो यह है कि नौकरशाही को दुर्भाग्यवश घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि आज संसार के प्रत्येक देश में आज सरकारी विभाग सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थाएं मानी जाती हैं। सरकारी विभाग न केवल किसी देश की बौद्धिक मानव शक्ति को रोजगार में समायोजित करते हैं, बल्कि आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण निर्णय लेकर लोगों का जीवन सुलभ और सुरक्षित रखते हैं। इस तथ्य की साधारण अवहेलना की गई है।

यद्यपि मैक्स वेबर ने ब्योरोज पर महत्वपूर्ण ध्यान देकर विधिक-तार्किक मॉडल के माध्यम से नौकरशाही की तर्कसंगतता को स्वीकार करने का प्रयास किया, लेकिन वेबर का प्रभाव निर्णय-निर्माण सिद्धान्त पर नहीं पड़ा।

आधुनिक विकसित और विकासशील देशों में नौकरशाही का वास्तविक स्वरूप, उसकी कार्यशैली और उसका अन्तिम लक्ष्य क्या है इस प्रकार साइमल, ट्रूमैन, बुचानन, तुलोक, राइकर और साइमन ने बहुत कुछ लिखा है, लेकिन सर्वाधिक प्रभावशाली नजरिया ऐन्थॉनी डाउन्स ने रखा है। यहाँ हम उसके विश्लेषण को संक्षेप में रखेंगे-

1. ऐन्थानी डाउन्स इस परिकल्पना के साथ नौकरशाही के सम्बन्ध में अपना नजरिया रखता है कि नौकरशाह अन्य लोगों की तरह आत्म हितों से प्रेरित होते हैं। यही दृष्टिकोण अर्थशास्त्री एडम स्मिथ का भी था। डाउन्स सर्वप्रथम संगठन की बात करता है, जिनका आकार बड़ा है और जिसके सदस्य निर्वैयक्तिक पारस्परिक सम्बन्ध रखते हैं। उनकी सेवा पूर्णकालिक होती है। वे अपने पेश के लिए समर्पित होते हैं, पदोन्नति के लिये वे अपने वरिष्ठों पर निर्भर रहते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि नौकरशाह इस तरह अपने आचरण को ढालते हैं, जिनसे उनके वरिष्ठ प्रभावित हों।
2. नौकरशाह केवल ब्योरोज के लिए काम नहीं करते, वे किसी भी बड़े संगठन में काम कर सकते हैं। उनकी मुख्य भूमिका ही उनको पदोन्नति का अवसर प्रदान करती है। उनका योगदान खुले बाजार में आंका नहीं जा सकता।

3. इस तरह यह स्वीकार करके कि नौकरशाह एक बदनाम शब्द है डाउन्स ''नौकरशाह'' को ''अधिकारी'' (official) कहना पसन्द करता है।
4. डाउस की परिकल्पल का सार यह है कि अधिकारियों के सामने जो निश्चित लक्ष्य होते हें वे हैं- शक्ति; आय; प्रतिष्ठा; सुरक्षा; सुविधा; वफादारी (एक विचारधारा, एक संस्था, या राष्ट्र के प्रति); अपने काम में गर्व; तथा अन्त में जनहित सेवा की इच्छा।

हितों की पूर्ति की दृष्टि से अधिकारियों को दो भागों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

- विशुद्ध आत्म-हितीय अधिकारी जो केवल अपने हितों के लिये काम करते हैं, न कि ब्योरोज या समाज के लिए;
- मिश्रित उद्देशीय अधिकारी, जिनका उद्देश्य अपने हितों की पूर्ति के अतिरिक्त, सामाजिक मूल्यों के प्रति भी वफादारी होती है।

डाउन्स एक और तथ्य की ओर भी इशारा करता है। वह यह है कि ब्योरोज स्वयं अथवा स्वतः जन्म नहीं लेते। स्वयं अधिकारी अपने हितों की पूर्ति के लिए उनके निर्माण तथा विस्तार की सिफारिश करते हैं, ताकि उनको पदोन्नति के अवसर निरन्तर मिलते रहें तथा नये अधिकारियों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती रहे।

5.11 लोक सेवा के संदर्भ में नौकरशाही-भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारतीय नौकरशाही ब्रिटेन की देन है। नौकरशाही पर चिन्तन तथा इसका विश्लेषण भी योरोप में हुआ है। ब्रिटेन की नौकरशाही कुलीन घरानों पर आधारित थी। नौकरशाह प्रायः आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्व विद्यालयों के पढ़े हुये होते थे। ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों में भी नौकरशाही की परम्परा डाली। अधिकांशतः अंग्रेज नौकरशाह उपनिवेशों में प्रशासनिक सेवा के लिये भेजे गये, जो स्वयं को स्वर्ग-जन्मे (heaven born) मानते थे।

इन कुलीन प्रशासकों के लिये वास्तव में उपनिवेश स्वर्ग थे। वे अपनी पूरी कुलीनीय मानसिकता के साथ उपनिवेशों में आते थे। उपनिवेश के लोगों को अत्यंत हीन दृष्टि से देखते थे। दासों जैसा उनके साथ बर्ताव करते थे। उपनिवेशों की सम्पदा को लूटकर अपने देश चले जाते थे और वहाँ आलीशान भवन बनाकर, लार्ड या सर की पद्वी पाकर ऐश की जिन्दगी गुजारते थे।

स्वतंत्रता तक भारत की भी यही कहानी थी। भारत में प्रवेश करने वाले आई0सी0एस0 अधिकारी भारतीयों को कुत्तों से अधिक कुछ नहीं समझते थे। वे स्वयं को स्वामी और भारतीयों को दास समझते थे। वे साधारण भारतीय समाज से हटकर सिविल लाइंस में रहते थे। सिविल लाइंस का अर्थ था सभ्य लोगों के रहने की जगह, जहाँ असभ्य भारतीयों को घुसने का भी अधिकार नहीं था। यह अंग्रेज अधिकारी बड़े-बड़े बंगलों में रहते थे, जिनके परिवार के बाहर लिखा होता था-''भारतीय कुत्तों का प्रवेश वर्जित है।'' यही स्थिति उनके कतबों की थी।

भारत के पर्वतों में तो स्थिति और दयनीय थी। कुमाऊँ में बेगार की प्रथा थी, जिनका अर्थ था यात्रा के लिये कुमाउंनी मजदूरी का टट्टू, खच्चर या घोड़े की तरह प्रयोग करना। साहब और मेम साहिबा एक मजदेर के कन्धों पर चढ़ जाते थे और उनको किसी प्रकार की दया नहीं आती थी। 1 जनवरी 1917 को बेगार व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कानून बना जब इसके विरूद्ध कुमायूं मे आवाज उठी।

संक्षेप में नौकरशाही की अंग्रेजी मानसिकता ने भारत में सामाजिक अलगाववाद को बढ़ावा दिया जिसका नतीजा 1857 का विद्रोह था। सर सय्यद अहमद खाँ ने अपनी पुस्तक 'असबाबे बगावत-ए-हिन्द' में इस सामाजिक विषमता को ही विद्रोह का कारण बताया।

लेकिन धीरे-धीरे भारत मे लोक सेवा की स्थिति बदलने लगी। सुधारों की श्रृंखला आरंभ हुई। 1917 में प्रस्तुत प्रतिवेदन में लार्ड इस्लिंग्टन की अध्यक्षता में नियुक्त आयोग की सिफारिशों में एक चौथाई पद भारतीयों के लिए सुरक्षित रखने की बात कही गई। इसी बीच उच्च पदों पर भारतीयकरण की मांग की जाने लगी। उच्च पदों पर

भारतीय नियुक्त होने लगे लेकिन उनकी प्रवृत्ति भी वही रही जो अंग्रेज अधिकारियों की थी। उनका व्यवहार अपने यताहत भारतीयों के साथ वैसा ही था जैसा अंग्रेज अधिकारियों का था। अन्तर केवल यह था, जहाँ अंग्रेज अधिकारी कुलीन वर्ग के थे, वहाँ भारतीय अधिकारी सामन्ती परिवारों से थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, नये परिवार संविधान के तहत संधीय आयोग की स्थापना की गई। भारतीय सिविल सेवा (के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा ने स्थान ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त भारतयी विदेश सेवा का गठन किया गया। पुनः सुधारों की श्रृंखला आरंभ हुई, जो ए0डी0 गोरवाला और एपल्पी (1953 से 1956 तक) की सिफारिशों का नतीजा थीं। अब भारत में तीन अखिल भारतीय सेवायें आरंभ हुई-अखिल भारतीय सेवायें, केन्द्रीय सेवायें तथा राज्य सेवाऐं।

1952 तक भारत में सामन्ती व्यवस्था समाप्त कर दी गई। अतः अब लोक सेवाओं में जो प्रत्याशी चयनित होकर आने लगे वे अधिकांशतः मध्यमवर्गीय थे। मध्य वर्ग की अपनी संस्कृति और अपनी मानसिकता होती है, जिस से भारतीय लोक सेवा प्रभावित होने लगी। अतः इसी लोक सेवा ने जब नौकरशाही का रूप धारण कियार, तो स्थिति और भयावह हो गयी। वे सारी बुराईयाँ जिन से भारतीय समाज ग्रस्त है, नौकरशाही में व्यक्त होने लगी- जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, संवेदनविहीनता, अलगाववाद, राजनीति तटस्थता के स्थान पर राजनीतिक वफादारी, उदासीनता और अकर्मठता। संक्षेप में भारतीय लोक सेवकों ने वह स्थिति प्राप्त कर ली है, जिसकी ओर ऐन्थानी डाउन्स ने इशारा किया अर्थात आय और शक्ति की प्राप्ति, प्रतिष्ठा की चिन्ता, स्वयं को सुरक्षित रखने की भावना, सुविधाओं की ओर झुकाव। इस तरह समाज सेवा या राष्ट्र सेवा गौड़ हो जाती है।

5.12 नौकरशाही बनाम लोक सेवा के सकारात्मक पहलू

भारतीय नौकरशाही का नकारात्मक पहलू तस्वीर का एक रूख है। वह निराशाजनक आवश्यक है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आधुनिक नौकरशाही एक अनुपयोगी संस्था बन गई। आधुनिक नौकरशाही लोकसेवा के रूप में विकास के लिये अपरिहार्य है। इसके अभाव में राज्य या समाज लड़खड़ाकर गिर जायेगा। आज लोक प्रशासन विकास प्रशासन बन गया है। विकास प्रशासन की अवधारणा की उत्पत्ति और विकास प्रजातांत्रिक राजनीति, आर्थिक विकास का दबाव, व्यस्क मताधिकार, सार्वभौम शिक्षा, कल्याणकारी कार्यक्रम और ग्रामीण विकास से सम्बन्धित समाज का अधुनिकीकरण, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति का नजरिया, प्रशासन की विषम और जटिल प्रकृति एवं राजनीतिक संगठन, संवैधानिक तकाजे, शहरी एवं ग्रामीण जन-परिस्थितियों से निपटने के लिये प्रभावशाली प्रबन्धन तथा प्रपंच की राजनीति के वातावरण में प्रशासनिक-राजनीतिक द्विविभक्तिकरण-यह वे सारी चुनौतियाँ हैं, जिनका नौकरशाही को साझा करना पड़ता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि लोक सेवा किसी न किसी हद तक इने चुनौतियों का सामना करने में सफल रही है।

आज प्रशासन विकास से जुड़ा हुआ है। विकास समाज के गतिशील परिवर्तन और एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर अग्रसर होने का दूसरी नाम है। विकास का अर्थ केवल आर्थिक विकास से नहीं है। विकास प्रशासन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों को कार्यान्वित करने की विधि से है। दूसरे, यदि प्रशासनिक क्षमताओं में वृद्धि होती है तो यह भी विकास है। विकास प्रशासन को नियोजित परिवर्तन माना जा सकता है। तथ्यों की दृष्टि से विकास प्रशासन का सम्बन्ध योजना, नीति, कार्याक्रम तथा परियोजन (Project) से है। विकास प्रशासन का रूप बहुआयामी है। इसका कार्यक्षेत्र विशाल है। इसमें शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, सिंचाई, परिवहन, सामाजिक न्याय सब कुछ आता है। यह किसी भी राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास से जुड़ा हुआ है। संक्षेप में नौकरशाही या लोक सेवा विकास प्रशासन का माध्यम है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सेवी वर्ग को किस विचारक ने ''मानव शक्ति'' कहा?
   क. विलियम राइकर ने ख. डेविड ईस्टन ने
   ग. एल0डी0 व्हाइट ने घ. मैसलो ने
2. विधिक-तार्किक नौकरशाही का विचार किसने प्रतिपादित किया?
   क. फ्रेड रिग्स ने ख. मैक्स वेबर ने
   ग. हबर्ट साइमन ने घ. कार्ल मार्क्स ने
3. इंग्लैण्ड के पहला लोक सेवा आयोग किस प्रशासक की सिफारिशों का परिणाम था?
   क. चार्ल्स ट्रेवेलियन ख. सर स्टेफर्ड
   ग. ट्रेवेलियन नार्थकोट घ. पीटर ड्रकर
4. भारत में भारतीय नागरिक सेवा के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा का नाम किसने दिया?
   क. जवाहरलाल नेहरू ने ख. एप्लवी ने
   ग. मौलाना आजाद ने घ. सरदार बल्लभ भाई पटेल ने
5. व्हिटले कमेटी का सम्बन्ध किस देश से है?
   क. अमरीका से ख. जर्मनी से
   ग. भारत से घ. इंग्लैण्ड से
6. शब्द 'नौकरशाही' का प्रयोग किसने किया?
   क. डी0 गोरने ने ख. मैक्स वेबर ने
   ग. एन्थानी डाउंस ने घ. पार्सन्स ने

5.13 सारांश

- लोक सेवा वास्तव में प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने शुद्ध रूप से यह एक सेवा है, लेकिन अपने विकृत रूप में यह नौकरशाही बन जाती है।
- प्रशासन के तीन अंग हैं- संगठन या प्रशासनिक संरचना; संगठन में कार्यरत् कर्मी जिनमें ऊँचे पद पर आसीन लोगों को अधिकारी या सेवी वर्ग कहा जाता है, तथा नीतियाँ, नियम तथा विनियम जिनके तहत सेवी वर्ग प्रशासन का संचालन करता है।
- लोक सेवा विकास का परिणाम है। वैसे तो अपने आधुनिक रूप में यह इंग्लैण्ड की देन है लेकिन भारत में इसकी जड़े प्राचीन भारत, मुगल काल तथा ब्रिटिश काल तक फैली हुई है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन काल समाप्त होने के बाद भारत में लोक सेवा पूरी तरह विकसित हो गयी। विकास की यह प्रक्रिया आज तक चल रही है।
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में लोक सेवा चहुमुखी विकास की शर्त बन गई। सेवी वर्ग का कुशल, प्रशिक्षित तथा विशिष्टीकरण, पक्षपात रहित सेवी वर्ग का चयन तथा राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ और संवेदनशीलता यह सेवी वर्ग के गुण हैं।
- लोक सेवा को नौकरशाही का नाम दिया गया है। जब परहित के स्थान पर आत्म हित हावी होता है तो लोक सेवा नौकरशाही बन जाती है। यह एक बदनाम शब्द है, जिसको जन विरोधी मानसिकता का नाम दिया गया है।

- मैक्स वेबर ने नौकरशाही को सकारात्मक रूप में लिया है और नौकरशाही का एक प्रतिमान तैयार किया है जो उसके विधिक-तार्किक सिद्धानत पर आधारित है। वह नौकरशाही को आधुनिक राज्य के लिए अपरिहार्य मानता है। अधिकांश देशों ने वेबर के मॉडल को स्वीकार किया है। इस मॉडल की जो विशेषताएं उसने बताई हैं, उनमें-शासकीय कार्य की निरन्तरता; प्रशासनिक अभिकरण का अस्तित्व, लिखित नियम; पदसोपनियता, निर्वैयक्तीकरण; लिखित दस्तावेज इत्यादि।
- लोक सेवा कल्याण राज्य का अभिन्न अंग है। इसका लक्ष्य जनतंत्रीय समाज में संवैधानिक तकाजों को पूरा करना है; साथ ही जन-कल्याणकारी राज्य के उद्देश्यों को पूरा करना है और आकस्मिक आपदाओं और संकट कालीन परिस्थितियों में जन समाज को सुरक्षा प्रदान करना है।
- लोक सेवा और नौकरशाही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों में बहुत सी समानतायें हैं लेकिन अन्तर के केवल मनोवैज्ञानिक है।
- नौकरशाही की मानसिकता भारत को इंग्लैण्ड से विरासत में मिली है। अन्तर यह है कि पहले यह कुलीन और सामन्ती थी, लेकिन अब मध्यवर्गीय है जो समाज की सभी असामाजिक प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करती है। इस दृष्टि से यह अधिक कष्टदायक है।
- भारतीय लोक सेवा पर इंग्लैण्ड में होने वाले सुधारों का गहरा प्रभाव पड़ा है, व्हिटले कमेटी, राल्फ एशटन कमेटी और फुल्टन कमेटी की सिफारिशों को भारतीय लोक सेवा ने भी स्वीकार किया। इन सुधारों का सारांश लोक सेवा की भर्ती, प्रशिक्षण तथा सेवा शर्तों से भी है और लोक सेवा की संरचना, संगठन और कार्य विधि से भी। इन सुधारों ने लोक सेवा की प्रकृति को तय किया है।
- लोक सेवा की प्रकृति के नौ प्रमुख लक्षण हैं: विकास का परिणाम; अनेक वर्गों में विभाजित; ब्रिटिश लोक सेवी ताज के सेवक; न्यायालय नियंत्रण क्षेत्र से बाहर; नियमनों के अनुसान काम, सुरक्षा की गारन्टी; राजनीतिक तटस्थता; नौकरशाही की सुरक्षा की अनुकूल शर्तें; कल्याणकारी प्रवृत्ति तथा सेवी वर्ग में निरन्तर वृद्धि।
- एन्थॉनी डाउन्स ने नौकरशाही को सकारात्मक रूप में लिया है। वह इस संस्था को ब्योरो कहता है और नौकरशाहों को अधिकारी कहना पसन्द करता है। आफीशियल की विशेषता है, परहित के साथ-साथ आत्महित।
- लोक सेवा का सम्बन्ध विकास से है। विकास का बड़ा व्यापक अर्थ है, इसलिये प्रशासन को आज विकास के संदर्भ में देखा जाता है।

5.14 शब्दावली

ब्योरियॉक्रेसी- यह एक फ्रांसीसी शब्द है, जिसका सर्व प्रथम प्रयोग 18वीं सदी के अर्द्ध में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी0 गोरने ने किया था। तत्पश्चात 19वीं सदी में इस शब्द का प्रयोग जे0एस0 मिल, मोस्का और मिशेल ने, जबकि मैक्स वेबर ने इसी समय में इस शब्द का प्रयोग किया। ब्योरियॉक्रेसी का अर्थ कार्यालय या सरकारी कार्यालय से लिया जाता है। ब्योरों का अर्थ है विभाग।

प्रशासनिक विकास- इसका अर्थ मात्र आर्थिक या सामाजिक विकास से नहीं है। इसका अर्थ मानसिक स्थिति से है। एक स्थिति से दूसरी अधिक व्यापक स्थिति की ओर अग्रसर होना विकास है। यह भौतिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी। यह सम्पूर्ण परिवर्तन की शर्त है।

विधिक-तार्किक प्रतिमान- मैक्स वेबर ने नौकरशाही का यह मॉडल तैयार करके लोक सेवा के क्षेत्र में एक क्रान्ति का काम किया है।

निर्वैयक्तिक- जहाँ व्यक्ति या अधिकारी एक उपकरण या मशीन के रूप में काम करें, जिस की अपनी कोई इच्छा या हित न हो। जो केवल संरचना या नियमों के अनुसार काम करें, जिसमें उसका अपना व्यक्तित्व शामिल न हो।

5.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग, **2.** ख, **3.** ग, **4.** घ, **5.** घ, **6.** क

5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन।
2. डी0 रविन्द्र प्रसाद, वी एस प्रसादः प्रशासनिक चिन्तक।
3. अवस्थी अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
4. त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
5. Dwight Waldo : The Study of Public Administration.
6. Fred W. Riggo : Administration in Developing Countries.

5.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. D. Ravinddra Prasad : Administrative Thinkers.
2. Albrow, Martin : Bureaucracy, London, 1970.
3. Arora, Ramesh : Administrative Theory, New Delhi, 1984.
4. Blau, Peter : Bureaucracy in Modern Society, New York, 1962.

5.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक सेवा का अर्थ समझाइये तथा लोक सेवा और नौकरशाही के संबंधों पर प्रकाश डालिये
2. आधुनिक नौकरशाही की क्या विशेषताएं हैं? भारतीय संदर्भ में नौकरशाही और लोक सेवा के संबंधों को समझाईये।
3. विकास प्रशासन का क्या अर्थ है? क्या लोक सेवा विकास प्रशासन है?

इकाई- 6 नौकरशाही के आधार

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 नौकरशाही: एक विवेचना
6.3 मैक्स वेबर और नौकरशाही
6.4 वैबेरियन नौकरशाही के आधार
6.5 नौकरशाही के आधार पर मार्क्स का विशलेषण
6.6 नौकरशाही, राज्य और हीगेल
6.7 ऐन्थॉनी डाउन्स और नौकरशाही
6.8 पर्यावरर्णीय सिद्धांत और नौकरशाही
6.9 नौकरशाही के आधार का व्यवहारिक पहलू
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.15 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

इस इकाई में नौकरशाही के आधारों का विश्लेषण किया गया है। वास्तव में सभी प्रशासनिक चिन्तकों ने नौकरशाही के अभिलक्षण और उसके सिद्धान्तों पर बहस की है। इन्हीं विशेषताओं को नौकरशाही के आधार कहा जा सकता है। ये आधार सार्वभौमिक हैं और स्थायी हैं। नौकरशाही का सबसे बड़ा सिद्धान्तकार मैक्स वेबर है। सभी अन्य चिन्ताकें ने उसका अनुसरण किया है। वेबर का नौकरशाही का मॉडल विधिक-तार्किक नाम से जाना जाता है। ''वैधानिकता'' और ''तार्किकता'' यही दो ऐसी अवधारणाऐं हैं जो नौकरशाही को आधार प्रदान करती हैं।

नौकरशाही का दूसरा चिन्तक कार्ल मार्क्स है जो नौकरशाही के नाकारात्मक रूप को दर्शाता है। उसकी नजर में नौकरशाही का आधार आर्थिक अथवा भौतिक व्यवस्था है, जिसको वह पूंजीवादी और सामन्तीवादी कहता है। इस व्यवस्था के संरक्षक ही नौकरशाही के आधार हैं। नौकरशाही परजीवी है और उसका काम पूजीवादी वर्ग की यथास्थिति को बनाये रखना है।

हीगेल ने नौकरशाही का आधार राज्य को माना है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व की सबसे महान अभिव्यक्ति है। ऐन्थानी डाउन्स ने ब्योरोज को नौकरशाही का अधार माना है। दूसरी ओर रिग्स ने पर्यावरणीय परिवेश को नौकरशाही का निर्णायक आधार माना है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके के उपरान्त आप-

- नौकरशाही के चरित्र, स्वरूप, अभिलक्षणों का समझ सकेंगे।

- मैक्स वेबर की विधिक-तार्किक नौकरशाही को जान पायेंगे।
- वेबर के अनुसार वैधानिकता और तार्किकता ही नौकरशाही के वास्तविक आधार हैं, ये समझ पायेंगे।
- मार्क्स द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही की नकारात्मक भूमिका को जान पायेंगे और समझ पायेंगे कि राज्य का अस्तित्व किस तरह नौकरशाही के लिए अनिवार्य है।
- ऐन्थानी डाउन्स की नजर में नौकरशाही ब्योरेज पर टिकी हुई है। ब्योरोज की विशेषता क्या है, ये समझ पायेंगे।
- रिग्स किस तरह परिवेश को नौकरशाही का आधार मानता है, यह जान पायेंगे।

6.2 नौकरशाही: एक विवेचना

सेवी वर्ग अथवा लोकसेवकों ने एक संस्था का रूप ले लिया है, जिसे लोक प्रशासन में नौकरशाही का नाम दिया गया है। अभी तक नौकरशाही या ब्योकरियॉक्रेसी की कोई निश्चित सर्वमान्य परिभाषा सामने नहीं आई है। केवल उसके अभिलक्षणों, स्वरूपों के आधार पर नौकरशाही को पहचाना जा सकता है। अपनी, एक विशिष्ट मानसिकता और व्यवहार के कारण नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन गया है। लेकिन मैक्स वेबर ने नौकरशाही का पक्ष लेते हुये, उसे प्रशासनिक व्यवस्था का एक अपरिहार्य अंग बनाकर उसको एक वैज्ञानिक शास्त्र बनाने का प्रयास किया है। जिस गहनता के साथ वेबर ने नौकरशाही का अध्ययन करके उसका एक प्रतिमान तैयार किया है, उस कारण वेबर और नौकरशाही एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं।

नौकरशाही की अवधारणा की जन्म स्थली जर्मनी है। इसका नामकरण फ्रांस में हुआ है। इंग्लैण्ड में इसका पालन पोषण हुआ है और अब संसार के कोने-कोने में यह फल-फूल रही है। आज यह आधुनिक प्रशासनिक संस्कृति का एक अविभाज्य अंग बन चुकी है।

नौकरशाही एक प्रशासनिक संरचना भी है, एक नीति-निर्माण अथवा निर्णय-निर्माण के कार्यान्वयन का एक माध्यम भी है और एक मानसिकता भी फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी0 गोरने से लेकर जे0एस0 मिल, मोसनका और मिशेल जैसे राजनीतिक दार्शनिकों ने नौकरशाही को अपने चिन्तन का विषय बनाया। यहाँ तक कि यह राजनीतिक चिन्तन की परिधि से निकल कर समाजशास्त्र के दायरे में आ गयी। आज यह लोक प्रशासन का विषय है तो केवल इसलिए कि बिना नौकरशाही के प्रशासन एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

मैक्स वेबर, मार्क्स, हीगेल और एन्थॉनी डाउंस ऐसे चार चिन्तक हैं, जिन्होंने अपने-अपने नजरिये से नौकरशाही के अभिलक्षणों और आधारों पर प्रकाश डाला है। यहाँ चारों के दृष्टिकोणों को समझने का प्रयास किया जायेगा।

6.3 मैक्स वेबर और नौकरशाही

मैक्स वेबर ने कहीं भी नौकरशाही को परिभाषित नहीं किया है और न ही उसके आधारों पर बहस की है। उसने केवल नौकरशाही के अभिलक्षक बताऐं हैं और लक्षणों के आधार पर उसने नौकरशाही के रूप को प्रस्तुत किया है।

यहाँ हम वेबर द्वारा प्रस्तुत विधिक-तार्किक नौकरशाही के अभिलक्षणों की संक्षिप्त चर्चा करके यह बताने का प्रयास करेंगे कि नौकरशाही की विशेषतायें ही वास्तव में नौकरशाही के आधार हैं, जिनकी अनुपस्थिति में नौकरशाही का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।

सर्वप्रथम यह याद रखना है कि वेबर ने 'सत्ता' पर बहुत अधिक बल दिया है, और सत्ता की रौशनी में उसने दो प्रकार की नौकरशाही की पहचान की है- वंशानुगत नौकरशाही जो परम्परागत और करिश्माई सत्ताओं की विशेषता है; और विधिक-तार्किक नौकरशाही जो केवल कानून के दायरे में पाई जाती है तथा जिसके औचित्य के

पीछे तार्किकता अथवा विवेक होता है। वेबर की नौकरशाही की अवधारणा का यही विधिक-तार्किक पहलू है, और वह इसी सिद्धान्त को आदर्श नौकरशाही के मॉडल का आधार मानता है। मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही का मॉडल वास्तव में प्रशासन और लोक सेवा के क्षेत्र में एक अद्भुत क्रान्ति है, जिसके पक्ष एवं विरोध में बहुत कुछ लिखा जाता रहा है, लेकिन उसका यह सिद्धान्त अकाट्य है।

वैबर ने नौकरशाही के आधारों की व्याख्या से पहले कुछ तार्किक परिकल्पनाओं का सहारा लिया है। वह सर्वप्रथम इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि किसी भी प्रकार की 'सत्ता' के पीछे मौलिक रूप से 'वैधता' होती है। उसका विश्वास है कि सत्ता की वैधता पांच महत्वपूर्ण विश्वासों (Beliefs) पर आधारित है-

1. प्रशासन में एक कानूनी नियम का अस्तित्व होता है जिसके माध्यम से संगठन के सदस्यों से आदेशों का पालन कराया जा सके।
2. कानून नियमों की भावनात्मक अथवा निराकार व्यवस्था का नाम है, जो विशिष्ट मामलों पर लागू होता है तथा संगठन का हित देखता है।
3. वह व्यकित जो सत्ता का प्रयोग करता है (अधिकारी) वह भी इस निर्वैयक्तिक आदेश का पालन करता है।
4. केवल एक सदस्य ही सदस्य की हैसियत से कानून का पालन करता है (एक संगठन के अन्दर)।
5. आदेश का पालन सत्ताधारी व्यक्ति का नहीं होता है, बल्कि उस निर्वैयक्तिक व्यवस्था का होता है जो उस व्यक्ति को पद प्रदान करती है।

उक्त पाचों विश्वासों का सारांश यह है कि कानून सर्वोपरि है। कानून निर्वैयक्तिक है। सत्ता का आधार कानून है। जिस व्यक्ति को यह प्राप्त होता है, वह सत्ताधारी है, लेकिन आदेश के पालन का अर्थ है निर्वैयक्तिक व्यवस्था का पालन। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निर्वैव्यक्तिक व्यवस्था तथा वैधता में गहरा सम्बंध है। यह सम्बंध ही नौकरशाही का सब से मजबूत आधार है।

नौकरशाही क्यों अस्तित्व में आई, इसका कारण बताते हुये वैबर ने लिखा- ऐतिहासिक, तकनीकी और प्रशासनिक कारणों ने सर्वप्रथम नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया आरंभ की, कानून के शासन ने नौकरशाही का संगठनात्मक ढाँचा तैयार किया, अधिकारियों की विशिष्ट योग्यता, उनकी पेशेवराना महारत तथा उनके विशिष्ट आचरण तथा सोच ने उनको एक अभिजात वर्ग का दर्जा दे दिया तथा आधुनिक संसार में नौकरशाही की महत्वपूर्ण भूमिका है, विशेष रूप से सरकारी संस्थाओं में स्वयं नौकरशाही ने शासकीय रूप ले लिया।

इस तरह संक्षेप में नौकरशाही के चार आधारों की ओर वेबर ने इशारा किया कि तकनीकी और प्रशासनिक प्रगति: कानून के शासन का अस्तित्व: अधिकारियों की विशिष्ट प्रशासनिक पहचान: तथा (घ) सरकारी संस्थाओं का फैलाव।

6.4 वैबेरियन नौकरशाही के आधार

मैक्स वेबर ने नौकरशाही से सम्बंधित, अपना मान्यताओं परिकल्पनाओं तथा विश्वासों के आधार पर विधिक तार्किक नौकरशाही का जो एक आदर्श प्रतिमान तैयार किया, वह छः विशेषताओं पर टिका हुआ है, जिनको नौकरशाही का आधार कहा जा सकता है। यह विशेषताऐं या आधार हैं- (1) निर्वैयक्तिक व्यवस्था (2) नियम (3) सामर्थ्य का क्षेत्र (4) पदानुक्रम (5) व्यक्तिक तथा लोक ध्येय: तथा (6) लिखित दस्तावेज। इन्हीं बिन्दुओं पर आगे चलकर विस्तार से चर्चा की जाएगी-

1. **निर्वैयक्तिक व्यवस्था-** निर्वैयक्तिक व्यवस्था वैबर की नौकरशाही की सब से अधिक महत्वपूर्ण विशेषता हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रशासनिक सत्ता या शक्ति का केन्द्र वह वह पद या विभाग है यहाँ अधिकारी पदासीन है, न कि कोई विशेष व्यक्ति।

2. **नियम-** किसी भी प्रशासनिक इकाई में नियम सर्वोपरि है, जिनके तहत संगठन की संरचना तथा सत्ता का आकार या प्रयोग तैय होता हैं। यही तार्किकता है और यही विधिक तार्किक सिद्धांत का सार है। मर्टन ने बेवर के इस विचार की सराहना की है लेकिन वह यह भी मानता कि प्रशासक का नियमों से चिपके रहना विलम्ब को जन्म देता है जो प्रशासन के लिये घातक है।
3. **सामर्थ्य का क्षेत्र-** इसका अर्थ है कि प्रत्येक अधिकारी को उसकी क्षमता अथवा सामर्थ्य के अनुसार वह कार्य सौंपा जाता है, जो श्रम विभाजन के क्रमवद्ध व्यवस्था के अनुसार होता हैं। दूसरे, अधिकारी को दिये गये कार्यों को करने की सत्ता भी सौंपी जाती है, तीसरे अधिकारियों को कार्यो को सम्पन्न करने के लिये परिभाषित साधन भी मोहय्या कराये जाते हैं। इस तरह अधिकार अपनी क्षमता का सद्प्योग कर सकता हैं।
4. **पदसोपान अथवा पदानुक्रम-** पदानुक्रम का अर्थ यह है कि प्रत्येक कार्यालय का संगठन पदानुक्रम सिद्धांत का पालन करता है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक अवर या निचला कार्यालय उच्चतर के नियंत्रण तथा निरीक्षण के अधीन रहता है। इसका अर्थ यह भी है कि सर्वोच्च सत्ता के अधीन पूर्ण प्रशासनिक स्टाफ निश्चित पदानुक्रम के अनुसार काम करता है।
5. **व्यक्तिक तथा लोक ध्येय-** इसका अर्थ है कि अधिकारी के व्यक्तिक हित और जन हित प्रशासनिक दृष्टि से पूरी तरह प्रथक हैं। प्रशासनिक अधिकारी उत्पादन के साधनों के स्वामी नहीं है और न ही प्रशासन उनके अपने हित की पूर्ति के लिए है। यह नियम नौकरशाहों पर पाबन्दियाँ लगाकर पद या स्थिति के दुरूपयोग को रोकता है।
6. **लिखित दस्तावेज-** वेबेरियन नौकरशाही की अन्तिम विशेषता यह है कि सभी प्रशासनिक कृत्यों, निर्णयों, तथा नियमों को लिखित रूप में तैयार किया जाता है और इनका लिखित रूप में रिकार्ड रखा जाता है। यहाँ तक कि मौखिक बातचीत को भी लेख बद्ध किया जाता है। यह दस्तावेज प्रशासन को जवाबदेह बनाता है और भविष्य की कार्यवाही के संदर्भ का काम करता है।

वेबेरियन मॉडल की कुछ और विशेषताऐं भी हैं, जैसे- तकनीकी तौर पर योग्य और अर्हता प्राप्त लोगों का चयन, उनको निश्चित वेतन मिलना, पूर्ण कालिक पेशा, पदोन्नति के अवसर, कठोर अनुशासन तथा नियंत्रण। अन्तिम विशेषता नौकरशाही प्रशासन का एकतंत्रीय होना है। प्रशासन तकनीकी दृष्टि से सर्वोत्तम क्षमताओं का परिचय देती है।

6.5 नौकरशाही के आधार पर मार्क्स का विश्लेषण

मार्क्स नौकरशाही का सिद्धान्तकार नहीं था, लेकिन उसने नौकरशाही का जिस नजरिए से विश्लेषण किया वह साम्यवादी सोच का नतीजा है उसके अनुसार नौकरशाही की उत्पत्ति के चार स्रोत हैं - धर्म, राज्य का अस्तित्व वाणिज्य तथा यांत्रिकी अथवा टेकनॉलोजी।

1. अपने प्रारम्भिक काल में धर्म शास्त्रियों (पण्डित, पादरी) का धार्मिक परम्पराओं को निभाने के लिए महत्वपूर्ण अधिकार ग्रहण करना और तत्पश्चात् प्रशासकों या नौकरशाहों का दर्जा प्राप्त कर लेना। धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त नीति-निर्माण, निर्णय तथा विधि निर्माण के अधिकार प्राप्त करना, यहाँ तक कि धर्म के दायरे से निकलकर सामाजिक वर्गों में विभाजित होना और अन्तः शासकों, प्रशासकों या नौकरशाहों का दर्जा प्राप्त कर लेना।
2. सामाजिक वर्गों के आन्तरिक द्वन्द ने राज्य को जन्म दिया। प्रशासकों के माध्यम से कानूनों का निर्माण और उनका कार्यान्वयन आरम्भ हुआ। इन्हीं के माध्यम से कराधान की व्यवस्था हुई और अन्ततः अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण इनको नौकरशाह कहलाया जाने लगा।

3. राज्य के विकास ने आर्थिक अथवा वाणिज्यिक गतिविधियाँ बढ़ाई। वित्त प्रबन्धन के सारे दायित्व प्रशासकों को सौंपे गयें। वाणिज्यिकी प्रशासन-प्रबन्धन ने नौकरशाहों को राज्य के लिए अपरिहार्य बना दिया।
4. तकनीकी और यांत्रिकी विकास ने आर्थिक औद्योगिक विकास के नये दरवाजे खोल दिये। पूंजीवादी व्यवस्था अस्तित्व में आ गई। यहां वर्ग-टकराव और तेज हो गया नौकरशाही की भूमिका भी बदल गई अब नौकरशाहों का पूंजीपतियों, सामन्तियों और शासकों के हितों की रक्षा करना परम् का धर्म हो गया। यहाँ तक कि यांत्रिकी और नौकरशाही का एक नया सम्बंध सामने आ गया, जिसे ब्योरियों क्रेसी के साथ-साथ टेक्नॉक्रेसी या शिल्पतिज्ञ कहा गया।

मार्क्स बनाम नौकरशाही के संदर्भ में यह याद रखना है कि नौकरशाही, राज्य और आर्थिक अथवा भौतिक परिवेश का आपस में गहरा सम्बन्ध है। आर्थिक व्यवस्था ने राज्य के स्वरूप, चरित्र और लक्ष्य को निश्चित किया है। राज्य के हितों की रक्षा के लिए नौकरशाही एक उपकरण के रूप में काम करती है।

यहाँ सरलता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मार्क्सवादी नजरिए से नौकरशाही का पहला और अन्तिम आधार राज्य है। जब तक राज्य का अस्तित्व है तब तक नौकरशाही का भी अस्तित्व हैं मार्क्स ने राज्य के विलुप्तीकरण के सिद्धांत से इसी सत्य की ओर इशारा किया है। उसके अनुसार समाजवादी या साम्यवादी व्यवस्था में राज्य विलुप्त हो जायेगा, तब नौकरशाही भी अर्थहीन हो जाएगी।

नौकरशाही किस तरह राज्य अथवा उतपादन के स्वामियों की रक्षा करती है, इस बात को स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने लिखा- नौकरशाही का चरित्र ही घ्ननकारी है। वह पूंजीपतियों, सामन्तियों तथा सत्ता धारियों के हितों की रक्षा के लिए समाज के कमजोर तबकों का दमन करती है। नौकरशाही अपनी नियंत्रकीय शक्ति के माध्यम से सत्ताधारी वर्ग के हितों को आगे बढ़ाती है। उसकी प्रकृति रहस्मयी है। वह अपनी इस विशेषता से सत्ताधारियों की वास्तविकताओं को गोपनीय और रहस्यमय बनाए रखती है। और समाज और सत्ताधारियों के मध्यम अलगाव को गहरा करती है, तथा सत्ताधारियों की रक्षा करके, कमजोर तबकों को कुचल कर और व्यवस्था की यथास्थिति को बनाए रखकर, नौकरशाही स्वयं अपने अस्तित्व को बनाए रखती है, क्योंकि मार्क्स के अनुसार नौकरशाही परजीवी है।

6.6 नौकरशाही, राज्य और हीगेल

मार्क्स के समान हीगेल ने भी नौकरशाही का आधार राज्य को ही माना है, लेकिन जहाँ राज्य एवं नौकरशाही के बारे में मार्क्स का नजरिया नकारात्मक है, वही हीगेल दोनों संस्थाओं को सकारात्मक रूप मे लेता है।

हीगेल के अनुसार नौकरशाही राज्य का एक मुख्य शासी निकाय है। राज्य सामाजिक व्यवस्था का अन्तिम विकास है तथा मनुष्य की आत्म अभिव्यक्ति का सर्वोच्च अन्तिम चरण है। जब राज्य अस्तित्व में आ जाता है तब स्वतः जन क्रियाऐं आरंभ होती हैं। इस परिवेश में शासक नौकरशाह तथा नारियों के स्वामी राजनीतिक अनिकताओं की भूमिका अदा करते हैं।

हीगेल के अनुसार राज्य तथा लोक समाज में अन्तर है। लोक समाज विशेष वर्गो का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन राज्य जनहित की अभिव्यक्ति है। नौकरशाही दोनों निकायों को जोड़ने का काम करती है। अतः हीगेल की नजर में भी नौकरशाही का आधार राज्य ही है, लेकिन उसकी भूमिका सकारात्मक और रचनात्मक है। राज्य की प्रकृति में सार्वभौमिकता है। इसलिए नौकरशाही भी सार्वभौमिक हैः यह सामान्य हितों की रक्षा करती है और समाज की प्रत्येक बात को कानून की कसौटी से देखती है।

हीगेल नौकरशाही के तीन आधार मानता है- (क) नौकरशाही निश्चित परिभाषित पदानुक्रम पर आधारित सम्बंधो की एक व्यवस्था है, जिस में विशिष्टीकरण के साथ पद सत्ता भी है (ख) नौकरशाही का आधार समाज का मध्य

वर्ग है। वे मध्य वर्ग से आकार वर्तमान नौकरशाही व्यवस्था का अंग बन जाते है (ग) इस समावेश के बाद नव नियुक्त अधिकारी एक विनियागक यांत्रिकी के अनुसार काम करते हैं, जिसका अर्थ है आन्तरिक व बाहरी दबावों के अनुसार काम करना। यह दबाव युवा नौकरशाहों के आचरण और स्वभाव को निश्चित करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मार्क्स और हीगेल दोनों ही राज्य को नौकरशाही का आधार मानते हैं। मार्क्स राज्य को दमनकारी मानता है और नौकरशाही को इस दमन का एक उपकरण (apparatus)। लेकिन हीगेल राज्य को ईश्वर की एक प्रतिछाया मानता है, जिसका लक्ष्य मनुष्य का नैतिक और भौतिक उत्थान है और नौकरशाही इस लक्ष्य की प्राप्ति में एक सहयोगी की भूमिका अदा करती है।

6.7 ऐन्थॉनी डाउन्स और नौकरशाही

ऐन्थॉनी डाउन्स ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'इनसाइड ब्योकरियॉकरेसी' (Inside Bureaucracy) में नौकरशाही का विश्लेषण किया हे। उसने यह स्वीकार किया है कि नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन चुका है, जबकि सच यह है कि नौकरशाही का उद्भव ब्योरोज (Bureause) से हुआ है जो आज सम्पूर्ण सभ्य समाज की प्रशासनिक व्यवस्था पर छाया हुआ है।

विवादों से बचने के लिए उसने नौकरशाही के स्थान पर आधिकारीतंत्र तथा नौकरशाहों के स्थान पर 'अधिकारी' (officials) कहना पसंद किया है।

डाउन्स के अनुसार 'ब्योरोज' नौकरशाही या अधिकारीतंत्र का पहला आधार है। उसने ब्योरोज का विशद् विश्लेषण किया है -

1. ब्योरोज का अर्थ है सरकारी कार्यालय, जिनका रूप भले ही विभागीय हो, सम्भागीय अथवा आयोगीय हो।
2. ब्योरोज अधिकारियों के समूह हैं जिनका प्रायः आकार बड़ा होता है, जो स्वतः अपना बड़ा आकार ग्रहण करते रहते हैं।
3. ब्योरोज संगठन का एक विशिष्ट रूप है जिनमें वे सारी विशेषताऐं होती है जिनसे एक संगठन पहचाना जाता है।
4. ब्योरोज की विशेषता उनकी सार्वभौमिकता है। समाज के प्रत्येक पहलू- आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक पहलुओं पर उनकी गहरी छाप है। वे इन क्षेत्रों में निति-निर्माण का कार्य करते हैं।

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज का आधार 'संगठन' है। लोक प्रशासन में संगठन मात्र एक ढांचा या संरचना नहीं है। संगठन एक स्पष्ट परिभाषित इकाई हे जो निश्चित सिद्धांतों पर टिका होता है। अनेक प्रशासनिक चिन्तकों ने इस पर विस्तार से लिखा है, जिनमे मार्च, साइमन, बलाओं और स्कॉट ने संगठन की औपचारिकता को मुख्य रूप से दर्शाया है। लेकिन डाउन्स वह पहला चिन्तक है, जिसने ब्योरोज और संगठन में गहरा सम्बंध स्थापित किया है। उसके अनुसार ब्योरोज का पूर्ण व्यवहार संगठन निश्चित करता है।

कर्मचारी किसी भी संगठन की आत्मा है। इस मानवीय पहलू के बिना ब्योरोज या संगठन पर चर्चा करना अर्थहीन है। ऐन्थानी कर्मचारीगण (Personell) को अधिकारी अथवा 'आफिशियल्ज' कहता है। इनमें और नौकरशाहों में कोई अन्तर नहीं है। इन अधिकारियों की अनेक विशेषताऐं हैः (1)ये अधिकारी सर्वोपरि 'आत्मनहित से प्रेरित होते हैं, यद्यपि जन हित भी इनका ध्येय होता है। (2) अधिकारी एवं कर्मचारी पूर्ण कालिक आधार पर काम करते है; (3) संगठन के भीतर ही उनकी पदोन्नति होती है; (4) वे अपने से उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन करते है (5) नौकरशाह एक बड़े आकार के ब्योरो का सदस्य होता है (6) नौकरशाह किस महारत से अपने कर्त्तव्य को अन्जाम देता है, यह पदोन्नति का मापदण्ड होता है, तथा (7) नौकरशाह का ध्येय, शक्ति प्राप्त करना, अपनी आय

बढ़ाना, अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना, अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना, सुख सुविधाऐं प्राप्त करना और अपने कार्य पर गर्व करना विशेष महत्व रखता है।

डाउन्स की नजर में नौकरशाही का चौथा आधार पर्यावरण है। यहाँ पर्यावरण का अर्थ है वह स्थिति जिस में अधिकारी काम करते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अधिकारी परिस्थितियों के अनुसार काम करते हैं। पर्यावरण अधिकारियों का वास्तविक संसार होता है। वे इस संसार को बदलते नहीं है, बल्कि उसके अनुसार स्वयं को बदलते हैं। उनको इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि राजनीतिक व्यवस्था का क्या रूप हैं- वे लोकतंत्र में, राजतंत्र में, कुलीन तंत्र में और अधिनायक तंत्र में स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेते हैं- समाजवाद में वे समाजवादी, पूंजीवाद में वे पूंजीवादी, और साम्यवाद में वे साम्यवादी नजर आते हैं। धर्म निरपेक्षता में वे धर्म निरपेक्ष, और धर्मपरकता में वे धर्मान्धी भी बन सकते हैं। लेकिन यह सब चोले आस्थायी होते हैं। स्थायी होता है उनका अपना निजि स्वार्थ जो ब्योरोज के बढ़ने और विकसित होने से पूरा होता है।

डाउन्स ब्योरोज की सफलता के लिए संगठन की पदसोपनियता पर जोर देता हैं। यही वही बिन्दु है जिस पर सब से अधिक बल मैक्स वेबर ने दिया था। पद सोपनीय संरचना से आदेश, आदेश के अनुपालन और उत्तरदायित्व के मध्य समन्वय और अनुशासन के माध्यम से सन्तुलन पैदा होता है। इस सिद्धांत से संवाद में आसानी होती है। सूचना एवं संचार में प्रवाह बना रहता है। और इस तरह ब्योरोज का ध्येय पूरा होता है।

संक्षेप में डाउन्स ने नौकरशाही का सब से महत्वपूर्ण आधार ब्योरोज को ही माना है। उसने ब्योराज के आचरण पर खुल कर लिखा हैं उसका मानना है कि ब्योरोज पैदा नहीं होते हैं, वे बनाऐ जाते हैं। उसके अनुसार उत्साही अथवा जोशीले नौकरशाह नित्य नये ब्योरोज को बनाने की सोचते रहते हैं, ताकि उनको पदोन्नति के अवसर मिलते रहें और युवा नौकरशाहों के लिए रास्ते खुलें।

6.8 पर्यावरणीय सिद्धांत और नौकरशाही

नौकरशाही के आधारों में पर्यावरणीय सिद्धांत एक मजबूत और निर्णयक आधार है। यह एक ऐसा आधार है जो भौतिक भी है और मनोविज्ञानिक भी। नौकरशाही के मानवीय पहलू को यदि प्रभावित करने वाला कोई तत्व है तो वह पर्यावरणीय तत्व ही है, जो मनुष्य के पूरे व्यवहार को तैय करता है।

नौकरशाही मानवों का एक ऐसा समूह है जो अत्याधिक जागरूक एवं संवेदशील होता है। कुछ तो वह स्वयं एक विशिष्ट चिन्तन का मालिक होता है और कुछ प्रशिक्षण के माध्यम से उसके व्यवहार को ढाला जाता है। संक्षेप में, नौकरशाही और उसका पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते है। अतः इस प्रक्रिया के गतिज को समझाना नौकरशाही की प्रशासनिक व्यवस्था को समझने के लिए जरूरी है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण जैसे शब्द को वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। जिस तरह पेड़-पौधे अपने पर्यावरण से प्रभावित होकर फलते-फूलते हैं, इसी तरह प्रशासन भी अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण से प्रभावित होकर अपनी दिशा और दशा तैय करता है।

प्रशासन पर वरचस्व नौकरशाही का होता है। अतः प्रशासन पर पर्यावरणी के प्रभाव का अर्थ है, नौकरशाही के आचरण को प्रभावित करना। इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन गॉस, राबर्ट ए0ढल और राबर्ट मर्टन ने किया, लेकिन इस दृष्टिकोण का सब से प्रभावशाली चिन्तक फ्रेड रिग्स् है। उसने प्रशासन का आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, तकनीकी, राजनीतिक और संचार तत्वों के साथ सम्बंध निश्चित करके यह सिद्ध किया कि प्रशासनिक व्यवस्था को, जिस पर नौकरशाही का नियंत्रण है, पर्यावरण प्रभावित करता है।

नौकरशाहों के विचार, उन की सोच और आचरण सब पर पर्यावरणीय परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ता है और बदले में वे अपने आचरण से समाज में भी बदलाव लाते हैं। इसलिए किसी प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही की भूमिका अहम होती है, क्योंकि वे नीति-निर्माण, निर्णय-निर्माण तथा विधि निर्माण को प्रभावित करते हैं।

6.9 नौकरशाही के आधार का व्यवहारिक पहलू

नौकरशाही की विशेषता, चरित्र, स्वरूप अथवा उसके आधारों के बारे में अब तक जो कुछ लिखा गया है वह नौकरशाही के सिद्धांतकारों अथवा विश्लेषण कर्ताओं के अनुमानों, परिकल्पनाओं और औपचारिक विश्वासों का परिणाम है, जो औपचारिकताओं से भरपूर है। नौकरशाहों या प्रशासनिक अधिकारियों का अपना एक अलग संसार है जिसमें रहकर वे काम करते हैं, जिसमें किसी बाहरी शक्ति का दखल नहीं है और यदि है भी तो वह उसे कूड़ेदान में फेंक देते हैं।

नौकरशाह इस परिकल्पना पर चलते हैं कि प्रशासन एक वैज्ञानिक परिस्थिति के एक मनोवैज्ञानिक स्थिति भी है, जासे प्रशासकों के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। एक दृष्टि से ये व्यवहार परिकतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित होते हैं। नौकरशाह मशीन नहीं है, न ही वे रोबो है वह हाड़-मास के मनुष्य हैं, जिनकी अपनी इच्छाऐं हैं, अभिलाषाऐं हैं इनकी अपनी कल्पनाऐं हैं, अपने लक्ष्य हैं, अपने हित हैं जिन से यह प्रभावित होते है। इनका व्यवहार परिस्थितियों का भी दास है। अतः यह औपचारिकताओं का कम अनौपचारिकताओं का सहारा अधिक लेते हैं। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो विलम्ब की बीमारी बढ़ेगी और भ्रष्टाचार के रूप में उभरेगी।

राजनीतिज्ञों के फैसले अटपटे, मनमाने और राजनीतिक लाभ या हानि से प्रेरित होते हैं। यदि उन फैसलों के अनुसार नौकरशाही चलती है तो उसका अन्जाम भयावाह भी हो सकता हैं और नौकरशाह जानते हैं कि यदि फैसलों का सकारात्मक स्वरूप सामने आया तो उसका श्रेय राजनीतिक निर्णय निर्माणता को मिलेगा, यदि दाँव उल्टा पड़ता है तो नौकरशाही को कोसा जायेगा। इसलिसे नौकरशाही नीति निर्माण से लेकर निर्णय-निर्माण तक फूंक-फूंक कर कदम बढ़ाती है, क्योंकि असफलता की गाज उस पर गिरे गी, उसका बुरी स्थिति में स्थानान्तरण होगा, पदोन्नति रोक दी जायेगी अथवा उसे अन्य दूसरे तरीकों से उत्पीड़ित किया जाऐगा। इस स्थिति से बचेन के लिए नौकरशाही औपचारिकता तथा अनौपचारिकता दोनो माध्यमों से काम लेकर, अत्याधिक उत्साही, निर्माण, बाद-दिमाग, सटकी, या फिर सजग, गतिशील, कर्मठ अथवा कल्पना वादी या आदर्शवादी राजनेता की मनीवृत्ति के अनुसार प्रशासनिक कार्यों का संचालन करता है। डेविड ईस्टन, लासवैल, विलियम राइकर इत्यादि राजनीति शास्त्रियां ने इसी व्यवहारपरकता पर जोर दिया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. ब्योरियॉक्रेसी का क्या अर्थ है?
   क. सरकार ख. संगठन
   ग. प्रशासन घ. अधिकारीतंत्र
2. मैक्स वेबर ने नौकरशाही के जिस प्रतिमान (मॉडल) का सिद्धांत प्रस्तुत किया उसका नाम क्या है?
   क. विधिक ख. तार्किक
   ग. ब्योरोज घ. विधिक तार्किक
3. नौकरशाही ''परजीवी'' है, यह कथन किसका है?
   क. हीगेल का ख. ऐजेल्ज का
   ग. मार्क्स का घ. बाकुमिन का
4. किसने नौकरशाही को आफीशियज या अधिकारी कहना उचित समझा?
   क. एन्थॉनी डाउन्स ने ख. डेविड इस्टन ने
   ग. मार्क्स ने घ. इनमें से कोई नहीं
5. नौकरशाही के आधारों में कौन सा आधार नहीं है?
   क. पदानुक्रम ख. नौकरशाह का राजनीति

ग. पर्यावरण घ. ब्योरोज

6.10 सारांश

नौकरशाही पर आधारों के दृष्टिकोण से किसी प्रशासनिक चिन्तकों कोई प्रथक रूप से सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया है। नौकरशाही पर मैक्स वेबर से लेकर एन्थॉनी डान्उस ने जो कुछ लिखा है उसके प्रकाश में नौकरशाही के अनेक आधार उभर कर सामने आते हैं।

- नौकरशाही एक संरचना भी है, एक सिद्धांत भी है और एक मानसिकता भी।
- व्योकरियोक्रेसी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डा0 गोरने ने किया। बाद में यह शब्द लोक सेवा के लिये प्रयोग होने लगा।
- मैक्स बैवर वह पहला विचारक है जिसने नौकरशाही पर विस्तृत चर्चा की और नौकरशाही का एक विशिष्ट सिद्धांत प्रतिपादित किया। उसने आदर्श नौकरशाही का एक चित्रण प्रस्तुत किया जिस पर उसका प्रसिद्ध प्रतिमान या मॉडल आधारित है। इस प्रतिमान को उसने विधिक-तार्किक का नाम दिया।
- मैक्स वेबर ने नौकरशाही की उसके हर पहलू से चर्चा की: नौकरशाही के अभिलक्षण नौकरशाही पर टिके उसके विश्वास वेबेरियन नौकरशाही का सार हैं।
- कार्ल मार्क्स एक ऐसा चिन्तक है, जिसने प्रत्येक संस्था को अपने वर्ग संघर्ष के नजरिये का परिणाम बताया है जो उत्पादन के मालिक और राजनीतिज्ञों के हितों की रक्षा करता हैं
- हीगेल के अनुसार नौकरशाही सामान्य हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं इस विचार की मार्क्स ने आलोचना की है और कहा कि नौकरशाही केवल पूंजीपातियों, भू स्वामियों तथा शासकों के हितों की रक्षा करती हैं
- नौकरशाही के अनेक आधार निश्चित किये जा सकते है जिनमें व्योरोज संगठन, निर्णय निर्माण की प्रक्रिया, कर्मचारी, पर्यावरण, ब्योरोज की पद सोपनीयता विशेष हैं।
- नौकरशाही औपचारिकताओं तथा अनौपचारिकताओं दोनो तत्वों पर टिकी हुई है। जहाँ तक उसके औपचारिक स्वरूप का सम्बन्ध है वह सैधांतिक है, लेकिन उसकी अनौपचारिकता उसके व्यवहारिक पहलू को दर्शाता है, जो यर्थात् पर टिकी हुई है।
- रिग्स ने पर्यावरणीय परिवेश को प्रशासन और नौकरशाही का आधार माना है। पर्यावरणीय परिवेश नौकरशाही के व्यवहार को निश्चित करता है।

6.11 शब्दावली

ब्योरोज- इसका अर्थ है सरकारी कार्यालय। यह प्रशासन की पहली कड़ी है जो प्रशासनिक तकाजों की पूर्ती करते हैं। ब्योरोज से ब्योरियाक्रेसी बना है। एन्थानी डाउन्स ने ब्योरोज से जुड़ी प्रशासनिक व्यवस्था को एक संस्था मानकर उसे नौकरशाही माना है। लेकिन क्योंकि नौकरशाही को बदनाम माना जाता है, इसलिये उसने नौकरशाहों को अधिकारी या officials कहा है।

निर्वैयक्तिक (Impersonal)- इसका अर्थ है कि सत्ता, शक्ति और अधिकार इनका सम्बंध पद सहेजों व्यक्ति ग्रहण करता है। एक नौकरशाह या अधिकारी जो कुछ है वह पद के कारण सत्ता, शक्ति तथा अधिकार का स्रोत है। कोई अन्य व्यक्ति इसका स्रोत नहीं है। इस तरह अधिकारी का स्वयं में अपना कोई अस्तित्व नहीं है। अस्तित्व है उसका पद जो कानूनी रूप में परिभाषित है। अधिकारी का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है और यदि है तो उसका सम्बन्ध उसके पद से नहीं है। व्यक्तिगत तौर पर वह किसी अन्य व्यक्ति का नौकर नहीं है, न ही वह किसी अन्य का

है।

पर्यावरण (Environment)- प्रशासनिक दृष्टि से पर्यावरण आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक परिवेश या वह स्थिति है, जिसमें एक ब्योरोज में लगे लोग काम करते हैं। यहाँ इसका अर्थ प्रकृति या वातावरण से नहीं है। प्रशासनिक पर्यावरण अधिकारियों या नौकरशाहों के व्यवहार को निश्चित और निर्धारित करता है।

6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ, **2.** घ **3.** ग, **4.** क, **5.** ख

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
2. अवस्थी अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धांत।
3. त्रिलोकनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
4. डा0 रविन्द्र प्रसाद: प्रशासनिक चिन्तक
5. अमरेश्वर अवस्थी: लोक प्रशासन तथा भारत में लोक प्रशासन

6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Awasthi Awasthi: Bureaucracy and Development.
2. Albrow Martin : Bureaucracy Lawdor.
3. Blou Peter : Bureaucracy in Modern Society.
4. Downs Anthony: Inside Bureaucracy.

6.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. वेबर का विधिक तार्किक नौकरशाही का सिद्धांत क्या है?
2. मार्क्स नौकरशाही को वर्ग-संघर्ष का परिणाम मानता था, क्यों?
3. नौकरशाही के कितने आधार हैं? समझाइये।
4. पर्यावरणीय सिद्धांत क्या है? वह किस तरह नौकरशाही को प्रभावित करता है।

इकाई- 7 लोक सेवाओं का वर्गीकरण

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 लोक सेवा में वर्गीकरण का अर्थ
7.3 वर्गीकरण के सिद्धान्त
7.4 पद वर्गीकरण कर उपयोगिता
7.5 वर्गीकरण की शर्तें और नकारात्मक पहलू
7.6 भारत में पद वर्गीकरण: ब्रिटिश संदर्भ
7.7 लोक-सेवा वर्गीकरण: भारतीय संदर्भ
7.8 पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन: ग्रेट-ब्रिटेन-फ्रांस
7.9 पद वर्गीकरण का मूल्यांकन
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.15 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

लोक सेवा आधुनिक प्रशासन का आधार है। लोक सेवा को तार्किक और वैज्ञानिक बनाने का समय-समय पर प्रयास होता है। पद वर्गीकरण इन्हीं प्रयासों का एक नतीजा है। प्रशासनिक व्यवस्था में 'पद' का बहुत महत्व है। सारी शक्तियाँ, अधिकार, उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य पद से सम्बन्धित हैं। जो व्यक्ति पद को ग्रहण करता है, उसको उस उत्तरदायित्व और कर्तव्य को निभाना होता है, जो पद में विद्यमान है। पदासीन व्यक्ति पद छोड़ सकता है, और वह महत्वहीन बन जाता है, लेकिन पद बना रहता हे। उसका महत्व कम नहीं होता हैं। प्रशासन को अधिक तार्किक बनाने के लिये, तथा पदों में भिन्नता लाकर पदों की पहचान बनाए रखने के लिए पद वर्गीकरण की व्यवस्था की गई है। आज यह व्यवस्था सभी विकसित और विकासशील देशों की प्रशासनिक पहचान है। इस इकाई में पद वगीकरण के अर्थ, उसकी, विशेषता, उपयोगिता तथा उसके नकारात्मक पहलुओं की विवेचना की गई है। भारत, ब्रिटेन तथा फ्रांस में वर्गीकरण के व्यवहारिक पहलुओं पर भी नजर डाली गई है।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक सेवा की प्रशासन व्यवस्था में पद वर्गीकरण का अर्थ, महत्व एवं उपयोगिता को समझ सकेंगे।
- पद वर्गीकरण के सिद्धान्तों, शर्तों और उसकी सकारात्मक भूमिका की जानकारी ले सकेंगे।
- भारत लोक सेवाओं के क्षेत्र में पद वर्गीकरण की क्या स्थिति है, यह जान पायेंगे।

- भारत, ब्रिटेन तथा फ्रांस के पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन संक्षेप में कर सकेंगे।
- पद वर्गीकरण के नकारात्मक पहलुओं को भी समझ सकेंगे।

7.2 लोक सेवा में वर्गीकरण का अर्थ

भारत में लोक सेवाओं के विकास के साथ अनेक बाधायें भी बनी रहती हैं। उन्हीं में से एक वर्गीकरण की समस्या है। 1992 तक भारत में तीन अखिल भारतीय सेवायें, 51 केन्द्रीय सेवा ग्रुप 'ए' तथा अनेक राज्य स्तरीय सेवाएं थीं।

भारतीय प्रशासनिक संरचना में प्रशासनिक अधिकारियों की एक निश्चित पदसोपनीयता के अनुसार परिभाषित स्थिति है। इन अधिकारियों के अलग-अलग प्रकार के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व होते हैं। किसी भी पद का आकार व्यक्ति न होकर कर्तव्य व उत्तरदायित्व होता है। व्यक्ति पद रिक्त कर सकता है, तब वह व्यक्ति शून्य हो जाता है, लेकिन पद का महत्व बना रहता है। पद ही किसी को जिलाधीश, कमिश्नर, अधीक्षक या लिपिक बनाता है। रिक्त पद अपनी महत्ता नहीं खोता है, रिक्त व्यक्ति महत्वहीन हो जाता है।

जिन लोक सेवाओं के एक समान उत्तरदायित्व और कर्तव्य होते हैं, उन्हें एक वर्ग या श्रेणी में रखा जाता है। दूसरी प्रकृति के पदों पर आसीन सेवियों को यदि उनमें समानता है तो उनके लिये दूसरी श्रेणी होती है। यहाँ भी मापदण्ड उत्तरदायित्व और कर्तव्य होते हैं। अतः अनिवार्य है कि प्रशासनिक कार्यों की विभिन्न के आधार पर सेवाओं को भी श्रेणीबद्ध किया जाये। इसी विभिन्नता को स्पष्ट रूप से पहचानने के लिये सेवाओं का वर्गीकरण अनिवार्य हो जाता है। यही लोक सेवाओं का वर्गीकरण है।

वर्गीकरण की परिभाषा: लगभग सभी विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं को वर्गीकृत किया गया है। प्रशासन के इस बिन्दु का इतना अधिक महत्व है कि अनेक प्रशासनिक चिन्तकों ने शब्द 'वर्गीकरण' की व्याख्या करने तथा उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए डिमांक तथा डिमांक के अनुसार लोक प्रशासन में ''वर्गीकरण का अर्थ है, तुलनात्मक कठिनाइयों एवं उत्तरदायित्वों के अनुसार पदसोपनीयता के आधार पर पदों को छांटना और श्रेणीबद्ध करना।'' दूसरी ओर पिफ्नर ने लिखा ''वर्गीकरण से हमारा तात्पर्य यह है कि समान कार्य तथा समान उत्तरदायित्व वाले पद एक ही श्रेणी में रखें जायें, चाहे किसी विभाग या सेवा से जुड़े हुये हों।'' प्रो0 व्हाइट के अनुसार सेवा की कार्मिक आवश्यकता जिस संरचना पर टिकी होती है, वह पदवर्गीकरण की योजना कही जा सकती है। जब लोक सेवाओं में उत्तरदायित्वों और कार्यों का तार्किक विश्लेषण किया जाता है, तब जो निष्कर्ष निकलकर आता है, उसे वर्गीकरण कहा जाता है। व्हाइट के अनुसार वर्गीकरण के माध्यम से बहुत गुंथे हुए पद स्पष्ट हो जाते हैं। लोक सेवा बड़ी विषम होती है, उसकी जटिलता को सरलता में बदलना वर्गीकरण का कम है। इससे क्रमिक स्थितियाँ निर्धारित होती हैं, जिसके द्वारा एक नया कार्मिक अगल सोपानों पर आगे बढ़ता है।

पदों की विशेषता में पदों का सम्बन्ध उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों से है। इसमें योग्यताओं का भी समावेश है। वर्गीकरण सदा पदों का होता है और पद सदा विद्यमान रहता है, भले ही पद रिक्त रहे। वर्गीकरण व्यक्ति के महत्व को नहीं दर्शाता है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन सा व्यक्ति किसी पद पर कार्यरत है। वर्गीकरण में यह बात भी सारहीन होती है कि पदासीन व्यक्ति की योग्यता क्या है, और उसको क्या वेतन मिल रहा है। वेतन का अन्तर श्रेणी का अन्तर नहीं होता है।

आज प्रशासनिक दृष्टि से विकसित लेकिन विषम समाज में वर्गीकरण का महत्व बहुत बढ़ गया है। लोक सेवकों की एक लम्बी फौज है, इसलिए अनिवार्य है कि उन्हें श्रेणीबद्ध करके पंक्तिबद्ध किया जाए ताकि लोक सेवियों को पहचानने में सुविधा हो। लाखों कर्मचारियों के बारे में अलग-अलग विचार करना संभव नहीं है। प्रो0 व्हाइट का इस सम्बन्ध में कहना है ''नियुक्ति, वेतन का प्रश्न, पदोन्नति की पंक्ति, स्थानान्तरण की आवश्यकताओं तथा

प्रतिदिन के विषय को तुरन्त एवं सावधानी से सुलझाने के लिये यह आवश्यक है कि पदों को वर्गों में समूहीकृत कर दिया जाये।''

7.3 वर्गीकरण के सिद्धान्त

वर्गीकरण लोक सेवाओं का महत्वपूर्ण पहलू है। यह कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर किया जाता है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. **सेवा के आधार पर-** इसके अन्तर्गत विभिन्न लोक सेवाओं के आधार पर तरह-तरह के वर्गों का निर्माण किया जाता है; जैसे भारतीय विदेश सेवा, भारतीय वन सेवा, भारतीय पुलिस सेवा आदि।
2. **किसी पद या विषय या कर्मक्षेत्र-** इस सिद्धान्त के अनुसार पदों को कार्यों के क्षेत्र से जोड़ा जाता है अथवा उस विषय को ध्यान में रखा जाता है, जिसका सम्बन्ध पद से होता है। इन दो बातों के आधार पर (कार्यक्षेत्र या विषय) पद वर्गीकरण किया जाता है। जैसे- शिक्षा, राजस्व, स्वास्थ्य, समाज कल्याण इत्यादि।
3. **नियंत्रण एवं निरीक्षण का मापदण्ड-** इस सिद्धान्त का सम्बन्ध संगठन की पदसोपनीय व्यवस्था से है। जिन पदों का ऊपर से अधिक नियंत्रण और निरीक्षण हो, उनको निम्न स्तर का पद माना जाता है, लेकिन निरीक्षण की यदि यह मात्रा कम से कम हो तब वे पद उच्च श्रेणी के माने जाते हैं।
4. **उत्तरदायित्व का सिद्धान्त-** जैसा कि लिखा जा चुका है, पद का सम्बन्ध कर्तव्य और उत्तरदायित्व से है और जिस अधिकारी को अधिक उत्तरदायित्व का पद दिया जाता है, वह अधिकारी उतना ही बड़ा होगा और उसके अधिकार और शक्तियाँ उतनी ही अधिक होंगी।
5. **कार्य की प्रकृति-** पद का सम्बन्ध कार्यों से होता है। प्रत्येक कार्य की एक प्रकृति होती है। कुछ कार्य बड़े विषम और जटिल होते हैं, लेकिन कुछ अपनी प्रकृति से सरल होते हैं। सरल कार्य का पद छोटा माना जाता है, और जटिल कार्य का पद बड़ा माना जाता है। अतः जटिल पद पर आसीन अधिकारी बड़ा माना जाता है और सरल पद का कर्मचारी छोटा माना जाता है।
6. **योग्यता के आधार पर-** अनेक ऐसे पद हैं जिनके लिये ऊँची योग्यता, शिक्षा और अनुभव निर्धारित है, ऐसे पद बड़े होंगे और उन पर पदासीन अधिकारी भी ऊँचे माने जायेंगे। लेकिन सामान्य योग्यताओं वाले पद नीचे माने जायेंगे।

उक्त इन छः सिद्धान्तों के आधार पर ही भारत में लोक सेवाओं के पदों को वर्गीकृत किया गया है।

7.4 पद वर्गीकरण की उपयोगिता

वास्तविकता तो यही है कि किसी देश का शासन पूरी तरह लोक प्रशासन पर टिका होता है। इस तथ्य को सब से पहले वुडरो विल्सन ने अपने प्रसिद्ध प्रबन्ध 'दि स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में स्वीकार किया था। विल्सन प्रशासन को वैज्ञानिक बनाना चाहता था। उसका यह निबन्ध ही लोक प्रशासन के शास्त्र का आरंभ माना जाता है। मैक्स वेबर दूसरा चिन्तक है, जो नौकरशाही को लोक प्रशासन की आत्मा मानता है। उसने नौकरशाही को तार्किकता की नजर से देखा और उसे एक ओर कानून से जोड़ा तो दूसरी ओर तार्किकता से।

भारत में पद वगीकरण का विचार समान कार्य के लिये समान वेतन के सिद्धान्त के साथ पनपा। वर्गीकरण सामान्यतः मनमाने व्यवहार पर एक प्रहार है। इसमें न्याय की भावना है। यह सब को लाभ पहुँचाता है। लोक सेवा में ये एक मनोवैज्ञानिक उपचार है। टकराव की संभावना को दूर करता है। मनमानी से भ्रम पैदा होता है, जो प्रशासन के लिये घातक है। वर्गीकरण आर्थिक नियंत्रण के लिये जरूरी है। इस पद्धति के निम्नलिखित उपयोगिता है-

1. **भर्ती कर सरलीकरण-** विभिन्न विभागों में कितनी भर्ती होनी है, वर्गीकरण से यह बात सरलता से जानी जा सकती है। भर्ती संस्थान विभाग की इस मांग के अनुसार भर्ती के लिये अनिवार्य कदम उठाता है।
2. **प्रशासनिक स्पष्टता-** वर्गीकरण से प्रशासन क्रमबद्धता और व्यवस्था के साथ चलता है। इस सिद्धान्त से उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्यों को समझने में आसानी रहती है तथा व्यवस्था और अनुशासन बना रहता है।
3. **पदोन्नति में सरलीकरण-** वर्गीकरण से श्रेणियों की क्रमिकता का पता रहता है। इस तरह यह जानना आसान होता है कि किस वर्ग के किस कर्मचारी को किस श्रेणी पर पदोन्नत करना है। अक्सर पदोन्नति स्वतः नहीं होती, योग्यता और काम के प्रति निष्ठा अपनी भूमिका अदा करती है। यह सिद्धान्त व्यक्ति को पदोन्नति के लिये चुस्त दुरूस्त रखता है।
4. **बजट बनाने में सुविधा-** विभागों को यह मालूम होता है कि किसी सम्भाग में कितने कर्मचारी हैं और उनका पद एवं वेतन क्या है। वर्गीकरण के आधार पर वार्षिक बजट का अनुमान लगाना सरल हो जाता है।
5. **लोक सेवियों में सहयोग एवं समन्वय-** वर्गीकरण से प्रत्येक वर्ग के कर्मियों में यह एहसास पैदा होता है कि वे प्रशासनिक सेवाओं के संदर्भ में एक ही परिवार के सदस्य हैं। उनके हित समान हैं और वे अकेले नहीं हैं।
6. **कर्तव्यों तथा दायित्वों का स्पष्ट विभाजन-** वर्गीकरण से लोक सेवाओं के प्रत्येक पद के कर्तव्यों एवं दायित्वों को निश्चित करने में सुविधा होती है और कार्य-सम्पन्नता के मापदण्ड तय किये जा सकते हैं।

उक्त बिन्दुओं से यह सिद्ध होता है कि किसी भी प्रकार की शासन प्रणाली में प्रशासन का कार्य बिना वर्गीकरण के संचालित नहीं किया जा सकता। फाइनर के अनुसार ''सभी देशों का अनुभव बताता है कि प्रशासनिक वर्गीकरण का क्या महत्व है। बिना वर्गों या श्रेणियों के न तो तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है और न ही पदों और पदासीन अधिकारियों का मूल्यांकन किया जा सकता है।''

7.5 वर्गीकरण की शर्तें और नकारात्मक पहलू

1. **लोक सेवाओं में वर्गीकरण-** लोक सेवाओं में वर्गीकरण एक पेंचीदा विषय है। थोड़ी सी असावधानी पूरी प्रशासनिक संरचना को बिगाड़ सकती है। अतः सब से पहले वर्गीकरण की मांगों को समझना होगा। वर्गीकरण करते समय जिन बातों को ध्यान में रखता होगा, वे इस प्रकार हैं-
    - वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए। उसमें किसी प्रकार का उलझाव न हो। गुंथा हुआ वर्गीकरण भ्रम पैदा कर सकता है।
    - प्रत्येक श्रेणी या वर्ग की स्पष्ट रूप से अलग-अलग व्याख्या होनी चाहिये।
    - पदोन्नति एक बड़ा मनोवैज्ञानिक विषय है। पदोन्नति के नियमों को स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए।
    - कर्तव्यों एवं दायित्वों को श्रेणीबद्ध करना चाहिये। ऐसा विभाजन भ्रमित करने वाला न हो।
    - शैक्षणिक योग्यताओं, अनुभव और आयु का निर्धारण स्पष्ट नियमों के अनुसार तय होना चाहिये।
    - पदो, वर्गों और सेवाओं को अलग-अलग शीर्षकों में परिभाषित होने चाहिए।
2. **वर्गीकरण का नकारात्मक पहलू-** यद्यपि वर्गीकरण लोक सेवा की एक अनिवार्य शर्त है, लेकिन यह सिद्धान्त दोष मुक्त नहीं है। इसके अनेक गुण तथा विशेषताएं हैं, लेकिन इसकी निम्नलिखित हानियाँ भी हैं-

- प्रत्येक पद के कर्तव्यों एवं दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण और उनका मूल्यांकन संभव नहीं है। भारत जैसे देश के संदर्भ में यह आलोचना सत्य है। अप्रथक नौकरशाही में प्रथक या संगठित पद नहीं हो सकते।
- वर्गीकरण के कारण कर्मचारियों में यदि कुछ समय के लिए फेर बदल किया जाता है तो कर्मचारी उसका विरोध करते हैं। वे अपने पद और कर्तव्यों को कानूनी अधिकार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनमें 'लकीर के फकीर- वाली भावना आ जाती है।
- वर्गीकरण मनुष्य को एक मशीन या वस्तु बना देता है। इसमें न तो व्यक्ति के गुणों का ध्यान रखा जाता है और न उनकी भावनाओं का। इस तरह लोक सेवक हतोत्साहित रहते हैं और उनका मनोबल टूटता रहता है। यह स्थिति अच्छी प्रतिभा और बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों को निराश करती है। इस तरह प्रशासन में शिथिलता आती है और कार्यकुशलता का ह्रास होता है।
- विकासशील देशों में विकास की गति तेज होती है। इसी गति के अनुपात में लोक-सेवकों के दायित्वों में परिवर्तन लाना जरूरी होता है, जो एक जटिल काम है।

उक्त दोषों का यह अर्थ नहीं है कि वर्गीकरण अनावश्यक है। लगभग सभी प्रशासनिक विचारकों ने लोक प्रशासन में वर्गीकरण को अनिवार्य बताया है। विशेष रूप एल.डी. व्हाइट तो पद-वर्गीकरण को ''जीवनवृत्ति के रूप'' में देखते हैं।

3. **पद-वर्गीकरण-** पद-वर्गीकरण सेवी वर्ग प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन सभी देशों में पद-वर्गीकरण के आधार एक समान नहीं हैं। फ्रांस का उदाहरण दिया जा चुका है। अन्य देशों में दो प्रमुख पद वर्गीकरण है- (अ) स्थिति वर्गीकरण (Rank Classification), एवं (ब) दायित्व वर्गीकरण (Duties Classification), भारत, पाकिस्तान, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, मलेशिया आदि देशों में स्थिति वर्गीकरण प्रचलित है। अधिकारी का दर्जा या उसकी व्यक्तिगत स्थिति-स्थिति वर्गीकरण का आधार होता है। यहाँ पद सम्बन्धी दायित्व या कर्तव्य आधार नहीं होता है। कनाडा, अमरीका, फिलिपाइन्स, तायवान में दायित्व वर्गीकरण प्रचलित है। दायित्व वर्गीकरण के समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को अपनाया जाता है।

7.6 भारत में पद वर्गीकरण: ब्रिटिश संदर्भ

पद वर्गीकरण भी भारत को अंग्रेजों से विरासत में मिला है। प्राचीन या मुगल काल में पद-वर्गीकरण की कोई परम्परा नहीं थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में कर्मियों को दो भागों में विभाजित किया गया था-एक भाग था संविदाबद्ध (covenanted) लोक सेवकों का और दूसरा भाग था, असंविदाबद्ध (Uncovenanted) कर्मियों का। एचीसन आयोग (1886-87) की सिफारिशों के अनुसार लोक सेवकों को तीन वर्गों में बांटा गया- (क) इम्पीरियल सेवा, (ख) प्रान्तीय सेवा, तथा (ग) अधीनस्थ सेवा। इस वर्गीकरण की कमियों को देखते हुए इस्लिंग्टन आयोग (1912-15) ने त्रिवर्गीय वर्गीकरण को समाप्त कर दिया और लोक सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित कर दिया-उच्च वर्ग सेवा तथा निम्न वर्ग सेवा।

सन् 1926 में 'इम्पीरियल' शब्द के स्थान पर 'भारतीय' शब्द का प्रयोग आरंभ हुआ। साथ ही 'उच्च' तथा 'निम्न' के स्थान पर 'प्रथम श्रेणी' तथा 'द्वितीय श्रेणी' कहा जाने लगा। अब दो प्रकार के लोक सेवक थे- 'भारतीय' (Indian) वह लोक सेवक कहलाए गये जो भारत मन्त्री के द्वारा नियुक्त किए जाते थे और दूसरे 'केन्द्रीय' लोक सेवक, जो गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त होते थे। एक ओर विशेषता यह थी 'राजपत्रित'

(Gazetted) और 'अराजपत्रित' (non-gazetted) के आधार पर भी वर्गीकरण था। यह परम्परा आज भी भारत में चल रही है।

सन् 1930 के बाद भारत सरकार की सेवाओं का वर्गीकरण 'अखिल भारतीय' तथा 'केन्द्रीय' वर्गों में किया गया। अखिल भारतीय सेवा में दो सेवायें प्रमुख थीं- इण्डियन सिविल सर्विस (I.C.S.) तथा इण्डियन फॉरेन सर्विस (I.F.S.) केन्द्रीय सेवाओं को प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, अधीनस्थ सेवा और निम्न सेवा में विभक्त किया गया। प्रान्तों में भी वर्गीकरण का यही आधार रखा गया।

स्वतंत्रता के बाद यद्यपि वर्गीकरण के प्रचलित स्वरूप को नकारा नहीं गया, लेकिन लोक-सेवाओं की श्रेणियों में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। आज केन्द्रीय सरकार में उच्च सेवाओं की दो श्रेणियाँ हैं- अखिल भारतीय सेवायें, एवं केन्द्रीय लोक सेवायें। वर्तमान भारत में सेवाओं को पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है- अखिल भारतीय सेवायें; केन्द्रीय सेवाएं- इनमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी सेवायें शामिल हैं; राज्य सेवाएं, इनमें भी प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणियाँ आती हैं; केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं, यहाँ भी सेवाओं का चार श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है; तथा विशिष्ट सेवाएं, जिनमें तकनीकी ज्ञान या विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है।

7.7 लोक-सेवा वर्गीकरण: भारतीय संदर्भ

पिछले पन्नों में भारत में सेवाओं के वर्गीकरण के संक्षेप में समझाया गया। जिसके अनुसार अखिल भारतीय सेवायें; केन्द्रीय सेवाएं; राज्य सेवाएं; केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं तथा विशिष्ट सेवाओं का उल्लेख किया गया है। आगे हम विस्तार से इन सेवाओं को समझाने का प्रयास करेंगे-

1. **अखिल भारतीय सेवाएं-** अखिल भारतीय सेवायें संविधानिक मान्यता रखती हैं। संविधान में विशेष रूप से भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा का उल्लेख किया गया है। संविधान ने भारतीय संसद को यह भी अधिकार दिया हे कि वह कानून के दायरे में अन्य सेवाओं की भी स्थापना करे। इस अधिकार के अन्तर्गत भारतीय संसद ने 'भारत वन सेवा' की स्थापना की है।

   अखिल भारतीय सेवा प्रथम श्रेणी की सेवा है। इसके सदस्यों की भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन तथा अन्य शर्तों का निर्धारण केन्द्रीय सरकार करती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए भी केन्द्रीय सरकार को ही अधिकार हे।

   साधारणत: अखिल भारतीय सेवायें अपने-अपने कार्यकाल के अधिकतर समय में राज्य सरकार की सेवा में रहती हैं। वस्तुतः इनकी नियुक्ति विभिन्न राज्यों के काडरों अथवा संवर्गों पर होती हैं। जब केन्द्रीय सरकार को इन अधिकारियों की सेवा की आवश्यकता होती है तो वे राज्य सरकारों से इन्हें उधार लेती हैं। चौथे वेतन आयोग ने अखिल भारतीय सेवाओं को छह श्रेणियों में बाँटा था। यह हैं-

   - उच्चतम वेतनमान- स्थिर या फिक्स्ड-सचिव
   - उच्चतम वेतनमान- स्थिर या फिक्स्ड-अतिरिक्त सचिव
   - उच्चतम वेतनमान-संयुक्त सचिव
   - चयनित वेतनमान
   - वरिष्ठ वेतनमान
   - कनिष्ठ वेतनमान

प्रारम्भ से सभी लोक सेवक अधिकारी कनिष्ठ वेतनमान में ही नियुक्त किये जाते हैं। धीरे-धीरे उन्हें वरिष्ठ वेतनमान तथा उच्चतम वेतनमान दिया जाता है। लेकिन यह पदोन्नति नहीं कही जा सकती।

2. **केन्द्रीय सेवाएं-** जो अधिकारी भारत सरकार (केन्द्रीय सरकार) के विभिन्न विभागों में कार्य करते हैं, उनका सम्बन्ध केन्द्रीय सेवाओं से होता है। केन्द्रीय सेवायें दो श्रेणियों में विभक्त होती हैं-प्रथम श्रेणी की सेवायें तथा द्वितीय श्रेणी की सेवायें। केन्द्रीय सेवाओं की प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत लगभग 33 सेवायें आती हैं, जिनमें प्रमुख हैं- (1) भारतीय लोक-परीक्षण एवं लेखा से; (2) भारतीय विदेश सेवा; (3) भारतीय डाक सेवा; (4) भारतीय डाक-तार संचार सेवा; (5) केन्द्रीय इंजीनियरिंग सेवा; (6) केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा; (7) केन्द्रीय राजस्व सेवा; (8) भारतीय विदेश सेवा; (9) केन्द्रीय सूचना केन्द्र; तथा (10) भारतीय सांख्यिकी सेवा। अन्य 23 सेवायें भी महत्वपूण हैं। यह सेवायें प्रथम श्रेणी में आती हैं।
द्वितीय श्रेणी की केन्द्रीय लोक सेवायें 24 वर्गों में विभाजित हैं। इन में प्रमुख हैं- (1) केन्द्रीय सचिवालय सेवा; (2) केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा; (3) आय-कर सेवा; (4) भारतीय जलवायु सेवा; (5) केन्द्रयीय एक्साइज सेवा; (6) सीमा शुल्क सेवा; (7) भारतीय सर्वेक्षण सेवा; (8) केन्द्रीय यांत्रिक सेवा; (9) सामान्य केन्द्रीय सेवा; तथा (10) भारतीय भू-सर्वेक्षण।
3. **राज्य सेवाएं-** ऐसी लगभग 15 सेवायें हैं (चौथे वेतन आयोग के अनुसार) इनमें (1) राज्य प्रशासनिक सेवा; (2) राज्य पुलिस सेवा; (3) राज्य शिक्षा सेवा; (4) राज्य सचिवालय; (5) राज्य स्वास्थ्य सेवा; (6) राज्यकृषी सेवा; (7) राज्य श्रम सेवा; (8) राज्य वन सेवा; (9) राज्य उद्योग सेवा; तथा (10) राज्य सिंचाई सेवा प्रमुख हैं।
4. केन्द्रीय सचिवालयीय सेवाओं को अलग दर्जा दिया गया है। इनमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के अधिकारी व कर्मचारी आते हैं।
5. विशिष्ट सेवाओं में वे सेवायें हैं जिनमें तकनीकी ज्ञान या विशेष बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता होती है। तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की सेवायें (केन्द्रीय) अधीनस्थ सेवायें कही जाती हैं। यह विभागों के सामान्य कार्यों का संचालन करती हैं। उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन करना इनका उत्तरदायित्व है।

7.8 पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन: ग्रेट-ब्रिटेन-फ्रांस

लोक सेवाओं का विचार ही ब्रिटिश प्रशासन की देन है, क्योंकि यहाँ प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में लोक सेवाओं की व्यवस्था है। वर्तमान में ब्रिटिश लोक सेवाओं को छः वर्गों में विभक्त किया गया है। यह इस प्रकार हैं-

1. **प्रशासनिक वर्ग-** यह भारतीय प्रशासनिक सेवा के समान है और सम्पूर्ण ब्रिटिश लोक सेवा का आधार है। इसमें जो अधिकारी आते हैं, उनमें स्थाई सचिव से लेकर सहायक प्रधान प्रमुख हैं। अपने कार्यों और कर्तव्यों से यह वर्ग बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रशासनिक स्तर पर निर्णय-निर्माण, नीति-निर्धारण और विभागीय संचालन का उत्तरदायित्व इसी वर्ग पर है। यह अधिकारी कठिन प्रतियोगिता परीक्षा से गुजर कर चयनित होते हैं। 25 प्रतिशत पदों की भर्ती पदोन्नति द्वारा होती है।
2. **अधिशासी वर्ग-** इस वर्ग के लोक सेवकों का मुख्य कार्य दिन प्रतिदिन के सरकारी कामकाज का निस्तारण करना है। राजस्व संग्रह, क्षेत्रीय और स्थानीय कार्यालयों के प्रबन्ध आदि का दायित्व विशेष रूप से अधिशासी वर्ग पर ही होता है। इस वर्ग के अधिकारियों को कुछ प्रशासनिक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इस तरह प्रशासनिक कार्यों तथा दिन प्रतिदिन के कार्यों में अन्तर प्रायः बहुत कम होता है। समाज के आवश्यकताओं को देखते हुए सरकारी कार्य क्षेत्र का विस्तार हुआ है। काम-काज में जटिलता भी आई है और इस तरह प्रशासनिक वर्ग तथा अधिशासी वर्ग के कार्यों का अन्तर घटा है।
3. **विशिष्ट वर्ग-** इस वर्ग में व्यावसायिक, वैज्ञानिक और तकनीकी स्टाफ समाविष्ट होता है। इस वर्ग की बौद्धिक क्षमता एवं योग्यता सम्पन्न व्यक्ति जैसे वैरिस्टर, सॉलिस्टर, इन्जीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक,

लाइब्रेरियन, सहायक शिल्पी आदि आते हैं। यह वर्ग प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर चयनित न होकर मान्य योग्यता, विशिष्ट प्रशिक्षण और अनुभव के आधार पर साक्षातकरी के माध्यम से चुना जाता है।

4. **लिपिक वर्ग-** इस वर्ग में प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर 16-17 वर्ष के युवक-युवतियों को चुना जाता है। इनका काम है रिकॉर्ड रखना, नियमों के अनुसार पत्राजात, दावों आदि की जाँच पड़ताल करना। अधिकार वर्ग के आदेशानुसार दिन प्रतिदिन के कार्यों का निपटारा करना, तथा तथ्य एवं आँकड़े एकत्र करना इनका विशेष कार्य है।
5. **लेखक सहायक वर्ग-** इस वर्ग में सहायक लिपिक, टाइपिस्ट और कम्प्यूटर और डुप्लीकेट मशीनें चलाने वाले होते हैं।
6. **सन्देशवाहक एवं निम्न वर्ग-** इस वर्ग में संदेशवाहक, दफ्तरी, सफाई कर्मचारी आते हैं।

पद वर्गीकरण के संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से फ्रांस में लोक सेवाओं के पद वर्गीकरण का बहुत महत्व है। फ्रांस में लोक सेवा संरचना की चार इकाईयाँ है-श्रेणियाँ, कोप्स, सेवायें तथा ग्रेड्स।

श्रेणियाँ प्रशासन में मुख्य रूप से व्यक्ति के शैक्षणिक पृष्ठभूमि पर आधारित होती हैं तथा देश के प्रशासन में व्यापक भूमिका निभाती हैं।

कोर्प्स एक व्यापक नाम है। सभी लोक सेवक जिस सेवा के आजीवन सदस्य बनते हैं, वह सेवा एक कोर्प्स का अंग होती है। कोर्प्स एक फ्रेंच शब्द है जो वर्गों का पर्यायवाची हो सकता है। लेकिन कोर्प्स की तुलना में वर्गों का महत्व कम होता है। ऐसे वे तमाम समूह जिन में लोक सेवाओं के समान ग्रेड्स तथा समान नियमों और योग्यताओं के द्वारा प्रशासित होते हों, वे कोर्प्स की परिभाषा में आते हैं। प्रत्येक कोर्प्स एक सील बन्द इकाई के समान है। एक सेवा में लम्बरूप में विभिन्न कोर्प्स की एक श्रृंखला होती है। ग्रेड्स की इकाईयाँ हैं, जिन का अस्तित्व प्रत्येक कोर्प्स में होता है।

1946 के अधिनियम को फ्रांस की लोक सेवाओं के इतिहास में एक क्रान्तिकारी कदम माना जाता है। इस अधिनियम ने जिन चार प्रकार की सेवाओं का उल्लेख किया है, उनमें से दो व्यावसायिक वर्ग की थी। इनके प्रथम को असैनिक प्रशासक तथा दूसरे को प्रशासनिक सचिव कहा गया। इन दोनों सेवाओं के नीचे अधिकारियों के दो वर्ग हैं। इन दोनों वर्गों के कर्मचारी लिपिक वर्ग तथा संदेशवाहक वर्ग के होते हैं। फ्रांस की उच्चतम लोक सेवा का स्वरूप इस प्रकार हैं-

1. **असैनिक प्रशासक-** इस वर्ग की संरचना ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासनिक वर्ग के मॉडल को ध्यान में रखकर की गई है। इस वर्ग के सभी सदस्य एक जैसे अनुशासनात्मक नियमों के अधीन रहते हैं, तथा एक ही समूह एवं आजीवन सेवा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह एक ही कोर्प्स के सदस्य माने जाते हैं, भले ही इनका सम्बन्ध किसी भी विभाग से हो। इनकी सेवायें पाँच रैंक में विभाजित हैं- Administrators-adjoint, Administrative Class iii, Administrative Class ii, Administrative Class i and Class Exceptional. मार्सल डेबरे के अनुसार प्रशासनिक मामलों के व्यवहारों को सरकार की सामान्य नीति के अनुरूप ढालना, कानूनों और नियमों का प्रारूप तैयार करना, उनके कार्यान्वयन के लिए निर्देश तैयार करना तथा लोक सेवाओं के मध्य समन्वय पैदा करना, असैनिक प्रशासकों का उत्तरदायित्व है।

   प्रशासनिक श्रेणी के अधिकारियों का काम प्रशासनिक आधार पर लिये गये निर्णयों तथा निर्मित की गई नीतियों के अनुसार कार्यों का कार्यान्वयन करना होता है। इस वर्ग के कर्मचारी अत्यन्त शिक्षित, योग्य, प्रशिक्षित और गतिशील होते हैं।
2. **निष्पादक सचिव-** यह फ्रांस की उच्च सेवाकों की द्वितीय श्रेणी है। यह ग्रेट ब्रिटेन के निष्पादक वर्ग से समानता रखती है। इस श्रेणी में सभी उच्चतर गैर लिपिकीय कार्य, जैसे अनुवादक कार्य, लेखा कार्य शामिल कर लिये जाते हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा इस श्रेणी के सदस्यों की भर्ती की जाती है।

3. **एकीकृत प्रशासनिक सेवा-** फ्रांस में स्थायी सचिव के रूप में एक ही कार्यालय का विकास नहीं हो पाया है। सभी मंत्रालयों में अनेक निदेशालय हैं तथा प्रत्येक की अध्यक्षता एक महानिदेशक करता है। इस पद पर आने वाला अधिकारी ग्राण्ड कोर्प्स का सदस्य होता है।
4. **कोर्प्स का अस्तित्व-** फ्रांस में लोक सेवाओं के पुनर्गठन के बाद भी कोर्प्स का महत्व कम नहीं हुआ है। यद्यपि कोर्प्स की व्यवस्था ने लोक सेवा के विकास के प्रवाह को रोका है, लेकिन फ्रेंच राजनीतिज्ञों तथा प्रशासनिक चिन्तकों ने कोर्प्स को एक बहुमूल्य विरासत के रूप में संजोये रखा है। इस फैसले के कुछ बुरे परिणाम भी निकले हैं-लोक सेवा के बहाव में रूकावट आयी है। उच्च स्तर पर प्रशासनिक एकरूपता नहीं आ सकी। सभी कोप्स पर अधिकारियों का अधिकार है, परिणाम स्वरूप पदोन्नति व्यवस्था महत्वपहीन हो गई है। कुल मिलाकर कोर्प्स व्यवस्था पूरी तरह फ्रांस लोकसेवा पर हावी है।

7.9 पद वर्गीकरण का मूल्यांकन

1. समालोचकों द्वारा यद्यपि पद वर्गीकरण को लोक सेवा के विकास के लिए अनिवार्य बताया है, लेकिन समय-समय पर इस सिद्धान्त की अलोचना भी की है। जिन बिन्दुओं पर पद वर्गीकरण की ओलाचना हुई है, वे इस प्रकार हैं-
    - आलोचकों की मान्यता यह है कि पद वर्गीकरण का आधार वैज्ञानिक नहीं है।
    - पद वर्गीकरण में ग्रेडों की संख्या बहुत अधिक है। भारत में ऐसे ग्रेडों की संख्या 36 है।
    - पद वर्गीकरण के कारण एक सेवा में कार्य करने वाले कर्मचारियों को दूसरी सेवा में कार्य करने का कोई अधिकार नहीं होता है, यद्यपि सेवा के नियम सबके लिये एक होते हैं, जिनको 'सिविल सर्विस नियम' कहा जाता है।
    - ऐपल्बी ने भारतीय वर्गीकरण व्यवस्था के छः दोष बताऐ हैं' कठोरता; बौद्धिक अनुप्रेरणा; बड़ी सीमा तक श्रंखलाग्रस्त; अन्तर- विभागीय ईर्ष्या; सामान्य लोगों से प्रभावित; तथा विकास के प्रवाह में बाधित।
2. भारतीय परिवेश में पद वर्गीकरण- इस प्रश्न पर कि क्या भारतीय परिवेश में लोक सेवा के क्षेत्र में पद वर्गीकरण लागू किया जाना चाहिये? वास्तव में यह प्रश्न आज भारत में विवादास्पद बना हुआ है। विशिष्ट सेवाओं द्वारा इसका समर्थन किया जाता है, लेकिन सामान्य सेवाओं के क्षेत्र में इसका विरोध होता रहा है। यहाँ यह याद रखना होगा कि प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-70) द्वारा पद वर्गीकरण पद्धति का समर्थन किया गया था।

वास्तविकता यह है कि पद वर्गीकरण की जड़े पूरी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में बहुत गहरी हैं। उनको एक झटके से उखाड़ फेंकना असंभव है। और यदि यह संभव हो भी जाए तब उसकी वैकल्पिक व्यवस्था क्या होगी, यह किसी को मालूम नहीं है। समालोचकों का मानना है कि इस सम्बन्ध में कोई निश्चित निर्णय लेने के पूर्व पद-वर्गीकरण के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्ष का पूर्ण परीक्षण अनिवार्य है।

अभ्यास प्रश्न-

1. पद वर्गीकरण में 'कोर्प्स' शब्द का प्रयोग किस देश ने किया?

    क. अमरीका ख. फ्रांस

    ग. ब्रिटेन घ. रूस
2. वर्गीकरण में पदों का सम्बन्ध किससे है?

    क. शक्ति से ख. प्रभाव से

ग. उत्तरदायित्व से घ. अधिकार से

3. किसके शासनकाल में संविदाबद्ध (Convenant) तथा असंविदाबद्ध (Unconvenant) की परम्परा पड़ी?

4. क. ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में ख. ब्रिटिश शासलकाल में
ग. मुगल शासनकाल में घ.1947 के बाद भारतीय शासन के आरम्भिक काल में

5. भारत में पर वर्गीकरण का आधार क्या है?
क. सेवा ख. वेतन
ग. ग्रेड घ. अधिकार

6. पद वर्गीकरण के आधार पर भारत में कितने प्रकार की भारतीय लोक सेवायें हैं?
क. पाँच प्रकार की ख. छः प्रकार की
ग. चार प्रकार की घ. दो प्रकार की

7.10 सारांश

लोक प्रशासन में पद वर्गीकरण सभी विकसित और विकासशील देशों की विशेषता है। आज यह लोग सेवाओं का एक अभिन्न अंग है। संसार में पद वर्गीकरण की विशेषताएं, उसके सिद्धांत और उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू इस प्रकार हैं-

- लोक सेवा की भाषा में पद वर्गीकरण का अर्थ है ''तुलनात्मक कठिनाइयों एवं उत्तरदायित्वों के अनुसार पद सोपनियता के आधार पर पदों को छांटना और श्रेणीबद्ध करना।''
- वर्गीकरण का तात्पर्य यह है कि समान कार्य तथा समान उत्तरदायित्व वाले पद एक ही श्रेणी मं◌ें रखे जाएें, चाहे वे किसी विभाग अथवा सेवा से जुड़े हों।
- पदों का संबंध उत्तरदायितवों और कर्तव्यों से है। इसमें योग्यता का भी समावेश रहता है। वर्गीकरण सदा पदों का होता है, और पद सदा विधमान रहता है, भले ही पद रिक्त ही रहें।
- आज के विषम समाज में पद वर्गीकरण का महत्व बहुत बढ़ गया है। लाखों लोक सेविओं को श्रेणीबद्ध करके उन्हें पहचानने में सुविधा होती है। लोक सेवकों की सेवा शर्तों को सरलता से सुलझाने में वर्गीकरण की एक अहम भूमिका रहती है।
- वर्गीकरण कुछ निश्चित सिद्धातों पर किया जाता है। इनमें सेवा, विषय या कर्म क्षेत्र, नियंत्रण एवं निरीक्षण का मापदण्ड, कार्य की प्रकृति, योग्यता इत्यादि मुख्य हैं।
- पद वर्गीकरण की उपयोगिता को लगभग सभी देशों तथा प्रशासनिक विचारको नें स्वीकार किया है। मैक्स बेबर ने लोक सेवाओं को ''तार्किकता'' से जोड़ कर एक तरह लोक सेवा के औचित्य को स्वीकार किया।
- पद वर्गीकरण से भर्ती का सरलीकरण, प्रशासनिक स्पष्टता, पदोन्नति में सुविधा, बजट बनाने में आसानी, लोक सेवा में सहयोग एवं समन्वय तथा कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट विभाजन होता है।
- वर्गीकरण की सफलता के लिए कुछ शर्तों को स्वीकार करना पड़ता है, जैसे वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक श्रेणी की अलग-अलग व्याख्या होनी चाहिए। पदोन्नति निश्चित एवं स्पष्ट होने चाहिए। भ्रमित करने वाले न हों।

- पद वर्गीकरण के अनेक नकारात्मक पहलू हैं, जैसे कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का स्पष्ट निर्धारण करना संभव नहीं है। यह सिद्धान्त कर्मचारियों में असंतोष पैदा करता है। यह व्यवस्था मनुष्य को एक मशीन बना देती है, जिससे मनोवैज्ञानिक तनाव पैदा होता है। पद वर्गीकरण विकास की गति के साथ गतिशील नहीं है, जिससे विकास में एक बांधा आती है।
- भारत को पद वर्गीकरण की व्यवस्था विरासत में मिली है। पहले 'कंवेनेन्टेड' तथा 'अनकवेनेन्टेड' की परमपरा को ग्रहण किया गया। तत्पश्चात 'राजपत्रित' और 'अराजपत्रित' वर्ग सामने आये जो आज भी लोक सेवा में विद्यमान हैं। 1930 के बाद भारतीय लोक सेवाओं को 'अखिल भारतीय' तथा 'केन्द्रीय' वर्गों में विभक्त किया गया।
- ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ऐसे दो देश हैं, जहाँ से लोक सेवा में पद वर्गीकरण की परम्परा शुरू हुई। ब्रिटेन में प्रशासनिक लोक सेवाओं को श्रेणियों, सेवाओं, ग्रेड्स तथा कोर्प्स में विभाजित किया गया है। इनमें कोर्प्स सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है।
- पद वर्गीकरण के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। यह सिद्धान्त वैज्ञानिक नहीं है। वर्गीकरण में ग्रेडों से संख्या बहुत होती है, जिससे भ्रम की स्थिति पैदा होती है। लोक सेवा के अधिकारियों को दूसरी सेवा में जाने का अवसर नहीं मिलता, जिनसे उनका प्रशासनिक जीवन निरीह हो जाता है।
- नकारात्मक पहलू होने के बाद भी पद वर्गीकरण का महत्व कम नहीं आंका जा सकता। अभी तक इस सिद्धान्त का विकल्प नहीं खोजा जा सका है।

7.11 शब्दावली

कोर्प्स (Copers)- लोक प्रशासन के क्षेत्र में यह एक फ्रेंच शब्द है, जिसका अर्थ है विभागों का समूह। फ्रेंच लोक सेवा में पद वर्गीकरण की दृष्टि से कोर्प्स सब से बड़ी इकाई है और उच्च लोक सेवक किसी न किसी कोर्प्स से जुड़े रहते हैं।

स्थिति वर्गीकरण (Rank Classification)- अधिकारी का दर्जा या उसकी स्थिति वर्गीकरण का आधार होता है।

दायित्व वर्गीकरण (Duty Classification)- इसका अर्थ है कि लोक सेवा में पद का सम्बन्ध व्यक्ति से न होकर दायित्वों से होता है। दायित्वों की भिन्नता पदों की विभिन्नों को दर्शाती है।

7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख, **2.** ग, **3.** क, **4.** क, **5.** ख

7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुब्रह्मण्यम, बी: भारतीय प्रशासन, 1974
2. अवस्थी-अवस्थी: भारतीय प्रशासन, 1997
3. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
4. डिमॉक, एम.ई.: मॉर्डन पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन।
5. फड़िया, बाबू लाल: भारत में लोक प्रशासन, 1993

7.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Ferrel Heady : Public Administration : A Comparative Perspective.

White, L.D. : Introduction to the Study of Public Administration.
F. Ridley and J. Blondel : Public Administration in France.

7.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. पद वर्गीकरण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए पद वर्गीकरण के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
2. पद वर्गीकरण के क्या लाभ हैं? तथा भारत में लोक सेवा में पद वर्गीकरण की स्थिति क्या है?
3. ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस में पद वर्गीकरण की में तुलना कीजिये।

इकाई- 8 भारत में लोक सेवा का विकास

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 भारत में लोक सेवाओं के विकास का इतिहास: प्राचीन काल
8.2.1 मुगल शासन काल की प्रशासनिक व्यवस्था
8.2.2 ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रशासनिक काल
8.3 प्रशासनिक सुधारों का दौर
8.4 सन् 1935 से लेकर सन् 1947 तक प्रशासनिक विकास
8.5 प्रशासनिक संस्थाओं का विकास
8.6 लोक सेवा का विकास: ब्रिटिश संदर्भ
8.7 लोक सेवा का विकास: स्वतंत्र भारत में
8.8 स्वतंत्र भारत में लोक सेवाएं: स्वरूप और विशेषताएं
8.9 लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्ध
8.10 लोक सेवा विकास की वर्तमान स्थिति
8.11 सारांश
8.12 शब्दावली
8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.16 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

भारत को लोक सेवाएं ब्रिटिश शासन से विरासत में मिली हैं। वैसे प्राचीन काल में भी विशेष रूप से कौटिल्य के समय किसी न किसी रूप में लोक सेवाओं के दर्शन होते रहे हैं। इस्लामी शासन काल अथवा मुगल शासन काल में भी लोक सेवाओं की परम्परा थी। मुगल काल के पतन के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर लोक सेवा की नींव डाली, लेकिन जब ब्रिटिश ताज के शासन का दौर आरंभ हुआ तब विधिवत् रूप से भारत में लोक सेवा का युग आरंभ हो गया। इसके बाद बड़ी तेजी के साथ लोक सेवाओं में सुधार होने लगे।

एचीसन आयोग (1886), इस्लिंग्टन आयोग (1912), माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1918), भारत सरकार अधिनियम (1919), ली आयोग (1923) भारत में लोक सेवा के सुधार और विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे। भारत में अनेक महत्वपूर्ण प्रशासनिक कदम उठाये गये, जिसमें लोक सेवा आयोग की स्थापना (1926) तथा भारत सरकार अधिनियम (1935) मील का पत्थर माने जाते हैं।

1935 से लेकर 1945 तक लोक सेवा पूरी तरह विकसित हो चुकी थी। लोक सेवाओं का भारतीयकरण हो गया था। आज भारत में अखिल भारतयी लोक सेवाओं का जो रूप है, वह 1935 के अधिनियम की देन है।

भारतीय लोक सेवाऐं सतत् विकास की ओर अग्रसर हैं और वे संवैधानिक मर्यादा को ध्यान में रखते हुये भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत कर रही है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में लोक सेवाओं के विकास के इतिहास से परिचित होंगे।
- मुगल शासन काल तथा ईस्ट इण्डिया काल के प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में जानकारी ले सकेंगे।
- प्रशासनिक सुधारों के दौर (1858) से लेकर 1947 तक की प्रशासनिक घटनाओं का अध्ययन कर सकेंगे,
- ब्रिटिश संदर्भ में आप भारत की लोक सेवाओं की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- स्वतंत्र भारत में लोक सेवा के विकास की क्या स्थिति है, इसको आप जान सकेंगे।
- लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्धों की भी जानकारी ले पायेंगे।

8.2 भारत में लोक सेवाओं के विकास का इतिहास: प्राचीन काल

लोक सेवा की अवधारणा भारत के लिए नई नहीं है। वह बिन्दु जहाँ से भारत का इतिहास से आरंभ होता है, वहीं से लोक सेवा की कहानी भी आरंभ होती है। 300 वर्ष ईसा पूर्व लिखे गये कौटिल्य के अर्थशास्त्र को सेवी वर्ग की महत्ता, विशेषता तथा व्यवहारिकता पर सर्वोत्तम एक प्राचीनतम ग्रन्थ (Treatise) माना जाता है। कौटिल्य व्यवहारिक राजनीति का पहला लेखक था, जिसने कोरे सिद्धान्त से सम्पन्न शासक या प्रशासक को राज्य के लिये घातक बताया था। वह पहला भारतीय चिन्तक था, जिसने कुलीन वर्ग (Elite Class) को लोक सेवा सौंपने की सलाह दी थी। कुलीन वर्ग के सदस्य जन्म से बुद्धिमान, बहादुर, ज्ञानी, शिक्षित, धनी तथा स्वाभी भक्त होते हैं। कौटिल्य का सुझाव था कि राजा को ऐसे योग्यता सम्पन्न लोगों को मंत्री और अधिकारी बनाना चाहिये। अर्थशास्त्र में सेवी वर्ग की सेवा की शर्तों का भी उल्लेख है।

8.2.1 मुगल शासन काल की प्रशासनिक व्यवस्था

प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था मध्य काल तक चलती रही। स्थानीय हिन्दु रजवाड़ों में महाकाव्यों तथा स्मृतियों की प्रशासनिक झलक मध्यकाल तक देखने को मिलती रही। लेकिन तभी भारत में मुगलों के आगमन के बाद प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था विलुप्त होने लगी। भारत में सेन्ट्रल ऐशिया, तुर्की, इरानी और अरब प्रशासनिक चिन्तन का दौर आरम्भ हो गया। मुगल काल में अनेक प्रशासनिक क्षेत्रों में लोक सेवाओं को संगठित किया गया। क्योंकि अब भारत छोटे राज्यों के दौर से निकलकर साम्राज्य की ओर अग्रसर था, तब उसी आकार की अनिवार्यताओं और मांगों के अनुसार प्रशासनिक व्यवस्था को रूप दिया गया। अब पहली बार शासक और शासितों के सम्बन्ध स्थापित हुए तथा दूसरी ओर मुगल बादशाहों ने स्थानीय रजवाड़ों को भी मान्यता दी जिसने एक तरह से संघीय राज्य व्यवस्था को जन्म दिया, इसलिये एकीकरण की दृष्टि से प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित हुई।

मुगल बादशाहों ने मुगल सूबेदारों तथा हिन्दु रजवाड़ों को अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक व्यवस्था संगठित करने की छूट दी जिसके परिणाम स्वरूप स्थानीय स्तर पर कई प्रकार की लोक सेवाऐं गठित की गयीं, तथा उनके कार्यों, शक्तियों एवं दायित्वों का निर्धारण किया गया। क्योंकि इस समय का भारतीय समाज कृषि प्रधान था, इसलिये अधिकतर लोक सेवाओं का सम्बन्ध जमींदारी, रय्यतदारी, लगान इत्यादि से अधिक था।

मुगलों की एक विशेषता यह थी कि उन्होंने भारतीय प्रशासनिक प्राचीन परम्पराओं का भी सम्मान करते हुये, अपनी व्यवस्थाओं में उनका समावेश किया। जिसका नतीजा यह निकला कि मुगल कालीन भारतीय प्रशासन

अरब-तुर्की परम्पराओं तथा प्राचीन भारतीय परम्पराओं की एक नई व्यवस्था बन गयी। तत्कालीन सैनिक और पुलिस अधिकारी 'अमीर' तथा राजकोष अधिकारी 'अमील' अरब परम्पराओं के प्रतीक थे। लेकिन उस समय की भू-राजस्व व्यवस्था भारत की प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप बनी रही।

8.2.2 ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रशासनिक काल

18वीं सदी में मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। शासन की बागडोर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ में आ गई। अब समय बदल रहा था। भारत औद्योगिक और वाणिज्यिक युग की ओर बढ़ने लगा था। कम्पनी ने भारत की प्राचीन और मुगलों की मध्यकालीन प्रशासनिक परम्पराओं को ध्वस्त करते हुये, एक नई इबारत लिखना आरंभ की। अपनी प्रकृति के अनुसार उसने लोक सेवा में 'योग्यता' को रौंद कर 'लूट-प्रथा' आरंभ कर दी। देश की सत्ता जिस गवर्नर जनरल के हाथ में आती थी वह प्रशासन के लिये अपने अधिकारी नियुक्त करता था। यह एक प्रकार से प्रशासनिक सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रहार था। हाँ, इतना जरूर हुआ कि वारेन हेस्टिंग्ज, लार्ड कार्नवेलिस तथा लार्ड वेलेजली जैसे गवर्नर जनरलों ने लोक सेवा और लोक सेवियों को योग्यता की नजर से देखा और प्रशासन के सुधार के लिये कुछ सराहनीय कदम उठाये। लोक सेवकों की चयन प्रक्रिया तथा उनके प्रशिक्षण पर जोर दिया। लोक सेवाओं को कवेनेन्टेड तथा अनकवेनेन्टेड (लिखित वचन तथा अलखित वचन) के रूप में सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित कर दिया।

धीरे-धीरे यहाँ भी स्थिति बदलने लगी। कम्पनी के जिन अधिकारियों के हाथ में सत्ता थी, वे घमन्डी, रंगभेद में विश्वास करने वाले और भारतीयों को अपना दास समझने वाले लोग थे। परिणामस्वरूप जब रंग-भेद, सामाजिक अलगाव और आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति बढ़ने लगी तो अचानक 1857 में धैर्य का प्याला टूट गया, जो एक भयानक विद्रोह के रूप में सामने आया। लेकिन इस स्थिति को 1854 में सर चार्ल्स वुड तथा लार्ड मैकाले ने पहले ही भांप लिया था। इसलिये प्रशासनिक सुधारों का दौर आरंभ हो गया।

1857 के विद्रोह के फलस्वरूप कम्पनी का शासन समाप्त हो गया तथा सत्ता ब्रिटिश क्राउन के पास पहुँच गयी। लार्ड मैकाले की सिफारिशों के अनुरूप सारी सरकारी शक्तियाँ प्रशासकों के हाथों में केन्द्रित हो गयीं। अब सत्ता का एक नया चेहरा सामने आया। सर एडमण्ड ब्लण्ट ने लिखा: ''उच्च ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी वास्तव में भारत के स्वामी बन गये। वे अन्य किसी सत्ता के प्रति उत्तरदायी न होकर परस्पर एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी बन गये।''

8.3 प्रशासनिक सुधारों का दौर

1858 में भारत सरकार अधिनियम सामने आया जिसके तहत भारत सचिव को भारतीय लोक सेवा में प्रवेश के लिये नियम बनाने का अधिकार सौंपा गया। इधर, क्योंकि लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग जोर पकड़ रही थी, इसलिए 1831, 1861 और 1870 में भारतीय लोक सेवा अधिनियम पारित किये गये। 1876 में तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने लोक सेवा के भारतीयकरण की ओर कुछ कदम उठाये लेकिन वे भारतीयों की उच्च पदों पर पहुँचने की आकाँक्षायें पूरी नहीं कर सके। तत्पश्चात् भारतीयों के दबाव के कारण प्रशासनिक सुधारों की एक झड़ी लग गयी: एचीसन आयोग 1886; इस्लिंगटन आयोग 1912; माग्टेग्यू चेम्स फोर्ड रिपोर्ट 1918; भारतीय सरकार अधिनियम 1919; स्टाफ चयन मण्डल 1922; ली आयोग 1923; लोक सेवा आयोग 1926; तथा 1935 का लोक सेवा से सम्बन्धित अधिनियम-इन सब आयोगों ने भारतीय लोक सेवा के विकास में एक अहम भूमिका अदा की। यहाँ इन सभी आयोगों तथा अधिनियमों की विशेषताओं को संक्षेप में समझने का प्रयास किया जायेगा।

एचीसन आयोग, 1886: इस आयोग की मुख्य सिफारिशें थीं (क) कवेनेन्टेड तथा अनकवेनेन्टेड सेवाओं के अन्तर को मिटाकर उसके स्थान पर सामान्य सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत की जाए-भारतीय लोक सेवा, प्रान्तीय सेवा एवं अधीनस्थ सेवा। भारतीय लोक सेवा में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड में प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित की जायें जो भारतीयों और योरोपीय प्रत्याशियों को परीक्षा में खुले तौर पर बैठने का अधिकार दें। अन्य दो प्रकार की सेवायें केवल भारतीयों के लिए सुरक्षित हों तथा प्रान्तीय स्तर पर उनकी परीक्षाऐं आयोजित की जायें। इस तरह इन सिफारिशों में भारतीयों को लोक सेवा में प्रवेश के अनेक अवसर मिल गये।

इस्लिंगटन आयोग, 1912: 1912 में भारतीय लोक सेवाओं पर लार्ड इस्लिंगटन की अध्यक्षता में एक शाही आयोग गठित किया गया। इसकी सिफारिशें इस प्रकार थीं (क) लोक सेवाओं में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड तथा भारत में एक साथ प्रतियोगी परीक्षायें कराई जायें, (ख) उच्चतम लोक सेवाओं के 25 प्रतिशत पद भारतीयों के लिये रखे गए। इन पदों पर अंशतः सीधे तथा अंशतः पदोन्नति द्वारा भर्ती की जाये। यह सिफारिशें 1917 में प्रकाशित की गयीं तब तक परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं, इसलिये यह सिफारिशें महत्वहीन हो गयीं।

मांण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918: भारतीय प्रशासन में सुधार के लिए 1918 में मांण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट को मील का एक पत्थर माना जाता है। इसकी तीन सिफारिशें महत्वपूर्ण थीं: (अ) सिविल सर्विस परीक्षा भारत एवं इंग्लैण्ड में एक साथ ली जाए। (ब) भारतीय सिविल सेवा में भारतीय प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिये प्रारम्भ में वरिष्ठ स्तर के 1/3 पदों पर भर्ती भारत में की जाए तथा प्रत्येक वर्ष इसमें डेढ प्रतिशत भारतीयों की वृद्धि की जाये। (स) भारतीय लोक सेवा के अधिकारियों के वेतनमान, सेवानिवृत्ति वेतन, अवकाश तथा भत्तों में वृद्धि की जाये। 1919 के अधिनियम में इन सिफारिशों को स्वीकार करते हुये क्रियान्वित किया गया।

भारत सरकार अधिनियम, 1919, यह वह पहला अधिनियम है, जिसने भारतीय लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिये रास्ता साफ किया, लेकिन भारतीय सचिव ने इस सम्बन्ध में कोई कदम नहीं उठाया।

ली आयोग, 1923: 1923 में ब्रिटिश सरकार ने लॉर्ड ली की अध्यक्षता में एक आयोग स्थापित किया जिसका उद्देश लोक सेवाओं की संरचना, सेवा की शर्तें तथा अधिकारियों की नियुक्ति के तरीकों पर विचार करना था। इस आयोग की सिफारिशें लोक सेवा का सम्बन्ध केवल उच्चतर सेवाओं से था। आयोग ने पहला सुझाव यह दिया कि लोक सेवा आयोग की स्थापना शीघ्र-अतिशीघ्र की जाये। लोक सेवा आयोग के कार्य दो प्रकार के हों (1) लोक सेवाओं के लिए भर्ती करना तथा भर्ती के लिये उपयुक्त योग्यताओं का स्तर निर्धारित करना, (2) लोक सेवाओं की सुरक्षा एवं अनुशासनात्मक नियन्त्रण।

ली आयोग ने विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से लोक सेवाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया- (1) प्रशासन के सुरक्षित भाग से सम्बन्धित सेवायें, जैसे आईसीएस, आईपीएस, भारतीय वन सेवा इत्यादि। यह भी सिफारिश की गयी कि नियुक्ति तथा नियंत्रण की शक्तियाँ भारत सचिव के पास रहें; (2) हस्तान्तरित क्षेत्र की सेवायें, जैसे भारतीय शिक्षा सेवा, भारतीय कृषि सेवा, भारतीय पशु चिकित्सा सेवा इत्यादि। इन पदों पर नियुक्तियाँ अखिल भारतीय आधार पर की जायें, तथा (3) भारतीय सरकार के अधीन केन्द्रीय सेवायें, जैसे राजनीति विभाग, आबकारी विभाग तथा धर्म विभाग की लोक सेवाएं। इन सभी सेवाओं पर नियुक्तियाँ भारत सचिव द्वारा की जायें।

लोक सेवा आयोग की स्थापना 1926, फरवरी 1926 में भारत सचिव ने लोक सेवा आयोग की स्थापना कर दी। इसमें चार सदस्य तथा एक सभापति था। सर रास बार्कर इस आयोग के प्रथम सभापति नियुक्त किये गये। अभी यह एक स्वतंत्र निकाय नहीं था। इसे गृह विभाग के साथ संलग्न किया गया। अभी इस आयोग को केवल परामर्शदाता का ही दर्जा दिया गया। साइमन कमीशन ने स्वीकार कि आयोग शक्तियों की दृष्टि से मात्र एक छाया ही था। वह भर्ती के मामले में अन्तिम निर्णायक नहीं था।

1935 का भारत सरकार अधिनियम, 1935 का भारत सरकार अधिनियम भारत के संवैधानिक इतिहास में एक अहम घटना मानी जाती है। कूपलैण्ड के अनुसार 1935 का अधिनियम ''रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक

महान कहानी थी।'' इस अधिनियम के तहत भारत को भविष्य में संघात्मक व्यवस्था मिली। संघीय कार्यपालिका, संघीय व्यवस्थापिका तथा संघीय न्यायापालिका की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

8.4 1935 से लेकर 1947 तक प्रशासनिक विकास

1935 में भारत में ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार अधिनियम को लाकर एक अहम संवैधानिक और प्रशासनिक कदम उठाया। जैसा कि लिखा जा चुका है यह अधिनियम रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक महान सफलता था। इस अधिनियम में द्वैध-शासन को अब केन्द्रीय स्तर पर लागू करने का प्रावधान एक महत्वपूर्ण कदम था। इस अधिनियम के माध्यम से भारत में संघीय कार्यपालिका, संघीय विधान मण्डल तथा संघीय न्याय पालिका की स्थापना की गयी। प्रान्तों में स्वायत्त की स्थापना के लिये भूमिका तैयार की गई। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया-स्वेच्छा सम्बन्धी शक्तियाँ, व्यक्तिगत शक्तियाँ और परामर्शपरक शक्तियाँ विशेष रूप से मन्त्रियों के संदर्भ में।

1935 के भारत अधिनियम के तहत ब्रिटिश संसद द्वारा जो विभिन्न अधिनियम पारित किये गये, प्रशासनिक विकास की दृष्टि से उन्हें चार वर्गों में बांटा जा सकता है-

1. भारत में उत्तरदायी तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना तथा उनकी सदस्य संख्या और प्रकृति का क्रमिक विकास;
2. इन संस्थाओं द्वारा शासन को उत्तरदायी बनाकर जनतंत्रीय रूप देना;
3. भारतीय प्रशासन का भारतीयकरण और भारतीयों की प्रशासन में भागीदारी को बढ़ाना; तथा
4. सेवी वर्ग की उपयोगिता को स्वीकार करना, उनकी विशेष भूमिका स्वीकार करना तथा उनके हितों की रक्षा करना।

भारत में आज जो केन्द्रीकृत अखिल भारतीय सेवाओं का रूप है, वह भी 1935 के भारत अधिनियम की देन है। इसका कारण गवर्नर के वे विशेष अधिकार थे, जो 1935 के अधिनियम ने उनको दिये थे। 1935 के अधिनियम ने वास्तव में भारत के भावी संविधान की आधारशिला रख दी और इसके साथ भारतीय प्रशासन के विकास को भी आगे बढ़ाया। हमें यह स्वीकार करना होगा कि वर्तमान में जो संवैधानिक और प्रशासनिक विकास की तस्वीर है, वह अंग्रेजी शासन की देन है। हमें यह व्यवस्था विरासत में मिली है। विकास की यह कहानी 1935 से 1947 तक अंग्रेजों के माध्यम से चलती रही।

8.5 प्रशासनिक संस्थाओं का विकास

सन् 1858 से लेकर 1919 (भारत परिषद् अधिनियम) से गुजरता हुआ। 1935 के ऐतिहासिक भारत अधिनियम के चैनल के रास्ते होता हुआ भारत का प्रशासनिक विकास 1947 तक पहुँचा और तब से अब तक प्रगति के पथ पर अग्रसर है। संक्षेप में विकास की इस कहानी को समझने के लिये अधोलिखित बिन्दुओं का अध्ययन अनिवार्य है-

1. **केन्द्रीय सचिवालय का विकास-** मौजूदा सचिवालय ब्रिटिश शासन की देन है। प्रशासनिक एकता स्थापित करने, प्रशासनिक इकाइयों में समन्वय पैदा करने तथा प्रशासनिक कार्यों में एकरूपता लाने के लिये 1833 में एक चार्टर अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन सचिवालय की स्थापना की गई। यह विभिन्न विभागों की एक संयुक्त संस्था थी, जिसका 1843 से 1919 और तत्पश्चात् 1947 तक इस का पुनर्गठन और विभिन्न सुधारों के माध्यम से इसका वर्तमान स्वरूप सामने आया। अनेक महत्वपूर्ण विभागों का जन्म सचिवालय के माध्यम से ही हुआ। 1947 तक सचिवालय में 19 विभाग थे। यह सिलसिला आगे तक चलता रहा।

2. **वित्त प्रशासन-** वित्त प्रशासन का इतिहास पुराना है, लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में यह पूरी तरह भ्रष्टाचार और लूट खसोट से ग्रस्त हो गया। इसलिये वित्त का केन्द्रीकरण करने का प्रयास किया जाने लगा। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण के दिशा में लार्ड मयो द्वारा एक निश्चित योजना तैयार की गयी। 1877 में एक योजना के अन्तर्गत भूमि कर, स्थानीय चुंगी, स्टाम्प, स्टेशनरी, कानून तथा न्याय और सामान्य प्रशासन की कुछ व्यय मदें प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित कर दी गयीं। तत्पश्चात् 1882 से लेकर 1907 तक अनेक सुधारात्मक उपायों के आधार पर वित्त प्रशासन को केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय निकायों अथवा सरकारों में विभाजित कर दिया गया। इसी तरह वित्तीय साधनों का भी विभाजन कर दिया गया। विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में चार्ल्स हॉब हाउस आयोग (1907) का बड़ा योगदान है। नतीजा यह निकला कि 1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय बजट केन्द्रीय सरकार से अलग कर दिये गये।

8.6 लोक सेवा का विकास: ब्रिटिश संदर्भ

लोक सेवा का जो रूप आज भारत में है, वह विकास का परिणाम है, प्राचीन भारत में लोक सेवायें अविकसित थी, क्योंकि उस समय का समाज सरल था। मुगल या मुस्लिम शासन काल में लोक सेवा को नये आयाम मिले लेकिन उनका रूप उतना वैज्ञानिक नहीं था, जितना धीरे-धीरे ब्रिटिश काल में सामने आया। ब्रिटिश शासन काल का दौर औद्योगिक और वाणिज्यिक गतिविधियाँ बढ़ने के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल से आरंभ हुआ लेकिन लोक सेवाओं के क्षेत्र में लूट-प्रथा के चलते प्रशासनिक प्रगति के लिये एक बाधा बन गया। तत्कालीन लोक सेवकों की प्रकृति और व्यवहार के कारण ही सामाजिक अलगाव की नींव पड़ी, भारतीयों में बेचैनी बढ़ी जो अन्तः 1857 की बगावत के रूप में फूटी। यह बगावत ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पतन और अन्त का कारण बनी। परिणामस्वरूप 1858 में ब्रिटिश महारानी या ताज का शासन आरंभ हुआ और इस एहसास के साथ कि लोक सेवायें ही शासन के पतन या उत्थान का कारण बनती हैं, उनके विकास के लिये कदम उठाये जाने लगे।

अब इस तथ्य को स्वीकार किया जाने लगा कि लोक सेवाओं को योग्यता पर आधारित होना चाहिये। इस नजरिये से वारेन हेस्टिंग्स का नाम याद रखना होगा। यह ऐसा गवर्नर जनरल था जिसने भू-राजस्व की वसूली तथा शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने के लिये मजबूत लोक सेवाओं की आधारशिला रखी। यहाँ से ब्रिटिशकालीन लोक सेवा के विकास की कहानी कुछ इस तरह है:

वारेन हेस्टिंग्ज, कार्नवालिस, लार्ड क्लाइव, लार्ड वैलेजली तथा लार्ड मैकाले कम्पनी काल के ऐसे गवर्नर जनरल थे, जिन्होंने पूरी निष्ठा के साथ लोक सेवाओं के स्वरूप, प्रकृति और स्वभाव को बदलने का प्रयास किया। इन्हीं के दौर में भू-राजस्व की वसूली तथा शान्ति व्यवस्था को स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये गये; 1781 में जिलाधीश, मजिस्ट्रेसी तथा न्याय प्रशासन को एकीकृत करने का काम हुआ। लार्ड क्लाइव ने भी प्रशासनिक सुधार के लिये प्रयास किये, लेकिन जब उसे सफलता नहीं मिली तब लार्ड कार्नवालिस ने 1785 से 1793 तक अनेक सुधारात्मक कदम उठाये।

फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना लोक सेवाओं के प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक महत्वूपर्ण कदम था। भारत से प्रशासक प्रशिक्षण के लिये फोर्ट विलियम जाने लगे। 1833 में भारत में समस्त व्यक्तियों के लिये समान रूप से खुली प्रतियोगिता की पद्धति को स्वीकृति मिली। भारतीय लोक सेवाओं का इतिहास 1854 को भी याद रखना होगा। तब लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में गठित एक समिति ने आई.सी.एस. के लिये जो सिफारिशें की वे आज भी भारतीय लोक सेवाओं के गठन और कार्यप्रणाली की आधारशिला है।

1886 में भारत के वायसराय लार्ड डफरिन ने चार्ल्स एचिसन की अध्यक्षता में एक आयोग की स्थापना की जिसकी सिफारिशों के आधार पर सामान्य लोक सेवा को भारतीय लोक-सेवा, प्रान्तीय सेवा औा अधीनस्थ सेवा- तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर दिया गया। इस तरह कवेनेण्टेड तथा अनेवेनेण्टेड सेवाओं का अन्तर समाप्त हो गया।

1918 में गठित माण्टेग्यू-चैम्सफोड समिति ने एक रिपोर्ट तैयार की, जो लोक सेवाओं के सुधार के लिये एक वरदान सिद्ध हुई। इस रिपोर्ट की महत्वपूर्ण सिफारिशें थीं: (1) लोक सेवा की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ कराई जाए, (2) वरष्ठि पदों पर एक-तिहाई भर्ती भारत में की जाये, ताकि भारतीयों की संख्या में वृद्धि हो, (3) आई.सी.एस. की सेवा शर्तों-सुरक्षा, वेतन तथा पदोन्नति में सुधार किये जायें। 1919 के भारत शासन अधिनियम के बाद इसे लागू किया गया।

1920 का वर्ष भारतीय लोक सेवाओं के लिये संकट का काल था। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधान मण्डलों में इन सेवाओं के तौर तरीकों की कटु आलोचना होने लगी; लोक सेवा के अधिकारी व्यक्तिगत रूप से भर्तसना का निशाना बनने लगे। भारतीय मंत्रियों ने इन लोक सेवकों को प्रायः अपंग बना दिया। 1920 में असहयोग आन्दोलन ने लोक सेवाओं पर कड़ा प्रहार किया। यहाँ तक कि अंग्रेज अधिकारी भारत छोड़ने का मन बनाने लगे। इधर इन सेवाओं के भारतीयकरण की मांग फिर उठने लगी। इस स्थिति से निपटने के लिए एक उच्च लोक-सेवा विषयक शाही आयोग की नियुक्ति लार्ड ली की अध्यक्षता में की गई। इस आयोग ने लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

1935 के भारत सरकार अधिनियम के कारण तीन सकारात्मक नतीजे सामने आये; (1) राज्यों में लोक सेवा आयोगों की स्थापना की गई; (2) चिकित्सा सेवाओं के लिये एक प्रथम आयोग बनाने की सिफारिश की गई; तथा सभी अन्य सेवाओं को भारत मंत्री के क्षेत्राधिकार से निकाल दिया गया और इन पर गवर्नर जनरल और गवर्नरों का नियंत्रण स्थापित किया गया।

हमको यह स्वीकार करना होगा कि ब्रिटिश काल के भारत में अंग्रेज निरन्तर भारतीय नजरिये से तथा भारतीय परिस्थितियों के अनुसार लोक सेवाओं में सुधार करते रहे। 1935 का अधिनियम इसे तथ्य का सर्वोत्तम उदाहरण है।

8.7 लोक सेवा का विकास: स्वतंत्र भारत में

वास्तव में 1935 का भारत सरकार अधिनियम इस परिकल्पना पर आधारित था कि निकट भविष्य में भारत आजाद होगा और सत्ता भारतीयों के हाथों में होगी। इस तरह 1935 का अधिनियम का भारतीय संविधान की आधारशिला के रूप में सामने आया। नतीजा यह निकला कि स्वतंत्रता के साथ ही लोक सेवाओं का स्वरूप भारत सरकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप बदलने लगा। जो नई तस्वीर सामने आई उसका सार था-

1. आई.सी.एस. के स्थान पर नवीन अखिल भारतीय सेवा, जैसे आई.ए.एस. और आई.पी.एस. की स्थापना; आई.एफ.एस. (भारतीय विदेश सेवा) तथा भारतीय वन सेवा की स्थापना।
2. तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को एहसास था कि देश का चहुमुखी विकास पूरी तरह गतिशील प्रशासन पर निर्भर करता है, इसलिये उन्होंने 1951 में गोरवाला और 1953 में ऐपल्बी को भारतीय परिस्थितियों के अनुसार लोक सेवाओं के लिये अपना प्रतिवेदन देने के लिये नियुक्त किया। इनकी सिफारिशों के अनुसार 1954 में दिल्ली में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना की गई।
3. 1966 में प्रशासनिक सुधार आयोग ने लोक सेवा में सुधार के लिये जो सुझाव दिये, उनके तहत 1970 में कार्मिक विभाग का गठन किया गया। 1956 में गृह मंत्रालय ने एक प्रशासनिक सतर्कता सम्भाग की स्थापना की। इसी वर्ष एक वेतन आयोग की नियुक्ति की गई, जिसका उद्देश्य केन्द्रीय एवं अखिल भारतीय सेवाओं के वेतन स्तर एवं सेवा शर्तों का पुनरीक्षण करना था। लोक सेवाओं में प्रशिक्षण की दृष्टि से नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन तथा विशेषीकृत प्रशिक्षण अभिकरण स्थापित किये गये। राज्यों में भी इसी प्रकार की प्रशिक्षण संस्थायें स्थापित की गयीं।

प्रशासनिक सुधार आयोग, 1966 की स्थापना लोक सेवाओं के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम था। इसका वास्तविक उद्देश्य लोक सेवाओं के संगठन तथा कार्य विधि में अनिवार्य सुधार लाना था। इस आयोग ने जो अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उसम में प्रमुख सिफारिश यह थी कि लोक-कल्याणकारी राज्य में बढ़ती हुई लोक सेवाओं पर नियंत्रण के लिये एक केन्द्रीय अभिकरण (ऐजेन्सी) का होना जरूरी है। प्रशासनिक सुधार आयोग का प्रतिवेदन स्वीकार करते हुये भारत सरकार ने 27 जून 1970 को कैबिनेट सचिवालय में सेवी वर्ग विभाग की स्थापना की 1972 में एक अधिसूचना द्वारा सेवी वर्ग विभाग को वे सभी कार्य सौंप दिये गये, जिनकी सिफारिश आयोग ने की थी। संक्षेप में इन सिफारिशों में (1) सामान्य सेवी वर्ग सम्बन्धी नीति की रचना करना; (2) प्रतिभाओं की खोज। वरिष्ठ प्रबन्ध के लिये सेवी वर्ग का विकास तथा वरिष्ठ पदों पर नियुक्ति की कार्यवाही; (3) मानव शक्ति नियोजन, प्रशिक्षण एवं आजीवन सेवा का विकास; (4) सेवी वर्ग प्रशासन में विदेशी सहयोग; (5) सेवी वर्ग प्रशासन में शोध कार्य; (6) कर्मचारी वर्ग में अनुशासन पैदा करना; (7) संघीय लोक सेवा आयोग, तथा राज्य सरकारों इत्यादि के मध्य कड़ी का कार्य करना; तथा स्थापना मण्डल के परामर्श से केन्द्रीय सचिवालय में कार्य करना। वर्तमान में सेवी वर्ग विभाग गृह मंत्रालय का एक स्वतंत्र विभाग है। अब यह प्रधानमंत्री के अधीन रहकर कार्य करता है।

8.8 स्वतंत्र भारत में लोक सेवाएं: स्वरूप और विशेषताएं

अनेक बार बताया जा चुका है कि आधुनिक भारतीय लोक सेवा ब्रिटिश शासन की देन है। यह सतत् विकास का परिणाम है। अंग्रेजों ने भारत को भले ही लूटा-खसोटा हो, लेकिन प्रशासन के क्षेत्र में उनके अद्वितीय योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। यहाँ भारतीय लोक सेवाओं के कुछ ऐसे पहलुओं पर बात की जायेगी जो एक साधारण विद्यार्थी को समझना चाहिये। यह प्रमुख बिन्दु इस तरह हैं-

1. भारतीय लोक सेवा में भर्ती योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता की जांच खुली प्रतियोगिता द्वारा होती है, जिसका माध्यम लोक सेवा आयोग है। यह संस्था स्वतंत्र, निष्पक्ष और गैर राजनीतिक है।
2. उच्च लोक सेवा में भर्ती की आयु 21 से 32 वर्ष है। सिफारिश यह भी की गई है कि भर्ती की अधिकतम सीमा 32 वर्ष से घटाकर 27 वर्ष कर देनी चाहिये। यह भी आवश्यक है कि उच्च लोक सेवा के उम्मीदवार अपने विचारों में परिपक्व हों, कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न हों, दृढ़ निश्चय के धनी हों तथा अच्छा सामान्य ज्ञान रखते हों। परीक्षा में दोनों प्रकार की व्यवस्थाएं है-लिखित व्यवस्था और साक्षात्कार व्यवस्था।
3. लोकसेवा के लिये चुने हुये प्रत्याशियों के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था।
4. नौकरी में सुरक्षा, अच्छे वेतन की व्यवस्था और पदोन्नति के न्यायोचित अवसर प्रदान करना ताकि लोक सेवियों की कार्यक्षमता का विकास हो और उनका मनोबल ऊँचा रहे।
5. भारतीय लोक सेवा का 'बहुदेशीय स्वरूप' है। अधिकारी समय-समय पर अलग-अलग पद ग्रहण करते रहते हैं। इस तरह उनको प्रत्येक विभाग का ज्ञान रहता है। विशेषकर आई.ए.एस. एक बहु पदीय सेवा है। अधिकारी प्रशासन की प्रत्येक शाखा से परिचित हो यह लोक सेवा का उद्देश्य है।
6. केन्द्रीय एवं प्रान्तीय लोक सेवाएं 'प्रथम', 'द्वितीय', तृतीय तथा चतुर्थ वर्गों में विभाजित होती हैं। इनके वर्गों के अनुसार इनके कार्य, पद और शक्तियाँ होती हैं। भारत में इस समय तीन अखिल भारतीय सेवायें हैं- आई.ए.एस., आई.पी.एस. तथा आई.एफ.एस.।
7. लोक सेवा के पद प्रत्यक्ष भर्ती और पदोन्नति दोनों पद्धतियों से भरे जाते हैं।
8. भारतीय सेवी वर्ग प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि कुछ सेवायें संघ तथा राज्य दोनों के लिये समान रूप से गठित की गई हैं, जैसी कि अखिल भारतीय सेवायें। ये अधिकारी पूर्णतः केन्द्रीय अथवा

राज्यों की सेवा में नहीं होते हैं, लेकिन दोनों में से किसी एक के अन्तर्गत विभिन्न समयों में कार्य करते हैं। इन सेवाओं में भर्ती समान अर्हताओं और वेतनमान और और अखिल भारतीय आधार पर की जाती है।

8.9 लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्ध

लोक सेवकों एवं राजनीतिज्ञों के मध्य सम्बन्धों की प्रकृति एक विवादास्पद विषय रहा है। मार्क्स का तो दृष्टिकोण यह था कि नौकरशाही अपने अस्तित्व के लिए पूरी तरह राजनीतिज्ञों पर न केवल निर्भर रहती है, बल्कि राजनीतिज्ञों की यथास्थिति को बनाये रखने के लिए सतत् प्रयास भी करती रहती है। इसलिए मार्क्स ने नौकरशाही को परजीवी (Parasitic) कहा था। नौकरशाही न केवल राजनीतिज्ञों की सहायता करती है, बल्कि वह समाज के सभी प्रभुत्व वाले तबकों की यथास्थिति को बनाये रखती है।

नौकरशाही की एक और विशेषता है, जिसकी ओर मार्क्स ने इशारा किया है, वह है नौकरशाही की 'गोपनीयता और रहस्यमयता'। वह राजनीतिज्ञों की वास्तविक चालों और इरादों को साधारण जन समाज से छुपाती है। ''वह राजनीतिज्ञों की हरकतों पर पर्दा डालती है और उनकी चालों को रहस्यमय बनाये रखती है।'' इस तरह नौकरशाही राजनीतिज्ञों, सत्ताधारियों और पूँजीपतियों तथा जन-समाज में दूरियाँ बनाये रखती है और अलगाव पैदा करती है।

पश्चिमी जगत तथा लोक सेवा और राजनीति के रिश्ते, पश्चिमी जगत में नौकरशाही के प्रति दृष्टिकोण बहुत कुछ हद तक उदारवादी रहा है। यहाँ लोगों ने मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही की रूपरेखा को स्वीकार किया। वेबर ने नौकरशाही और तार्किकता को सिक्के के दो पहलू माना था। वह नौकरशाही और तार्किकता (rationality) को अप्रथक्कारी मानता है। इसलिए पश्चिमी जगत में राजनीति एव नौकरशाही में कम से कम टकराव देखने को मिला। यहाँ तक महसूस होने लगा कि 'व्यक्तित्व' के अनुसार कभी तो नौकरशाही राजनीति पर हावी हो जाती थी और कभी राजनीति नौकरशाही पर। प्रायः टकराव स्थिति अधिक बनी रहती थी, इसलिये वेबर ने नौकरशाही की ''राजनीतिक तटस्थता'' को सफल नौकरशाही की एक शर्त माना। और इस तरह राजनीति एवं प्रशासन में द्विविभाजन (dichotomy) का सिद्धान्त स्वीकार किया जाने लगा।

भारतीय संदर्भ, 15 अगस्त 1947 को भारत विभाजन के साथ आजाद हो गया। अंग्रेजों से विरासत में जो स्वतंत्र भारत को मिला उनमें न्याय व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था के अतिरिक्त जो सर्वोत्तम संस्था प्राप्त हुई, वह प्रशासन व्यवस्था थी। प्रशासन व्यवस्था में भी लोक सेवा सर्वोपरि थी। लोक सेवा को भारत ने उसकी सम्पूर्ण मानसिकता सहित ग्रहण कर लिया।

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व नौकरशाही के रूप में आई.सी.एस. थे, जिनका और लोक सेवा दोनों का स्वरूप ब्रिटिश था, इसलिये दोनों में द्वन्द्व और टकराव की संभावना कम थी। परिणामस्वरूप अंग्रेजी शासन में नौकरशाही और राजनीतिज्ञों सहयोग और समन्वय बिलकुल चुस्त-दुरूस्त था।

स्वाधीनता के बाद आई.सी.एस. का स्थान आई.ए.एस. और राज्य स्तर पर पी.सी.एस. ने ले लिया, लेकिन व्यक्ति तो बदल गये, प्रशासनिक सोच और आचरण नहीं बदला। इसलिये, स्वतंत्रता के प्रारम्भिक दिनों में नवीन प्रशासनिक ढाँचे में अधिकारियों की मानसिक स्थिति कुछ अजीबोगरीब थी। उन्हें शासन के नवीन राजनीतिक तत्व-मन्त्रियों के साथ सद्भावना और सहयोग के साथ काम करने में कुछ कठिनाई महसूस होती थी। आई.ए.एस. अधिकारी स्वयं को राजनीतिज्ञों से उच्चतर समझते थे और वे यह सोचते थे कि सरकार उनकी इच्छानुसार चलना चाहिये। लेकिन उस समय के राजनेता भी कोइ साधारण व्यक्तित्व के नहीं होते थे। स्वतंत्रता की जंग उन्हों ने लड़ी थी और जीती थी। इसलिये नौकरशाही और राजनीति में टकराव स्वाभाविक था।

स्वयं पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे प्रधानमंत्री को भी इन अधिकारियों को नियंत्रण में रखने और अपनी नीतियों को उनसे क्रियान्वित कराने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था, लेकिन जैसे-जैसे लोकतंत्र की जड़ें मजबूत होती गयीं। धीरे-धीरे परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक अधिकारियों का यह रवैय्या भी बदलता गया। स्वयं

प्रशासन का लोकतांत्रीकरण होता चला गया और 'नौकरशाही' अपने स्वरूप और मानसिकता को बदल कर 'लोक सेवक' बनती चली गई। इन अधिकारियों के कर्तव्यों और कार्यों में इस प्रकार के परिवर्तन लाए गये हैं कि वे जन समाज की आवश्यकताओं, संवैधानिक तकाजों और राजनीतिज्ञों के इरादों या इच्छाओं में ताल-मेल विठाकर काम करने लगे। अब जनता में और अधिकारियों में संवाद बढ़ रहा था, दूरी घट रही थी और इस तरह देश अपनी मंजित की ओर बढ़ रहा था। आज यह कहा जा सकता है कि भारतीय लोक सेवाओं का लोकतांत्रीकरण हो चुका है। अब लोक सेवा का विकास, लोकतंत्र के विकास और भारत के विकास का प्रतीक बन गया है।

8.10 लोक सेवा विकास की वर्तमान स्थिति

स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं। प्रशासन की नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगीं हैं। संविधान की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है, जिसका अर्थ है कि संविधान की प्रस्तावना को मूल भावना के अनुसार देश की सभी संस्थाओं को अपना काम करना है। यह बात अखिल भारतीय और राज्य सेवाओं के विकास के लिये भी अनिवार्य है। लोक सेवाओं का उत्तरदायित्व और कर्तव्य उत्तरदायी सरकार को मजबूती देने के लिये जरूरी है।

संवैधानिक तकाजों के अनुसार राज्य का कर्तव्य है कि सभी नागरिकों को स्वतंत्रता, स्तर और अवसर की समानता का वातावरण मिले। सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास और पूँजी की स्वतंत्रता प्राप्त हो। लोक सेवा को संविधान की इस भावना का सम्मान करना होता है।

इस संदर्भ में यह याद रखना आवश्यक है कि भारतीय लोक सेवा के विकास का इतिहास, उसकी वर्तमान संरचना एवं प्रशासनिक कार्यविधि पर उसके अतीत ने उस पर गहरी छाप छोड़ी है। अतीत की प्रशासनिक विरासतें और वर्तमान का प्रशासनिक स्वरूप अप्रथक्कीकरण है। शताब्दियों के अन्तराल में भारतीय प्रशासकों की आदत का अन्तर बन जाने के कारण ये विरासतें प्रभावी हैं, और प्रशासन को निरन्तरता देती हैं। आज भी ब्रिटिश प्रशासनिक प्रभाव को भारतीय प्रशासन के विविध आयामों में देखा जा सकता है।

भारतीय प्रशासन के जिन क्षेत्रों में यह ब्रिटिश प्रभाव देखने को मिलता है, उनमें से प्रमुख हैं-सचिवालय व्यवस्था, जिला एवं क्षेत्रीय प्रशासन, लोक सेंवायें, संसदीय एवं न्याय प्रणालियाँ। इनमें यदि सब से अधिक प्रभावित संस्था है तो वो लोक सेवा ही है। बहुत कुछ लोकतांत्रिक होने के बाद भी भारतीय लोक सेवायें कहीं न कहीं अपने स्वभाव, अपने व्यवहार और अपनी सोच ने ब्रिटिश लोक सेवा के आज भी समीप है।

भारतीय लोक सेवा का एक नकारात्मक पहलू भी है। जहाँ ब्रिटिश लोक सेवक कुलीन परम्पराओं के अनुसार चलते थे, वहाँ आज ये मध्यवर्गीय लोक सेवी वर्ग समाज की नकारात्मक प्रवृत्तियों से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। भारत के चहुमुखी विकास के बाद भी कुछ क्षेत्रों में स्थिति अस्पष्ट तथा भ्रमित है। देश की राजनीतिक अस्थिरता, राजनीति के अपराधीकरण, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और भ्रष्टाचार का बढ़ता प्रभाव-यह सब कुछ लोक सेवकों को भ्रमित करता है। कानून की स्थिति में गिरावट, हिंसा का बढ़ता प्रभाव, प्रशासन का गिरता स्तर-यह न केवल लोक सेवा के विकास में एक बाधा है, बल्कि लोकतान्त्रिक मूल्यों के भी विपरीत है। इन बातों का प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. एचीसन आयोग किस सन् में गठित किया गया?

क. 1886	ख. 1857
ग. 1860	घ. 1868

2. लोक सेवा आयोग की स्थापना किस सन् में हुई?
क. 1924 ख. 1948
ग. 1926 घ. 1928

3. 1935 में कौन-सा ऐतिहासिक अधिनियम आया?
क. भारत परिषद अधिनियम ख. भारत सरकार अधिनियम
ग. भारत लोक सेवा अधिनियम घ. इनमें कोई नहीं।

4. 1966 में कौन-सा आयोग गठित किया गया?
क. प्रशासनिक सुधार आयोग ख. इस्लिंगटन आयोग
ग. ली आयोग घ. एचीसन आयोग

5. गोरवाला और ऐपेल्बी को किस प्रधानमंत्री ने प्रशासनिक अध्ययन के लिये आमंत्रित किया?
क. लाल बहादुर शास्त्री ने ख. मोरारजी दिसाई ने
ग. श्रीमती इन्दिरा गांधी ने घ. पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने

8.11 सारांश

- लोक सेवाओं के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया गया है-प्राचीन भारत में वैदिक काल से लेकर कौटिल्य के काल तक, मध्य युग में इस्लामी काल से लेकर मुगल शासन काल तक, तथा आधुनिक काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल से लेकर ब्रिटिश काल तक यह विकास चला।
- लोक सेवाओं का वर्तमान काल 1935 से आरंभ होकर, स्वाधीनता के वर्षों से गुजरते हुये अब तक यथावत् चल रहा है। 1858 से लेकर आज तक विकास की जो कहानी है, इसे लोक सेवा या प्रशासनिक सुधारों की कहानी माना जा सकता है। 1831, 1961, 1970, 1876 से चल कर 1918, 1922, 1923, 1926 और 1935 तक सुधारों को सतत् विकास का सिलसिला चलता रहा। आज भी यह विकास जारी है, नई संस्थाओं ने जन्म लिया है, नये प्रशासनिक विचार उभरे हैं, नई चुनौतियाँ सामने आयी हैं और उनका पूरे साहस से समाधान खोजा गया है।
- 1935 से लेकर आज तक अनेक प्रशासनिक संस्थाओं का विकास हुआ है-केन्द्रीय सचिवालय, वित्त प्रशासन, लोक सेवा आयोग, भारतीय विदेश विभाग, भारतीय वन विभाग आदि प्रमुख हैं।
- लोक सेवा का आधुनिक इतिहास ब्रिटिश शासन से आरंभ होता है। इसलिये आज भारत का लोकसेवा का जो स्वरूप है, वह ब्रिटिश काल की विरासत है, जिसकी अवहेलना करके नया भारत एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता है। वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवेलिस, लार्ड क्लाइव, लार्ड वैलेजी तथा लार्ड मैकाले जैसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर जनरलों में भारत में प्रशासनिक और लोक सेवाओं की बुनियाद रखी।
- इतना ही नहीं 1886 में भारतीय वायसराय लार्ड डफरिन ने चार्ल्स एचिसेन के माध्यम से लोक सेवा को भारतीय लोक सेवा, प्रान्तीय सेवा और अधीनस्थ सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया। तत्पश्चात् 1918 में माण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर लोक सेवा की परीक्षा भारत और इंग्लैण्ड में एक साथ होने लगीं, वरिष्ठ पदों पर एक तिहाई भर्ती भारतीयों के लिये सुरक्षित की गई। 1919 के भारत अधिनियम इन शर्तों से लागू किया गया।
- स्वतंत्र भारत लोक सेवा की तस्वीर धीरे-धीरे बदलने लगी। आई.सी.एस. के स्थान पर आई.ए.एस. तथा आई.पी.एस. ने स्थान ग्रहण कर लिया।

- गोरवाला और ऐपल्बी की सिफारिशों के आधार पर 1954 में दिल्ली में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना की गई। 1970 में कार्मिक विभाग का गठन किया गया तथा 1956 में सतर्कता सम्भाग की स्थापना की गयी। इसी वर्ष में वेतन आयोग और प्रशासनिक सुधार आयोग अस्तित्व में आया।
- स्वतंत्र भारत में लोक सेवाओं के सुधार पर विशेष ध्यान दिया गया। भर्ती के नियम तय किये गये, प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई, नौकरी की शर्तों को तैयार किया गया तथा लोक सेवाओं को वर्गीकृत किया गया।
- लोक सेवा के विकास के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। आज के मध्य वर्गीय लोक सेवक समाज की उन सभी बुराईयों का प्रतिबिम्ब है, जो किसी भी समाज को खोखला करती हैं-जातिवाद, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, हिंसा, आपराधीकरण तथा भ्रष्टाचार और इन सब बातों में राजनीतिज्ञों, अपराधियों और नौकरशाही का गठजोड़-वे पहलू हैं जो देश के विकास में बाधा डालते हैं।

8.12 शब्दावली

द्विविभक्तिकरण (dichotomy)- लोक प्रशासन में द्विविभक्तिकरण शब्द का प्रयोग प्रशासन और राजनीति के विभक्तिकरण से लिया जाता है। यह एक विवादास्पद विषय है, जिसके बारे में राजनीति शास्त्री एवं प्रशासनिक चिन्तक एकमत नहीं हैं। कुछ चिन्तक राजनीति और प्रशासन के गठजोड़ को एक बुराई मानते हैं और कुछ एक अनिवार्यता। वेबर प्रशासन और राजनीति के द्विविभक्तिकरण का समर्थक है।

ताज या क्राउन (Crown)- साधारण अर्थ में ताज वह आभूषण है जो राजा या रानी पहनते हैं। लेकिन संवैधानिक अर्थ में ताज एक संस्था है, जिसका सम्बन्ध विशेष रूप से इंग्लैण्ड के राजतंत्र से है। राजा अथवा रानी नशवर है लेकिन ताज का अस्तित्व बना रहता। मशहूर कहावत है कि ज्ञपदह पे कमंकए स्वदह सपअम जीम ़ापदह इसका अर्थ है कि राजा शरीर के रूप में तो मर गया, लेकिन राजा राजतंत्र की संस्था के रूप में जीवित है।

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, **2.** ग, **3.** ख, **4.** क, **5.** घ

8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, हरिशचन्द्र: प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, 971
2. सुब्रह्मण्यम, बी: भारतीय प्रशासन, 1974
3. पायली, एम0वी0: भारतीय संविधान, 1966
4. अवस्थी एवं महेशवरी: लोक प्रशासन, 1992
5. फड़िया, बाबू लाल: भारत में लोक प्रशासन, 1993

8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Avasthi and Avasthi : Indian Administration.
2. Ravindara Prasad, d : Administrative Thinkers.
3. fffPiner and Presthus : Public Administration.
4. Gladden, G.E. : Dynamics of Public Administration, 1971

8.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम क्या है? उसमें लोक सेवी वर्ग की किन विशेषताओं पर बल दिया गया है?
2. ब्रिटिश काल में लोक सेवा के विकास के लिये वारेन हेस्टिंग्ज-कार्न वलिस, लार्ड क्लाइव तथा लार्ड मैकाले जैसे गवर्नर जनरलों ने क्या कदम उठाये?
3. गोरवाला और ऐपलबी ने लोक सेवा के सुधार के लिये क्या सिफारिशें की?
4. स्वतंत्रता के बाद लोक सेवा के सन्दर्भ में आई.सी.एस. के स्थान पर कौन सा कैडर स्थापित किया और कितन वर्गों में विभाजित किया गया?
5. स्वतंत्र भारत में लोक सेवकों तथा राजनीतिज्ञों के सम्बन्ध कैसे हैं? इनका नकारात्मक स्वरूप क्या है?

इकाई- 9 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ: चरित्र-चित्रण

9.2.1 विशेषज्ञ: प्रकृति और आचरण

9.2.2 विशेषज्ञ और सामान्यज्ञ में अन्तर

9.3 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद

9.4 अपनी श्रेष्ठता के सम्बन्ध में सामान्यज्ञों के तर्क

9.5 विशेषज्ञों के तर्क

9.6 विवाद का समाधान

9.7 प्रशासनिक सुधार आयोग- 1966 के सुझाव

9.8 भारत सरकार की ओर से विवाद के समाधान के लिए पहल

9.9 निष्कर्ष

9.10 सारांश

9.11 शब्दावली

9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.15 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ का विवाद ब्रिटेन की फुल्टन, समिति 1965 की देन है, जिसने पहली बार सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ नामों को अपने प्रतिवेदन में उदघृत किया। भारत में यह विवाद ब्रिटेन से ही आया है। विवाद केवल यह है कि अधिक महत्व किसका है? सामान्यज्ञ का या विशेषज्ञ का, विशेष रूप से शासकीय व्यवस्था के संदर्भ में। सामान्यज्ञ के तर्क हैं कि प्रशासन बिना उनके नहीं चल सकता; नीति-निर्माता वही हैं; वही मंत्रियों को परामर्श देते हैं, इसलिए वे श्रेष्ठ हैं; वे गरिमामय हैं और वे प्रतिष्ठित हैं।

विशेषज्ञों का तर्क है कि वे भी अपने क्षेत्र में दक्ष हैं, वे यांत्रिकी में निुण हैं, देश का आर्थिक, वैज्ञानिक और संरचनात्मक विकास उनके कन्धों पर है। लेकिन सरकार सामान्यज्ञों की तुलना में उनकी अवहेलना करती है, वेतन, भत्ते और अन्य सुख सुविधाओं में वे सामान्यज्ञों से पिछड़े हुये हैं। इस तरह यह विवाद विशेषज्ञों में एक मनोसंकट की स्थिति पैदा करता है, जो विकास में बाधा पहुँचाता है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके के उपरान्त आप-

- सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ का अर्थ समझ सकेंगे।
- सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ विवाद का कारण और परिणाम समझ सकेंगे।
- अपने-अपने पक्ष में सामान्यज्ञों और विशेषताओं के तर्क जान पायेंगे।

- विवाद को सुलझाने के लिए सरकार की ओर से क्या उपाय सुझाये गये हैं, इनकी जानकारी ले सकेंगे।
- विवाद के समाधान के लिए विभिन्न आयोगों की क्या सिफारिशें हैं, उनसे परिचित होंगे।

9.2 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ: चरित्र-चित्रण

लोक प्रशासन की सरलतम भाषा में सामान्यज्ञ वे प्रशासनिक कर्मचारीगण (Personnel) हैं, जो राज्य की प्रशासनिक सेवाओं को अन्जाम देते हैं। इनका इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी आधुनिक सभ्यता। कौटिल्य ने अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र में राज्य के जिन महत्वपूर्ण कर्मियों को राज्य की प्रगति के लिए अनिवार्य बताया था, वे यही सामान्यज्ञ थे। भारत में चाहे मुस्लिम काल हो या मुगलकाल हर चरण में सामान्यज्ञ प्रशासकों का वरचस्व बना रहा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दौर में भी लूट प्रथा के अनुसार एक तरह से प्रशासनिक सत्ता सामान्यज्ञों के हाथ में थी। 1858 में जब ताज या ब्रिटिश संसद के हाथों में भारतीय शासन की बागडोर आई तो प्रशासन का वह सारा स्वरूप जो ब्रिटेन की विशेषता थी, भारत पर छा गया। इस नये ब्रितानी स्वरूप को लोक सेवा, नौकरशाही अथवा नागरिक सेवा का नाम दिया गया, जिसका आधार आई.सी.एस. अधिकारी थे।

आरंभ में इंग्लैण्ड के 20-21 वर्ष के शिक्षित, प्रतिभाशाली युवाओं को आई.सी.एस. की प्रतियोगी परीक्षा में सफलता के बाद भारत में प्रशासनिक लोक सेवा के लिए चुना जाता था। यह अधिकारी एक निश्चित उद्देश्य- ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा एवं सेवा तथा आत्महित के लिए भारत आते थे और निश्चित समय तक सेवा करके अपने देश लौट जाते थे। यह अधिकारी स्वयं को बहुत श्रेष्ठ समझते थे और इसी श्रेष्ठता के भ्रम से ग्रस्त रहकर प्रशासन करते थे। इन्होंने कभी भी भारत को आत्मसात नहीं किया, बल्कि पूरी तरह सामाजिक अलगाव की नीव डालकर भारत से विदा होते थे।

ब्रिटिश आई.सी.एस. की इस मानसिकता और आचरण ने धीरे-धीरे भारतीयों को विचलित करना आरंभ कर दिया। लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग तेज होने लगी। भारतीयों की मांग को गम्भीरता से लिया जाने लगा। 1886 में चार्ल्स एचीसन की अध्यक्षता में एक आयोग स्थापित किया गया। इस आयोग ने सामान्य लोक सेवा को भारतीय नागरिक सेवा, प्रान्तीय सेवा तथा अधीनस्थ सेवा में वर्गीकृत कर दिया। तत्पश्चात् माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर 1919 में लोक सेवा की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ ली जाने जाने लगी, और इस तरह भारतीय लोक सेवा में भारतीयों की संख्या बढ़ाने का रास्ता खुला। जब लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग और तेज हो गयी तो लार्ड ली आयोग की स्थापना की गई। इसका परिणाम यह निकला कि 1935 से लोक सेवाओं के भारतीय करण का मार्ग पूरी तरह प्रशस्त हो गया। स्वतन्त्रता के बाद आई.सी.एस. के स्थान पर नवीन अखिल भारतीय सेवाऐं, यथा- आई.ए.एस. और आई.पी.एस. की स्थापना की गयी। 1951 में आई.एफ.एस. की सेवा भी अस्तित्व मे आ गयी।

यह सब कुछ लिखने का उद्देश्य यह है कि समय के साथ-साथ राजनीतिक सत्ता और व्यवस्था बदलने के बाद यद्यपि प्रशासनिक क्षेत्र में मानवीय तत्व बदल गये, संरचना बदल गयी, लक्ष्य बदल गये, लेकिन जो नहीं बदल सकी, वह है लोक सेवियों की मानसिकता और उनका आचरण। लोक सेवा ने पूरी तरह नौकरशाही का चोला पहन लिया है। ब्रिटिश काल में इसने अभिजात् वर्ग (Elite Class) का रूप धारण कर लिया था, लेकिन अब क्योंकि नौकरशाही मध्यवर्ग से है, इसलिए यह अभिजात् वर्गीय तो नहीं हो सकी, लेकिन वो स्वयं को श्रेष्ठतम् समझने लगी। आज भी यह साधारण लोगों से दूर सिविल लायंस के विशाल बंगलों में निवास करती है। एक मंत्री से मिलना आसान है, लेकिन एक जिलाधीश या कमीशनर से मिलना बहुत कठिन है।

9.2.1 विशेषज्ञ: प्रकृति और आचरण

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के कारण राज्य में एक नया वर्ग उदित हुआ। यह वर्ग था तकनीशियनों, वैज्ञानिकों, विधिशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों का। ये वे वर्ग थे जो उद्योगों के क्षेत्र में अपना सक्रिय योगदान देते थे। आगे चलकर इन्हीं वर्गों में स्वास्थ्य, शिक्षा और प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित कर्मी भी जुड़ गये। जैसे-जैसे आर्थिक जगत का विकास होता गया, इन कर्मियों का भी महत्व बढ़ता गया। यहाँ तक कि जहाँ लोक सेवकों को सामान्यतज्ञ कहा गया, इन विशिष्ट कर्मियों को विशेषज्ञ कहा जाने लगा। इस तरह शासकीय समाज तकनीकी दृष्टि से सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ में आज विभक्त हो चुका है।

'सामान्यवादी' एवं 'विशेषज्ञ' शब्दों की कोई स्पष्ट सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। समझ में केवल इतना ही आ सकता है कि जो लोक सेवा में प्रतियोगी परीक्षा द्वारा चयनित होते हैं, वे सामान्यज्ञ की श्रेणी में आते हैं। इनकी कोई विशेष पृष्ठभूमि नहीं होती और यह सरलता से नियमानुसार शासन के एक विभाग या शाखा से दूसरे विभाग में स्थानान्तरित होते रहते हैं। अधिकांशतः इनका कार्य प्रबन्धन का होता है। कुछ समालोचकों का मानना है कि इनका कार्यक्षेत्र पोस्डकोर्ब (POSDCORB)- नियोजन, संगठन, पर्यवेक्षण, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन तथा बजट-निर्माण की परिधि में आता है।

यदि सामान्यज्ञ को समझ लिया जाये तो विशेषज्ञ को समझना आसान होगा। एक लोक सेवक (IAS) किसी एक प्रशासनिक कार्य में निपुण, दक्ष और अनुभवी हो जाए, तब उसे भी विशेषज्ञ माना जाऐगा। लेकिन सामान्यतः वो अधिकारी जो अपनी विशिष्ट तकनीकी शिक्षा के आधार पर लोक सेवा आयोग से प्रतियोगी परीक्षा द्वारा चयनित होता है और चयन के बाद प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजर कर वह विशिष्ट तकनीकी पद पर नियुक्त होता है और उसी विशेष विभाग में उसकी पदोन्नति होती रहती है, तो वह अधिकारी विशेषज्ञ कहलाऐगा। इस तरह विशेषज्ञ को जो बात सामान्यज्ञ से पृथक करती है, वह है उसकी विशिष्ट शिक्षा और प्रशिक्षण। विशेषज्ञ अपने क्षेत्र में 'दक्ष', तकनीकी दृष्टि से प्रतिभाशाली और समय के साथ अनुभवी होता है।

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने विशेषज्ञ सेवाओं को कार्यात्मक सेवाओं की संज्ञा दी है। फुल्टन समिति (ब्रिटेन की लोक-सेवा समिति, 1966-68) ने उन कर्मचारियों को विशेषज्ञों का नाम दिया है, जो अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार शासन में एक से अधिक विभिन्न पदों पर कार्य करते हैं। इस श्रेणी के अधीन अधिवक्ता, चिकित्सक, अभियान्त्रिक, वैज्ञानिक, लेखाकार, अर्थशास्त्री, ड्राफ्टमैन आदि आते हैं।

9.2.2 विशेषज्ञ और सामान्यज्ञ में अन्तर

संक्षेप में सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ का अंतर स्पष्ट करना जरूरी है। भारतीय लोक-प्रशासन संस्थान ने सेवीवर्ग प्रशासन पर एक सेमीनार का आयोजन किया था। विषय था 'सामान्यवादी अधिकारियों' एवं 'विशेषज्ञ' अधिकारियों को परिभाषित करना।' यद्यपि सेमीनार इस उद्देश्य में असफल रहा, लेकिन कुछ तथ्य स्पष्ट हुए-

- ऐसे तमाम लोक सेवक जिन्होंने अखिल भारतीय लोक सेवा की अनिवार्य प्रतियोगिता सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त की हो, तथा तत्पश्चात् अनिवार्य प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण की हो, उनको चयनित और प्रशिक्षित करके मध्यस्तरीय निरीक्षणात्मक पदों पर नियुक्त कर दिया जाता है, ऐसे कर्मचारी को सामान्यज्ञ अधिकारी कहा जाता है। इन अधिकारियों के लिए सामान्यतः अनिवार्य तकनीकी या व्यावसायिक अर्हतायें निर्धारित नहीं है।
- दूसरी व्यवस्था यह है कि मध्यस्तरीय पदों पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है, जिन्होंने सम्बन्धित पद के लिए निर्धारित अनिवार्य तकनीकी या व्यावसायिक योग्यता प्राप्त की हो। ये व्यक्ति अपनी शिक्षा एवं विशिष्टता के आधार पर उन्हीं पदों पर नियुक्त होते हैं, जिनके लिए इनका चयन हुआ है। ऐसे

अधिकारियों को विशेषज्ञ कहा जाता है। इनके कार्य अपनी प्रकृति से तकनीकी होते हैं। यह अपने कार्यक्षेत्र में 'दक्ष' या माहिर होते हैं, इसलिए इनको विशेषज्ञ का दर्जा दिया गया है।

9.3 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद

विवाद चाहें कहीं भी हों-व्यक्तियों के मध्य, दलों के मध्य या वर्गों के मध्य, उनके कारण चार हो सकते हैं- मनोवैज्ञानिक, भौतिक, कार्यात्मक अथवा परिस्थितीय। कहीं न कहीं यह चारों कारण सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ के टकराव में भी देखने को मिलते हैं। विश्व के अनेक लोकतांत्रिक देशों की प्रशासनिक व्यवस्था में सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञों के मध्य अनेक मुद्दों पर विवाद और टकराव की समस्या व्याप्त है। विशेष तौर से इंग्लैण्ड, अमरीका और भारत इस प्रशासनिक द्वन्द से पूरी तरह ग्रस्त हैं। इस विवाद की पृष्ठभूमि 1965 में ब्रिटेन की 'फुल्टन समिति' ने तैयार की थी। उसने अपनी सिफारिश में पहली बार 'सामान्यज्ञ' तथा 'विशेषज्ञ' शब्दों का प्रयोग किया और दोनों वर्गों के कार्यों एवं दायित्वों का विश्लेषण करते हुए 'सामान्यज्ञ' की श्रेष्ठता को इंगित करके दोनों वर्गों में टकराव और द्वन्द को हवा दे दी। संघर्ष की यह बीमारी भारत में भी पहुँच गई, यहाँ तक कि इस विवाद ने डॉ0 शाह को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया, जिसके फलस्वरूप देश में इंजीनियरों ने हड़ताल कर दी।
सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के मध्य संघर्ष के अनेक कारण हैं। इनमें पहला है- मनोवैज्ञानिक, दूसरा भौतिक है, तीसरा कार्यात्मक और चौथा परिस्थितिय।

1. **मनोवैज्ञानिक कारण-** अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से, अपनी परम्पराओं से, अपनी विरासत से और अपनी मानसिकता से सामान्यज्ञ स्वयं को श्रेष्ठतम समझता है, न केवल किसी एक वर्ग के मुकाबले बल्कि पूरे समाज के संदर्भ में। इंग्लैण्ड में जहाँ इसका विधिवत् जन्म हुआ, वहाँ इसने बहुत जल्दी अभिजात् वर्ग का रूप ले लिया; स्वयं को 'स्वर्ग-जन्मा' मानने लगा; उपनिवेशों में इस वर्ग के अधिकारियों ने केवल स्वामियों की तरह ही व्यवहार किया और उपनिवेशी निवासियों को लगभग अपना गुलाम बना लिया। आश्चर्य की बात यह है कि जब लोक सेवाओं का भारतीयकरण हो गया और भारतीय युवा आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करके विभिन्न पदों पर अधिकारी बने तो उन्हें भी अंग्रेजों के रंग-रूप को छोड़कर वह सब कुछ विरासत के रूप में ग्रहण कर लिया जो नौकरशाही की पहचान थी।
   स्वतन्त्रता के बाद भी स्थिति नहीं बदली। केवल आई.सी.एस. का नाम आई.ए.एस. हो गया। मानसिकता ज्यों की त्यों वही बनी रही। भारतीय आई.ए.एस. अधिकारी, पूरी तरह 'उत्कृष्ठ मनोग्रंथि' के आवेश में जकड़े रहे। उनकी 'सनक' (Complex) में कोई सुधार नहीं हुआ।
   दूसरी ओर विशेषज्ञ सामान्यज्ञ की मानसिकता के विरूद्ध प्रतिकार (Counter-reaction) भावना से मजबूर होकर मनःसंकट (Psychic Crisis) में पहुँच जाते हैं। वे किसी भी रूप में स्वयं को कमतर नहीं समझते हैं, और किसी भी स्थिति में वे सामान्यज्ञों के आधिपत्य में रहना सहन नहीं कर सकते। तब सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों में टकराव होना स्वाभाविक है। सामान्यज्ञों की प्रतिष्ठा को सदा बनाए रखना और विशेषज्ञों को उनके अधीन रखना अन्याय है।
2. **भौतिक कारण-** भौतिक कारणों को आर्थिक भी कहा जा सकता है। भौतिक कारणों में सबसे अहम वेतन विसंगतियाँ हैं। विशेषज्ञों का तर्क है कि उनके कार्य और उत्तरदायित्व किसी भी रूप में सामान्यज्ञों (आई.ए.एस.) से कम नहीं है। उनका कहना है कि वे दक्षता के ऐसे कार्य करते हैं, जो सामान्यज्ञ नहीं कर सकते, जबकि वे सामान्यज्ञों के प्रशासनिक कार्यों को पूरी निपुणता के साथ अंजाम दे सकते हैं। लेकिन ऐसा होने पर भी सामान्यज्ञों को विशेषज्ञों की तुलना में वेतन अधिक दिया जाता है तथा उनको तरह-तरह के भत्ते भी दिए जाते हैं। पदोन्नति के मामले में भी सामान्यज्ञ अधिक भाग्यशाली हैं। एक आई.ए.एस. को जल्दी-जल्दी पदोन्नति देकर 5 वर्ष बाद जिलाधीश व 15 वर्ष के बाद केन्द्र सरकार में सह-सचिव तथा

राज्य में आयुक्त बना दिया जाता है। इसके विपरीत विशेषज्ञ को उच्च पद पर पहुँचते-पहुँचते 20-25 वर्ष लग जाते हैं।

3. **कार्यात्मक कारण-** कार्यात्मक कारण में मुख्य मुद्दा नीति-निर्माण और निर्णय-निर्माण के क्षेत्र का है। नीति-निर्माण अथवा निर्णय-निर्माण का कार्य सामान्यज्ञों को मिला हुआ है। यहाँ तर्क यह है कि विशेषज्ञों द्वारा एकत्रित तथ्यों एवं आंकड़ों के आधार पर जो कुल कार्य का 90 प्रतिशत है, सामान्यज्ञ निर्णय-निर्माण और नीति-निर्माण का काम करके अपने महत्व और श्रेष्ठता को सिद्ध करते हैं। यह अनुचित और अतार्किक है। विशेषज्ञों का तर्क है कि नीति-निर्माण का काम भी विशेषज्ञ को मिलना चाहिए, जिसमें उनकी भूमिका अधिक रहती है। विशेषज्ञों का यह तर्क तो उचित है, लेकिन शासन स्तर पर केवल सामान्यज्ञ को दक्षता और श्रेष्ठता को स्वीकार किया जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों वर्गों में टकराव होना स्वाभाविक है।
4. **परिस्थितिय कारण-** शासन में एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक संगठन अथवा निकाय है, जिसे सचिवालय कहते हैं। केन्द्र और राज्य के सचिवालय शासन के विभिन्न मंत्रालयों से जुड़े होते हैं। मंत्रालयों में मंत्री होते हैं, लेकिन सचिवालयों में सचिवों की एक श्रृंखला होती है। इन सचिवों एवं मंत्रियों में एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, जो संवाद और सूचना के माध्यम से निरन्तर जारी रहता है। यह सचिव सामान्यज्ञ से होते हैं और क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप से मंत्रियों के सम्पर्क में रहते हैं, इसलिए इनका महत्व भी अधिक हो जाता है।

दूसरी ओर प्रत्येक राज्य और केन्द्र में मुख्यालय स्तर पर निदेशालय होते हैं, जिनके मुखिया निदेशक होते हैं। स्थिति यह होती है कि सचिव और निदेशक का रिश्ता पदसोपनीय आधार पर होता है। एक तरह से निदेशक सचिव के अधीन होता है। वह अपनी मर्जी से अपने विभाग के मंत्री से नहीं मिल सकता है। यदि मंत्री चाहता है तो वह निदेशक को बुलाकर बात कर सकता है लेकिन प्रायः वह विभाग के सचिव के माध्यम से ही राजनीतिक स्तर पर बात करता है। क्योंकि निदेशक विशेषज्ञ होता है और विभाग का अधिकांश कार्य निदेशालय के ही माध्यम से होता है, इसलिए विशेषज्ञ को तब बड़ी मानसिक चोट पहुँचती है, जब सामान्यज्ञ (सचिव) उसको आदेश देता है। ये ऐसा परिस्थितिय कारण है जो सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के टकराव की तीव्रता को बढ़ाता है।

9.4 अपनी श्रेष्ठता के सम्बन्ध में सामान्यज्ञों के तर्क

सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के मध्य का विवाद तब और आसानी से समझ में आयेगा जब स्वयं इन दोनों वर्गों के प्रवक्ताओं के मन को टटोला जाए। सर्वप्रथम हम सामान्यज्ञों के तर्कों को लेते हैं-

1. सामान्यज्ञ स्वयं को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से श्रेष्ठ मानते हैं। वे अपनी श्रेष्ठता की जड़े ब्रिटिश शासन काल में खोजते हैं। वे समझते हैं कि वे ब्रिटिश लोक सेवियों (ICS) के आधिकारिक वारिस हैं। उनके मौलिक वर्ग (नौकरशाह) ब्रिटिश साम्राज्य की धरती पर ब्रिटिश राजा के शासन के बाद प्रशासन के 'शाह' हैं। उनका दावा है कि वे भारत में आज भी अपने पूर्वजों की प्रशासनिक विरासत को संजोए हुए हैं।
2. सामान्यज्ञों का दूसरा तर्क यह है कि वे ऐसे प्रशासनिक काम करते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध जनहित से है, इसलिए वे जन सम्पर्क में रहते हैं, जनता की आवश्यकताओं और इच्छाओं से परिचित रहते हैं। इसलिये, विभिन्न विभागों के निकायों पर सामान्यज्ञों का वर्चस्व स्वाभाविक होता है।
3. सामान्यज्ञों का दावा है कि नीति-निर्माण की वैधानिकता की बारीकियों को वे ही जानते हैं। यह उनका उत्तरदायित्व है कि नीतियाँ सम्बन्धी ऐसे निर्णय लें, जो कानूनी दृष्टि से सटीक हो, जो संविधान की मर्यादा को भी बनाये रखें और जिनके नतीजे जन-हित में भी हों।

4. लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनेता अपनी नीतियों, विश्वासों, विचारधाराओं तथा वायदों (मैनीफेस्टो) के आधार पर निर्वाचित होकर आते हैं तथा सत्ता ग्रहण करके उनका यह कर्तव्य होता है कि वे जनता से किए वायदों को पूरा करें। सामान्यज्ञों का कहना है कि केवल वे ही सत्ताधारियों द्वारा किये गये वायदों को पूरा कर सकते हैं। राजनेता अपने राजनीतिक अस्तित्व के लिए सामान्यज्ञों पर ही निर्भर रहते हैं।
5. सामान्यज्ञों का मंत्रियों से प्रत्यक्ष संवाद रहता है। विशेषज्ञों में मंत्रियों को समझाने की, विश्वास दिलाने की अथवा आश्वस्त करने की महारत नहीं होती है। विशेषज्ञ अड़ियल और दंभी होते हैं। और वे न तो मंत्री की दशा को समझते हैं न उसको विश्वास दिला सकते हैं। वे सदा अभिनीत से प्रभावित रहकर मंत्री को परामर्श देते हैं।
6. पाल एपल्वी विशेषज्ञ को संकीर्ण प्रवृत्ति का मानता है। वह किसी भी समस्या को तकनीकी दृष्टि से देखता है, ओर उसी संदर्भ में फैसले लेता है। अतः वह लचीलेपन से दूर रहता है। नतीजा यह निकलता है कि सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के नजरियों में सामंजस्य बिठाना कठिन होता है।

9.5 विशेषज्ञों के तर्क

1. विशेषज्ञों के भी अपने पक्ष में और सामान्यज्ञों के महत्व के विरूद्ध अनेक मजबूत तर्क हैं। उनकी पहली शिकायत ये है कि शासन की नजर में आई.ए.एस. अधिकारियों का अधिक महत्व है। सचिवालय में 50 प्रतिशत से अधिक उपसचिव जैसे उच्च पदों पर आई.ए.एस. की नियुक्ति की जाती है। नतीजा यह निकलता है कि सचिव एवं उप-सचिव के पदों पर सामान्यज्ञों के आसीन रहने से विशेषज्ञों का मंत्रियों से सीधा सम्बन्ध टूट जाता है, जिसके कारण वे तकनीकी विषयों पर अपने सुझावों और दृष्टिकोणों को मंत्रियों तक नहीं पहुँचा सकते। आज भी विशेषज्ञ राजनीतिक संवाद में सामान्यज्ञों की भूमिका अहम होती है, जिसके कारण मंत्री की नजर में सामान्यप्ज्ञ का रूतबा बढ़ता है और विशेषज्ञों का महत्व कम हो जाता है। विशेषज्ञों का तर्क है कि राजनीतिक स्तर पर तकनीकी समस्याओं और आवश्यकताओं की सही व्याख्या केवल विशेषज्ञ ही कर सकता है, लेकिन सामान्यज्ञ उस से यह अधिकार भी छीन लेता है, जिससे समस्या की जटिलता तो बढ़ती ही है, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विशेषज्ञों में हीनता की भावना पैदा होती है। और ये सच है कि किसी भी स्तर पर असंतोष, तनाव और अवसाद (कमचतमे्पवद) को जन्म देता है, जो विकास के लिए घातक होता है।
2. विशेषज्ञ कहते हैं कि सामान्यज्ञ नीति-निर्माण या निर्णय निर्माण के लिए विशेषज्ञों पर निर्भर करते हैं, जो उनके द्वारा एकत्रित एवं संयोजित तथ्यों एवं आंकड़ों के आधार पर फैसले करते हैं। यदि विशेषज्ञ अपनी विशेषज्ञयी जिम्मेदारी न निभाऐं तो सामान्यज्ञ राजनीतिज्ञों के सामने असहाय हो जायेंगे।
3. विशेषज्ञों का कहना है कि तकनीकी कार्यो जैसे-कृषि, सिंचाई, आर्थिक नियोजन, स्वास्थ्य, इंजीनियरिंग में सामान्यज्ञ शून्य होते हैं और उनकी कोई भूमिका नहीं होती है।
4. यदि कोई कार्य या योजना सफल होती है तो उसका श्रेय राजनीतिज्ञ और सामान्यज्ञ दोनों लेते हैं, लेकिन अगर इस योजना में असफल हो गये तो सारा दोष विशेषज्ञों के सिर मढ़ दिया जाता है।
5. विशेषज्ञों का एक मजबूत तर्क ये है कि वे भी प्रशासनिक कार्यों को उतनी महारत से कर सकते हैं, जिस तरह सामान्यज्ञ करते हैं, क्योंकि उनकी नजर, तकनीकी और पैनी होती है। जबकि सामान्यज्ञ तकनीकी कामों से अनभिज्ञ होता है। लेकिन दुख की बात यह है कि सामान्यज्ञों को देश के उच्चतम पदों पर बैठाया जाता है, जबकि एक सशक्त और दक्ष विशेषज्ञ को आई.ए.एस. और आई.एफ.एस. के सामने तुच्छ समझा जाता है, भले ही वह देश का महान वैज्ञानिक हो, अर्थशास्त्री हो अथवा वह एक विश्व ख्याति का चिकित्सक हो।

6. विशेषज्ञों का दावा है कि वे ही ऐसा वर्ग हैं जो देश को विकास की बुलन्दियों तक पहुँचाने में सक्षम हैं। वो देश को सैनिक और असैनिक क्षेत्रों में सशक्त और महान बनाने की क्षमता रखते हैं। वो देश के लिए गौरवशाली काम करता है। लेकिन दुख की बात यह है कि यदि वह प्रधानमंत्री का विशेष सलाहकार भी बनता है तो भी केन्द्र के मुख्य सचिव से नीचा समझा जाता है।

उक्त बहस से यह बात साफ हे कि सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के मध्य टकराव ने प्रशासकीय व्यवस्था को प्रभावित किया है, जिसके प्रतिकूल परिणाम सामने आए हैं। उदाहरण के लिए विकास के कार्यों (निर्माण कार्य) में वित्त निर्गत न करके सामान्यज्ञ, विशेषज्ञों के काम में बाधा पहुँचाते हैं। बदले में विकास कार्यों में सुस्ती लाकर विशेषज्ञ नीतियों के कार्यान्वियन में विलम्ब करते हैं। और इस तरह आरोप-प्रत्यारोप का सिलसिला शुरू हो जाता है।

9.6 विवाद का समाधान

शासन के स्तर पर सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के विवाद की तीव्रता को देखते हुए, समस्या को गंभीरता से लिया गया है। उसने समय-समय पर यह स्वीकार किया है कि इस विवाद में एक प्रशानिक संकट का रूप ले लिया है। अतः शासन की ओर से इस समस्या के तार्किक समाधान के लिए अनेक परामर्शदात्री समितियों की स्थापना की गई। विशेष रूप से इनमें संसदीय समितियाँ थीं, जिन्होंने इस द्वन्द्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है, और इस दृष्टि से प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया है। सारांश में ऐसी समितियों के सुझाव इस प्रकार हैं-

1. योजना आयोग (1959) की एक सिफारिश में सुझाव दिया गया कि प्रशासन के पुरातन संगठन में इस तरह संशोधित किया जाए कि विशेषज्ञ प्रशासन के सभी स्तरों पर, उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से अपना योगदान प्रदान कर सकें।
2. द्वितीय वेतन आयोग ने सुझाव दिया कि जिस विभाग का कार्य मुख्यतः तकनीकी हो, उस विभाग का सचिव ऐसा व्यक्ति हो, जो प्रशासनिक योग्यता भी रखता हो और क्षेत्र विशेष में तकनीकी ज्ञान भी रखता हो।
3. संसद की प्राक्कलन समिति ने 1969 में अपनी सिफारिश में कहा कि सरकार को चाहिए कि वह वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं तकनीकी विषयों से सम्बद्ध विभागों के प्रशासनिक अध्यक्षों के रूप में तकनीकी पृष्ठभूमि वाले अधिकारियों की भर्ती करे।
4. तृतीय वेतन आयोग ने 1973 के अपने प्रतिवेदन में कहा कि वह प्रशासनिक सेवा में सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों की समानता की मांग का समर्थन करते हैं। इस संदर्भ में तर्क औचित्यपूर्ण ओर प्रासंगिक हैं। आयोग ने इंजीनियरी सेवा के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा कि उनको वे सारी सुविधाऐं दी जायें जिनके वे अधिकारी हैं।
5. प्रशासनिक सुधार समिति (राजस्थान) 1962 ने सिफारिश की कि तकनीकी विभागाध्यक्षों को सचिवालय में नीति निर्माण में संयुक्त किया जाना चाहिए। समिति के अनुसार विभिन्न शाखाओं की चीफ इंजीनियर नीति निर्माण का काम बखूबी कर सकते हैं। ऐसी ही सिफारिश प्रशासनिक सुधार समिति ने भी की। उसने अपनी सिफारिश (1963) में कहा कि विभिन्न विभागों के चीफ इंजीनियरों को सचिवालय में पदेन सचिव तथा पदेन उपनिदेशक के पद पर लाना चाहिए।

9.7 प्रशासनिक सुधार आयोग- 1966 के सुझाव

प्रशासनिक सुधार आयोग 1966 ने भारत के कार्मिक प्रशासन में सुधार और सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ के द्वन्द्व से उत्पन्न समस्या के समाधान हेतु कुछ सुझाव दिए थे, जो इस प्रकार हैं-

- आई.ए.एस. सेवा के लिए एक कार्यात्मक क्षेत्र निश्चित किया जाये तथा भू-राजस्व कार्यों तथा विनियमात्मक कार्यों को शामिल किया जाए;
- लोक सेवा में वेतन क्रमों में समान उत्तरदायित्व वाले अधिकारियों को समान वेतन क्रम में रखा जाये;
- प्रथम श्रेणी के सभी पदों को समान वेतन क्रमांकों में रखा जाये;
- प्रथम श्रेणी के इंजीनियरिंग पदों पर भर्ती प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से करनी चाहिए;
- प्राविधिक पदों के वरिष्ठ स्रत पर विश्व विद्यालय तथा औद्योगिक अनुभव वाले लोगों को रखा जाये;
- गैर-तकनीकी सेवाओं की परीक्षा में स्वास्थ्य (डॉक्टर) एवं प्राविधिक (इंजीनियर) विषयों को भी रखा जाए;
- केन्द्र में सचिवालय में भर्ती राज्य कर्मचारियों से की जाए;
- अनुभवी प्रशासकों एवं विशेषज्ञों की सहायता से सरकार को लोक सेवा के प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय नीति तैयार करनी चाहिए।

प्रशासनिक सुधार आयोग की दिलचस्पी सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के टकराव की समसया को हल करने में थी। चतुर्थ वेतन आयोग (1986-87) ने 'समानता' के सिद्धान्त पर विराम लगा दिया। उसने अपनी रिपोर्ट में साफ कहा: 'प्रशासनिक अधिकारियों' की श्रेष्ठता को स्वीकार करना चाहिए, विशेषज्ञों को प्रशासनिक अधिकारियों के मुकाबले वरीयता नहीं दी सकती। विशेषज्ञों को दूसरी पंक्ति में रहकर ही काम करना होगा। आयोग ने जान बूझकर विशेषज्ञों को वेतनमान कम कर दिए तथा सामान्यज्ञों के वेतन और भत्तों में बढ़ौत्तरी के लिए उदार रूख अपनाया। पाँचवे वेतन आयोग ने भी लगभग यही रूख अपनाया। इसका स्पष्ट कारण यह था कि आयोगों तथा वेतन आयोगों के सदस्य स्वयं सामान्यज्ञ से थे और वे राजनेताओं के अधिक समीप थे।

9.8 भारत सरकार की ओर से विवाद के समाधान के लिए पहल

भारत सरकार ने विवाद की गंभीरता और उसे बुरे परिणामों को देखते हुए समाधान हेतु अनेक कदम उठाये हैं। उनमें से महत्वपूर्ण कदम निम्नवत् हैं-

1. **कार्यकाल प्रणाली का कमजोर होना-** परम्परागत प्रणाली यह थी कि सामान्यज्ञ अधिकारियों का जिले या क्षेत्र से सचिवालय एवं सचिवालय से जिले या क्षेत्र में स्थानान्तरण किया जाता था। यह प्रणाली अब समाप्त हो गई है। अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि वरिष्ठ अधिकारियों को स्थायी रूप से सचिवालय में ही रखा जाये।
2. **नवीन विशेषज्ञ अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओं की स्थापना-** भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत स्वतन्त्रता से पहले काल में केवल दो अखिल भारतीय सेवायें थीं- भारतीय सिविल सेवा एवं भारतीय पुलिस सेवा। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय सिविल सेवा के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा अस्तित्व में आ गई। 1963 में भारतीय वन सेवा, भारतीय अभियान्त्रिकी सेवा तथा भारतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा की भी सृष्टि की गई। इस तरह नवीन अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना करके विशेषज्ञ सेवाओं के महत्व को स्वीकृति मिली है। यह भी सिफारिश की गई है कि इन सेवाओं के अधिकारियों को अच्छा वेतन तथा अन्य सेवायें भी प्रदान की जायें ताकि इनमें श्रेष्ठता का एहसास बढ़े।
3. **प्रशासनिक दायित्व के पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति-** प्रशासनिक पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति सरकार की ओर से एक अच्छी पहल है। जैसे- अब अक्सर शिक्षा विभाग का सचिव शिक्षा शास्त्री या विज्ञान सम्बन्धी मामलों के विभाग का सचिव वैज्ञानिक हो सकता है, यद्यपि राज्यों में यह रूझान अभी

कम देखने को मिलता है, लेकिन कुछ राज्यों में ऐसी पहल शुभ संकेत है। योजना आयोग में तो केवल विशेषज्ञ अधिकारी ही कार्यरत हैं।

भारत सरकार की ओर से सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के विवाद को हल करने के लिए कुछ और संरचनात्मक क्षेत्र में कदम उठाने पर जोर दिया गया है, जिनके मुख्य इस प्रकार हैं-

- पृथक पद सोपान- इस व्यवस्था के अन्तर्गत विशेषज्ञों को अधिक मान्यता मिलेगी, यद्यपि वेतनक्रम सामान्य होगा। स्वीडन, पश्चिमी जर्मनी तथा ऑस्ट्रेलिया में यह प्रणाली प्रचलित हैं।
- समान्तर पद-सोपान- इस प्रणाली में महानिदेशक (विशेषज्ञ), उच्च सचिव (सामान्यज्ञ) एवं निदेशक (अधीनस्थ विशेषज्ञ), उच्च सचिव (सामान्यज्ञ) एवं निदेशक (अधीनस्थ विशेषज्ञ) अवर सचिव के साथ मिलकर काम करते हैं।
- संयुक्त पद सोपान- इस व्यवस्था में उच्च-सचिव (सामान्यज्ञ) तथा निदेशक (विशेषज्ञ) संयुक्त रूप से स्थायी सचिव (सामान्यज्ञ) के अधीन काम करते हैं। यहाँ सामान्यज्ञवादी एवं विशेषज्ञ दोनों को ही मन्त्रालय को परामर्श देने का अवसर मिलता है।
- एकीकृत पद सोपान- यह सर्वाधिक क्रान्तिकारी सुझाव है। सुझाव यह है कि सामान्य स्तर की एक प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से लोक सेवा में भर्ती की जानी चाहिए और वेतन एवं सेवा की शर्तें भी समान होनी चाहिए। इस सेवा को भारतीय संघीय सेवा का नाम दिया जा सकता है। भारत में इस प्रणाली पर मंथन हो रहा है, जबकि पाकिस्तान में अगस्त 1973 से एकीकृत लोक सेवा के निर्माण की पहल की जा चुकी है, और सभी को समान अवसर प्रदान किए गए हैं।

लेकिन भारत में वास्तविकता यह है कि सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ विवाद के समाधान के लिए जो भी कदम उठाये जाते हैं, कहीं न कहीं भारतीय नौकरशाही उनमें बाधायें खड़ी कर देती है, क्योंकि निर्णय-निर्माण का अधिकार उसी को प्राप्त है जिसका विरोध करना राजनीतिक स्तर पर भी संभव नहीं है।

9.9 निष्कर्ष

ब्रिटेन, अमरीका तथा फ्रांस में सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ का विवाद काफी हद तक सुलझा लिया गया है, लेकिन भारत में यह अभी तक जारी है। स्वतंत्रता के बाद परिवर्तित परिस्थितियों ने सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों दोनों के महत्व को स्वीकृति दी है। स्पष्ट रूप से प्रशासन में दो क्षेत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण समझे गये हैं- नीति निर्माण तथा नीति कार्यान्वयन। यह दो क्षेत्र विभिन्न विभागों के मंत्रियों को सामान्यज्ञों से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ते हैं। दोनों के मध्य सीधा संवाद होता है। सामान्यज्ञ नीति निर्माण में मंत्रियों को परामर्श देता है; मंत्रियों की अक्षमताओं, भावनाओं तथा जनता से किये गये वायदों को समझाने का प्रयास करता है। इसलिए विशेषज्ञ को नीति निर्माण का कार्य सौंपना अनुचित होगा। लेकिन इतना जरूर है कि तकनीकी क्षेत्र में सामान्यज्ञ का ज्ञान लगभग शून्य होता है। अतः यहाँ विशेषज्ञ को मंत्रियों को परामर्श देने का अधिकार मिलना चाहिए।

जहाँ तक वेतन और भत्तों तथा अन्य सुविधाओं का प्रश्न है। विशेषज्ञ को भी सामन्यज्ञ के समान वेतन तथा भत्ते मिलना चाहिए, क्योंकि विशेशज्ञ अपने कार्यालय से लेकर क्षेत्र में जाकर भी काम करता हैं।

जहाँ तक सम्मान और प्रतिष्ठा का प्रश्न है तो यह एक स्वनिष्ठ (subjective) विषय है। समाज या कोई वर्ग अथवा स्वयं व्यक्ति दूसरों के बारे में क्या सोचते हैं और क्यों सोचते हैं, यह सब कुछ परम्पराओं और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आज तक जितने नोबेल पुरस्कार मिले हैं वे लगभग विशेषज्ञों को ही मिले हैं। हमारा किसी के प्रति क्या नजरिया है, इस पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई जा सकती। प्रतिष्ठा और महत्व को वेतन या भत्तों से नहीं मापा जा सकता।

फिर भी यह स्वीकार करना चाहिए कि परिस्थिति विशेष में अथवा समस्या विशेष के समाधान के लिए विशेषज्ञ होते हैं। ऐसी स्थिति में नीति विषयक प्रश्नों पर निर्णय लेते समय विशेषज्ञों की सलाह पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यहाँ सामान्यज्ञ की स्थिति निर्णायक की तथा विशेषज्ञ की स्थिति सलाहकार की होती है। इन दोनों के नजरियों मे तारतंभ्य स्थापित रहना चाहिए। इसलिए सामान्यज्ञ को विशेषज्ञ से व्यवहार में अत्यंत सतर्क, ज्ञानशील तथा शालीन होना चाहिए। उसे विशेषज्ञ के आत्म-सम्मान को किसी भी तरह ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए।

जहाँ तक संभव हो दोनों के वेतन, भत्ते और अन्य भौतिक सुविधाऐं समान होना चाहिए। राजनीतिक स्तर पर भी विशेषज्ञों को पूरा सम्मान मिलना चाहिए। तकनीकी क्षेत्रों में नीति निर्णायक विशेषज्ञ होने चाहिए।

सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद को चौथे वेतन आयोग की नजर से कभी भी नहीं देखना चाहिए, जिसने विवाद को कम करने के बजाये और बढ़ाया, जिसकी वजह से विशेषज्ञों की देशव्यापी हड़ताल का सामन करना पड़ा था। पाँचवें और छठे वेतन आयोग का रूख तर्क ओर न्याय पर आधारित है। इन वेतन आयोगों की सिफारिशों की रौशनी में विवाद की तीव्रता को कम किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. आई.ए.एस. का मौलिक नाम क्या है?
   क. आई.पी.एस. ख. आई.एफ.एस.
   ग. आई.सी.एस. घ. आई.आर.एस.
2. सामान्यज्ञ का अर्थ है-
   क. असैनिक कर्मचारियों का वर्ग ख. किसी भी प्रकार के सरकारी कर्मचारी
   ग. सामान्य कार्यालयों के कर्मचारी घ. नौकरशाह
3. फुल्टन समिति (1965) का किस देश से सम्बन्ध है?
   क. अमरीका से ख. फ्रांस से
   ग. ग्रेट ब्रिटेन से घ. भारत से
4. किस समिति ने पहली बार 'सामान्यज्ञ' और 'विशेषज्ञ' शब्दों का प्रयोग किया?
   क. प्रशासनिक सुधार समिति (राजस्थान) ख. प्राक्कलन समिति (1969)
   ग. फुल्टन समिति (1965) घ. हार्थॉर्न समिति
5. नीति-निर्माण का उत्तरदायित्व किसका है?
   क. विशेषज्ञों का ख. सामान्यज्ञों का
   ग. मंत्रियों का घ. संसद का
6. किस वेतन आयोग ने विशेषज्ञों की तुलना में सामान्यज्ञों को वरियता दी?
   क. चौथे वेतन आयोग ने ख. पाँचवे वेतन आयोग ने
   ग. छठे वेतन आयोग ने घ. सातवें वेतन आयोग ने

9.10 सारांश

लोक प्रशासन में सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ का विवाद एक गंभीर समस्या है। इसने भारत के विकास की गति को धीमा किया है। यह विवाद क्या है, इसे सारांश में समझना होगा-

- मानवीय स्तर पर किसी देश के बहुमुखी विकास की जिम्मेदारी दो प्रकार के सरकारी कर्मचारीगण पर निर्भर करती है- (1) सामान्यज्ञ जिनका काम मुख्यतया प्रशासनिक होता है, तथा (2) विशेषज्ञ जिनका काम तकनीकी होता है।

- सामान्यज्ञों में ऐसे व्यक्ति आते हैं जिन्होंने अनिवार्य शिक्षा प्राप्त की हो तथा जिनका चयन उनकी योग्यता तथा बौद्धिक क्षमता के आधार पर लोक सेवा आयोग द्वारा किया जाये।
- विशेषज्ञों में ऐसे युवा आते हैं जिन्होंने एक निश्चित तकनीकी शिक्षा प्राप्त की हो और जो अपनी दक्षता के आधार पर लोक सेवा आयोग से चुनकर आयें।
- सामान्यज्ञों में अधिकांशतः आई.ए.एस., आई.पी.एस. तथा आई.एफ.एस. के अधिकारी होते हैं, जबकि विशेषज्ञों में वैज्ञानिक, डॉक्टर, इन्जीनियर, अर्थशास्त्री, विधिशास्त्री इत्यादि आते हैं।
- सामान्यज्ञों को आमतौर से लोक सेवक या नौकरशाह (Bureaucrats) कहा जाता है, जबकि विशेषज्ञों को आजकल शिल्पी-तांत्रिक (Technocrats) कहा जाता है।
- नौकरशाह या सामान्यज्ञ स्वयं को अधिक शक्तिशाली, प्रभावशाली, प्रतिशिक्षित और महत्वपूर्ण मानते हैं। इनकी मानसिकता अभिजातीय और सामन्ती होती है। यह मानते हैं कि उनकी जड़े अतीत के गौरवशाली इतिहास में हैं, इनको प्रशासन करने का स्वाभाविक और दैवी अधिकार है।
- विशेषज्ञ भी अपनी हैसियत को किसी तरह कमतर नहीं आंकते। उनका दावा है कि वे अपने कार्य में दक्षता और महारत रखते हैं। बिना उनके देश का विकास एक क्षण के लिये भी आगे नहीं बढ़ सकता।
- लेकिन सच यह है कि शासकीय स्तर पर सामान्यज्ञों को अधिक महत्व दिया जाता है। इनका वेतनमान, इनके भत्ते तथा इनकी सुविधायें विशेषज्ञों की तुलना में कहीं अधिक होती हैं।
- सामान्यज्ञ प्रशासनिक कार्यों के अतिरिक्त नीति-निर्माण का कार्य भी करते हैं। वे मंत्रियों को परामर्श देते हैं और उनके समीप रहते हैं, इसलिये उनका महत्व विशेषज्ञों से अधिक होता है।
- इसी कारण वे शासकीय तथा सामाजिक स्तर पर अधिक प्रतिष्ठित मानते जाते हैं।
- इस तरह सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों में टकराव मनोवैज्ञानिक रूप का होता है, जिसने अनेक बार देश को संकट में डाला है।
- भारत सरकार ने इस विवाद को गंभीरता से लिया है और इसके समाधान के लिए समय-समय पर आयोगों और समितियों द्वारा प्रयास किये हैं।
- अब धीरे-धीरे सरकार की समझ-बूझ से यह विवाद धीमा पड़ता जा रहा है, यद्यपि नौकरशाही की मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया है।
- वर्तमान युग इलेक्ट्रॉनिकी, डिजीटल (बाइनरी डिजेट से संचालित सूचना संग्रह) कम्प्यूटरिंग का है, जो विशेषज्ञों की देन है ओर जिसने प्रशासनिकों को भी अतिरिक्त मस्तिष्क प्रदान कर दिया है, ऐसे में विशेषज्ञों का कृतज्ञ होकर और प्रोत्साहन देकर उनका सम्मान करना पूरे समाज का कर्तव्य है।

9.11 शब्दावली

सबजैक्टिव (Subjective)- आत्मनिष्ठ, व्यक्तिनिष्ठ अर्थात कोई व्यक्ति दूसरे के बारे में क्या सोचता है और क्यों सोचता, यह सब कुछ उसके नजरिए पर निर्भर करता है।

Psychic Crisis- मनोसंकट अर्थात किसी व्यक्ति का किसी घटना, व्यवहार अथवा समस्या को देखकर या महसूस करके मानसिक उथल-पुथल से ग्रस्त हो जाना और ऐसी प्रतिक्रियायें व्यक्त करना जो हानिकारक हो सकती हैं।

Ecological- परिस्थितिय अर्थात ऐसा वातावरण जो व्यक्ति के आचरण और सोच को निश्चित करता है। यह वातावरण, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हो सकता है।

9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग **2.** घ **3.** ग **4.** ख **5.** ख **6.** क

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी/अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
2. Ashok Chandra : Indian Administration.
3. Maheshwari, S.R. : Indian Administration.
4. Sarkaria Report, Part 1 (1998)

9.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Maheshwari, S.R. : The Administrative Reforms Commission.
2. Buch, M.N. : Administrative Inffeectiveness.

9.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ का अन्तर बताते हुए सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद के चार कारणों को स्पष्ट कीजिए।
2. चौथे वेतन आयोग का रूख सामान्यज्ञों के बारे में क्या था? इसका क्या परिणाम निकला?
3. सामान्यज्ञ क्यों स्वयं को विशेषज्ञों से उच्चतर मानते हैं?
4. प्रशासनिक सुधार आयोग, 1966 की सिफारिशों को समझाइए।
5. सरकार की ओर से सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के विवाद को सुलझाने के लिये कौन से पदसोपनीय सम्बन्धी सुझाव दिये गये?

इकाई- 10 कार्मिक नीति

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 नीति निर्धारण का अर्थ
10.3 कार्मिक नीति
10.4 भारत में सार्वजनिक कर्मचारी
10.5 कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था
10.6 कार्मिक विभाग
10.7 नवीन नीति परिदृश्य
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.13 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

किसी भी राज्य की उत्कृष्टता का आधार उसका प्रशासनिक ढांचा होता है। प्रशासन एवं मानव संसाधन ऐसे आयाम हैं जो राज्य की नीतियों एवं मानव समाज के विकास को अपनी दक्षता एवं कार्य कुशलता से प्राप्त करने का कार्य करते हैं। समाज का स्वरूप और राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति भी प्रशासन द्वारा ही निर्मित और निर्धारित होती है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है। कार्मिकों का प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण चुनौतीपूर्ण कार्य है। मानव शक्ति का कुशल प्रबंधन प्रशासन को गतिशील बनाता है। इस प्रकार यह प्रशासन का जीवित तत्व या प्राण है।

प्रशासन राज्य की नीतियों को क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रशासन इस भूमिका को अपने मानव संसाधन द्वारा निष्पादित करता है। मानव संसाधन का प्रबंध राज्य की प्रबंध प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके अंतर्गत कार्मिक नीति की रूपरेखा, कर्मचारियों के विभिन्न पहलुओं का एक निवेश के रूप में एकीकरण करती है। प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रशासन में बहुत लंबे समय तक कर्मचारियों को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया और उन्हें समस्त गतिविधियों में सहायक मात्र ही माना जाता था। समय के साथ इस अवधारणा में परिवर्तन आया है।

इस अध्याय के माध्यम से पाठकों को नीति निर्धारण के अर्थ, सार्वजनिक कर्मचारी की अवधारणा एवं कार्मिक नीति से परिचय कराना है। इसमें लोक सेवकों के कार्मिक नीतियों की अवधारणा, भारत में कार्मिक नीति, कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था तथा कार्मिक विभाग जैसे विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक नीतियों का व्यापक अध्ययन कर पाएंगे, जो बड़े पैमाने पर अपनाई जाती है।
- नीति निर्धारण के अर्थ एवं सार्वजनिक कर्मचारी के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही लोक सेवकों के कार्मिक नीतियों की अवधारणा तथा भारत में कार्मिक नीति के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था तथा कार्मिक विभाग विषयों को समझने में भी सक्षम हो पाएंगे तथा
- नवीन नीति परिदृश्य का मूल्यांकन कर पाएंगे।

10.2 नीति निर्धारण का अर्थ

नीति निर्धारण की प्रक्रिया प्रशासन की केन्द्रीय प्रक्रियाओं में से एक है । एपेल्बी के अनुसार नीति निर्माण ही लोक प्रशासन का सार है। नीतियाँ आवश्यकता के अनुकूल कार्य करने तथा वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करती है। नीतियाँ, व्यवहार के वे नियम हैं जो प्रशासनिक निर्णयों का मार्गदर्शन करती हैं । ये ऐसे आधार-स्तम्भ हैं, जिसके सहारे उद्देश्यों की ओर बढ़ा जाता है ।

नीति निर्धारण शब्द का प्रयोग लोक प्रशासन में व्यापक रूप से किया जाता है। नीति निर्धारण और नीति निर्माण भिन्न प्रकार के निर्णय लेने की प्रक्रिया है।नीतियां सामान्य तौर पर यथार्थ और सार्थकता के अधिकार क्षेत्रों से संबंधित मानी जाती है। यह अधिक समय के लिए वैध होती है और व्यापक कार्य के लिए मार्गदर्शक के रुप में भी कार्य करती है। इस प्रकार नीति निर्धारण मानवीय घटना के लिए एक ऐसी सक्रिय प्रक्रिया है जो संबंधित तथ्यों एवं पक्के मूल्यांकन से बनाई जाती है और जिसमें भविष्य के कार्य रूप के लिए रूपरेखा होती है और जिसका लक्ष्य सर्वश्रेष्ठ साधनों द्वारा उद्देश्य की पूर्ति होता है।

नीति निर्धारण शब्द इस प्रकार विविध प्रक्रियात्मक प्रयासों का एक रूप है, जिसमें निम्नलिखित तथ्यात्मक गतिविधियां समाहित होती हैं- विषयों का विनियोजन, समस्याओं का निर्धारण, नए विचारों की खोज तथा समस्याओं का विश्लेषण, उद्भवन, संश्लेषण, मूल्यांकन, कार्य योजनाओं को अधिग्रहित करना, तथा कार्य योजनाओं का क्रियान्वयन तथा उनकी समीक्षा।

यद्यपि नीति निर्धारण से पूर्व सारे तथ्यों पर विचार किया जाता है और सारे आयाम और उपलब्ध विकल्पों का मूल्यांकन भी प्रायः कर लिया जाता है, परंतु वास्तविकता में विशिष्ट अनुभव, व्यक्तिगत ज्ञान तथा व्यवसायिक निपुणता के साथ-साथ अन्य प्रवृतियां भी नीति निर्धारण को प्रभावित करती हैं। भारत में लोक प्रशासन तदर्थ व्यवस्था एवं अन्य बुराइयों से पीड़ित है। स्वतंत्रता के बाद लोक प्रशासन ने भारत में एक लंबा सफर तय किया है। ब्रिटिश काल में प्रशासन जनता से बिल्कुल मुक्त था तथा राष्ट्रीय विकास, आर्थिक नियोजन, सामाजिक प्रगति और जनकल्याण से इसका कोई लेना देना नहीं था। लोक प्रशासन अपने स्वरूप में पुरातन बना हुआ था तथा इसकी कार्यशैली भी अत्यंत औपचारिक थी। यथास्थितिवादी होने के कारण इसकी कार्यशैली विकासोन्मुख और प्रगतिशील नहीं थी। स्वतंत्रता के पश्चात इसमें आमूल परिवर्तन हुए और नए आयामों की ओर इसका रुझान शुरू हुआ। इनमें प्रमुख थे- जनकल्याण, राज्य के कार्यों में अभूतपूर्व वृद्धि, प्रक्रियात्मक परिवर्तन तथा व्यवस्था से जुड़े कर्मचारियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि आदि ।

10.3 कार्मिक नीति

लोक प्रशासन की प्रक्रियाओं को संपादित करने के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता होती है और इस तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्मिकों की एक विशाल संख्या की जरूरत भी पड़ती है। किसी संगठन के इन्हीं

कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, प्रोन्नति, सेवा शर्तों आदि का अध्ययन कार्मिक प्रशासन का प्रमुख विषय है। लोक सेवकों के संबंध में जो नीति अपनाई जाती है, उसी से संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता का निर्धारण किया जा सकता है। मैक्स वेबर का कहना है एक स्वस्थ सेवी वर्ग संबंधी नीति वह है, जिसमें सभी कार्मिकों के कार्य निर्धारित कर दिए जाएं और उन्हें पूरा करने के लिए कर्मचारियों को पूरा अधिकार सौंपा जाए। कार्य की संपन्नता व्यवस्थित और प्रणालीबद्ध तरीके से हो।

सफल कार्मिक प्रशासन कुशल प्रशासन का आधारभूत तत्व है। यह संगठित मानव शक्ति ही हैं जो किसी भी प्रशासन या व्यवस्था की मूल्यवान संपत्ति है। शासन, प्रशासन और प्रबंधन के समस्त संसाधनों का सदुपयोग, मानवीय कुशलताओं और प्रतिबद्धताओं पर ही निर्भर करता है। नीति निर्धारण एक प्रकार का निर्णय निर्धारण है जो विविध तत्वों के मूल्यांकन द्वारा किया जाता है। इसके अंतर्गत समस्याओं की पहचान, विश्लेषण, कार्यकारी योजनाओं को अपनाया जाना, उसको क्रियान्वित करना तथा उस पर दृष्टि रखना शामिल है। कभी-कभी नीति निर्धारण करने में विशेष प्रवीणता और अनुभव आवश्यक तथ्य प्रतीत होते हैं। एक सफल कार्मिक नीति का संबंध कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन भत्ते, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश, परिवेदना निवारण, पेंशन, सेवानिवृत्ति आदि से संबंधित है। कर्मचारियों की दक्षता, सुरक्षा और विकास के संरक्षण एवं उसमें कोई भ्रांति या उलझन उत्पन्न ना हो सके, कार्मिक नीति पर निर्भर होता है। संगठन की योजनाओं और लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सुविचारित नीति का होना आवश्यक है। यह नीतियां मार्गदर्शक का कार्य करती है, जिसका अनुसरण करते हुए संगठन कर्मचारियों के माध्यम से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। संगठन और कर्मचारियों की मांग और पूर्ति का अनुमान तथा नियोजन को व्यवहारिकता प्रदान करने के लिए गंभीर एवं प्रयासों से कार्मिक नीतियां देश, काल और परिस्थिति के अनुसार बनाई जाती है।

कार्मिक प्रशासन संबंधी नीति की दिशा में चार सरकारी अभिकर्ताओं का विशेष उत्तरदायित्व होता है, ये हैं- विधानमंडल, मुख्य कार्यकारी, कार्मिक विभाग और सरकारी विभाग। सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था में नियोजन,प्रशिक्षण, कल्याण तथा सुरक्षा सम्बन्धित समस्याओं के निदान के लिये कार्मिक विभाग की स्थापना की जाती है। आज के युग में श्रम विधान तथा उद्योगों में श्रमिक संघ की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए कार्मिक विभाग का महत्व और अधिक बढ़ गया है। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था के कार्मिक विभाग के दायित्व जिस अधिकारी के द्वारा संभाले जाते हैं, उसे मुख्य कार्मिक कहा जाता है। इसे श्रम विधान, औद्योगिक संबंध, मजदूरी भुगतान की विधियों, संगठन तथा उद्योग की समस्त संक्रियाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए। नियोजन, मानव संबंध, कर्मचारियों के पारिश्रमिक एवं श्रम कल्याण संबंधी कार्य आधुनिक काल में प्रबंधन का महत्वपूर्ण पहलू है।

10.4 भारत में सार्वजनिक कर्मचारी

राज्य के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन की भूमिका में भी विस्तार हुआ है और अब लोक प्रशासन विकास प्रशासन बन गया है, जो कार्य एवं लक्ष्य की प्रति उन्मुख है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सार्वजनिक कर्मचारी एक प्रमुख अंग है। भारतीय प्रशासनिक प्रणाली का केंद्र बिंदु सर्वजनिक कार्मिक प्रशासन है।

भारत में सार्वजनिक संस्थानों में कार्मिक प्रबंध के लिए नियोजित नीति का प्रावधान स्वतंत्रता के पश्चात किया गया है । आरंभ में कार्मिक प्रबंध के लिए कोई नियोजित नीति नहीं थी। निम्न स्तर पर तथा मध्यम स्तर पर कर्मचारियों के संबंध में उपयुक्त नीति का सर्वथा अभाव था। विशेषकर नीति निर्धारण अधिकारों की प्रत्यायुक्ति में तथा रचनात्मकता के प्रवेश करने में उनका उचित स्थान नहीं था। क्रियात्मक नौकरशाही भी मुख्यधारा से कटा हुआ था। कर्मचारियों के उपयुक्त प्रयोग, उनको प्रेरित करने वाले नीतियों एवं कार्य योजनाओं के अभाव के कारण

विकास उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक सिद्ध हुई और कार्मिक प्रशासन लगभग पंगु सा होता चला गया। नौकरशाही के प्रबंध और कर्मचारियों के कार्य कौशल का निष्पक्ष मूल्यांकन के लिए एकसमान नीति का भी सर्वथा अभाव था। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की कार्मिक प्रणाली तथा लोक प्रशासन की संरचना में सुधार हेतु अनेक आयोगों और समितियों का गठन किया गया। 1960 के दशक के मध्य तक लगभग बारह समितियों और आयोगों द्वारा इस संबंध में सुझाव दिए गए। इन आयोगों और समितियों में निम्नलिखित शामिल हैं-

- सचिवालय पुनर्गठन समिति, 1947
- केंद्रीय (प्रथम) वेतन आयोग 1946-47
- सरकारी मशीन पुनर्गठन रिपोर्ट , 1949
- लोक प्रशासन की रिपोर्ट, 1951
- सरकारी मशीनरी पर रिपोर्ट (कार्य कौशल में सुधार), 1952
- भारत में लोक प्रशासन सर्वेक्षण की रिपोर्ट, 1953
- राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955
- लोक सेवाओं पर रिपोर्ट, 1956
- केंद्र सरकार के कर्मचारियों की सेवा एवं वेतनमान के संबंध में जांच आयोग (दूसरा वेतन आयोग), 1957
- भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की रिपोर्ट ,1962
- भ्रष्टाचार उन्मूलन समिति की रिपोर्ट, 1964 तथा पंचवर्षीय योजनाएं

इन सभी रिपोर्टों ने कार्मिक प्रणाली को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा नई चुनौतियों से निपटने के उपाय हेतु व्यापक सुझाव दिए। इन सुझावों में कार्मिक प्रबंध को सक्रिय बनाने के लिए बेहतर उपायों को अपनाने की सलाह दी गई लेकिन ये सुझाव पर्याप्त नहीं थे और आज तक बहुत सारे सुधारों की आवश्यकता महसूस की जा रही है। प्रशासन स्वतंत्रता के इतने वर्षों के पश्चात भी अपनी कार्यप्रणाली में आज भी अपनी पुरातन प्रवृत्तियों को बरकरार बनाए हुए हैं तथा सोच एवं कार्यशैली में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया है। कार्मिक प्रणाली में कोई भी नवीन, अपूर्व या सक्रिय नीति आज तक नहीं अपनाया गया। सरकार अब नागरिकों के विविध पहलुओं में सकारात्मक एवं व्यापक भूमिका निभा रही है और यह भूमिका परिवर्तन, जनकल्याण आदि नवीनतम मुद्दों से जुड़ा हुआ है। सामाजिक-आर्थिक प्रगति तथा राष्ट्र निर्माण की चुनौतियां को देखते हुए भारत में भी प्रशासन के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता समय-समय पर महसूस की जाती रही है। भारतीय संविधान में समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का आश्वासन दिया गया है तथा भाग तीन में वर्णित मूल अधिकारों के अंतर्गत राज्य के निरंकुशता से व्यक्तिगत सुरक्षा का प्रावधान भी किया गया है। सभी नागरिकों के लिए मौलिक स्वतंत्रता का प्रावधान किया गया है। भाग-4 में वर्णित राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत भी राज्य का यह मौलिक दायित्व होगा कि वह ऐसी परिस्थितियां पैदा करें जिससे देश के नागरिक सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। इस संवैधानिक संस्कृति ने सरकार पर समस्त सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन को एक नया रचनात्मक रूप देने का दायित्व सौंपा है।

10.5 कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था

कर्मचारियों की समस्याओं के समाधान के लिए नीति के अभाव में अन्य व्यवस्थात्मक त्रुटियां भी जिम्मेदार थी। भारत में कार्मिक नीतियों और कार्य योजनाओं से संबंधित कोई समर्पित संगठन नहीं था। कर्मचारियों के हित में

गृह मंत्रालय तथा वित्त मंत्रालय व्यवस्था विभाग शुरू से ही संयुक्त रूप से प्रबंधात्मक दायित्व संभाल रहे थे और संघ लोक सेवा आयोग एक सलाहकार की भूमिका में था। भारत सरकार का व्यवस्था अधिकारी जो मंत्रिमंडलीय सचिव का अधीनस्थ था, एक सरकारी प्रतिनिधि था, जो उच्च स्तर के कर्मचारियों की नियुक्ति के कार्य की भी देखरेख करता था। इस प्रकार कार्यभार विभाजित थे । जिसका परिणाम यह हुआ कि समेकित केंद्रीय निर्देशन का अभाव हमेशा बना रहा। प्रगति दायित्वों को लगभग हाशिये पर छोड़ दिया गया था, जिसके कारण कर्मचारी हितों पर ध्यान देना पूरी तरह संभव न हो सका।

1. **कार्मिक अभिकरण पर मूल्यांकन समिति की रिपोर्ट, 1956-** तीसरी लोकसभा की मूल्यांकन समिति ने अपने 93वीं रिपोर्ट में यह टिप्पणी की- 'ऐसी सरकार जिसका उद्देश्य जनकल्याण हो तथा जिसकी प्रशासनिक सेवा बहुत बड़ी हो, उसकी भूमिका निरंतर व्यापक होती जाती है।' इसके लिए आवश्यक है कि कर्मचारियों पर प्रभावी नियंत्रण किसी एक ही संस्था द्वारा किया जाए। यह समेकित संस्था मंत्रिमंडलीय सचिव के नियंत्रण में कार्य करें और सारी सेवाओं की शर्तों को निर्धारित और भी नियमित करे। इस प्रकार यह समेकित अभिकरण गृह और वित्त मंत्रालय के दोहरे नियंत्रण का स्थान ले ले।
2. **प्रशासनिक सुधार आयोग-** लोक प्रशासन की प्रणाली संबंधित त्रुटियों को दूर करने के लिए, प्रशासन के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं के समाधान के लिए तथा लोक प्रशासन के विविध विषयों पर व्यापक दृष्टिकोण के लिए भारत सरकार ने 1966 में के. हनुमंथप्पा के नेतृत्व में प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया, जिसकी अधिकार सीमा संबंधी शर्तें काफी विस्तृत थी। बीस अध्ययन दलों की सहायता से आयोग ने बीस रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिनमें 5 रिपोर्ट सार्वजनिक कर्मचारियों के प्रशासन के संबंध में थी। ये रिपोर्ट थे-
    - भारत सरकार की मशीनरी और उसकी कार्य प्रक्रिया पर रिपोर्ट
    - सार्वजनिक प्रतिष्ठानों पर रिपोर्ट
    - कार्मिक प्रशासन पर रिपोर्ट
    - केंद्र और राज्य के संबंधों पर रिपोर्ट तथा
    - राज्य प्रशासन पर रिपोर्ट
3. **कार्मिक प्रशासन पर प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट-** प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट कार्मिक प्रशासन से संबंधित था, जिसका विषय केवल कर्मचारी ही था। इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए तीन समितियों की सहायता या सलाह ली गई जो थे-
    - कार्मिक प्रशासन पर पाटिल अध्ययन दल
    - भर्ती, चयन ,संघ राज्य लोक सेवा आयोग तथा प्रशिक्षण पर थोराट अध्ययन दल तथा
    - पदोन्नति , आचार नियम, अनुशासन एवं मनोबल पर नगरकट्टी अध्ययन दल।

आयोग ने कार्मिक प्रशासन से सबंधित देश की भविष्य कालीन कार्यप्रणाली के संबंध में महत्वपूर्ण नीतियों एवं योजनाओं को नया रूप दिया। प्रशासनिक सुधार आयोग ने निम्नलिखित विषयों पर नीति संबंधी विशेष सुझाव दिए थे-

- **कार्यात्मकता, विशिष्टवाद तथा अधिकारी वर्ग-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार ऐसा क्रियात्मक क्षेत्र बनाया जाए जिसमें भू राजस्व प्रशासन, शासकीय दायित्वों को निभाना तथा राज्यों में विधायी कार्य सम्मिलित हो। इसके अतिरिक्त सारे कार्यक्षेत्र, जिनकी देखभाल दूसरे सेवाओं के सदस्य

नहीं करते हो, सारे पदों पर, चाहे वह प्रधान कार्यालय में हो या क्षेत्र में हो, क्रियात्मक सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान किया जाना चाहिए या फिर ऐसे अधिकारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए जो सेवा में संवर्गित नहीं किए गए हो। उप सचिव अथवा केंद्रीय प्रधान कार्यालय में समान स्तर के पद, जो किसी विशेष क्रियात्मक क्षेत्र में नहीं आते, निम्नलिखित आठ विशिष्ट प्रकार केक्षेत्रों में विभाजित करने का सुझाव दिया गया- आर्थिक प्रशासन, औद्योगिक प्रशासन, कृषि एवं ग्रामीण विकास प्रशासन, सामाजिक एवं शिक्षा प्रशासन, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, रक्षा प्रशासन एवं आंतरिक सुरक्षा तथा नियोजन। क्रियात्मक क्षेत्र में प्रबंध संबंधी वरिष्ठ पदों पर पदानुसार क्रियात्मक सेवाओं के सदस्यों की नियुक्ति का सुझाव भी प्रशासनिक सुधार आयोग ने दिया। इसके साथ ही क्रियात्मक क्षेत्र से बाहर वरिष्ठ पदों पर ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए जो उपरोक्त 8 विशिष्ट क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र के प्रबंध तथा नीति समूह के सदस्य के रूप में कार्य का अनुभव रखते हो और जिन्होंने अपनी सेवा के कम से कम सत्रह साल पूरे कर लिया हो।

- **समेकित वर्गीकरण की रूपरेखा-** प्रशासनिक सेवाओं के सभी पदों को अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित करने की अनुशंसा प्रशासनिक सुधार आयोग ने की थी। प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार इन पदों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण कर देना चाहिए। वैसे पद जिनमें एक समान योग्यताएं आवश्यक हो और जिन का कार्यक्षेत्र लगभग समान हो, उनका वर्गीकरण एक ही श्रेणी में करना चाहिए। श्रेणियों की संख्या 20 से 25 के बीच होनी चाहिए। 9 सामान्य वेतन दरों का निर्धारण प्रथम श्रेणी के सभी पदों का मूल्यांकन करके निर्धारित किया जाना चाहिए। इनमें कनिष्ठ, मध्य स्तर तथा वरिष्ठ, इन तीन स्तरों में विभाजन आवश्यक है। कनिष्ठ से मध्य स्तर में तथा मध्य से वरिष्ठ स्तर में पदोन्नति चयन प्रक्रिया द्वारा होना चाहिए।
- **संवर्ग प्रबंध नियोजन-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार आगामी 5 वर्षों के पूर्वानुमान के आधार पर कर्मचारियों की मांग प्रस्तुत की जानी चाहिए। भर्ती के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा एवं दूसरी ऐसे प्रथम श्रेणी के सेवाओं के लिए, जिसमें कोई अलग तकनीक ना हो, भर्ती एक ही प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जानी चाहिए और इस परीक्षा में प्रत्याशियों को अपनी मनपसंद सेवाओं के क्रमानुसार चुनने की छूट भी होनी चाहिए। एक ऐसी समिति की स्थापना भी होनी चाहिए जो भर्ती के द्रुतगामी तरीके, प्रचार पर किए जाने वाले व्यय में कटौती करने और उच्च स्तर की सेवाओं के लिए होने वाली परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में संशोधन समय -समय पर करने के तरीके भी सुझाए। ऐसी प्रतियोगिता परीक्षा में प्रवेश पाने वालों की ऊपरी आयु सीमा बढ़ाकर 26 वर्ष की जानी चाहिए।

  ऐसे प्रतिभाशाली अधिकारियों को, जो प्रथम श्रेणी की सेवा में नहीं है, आगे बढ़ने के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए पदोन्नति द्वारा भरे जाने वाले प्रथम श्रेणी के रिक्त पदों का अनुपात, जहां भी 40 प्रतिशत से कम हो, अनुपात को बढ़ाना चाहिए तथा हर उस अधिकारी को जिसने सेवा काल के 6 वर्ष पूरे कर लिए हैं और जिनकी आयु 35 वर्ष से कम है, उसे एक केवल एक और अवसर प्रथम श्रेणी के पद के लिए प्रतियोगिता परीक्षा मंब दिया जाना चाहिए। यदि वह सारी शर्तें और शिक्षा के स्तर को पूरा करता हो तो इस बात का विशेष ध्यान आवश्यक नहीं है कि उसने कितने अवसरों का उपयोग किया है।
- **प्रशिक्षण-** सरकार को प्रशासनिक सेवा के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए उद्देश्य और प्राथमिकताएं निर्धारित करने के लिए स्पष्ट और दूरदर्शी नीति होनी चाहिए। सचिवालय में मध्य स्तर के प्रबंधकों के प्रशिक्षण में व्यापक रूप से तीन बातें आवश्यक होनी चाहिए- प्रधान कार्यालय में कार्य में प्रशिक्षण, आठ

विशिष्टताओं में विशेष पाठ्यक्रम और उप-क्षेत्र विशिष्टतावाद प्रशिक्षण। नीति और नियोजन में प्रशिक्षण का प्रावधान सभी विशिष्ट पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण के अंश के रूप में किया जाना चाहिए।

- **कार्य कौशल का मूल्यांकन-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार प्रत्येक वर्ष के अंत में हर एक अधिकारी की वार्षिक आख्या जो 300 शब्दों से अधिक का न हो और उसमें उसकी उपलब्धियों का उल्लेख आवश्यक रूप से किया जाए। यह विवरण उस अधिकारी को प्रस्तुत किया जाए, जिससे उसकी गुप्त रिपोर्ट लिखनी है और वह विवरण गुप्त रिपोर्ट का एक अंग माना जाएगा। मूल्यांकन करते समय अधिकारी को उस विवरण पर विशेष ध्यान देना चाहिए तथा अपनी टिप्पणी लिखने के बाद उसे उच्च पदस्थ अधिकारी को समीक्षा के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। समीक्षा करने वाला अधिकारी इस पर टिप्पणी कर उस अधिकारी की कोटि का निर्धारण करेगा।
- **पदोन्नति-** प्रथम श्रेणी में पदोन्नति के लिए रिक्त स्थानों, जिसमें अखिल भारतीय सेवाएं भी शामिल हैं, में आधे स्थान विद्यमान तरीके और शेष आधे रिक्त स्थान परीक्षा के आधार पर भरे जाएं। ऐसी परीक्षाओं में द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों को ही बैठने की अनुमति हो, यदि उन्होंने सेवाकाल पूर्ण कर लिया हो और वार्षिक गुप्त रिपोर्ट में नकारात्मक टिप्पणी न की गई हो।
- **अनुशासन-** दुष्कर्म या अवज्ञा, उपेक्षा, धमकी अथवा हिंसा के प्रयोग, अनुचित आचार जैसे अनुशासन संबंधी मामलों के संक्षिप्त निपटारे के लिए नियमों में आवश्यक रूप से प्रावधान किया जाना चाहिए।
- **न्यायालय पीठ-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार प्रशासनिक सेवा न्यायालय की स्थापना किया जाना चाहिए जिसमें ऐसे मामलों को, जिसमें सेवा से बर्खास्तगी और बड़े पदों से हटा कर छोटे पदों पर नियुक्ति जैसे बड़े दंड दिए गए हो, अंतिम अपीलीय न्यायालय काम करेंगे ।
- **स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति-** सेवाकाल के 15 वर्ष पूर्ण कर लिए अधिकारियों को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की अनुमति दी जानी चाहिए और उन्हें अनुपात अनुसार पेंशन और आनुतोषिक या अनुग्रह राशि भी दिया जाना चाहिए।
- **प्रोत्साहन-** विशेष कार्य योजना को निर्धारित सीमा में पूरा करने के लिए अधिकारियों को शील्ड अथवा धनराशि देकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । व्यक्तिगत मामलों में प्रशंसा पत्र भी दिए जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कार्मिक प्रशासन रिपोर्ट में महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई है जो नवीन कार्मिक नीति को नया रूप देने के संबंध में है और जिनका प्रभाव सार्वजनिक सेवाओं पर पड़ता है।

10.6 कार्मिक विभाग

लोक सेवकों के चयन, प्रशिक्षण, कार्मिक नीति आदि के संबंध में एक ऐसे निकाय की आवश्यकता होती है जो राजनीतिक और प्रशासनिक दबावों से मुक्त होकर उत्तरदायित्व का निर्वाह करें। प्रजातांत्रिक और विकासशील देशों में इस कार्य को संपादित करने के लिए एक विशेष मंत्रालय या निकाय की स्थापना की जाती है। भारत में अखिल भारतीय सेवाओं तथा केंद्रीय सेवाओं के कार्मिक प्रकरणों को नियंत्रित, निर्देशित तथा समन्वित करने, केंद्र के कार्यालयों के विरुद्ध प्राप्त जन शिकायतों का निवारण करने तथा केंद्र सरकार से सेवानिवृत्त कार्मिकों के पेंशन संबंधी मामलों में कार्रवाई करने हेतु कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की स्थापना वर्ष 1985 में की गई थी। इससे पूर्व इस मंत्रालय से संबंधित कार्य कभी मंत्रिमंडल सचिवालय तो कभी गृह मंत्रालय या वित्त मंत्रालय के द्वारा संपन्न किए जाते रहे हैं। मार्च, 1954 में पॉल एच. एपेलबी की सिफारिशों में से एक पर अनुवर्ती कार्रवाई के रूप में मंत्रिमंडल सचिवालय में संगठन एवं पद्धति (ओ.एंड एम.) प्रभाग बनाया गया था। मार्च, 1964 में गृह मंत्रालय के अधीन प्रशासनिक सुधार विभाग बनाया गया और संगठन एवं पद्धति (ओ एंड एम) प्रभाग का

कार्यभार मंत्रिमंडल सचिवालय से प्रशासनिक सुधार विभाग को हस्तांतरित कर दिया गया। दिनांक 7 फरवरी, 1973 को प्रशासनिक सुधार से संबंधित कार्य को मंत्रिमंडल सचिवालय के अधीन दिनांक 1 अगस्त, 1970 को बनाए गए कार्मिक विभाग को हस्तांतरित कर दिया गया और कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार के रूप में इसे पुनर्नामित किया गया । प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा सक्रियता और दायित्व को बढ़ावा देती है। यह विविध क्षेत्रों में नवीन नीतियों को अंगीकार करने पर भी विशेष बल देती है। कार्मिक विषयों का संचालन करने के लिए पुरानी व्यवस्था प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों पर आधारित नवीन कार्मिक समस्याओं के समाधान के लिए अपर्याप्त थी। इसलिए सरकार ने अगस्त 1970 में नए कार्मिक विभाग की स्थापना की प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल भारत सरकार की मशीनरी और इसकी कार्य प्रक्रिया पर बनाए गए देशमुखअध्ययन दल ने एक प्रभावशाली केंद्रीय कार्मिक एजेंसी को स्थापित करने का सुझाव दिया था। देशमुख अध्ययन दल के अनुसार भारत सरकार की मशीनरी के लिए आवश्यक सुधारों में सबसे महत्वपूर्ण था। कार्मिक विभागों से तकनीकी और व्यवस्थापन संबंधी अनेक सेवाओं को अधिक अधिकारियों को स्थान दिए जाने की वकालत इस अध्ययन दल ने की थी ताकि इस अभिकरण के नेतृत्व को मजबूत किया जा सके।

कार्मिक विभाग का संगठनात्मक ढांचा कुछ इस प्रकार था-

- नीति एवं नियोजन कक्ष
- प्रशिक्षण कक्ष/विभाग
- अखिल भारतीय सेवा कक्ष/विभाग
- व्यवस्था/संस्थान कक्ष/विभाग
- सतर्कता कक्ष/विभाग
- व्यवस्था अधिकारी का कक्ष विभाग

नीति और नियोजन कक्ष/विभाग को छोड़कर सारे कक्ष/विभाग अपने सारे उत्तरदायित्व हेतु पहले गृह मंत्रालय की ही भागते थे। 1970 की अगस्त में अलग कर कार्मिक विभाग की स्थापना की गई थी। नीति एवं नियोजन कक्ष/विभाग के जिम्मे भारत सरकार के कार्मिक प्रशासन क्षेत्र में नीति और नियोजन संबंधी गतिविधियों को निर्धारित करने तथा उसको रूप देने का कार्यभार सौंपा गया। इस प्रकार यह एक प्रकार का परिपार्श्व नियोजन का आधार था जिसमें कार्मिक प्रबंध और सार्वजनिक कार्मिक प्रबंध के समग्र पहलुओं पर सभी प्रकार का कार्य करना था। नीति निर्धारण कक्ष को प्रशासन पर रिपोर्ट में दी गई प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित करने का कार्यभार सौंपा गया। दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को भी संचालित करना इसका उत्तर दायित्व था। समय के अनुसार अन्वेषण पर बल इसकी गतिविधियों में समाप्त हो गया और सरकार के अन्य कक्षों के रूप में इसका प्रारंभ हो गया। प्रशिक्षण के क्षेत्र में प्रशिक्षण विभाग ने निस्संदेह अच्छी भूमिका निभाई किंतु इस विभाग को अनेक दैनिक कार्यों को अपने प्रमुख कार्यों को रूप में करना पड़ा। जिससे इसकी छवि भी धूमिल हुई दूसरे कक्ष और विभागों के पास कोई नवीनतम कार्य नहीं थे। वे नए कार्मिक विभाग में भी वही कार्य संपादित करते रहे जो गृह मंत्रालय में कर रहे थे।

कर्मचारियों की उपलब्धता के मामले में भी भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्य केंद्रीय सेवाओं जैसे परंपरागत स्रोतों पर निर्भर करने की पुरानी नीति वर्तमान ही रही। इसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं आया। संरचनात्मक रूप में भी वही कार्य शैली अपनाई जाती रही और समय के साथ नूतन प्रयोग और नूतन कार्य विधि इस संरचना में स्थान नहीं ले पाई। ब्रिटेन की तुलना में भारत में यह प्रयोग संतोषजनक और सफल नहीं माना गया। प्रारंभ में उत्साह ज्यादा दिन तक भारत में बना नहीं रहा और मंत्रिमंडल सचिव के प्रधानमंत्री के संपर्क होने का अवसर का लाभ भी नहीं उठाया जा सका।

अप्रैल, 1977 में कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार विभाग को मंत्रिमंडल सचिवालय से गृह मंत्रालय में स्थानांतरित किया गया। मार्च, 1985 में कार्मिक तथा प्रशिक्षण, प्रशासनिक सुधार, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय के रूप में पूर्ण मंत्रालय बना दिया गया। 10 दिसम्बर, 1985 को कार्मिक तथा प्रशिक्षण, प्रशासनिक सुधार, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय को तीन विभागों क्रमश: कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग और पेंशन तथा पेंशनभोगी कल्याण विभाग सहित कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय के रूप में पुनर्नामित किया गया।

कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है तथा प्रधानमंत्री की सहायता हेतु राज्य मंत्री की नियुक्ति भी की जाती रही है। नौकरशाही के शीर्ष पर इस मंत्रालय का शीर्ष अधिकारी कार्मिक सचिव कहलाता है। कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय तीन विभागों में विभक्त हैं- कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग तथा पेंशन एवं पेंशनभोगी कल्याण विभाग।

कार्मिक लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय कार्मिक मामलों के लिए विशेषकर भर्ती प्रशिक्षण कर्मचारियों से संबंधित कल्याण योजनाएं, प्रशासनिक सुधार, पेंशन आदि कामकाज से संबंधित है या विभाग भर्ती नियमों , पदोन्नति तथा वरिष्ठता निर्धारण, प्रतिनियुक्ति, सेवा शर्तों को अनुशासित करने वाले नियम एवं विनियम के लिए उत्तरदायी है। उच्च लोक सेवा की पदों पर कार्मिकों की भर्ती हेतु संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से की जाती है जबकि समूह- ग और सेना के राजपत्रित कर्मचारियों की भर्ती कर्मचारी चयन आयोग के माध्यम से की जाती है । यह विभाग अखिल भारतीय सेवा संवर्गों भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा तथा तीनों सचिवालय सेवाओं- केंद्रीय सचिवालय सेवा, केंद्रीय सचिवालय आशुलिपिक सेवा, केंद्रीय सचिवालय लिपिक सेवा के संबंध में प्रबंधन हेतु उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त यह विभाग गृह मंत्रालय तथा विदेश मंत्रालय के परामर्श से अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में नियम और भी नियमों का निर्माण करता है। यह उसमें समय- समय पर संशोधन भी करने का अधिकार रखता है और विभाग सेवा के संबंधों की समीक्षा हेतु भी जिम्मेदार है।

कार्मिक विभाग वरिष्ठ स्तर पर नियुक्तियां तथा भारत सरकार के कार्मिक नीतियों के संबंध में कार्य करता है। भारत सरकार के वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियां के प्रस्ताव पर विभाग द्वारा कार्रवाई की जाती है। इनके संबंध में मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति का अनुमोदन लिया जाना अपेक्षित होता है। इनमें केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में नियुक्तियां, मंत्रालयों, विभागों में संयुक्त सचिवों और उप सचिवों के पदों पर केंद्रीय स्टाफिंग पैटर्न की नियुक्तियां शामिल होती है। इसके अतिरिक्त पदोन्नति द्वारा की जाने वाली सभी नियुक्तियों के मामले के संबंध में मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति का नियंत्रण होता है पर विभाग द्वारा कार्रवाई की जाती है।

कार्मिक विभाग सरकारी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने हेतु नोडल विभाग है। कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग का प्रशिक्षण स्कंध प्रशिक्षण के क्षेत्रों की पहचान कर प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार कर शिक्षकों और प्रशिक्षण क्षमताओं का तथा प्रशिक्षण में नई नीतियों का विकास करता है। लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी एवं सचिवालय प्रशिक्षण प्रबंध संस्थान, नई दिल्ली इस विभाग के सीधे प्रशासनिक नियंत्रण में दो प्रमुख शिक्षण संस्थान हैं । संस्थान केंद्र सरकार के सभी अधिकारियों को समय-समय पर मानव संसाधन विकास की अपेक्षाओं को पूर्ण करते हैं। इसके अतिरिक्त विभाग भारतीय लोक प्रशासन संस्थान को लोक प्रशासन से जुड़े मुद्दों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के लिए सहायता प्रदान करता है। इसके साथ ही विभागीय नीति बनाने के लिए और क्रियान्वित करने के लिए कार्य करता है।

1. **कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग-** वैचारिक दृष्टि से कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग की भूमिका को दो भागों में बांटा जा सकता है। यह विभाग अपनी महती नोडल भूमिका में नीति-निरूपक तथा सरकार के सजग प्रहरी के रूप में कार्य करता है और यह सुनिश्चित करता है कि यथानिर्धारित, कतिपय स्वीरकृत

मानकों और मानदण्डतों का सभी मंत्रालयों/विभागों द्वारा भर्ती, सेवा-शर्तों के विनियमन एवं कार्मिकों की प्रतिनियुक्ति के साथ-साथ अन्य/सम्बद्ध मामलों में पालन किया जाए। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग केन्द्रीकय सरकार के सभी संगठनों को कार्मिक-प्रबंध के मुद्दों पर सलाह भी देता है। यह विभाग, भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) तथा केन्द्री य सचिवालय सेवा (सीसीएस) का संवर्ग-नियंत्रक प्राधिकारी होने के नाते सीधे रूप से उत्तसरदायी है। यह विभाग, केन्द्री य स्टारफिंग योजना का भी संचालन करता है, जिसके अंतर्गत अखिल भारतीय सेवाओं तथा समूह 'क' केन्द्रीय सेवाओं के अधिकारियों में से उपर्युक्त अधिकारियों का चयन किया जाता है तथा उन्हें प्रतिनियुक्ति के आधार पर कार्यकाल विशेष हेतु उप सचिव/निदेशक तथा संयुक्तै सचिव के स्त्र के पदों पर तैनात किया जाता है। यह विभाग सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्नत उपक्रमों/उद्यमों, निगमों, बैंकों तथा वित्तीय संस्थाजनों के अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक, पूर्णकालिक कार्यात्मकक निदेशकों/प्रबंध मण्डमल के सदस्यों के पदों पर नियुक्ति के मामलों को भी देखता है।

- **भर्ती अभिकरण-** संघ लोक सेवा आयोग और कर्मचारी चयन आयोग ऐसे दो संगठन हैं जिनके माध्यिम से यह विभाग केन्द्रआ सरकार के कामकाज के लिए कार्मिकों की भर्ती सुनिश्चित करता है। संघ लोक सेवा आयोग, संविधान के प्रावधान के अंतर्गत गठित हुआ है तथा इसकी जिम्मेदारी, अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती के साथ-साथ, संघ सरकार के अधीन उच्चमतर सिविल सेवाओं तथा सिविल पदों पर नियुक्ति हेतु परीक्षाएं संचालित करने की है। भर्ती की पद्धतियों, एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नातियां तथा स्थानांतरण किए जाने में अपनाए जाने वाले सिद्धांतों तथा अनुशासनिक मामलों से जुड़े सभी मसलों में आयोग से परामर्श किए जाने के अनिवार्य प्रावधान हैं। कर्मचारी चयन आयोग की जिम्मेंदारी, सहायकों, आशुलिपिकों इत्याकदि अधीनस्थन कर्मचारियों की भर्ती करने की है।
- **प्रशिक्षण प्रभाग-** प्रशिक्षण प्रभाग राष्ट्री य प्रशिक्षण नीति, जो कि अप्रैल, 1996 में अंगीकार की गई थी, के कार्यान्वयन का समन्वटय करने का कार्य देखता है। यह विभाग केन्द्र और राज्य सरकार के कर्मचारियों के लिए विभिन्न् श्रेणियों के कई विषयों पर कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भी करता है। प्रशिक्षण प्रभाग राज्य सरकार के विभिन्न स्तर के कर्मचारियों के लिए विशेष पैकेज के अंतर्गत क्षमता निर्माण पहलों को विकसित करता है और इनका आयोजन करता है।
  इस विभाग के सीधे प्रशासनिक नियंत्रण में दो प्रमुख प्रशिक्षण संस्थाएं, लाल बहादुर शास्त्रीत राष्ट्री य प्रशासन अकादमी, मसूरी एवं सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थातन, नई दिल्ली है। पहली संस्था, मसूरी में स्थित अकादमी, मुख्यरत: भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्यी अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती किए गए अधिकारियों को प्रवेशकालिक प्रशिक्षण सुलभ करवाने के लिए जिम्मेदार है। सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान, केन्द्रीय सचिवालय सेवा के सदस्यों के लिए जिम्मेदार है। सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान, केन्द्रीय सचिवालय सेवा के सदस्यों को प्रवेशकालीन प्रशिक्षण तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण मुहैया करवाता है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली जो कि एक स्वायत्तर संगठन है, को प्रशिक्षण प्रभाग द्वारा अंशकालिक वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

2. **भारत सरकार के अधीन वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियां-** भारत सरकार के अधीन वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियों के सभी प्रस्तावों की, जिनके सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति का अनुमोदन लिया जाना अपेक्षित होता है, जांच-पड़ताल और उन पर यथोचित कार्रवाई, मंत्रिमण्डनल की नियुक्ति समिति के सचिव के रूप में कार्यरत स्थानपना अधिकारी के माध्यंम से की जाती है। इनमें, केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र

के उपक्रमों में बोर्ड स्तर की नियुक्तियां तथा मंत्रालयों/विभागों में संयुक्तव सचिवों, निदेशकों और सचिवों की नियुक्तियां शामिल होती हैं।

- **प्रशासनिक सतर्कता-** कार्मिक प्रबंध का एक आवश्यक घटक है, नौकरशाही की व्यावसायिक आचार संहिता और मानकों को बनाए रखना। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, लोक सेवाओं की सत्यनिष्ठा बनाए रखने और भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए सरकार की नीति का निर्धारण करता है और उस क्षेत्र में मंत्रालयों/विभागों के विभिन्न क्रियाकलापों का समन्वय करता है। भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों की यह जिम्मेवारी है कि वे निवारक उपाय करके कर्मचारियों के बीच अनुशासन और सत्य निष्ठा बनाए रखे और उनके कार्य के कार्यात्मयक संचालनात्मंक क्षेत्र में भ्रष्टाचार का उन्मूलन करें।
- **केंद्रीय सतर्कता आयोग-** केन्द्रीय सतर्कता आयोग द्वारा सभी सतर्कता मामलों पर सलाह प्रदान की जाती है। इसकी उन सभी मामलों में अधिकारिता और शक्तियां हैं, जिनमें केन्द्रीय सरकार की कार्यकारी शक्तियां हैं। आयोग को संघ लोक सेवा आयोग की तरह स्वतंत्रता और स्वारयत्ता प्राप्त है। आयोग का कार्यालय सतर्कता भवन, आई.एम.ए. कॉलोनी, नई दिल्ली में है।
- **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो-** केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो देश का अग्रिम अन्वेषण अभिकरण है और भष्टाचार की बढ़ती चुनौती को नियंत्रित करने और बैंकिंग, गैर-बैंकिंग तथा आर्थिक और अन्य परम्परागत अपराधों की एक बड़ी संख्या का अन्वेषण करने के लिए राष्ट्र प्रहरी है। इसके कार्यों में जुड़े नए कार्य हैं- आतंकवादी अपराधों और जानबूझकर किए गए सम्पत्ति-विध्वंस अथवा कला विध्वंस के अपराधों का अन्वेषण। राज्य सरकारों, उच्च न्यायालय तथा उच्चणतम न्यायालय की सहमति से इस अभिकरण को मामले भेजे जाते हैं और इस सामान्य धारणा, कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो अधिक सच्ची होती है, के कारण केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा जांच करवाए जाने की मांग बढ़ती जा रही है।
- **संयुक्त परामर्शदायी तंत्र-** ऐसे सेवा मामले जिनका प्रशासन और सरकारी कर्मचारियों के सामान्य हितों से सरोकार है, के सम्बान्ध में केन्द्र सरकार और इसके कर्मचारियों के बीच संयुक्त, परामर्श के लिए एक सुसंरचित तंत्र है। यह त्रि-स्तरीय तंत्र है जिसमें राष्ट्रीय परिषद्, विभागीय कार्यालय परिषद् और श्रेत्रीय/कार्यालय परिषद् शामिल हैं। कर्मचारियों के हितों अथवा इसके विशिष्टप समूहों के हितों सम्बन्धी सेवा मामलों पर इस तंत्र द्वारा विचार किया जाता है।
- **केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण-** कार्मिक प्रबंधन को नियंत्रित करने वाले नियमों तथा विनियमों की विस्तृत व्यवस्था के बावजूद भी कुछ सरकारी कर्मचारी कभी-कभी सरकार के निर्णयों से व्यवथित हो सकते हैं। इन मामलों का निपटान करने में न्या यालयों को कई वर्ष लग जाते थे और मुकद्दमेबाजी बहुत महंगी थी। सरकार के निर्णयों से व्ययथित कर्मचारियों को शीघ्र और सस्ता न्याय मुहैया करवाने के प्रयोजन से, सरकार ने 1985 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण स्थापित किया था जो अब सेवा से सम्बन्धित ऐसे सभी मामलों पर विचार करता है जिन पर पहले उच्च न्यायालयों सहित उनके स्तर तक के न्यायालयों द्वारा कार्रवाई की जाती थी। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की दिल्ली में स्थित प्रधान न्यायपीठ सहित, अब इसकी 17 नियमित न्यायपीठें देश के विभिन्न भागों में कार्य कर रही हैं।
- **कर्मचारी कल्याण-** इस तथ्य के आलोक में कि कर्मचारियों के कामकाज की स्थिति तथा उनके और उनके परिवारों की रहन-सहन की स्थितियों में सुधार से उनकी कार्य कुशलता और उनका

मनोबल बढ़ता है यह विभाग विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों को सहायता प्रदान करता है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, सरकारी कर्मचारियों और उनके परिवारों के कल्याण हेतु स्थापित चार पंजीकृत समितियों के सम्बन्ध में नोडल अभिकरण (एजेंसी) है। ये समितियां हैं- केन्द्रीय सिविल सेवा सांस्कृतिक और खेल-कूद बोर्ड, गृह-कल्याण-केन्द्र, केन्द्रीय भण्डार और सिविल सेवा अधिकारी संस्थान हैं। ये चारों समितियां दिल्ली में अवस्थित हैं।

- **लोक उद्यम चयन बोर्ड-** इस मंत्रालय के तीन विभागों के अतिरिक्त, लोक उद्यम चयन बोर्ड, अगस्त 1986 से कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग के हिस्से के रूप में कार्य कर रहा है। लोक उद्यम चयन बोर्ड, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में उच्चम प्रबंधकीय पदों के कार्मिकों के चयन और तैनाती का काम देखने वाला विशेषज्ञ निकाय है। बोर्ड का मूल रूप से 1974 में गठन किया गया था और इस उद्योग मंत्रालय (लोक उद्यम ब्यूरो) के प्रशासनिक नियंत्रण में रखा गया था। 1986 में बोर्ड का प्रशासनिक नियंत्रण, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग को अंतरित कर दिया गया।
- **केंद्रीय सूचना आयोग-** सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा-12 के अनुक्रम में केन्द्रीय सूचना आयोग का गठन केन्द्र सरकार द्वारा एक राजपत्र अधिसूचना द्वारा किया गया। आयोग में एक मुख्य सूचना आयुक्त और अधिकतम 10 सूचना आयुक्तक हैं, जिनकी नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

10.7 नवीन नीति परिदृश्य

कार्मिक नीति एक व्यापक गतिविधि है जिसके विभिन्न आयाम स्पष्ट होते हैं। किसी भी व्यवस्था में भर्ती या चयन से पूर्व ही कार्मिक प्रबंध का कार्य प्रारंभ हो जाता है। व्यवस्था की समस्त नियुक्ति नीति स्वयं भर्ती की प्रक्रिया पर प्रभाव डालती है। भर्ती के विविध पहलुओं का आकलन, पदोन्नति का आधार आदि ऐसे विषय हैं, जिनका निर्णय प्रारंभ में ही ले लिया जाता है। सीधी भर्ती का अनुपात, आयु ,अनुभव, पदोन्नति का आधार और अन्य नीति संबंधी मामले में प्रबंधकों को पूर्व में ही निर्णय लेने होते हैं। संवर्ग का दीर्घकालीन नियोजन शुरू में ही करने होते हैं और अधिकांश संस्थानों में इस हितकर कार्मिक सिद्धांत का पालन कराने का प्रयास किया भी जाता है। भर्ती और चयन प्रक्रिया के रीति विज्ञान संबंधी प्रश्न इस भर्ती योजनाओं की रूपरेखा के अनुसार होते हैं। रोजगार/ नियुक्ति नीति को प्रशिक्षण और विकास नीति, पदोन्नति नीति ,उत्साह बढ़ाने की नीति आदि से जुड़ना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ-साथ कर्मचारी कल्याण नीतियां, विवाद प्रबंध संबंधी नीति का निर्धारण भी समय के अनुसार होता है। एक व्यापक कार्मिक नीति मौलिक निर्माण स्तंभ के रूप में कार्य करते हैं परंतु अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें लापरवाही और तदर्थता अत्यधिक है। कार्मिक प्रगति और कार्मिक नीति के संदर्भ में मानवीय पहलुओं की हमेशा से उपेक्षा होती रही है और कार्यकुशलता पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता। भारत में सार्वजनिक संस्थान के कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने की बचनबद्धता का भाव दिखाई नहीं देता और न ही भविष्य कालिक हितों की ओर अपने ही लोगों के विकास की कोई चिंता है। बहुत सारे संस्थान मुख्य अधिकार के बिना काम कर रहे हैं। अधिकारियों और कर्मचारियों पर इससे प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लक्ष्य निर्धारित करने के बाद इनकी प्राप्ति प्रायः नहीं हो पाती और लक्ष्य प्राप्त न करने की स्थिति में अपमान भी नहीं समझा जाता है। इन सब का कारण यह है कि लक्ष्यों के बारे में सचेत न होना और परिणाम के प्रति हमारी कार्मिक नीति के ढांचे को मूल आधार नहीं माना जाना है।

अभ्यास प्रश्न-

1. कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की स्थापना किस वर्ष की गई थी?

2. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी कहाँ स्थापित है?
3. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग के पहले अध्यक्ष कौन थे?
4. सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान किस शहर में स्थापित किया गया है?
5. देश का अग्रिम अन्वेरषण अभिकरण क्या है?

10.8 सारांश

इस इकाई में लोकनीति की संकल्पना, भारत में कार्मिक प्रणाली के लिए अब तक किए गए प्रयासों और कार्मिक प्रणाली की समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। कार्मिक प्रबंधन लगातार उपेक्षा का शिकार हुआ है और इसके प्रति व्यवसायिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण विविध चुनौतियां भी विगत कुछ वर्षों में उभरी हैं। सार्वजनिक कर्मचारियों के प्रति उपेक्षा और विचार शून्यता अवहेलना लगातार प्रकाश में आती रही है। मानव संसाधन एक ऐसी संपत्ति है, जिसका मूल्य समय के साथ निरंतर बढ़ता जाता है और किसी संगठन की सफलता इस तत्व पर ही निर्भर करती है। अब तक के कार्मिक प्रणाली ने मानव तत्व को अधिक महत्व नहीं दिया है जो इस दिशा में बहुत बड़ी विसंगति को दर्शाता है। नीति निर्धारकों में सांप्रदायिकता, विभाजक प्रवृतियां, वंश परंपरा आदि भरे होने की शिकायतें लगातार मिलती रही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि मानव संसाधन प्रबंध नीति में संपूर्ण व्यवस्थात्मक एकता, वैज्ञानिक बुद्धिवाद तथा तथा भविष्यवाद जैसे गुण दर्शित होने चाहिए। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि नीति निर्धारक ऐसे कार्य करते हैं जिसका नीति निर्धारण से कोई संबंध नहीं होता। प्रोत्साहन नीति के अभाव में उपलब्धि, प्रेरणा, गतिशीलता या भविष्य के प्रति आशा आदि संगठन से विलुप्त होते जा रहे हैं। पुराने नियम और विनियम आज भी प्रचलित हैं और प्रणाली नकारात्मक विशेषताओं से जुड़ गई है। आवश्यकता एक उचित और उपयुक्त कार्मिक प्रणाली अपनाने की है। इस दिशा में प्रयास तात्कालिक तौर पर होने चाहिए ताकि संगठन की खामियों का यथाशीघ्र निवारण किया जा सके।

लोक सेवकों की कार्मिक नीति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गए हैं, जिसके लिए विशेष प्रयास और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। इसमें बहुत सारी कमियां हैं जिसमें समय के अनुसार सुधार लाने की आवश्यकता है।

10.9 शब्दावली

नीति- सोच समझकर बनाये गये सिद्धान्तों की प्रणाली है जो उचित निर्णय लेने और सम्यक परिणाम पाने में मदद करती।

मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग।

उपबंध- प्रावधान।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1985 में, **2.** मसूरी, **3.** के. हनुमंथप्पा, **4.** नई दिल्ली **5.** केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
2. माहेश्वरी, श्रीराम, 2010, भारतीय प्रशासन, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।
3. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।

4. घोष, पी.,1969, पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रैशन इन इंडिया, सुधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. गोयल, एस. एल., 1964, पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रैशन, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सैम्पसन, चार्ल्स, 1983, वैल्यूस, ब्यूरोक्रैसी एण्ड पब्लिक, यूनिवर्सिटी प्रेस ऑफ अमेरिका, लंदन।
2. कटारिया, सुरेन्द्र, 1997, कार्मिक प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स , जयपुर।
3. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

10.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. नीति निर्धारण के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
2. आधुनिक समय में कार्मिक प्रशासन के दायित्वों का मूल्यांकन कीजिए।
3. केन्द्रीय कार्मिक मंत्रालय की भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. कार्मिक क्षेत्र में निर्धारित नवीन नीतियों का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 11 भर्ती (सेवाओं में आरक्षण)

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 भर्ती का अर्थ एवं विशेषताएं
11.3 भर्ती का महत्व
11.4 भर्ती की प्रक्रिया
11.5 भर्ती के प्रकार
11.6 भर्ती की अर्हता पद्धतियाँ
11.7 अर्हता निर्धारण की विधियाँ
11.8 श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्ते
11.9 भारत में भर्ती की पद्धति
11.10 आरक्षण
11.11 संवैधानिक सुरक्षा
11.12 लोक सेवाओं में पदों का आरक्षण
11.13 सारांश
11.14 शब्दावली
11.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.18 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

संपूर्ण कार्मिक तंत्र के ढांचे की आधारशिला भर्ती है। प्रशासनिक संरचना में भर्ती और चयन की प्रक्रिया का विशेष महत्व है। इसी से प्रशासन की उपयोगिता एवं समाज तथा प्रशासनिक तंत्र के संबंध निर्धारित होते हैं। भर्ती और चयन की प्रक्रिया शक्तिशाली लोक सेवा की कुंजी है। प्रशासनिक संगठन की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसमें कार्य करने वाले कार्मिकों में वांछित योग्यता हो तथा उनकी योग्यता का परीक्षण उचित प्रकार की परीक्षा, साक्षात्कार आदि के द्वारा निर्धारित की जाए। योग्यता तथा निष्पक्ष भर्ती व्यवस्था से ही कर्मठ व्यक्ति संगठन में सम्मिलित हो सकते हैं। भर्ती के लिए योग्यता निर्धारण, पदों के विज्ञापन, प्राप्त आवेदनों की छंटनी, परीक्षा आयोजन, साक्षात्कार आदि आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करवाना कार्मिक प्रशासन का प्रमुख कार्य है। चयन प्रक्रिया का प्रारंभ भर्ती प्रक्रिया से होता है। भर्ती प्रत्याशित कर्मचारियों की खोज एवं उन्हें संगठन में आवेदन के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है। प्रत्येक संगठन योग्य कार्मिकों की भर्ती एवं चयन करके अपनी सफलता को सुनिश्चित करता है। भर्ती इस प्रकार मानव शक्ति नियोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है। भारत सहित प्रायः सभी देशों में लोक सेवाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के भर्ती हेतु व्यापक प्रावधान किए गए हैं।

इस इकाई के माध्यम से पाठकों को भर्ती के अर्थ, महत्व, भर्ती के उद्देश्य, भर्ती के प्रकार तथा भर्ती की पद्धतियाँ एवं तकनीक से परिचय कराना है। इसमें लोक सेवकों के भर्ती की अवधारणा, भर्ती की भारतीय प्रणाली, भारत मे भर्ती एजेंसियां और संस्थाएं, भर्ती की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन में भर्ती के अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- भर्ती की प्रक्रिया के विभिन्न चरण तथा भर्ती की विभिन्न पद्धतियों की व्याख्या कर सकेंगे।
- भर्ती की अर्हता पद्धति के उद्भव एवं महत्व का वर्णन तथा उपयुक्तता की जांच कर सकेंगे।
- भारत में प्रचलित भर्ती प्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे। तथा
- भारत में लोक सेवाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण से संबंधित आवश्यकताओं और प्रावधानों को समझ सकेंगे।

11.2 भर्ती का अर्थ एवं विशेषताएं

किसी संगठन में भर्ती या चयन कार्मिक प्रबंध का आधारभूत कार्य है। भर्ती की दूषित नीति के कारण प्रशासन में अस्थाई दुर्बलता जाती है और प्रशासन सुस्त और अयोग्य व्यक्तियों के लिए स्वर्ग बन जाता है। योग्य कार्मिक किसी भी संगठन की मूल्यवान परिसंपत्ति हैं और ये संगठन की प्रगति और स्थायित्व के लिए जिम्मेवार हैं। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है।

नियुक्ति एवं अधिप्राप्ति एक व्यापक प्रक्रिया है। भर्ती एवं चयन इसके आवश्यक अंग हैं। भर्ती नियुक्ति का प्रथम चरण है। भर्ती अभ्यर्थियों की खोज, आवश्यकता और स्रोतों के निर्धारण तक सीमित है जबकि चयन इसके बाद की प्रक्रिया है। किसी संगठन को योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या में भर्ती करना आवश्यक होता है। उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विविध क्रियाकलाप द्वारा कर्मचारियों की पूर्ति के इस कार्य को भर्ती द्वारा संपन्न किया जाता है। संगठन में भर्ती और चयन संबंधी कार्य कार्मिक प्रशासन का बुनियादी कार्य है। भर्ती, प्रत्याशित कर्मचारियों की खोज एवं उन्हें संगठन में आवेदन करने के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है। भर्ती करते समय संगठनों को श्रम-बाजार की प्रकृति तथा मानव शक्ति के स्रोत को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। नियुक्ति के लिए आवेदनकर्ताओं की संख्या इस बात पर आश्रित रहती है कि कार्य प्रकृति क्या है एवं रिक्त पदों की संख्या कितनी है। विद्यमान आर्थिक स्थितियां, कौशल का उपलब्ध होना, भर्ती करने वाली कम्पनी की साख आदि अन्य तत्व हैं जो भर्ती को प्रभावित करते हैं।

भर्ती का सरल अर्थ हैं- रिक्त पद पर उपयुक्त कार्मिक की नियुक्ति। भर्ती प्रक्रिया में सम्मिलित गतिविधियों के आधार पर इसके संकुचित और व्यापक दो अर्थ होते हैं- संकुचित अर्थों में भर्ती, रिक्त पद पर योग्य उम्मीदवार की नियुक्ति तक सीमित है। व्यापक अर्थों में भर्ती रिक्त पद के लिए योग्य उम्मीदवार के चयन से लेकर उस पद पर उसकी सामर्थ्यपूर्ण स्थापना तक की कार्यवाहियों से संबंधित हैं। भर्ती को विविध विद्वानों ने परिभाषित किया है जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं-

एल.डी.व्हाइट के अनुसार, ''रिक्त पदों के लिए आयोजित परीक्षाओं हेतु योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करना ही भर्ती है।''

जे. डी. किंग्सले के शब्दों में, ''भर्ती का अर्थ है, लोक सेवाओं के लिए प्रार्थियों को प्रतियोगात्मक रूप से आकर्षित करना। यह व्यापक प्रक्रिया का एक अंग हैं। इसमें परीक्षा और प्रमाणन प्रक्रियाएं भी शामिल हैं।''

एडविन फिलप्पो के अनुसार, ''भर्ती सम्भावित कर्मचारियों की खोज करने तथा उन्हें संगठन कार्यों के लिए आवेदन करने के लिए उत्प्रेरित करने की प्रक्रिया है।''

क्लिंगर के अनुसार, ''भर्ती योग्य आवेदकों को आकर्षित करने की प्रक्रिया है।''
प्रो. ब्यूल के अनुसार, ''किसी विक्रय पद के लिए सर्वोत्तम उपलब्ध प्रार्थियों की सक्रिय खोज करना ही भर्ती है।''
एम.पी.शर्मा के शब्दों में, ''भर्ती का सीधा अर्थ है, योग्य तथा उपयुक्त व्यक्ति की रिक्त स्थान पर नियुक्ति।''
उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कर्मचारियों की भर्ती वह क्रिया है जिसके द्वारा संस्था में विभिन्न रिक्त पदों के लिए व्यक्तियों की खोज की जाती है तथा उन्हें रिक्त पदों तथा उनके लिए आवश्यक योग्यता के संबंध में जानकारी देकर उन्हें संस्था में आवेदन करने के लिए प्रेरित किया जाता है, ताकि संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके। किसी संगठन में भर्ती तथा चयन कर्मचारी संबंधी मूलभूत कार्य है। भर्ती द्वारा ही लोक सेवाओं का स्तर एवं योग्यता निश्चित होती है और इसी से शासन की उपयोगिता और समाज और शासन तंत्र के बीच संबंध निर्धारित होते हैं। भर्ती संपूर्ण कार्मिक प्रशासन के ढांचे की आधारशिला है। इस प्रकार भर्ती चयन की विस्तृत प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है, जो परीक्षा, साक्षात्कार एवं प्रमाणीकरण इत्यादि की प्रक्रिया को समाहित करता है।
भर्ती योग्य आवेदकों को आकर्षित करने की प्रक्रिया है। भर्ती की विशेषताएं निम्न हैं-

1. भर्ती प्रशासन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
2. भर्ती योग्य व्यक्तियों के खोज की प्रक्रिया है।
3. भर्ती एक सकारात्मक प्रक्रिया है जिसमें चयन अनुपात को बढ़ाने का उद्देश्य रहता है।
4. भर्ती वर्तमान तथा भावी दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की जा सकती है।
5. इसमें व्यक्तियों को आवेदन करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाता है।
6. इसमें भर्ती के विभिन्न स्त्रोतों का निर्धारण करके उन्हें बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।
7. भर्ती के द्वारा प्रत्येक कार्य के लिए पर्याप्त मात्रा में आवेदकों की पूर्ति उत्पन्न होनी चाहिये ताकि नियोक्ता को चयन की सुविधा हो। ।
8. भर्ती एवं चयन परस्पर सम्बद्ध हैं, यद्यपि दोनों में पर्याप्त अन्तर होता है।

भर्ती की ठोस नीति की आवश्यकता को सर्वप्रथम चीन में अनुभव किया गया था और योग्यता के सिद्धांत पर आधारित भर्ती को अपनाने की ठोस नीति को मान्यता भी चीन में ही प्रारंभ की गई। आधुनिक समय में प्रशा सबसे पहला देश है जिसने भर्ती प्रणाली का विकास किया था। भारत में योग्यता का सिद्धांत 1853 से प्रारंभ हुआ जबकि ब्रिटेन में इसे 1857 में स्वीकार किया गया है। अमेरिका में योग्यता सिद्धांत 1883 में आरंभ हुआ जबकि फ्रांस में प्रतियोगिता परीक्षाओं की शुरुआत 1847 से हुई थी। भर्ती के योग्यता सिद्धांत ने लूट सिद्धांत का स्थान लिया है लेकिन यह परिवर्तन धीरे-धीरे ही हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लूट-खसोट की प्रणाली काफी लंबे समय तक चलती रही। राष्ट्रपति गारफ़ील्ड की हत्या के बाद इसमें परिवर्तन किया गया और 1883 में पहली बार प्रतियोगिता परीक्षा के माध्यम से भर्ती का प्रावधान किया गया।

11.3 भर्ती का महत्व

प्रशासनिक व्यवस्था में भर्ती सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। किसी संगठन को ऐसे योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या में पूर्ति की व्यवस्था करना आवश्यक होता है जो उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विभिन्न कार्य कर सकें। लोक सेवाओं के गुण और कार्यकुशलता भर्ती और भर्ती संबंधी नीतियों पर निर्भर करते हैं। भर्ती सम्भावित कर्मचारियों के स्त्रोतों का निर्धारण करने, व्यक्तियों को कार्य अवसरों के बारे में सूचित करने तथा उन प्रार्थियों को संस्था में आकर्षित करने की प्रक्रिया है, जो कार्य को निष्पादित करने की वांछित योग्यता रखते हैं।
कर्मचारियों की पूर्ति के कार्य को भर्ती तथा चयन द्वारा संपन्न किया जाता है। लोक सेवकों की योग्यता और नैतिक स्तर का निर्धारण भर्ती प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। समाज के प्रति सरकार और प्रशासन की प्रासंगिकता और उपयोगिता एक स्वस्थ एवं निष्पक्ष भर्ती प्रणाली पर ही निर्भर करती है। भर्ती पद्धति स्वस्थ एवं निष्पक्ष तथा

इसका क्रियान्वयन कुशलतापूर्वक एवं बिना भेदभाव के होना चाहिए। भर्ती कुशल व्यक्तियों के सिविल सेवा में प्रवेश हेतु प्रवेश द्वार खोलने का कार्य करता है। यह एक सुदृढ़ लोक सेवा का आधार स्तंभ भी है। स्टॉल के अनुसार भर्ती संपूर्ण सार्वजनिक कार्मिक रचना की आधारशिला है। प्रशासनिक आवश्यकता के लिए सर्वोत्तम, कुशाग्र बुद्धि और अत्यधिक कार्य दक्ष व्यक्तियों की पूर्ति भर्ती प्रणाली द्वारा ही संभव है। आधुनिक समय में लोकसेवा सबसे महत्वपूर्ण जीवन वृति सेवा है और जीवन वृति सेवा का कोई भी घटक भर्ती नीति से बढ़कर महत्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार भर्ती कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर प्रशासनिक कार्य कुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है।

सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। योग्यता प्रणाली पर आधारित भर्ती नीतियां और कार्यक्रम लोक सेवाओं में सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त और सक्षम व्यक्तियों को चुनने का प्रयास करते हैं। सरकारी सेवाओं में रिक्त पदों की भरने की संपूर्ण प्रक्रिया भर्ती से विस्तृत मालूम पड़ती है। फिर भी भर्ती को सामान्यतया उस प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है जिसके द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए लोगों की सेवा में नियुक्ति की जाती है। प्रत्येक संगठन योग्य कार्मिको की भर्ती एवं चयन करके अपनी सफलता को सुनिश्चित कर सकता है। भर्ती एवं चयन मानव शक्ति नियोजन का एक महत्वपूर्ण अंग तथा मानव संसाधन विकास का एक आवश्यक कार्य है। प्रशासन में अनेक कारणों से मानव संसाधनों में परिवर्तन होते रहते हैं। नवीन तकनीकों में परिवर्तनों के कारण भी नये कर्मचारियों की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है। भर्ती एवं चयन संगठन में नयी मानव शक्ति जोड़ने की प्रक्रिया है तथा यह कर्मचारी नियोजन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

11.4 भर्ती की प्रक्रिया

भर्ती सभी देशों के प्रशासनिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अकुशल, अयोग्य और अनुपयोगी व्यक्तियों के सेवा में भर्ती हो जाने के पश्चात सबसे खर्चीला प्रशासन भी देश हित में कुछ नहीं कर सकता। शासन में सुयोग्य और कुशल व्यक्तियों का चयन उचित भर्ती व्यवस्था द्वारा ही संभव है। किसी भी देश की भर्ती पद्धति विशेषकर उस देश की संवैधानिक व्यवस्था तथा सामाजिक राजनीतिक नीतियों पर निर्भर करती है। भर्ती की पुरानी विधियां अब देश, काल, परिस्थिति के अनुसार पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गई हैं और लोक सेवा अधिकारी की भर्ती के लिए सभी देशों ने अर्हता पद्धति को स्वीकार कर लिया है।

भर्ती प्रक्रिया रिक्त पदों के विज्ञापन या उद्-घोषणा के साथ ही शुरू हो जाती हैं। उच्चतर पदों पर लोक सेवा आयोग या विभिन्न अधीनस्थ पदों पर अन्य एजेन्सी द्वारा भर्ती विज्ञापन प्रकाशित करने के पूर्व संबंधित विभागों से रिक्त पदों की जानकारी प्राप्त की जाती हैं। अत: लोक सेवा में भर्ती का प्रथम चरण यही से शुरू होता है। विज्ञापन जारी होने के पश्चात अगला चरण आवेदन पत्रों की जांच होता है। उपयुक्त आवेदकों को परीक्षा या साक्षात्कार के लिए बुलावा भेजा जाता हैं। यदि परीक्षा में आवेदक की संख्या ज्यादा हुई तो उसके बाद रिक्त पदों के लिए निश्चित अनुपात (सामान्यतया 1 पद के विरूद्ध 3 उम्मीदवार) में साक्षात्कार हेतु प्रत्यशियों को आमंत्रित किया जाता है। योग्यता क्रम के अंकों के आधार पर प्रत्याशियों को चयनित घोषित किया जाता है। नियुक्ति देने के पूर्व चयनितों का चरित्र-सत्यापन और चिकित्सकीय परीक्षण भी करवाया जाता है। अन्तत: उन्हें पद पर स्थापित कर दिया जाता हैं। यद्यपि अधिकांश पदों पर व्यवहारिक पद स्थापना के पूर्व उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाता हैं।

लोक सेवा के अधिकारी राज्य के पूर्णकालिक तथा पेशेवर कर्मचारी होते हैं तथा उनकी नियुक्ति एक विशेष प्रक्रिया द्वारा की जाती है, जिसे भर्ती की संज्ञा दी जाती है। भर्ती की प्रक्रिया विविध चरणों में संपन्न होती है। प्रमुख चरण निम्न हैं-

1. **पदों और नौकरियों की आवश्यकता-** सरकारी विभागों तथा अन्य संस्थाओं से अध्याचन के पश्चात यह निर्धारित होता है कि कितने कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी है अथवा प्रोन्नत किया जाना है। भर्ती

प्रक्रिया आरंभ करने से पहले यह सारी सूचनाएं भर्ती अधिकारी/अभिकरण द्वारा एकत्र की जाती है। तत्पश्चात रिक्त पदों का वर्गीकरण कर यह सुनिश्चित किया जाता है कि कितने पदों के लिए भर्ती प्रक्रिया शुरू करनी है। उसी समय रिक्त पदों के लिए अपेक्षित अर्हताएं , अनुभव इत्यादि के निर्धारण पर भी विचार किया जाता है।

2. **भर्ती नीति की शर्तों, अर्हता एवं अन्य पहलुओं का निर्धारण-** पदों एवं आवश्यकता निर्धारण के पश्चात दूसरा चरण अपेक्षित योग्यता और अन्य शर्तों का निर्धारण से संबंधित हैं, जिन्हें समाचार पत्रों, बुलेटिन, एवं अन्य माध्यमों के द्वारा सूचित किया जाता है। न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता, पूर्व अनुभव, उम्र सीमा, निवास, राष्ट्रीयता, शारीरिक उपयुक्तता इत्यादि के संबंध में निर्णय इसी दौरान लिया जाता है तथा अंतिम निर्णय लेने से पूर्व भर्ती संबंधी संवैधानिक व्यवस्था और सरकार की नीतियों पर भी विचार कर लिया जाता है।
3. **आवेदन पत्रों की रूपरेखा तैयार करना-** अगले चरण के रूप में उपयुक्त आवेदन पत्र की रूपरेखा तैयार करना आवश्यक हो जाता है, जिन्हें अभ्यर्थियों को विभिन्न रिक्त पदों में आवेदन करने के लिए दिया जाता है। आवेदन पत्र में सभी स्तंभ होने चाहिए जो व्यक्ति के बारे में प्रासंगिक सूचना दे सके। विभिन्न पदों तथा परीक्षाओं या सेवाओं के लिए विविध प्रकार के आवेदन पत्रों की रूपरेखा तैयार की जाती है।
4. **पद एवं परीक्षा इत्यादि का विज्ञापन निकालना-** अपेक्षित अर्हता और शर्तों इत्यादि के निर्धारण के पश्चात विभिन्न माध्यमों द्वारा परीक्षाओं का विज्ञापन प्रकाशित किया जाता है ताकि अधिकाधिक योग्य अभ्यर्थियों को आवश्यक रूप से आकर्षित एवं प्रेरित किया जा सके। कभी-कभी समाचार पत्रों में भी आवेदन-पत्र का प्रारूप निकाल दिया जाता है ताकि अभ्यर्थियों को आवेदन करने में सहूलियत हो। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा प्रत्येक शनिवार को अपने विज्ञापनों का प्रकाशित किया जाना इसी भर्ती प्रक्रिया का एक प्रमुख सोपान है।
5. **आवेदन पत्रों का सूक्ष्म परीक्षण करना-** निर्धारित तिथि के अंतर्गत प्राप्त आवेदनों को सूक्ष्म परीक्षण के बाद छटनी की जाती है तथा आवेदक को इस विषय के बारे में सूचित भी किया जाता है। तत्पश्चात परीक्षा की तिथि अथवा साक्षात्कार के लिए बुलावा पत्र प्रेषित किया जाता है जिस पर परीक्षा की तिथि, समय, स्थान इत्यादि आवश्यक जानकारियां दर्ज की गई होती है। इस अवस्था में आकर बहुत सारे अयोग्य और अक्षम अभ्यर्थियों का नाम भर्ती प्रक्रिया से निकाल दिया जाता है।
6. **परीक्षा, साक्षात्कार एवं अन्य जांचों को आयोजित करना-** सुयोग्य और उपयुक्त अभ्यर्थियों के चयन के लिए उनकी योग्यता और क्षमता की जांच आवश्यक है और यह कार्य लिखित परीक्षा या साक्षात्कार या किसी दूसरे प्रकार के जांच के द्वारा ही संभव है। यह परीक्षाएं किसी व्यक्ति की अर्हता जांच करने की औपचारिक प्रक्रिया है। प्रक्रियाओं के माध्यम से अर्हता अभ्यर्थी की श्रेणी, अभ्यर्थी का क्रम और योग्य अभ्यर्थियों की सूची तैयार की जाती है। परीक्षा के पश्चात सफल अभ्यर्थियों की एक सूची प्रकाशित की जाती है। साक्षात्कार में भी एक समरूप प्रक्रिया ही अपनाई जाती है और सफल या योग्य अभ्यर्थियों की सूची प्रकाशित होती है।
7. **प्रमाणीकरण-** परीक्षा, साक्षात्कार तथा विभिन्न प्रकार के जांच के पश्चात सफल अभ्यर्थियों का नाम या क्रमांक समाचार पत्रों या सूचना पट्ट पर घोषित कर दी जाती है। सफल एवं योग्य अभ्यर्थियों की सूची कार्मिक संस्था द्वारा प्रमाणित की जाती है और यह सूची सरकार को इस अनुमोदन के साथ भी जाती है कि अभ्यर्थियों का चयन एवं नियुक्ति की अंतिम सूची से किया जाए। संघ लोक सेवा आयोग जैसी संस्था का यह अंतिम कार्य है। सामान्यतया योग्य अभ्यर्थियों का चयन एवं नियुक्ति सरकार द्वारा केवल इसी

प्रमाणित सूची से की जाती है, लेकिन कुछ आपत्तियों के आधार पर इस सूची से किसी भी अभ्यर्थी का नाम सरकार हटा भी सकती है।

8. **चयन-** उपलब्ध योग्य एवं प्रतिभावान अभ्यर्थियों में से अभ्यर्थियों को चुनने की प्रक्रिया के नाम चयन है। यदि भी अभ्यर्थियों की योग्यता की जांच लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार द्वारा की जाती है तथा कार्मिक संस्थाओं द्वारा योग्य अभ्यर्थियों को प्रमाणित भी किया जाता है। फिर भी अंतिम चयन सरकार का उत्तरदायित्व है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में सामान्यतया सरकार संघ लोक सेवा आयोग द्वारा अनुमोदित अभ्यर्थियों की सत्यापित सूची में से ही नियुक्तियां करती है लेकिन किसी विशेष कारण से यदि किसी अभ्यर्थी का नाम निरस्त किया जाता है तो सरकार इसका कोई ठोस उपयुक्त और समुचित कारण संसद में प्रस्तुत करती है क्योंकि प्रजातंत्र में अंतिम रूप से सरकार को ही जनता को उत्तर देने के लिए उत्तरदायी बनाया गया है।
9. **नियुक्ति-** उपयुक्त और योग्य अभ्यर्थियों के चयन के पश्चात औपचारिक नियुक्ति सरकार के द्वारा की जाती है। समस्त नियुक्तियां एक सुयोग्य कार्यकारी अधिकारी के द्वारा की जाती हैं। भारत में केंद्र सरकार की सभी नियुक्तियां राष्ट्रपति के नाम से तथा राज्य सरकारों की नियुक्तियां राज्यपाल के नाम से की जाती है। सरकार द्वारा प्रेषित नियुक्ति पत्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। जैसे स्थाई नियुक्ति, अल्पकालिक नियुक्ति ,परिविक्षाधीन नियुक्ति तथा अनिश्चितकालीन नियुक्ति आदि। आरंभ में किसी भी अभ्यर्थी को स्थाई नियुक्ति पत्र नहीं दिया जाता है। सामान्यतया चयनित अभ्यर्थियों को परिवीक्षा के आधार पर नियुक्त किया जाता है। यह अवधि 6 महीना, 1 वर्ष या 2 वर्ष हो सकती है। परिवीक्षा की अवधि में अभ्यर्थियों से विविध पदों पर कार्य करने को कहा जाता है। जिसके मूल्यांकन के पश्चात उसकी सूचना नियुक्ति अधिकारी को दी जाती है। सफलतापूर्वक परिवीक्षा की अवधि पूर्ण करने के पश्चात अभ्यर्थियों को सेवा में स्थाई कर लिया जाता है।
10. **पदस्थापन-** परिवीक्षा की अवधि पूर्ण होने के पश्चात सेवा का पुष्टिकरण किया जाता है और उसे समुचित पद पर पदस्थापित किया जाता है, जिसे नियोजन या पदस्थापन कहा जाता है। उसे उस पद से संबंधित किसी विशेष प्रकार के कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। कुछ वर्षों तक कार्य करने के अनुभव के पश्चात नियुक्त अधिकारी उस पद के दायित्वों का निर्वहन करता है।

11.5 भर्ती के प्रकार

भर्ती के संबंध में विविध विधियों का प्रयोग दुनिया के देशों में किया जाता है। विभिन्न देशों में भर्ती के विविध प्रकार या विधियों को अपनाया गया है, उनमें हैं-

1. **प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भर्ती-** भर्ती की दो विधियां हैं- आंतरिक भर्ती यानी प्रोन्नति से भर्ती करना और बाह्य उपलब्ध लोगों से भर्ती करना। बाहर उपलब्ध और योग्य अभ्यर्थियों द्वारा जब रिक्त पदों पर भर्ती की जाती है तो उसे प्रत्यक्ष भर्ती कहते हैं लेकिन जब पहले से ही सेवारत उपयुक्त और अनुभवी अभ्यर्थियों के द्वारा रिक्त पद भरा जाता है तो उस प्रोन्नति को अप्रत्यक्ष भर्ती कहा जाता है। आंतरिक स्रोत से आशय उपक्रम में कार्य करने वाले कर्मचारियों की उच्च पदों पर पदोन्नति, स्थानान्तरण व समायोजन से है। बाह्य स्रोत से भर्ती निम्न वर्गीय कर्मचारियों की जाती है। भर्ती की दोनों विधियों के कुछ लाभ और कुछ हानियां हैं लेकिन विश्व के लगभग सभी देशों में यही दो विधियां अपनाई जाती हैं। सामान्यतया निर्णय स्तरीय पदों को प्रत्यक्ष भर्ती तथा उच्च स्तरीय पदों को पदोन्नति यानी अप्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा भरा जाता है। विभिन्न देशों में उनके राजनीतिक और प्रशासनिक नीतियों के अनुसार विवेक सम्मत और व्यवहारिक दोनों प्रकार की भर्ती नीतियों के सम्मिश्रण को अपनाया जाता है।

प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली के लाभ के साथ साथ हानियाँ भी बहुत हैं। प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली योग्य उम्मीदवारों को शुभ अवसर प्रदान करता है। अतः प्रजातांत्रिक सिद्धांत है। इसमें आपूर्ति के स्रोत विस्तृत हैं तथा इसके द्वारा युवा और अति योग्य अभ्यर्थी सिविल सेवा में आते हैं। इसमें नए चेहरे, नए विचार, परिवर्तन, तकनीकी, प्रशासकीय, सामाजिक, राजनीतिक अवस्थाओं का सेवाओं में प्रति भी मन होता है। इसमें परिवर्तनशील अवस्था और तकनीकों के साथ सेवा प्रगति कर सकती हैं तथा कर्मचारीगण अपनी अर्हता बढ़ाने के लिए कठिन परिश्रम भी करते हैं।

वहीं दूसरी ओर प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली की हानियाँ भी है। इसमें उत्तरदायी पदों पर अनुभव ही नहीं युवकों को भर्ती किया जाता है जिनमें कम से कम आरंभ में अपने कर्तव्य निर्वाह के लिए दक्षता और आत्मविश्वास का अभाव रहता है। प्रत्यक्ष विधि के द्वारा नियुक्त अनुभवहीन युगों के लिए प्रशिक्षण परम आवश्यक हो जाता है। इस भर्ती पद्धति में सरकारी सेवाओं में पहले से कार्य कर रहे लोगों की प्रोन्नति व्यवसाय अवरुद्ध हो जाते हैं । इससे उनकी कार्यकुशलता और निष्ठा पर बुरा असर पड़ता है। यह लोक सेवाओं का कार्यभार अत्यधिक बढ़ा देता है। भविष्य में उन्नति के अवसर नहीं दिखने पर कर्मचारियों और अन्य योग्य और कुशल लोगों में विश्वास पैदा करता है। इसमें कर्मचारी के अनुभव, कठिन परिश्रम और कार्यकुशलता पूर्ण हो जाते हैं तथा अधिक समय नष्ट करने वाली और अधिक खर्चीली भी है।

दूसरी ओर अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली में नियुक्त व्यक्तियों को प्रशासनिक और सरकारी कार्यों का अपेक्षित अनुभव रहता है तथा वह भी अपने कर्तव्य निर्वाह पूर्ण विश्वास और उत्तरदायित्व के साथ करते हैं तथा इस विधि के द्वारा नियुक्त व्यक्तियों के लिए दीर्घावधि प्रशिक्षण आवश्यक नहीं है। यह कर्मचारियों में सेवा में प्रगति और तरक्की का अवसर प्रदान करता है तथा कठिन परीक्षण करने हेतु प्रोत्साहित भी करता है। अप्रत्यक्ष भर्ती लोक सेवा आयोग का कार्यभार काफी हद तक कम कर देता है तथा इसके माध्यम से कर्मचारी के कार्यकुशलता, अनुभव का उपयोग देश की प्रगति किया जाता है। अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली कम समय नष्ट करने वाला और कम खर्चीला है। वहीं दूसरी और अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली के हानियां भी कम नहीं हैं। इस भर्ती प्रणाली में सेवा में पूर्व से विद्यमान सीमित अभ्यर्थियों को अवसर प्रदान किया जाता है जो अप्रजातांत्रिक है। इसमें आपूर्ति के स्रोत और प्रतिबंधित होते हैं तथा इसके द्वारा सक्षम अभ्यर्थियों को सिविल सेवा में प्रवेश के अवसर को नकारा जाता है। इस प्रकार यह भय पैदा करता है। नए चेहरे ,नए विचारों को प्रवेश करने से रोकता है। इसमें शीघ्र परिवर्तनशील संसार के साथ सिविल सेवा प्रगति नहीं कर पाती है तथा प्रोन्नति की अवसर की प्रतीक्षा कर्मचारी हमेशा करते ही रह जाते हैं।

दोनों प्रकार की भर्तियों के गुण और दोषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक पद्धति के कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक पहलू हैं श्रेष्ठ पद्धति दोनों विधियों को अपनाकर निर्मित की जाती है।

2. **सकारात्मक और नकारात्मक भर्ती-** जब भर्ती के अभिकरण सरकारी सेवाओं में भर्ती के लिए सक्रिय रूप से सर्वाधिक योग्य और अत्यधिक का कार्य कुशल अभ्यर्थियों की खोज करते हैं तो इसे भर्ती की सकारात्मक विधि कहा जाता है। इसके विपरीत अभ्यर्थियों का ध्यान आकर्षित किए बगैर अयोग्य और अनुपयुक्त अभ्यर्थियों को बाहर रखने के लिए भर्ती की नकारात्मक विधि का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में अभ्यर्थियों को आगे लाने हेतु आकर्षित करने के लिए अनेक देशों में सकारात्मक समाचार पत्रों में विज्ञापन प्रचार साहित्य, सिनेमा इत्यादि को अपनाया जाता है।

3. **सामूहिक और व्यक्तिगत भर्ती-** एक बड़ी संख्या में गैर-तकनीकी और सामान्य सेवाओं के रिक्त पदों को भरना सामूहिक भर्ती की तकनीक है। सरकारी में भारी संख्या में रिक्त पदों को भरने के लिए जनसंचार माध्यमों के द्वारा विज्ञापन निकाला जाता है। तत्पश्चात परीक्षा और साक्षात्कार की कठिन विधि अपनाई जाती है। लोक सेवा आयोग भारत में इन्हीं विधियों को दोनों विधियों को प्रयोग में लाते हैं।

11.6 भर्ती की अर्हता पद्धतियाँ

लोक सेवाओं के कर्मचारियों के लिए आवश्यक अर्हता संबंधी प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन्हीं बिंदुओं पर लोक सेवाओं की कार्यकुशलता निर्भर करती है। लोक सेवाओं के लिए अर्हता पद्धतियाँ दो प्रकार की होती हैं- सामान्य और विशेष। सामान्य अर्हता सभी लोग कर्मचारियों पर लागू होते हैं और एक प्रकार से सार्वभौमिक रूप से प्रयोग में आने वाली होती हैं। सामान्य अर्हताएं- नागरिकता, अधिवास, लिंग भेद और आयु से संबंध रखते हैं। विशेष अर्हताएं- शिक्षा, अनुभव, प्राविधिक ज्ञान ,व्यक्तिगत विशेषताओं से संबंधित होती हैं। आईये इनका विस्तृत अध्ययन करते हैं-

1. **नागरिकता-** लोक सेवा के पदों के लिए आवेदन करने वालों को राज्य का नागरिक होना आवश्यक है। विदेशियों को लोक सेवा में कोई पद नहीं दिया जा सकता। यदि कोई विदेशी नियुक्त कर भी लिया जाता है तो उसका कार्यकाल थोड़े समय के लिए ही होता है। भारत में नेपाल के परिजनों के लिए लोक सेवाओं के पदों पर नियुक्ति की सुविधाएं हैं क्योंकि भारत के साथ इस देश के दृढ़ ऐतिहासिक संबंध है।
2. **अधिवास या निवास-** अधिवास संबंधी अर्हता को संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा स्थापित की गई थी, जहां आज भी संघीय राज्यों को राष्ट्रीय सेवाओं में यथोचित प्रतिशत स्थान दिया जाता है। भारत में अधिवास संबंधी नियम 1957 तक लागू थे। राज्य पुनर्गठन आयोग ने भारत की लोक सेवाओं की पात्रता के लिए इन प्रावधानों पर आपत्ति की थी और इन्हीं आलोचनाओं के केंद्र सरकार ने लोक सेवा अधिनियम 1957 पारित किया, जिसके द्वारा राज्य की लोक सेवाओं में प्रवेश पाने के संबंध में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करके देश की एकता को सुदृढ़ बनाया गया।
3. **लिंग भेद-** कुछ समय पूर्व तक अधिकतर देशों में महिलाओं को लोक सेवा में नौकरी करना निषिद्ध था। अब यह लगभग समाप्ति की ओर है। भारतीय संविधान निर्धारित करता है कि सभी नागरिकों को राज्य के पदों पर नियुक्ति संबंधी मामलों में समान अवसर प्राप्त होंगे।
4. **आयु-** भारत, ब्रिटेन और अन्य देशों में लोक सेवा में नव युवकों की भर्ती की जाती है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिक परिपक्व स्त्री पुरुषों को ही नौकरी में लिया जाता है। इसका सरकार के सभी वर्ग संबंधी ढांचे पर प्रभाव पड़ता है। आधुनिक समय में जबकि प्रशासनिक कार्यों में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, उच्चतर आयु समूह के व्यक्तियों को ही लोक सेवा में प्रवेश पाने से वंचित नहीं किया जा सकता। भारत में 18 से 30 वर्ष तक की आयु के युवक लोकसेवा प्रवेश प्राप्त कर सकते हैं और जाति जनजाति में यह सीमा 5 वर्ष स्थापित की गई है जबकि पिछड़े वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए 3 वर्ष की छूट है। अमेरिका की भर्ती प्रणाली की एक विशेषता यह है कि कोई भी व्यक्ति अमेरिकी लोक सेवा में लगभग किसी भी स्तर पर तथा किसी भी आयु में प्रवेश पा सकता है।
5. **शिक्षा संबंधी अर्हता-** इस संबंध में दो प्रकार की नीतियां प्रचलित है। लोक सेवा में प्रवेश पाने के लिए निश्चित शिक्षा संबंधी योग्यता निर्धारित की गई है। वहीं अमेरिकी में शिक्षा संबंधित प्रावधान नहीं है। भारत में लोक सेवा के लिए प्रणाली की सामान्य व्यवस्था के अनुसार अनिवार्य न्यूनतम अर्हता स्नातक उपाधि होती है।
6. **अनुभव-** संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक सेवा में किसी भी आयु के प्रवेश दिया जा सकता है। कार्य के वास्तविक अनुभव का बहुत अधिक महत्व है तथा उसकी बहुत मांग रहती है। भारतीय प्रणाली में महाविद्यालयों/विश्व विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त युवकों की भर्ती की जाती है। फिर भी विधिक सेवाओं के लिए अनुभव को मांगा जाता है।

7. **व्यक्तिगत अर्हता-** लोक सेवकों में निष्पादन की योग्यता, चातुर्य, युक्ति, ईमानदारी, क्षमता, सच्चाई और मिलजुल कर कार्य करने की योग्यता होना आवश्यक है।
8. **प्राविधिक योग्यता अनुभव-** विकास उन्मुख सरकार के लिए अर्थशास्त्री, कानूनी परामर्शदाता, इंजीनियर, वैज्ञानिक और ऐसे ही अनेक प्राविधिक कर्मचारियों को अधिकाधिक शासकीय सेवा में भर्ती करना आवश्यक है।

दुनिया के सभी प्रजातांत्रिक देशों में भर्ती की अर्हता पद्धति को अपनाया गया है। अर्हता पद्धति के अनुसार खुली प्रतियोगिता के द्वारा चयनित योग्य और उपयुक्त अभ्यर्थियों के द्वारा सरकारी सेवाओं में रिक्त पदों को भरा जाता है। खुली प्रतियोगिता का उद्देश्य अभ्यर्थियों की योग्यता और क्षमता को आंकना होता है और यह कार्य प्रायः लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा, साक्षात्कार, कार्य निष्पादन परीक्षा, पूर्व अनुभव कार्य के पूर्व रिकार्डों के परीक्षण के द्वारा किया जाता है।

प्राचीन भारत एवं चीन में कर्मचारियों का चयन योग्यता के आधार पर किए जाने के प्रमाण मिलते हैं, किंतु आधुनिक काल में अर्हता सिद्धांत अपेक्षाकृत नवीन है। सबसे पहले यह भारत और ब्रिटेन में क्रमशः 1854 और 1855 में प्रारंभ किया गया, किंतु अमेरिका में अर्हता सिद्धांत सबसे पहली बार 1833 के पेंडलटन एक्ट के द्वारा लागू किया गया। जब एक बेरोजगार एवं हतोत्साहित युवक ने लूट-खसोट प्रणाली के खिलाफ राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या कर दी थी। अर्हता सिद्धांत अपनाने से पूर्व विश्व में तीन पद्धतियां विद्यमान थीं- कार्यालयों का विक्रय, क्रय पद्धति तथा इनामी पद्धति।

फ्रांस की क्रांति से पहले वहां सार्वजनिक नीलामी के द्वारा ऊंची बोली लगाने वालों के हाथों बेचा जाता था जिससे राज्य के लिए राजस्व भी प्राप्त होता था और धन वालों को सरकारी पद प्राप्ति हेतु अवसर भी प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार सरकार के प्रति पक्षपात एवं राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करने वाली यह व्यवस्था थी। ब्रिटेन तथा अन्य देशों में प्रश्रय प्रणाली को अपनाया गया था जिसके अनुसार सरकारी सेवा में अभ्यर्थियों की नियुक्ति नियुक्ति अधिकारी के द्वारा चयन के आधार पर की जाता था। जिससे वह व्यक्तिगत या राजनीतिक आधार पर सहायता करना चाहता था। परिवार और रिश्तेदारी, व्यक्तिगत निष्ठा, राजनीतिक संबंध, सभी प्रकार के पक्षपात और भाई भतीजावाद भर्ती के इस प्रणाली में शामिल थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक यह पद्धति भारत और यूरोप में भी प्रचलित थी। इनामी पद्धति अमेरिका में प्रचलित थी, जहां निर्वाचन में जीतने वाले पार्टी के द्वारा इनाम के रूप में सरकारी सेवा में नियुक्तियां की जाती थी। जब भी कोई नई पार्टी सत्ता में आती थी तो वह अपने समर्थकों को पद पर भर्ती थी और पूर्व सरकार द्वारा नियुक्त सभी कर्मचारियों को बर्खास्त कर देती थी। इस प्रकार सत्ताधारी पार्टी में निष्ठा अनुभूति रखने वाले नवनिर्वाचित राष्ट्रपति के प्रति व्यक्तिगत रूप से निष्ठावान रहते थे। उन्हें सरकारी तौर पर लोक सेवकों को नियुक्त किया जाता था। अमेरिका में यह पद्धति 1833 के एक्ट के पास होने तक एक शताब्दी से भी अधिक समय तक प्रचलित रहा।

प्रजातांत्रिक भावनाओं की वृद्धि तथा प्रशासन की जटिलताओं के कारण उपरोक्त भर्ती की प्रविधियां पुरानी हो गई हैं। योग्यता और अर्हता के आधार पर भर्ती करना विश्व के सभी देशों में प्रारंभ हो चुका है। इनामी प्रणाली कहीं भी प्रचलन में नहीं है।

11.7 अर्हता निर्धारण की विधियाँ

अधिकांश देशों में लोक सेवा के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर होती है। प्रशासन में भर्ती हेतु योग्यता सिद्धांत के अंतर्गत एक केंद्रीय निष्पक्ष और गैर-राजनीतिक तथा स्वतंत्र केंद्रीय कार्मिक संस्था जैसे लोक सेवा आयोग इत्यादि आवश्यक होते हैं। अभ्यर्थियों की अर्हता सरकार द्वारा नियुक्त

केंद्रीय कार्मिक संस्था के द्वारा ही हो पाती है। सामान्यतया अभ्यर्थियों की अर्हता की जांच के लिए किया निम्नांकित विधियों के संयोजन से की जा सकती है। ये विधियां हैं-

1. **लिखित परीक्षा-** बुद्धि, स्मरण शक्ति, ज्ञान तथा सूचनाओं की तर्कसंगत प्रस्तुति के लिए कल्पना और क्षमताओं की जांच हेतु लिखित परीक्षा एक सामान्य विधि है। लिखित परीक्षाएं दो प्रकार की होती हैं- निबंधात्मक तथा लघु उत्तरीय या वस्तुनिष्ठ। भारत में निबंधात्मक परीक्षाएं सामान्य है। प्रश्न पत्र में से दिए गए कुछ प्रश्नों का उत्तर दो से तीन घंटे में पूर्ण रूप से विस्तृत निबंधात्मक रूप से अभ्यर्थियों को लिखने हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इस विधि से अभ्यर्थियों की सामान्य बौद्धिक क्षमता, तथ्यपरक सूचना अभिव्यक्ति की क्षमता, स्मरणशक्ति, तर्कपूर्ण विवेचन की योग्यता तथा विचारों की स्पष्टता इत्यादि के संबंध में जांच की जाती है। लेकिननिबंधात्मक परीक्षा पद्धति में मूल्यांकन कठिन और व्यक्तिपरक होता है। दूसरी प्रकार की परीक्षा लघु उत्तरीय या वस्तुनिष्ठ होती है। इस प्रकार के प्रश्न पत्र में बहुत सारे प्रश्न होते हैं जिसे एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर उत्तर देना होता है। कभी-कभी रिक्त स्थानों की पूर्ति अथवा सही या गलत कथन के रूप में भी प्रश्न पूछे जाते हैं। वस्तुनिष्ठ प्रणाली अभ्यर्थी की तथ्यात्मक सूचना और सही ज्ञान को परखने में उपयोगी सिद्ध होता है। इसे तत्काल अभ्यर्थी की निर्णय लेने की क्षमता और स्मरण शक्ति की जांच होती है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण तथा मूल्यांकन भी वस्तुनिष्ठ नहीं होता है तथा इसमें परीक्षक किए आत्म मूल्यांकन के लिए कोई स्थान नहीं होता। फिर भी बड़ी संख्या में अभ्यर्थियों की योग्यता और क्षमता को जांचने के लिए यह सर्वाधिक सरल विश्व सनीय निधि हैं।

   अनेक देशों में दोनों प्रकार की परीक्षाओं का प्रचलन है। उच्च स्तर पर जहां ज्ञानी व्यक्ति और तार्किक चिंतन आवश्यक है वही निबंधात्मक प्रश्नों को ही प्रमुखता दी जाती है। निम्न स्तर पर जहां अभ्यर्थियों की संख्या बहुत बड़ी होती है, वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली को प्रमुखता दी जाती है। इस परीक्षा में अभ्यर्थियों की सामान्य ज्ञान, योग्यता और बौद्धिक क्षमता आँकने के लिए लिखित परीक्षा भी आयोजित की जाती है। भारत और ब्रिटेन में कुछ अनिवार्य सामान्य पत्र जैसे सामान्य निबंध, सामान्य ज्ञान तथा सामान्य अंग्रेजी इत्यादि में लिखित परीक्षाएं ली जाती है। साथ ही अभ्यर्थियों की रूचि के अनुसार कुछ शैक्षिक वैकल्पिक प्रश्न पत्रों की भी परीक्षाएं होती है जो प्रायः महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों से लिया जाता है। इस प्रकार की परीक्षा के पीछे यह तर्क दिया जाता है कि प्रशासन में विशिष्ट ज्ञान की अपेक्षा बौद्धिक क्षमता अधिक आवश्यक है और एक तेज और तीक्ष्ण बुद्धि वाला व्यक्ति सभी प्रकार के प्रशासनिक कार्यों के लिए उपयोगी है।

2. **पूर्व कार्य के रिकार्डों का मूल्यांकन-** शासकीय सेवाओं में बहुत सारे ऐसे पद होते हैं, जिनके लिए लिखित परीक्षा या साक्षात्कार सही प्रणाली सिद्ध नहीं होती। वकालत, चिकित्सा, इंजीनियरिंग एवं वैज्ञानिक तथा इसी प्रकार की ढेर सारी सेवाओं में विशिष्ट एवं तकनीकी पदों के रिक्त स्थानों को अभ्यर्थियों के अर्हता, अनुभव कार्य के पूर्व रिकार्डों के परीक्षण के पश्चात ही भरा जाता है। न्यूनतम अर्हता को पूर्ण करने वाले आवेदकों को अपने प्रस्तुत किए गए रिकॉर्ड के आधार पर विशेषज्ञों के एक बोर्ड द्वारा जांच की जाती है और सभी गुणों के आधार पर उनका चयन किया जाता है। सरकारी सेवाओं में उच्च स्तरीय वैज्ञानिक तकनीकी एवं विशिष्ट पदों की नियुक्ति में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है तथा विश्व विद्यालयों में अध्यापकों की भर्ती भी इसी विधि से की जाती है।

3. **शारीरिक जांच परीक्षण-** लोक सेवकों के लिए यह आवश्यक है कि वह शारीरिक तौर पर पूरी तरह स्वस्थ हो। साथ ही सेवा प्रारंभ करने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति इस संबंध में एक प्रमाण पत्र भी देना पड़ता है। शारीरिक योग्यता का यह प्रमाण पत्र पुलिस, सशस्त्र बलों तथा अन्य क्षेत्रीय सेवाओं में अनिवार्य है।

4. **मनोवैज्ञानिक जांच परीक्षण-** उच्च स्तरीय पदों पर भर्ती हेतु अभ्यर्थियों की बुद्धि, मानसिक योग्यता इत्यादि की जांच के लिए मनोवैज्ञानिक जांच परीक्षण आवश्यक समझा जाता है। इस जांच को अपनाने से अभ्यर्थियों की क्षमता की जांच की जाती है तथा यह जांच अन्य जांचों की मात्र पूरक ही है। यह चयन करने के कोई पूर्ण और स्वतंत्र विधि नहीं है।

इस प्रकार सरकारी नौकरियों में उपयुक्त में योग्य अभ्यर्थियों को भर्ती के लिए इन सभी विधियों का उपयोग किया जाता है। सिविल सेवा में सर्वोत्तम और योग्य व्यक्तियों को पाना ही इन सब का चरम उद्देश्य हैं। कार्मिक चयन में वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता लाने के लिये लोक सेवा के बाहर के अभिकरण आवश्यक समझे गए और इस प्रकार स्वतंत्र लोक सेवा आयोग का जन्म हुआ। सर्वप्रथम ब्रिटेन में 1855 में लोकसेवा आयोग (3 सदस्यीय) गठित हुआ था, जो 1968 से लोकसेवा विभाग (फुल्टन सिफारिश) का अंग बनकर कार्य कर रहा है, तथा इसमें अब 6 सदस्य हैं। अमेरिका में 1871-1872 में लोकसेवा आयोग गठित हुआ, लेकिन 1883 के पेण्डलटन अधिनियम द्वारा स्थापित होकर 01 जनवरी 1979 तक कार्यशील रहा। 1979 से उसका स्थान विभिन्न पृथक संस्थाओं ने ले लिया हैं । भारत में संघ, राज्य और राज्यों के संयुक्त लोकसेवा आयोग के प्रावधान अनुच्छेद- 315 में किये गये हैं। साथ ही अधीनस्थ पदों पर भर्ती हेतु केन्द्र में स्टाफ चयन बोर्ड कार्यरत है। इसके अलावा रेलवे बोर्ड और बैकिंग भर्ती बोर्ड हैं जो क्रमश: रेलवे और बैंक में भर्ती करते हैं।

11.8 श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्तें

भर्ती कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। भर्ती की नीति यदि अच्छी नहीं है तो सक्षम और अयोग्य लोग लोक सेवाओं में चले आते हैं और शासन व्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि भर्ती की नीति सुनियोजित और निष्पक्ष हो। भर्ती की नीति में गतिशीलता, लोचशीलता, ईमानदारी, विशेषज्ञता आधारित होना चाहिए। श्रेष्ठ भर्ती निधि की आवश्यक शर्तें निम्नलिखित हैं-

1. भर्ती की नीति सकारात्मक होनी चाहिए और इसकी योजना सरकारी सेवाओं में सर्वोत्तम, अत्यधिक कार्यसक्षम और योग्य लोगों को आकर्षित करने के लिए होनी चाहिए।
2. भर्ती की नीति प्रजातांत्रिक होनी चाहिए और जिससे अत्यधिक योग्य लोगों को अवसर प्रदान होने चाहिए तथा सरकारी सेवाओं में रिक्त स्थानों के बारे में आपूर्ति करने वाले सभी स्रोतों द्वारा सूचित होना चाहिए।
3. भर्ती की नीति आकर्षक होनी चाहिए तथा सरकारी सेवाओं के लिए अस्थाई रूप से से अच्छी रोजगार क्षेत्र का निर्माण करना चाहिए। सभी प्रतिभाशाली लोगों को सरकारी सेवाओं में लाने के लिए आकर्षक साहित्य प्रचार तकनीक का प्रयोग करना चाहिए तथा यह निरंतर चलता रहना चाहिए।
4. भर्ती विधि निष्पक्ष और अराजनीतिक होनी चाहिए। भर्ती लोक सेवा आयोग जैसे एक स्वतंत्र निष्पक्ष और राजनीतिक संस्था के द्वारा ही होनी चाहिए। सिविल सेवा अधिकारी की भर्ती में सरकार या राजनेताओं का किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
5. भर्ती अर्हता सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए तथा अर्हता एवं योग्यता की जांच के पश्चात केवल योग्य, गुणवान एवं प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों को ही भर्ती किया जाना चाहिए।
6. भर्ती करने वाली संस्थाओं को अर्हता जांच की आधुनिक और वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाना चाहिए और समय-समय पर इन पद्धतियों का पुनरावलोकन भी आवश्यक है ताकि नए आधुनिक पद्धतियों को अपनाया जा सके।
7. भर्ती नीति में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भर्ती पद्धतियों का सुंदर मिश्रण होना चाहिए अर्थात पहले से कार्यरत और प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों को प्रोन्नति दिया जाना चाहिए और उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त भी किया

जाना चाहिए। वहीं दूसरी ओर प्रतिभा संपन्न नवयुवकों को भर्ती कर सर्वोत्तम सफलता और सुंदर भर्ती नीति हेतु दोनों पद्धतियों को संयुक्त किया जाना चाहिए।

8. भर्ती नीति नवीन रीतियुक्त होना चाहिए। नवीनतम परिवर्तनों तथा सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक बदलाव को समाहित करते हुए नीतियों का निर्माण आवश्यक है।
9. उचित व्यक्ति का उचित पद पर पदस्थापन भर्ती का एक महत्वपूर्ण आयाम है। चयन प्रक्रिया की समाप्ति के पश्चात अभ्यर्थियों को इस प्रकार से पदस्थापित किया जाना चाहिए जिससे कि उचित व्यक्ति को उचित सेवा में पदस्थापन हो सके।

11.9 भारत में भर्ती की पद्धति

भारत में ब्रिटिश प्रतिमान पर आधारित योग्यता पद्धति भर्ती में अपनाई गई है। अभ्यर्थियों की सामान्य योग्यता तथा बुद्धि परीक्षण खुली प्रतियोगिता के अंतर्गत अर्हता पद्धति पर आधारित है। भारतीय संविधान के अनुसार अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं में भर्ती का अधिकार संघ लोक सेवा आयोग को सौंपा गया है परंतु अंतिम भर्ती राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राज्य सेवाओं के लिए भर्ती का कार्य राज्य लोक सेवा आयोग करता है और नियुक्ति पत्र राज्यपाल के नाम से निर्गत किया जाता है।अखिल भारतीय सेवाओं तथा उच्च केंद्रीय सेवाओं के लिए संघ लोक सेवा आयोग संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा आयोजित करता है। भर्ती के लिए लिखित और मौखिक परीक्षाओं का एक सुव्यवस्थित आयोजन संघ लोक सेवा आयोग द्वारा किया जाता है जिसमें उच्च स्तरीय पदों के लिए स्नातक को ही प्रतियोगिता में बैठने सम्मिलित होने का अधिकार मिलती है। भारतीय प्रणाली पर ब्रिटिश प्रणाली का छाप है और प्रशासकीय सेवा में प्रवेश पाने के लिए भारत में अनिवार्य न्यूनतम अर्हता कला, विज्ञान, तकनीकी प्रबंधन या चिकित्सा विषयों में विश्व विद्यालय की उपाधि होती है। लिपिकीय सेवाओं में प्रवेश पाने के लिए न्यूनतम अर्हता 2010 से 12वीं या उसके समकक्ष निर्धारित की गई है।

संघ लोक सेवा आयोग विविध चरणों में अर्हता परीक्षा संपन्न करता है। सिविल सेवा प्रतियोगी परीक्षा की 1978 तक प्रचलित प्रणाली में समस्त अभ्यर्थी एक संयुक्त परीक्षा में बैठते थे और छटनी की कोई व्यवस्था इन सेवाओं हेतु नहीं थी। अनंतर डॉ. दौलत सिंह कोठारी समिति की अनुशंसाओं के आधार पर भर्ती की नई प्रणाली 1979 से प्रारंभ की गई। इस नई प्रणाली के अंतर्गत सिविल सेवा परीक्षा दो चरणों में संपन्न करने का प्रावधान था- प्रारंभिक सिविल सेवा परीक्षा और सिविल सेवा प्रधान परीक्षा।

प्रारंभिक सिविल सेवा परीक्षा में वस्तुपरक प्रकार के दो प्रश्न पत्र होते थे- सामान्य अध्ययन का प्रथम प्रश्न पत्र 150 अंक तथा ऐच्छिक विषयों में से चुना गया एक प्रश्न पत्र 300 अंको का होता था। इस प्रकार कुल मिलाकर 450 अंकों में से केवल यही उम्मीदवार प्रारंभिक परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर लेते थे। उक्त वर्ष की मुख्य परीक्षा में सम्मिलित होने के पात्र होते थे। मुख्य परीक्षा में लिखित परीक्षा व साक्षात्कार प्रश्न होता था। लिखित परीक्षा में परंपरागत निबंधात्मक शैली की प्रश्न होते थे। उम्मीदवारों को मुख्य परीक्षा लिखित एवं साक्षात्कार में प्राप्त किए गए आधार पर अंतिम योग्यता निर्धारित किया जाता था।

1988 में सतीश चंद्र की अध्यक्षता में एक अन्य समिति नियुक्त की गई जिसमें प्रतियोगी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में कुछ विषयों को सम्मिलित करने की सिफारिश की। मुख्य परीक्षा में निबंध का प्रश्न पत्र सम्मिलित करने की अनुशंसा की गई और व्यक्तित्व परीक्षा के अंक 250 से बढ़ाकर 300 कर दिए गए और यह प्रावधान 1993 की परीक्षाओं से प्रारंभ कर दिया गया। सिविल सेवा परीक्षा की समीक्षा हेतु संघ लोक सेवा आयोग ने 19 जुलाई 2000 को एक समिति योगेंद्र कुमार अलघ के नेतृत्व में गठित की जिसने अपनी रिपोर्ट 22 अक्टूबर 2000 को आयोग के अध्यक्ष को सौंपी थी। समिति के अनुसार अभ्यर्थियों की योग्यता, ज्ञान, कौशल, समाज और मूल्यों को

बढ़ावा देने के लिए सही पद्धति लागू की करने की सलाह दी गई। 2004 में पी. सी. होता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने सिविल सेवाओं में सुधार की अनुशंसा की।

सिविल सेवा परीक्षा प्रारंभिक प्रणालियों पाठ्यक्रम का नया स्वरूप 18 अक्टूबर 2010 को भारत सरकार द्वारा संघ लोक सेवा आयोग की सलाह पर जारी किया गया था, जिसके अनुसार वर्ष 2011 से केवल प्रारंभिक परीक्षा के स्तर में बदलाव किया गया। मुख्य परीक्षा और साक्षात्कार के अवसर पर नया विस्तृत बदलाव 2013 में लागू किया गया था। द्वितीय प्रशासनिक आयोग द्वारा भी भर्ती की प्रणाली की समीक्षा की गई थी। नवीन परीक्षा की रूपरेखा के अनुसार प्रधान परीक्षा के चयन हेतु सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा आयोजित की जाती है जो वस्तुपरक होती है। अब इस परीक्षा में दो अनिवार्य पत्र होते हैं जिसमें एक प्रश्न पत्र 200 अंकों का होता है और दोनों प्रश्न पत्रों का सारांश एक समान होता है। यह बदलाव 15 मई 2011 को आयोजित परीक्षा से लागू किया गया था किंतु 2015 से इन प्रश्न पत्रों के प्रणाली में बदलाव किया गया। प्रधान परीक्षा हेतु अभ्यर्थी एक वैकल्पिक विषय का चयन कर सकता है। प्रश्न पत्र हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में तैयार किए जाते हैं और उत्तर दोनों में से किसी एक भाषा में लिखा जा सकता है। मुख्य परीक्षा में सफल अभ्यर्थियों का साक्षात्कार एक बोर्ड द्वारा किया जाता है जो न केवल बौद्धिक गुणों को अपितु उसके सामाजिक लक्षणों और सामाजिक घटनाओं में उसकी रुचि का भी मूल्यांकन करता है। इसमें उम्मीदवार की मानसिक सतर्कता, आलोचनात्मक ग्रहण शक्ति, स्पष्ट और तर्कसंगत प्रतिपादन की शक्ति, संतुलित निर्णय की शक्ति, चिंतन की विविधता और नेतृत्व और सामाजिक संगठन की योग्यता, बौद्धिक और नैतिक ईमानदारी की भी जांच करती है। अंतिम परीक्षा परिणाम लिखित और मौखिक परीक्षा के प्राप्त अंकों के आधार पर घोषित किया जाता है। पदों की विवरण नियुक्ति और अंतिम पदस्थापन हेतु अंतिम सूची केंद्रीय गृह मंत्रालय को प्रेषित की जाती है।

निम्न स्तरीय केंद्रीय सेवाओं तथा तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के चयन का कार्यभार कर्मचारी चयन आयोग को सौंपा गया है जो विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा इनका चयन करता है। राज्यों में राज्य लोक सेवा आयोग का गठन किया गया है, जो उच्च स्तरीय राज्य सेवाओं की भर्ती हेतु संघ लोक सेवा आयोग की चयन विधि का अनुसरण करते हैं। राज्य की निम्न स्तरीय सेवाओं के लिए बहुत से राज्यों में राज्य कर्मचारी चयन बोर्ड या क्षेत्रीय चयन बोर्ड या अधीनस्थ चयन बोर्ड का गठन किया गया है। भारत में रेलवे लेखा और अंकेक्षण विभाग, औद्योगिक प्रतिष्ठान तथा सार्वजनिक संस्थाओं की अपनी अलग अलग भर्ती की व्यवस्था है। यह सब संघ लोक सेवा आयोग के अंतर्गत केंद्रीय भर्ती योजना से बाहर रखे गए हैं।

भारत में प्रचलित भर्ती पद्धति का गहन विश्लेषण करने के पश्चात कुछ खामियां नजर आती हैं। इस प्रणाली में कल्पनाशीलता का अभाव प्रतिबिंबित होता है। एपेलबी के शब्दों में, ऐसा लगता है कि रिक्त पदों के विज्ञापन वकीलों ने लिखे हैं। भर्ती पद्धति पुरानी घिसी-पिटी पद्धति तथा रटंत विधा पर आधारित है तथा इसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अभाव है। गोरेवाला ने साक्षात्कार के स्थान पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की वकालत की। साक्षात्कार पद्धति की भी आलोचना की जाती रही है, यह दोषपूर्ण प्रतीत होती है।

11.10 आरक्षण

भारत में कुछ विशेष समुदाय के लोग विशेषकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, निम्न स्तरीय जातीय, विभिन्न उप-जातियों सदियों से विविध सुविधाओं से दूर-दूर थी। शताब्दियों का बहिष्कार, गरीबी उत्पीड़न, दमन और सभी प्रकार का शोषण इन समुदायों पर इतिहास के पन्नों में दर्ज है। इतिहास ने इन्हें स्थाई असुविधा के गर्त में धकेल दिया था तथा आर्थिक शैक्षणिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी परिस्थिति में ही इन्हें रखा था। इसलिए उन लोगों के प्रति विशेष व्यवहार अतीत के पक्षपात के आधार पर और भविष्य में उन्नति के लिए न्याय संगत माना गया और इस प्रकार के विशेष व्यवहार से आशा की जाती है कि अवरुद्ध समानता और अतीत के दमन के प्रभावों

को न्यूनतम कर देगा। सरकारी सेवाओं व संस्थानों में पर्याप्त भागीदारी नहीं रखने वाले पिछड़े जाति, समुदायों तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों को सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु सरकार अपने कानून के तहत सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में आरक्षण देती है। भारत के संसद में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधित्व के लिए भी आरक्षण नीति को विस्तारित किया गया है। आम आबादी में उनकी संख्या के अनुपात के आधार पर उनके बहुत ही कम प्रतिनिधित्व को देखते हुए शैक्षणिक परिसरों और कार्यस्थलों में सामाजिक विविधता को बढ़ाने के लिए कुछ समूहों के लिए प्रवेश मानदंड को नीचे किया गया है। कम प्रतिनिधित्व समूहों की पहचान के लिए सबसे पुराना मानदंड जाति है।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान ने पहले के कुछ समूहों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध किया। संविधान निर्माताओं का मानना था कि जाति व्यवस्था के कारण अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति ऐतिहासिक रूप से पिछड़े रहे और उन्हें भारतीय समाज में सम्मान तथा समान अवसर नहीं दिया गया और इसीलिए राष्ट्र-निर्माण की गतिविधियों में उनकी हिस्सेदारी कम रही। संविधान निर्माताओं ने बड़ी ही सूझबूझ एवं अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए संविधान की प्रस्तावना में ही सभी नागरिकों को सामान आधिकार देने की बात कही है, चाहे वह सामाजिक आधार हो, राजनीतिक आधार हो या फिर आर्थिक आधार। इसके आधार पर संविधान के सोलहवें अध्याय के अनुच्छेद 330 से 335 के तहत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए लोकसभा और विधानसभा में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। अनच्छेद-335 में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए केंद्र और राज्य सरकारों की नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। राजनीति और प्रशासन में आरक्षण का प्रावधान किया गया ताकि इन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में पुनः जोड़ सके। जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान देश की सांस्कृतिक सहिष्णुता और सभी वर्गों के नागरिकों को सामान रूप से प्रशासन और सत्ता में भागीदारी के अवसर प्रदान करने की राष्ट्रीय नीति का परिचायक है।

11.11 संवैधानिक सुरक्षा

संविधान सरकारी नौकरियों में सभी को समान अवसर प्रदान करता है। साथ ही संविधान का अनुच्छेद-16 (4) यह प्रावधान करता है कि किसी भी पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए सरकार नौकरियों में स्थान या पद आरक्षित कर सकती है। इसके साथ ही संविधान का अनुच्छेद- 355 सरकार को यह अधिकार देता है कि समाज के पिछड़े और दलित वर्ग के लोगों को विशेष सुविधा प्रदान कर सकती है। हालांकि संविधान में पिछड़े वर्ग की परिभाषा नहीं दी गई है, संविधान में पिछड़े समुदायों के लिए नौकरी में आरक्षण की कोई निश्चित सीमा नहीं है। लोक सेवाओं से आरंभ होकर विधायक प्रतिनिधि संस्थाओं में सैनिक संस्था में प्रवेश हेतु प्राथमिकता से पेशेवर के आर्थिक उन्नति के लिए प्रेरणा स्रोत विभिन्न सुधारक कार्रवाई में सही में स्थान का आरक्षण उपलब्ध है। इस प्रकार आरक्षण तीन क्षेत्रों में होता हैं- विधायी, शैक्षणिक संस्थाओं और सरकारी सेवा में। प्रथम क्षेत्र में आरक्षण का प्रावधान संविधान में स्वयं किया गया है, जबकि द्वितीय संसद द्वारा बनाए गए हैं और तृतीय आरक्षण नौकरियों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की प्रतिष्ठा से संबंधी कार्रवाई संस्था द्वारा प्रदान किया गया । आरंभ में आरक्षण और विशेष सुविधाएं केवल 10 वर्षों के लिए प्रदान की गई थी जिसे क्रम से बढ़ाया जा रहा है।

संविधान के भाग तीन में समानता के अधिकार की भावना निहित है। इसके अंतर्गत अनुच्छेद- 15 में प्रावधान है कि किसी व्यक्ति के साथ जाति, प्रजाति, लिंग, धर्म या जन्म के स्थान पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद- 15(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है तो वह सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़े या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। अनुच्छेद- 16 में अवसरों की समानता की बात कही गई है। अनुच्छेद- 16(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है कि सरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों को

पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह उनके लिए पदों को आरक्षित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार अधिकतम आरक्षण की सीमा 50प्रतिशत है लेकिन कुछ राज्यों में यह सीमा 50 प्रतिशत से ज्यादा है। आरक्षित वर्ग के व्यक्तियों को भारत सरकार के नौकरी एवं शिक्षण संस्थाओं में 49.5प्रतिशत तक का आरक्षण प्राप्त है। वर्तमान में केंद्र सरकार का आरक्षण प्रणाली इस प्रकार है -अनुसूचित जाति- 22.5प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति- 15प्रतिशत, पिछड़ा वर्ग- 27प्रतिशत। राज्यों में प्रतिनिधित्व अनुपात अलग-अलग हैं, इनके निर्धारण का आधार संबंधित राज्य की जनसंख्या है।

11.12 लोक सेवाओं में पदों का आरक्षण

भारत में जाति और समुदाय के आधार पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण काफी समय से प्रचलित प्रणाली है। विशेष रूप से गैर ब्राह्मण समुदाय और जातियों के द्वारा सभी सरकारी सेवा में सभी जातियों की पर्याप्त एवं उचित प्रतिनिधित्व के लिए कई बार आंदोलन और प्रदर्शन भी किए गए हैं। 1919 में मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार में गैर-ब्राह्मण वर्ग के लोगों के लिए सरकारी सेवाओं में कुछ निश्चित और विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया था। लोक सेवाओं में असंतुलित प्रतिनिधित्व को हटाने की मांग को लेकर यह असुविधा प्राप्त वर्ग के लोगों को आगे बढ़ाने का प्रयास था। 1925 में भारत सरकार ने सरकारी सेवाओं में अल्पसंख्यक समुदाय के लिए कुछ प्रतिशत पद आरक्षित करने का कार्य आरंभ किया था। 1934 में यह आदेश भी जारी किया गया था कि सभी रिक्त पदों में 25 प्रतिशत स्थान मुसलमानों के लिए आरक्षित होगा, जिन्हें प्रत्यक्ष नियोजन कैसे भरा जाएगा तथा 8.5 प्रतिशत स्थान अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लिए आरक्षित होगा। 1943 में सरकार ने रिक्त पदों में से 8.5 प्रतिशत पद अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित कर दिया तथा 1946 में इसे 12.5 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया, किंतु अनुसूचित जनजातियों को ब्रिटिश सरकार द्वारा किसी प्रकार का कोई प्रश्न ही आरक्षण नहीं दिया गया और जनजातियों को नौकरी में आरक्षण को आरक्षण की मांग को स्वतंत्रा के पश्चात सरकार द्वारा स्वीकार किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत इन तथ्यों को समाहित किया तथा संपूर्ण आरक्षण नीति का पुनरावलोकन भी किया। अनुसूचित जाति के समुदाय के छोड़कर शेष अन्य वर्गों के लिए खुली प्रतियोगिताओं में आरक्षण व्यवस्था समाप्त कर दी गई। अनंतर 1951 में संविधान संशोधन कर अनुच्छेद- 15(4) में यह प्रावधान किया गया कि जिन सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व इन वर्गों का नहीं है, ऐसे सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े लोगों के विकास के लिए विशेष प्रबंध किया जाए। भारत सरकार की तरह राज्य सरकारों ने भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया है। आरक्षण नीति को लागू करने के लिए नियम और विनियम बनाए गए हैं और अनुसूचित जातियों के लिए 12.25 प्रतिशत स्थान आरक्षित थी जिसे 1970 में बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया। वर्तमान समय में 15 प्रतिशत नौकरियां अनुसूचित जाति एवं 7.5 प्रतिशत नौकरी अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित किया गया। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए 10 वर्षों के लिए आरक्षण दिया गया था जिसे लगातार बढ़ाया जा रहा है।

1953 में गठित काका कालेलकर आयोग का मुख्य काम सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थिति का मूल्यांकन था। पिछड़ी जाति शब्द का जन्म भी इसी कमेटी से हुआ था, परंतु पिछड़ी जाति से संबंधित सिफारिशों को सरकार ने अस्वीकार किया था। लेकिन अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति से संबंधित सभी सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार किया। अनंतर 1979 में सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थिति के मूल्यांकन करने के लिए मंडल आयोग का गठन हुआ था, परंतु काफी लंबे समय तक इसकी सिफारिशें ठंढे बस्ते में पड़ी रहीं। 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों को तत्कालीन प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने सरकारी नौकरियों में लागू किया था। वर्ष 2006 से केंद्रीय सरकार के शैक्षिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण शुरू हुआ और कुल आरक्षण 49.5 प्रतिशत तक चला गया। 1992 में सुप्रीम कोर्ट ने साफ-साफ कहा गया था कि

आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। भारत के कुछ राज्यों को छोड़कर (जैसे- तमिलनाडु) बाकी सभी राज्यों में 50 सीमा लागू है।

भारत में आरक्षण की शुरूआत सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को समृद्ध बनाने के लिए हुई थी लेकिन समय के साथ आरक्षण वोट बैंक की राजनीति का शिकार बनती चली गई। वर्तमान समय में हर राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति के लिए आरक्षण शब्द का उपयोग कर रहे हैं, जिसके कारण आरक्षण का मूल उद्देश्य समाप्त होता जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भर्ती की ठोस नीति की आवश्यकता को सर्वप्रथम किस देश ने अनुभव किया था?
2. आधुनिक समय में कौन सा सबसे पहला देश है जिसने भर्ती प्रणाली का विकास किया?
3. भारत में योग्यता का सिद्धांत कब प्रारंभ हुआ?
4. इनामी पद्धति किस देश में प्रचलित थी?
5. काका कालेलकर आयोग कब गठित किया गया था?

11.13 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों की भर्ती एवं चयन कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गया है, जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के पश्चात नवीनतम उभरती हुई स्थिति के अनुरूप लोक सेवकों की भर्ती प्रणाली निष्पक्ष एवं पारदर्शी होनी चाहिए। प्रशासकीय संरचना में भर्ती की प्रक्रिया संपूर्ण प्रशासन तंत्र की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। लोक प्रशासन में भर्ती देश की संवैधानिक आवश्यकता और राजनीतिक दृष्टिकोण के अनुकूल होना आवश्यक है जबकि निजी प्रशासन के समक्ष ऐसी कोई सीमा नहीं होती। संगठन को ऐसे योग्यता प्राप्त कर्मचारियों को पर्याप्त संख्या में आपूर्ति की व्यवस्था करना आवश्यक होता है जो उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विभिन्न कार्य संपादित कर सकें । कर्मचारियों की इस आपूर्ति के कार्य को भारतीय चयन द्वारा संपन्न किया जाता है। कार्मिक प्रशासन में भर्ती पहला और सबसे महत्वपूर्ण चरण है। यदि भर्ती पद्धति दोषपूर्ण है तो अयोग्य और असक्षम एवं अयोग्य लोग लोक सेवाओं में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे प्रशासन का पतन हो जाता है।

11.14 शब्दावली

मानदंड- नियम या आधार, अर्हता- योग्यता, वरिष्ठता- सेवा प्रारंभ करने की तिथि से लेकर गणना की गयी सेवा की अवधि, विचारधारा- विचारों का समूह जो निहित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आधार होता है, मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग, आंदोलन- असंतोष की अभिव्यक्ति का माध्यम, उपबंध- प्रावधान

11.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चीन, **2.** प्रशा, **3.** 1853 से, **4.** अमेरिका में, **5.** 1953 में

11.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।
2. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
3. अवस्थी और माहेश्वरी, 2010, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

4. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।

11.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
2. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
3. अवस्थी एवं अवस्थी, 2017, भारत में लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

11.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. भर्ती के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
2. भर्ती के उद्देश्य एवं इसके प्रकार का मूल्यांकन कीजिए।
3. भर्ती की अर्हता पद्धतियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. अर्हता निर्धारण की विधियों का मूल्यांकन कीजिए।
5. श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्तें क्या हैं? विश्लेषण कीजिए।
6. भारत में भर्ती की पद्धति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
7. आरक्षण क्या है? लोक सेवाओं में पदों के आरक्षण का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 12 पदोन्नति

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 पदोन्नति का अर्थ
12.3 पदोन्नति का महत्व
12.4 पदोन्नति के प्रकार
12.5 पदोन्नति के सिद्धांत
12.6 पदोन्नति के लिए अर्हता- जांच पद्धतियाँ
12.7 श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें
12.8 भारत में पदोन्नति पद्धति
12.9 सारांश
12.10 शब्दावली
12.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

पदोन्नति आधुनिक कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण आयाम है। लोक सेवकों को कार्यकुशल एवं दक्ष बनाये रखने की सबसे बड़ी प्रेरणा उनकी पदोन्नति में निहित है। पदोन्नति का सम्बन्ध केवल उन्हीं कार्मिकों से होता है जो कि पहले से संगठन में किसी पद पर होते हैं। इसीलिए पदोन्नति के लिए 'भीतर या अन्दर से भर्ती' शब्द का भी प्रयोग किया जाता रहा है। लोक सेवक और कार्मिक प्रशासन पदोन्नति व्यवस्था के दो पक्ष होते हैं। पदोन्नति के फलस्वरुप लोक सेवा के कार्य और दायित्व बढ़ते हैं तथा कार्मिक प्रशासन को उपयुक्त पद हेतु उपयुक्त कार्मिक मिल जाता है। विलोबी ने पदोन्नति को कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताया है। इसका कारण यह है कि पदोन्नति कार्य के सफल और संतोषजनक क्रियान्वयन के द्वारा ही संपूर्ण कार्मिक व्यवस्था की सफलता निर्धारित की जाती है। किसी भी संगठन में कार्यरत कार्मिकों की कार्यकुशलता उनकी संतुष्टि तथा मनोबल के स्तर से भी प्रभावित होती है। पदोन्नति पद, स्तर, सम्मान में वृद्धि करने तथा योग्यता के आधार पर आगे बढने से सम्बद्ध है। यह सरकारी कर्मचारी को श्रम एवं निष्ठा से कार्य करने के लिए एक पुरस्कार के रूप में दी जाती है। कार्य कुशल, सुयोग्य और संतुष्ट सिविल सेवा अधिकारी की प्राप्ति तथा कर्मचारियों के जीवन में प्रगति और विकास करने की स्वभाविक मानवीय अभिलाषा को पदोन्नति पूर्ण करती है। वहीं दूसरी ओर सरकार के लिए पदोन्नति अप्रत्यक्ष भर्ती की एक पद्धति है जिसके माध्यम से सेवारत लोगों में से योग्य और प्रतिभाशाली लोगों के चयन के द्वारा उच्च स्तरीय रिक्त पदों को भरा जाता है।

इस इकाई के माध्यम से पाठकों को पदोन्नति के महत्व, आवश्यकता, प्रकार और विभिन्न तकनीकों से परिचय कराना है। साथ ही पदोन्नति सिद्धांत जैसे अर्हता का सिद्धांत बनाम वरिष्ठता सिद्धांत, पदोन्नति के प्रकार एवं विधियों, अतीत में अपनाई गई तथा वर्तमान में प्रचलित पदोन्नति पद्धति की व्याख्या भी करेंगें। साथ ही इसमें

लोक सेवकों के पदोन्नति की अवधारणा, पदोन्नति की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी चर्चा होगी।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पदोन्नति के अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही पदोन्नति के प्रकार तथा प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में पदोन्नति की प्रणाली को समझने में सक्षम हो पाएंगे तथा
- पदोन्नति की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कर पाएंगे।

12.2 पदोन्नति का अर्थ

लोक सेवकों को कार्यकुशल एवं दक्ष बनाये रखने की सबसे बड़ी प्रेरणा उनकी पदोन्नति है। पदोन्नति का सम्बन्ध केवल उन्हीं कार्मिकों से होता है जो कि पहले से संगठन में किसी पद पर होते हैं। पदोन्नति के लिए 'भीतर या अन्दर से भर्ती' का भी प्रयोग किया जाता रहा है। पदोन्नति का अर्थ है- दायित्वों एवं वेतनमान में वृद्धि होना। पदोन्नति का सम्बन्ध प्रत्येक वर्ष होने वाला वार्षिक वेतन वृद्धि से नहीं है वरन् इसका अर्थ कर्मचारी की पद सम्बन्धी प्रस्थिति में वृद्धि से भी है।

पदोन्नति शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द प्रमोट (promote) का पर्यायवाची है, जबकि आंग्ल भाषा शब्द प्रमोट लैटिन भाषा के शब्द प्रिमोवीर (promovere) शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है- आगे बढ़ाना। वस्तुतः पदोन्नति से अर्थ पद और स्तर में वृद्धि से है। पदोन्नति को विभिन्न विद्वानों ने निम्न शब्दों में परिभाषित किया है-

विलियम जी. टॉरपे के अनुसार, ''पदोन्नति पदाधिकारी के एक पद से दूसरे पद पर पहुँचने की ओर संकेत करती है जो उच्चतर श्रेणी या उच्चतर न्यूनतम वेतन वाला होता है। पदोन्नति का अर्थ कर्मचारी के कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों में वृद्धि करना है।"

विलोबी के शब्दों में, ''वेतन वृद्धि का अर्थ केवल यह है कि कर्मचारी के वर्तमान पद अथवा उसके कार्य की प्रकृति में कोई परिवर्तन किये बिना उसके वेतन में वृद्धि कर दी गयी है। पदोन्नति का अर्थ है कि कर्मचारी को निम्न स्तर के पद से उच्च स्तर के पद पर नियुक्त कर दिया गया है।"

एल. डी. ह्वाइट के शब्दों में, ''पदोन्नति का अर्थ है- किसी एक पद से दूसरे पद पर नियुक्ति ऐसा पद जो कि उच्चतर श्रेणी का है तथा जिसमें जटिलतर प्रकृति एवं अधिक बड़े उत्तरदायित्व का कार्य करना पड़ता है। इसमें पदनाम परिवर्तन व वेतन वृद्धि शामिल हैं।"

पॉल पिगर्स एवं चार्ल्स ए. मेयर्स के अनुसार, ''पदोन्नति से आशय किसी कर्मचारी को एक निपुणताओं तथा विशेष रूप से बढ़ी हुई आय अथवा वेतन दर से प्रदान करना है।''

फिलप्पो के अनुसार, ''पदोन्नति किसी में एक कार्य से दूसरे कार्य पर परिवर्तन शामिल है जो ऐसे बेहतर स्तर एवं उत्तरदायित्व प्रदान करता है।"

स्कॉट एवं स्प्रीगल के अनुसार, "पदोन्नति किसी कर्मचारी का ऐसे कार्य पर स्थानांतरण है जो पहले से अधिक धन अथवा ऊंचा स्तर प्रदान करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पदोन्नति में निम्नलिखित तीन तत्त्व सम्मिलित हैं- बेहतर कार्य एवं स्तर, अधिक उत्तरदायित्व तथा अधिक वेतन। स्पष्ट होता है कि पदोन्नति द्वारा विभाग के अन्दर ही एक उच्चतर पद पर पदस्थापना होती है। पदोन्नति उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत तथा अधिक जिम्मेदारी बढ़ाने हेतु एक संगठित

गतिविधि है। यह कर्मचारी को उच्च पद की जिम्मेदारी सौंपे जाने की प्रक्रिया है। उच्च पद रिक्त होने पर विभाग के निम्न स्तरीय कर्मचारियों में से उसकी पूर्ति की जाती है। इस उच्च पदस्थिति में उत्तरदायित्वों व कार्यों में वृद्धि हो जाती है तथा उसके अनुसार ही वेतन वृद्धि भी होती है। शासन के लिए पदोन्नति प्रत्यक्ष पद्धति है, अर्थात पूर्व से सेवारत लोगों में से योग्य एवं प्रतिभावान लोगों के चयन द्वारा उच्च स्तरीय रिक्त पदों को भरना है। वही सरकारी कर्मचारियों के लिए पदोन्नति निम्न स्तरीय पद, वर्ग या सेवा से उच्च कार्य, अधिकार एवं उत्तरदायित्व सहित उच्च स्तरीय पद वर्ग या सेवा में एक तरक्की है। इसका अर्थ कर्मचारियों के लिए पद, प्रतिष्ठा तथा वेतन में वृद्धि से भी है। समान पद या उत्तरदायित्व वाली सेवा में एक पद से दूसरे पद पर स्थानांतरण को पदोन्नति नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार वेतन में वार्षिक वृद्धि भी पदोन्नति नहीं है। पदोन्नति का अर्थ पद और वेतनमान दोनों में परिवर्तन से है।

अत: पदोन्नति एक कर्मचारी की उच्च स्तर पर प्रगति है, जहाँ पर उसके कौशल ज्ञान एवं सेवाओं का बेहतर उपयोग किया जा सकेगा। किन्तु सभी पदोन्नतियों में से सभी गुण नहीं पाए जाते। कई बार पदोन्नति में उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत व अधिक जिम्मेदारी तो मिलती है पर वेतन में वृद्धि नहीं। ऐसी पदोन्नति को 'शुष्क पदोन्नति' कहा जाता है। इसी प्रकार, कभी-कभी कर्मचारी की वेतन वृद्धि तो कर दी जाती है परन्तु उच्च पद, बेहतर प्रतिष्ठा व जिम्मेदारी नहीं मिलती, इसे उच्चीकरण कहा जाता है। अत: पदोन्नति कर्मचारी की कार्यकुशलता एवं संगठन के प्रति वफादारी का पुरस्कार है। यह कर्मचारी की ऐसे पद पर प्रगति है जहाँ पर उसके ज्ञान कौशल एवं सेवाओं का बेहतर प्रयोग हो सकेगा।

पदोन्नति की विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट है कि इसके निम्नलिखित महत्व पूर्ण तत्त्व हैं-

- प्रगति- पदोन्नति में संगठनात्मक ढांचे को उच्च स्तर के पद पर पहुँचना शामिल है। यह एक कर्मचारी के निम्न स्तर के पद से उच्च स्तर के पद पर पहुँचने की प्रक्रिया है। इससे कर्मचारी के स्तर में वृद्धि होती है।
- अधिक वेतन- प्रमोशन का एक अन्य महत्व पूर्ण तत्त्व, कर्मचारी को अधिक आय अथवा वेतन में लाभ है। परन्तु कभी-कभी कर्मचारी को उच्च पद एवं जिम्मेदारी तो सौंप दी जाती है पर वेतन वृद्धि नहीं की जाती है। इससे 'शुष्क पदोन्नति' कहा जायेगा। इसी प्रकार अपग्रेडेशन में कर्मचारी के वेतन में वृद्धि कर दी जाती है, परन्तु उसे उच्च पद एवं जिम्मेदारी नहीं सौंपी जाती।
- बेहतर जिम्मेदारी, प्रतिष्ठा एवं पद- पदोन्नति से कर्मचारी की जिम्मेदारी, प्रतिष्ठा एवं पद में वृद्धि होती है। यह एक ऐसा पद है जिसके साथ बेहतर प्रतिष्ठा एवं उच्च जिम्मेदारी जुड़े होते हैं।
- पदोन्नति के अन्य तत्त्वों में बेहतर सुविधाएं, अच्छी कार्य दशाएँ, उच्च पद की चुनौतियाँ, कौशल, ज्ञान व गुणों के बेहतर उपयोग के अवसर एवं कर्मचारी का विकास शामिल है।

राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है और इसके कुशल निष्पादन हेतु विशेष ज्ञान और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता होती है। बदलते परिदृश्य में नए मापदंडों पर खरे उतरने के लिए पदोन्नति अत्यावश्यक है। आज पदोन्नति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। पदोन्नति की विशेषताएँ या लक्षण निम्नलिखित हैं-

- पदोन्नति में पद का नाम परिवर्तित हो जाता है। पदोन्नति से प्राप्त पद अधिक श्रेष्ठ, सम्मानजनक और चुनौतीपूर्ण होता है।
- यह निम्न पद से उच्च पद पर पहुचंने की प्रक्रिया है।

- पदोन्नति से कार्मिक का वेतन भी बढ़ जाता है। यह मात्र वेतन वृद्धि नहीं है अपितु इसका पहला तत्व ऊंचे पद की प्राप्ति है और वेतनवृद्धि इसका परिणाम है।
- पदोन्नति प्रतिष्ठा तथा सम्मान का सूचक है । पदोन्नति में कार्मिक के दायित्व उच्च तथा अधिक हो जाते हैं।
- यह संगठन की आंतरिक प्रक्रिया है। अर्थात संगठन में पहले से कार्यरत कार्मिकों में से ही पदोन्नति होती है।
- पदोन्नति का निर्णय स्वयं कार्मिक नहीं करता अपितु उच्चाधिकारी करते हैं, लेकिन पदोन्नति लेने या अस्वीकार करने का अधिकार संबंधित कार्मिक का होता है।

12.3 पदोन्नति का महत्व

पदोन्नति जीवन-वृति सेवा का एक अनिवार्य अंग है। कार्मिक प्रशासन में सर्वोत्तम लोगों को भर्ती करना प्रथम एवं प्रमुख सोपान है। इसके साथ ही प्रतिभाशाली लोगों को सेवा में बनाए रखना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। पदोन्नति के अवसर से ही उत्तम योग्य एवं कार्य कुछ लोगों को सिविल सेवा में बनाए रखना संभव है। लोक सेवा के लिए चुने गए कर्मचारी एक लंबे समय तक सेवा में उन्नति एवं विकास करते हैं। पदोन्नति की विशेष योजना श्रेष्ठ एवं प्रतिभाशाली लोगों को इस सेवा में आने के लिए आकर्षित करती है। कार्यकुशलता ,कठिन श्रम एवं निष्ठावान तथा परिश्रम से कार्य करने के लिए पदोन्नति एक संभावित पुरस्कार है। प्रत्येक मनुष्य जीवन में प्रगति और विकास चाहता है और दूसरों में अपनी पहचान बनाना चाहता है। विकास और पहचान की आधारभूत इच्छाओं की पूर्ति पदोन्नति के साधन द्वारा की जा सकती है। पदोन्नति की एक अच्छी पद्धति कर्मचारियों में अपनी सेवा के प्रति लगाव की भावना को बढ़ाती है तथा संगठन के नीतियों और कार्यक्रमों में निरंतरता बनाए रखने में योगदान देती है। सिविल सेवा में अच्छी प्रथा एवं परंपरा का निर्माण करने के लिए पदोन्नति अवसर भी प्रदान करती है। सरकारी सेवा के रिक्त पदों को बाह्य अभ्यर्थियों की प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा तथा पहले से सेवारत कर्मचारियों को पदोन्नत कर भरा जाता है। भर्ती की प्रत्यक्ष विधि को पदोन्नति पद्धति कहा जाता है। विश्व के लगभग सभी देशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों विधियों को स्वीकार किया गया है।

पदोन्नति प्रक्रिया की उपयोगिता निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है। पदोन्नति के कारण एक तरफ संगठन की जीवन्तता बनी रहती है तो दूसरी ओर कर्मचारियों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति भी होती है। सरकारी सेवा के कर्मचारियों के निष्ठा पूर्वक कार्य करने के लिए पदोन्नति एक पुरस्कार के रूप में प्रदान की जाती है। पदोन्नति के अभाव में कर्मचारी लाभ एवं अभिप्रेरण से वंचित हो जाता है। पदोन्नति प्रतिभाशाली युवाओं को सरकारी सेवा में अभिप्रेरित करने का एक सशक्त माध्यम है। कुशल, सुयोग्य और संतुष्ट सिविल सेवा कर्मचारियों की प्राप्ति हेतु पदोन्नति एक आवश्यक तथ्य है। जीवन में प्रगति एवं विकास की स्वभाविक मानसिक लालसा पदोन्नति से ही पूर्ण होती है तथा पदोन्नति सरकारी कर्मचारियों की नैतिकता को भी प्रोत्साहित करती है। पदोन्नति के महत्व निम्न हैं-

1. सिविल सेवा में अच्छी प्रथा और परंपरा का निर्माण करने के लिए तथा सरकार की इस सद्भावना से जुड़ने में पदोन्नति पद्धति सहायक होती है।
2. यह अनुभवी कर्मचारियों को संगठन में बनाए रखती है।
3. सेवा में कर्मचारियों की निरंतरता, उनको उच्च से उच्चतर स्तर के उत्तरदायित्व निभाने की योग्य बनाती है तथा कार्यों द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव और क्षमता का सदुपयोग पदोन्नति देने के लिए किया जाता है।
4. उच्च स्तरीय सरकारी सेवा में पदोन्नति के पर्याप्त अवसर प्रशासन की कार्य कुशलता में वृद्धि करते हैं।

5. पदोन्नति कर्मचारियों की बढ़ती हुई दैनिक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का अवसर प्रदान करती है और कर्मचारी इसके बदले सेवा में अपना सर्वोत्तम योगदान देता है।
6. पदोन्नति प्रत्येक कर्मचारी के लिए व्यापक प्रेरणा का स्रोत है। यह कर्मचारियों के लिए एक ऐसा वह आकर्षण है जो उस में आंतरिक उर्जा का संचार करता है। यह कार्मिकों को श्रेष्ठ कार्य करने को प्रोत्साहित करती है।
7. यह सेवाओं में कदाचार और भ्रष्टाचार को भी कम करने में सहायक होता है। ईमानदारी, निपुणता और निष्ठा का विस्तार भी पदोन्नति करती है।
8. इस व्यवस्था से कार्मिक-विकास को दिशा मिलती है। पदोन्नति की श्रृंखला उपलब्ध होने पर निम्न पदों पर भी योग्य कार्मिक आना पसन्द करते हैं। पदोन्नति के कारण कर्मचारी तथा संगठन में अपनत्व का रिश्ता कायम होता है।

पदोन्नति के कारण संगठन की प्रतिष्ठा तथा कार्यकुशलता बढ़ती है, क्योंकि जिन संगठनों में पदोन्नति के कम अवसर होते हैं, उनको योग्य एवं श्रेष्ठ कर्मचारी शीघ्र ही छोड़ देते हैं। वृत्तिका विकास एवं मनोबल वृद्धि में पदोन्नति का महत्व स्वयंसिद्ध है। पदोन्नति प्रक्रिया से कार्मिक एवं संगठन दोनो के लिए संगठन की जीवंतता बनी रहती है तो दूसरी और कर्मचारियों की महत्वकांक्षाओं की पूर्ति भी होती है। पदोन्नति प्रणाली योग्य व्यक्तियों को सार्वजनिक सेवा की ओर आकर्षित करने तथा सेवा छोड़कर जाने से रोकने के लिए आवश्यक है। पदोन्नति से समस्त प्रशासन प्रत्येक स्तर पर लाभान्वित होता है। इससे कार्मिकों में संतोष बने रहने तथा सेवा ना छोड़ने की सोच बनी रहती है। साथ ही यह संगठन के कार्यों का उत्तरदायित्व पूर्ण तरीके और कुशलता से निर्वहन करता है। पदोन्नति प्रणाली कर्मचारियों के काम के प्रति उनकी रुचि बनाए रखती है तथा अच्छा काम करने के लिए उन्हें प्रेरित भी करती रहती है। ए. डब्ल्यू. प्रॉक्टर के अनुसार पदोन्नति की कर्मचारियों के लिए पुरस्कार अथवा संभावित पुरस्कार के रुप में सीधी सार्थकता है। वास्तविक पदोन्नति एक पुरस्कार है, जबकि पदोन्नति का विषय एक संभावित पुरस्कार हैं जो भविष्य की वस्तु है, लेकिन वह अत्यंत महत्व का है। पदोन्नति कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है, जिस पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है।

उच्च स्तरीय सरकारी सेवाओं में यदि पदोन्नति के पर्याप्त अवसर होंगे, तभी निम्न स्तरीय सेवाओं में भी प्रतिभाशाली लोग आने को तैयार होंगे तथा इससे प्रशासन में कार्यकुशलता की वृद्धि होगी। समय के साथ सरकारी सेवाओं में नवीनतम व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। सेवा में उनकी निरंतरता उच्च से उच्च स्तर दायित्व निभाने के योग्य बनाने में मददगार सिद्ध होती है। लोक सेवा में चयनित कर्मचारियों के द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव क्षमता का उपयोग उन्हें अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों पर कार्य करने का अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार मानव शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग पदोन्नति की पद्धति द्वारा ही संभव है। पदोन्नति कर्मचारियों की बढ़ती हुई दैनिक बहुत ही आवश्यकताओं को पूर्ति करने का शुभ अवसर प्रदान करता है तथा कर्मचारी इसके बदले सेवा में अपना सर्वोत्तम योगदान देते हैं। पदोन्नति सेवाओं में कदाचार की घटनाओं को भी कम करने में सहायक होती है तथा शिकायत की संभावना भी संस्थानों में कम हो जाती है। सरकारी कार्यों को अत्यधिक ईमानदारी, निपुणता तथा निष्ठा से करने में पदोन्नति एक प्रेरक स्रोत के रूप में कार्य करती है वहीं दूसरी ओर पदोन्नति अनुशासन एवं नैतिकता को भी बढ़ावा देती है। संगठनों द्वारा कर्मचारियों को पदोन्नति की उद्देश्यों की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए की जाती है-

- कर्मचारियों को अधिक क्रियाशीलता हेतु अभिप्रेरित करना। कर्मचारियों में आत्म-विकास को बढ़ावा देना तथा उन्हें उनकी पदोन्नति के अवसरों की प्रतीक्षा करने हेतु तैयार करना।
- संगठन के उच्च स्तर के कार्यों के लिए आवश्यक ज्ञान एवं निपुणताओं की प्राप्ति हेतु कर्मचारी में प्रतिस्पर्धात्मक भावना का विकास करना तथा उत्साह का संचार करना।

- योग्य एवं सक्षम लोगों को संगठन के प्रति आकर्षित करना तथा उनकी सेवायें प्राप्त करना।
- संगठनात्मक पद सोपान में समुचित स्तरों पर कर्मचारियों के ज्ञान एवं निपुणताओं का उपयोग करना, जो कि संगठनात्मक प्रभावशीलता तथा कर्मचारी सन्तुष्टि में परिणत होता है।
- कर्मचारियों में संगठन के प्रति निष्ठा एवं अपनत्व की भावना को विकसित करना तथा उनके मनोबल को ऊंचा करना।
- अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निमार्ण हेतु संगठन के प्रति बचनबद्ध एवं निष्ठावान कर्मचारियों को पुरस्कृत करना।
- श्रम संघों का संगठन के प्रति विश्वास सृजन का प्रयास करना।
- परिवर्तित वातावरण में उच्च स्तर के रिक्त पदों का उत्तरदायित्व ग्रहण करने हेतु तत्पर रहने के लिए कर्मचारियों के समक्ष आन्तरिक स्रोत का विकास करना आदि।

12.4 पदोन्नति के प्रकार

पदोन्नति उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत तथा अधिक जिम्मेदारी बढ़ाने हेतु एक संगठित गतिविधि है। पदोन्नति सामान्यतया तीन प्रकार की होती है-

1. **क्षैतिजीय पदोन्नति या श्रेणी आधारित-** एक ही वर्ग में निम्न से उच्च श्रेणी में पदोन्नति जैसे कनिष्ठ लिपिक की वरिष्ठ लिपिक के पद पर या तृतीय श्रेणी से द्वितीय श्रेणी में या इस प्रकार की पदोन्नति। इस प्रकार की पदोन्नति में उत्तरदायित्वों एवं आय में वृद्धि तथा पद नाम में परिवर्तन सम्मिलित होता है। परन्तु, पदोन्नति कर्मचारी कार्य वर्गीकरण के अन्तर्गत ही रहता है, अर्थात इसमें मौलिक कार्य वर्गीकरण ज्यों का त्यों ही रहता है।
2. **लम्बवत् पदोन्नति या वर्ग आधारित-** इस प्रकार की पदोन्नति बढ़े हुए उत्तरदायित्वों, प्रतिष्ठा तथा आय के साथ-साथ कार्य की प्रकृति में परिवर्तन में परिणत होती है। दूसरे शब्दों में, जब पदोन्नति कार्य वर्गीकरण की सीमाओं के बाहर होती है तो वह लम्बवत् पदोन्नति कहलाती है। जैसे निम्न वर्ग से उच्च वर्ग में पदोन्नति जैसे द्वितीय श्रेणी से प्रथम श्रेणी या लिपिक से कार्यकारी वर्ग में पदोन्नति।
3. **सेवा आधारित-** निम्न स्तरीय सेवा से उच्चस्तरीय सेवा में पदोन्नति अर्थात राज्य सेवा से अखिल भारतीय सेवा में पदोन्नति।

इसके साथ ही कभी-कभी पारिश्रमिक में वृद्धि के स्थान पर शुष्क पदोन्नति भी की जाती है। इसमें पद नाम भिन्न होता है, परन्तु उत्तरदायित्वों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। पदोन्नत कर्मचारी को एक अथवा दो वार्षिक वेतन वृद्धि दी जा सकती है।

12.5 पदोन्नति के सिद्धांत

किसी भी सरकारी सेवा में पदोन्नति के अवसर सीमित होने के कारण पदोन्नति के मानक सिद्धांतों की आवश्यकता होती है। पदोन्नति हेतु सीमित संख्या में पदों की उपलब्धता तथा नियमित अंतराल पर स्थान रिक्त न होने के कारण निम्न स्तरीय कर्मचारी को अत्यधिक प्रतीक्षा करनी पड़ती है और सभी इच्छुक कर्मचारियों को पदोन्नति देना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। व्यवहारिक रूप से प्रशासन की संरचना एक पिरामिड के समान होती है जिसमें जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर बढ़ते हैं पदों की संख्या घटती जाती है और अंत में पिरामिड एक बिंदु पर जाकर समाप्त हो जाती है। पदोन्नति के अवसर सीमित होने के कारण आवश्यकता इस बात की महसूस की जाती है कि पदोन्नति पूर्ण परिभाषित और मान्यता प्राप्त सिद्धांतों पर ही आधारित होना चाहिए।

संगठनों द्वारा अपनी प्रकृति, आकार तथा प्रबन्धन के अनुसार पदोन्नति के लिए विभिन्न आधार अपनाये जाते हैं। सामान्यत: पदोन्नति के दो सुस्थापित आधार- योग्यता तथा वरिष्ठता हैं। पदोन्नति के सिद्धांत जिन्हें एक विकल्प या संयुक्त रूप से अपनाया जाता है, वे हैं-

1. **वरिष्ठता सिद्धांत-** वरिष्ठता पर आधारित पदोन्नति एक परम्परागत एवं सरल प्रणाली है। इसे 'ज्येष्ठता का सिद्धान्त' भी कहा जाता है। इसमें लम्बी अवधि से कार्यरत व्यक्तियों को पदोन्नति प्रदान की जाती है। अन्य शब्दों में पहले भर्ती होने वाले व्यक्ति की पदोन्नति पहले होती है। वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की शुरूआत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में ही हो चुकी थी। यह सिद्धान्त अनुभवी कार्मिक को पुरस्कार में विश्वास करता है। वरिष्ठता को पदोन्नति के आधार के रूप में मानने के पीछे यह तर्क है कि एक ही कार्य पर सेवा की अवधि तथा किसी कर्मचारी द्वारा संगठन के अन्तर्गत अर्जित ज्ञान की मात्रा एवं निपुणता के स्तर के बीच एक सकारात्मक सह-सम्बन्ध होता है। यह व्यवस्था इस प्रथा पर भी आधारित होती है कि जो संगठन में पहले आयेगा उसे ही समस्त हित-लाभों एवं विशेषाधिकारों में पहले अवसर दिये जाने चाहिये।

   वरिष्ठता सिद्धांत एक सामान्य सिद्धांत है जिसका अर्थ किसी पद विशेष श्रेणी या वेतनमान में सेवा की अवधि से है। यह एक आसान प्रणाली है जो वस्तुनिष्ठ है। वरिष्ठता सिद्धांत पक्षपात एवं भाई-भतीजावाद के लिए कोई अवसर नहीं छोड़ता, बल्कि यह उम्र और अनुभव को अधिक महत्व देता है। इस प्रकार यह समाज में स्थापित प्रथा परंपरा के अनुसार एक प्रवृत्ति है और प्रजातांत्रिक भी है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभाशाली नहीं हो सकता किंतु समय के साथ उसमें वरिष्ठ होने के लिए प्रतिबद्धता निहित होती है। यह पद्धति स्वचालित है। कर्मचारियों को पदोन्नति के लिए भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ती है। इस पद्धति में आन्तरिक झगड़े समाप्त हो जाते हैं तथा राजनीतिक दवाब का भी कोई भय नहीं रहता है। अधिक आयु व अनुभव वाले व्यक्तियों के उच्च पदों पर आने से उनकी प्रतिष्ठा बनी रहती है। पदोन्नति निश्चित होने के कारण योग्य व्यक्ति इन सेवाओं की ओर आकर्षित होते हैं। पदोन्नति के इस आधार का श्रम संघों द्वारा प्रबल समर्थन किये जाने से यह विवादों को भी कम करने में सहायक होता है।

   पदोन्नति का वरिष्ठता सिद्धांत सबसे पुराना और सरल तरीका है। फाइनर के अनुसार यह सिद्धांत स्वभाविक है और यह कर्मचारियों की अनावश्यक और अनुचित गतिरोध को समाप्त कर देता है। इस प्रकार की पदोन्नति में निष्पक्षता, कार्मिक उपलब्धता, स्वचालन, मनोबल निर्माण, न्याय स्थापना, अहम टकराव से बचाव आदि लाभ या गुण हैं तो दूसरी ओर दोष भी बहुत हैं। वरिष्ठता सिद्धांत में ढेर सारी खामियां समय के साथ प्रतीत होती हैं। सेवा में जो वरिष्ठ हैं और जो पदोन्नति के लिए उपयुक्त हो यह आवश्यक नहीं है। सेवा की अवधि पदोन्नति हेतु उपयुक्तता का मापदंड नहीं है। पदोन्नति के लिए अनुभव और वरिष्ठता युक्ति मूलक मापदंड नहीं है। एक ही श्रेणी के सभी लोग पदोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। वरिष्ठता सिद्धांत यह सुनिश्चित नहीं करता कि अति उपयुक्त लोग ही उच्च स्तरीय पदों पर पदस्थापित किए जाएंगे। वरिष्ठता के कारण पदोन्नति मिलने से संगठन में योग्य कार्मिक बाहर जाना पसन्द करते है। बहुत से कर्मचारी कार्य में रूचि भी नहीं लेते हैं क्योंकि पदोन्नति तो नियत समय पर मिल ही जाती है। सरकारी कर्मचारियों के कार्य पर पूर्णरूपेण प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए और कुशल एवं दकियानूसी लोगों को भी उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति या इस सिद्धांत के अनुसार दी जा सकती हैं। अतः वरिष्ठता सिद्धांत विवेकपूर्ण और न्यायसंगत नहीं है। इसमें युवा और कर्मठ कर्मचारियों का कठिन परिश्रम कार्यकुशलता एवं नेतृत्व का गुण पुरस्कृत नहीं हो सकता है। दूसरी तरफ जहां कठिन परिश्रम करने वाले सजग और उद्यमी लोगों की संगठन में आवश्यकता है वही शारीरिक रूप से कमजोर वृद्ध और कम उद्यमी लोगों को भी उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति दे दी जाती है। ब्रिटेन के नौसेनाध्यक्ष फिशर ने एक बार कहा था,

'ब्रिटिश साम्राज्य नष्ट हो जाएगा, क्योंकि इसमें वरिष्ठता के सिद्धान्त का पालन किया जाता है।' वस्तुत वरिष्ठता का सिद्धान्त प्रत्यक्षत: योग्यता का शमन करता है।

2. **योग्यता या अर्हता सिद्धांत-** पदोन्नति का यह तरीका अपेक्षाकृत आधुनिक एवं वैज्ञानिक है। इसमें योग्यता का मूल्यांकन करने के बाद पदोन्नति की जाती है। यह सिद्धान्त कर्मचारियों को कुशलता से कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। योग्यता का सिद्धांत वरिष्ठता के सिद्धांत का प्रतिस्पर्धी है और पदोन्नति के लिए इसके पक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं वह लगभग अकाट्य हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि योग्यतम और दक्षता व्यक्ति पदोन्नति के लिए सबसे उपयुक्त होते हैं।

   अर्हता सिद्धांत या योग्यता सिद्धांत के अनुसार पदोन्नति वरिष्ठतम को नहीं बल्कि योग्यतम व्यक्ति को दी जानी चाहिए अर्थात पदोन्नति के निर्धारण में लोक सेवकों की व्यक्तिगत योग्यता, क्षमता, दक्षता और कार्यकुशलता को ही महत्व दिया जाना चाहिए। वर्तमान युग में नवीन प्रशासनिक व्यवस्था हेतु सक्षम और कठिन परिश्रम करने वालों की आवश्यकता है जिनके पास योग्यता और अर्हता है। इस सिद्धांत को स्वीकार करने के पीछे यह तर्क है कि केवल योग्य और समर्थ लोग ही पदोन्नति के योग्य हैं और अक्षम लोगों को पीछे छोड़ा जाना चाहिए। प्रशासन में उच्च स्तरीय पदों पर केवल निपुण परिश्रमी और योग्य लोगों की आवश्यकता है। अर्हता सिद्धांत पदोन्नति के लिए अति उपयुक्त लोगों का ही चयन करता है। योग्यता सिद्धांत उद्यमी कठिन परिश्रम करने वाले एवं नेतृत्व के गुण रखने वाले कर्मचारियों एवं अधिकारियों को पुरस्कृत करता है और प्रशासन में कार्यकुशलता तथा प्रतियोगी उत्साह को भी बढ़ाता है। यह निम्न स्तरीय कर्मचारियों को अपने कार्य में अभिरुचि लेने तथा परिश्रम के साथ कार्य करने के लिए प्रेरित भी करता है।

   कर्मचारियों की योग्यता के मूल्यांकन हेतु निम्नलिखित विधियाँ काम में लायी जाती हैं: प्रतियोगी परीक्षाएँ, सेवा अभिलेख एवं विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय। प्रतियोगी परीक्षाएँ तीन प्रकार की होती हैं- खुली प्रतियोगिता परीक्षा, सीमित प्रतियोगिता परीक्षा तथा उत्तीर्णता परीक्षा।

   सेवा अभिलेख के अंतर्गत कर्मचारियों की सेवा का एक विवरण रखा जाता है, जिसके आधार पर कर्मचारियों की कार्य सम्पन्न करने की क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही कर्मचारी की पदोन्नति में विभागाध्यक्ष का निर्णय सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। पदोन्नति की कोई भी प्रणाली क्यों न हो, किन्तु यह निश्चित है कि पदोन्नति द्वारा कर्मचारियों में सामान्य सन्तोष, कर्त्तव्य निष्ठता, सहयोग एवं उच्च मनोबल की भावना विकसित होती है।

   लेकिन पदोन्नति के योग्यता सिद्धांत को वास्तव में लागू करना थोड़ा कठिन पड़ता है। योग्यता या अर्हता एक जटिल अवधारणा है। यह व्यक्तित्व, चरित्र, बल, नेतृत्व की क्षमता, बौद्धिक योग्यता इत्यादि को समाहित किए हुए हैं और इसे मापना आसान नहीं है। पदोन्नति का यह सिद्धांत वरिष्ठ एवं अनुभवी लोगों के अवसरों को समाप्त कर देता है या न्यून कर देता है और किसी भी प्रकार के अर्जित प्रशासनिक अनुभव और कौशल को पूर्णरूपेण उपेक्षित कर दिया जाता है। यह उन कर्मचारियों में असन्तोष एवं निराशा की भावना को उत्पन्न करती है, जो कि वरिष्ठ होते हैं तथा जिनकी पदोन्नति नहीं होती है। श्रम संघ, योग्यता के आधार पर पदोन्नति के समर्थक नहीं होते हैं, जिसके फलस्वरूप असन्तोष फैलता है तथा औद्योगिक सम्बन्ध भी बिगड़ते हैं।

वरिष्ठता एवं अर्हता सिद्धांत का व्यवहारिक संयोजन, वरिष्ठता एवं अर्हता सिद्धांत, दोनों सिद्धांतों में कुछ खूबियां और कमियां भी हैं। वरिष्ठता एवं योग्यता, दोनों ही पदोन्नति के आधारों के सापेक्षिक गुण-दोषों का विवेचन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों ही आधार के अपने-अपने लाभ हैं तथा साथ ही उनमें दोष भी हैं। व्यवहार में, वरिष्ठता को ही आधार मानकर पदोन्नति की जाती है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि योग्यता के महत्व को

स्वीकार ही न किया जाये। वास्तव में, दोनों ही आधारों के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाया जाना ही उचित होता है। यदि यह स्पष्ट है कि कोई वरिष्ठ कर्मचारी नये एवं उच्च पद के कार्य को सम्पन्न कर सकता है तो चाहे वह थोड़ा कम ही योग्य क्यों न हो, उसकी पदोन्नति की जानी चाहिये। परन्तु, यदि वह बिल्कुल ही अयोग्य है तो केवल वरिष्ठता के आधार पर उसकी पदोन्नति किये जाने से संगठन का हानि ही होगी। अत: इस सम्बन्ध में निर्णय लेते समय सम्बन्धित कर्मचारी, प्रबन्ध एवं सेवायोजक तीनों के हितों को ध्यान में रखना अति आवश्यक है। अतः प्रशासन में पदोन्नति हेतु वरिष्ठता एवं अर्हता दोनों सिद्धांतों का संयोजन किया जाता है। उपयुक्त और योग्य लोग तथा अनुभव दोनों को इसके अनुसार पदोन्नति का आधार बनाया जाता है। न्यूनतम योग्यता और क्षमता की जांच करते हुए उनमें से वरिष्ठ लोगों को पदोन्नति हेतु चयन में प्राथमिकता देकर पदोन्नति की जाती है। भारत सहित अनेक देशों में पदोन्नति के लिए अपनाई जाने वाली सामान्य पद्धति निम्नांकित गुणों को समाहित किए हुए हैं-

- उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति केवल अर्हता सिद्धांत के आधार पर की जाती है।
- मध्यमवर्गीय पदों पर पदोन्नति वरिष्ठता अर्हता सिद्धांत के आधार पर की जाती है तथा
- निम्न स्तरीय पदों पर पदोन्नति वरिष्ठता सिद्धांत के आधार पर की जाती है लेकिन यहां भी अपवाद स्वरूप अर्हता सिद्धांत को नकारा नहीं जाता।

भारत में पदोन्नति जीवन वृति सेवा का अनिवार्य अंग है। अर्हता सिद्धांत और वरिष्ठता सिद्धांत पदोन्नति के दो प्रमुख सिद्धांत हैं जिनके कुछ नकारात्मक तो कुछ सकारात्मक पहलू भी हैं। अर्हता सिद्धांत को वरिष्ठता सिद्धांत के साथ संयुक्त कर पदोन्नति की एक नई विधि अपनाई गई है जो आज सर्वोत्तम विधि भी मानी जाती है। पदोन्नति प्रणाली में सुधार लाने के उद्देश्य से समय-समय पर सिफारिशें प्रस्तुत की जाती रही हैं। छठे वेतन आयोग ने अपने प्रतिवेदन में 'निश्चित जीवन वृत्ति अभिवृद्धि' की सिफारिश की जिसमें सभी कर्मचारियों एवं अधिकारियों को वर्ष में तीन पदोन्नति मिलना अनिवार्य कर दिया गया।

12.6 पदोन्नति के लिए अर्हता जांच पद्धतियाँ

सरकारी सेवा में पदोन्नति के लिए अनुभव की अपेक्षा योग्यता या अर्हता को अधिक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। लेकिन अर्हता की जांच काफी कठिन कार्य हैं। युवा और अनुभवी वरिष्ठ कनिष्ठ जो एक ही संगठन में समान पदों पर काफी वर्षों से कार्यरत रहते हैं, उन सब को उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति पाने की अभिलाषा रहती है। लेकिन उच्च स्तरीय पदों में रिक्त स्थान काफी कम होते हैं और इस प्रकार प्रतिस्पर्धा काफी होती हैं।

पदोन्नति हेतु योग्यता या अर्हता जांच के लिए सामान्यतया तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है-

1. **लिखित और मौखिक परीक्षा-** अधिकांश देशों में पदोन्नति हेतु लिखित परीक्षा ली जाती है। लिखित और मौखिक परीक्षा जांच करने की एक वस्तुनिष्ठ पद्धति है जो सभी प्रकार के पक्षपात और भाई भतीजावाद को समाप्त करता है। अधिकारियों को किसी विशेष कर्मचारी के बारे में पदोन्नति संबंधी अंतिम निर्णय लेने के कठिन कार्य से मुक्त भी कर देता है। यह कर्मचारियों को नए विकास के प्रति अधिकतम बनाता है तथा स्पर्धा में भाग लेने के लिए प्रत्येक कर्मचारियों को समान अवसर प्रदान करता है। बहुत से देशों में विभागीय परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं, जिसमें पदोन्नति के इच्छुक प्रत्येक विभागीय कर्मचारियों एवं अधिकारियों को अर्हता परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है। भारत में अर्हता परीक्षा लोक सेवा के साथ-साथ बैंकिंग सेवा में भी है। परिश्रमी और प्रतिभाशाली कर्मचारी इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर शीघ्र ही पदोन्नत हो जाते परंतु लिखित परीक्षा पद्धति में कुछ खामियां भी हैं। पहले से परीक्षा की तैयारी में उलझन के कारण कर्मचारी अपने नियमित प्रशासनिक किए कार्यों की उपेक्षा करते रहते हैं और उसमें निष्ठावान और समर्पित अपने को उपेक्षित पाते हैं। दूसरी ओर अनुभवी कर्मचारी और

वृद्ध कर्मचारी समुचित रूप से पढ़ नहीं पाते और प्रतियोगिता के दौर में पीछे रह जाते हैं। नवयुवक कर्मचारियों के लिए यह प्रतियोगिता परीक्षा एक अच्छे अवसर के रूप में होता है।

लिखित परीक्षा की इन कमियों को दूर करने के लिए बहुत से देशों में लिखित परीक्षा के बाद साक्षात्कार या मौखिक परीक्षा ली जाती है। साक्षात्कार के माध्यम से अभ्यर्थियों के व्यक्तित्व, मनोवृति तथा आचार-व्यवहार इत्यादि को जांच हो जाती है वही साक्षात्कार के समय पूर्व के अनुभवों और अन्य सेवा संबंधी रिकॉर्ड पर भी विचार किया जाता है।

2. **कार्यकुशलता का निर्धारण-** सिविल सेवा में प्रत्येक कर्मचारी किए सेवा संबंधी रिकॉर्ड को रखना एक पुरानी और सार्वदेशिक प्रथा है जो गोपनीय रिपोर्ट, सेवा पुस्तिका, व्यक्तिगत रिपोर्ट या व्यक्तिगत फाइल इत्यादि नामों से सहेज कर रखी जाती हैं। इनका उपयोग पदोन्नति के उद्देश्य से कर्मचारी के सापेक्षिक अर्हता मूल्यांकन के लिए किया जाता है। पदोन्नति से उद्देश्य से कर्मचारियों की अपेक्षित योग्यता एवं अर्हता निर्धारण के लिए यह अपेक्षाकृत नई विधि है जिसे सबसे पहले संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनाया गया। सेवा रिकॉर्ड का रखरखाव अपने आप में कार्य क्षमता का निर्धारण नहीं है। बड़े संगठनों में जहां बहुत सी शाखाएं और खंड होते हैं तथा कर्मचारियों की संख्या अधिक होती है। वहां कार्यकुशलता निर्धारण के लिए इस पद्धति को व्यापक रूप से अपनाया गया है।

   पदोन्नति के लिए योग्यतम और सर्वाधिक कार्य कुशल कर्मचारियों हेतु कार्यकुशलता निर्धारण पद्धति सर्वाधिक उपयोगी है। कुशल लोगों को पुरस्कृत करने तथा अपेक्षाकृत कम योग्य लोगों की छटनी एक न्याय पूर्ण और विश्व सनीय पद्धति है। यह न केवल योग्य लोगों को ही बल्कि निष्ठा और सावधानी पूर्वक कार्य करने वाले लोगों को ही पुरस्कृत करती है तथा कर्मचारियों को सतर्क एवं आधुनिकतम बनाती है। कार्यकुशलता निर्धारण पद्धति के इन सकारात्मक बिंदुओं के अतिरिक्त नकारात्मक पहलू भी हैं। यह सेवा रिकॉर्ड तैयार करने वाले वरिष्ठ अधिकारियों के आत्मपरक निर्णय पर निर्भर करता है। प्रभावी रूप से आवश्यक सभी गुण, विशेषता या मापदंडों को अपने में समाविष्ट कर लेने वाले अच्छी श्रेणी प्रारूप को तैयार करना एक कठिन कार्य है। इस पद्धति के कारण उपेक्षा, बेईमानी और व्यक्तिगत निर्णय के लिए अवसर की उपलब्धता हो जाती है और बाकी कर्मचारियों के उत्तेजित तथा संकोची होने के कारण उनका मनोबल भी टूट जाता है। यह श्रेणी पद्धति पदोन्नति का कोई स्वतःचालित आधार नहीं होता। अतः अंतिम निर्णय स्वयं पदोन्नति करने वाले अधिकारी को लेना पड़ता है ।

   इस विधि में योग्यता और निपुणता का निर्धारण सेवा रिकॉर्ड के आधार पर किया जाता है। कुछ गुण, विशेषता, कार्य निष्पादन, उत्पादन रिकॉर्ड इत्यादि के आधार पर कर्मचारियों की योग्यता का निर्धारण किया जाता है। विशेषताएं जैसे कार्य का ज्ञान, व्यक्तित्व निर्णय, पहल शक्ति , यथार्थता, उत्तरदायित्व लेने की तत्परता, स्वच्छता, समय की पाबंदी, संगठन क्षमता इत्यादि कर्मचारी के उत्पादन को निम्नांकित प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है- सामान्य से ऊपर, सामान्य तथा सामान्य से नीचे।

   या इन्हें कुछ इस तरह से निर्धारित किया जा सकता है जैसे भारत और ब्रिटेन में निर्धारित किया जाता है- अति उत्कृष्ट, बहुत अच्छा, संतोष जनक, साधारण और कमजोर।

   कभी-कभी इसे इस प्रकार से भी निर्धारित किया जाता है, जैसे अमेरिका में अत्यधिक संभावना असाधारण, बहुत अच्छा, संतोष जनक, अत्यधिक असंतोषजनक, निम्न और अति निम्न।

   कभी-कभी विभिन्न श्रेणियां इंगित कर भी इसे निर्धारण किया जाता है, जैसे अंक आदि।

3. **संगठन के अध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय-** इस पद्धति में अर्हता का निर्धारण संगठन के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। संगठन के अध्यक्ष का सभी के विषय में जानकारी को आधार बनाकर कार्य निष्पादन के विषय में उनका व्यक्तिगत निर्णय ही अंतिम निर्णय होता है। इसलिए पदोन्नति करते समय वह अपने

निर्णय के अनुसार रुचि के अनुकूल लोगों को ही पदोन्नत करता है। यह पद्धति पक्षपात और भाई-भतीजावाद पर आधारित है। एक प्रकार से यह पुरस्कार पद्धति के समान भी है और निरंकुश प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने वाला भी। प्रशासन में राजनीति और चाटुकारिता को बढ़ावा देने वाला यह निर्णय कर्मचारियों में बहुत ही अनिपुणता, असुरक्षा और अनिश्चितता की स्थिति बनाता है। इस प्रकार पक्षपात पूर्ण पदोन्नति कर्मचारियों के मनोबल को घटा आती है और चापलूसओं के लिए एक अच्छा अवसर भी प्रदान करती है। इस पद्धति में पदोन्नति का निर्णय संगठन के अध्यक्ष के ऊपर होता है तथा यह व्यवसायिक औद्योगिक प्रतिष्ठानों में ही अपनाया जाता है तथा यह इसका प्रचलन सिविल सेवा में नहीं है। फिर भी कुछ उच्च स्तरीय कार्यकारी पदों पर इस पद्धति के अनुसार पदोन्नति की जाती है। विवेक एवं निर्णय का सही उपयोग संबंधित विभागाध्यक्ष ईमानदारी और निष्पक्षता के ऊपर निर्भर करता है।

पदोन्नति में जांच की विभिन्न विधियों का उपयोग सिविल सेवा में विभिन्न स्तरों पर सुविधानुसार अपनाई जाती है। साधारणतया परीक्षा एवं कार्य कुशलता निर्धारण के आधार पर निम्न एवं मध्यम वर्गीय रिक्त पदों को भरा जाता है किंतु उच्चस्तरीय पदों को कार्यकारी अध्यक्ष के व्यक्तिगत निर्णय किया नहीं भरा जाता है। वास्तव में पदोन्नति द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए इन विधियों को संयुक्त किया जाता है। विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की इन विधियों को संयुक्त करने की प्रणालियां विकसित की गई है।

प्रो0 विलोबी ने पदोन्नति के लिए पात्रता के दो आधारों का वर्णन किया है- सेवीवर्ग की योग्यताएँ एवं सेवा का स्तर। पद वर्गीकरण के समय प्रत्येक पद के कार्यों, दायित्वों एवं योग्यताओं का निर्धारण किया जाता है। इन योग्यताओं में ज्ञान, कुशलता, अनुभव, शैक्षणिक योग्यता, लिंग, निवास, तकनीकी कुशलता आदि प्रमुख होती है। इनके बिना पदोन्नति के लिए किसी कर्मचारी के नाम के संबंध में विचार ही नहीं किया जा सकता। जब ये आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित की जाती है तभी यह तय हो जाता है कि पदोन्नति के लिए प्रत्याशियों का क्षेत्र व्यापक रहेगा अथवा संकीर्ण। दूसरी ओर, व्यक्तिगत योग्यताओं की भांति पदोन्नति की पात्रता का एक अन्य आधार प्रत्याशियों की सेवा का स्तर है। इसके अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि पदोन्नति के लिए संभावित प्रत्याशी कहाँ से प्राप्त किये जायेंगे। विकल्पों को निश्चित कर देने पर पदोन्नति की रेखाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। पदोन्नति की पात्रता के क्षेत्र पर प्राय: एक संगठनात्मक प्रतिबन्ध लगाया जाता है और पदोन्नतियाँ साधारणत: एक ही विभाग अथवा ब्यूरो के अन्तर्गत की जाती है, अन्तर-विभागीय पदोन्नतियों का समर्थन नहीं किया जाता है। प्रो॰ विलोबी की मान्यता है कि विभिन्न कर्मचारियों की सेवा की शर्तों में भारी अन्तर रहता है, इसलिए यदि उन सभी के लिए एकरूप व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की गई तो यह घातक होगा। इस दृष्टि से कुछ सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किये जा सकते हैं, ये निम्नलिखित हैं-

- प्रत्येक सेवा के लिए पदोन्नति की व्यवस्था स्वयं की होती है तथा यह अन्य सेवा से पर्याप्त भिन्न है। अत: प्रत्येक सेवा में पदोन्नति की समस्या पर पृथक से विचार किया जाना चाहिए।
- जहाँ तक सम्भव हो सके, सभी कर्मचारियों को पदोन्नति के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने की चेष्टा की जानी चाहिए।
- पदोन्नति द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करते समय संबंधित संगठन के बाहर के कर्मचारी की अपेक्षा अन्दर के कर्मचारी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

12.7 श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें

लोक सेवा एक जीवन वृति सेवा है। यह प्रतिभाशाली लोगों के लिए आजीवन जीविका का माध्यम है । साथ ही यह उनकी उन्नति और विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। उच्च स्तरीय पदों को भरने के लिए योग्य और

सक्षम लोगों को व्यवस्था में लाने का कार्य पदोन्नति की अच्छी नीति से ही संभव है। लोक सेवा जैसे जीवन वृति सेवा की सफलता के लिए पदोन्नति की उपयुक्त नीति की नितांत आवश्यकता है।

आदर्श पदोन्नति व्यवस्था के दो पहलू हैं- पहला, यह प्रबन्ध को विश्वास दिलाती है कि संगठन को विभिन्न उच्च पदों पर श्रेष्ठ प्रतिभाशील व्यक्तियों की सेवा का लाभ मिलेगा तथा दूसरा- यह कर्मचारियों को विश्वास दिलाती है कि पदोन्नतियाँ योग्यता के आधार पर की गई है तथा पदोन्नति के अवसर व्यापक है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए स्टाल ने मुख्यतः सुझाव प्रस्तुत किए है, जिन्हें अपनाकर आदर्श पदोन्नति व्यवस्था को लागू किया जा सकता है- यदि ऊँची योग्यता वाले प्रत्याशी संगठन में मौजूद हो तो पदों को उन्ही की नियुक्ति द्वारा भरा जाना चाहिए, किन्तु बाहर से प्रवेश को पूरी तरह अवरूद्ध नहीं करना चाहिए। उच्च पदों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा कार्य पर प्रशिक्षण का विकास किया जाना चाहिए। जहां सम्भव हो सके वहाँ अन्तर्विभागीय एवं अन्तर्मण्डलीय पदोन्नतियाँ होनी चाहिए। नई भर्ती की भाँति पदोन्नति के समय भी अवसर की समानता का ध्यान रखा जाना चाहिए। पदोन्नति के लिए कोई भी एक मापदण्ड पर्याप्त नहीं है तथा एक उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था में प्रणाली की दृष्टि से लोचशीलता रहनी चाहिए। एक आदर्श पदोन्नति व्यवस्था में पर्यवेक्षक का योगदान महत्वपूर्ण है। सेवीवर्ग अधिकारियों द्वारा अभिलेख प्रणाली तथा अन्य प्रक्रियाओं द्वारा पदोन्नति के पात्रों का निर्धारण करके पर्यवेक्षक को बताना चाहिए तथा अन्त में उनकी तुलनात्मक योग्यताओं के आधार पर पदोन्नति का निर्णय किया जाना चाहिए।

राज्य के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में पदोन्नति की उपयुक्त नीति का निर्माण आवश्यक हो गया है। पदोन्नति नीति संस्था की सेविवर्गीय नीति का एक भाग है। यह संगठन में कर्मचारियों की पदोन्नति करने में मार्गदर्शन करती है। यह भविष्य में होने वाली कई समस्याओं को रोकने में मदद करती है।

एक श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें निम्नलिखित हैं-

- पदोन्नति की नीति को पहले से ही सुनियोजित होना चाहिए।
- लोक सेवा का स्वच्छ और सही वर्गीकरण होना चाहिए।
- प्रत्येक सेवा या वर्ग में पद या श्रेणी पदानुक्रम रूप से व्यवस्थित होना चाहिए।
- पदोन्नति की रेखा और नियम पहले से ही निर्धारित होना चाहिए।
- पदोन्नति का कार्यभार किसी एक व्यक्ति के बदले किसी समिति या बोर्ड को देना चाहिए।
- पदोन्नति की सुव्यवस्थित रूप से स्वीकृत विधि का सही अर्थों में पालन होना चाहिए।

इसके साथ हीं, कर्मचारी को पदोन्नति के लिए रिक्त स्थान में यह जाना चाहिए कि पदोन्नति सुअवसर है, न कि एक अधिकार है। उसे दूसरों के साथ प्रतियोगिता में भाग लेकर पदोन्नति का प्रयास करना चाहिए और वरिष्ठता को अत्यधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। वरिष्ठता अर्हता एवं कार्य क्षमता के सिद्धांत का मिश्रण पदोन्नति को निर्धारक होने चाहिए। उच्च स्तरीय पदों के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में अभ्यर्थियों के पूर्व कार्य निष्पादन सेवा रिकॉर्ड एवं योग्यता को निर्धारक तत्व के रूप में होना चाहिए। पदोन्नति हेतु अर्हता जांच के लिए योग्यता कार्यकुशलता निर्धारण परीक्षा साक्षात्कार इत्यादि के समान अनेक उपयुक्त साधनों को अपनाया जाना चाहिए। सेवा अवधि अथवा वरिष्ठता के निर्धारण के नियम व तरीके स्पष्ट होने चाहिए। पदोन्नति नीति को सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू किया जाना चाहिए। इसे लागू करने में किसी प्रकार का भेद-भाव एवं पक्षपात नहीं होना चाहिए। राष्ट्रीय श्रम आयोग की अनुशंसाओं के अनुसार पदोन्नति नीति को श्रम संघों के साथ विचार-विमर्श के बाद निर्धारित किया जाना चाहिए। इस आयोग ने सिफारिश की निम्न स्तरों पर पदोन्नति वरिष्ठता के आधार की जानी चाहिए तथा मध्यम स्तरीय प्रबन्ध पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार को अपनाना

चाहिए। उच्च स्तरीय प्रबन्ध पर पदोन्नति केवल योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। लेकिन राष्ट्रीय श्रम आयोग की ये अनुशंसाएं विवादों से परे नहीं है।

12.8 भारत में पदोन्नति पद्धति

भारत में लोक सेवा में पदोन्नति वरिष्ठता और योग्यता दोनों सिद्धांतों पर आधारित है। परंपरा के अनुसार पदोन्नति निम्न स्तर के पदों पर वरिष्ठता के आधार पर, मध्यम स्तर पर वरिष्ठता तथा स्थाई योग्यता के आधार पर तथा उच्च स्तरीय पदों पर योग्यता के आधार पर की जाती है। छठे केंद्रीय वेतन आयोग, जो 5 अक्टूबर 2006 को भारत सरकार ने न्यायमूर्ति बी. एन. कृष्णा की अध्यक्षता में गठित किया था, उसने 24 मार्च 2008 को अपनी रिपोर्ट में निश्चित सेवा अभिवृत्ति की सिफारिश की जिसके अनुसार सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को संपूर्ण कार्यकाल में तीन पदोन्नति अवश्य मिलनी चाहिए। लोक सेवा के कर्मचारियों को 10, 20 एवं 30 साल की सेवा के उपरांत पदोन्नति देने की प्रक्रिया लागू की गई है जबकि रक्षा कर्मियों को 8, 16 और 24 वर्षों की सेवा के बाद पदोन्नति दी जाएगी।

भारत में लोक सेवकों का पदोन्नति संबंधी समस्या और समाधान को ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है। भारत में 1669 में ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा अपने कर्मचारियों के संबंध में वरिष्ठता का नियम लागू किया गया था और इसी के साथ भारत में लोक सेवा में पदोन्नति का भी सूत्रपात हुआ। इसी वक्त कंपनी ने निश्चय किया कि लंदन से किसी व्यक्ति को किसी अन्य कर्मचारी के ऊपर अधिकारी बना कर भेजा ना जाए। 1771 में कंपनी ने व्यापारिक दायित्व के साथ-साथ दायित्व भी निर्वहन किया और वरिष्ठता के सिद्धांत का संशोधन करते हुए योग्यता सिद्धांत को मान्यता दी। अनंतर चार्टर अधिनियम, 1773 के द्वारा वरिष्ठता का सिद्धांत का समर्थन करते हुए व्यवस्थाएं निर्धारित की गई। सिविल सेवा में 1793 के चार्टर एक्ट में स्पष्ट रूप से पदोन्नति के वरिष्ठता सिद्धांत को स्वीकार किया गया था। यह सिद्धांत 1861 के भारतीय सिविल सेवा एक्ट के लागू होने तक प्रचलित रहा। यद्यपि वरिष्ठता का नियम लागू था किंतु अर्हता, योग्यता, क्षमता एवं सत्य निष्ठा इत्यादि पर भी पदोन्नति के समय विचार किया जाता था। पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत 1947 तक अपनाया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात 1947 में ही पदोन्नति के संबंध में विचार शुरू हो गया। सिविल सेवा में रिक्त पदों को भरने के लिए प्रथम वेतन आयोग ने भर्ती और पदोन्नति की पद्धति को संयुक्त किए जाने की अनुशंसा की थी। इसके अनुसार वरिष्ठता सिद्धांत को कार्मिकों के रिक्त पदों को भरने के लिए अपनाया जाना चाहिए , जो कार्यालय कार्यों को अच्छी जानकारी की शर्त को आवश्यक रूप से पूरा करता हो। उच्च स्तरीय पदों को अर्हता सिद्धांत के आधार पर तथा मध्यम स्तरीय रिक्त पदों को वरिष्ठता अर्हता सिद्धांत के आधार पर भरा जाना चाहिए। प्रथम वेतन आयोग ने यह सुझाव दिया था कि लोकसेवाओं में प्रत्यक्ष भर्ती तथा पदोन्नति के बीच विवेकपूर्ण सामंजस्य होना चाहिए। आयोग का मानना था कि उच्च पदों के संदर्भ में पदोन्नति के लिए वरिष्ठता के स्थान पर योग्यता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। द्वितीय वेतन आयोग, 1969, ने भी लगभग इसी प्रकार की अनुशंसा दी। इसके अनुसार प्रशासन में उच्च स्तरीय रिक्त पदों को अर्हता सिद्धांत के आधार पर तथा मध्यम एवं निम्न स्तरीय रिक्त पदों को वरिष्ठता सह उपयुक्तता का सिद्धांत के आधार पर भरे जाने की अनुशंसा की गई थी। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत की अनुशंसा की थी। भारत में विगत 60 वर्षों में पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत प्रचलित है और दोनों पदोन्नति के घटक विभिन्न सेवाओं में परिवर्तित होते रहते हैं।

भारत में केंद्र सरकार या राज्य सरकारों के द्वारा विभागाध्यक्ष की अनुशंसा पर कभी-कभी तो केंद्रीय लोकसेवा आयोग या राज्य लोक सेवा आयोग के अनुमोदन के आधार पर भी पदोन्नति की जाती रही है । कुछ पदों के लिए पदोन्नति वित्त विभाग की मंजूरी के पश्चात की जाती है तथा कुछ उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए तो

प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का अनुमोदन आवश्यक है। अधिकांश विभागों में पदोन्नति के उद्देश्य से विभागीय पदोन्नति समिति का गठन किया जाता है जो वरिष्ठता के के क्रम में गोपनीय रिपोर्ट को आधार बनाकर पदोन्नति की अनुशंसा करती हैं। सहायक ,वरिष्ठ सहायक, अनुभाग अधिकारी, अधीक्षक इत्यादि जैसे मध्यम एवं निम्न स्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह कार्यकुशलता के सिद्धांत को बिना विवाद के लगातार अपनाया जाता रहा है। कुछ मामलों में इस व्यवहार के अतिरिक्त पदोन्नति के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओं में कर्मचारियों को शामिल किए जाने की अनुमति भी दी जाती है। उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति के विभागीय पदोन्नति समिति सूची से हटकर भी पदोन्नति करती है। भारत में विभिन्न श्रेणियों और सेवाओं में पदोन्नति की पद्धतियां लगातार परिवर्तित भी होती रहती हैं।

योग्यता आधारित पदोन्नति व्यवस्था को अब शनैः-शनैः मान्यता मिल रही है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्तियों से युक्त समाज में योग्यता को मान्यता मिलना स्वाभाविक है। पदोन्नति में योग्यता को आधार बनाने से महत्वाकांक्षी, कर्त्तव्यनिष्ठतथा उत्साही कार्मिकों को प्रेरणा प्राप्त होती है, प्रशासनिक कार्य कुशलता बढ़ती है तथा प्रशासन में नवाचार या परिवर्तन प्रक्रियाएँ क्रियान्वित की जा सकती हैं, किन्तु इस सिद्धान्त के कारण जब कम कनिष्ठ व्यक्ति उच्च पद पर पहुंच जाता है तो वरिष्ठ कार्मिकों का अहं आहत होता है साथ ही कार्मिक असहयोग एवं संघर्ष प्रवृत्तियों को धारण कर लेते हैं। भारत में प्रचलित पदोन्नति पद्धति का गहन विश्लेषण करने के पश्चात कुछ खामियां नजर आती हैं, जो हैं-

1. विभागाध्यक्ष जानबूझकर संभावित प्रतियोगियों की सूची में से कुछ लोगों के नाम निकाल देते हैं। ढेर सारे कर्मचारियों के पदोन्नति के प्रार्थना पत्र विभागीय अध्यक्ष द्वारा विचारार्थ प्रेषित नहीं किए जाते हैं।
2. कार्मिकों के व्यक्तिगत सेवा रिकार्डों को निष्पक्षता एवं व्यस्तता से नहीं रखा जाता है। कार्मिकों की व्यक्तिगत फाइल की जिन बातों को पदोन्नति के समय देखा जाता है, वे पूरी तरह जांच पड़ताल और निष्पक्षता के साथ अंकित नहीं की जाती हैं।
3. पदोन्नति के द्वारा भरे जाने वाले अधिक पदों के संबंध में भी कर्मचारियों को यथा समय सूचित नहीं किया जाता है। रिक्त पदों की सूचना को कर्मचारियों के गुप्त रखा जाता है और इस कारण कभी कभी भी अपने प्रति किए गए अन्याय से अपरिचित रह जाते हैं।
4. अर्हता के बदले वरिष्ठता को भारत में अत्यधिक महत्व दिया जाता है। योग्यता के सिद्धांत को पदोन्नति के वक्त उपयुक्त स्थान नहीं मिल पाता है। इसके अनुशीलन की अपेक्षा इसका उल्लंघन अधिक किया जाता है।
5. पदोन्नति की सुव्यवस्थित मशीनरी के अभाव में भारत में अनुचित मनमाने और अव्यवस्थित ढंग से भी पदोन्नति दी जाती है तथा पदोन्नति में पक्षपात या अन्याय होने की स्थिति में इसके विरुद्ध अपील करने की कोई प्रभावकारी पद्धति नहीं है।
6. पदोन्नति के अवसर कम और प्रत्याशी अधिक होने के कारण अविश्वास एवं अन्य दुष्परिणाम सामने आते हैं।

इन कमियों को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया गया था कि एक उपयुक्त एवं सुव्यवस्थित पदोन्नति की नीति को अपनाया जाना चाहिए। कर्मचारियों की सेवा रिकार्डों को निष्पक्ष भाव से रखा जाना चाहिए तथा मूल्यांकन अपील करने के लिए एक प्रभावशाली मशीनरी की स्थापना भी होनी चाहिए। सभी सरकारी सेवाओं में सभी स्तरों पर पदोन्नति करने के लिए समितियों या बोर्डों की स्थापना आवश्यक है तथा मध्यम स्तरीय पदों से ही अधिकारी परीक्षा तथा साक्षात्कार की शुरुआत हो जानी चाहिए। पदोन्नति की नीति हेतु अनुमान समिति (प्रथम लोकसभा) ने भी व्यापक सुझाव दिये थे। उसके अनुसार पदोन्नति का आधार योग्यता हो, न कि सेवारत व्यक्तियों की वरिष्ठता। कर्मचारियों की पदोन्नति के संबंध में निर्णय का अधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों को होना चाहिए जिन्होंने कुछ

समय तक उनके कार्य और आचरण की जांच की हो। कम से कम एक तीन सदस्यीय कमेटी की अनुशंसा के आधार पर ही, जिसका एक सदस्य उस व्यक्ति के कार्य से सुपरिचित हो, पदोन्नति की जानी चाहिए और प्रत्येक ऐसे मामले में, जहां किसी वरिष्ठ अधिकारी के हित की अपेक्षा की गई हो समिति को लिखित रूप में वरिष्ठता की अपेक्षा करने के कारणों के स्पष्ट करना चाहिए।

पदोन्नति व्यवस्था की सफलता अनेक बार तो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों के कारण होती है किंतु कभी-कभी यह इसलिए भी हो जाता है कि कार्मिक प्रबंधन उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं से परिचित नहीं होता। सरकारी सेवा के सभी पदों को आवश्यक योग्यता और कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए मापदंडों का निर्धारण किया जाना चाहिए। विभिन्न सेवाओं और श्रेणियों में वर्गीकरण भी इस कड़ी में आवश्यक है। कर्मचारियों की पदोन्नति एक वैज्ञानिक आधार पर क्रियान्वित होने के लिए विविध तथ्यों को एक साथ समाहित किया जाना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. किसने पदोन्नति को कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताया है?
2. एक ही वर्ग में निम्न से उच्च श्रेणी में पदोन्नति क्या कहलाता है?
3. पदोन्नति शब्द अंग्रेजी भाषा के किस शब्द का पर्यायवाची है?
4. भारत में लोक सेवा में पदोन्नति का सूत्रपात कब हुआ?
5. 2006 में गठित छठे केंद्रीय वेतन आयोग के अध्यक्ष कौन थे?

12.9 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों की पदोन्नति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि पदोन्नति जीवन वृति सेवा का एक अनिवार्य अंग है तथा सक्षम अधिकारियों को सेवा में सर्वोच्च पद पर पहुंचने में सहायता करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम भी है। पदोन्नति प्रशासन को पहले से ही सेवारत कार्मिकों के सर्वोत्तम प्रतिभाओं एवं अनुभव का उपयोग करने में भी सहायता प्रदान करते हैं। यह सेवारत लोगों के मध्य से ही रिक्त स्थानों को अप्रत्यक्ष रूप से भरे जाने की प्रक्रिया है। विश्व के बहुत सारे देशों में पदोन्नति के अर्हता सिद्धांत को स्वीकार किया गया है, लेकिन साथ ही वरिष्ठता को भी उचित स्थान दिया गया है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गया हैं, जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। उचित पदोन्नति प्रणाली योग्य व्यक्तियों को सार्वजनिक सेवा की ओर आकर्षित करने तथा सेवा छोड़कर जाने से रोकने के लिए आवश्यक है। पदोन्नति से समस्त प्रशासन प्रत्येक स्तर पर लाभान्वित होता है। इससे कार्मिकों में संतोष बने रहने तथा सेवा ना छोड़ने की सोच बनी रहती है। साथ ही यह संगठन के कार्यों का उत्तरदायित्व पूर्ण तरीके और कुशलता से निर्वहन करता है। पदोन्नति प्रणाली कर्मचारियों के काम के प्रति उनकी रुचि बनाए रखती है तथा अच्छा काम करने के लिए उन्हें प्रेरित भी करती रहती है।

12.10 शब्दावली

कार्मिक- कर्मचारी, अर्हता- योग्यता, वरिष्ठता- सेवा प्रारंभ करने की तिथि से लेकर गणना की गयी सेवा की अवधि, सेवा रिकार्ड- किसी कर्मचारी के संबंध में कार्यालय द्वारा रखा गया उसका व्यक्तिगत सेवा रिकार्ड, विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग, कार्य कुशलता स्तर- पूर्व सेवा के आधार पर किसी कार्मिक की सेवा का तुलनात्मक रूप से मूल्यांकन

12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. विलोबी, **2.** क्षैतिजीय पदोन्नति या श्रेणी आधारित पदोन्नति, **3.** प्रमोट (promote), **4.** 1669 में, **5.** न्यायमूर्ति बी. एन. कृष्णा

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।
3. अवस्थी और माहेश्वरी, 2010, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।

12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2017, भारत में लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. पदोन्नति के अर्थ एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. पदोन्नति के उद्देश्य एवं पदोन्नति के प्रकार का मूल्यांकन कीजिए।
3. पदोन्नति प्रणालियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. पदोन्नति की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
5. भारत में प्रचलित पदोन्नति पद्धति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई- 13 प्रशिक्षण का अर्थ, महत्व एवं प्रकार

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 प्रशिक्षण का अर्थ
13.3 प्रशिक्षण का महत्व
13.4 विकासशील देशों में प्रशिक्षण
13.5 प्रशिक्षण के उद्देश्य
13.6 प्रशिक्षण के प्रकार
13.7 प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.13 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

प्रशिक्षण एक निश्चित उद्देश्य के लिए लोगों का ज्ञान और कौशल बढ़ाने हेतु एक संगठित गतिविधि है। प्रशिक्षित कार्मिक किसी भी संगठन की मूल्यवान परिसंपत्ति हैं और ये संगठन की प्रगति और स्थायित्व के लिए जिम्मेवार हैं। किसी कार्यविशेष को कुशलता के साथ करने हेतु कर्मचारियों के ज्ञान, कुशलता, अभिरुचि तथा क्षमताओं में वृद्धि की प्रक्रिया का नाम प्रशिक्षण है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है। लोक सेवाओं में नियुक्त व्यक्ति पूर्व से ही न्यूनतम शैक्षिक योग्यताधारी होते हैं। आमतौर पर लोक सेवा में प्रवेश करने से पूर्व ही वे अपनी शिक्षा पूरी कर चुके होते हैं, परंतु शिक्षा की प्रक्रिया उसके बाद भी जारी रहती है। विभिन्न परिवर्तनों एवं तकनीक से उनकी कुशलता और दक्षता को सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस कार्य शिक्षा को लोक सेवाओं में प्रशिक्षण कहा जाता है। भारत जैसे विकासशील देश में प्रशिक्षण कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु कई प्रशिक्षण संस्थाएं स्थापित की गई हैं और समय-समय पर इनमें आवश्यक संरचनात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन भी किए गए हैं। प्रशिक्षण लोक सेवा की कुशलता के लिए नितांत आवश्यक है। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य शासकीय कृत्यों के लिए कर्मचारियों को भलीभांति तैयार करना है।

वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है और इसके कुशल निष्पादन हेतु विशेष ज्ञान और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता होती है। बदलते परिदृश्य में नए मापदंडों पर खरे उतरने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। आज प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। भारत सहित प्रायः सभी देशों में लोक सेवाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के उपयुक्त और प्रभावी शिक्षण हेतु व्यापक प्रबंध किए गए हैं। इस इकाई का उद्देश्य पाठकों को प्रशिक्षण के महत्व, आवश्यकता, प्रकार और विभिन्न तकनीकों से परिचय कराना है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशिक्षण का अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही प्रशिक्षण के प्रकार तथा प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक के बारे में जान सकेंगे।
- विकासशील देशों में प्रशिक्षण की आवश्यकता को समझ पायेंगे।

13.2 प्रशिक्षण का अर्थ

प्रशिक्षण, प्रशासन एवं प्रबन्धन की एक विधा है। किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रशिक्षण को आवश्यक माना गया है। प्रशिक्षण का उद्देश्य ऐसे तंत्र की स्थापना करना होता है जो समय-समय पर लोक सेवकों के वास्तविक व्यवहार को सकारात्मकता देता रहे और नवीनतम ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि भी करे। प्रशिक्षण कार्य एवं संगठन की आवश्यकताओं के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान निपुणताओं, व्यवहार, अभिरूचियों तथा मनोवृत्तियों में सुधार करता है, परिर्वतन उत्पन्न करता है तथा ढालता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य लोक सेवकों की कार्यकुशलता और क्षमता को बढ़ाना है।

प्रशिक्षण का शाब्दिक अर्थ है, किसी खास कला या व्यवसाय की शिक्षा देना। लोक प्रशासन में प्रशासन का अर्थ किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता, शक्ति और बुद्धिमत्ता को सुधारने तथा वांछित दिशा में उसकी रुचि और मूल्य को विकसित करने का सक्रिय प्रयास करना है। व्यापक अर्थों में प्रशिक्षण जीवनपर्यंत चलने वाली एक प्रक्रिया है। शिक्षा के समान ही प्रशिक्षण जीवन पर्यंत चलने वाली एक लंबी प्रक्रिया है, परंतु शिक्षा की तुलना में प्रशिक्षण के उद्देश्य सीमित और निश्चित होता है। शिक्षा किसी व्यक्ति के बाल्यकाल से प्रारंभ होकर व्यक्तित्व, चरित्र, व्यवहार, रुचियां, क्षमता, आदि के निर्माण को प्रभावित करती है और व्यापक मानसिकता उत्पन्न करती है। परंतु प्रशिक्षण किसी विशेष किस्म के कार्य अथवा व्यवसाय के लिए अपेक्षित कार्यकुशलता और ज्ञान में सुधार करता है। इस प्रकार प्रशिक्षण की अपेक्षा शिक्षा अधिक व्यापक अवधारणा है। फिर भी प्रशिक्षण और शिक्षा एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और अधिकांश बार वे परस्पर व्यापी होते हैं। साधारण शब्दों में, प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है। प्रशिक्षण एक अल्पकालीन शैक्षणिक प्रक्रिया है तथा जिसमें एक व्यवस्थित एवं संगठित कार्य-प्रणाली उपयोग में लायी जाती हैं, जिसके द्वारा एक कर्मचारी किसी निश्चित उद्देश्य के लिए तकनीकी ज्ञान एवं निपुणताओं को सीखता है। इस प्रकार प्रशिक्षण एक सीखने का अनुभव है। जिसके अन्तर्गत यह एक कर्मचारी में तुलनात्मक रूप से स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास करता है, जो कि उसके कार्य का निष्पादन क्षमता में सुधार लाता है।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रशिक्षण को निम्नलिखित रूपों में परिभाषित किया गया है-

मैण्डेल के अनुसार, ''प्रशिक्षण का अर्थ है, नये कार्य के लिये अभिनवीकरण। वर्तमान कार्य के लिए ज्ञान तथा कुशलता का विकास एवं भावी उत्तरदायित्वों के लिए तैयारी।"

एडविन बी. फिलिप्पा के अनुसार, ''प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है।''

स्टाल(Stahl) के मतानुसार, ''कर्मचारी वर्ग के विकास में प्रशिक्षण मानवीय प्रयास के निर्देशन का एक मूल तत्व है और इस रूप में यह उस समय अधिक प्रभावशाली रहता है जबकि इसे नियोजित, व्यवस्थित एवं मूल्यांकित किया जाता है।"

एस.एल. गोयल कहते हैं, ''प्रशिक्षण- (क) एक कार्य प्रक्रिया है, (ख) जिसके द्वारा कार्मिक की क्षमताओं को बढ़ाया जा सकता है, (ग) जिससे कि अपने सांगठनिक कार्यों का निष्पादन करने के लिए अपेक्षित ज्ञान,

कुशलताओं तथा रुझानों के अर्थों में सांगठनिक आवश्यकताओं । को पूरा किया जा सके, (घ) अपेक्षाकृत थोड़े समय में ही।"

विलियम जी. टोर्पे की परिभाषा के अनुसार, ''प्रशिक्षण, कर्मचारियों के मौजूदा सरकारी पदों के लिए और भविष्य के सरकारी पदों के लिए उनको तैयार करने के उनकी कुशलताओं, आदतों, ज्ञान प्रवृत्तियों का विकास करने की प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य उनकी प्रभावशीलता में वृद्धि करना है।"

अवस्थी और माहेश्वरी कहते हैं कि, "प्रशिक्षण लोक सेवकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के एक सुस्पष्ट प्रयास है और यह व्यावसायिक ज्ञान, व्यापक दृष्टि तथा व्यवहार के सही ढंग को प्रदान करके किया जाता है। यह लगातार महसूस की जाने वाली आवश्यकता के सम्मुख एक सतत या वांछित प्रयास है।"

इस प्रकार प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। एक प्रक्रिया के रूप मे प्रशिक्षण विशेष और सीमित है। इसका अर्थ विशेष कार्य अथवा व्यवस्था के बारे में शिक्षण देना है। इसका प्रयोजन कर्मचारियों की उनके कार्य कुशलता ज्ञान और कार्य क्षमता को सुधारना है तथा इसका लक्ष्य कर्मचारियों को उच्च जिम्मेदारियों के लिए तैयार करना भी है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जब लोक सेवकों की योग्यता, कुशलता, बुद्धि व दृष्टिकोण को एक निश्चित दिशा में अग्रसर करने का प्रयास किया जाता है तो यह प्रशिक्षण कहलाता है। प्रशिक्षण एक संगठित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान तथा/अथवा निपुणताओं को सीखते है।

13.3 प्रशिक्षण का महत्व

प्रशिक्षण कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है। बदली हुई परिस्थितियों में प्रशिक्षण की आवश्यकता अत्यधिक महसूस की गई है । प्रशिक्षण, प्रबंध का सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि उत्तरदायित्व है। संगठन के कार्यों को संपन्न कराने के लिए शिक्षण एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभरा है। प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारी अपने कार्यों को अधिक प्रभावी ढंग से संपन्न करने में समर्थ होता है । व्यक्ति में जो कुशलता, आदत, ज्ञान आदि जो पूर्व में विद्यमान रहते हैं, उन्हें प्रशिक्षण द्वारा अधिक परिमार्जित किया जा सकता है। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रशासन में कार्यकुशलता स्थापित कर कर्मचारियों को उच्च स्तर के कार्यों का उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता विकसित करना है तथा उनकी तकनीकी योग्यताओं के विकास द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उनकी कार्यकुशलता को बढ़ाना भी है। प्रशासनिक अधिकारियों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में प्रशिक्षण का अत्यधिक योगदान है। इस प्रकार अधिकारियों एवं कर्मचारियों की मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता में वृद्धि प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य है।

सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। योग्यता प्रणाली पर आधारित भर्ती नीतियां और कार्यक्रम लोक सेवाओं में सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त और सक्षम व्यक्तियों को चुनने का प्रयास करते हैं। कुशल प्रशासन हेतु लोक सेवकों को उपयुक्त एवं प्रभावी प्रशिक्षण आवश्यक है। लोक सेवा के कर्मचारियों का प्रशिक्षण आधुनिक काल में प्रबंधन का महत्वपूर्ण पहलू है। अधिकांश चुने गए व्यक्तियों में उपाधियां पूर्व से ही धारित होती है जो बदलते परिदृश्य में पर्याप्त नहीं होती। प्रशिक्षण अधिकारियों एवं कर्मचारियों को नवीन परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक कार्यों को कुशलता पूर्वक करने में मददगार सिद्ध होता है एवं उसकी कार्यकुशलता एवं दक्षता को सुधारता है। लोक सेवकों को अपने संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों, संघ कार्य के स्वरूप, वास्तविक कार्य करने की तकनीक और पद्धतियों के बारे में ज्ञान प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा दिया जा सकता है। इसी प्रकार बदलते हुए परिदृश्य में अर्जित ज्ञान और कार्यकुशलता को नवीन एवं अद्यतन बनाने हेतु प्रशिक्षण आवश्यक है, जो एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

प्रशिक्षण का उददेश्य कर्मचारियों को उनके वर्तमान तथा आगामी कार्यों से परिचित होने हेतु सक्षम बनाना है। प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। प्रशिक्षण के महत्व निम्नलिखित हैं-

1. उच्चतर कार्यनिष्पादन- प्रशिक्षण के द्वारा समग्र रूप से संस्था तथा कर्मचारी दोनों के कार्य की गुणवत्ता तथा मात्रा बेहतर बनती है। ज्ञान, कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है।
2. प्रक्रियाओं की एकरूपता- इसके द्वारा कार्य करने की सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध कार्यविधियों का मानकीकरण किया जा सकता है तथा उन्हें सभी कर्मचारियों को सिखाया जा सकता है, जिससे कार्यनिष्पादन की गुणवत्ता में सुधार होता है।
3. सीखने की कम अवधि- इससे कार्यनिष्पादन के स्वीकार्य स्तर तक पहुंचने हेतु आवश्यक सीखने की अवधि तथा लागत दोनों में कमी लाने में सहायता मिलती है। कर्मचारियों को गलतियां करके तथा दूसरों को देखकर काम सीखने पर समय व्यर्थ नहीं गंवाना पड़ता।
4. कम पर्यवेक्षण- इससे कर्मचारियों के विस्तृत तथा निरंतर पर्यवेक्षण की आवश्यकता कम होती है तथा वे अपने कार्य में आत्मनिर्भर हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें पता होता है कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है।
5. उच्च मनोबल- इससे कर्मचारियों के कार्य संबंधी संतोष तथा मनोबल में वृद्धि होती है तथा सकारात्मक सोच विकसित होती है, जिसके कारण वे अपने कार्य तथा संस्था के प्रति अधिक सहायक तथा वफ़ादार बनते हैं। अनुशासन तथा संबंधों में सुधार आने के फलस्वरूप अनुपस्थिति की दर तथा श्रमिकों के आवर्तन में कमी आती है।
6. सहभागितापूर्ण प्रबंधन- इससे प्राधिकारों के प्रत्यायोजन तथा विकेंद्रीकरण में सहायता मिलती है। प्रशिक्षित कर्मचारी नये तथा चुनौतीपूर्ण कार्य स्वीकार करने हेतु तत्पर रहते हैं।

13.4 विकासशील देशों में प्रशिक्षण

प्रशिक्षण का मूल उद्देश्य प्रशासनिक अधिकारी को अपने कार्य में कुशल एवं दक्ष बनाना है। प्रशिक्षण के पश्चात् कर्मचारी का व्यक्तित्व तो वही रहता है, किन्तु उसके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आ जाता है। विश्व के सभी देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण एक आवश्यक तथ्य है, किंतु विकासशील देशों में इसकी आवश्यकता और महत्व अधिक है विकासशील देशों में प्रशिक्षण की तात्कालिक आवश्यकता के कई महत्वपूर्ण कारक हैं। इन कारकों की वजह से विकासशील देशों में विकास नीतियों की संपूर्ण सफलता उपयुक्त प्रशिक्षण पर ही निर्भर है। अधिकांश विकासशील देशों में सामान्यतया प्रशिक्षित और योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की कमी है और प्रशिक्षण की सुविधाएं और प्रशिक्षण संस्थान अपर्याप्त हैं। सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि के फल स्वरुप लोक सेवकों को नए प्रकार के कार्यों को संपादित करने में उच्च कोटि की दक्षता और तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। प्रशासन जटिल, तकनीकी और विशेषीकृत हो गया है, वहीं दूसरी और विकासशील देशों में सामाजिक आर्थिक स्थितियां लगातार बदल रही हैं और तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों की चुनौतियों के लिए प्रशासन के नवीनीकरण की आवश्यकता है। विकासशील देशों में चलाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन असाधारण तेजी और दक्षता से करने के लिए अक्सर प्रशासन पर दबाव बना रहता है, जिसे लोक सेवकों के प्रशिक्षित होने की अवस्था में ही तुरंत निस्तारित किया जा सकता है।

13.5 प्रशिक्षण के उद्देश्य

प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने की एक निश्चित विधि होती है जिसे प्रशिक्षण के माध्यम से ही सीखा जा सकता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य केवल तकनीकी कार्यों एवं नित्य के कार्यों का निष्पादन सिखाना ही नहीं वरन् एक समझदार एवं गम्भीर दृष्टिकोण का विकास करना भी है। प्रशिक्षण, कार्यों को सही एवं प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न

करने के लिए कर्मचारियों को जानकारी प्रदान करने की प्रक्रिया है, जिससे कि उनकी कार्य के प्रति समझ, कार्यक्षमता तथा उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

लोक सेवकों के लिए प्रशिक्षण के उद्देश्यों की चर्चा सर्वप्रथम सन् 1944 में ब्रिटेन में एशेटन कमेटी रिपोर्ट, में किया गया था। प्रशिक्षण के उद्देश्यों के बारे में इसने कहा था कि बड़े स्तर के किसी भी संगठन में कुशलता दो तत्वों पर निर्भर है। उसको सौंपे गए कार्य विशेष को करने के लिए व्यक्ति की तकनीकी कुशलता और एक संगठित संस्था के तौर पर संगठन की कम सुनिश्चित कुशलता, जो संस्था को संघटित करने वाले व्यक्तियों की सामूहिक भावना और उनके दृष्टिकोण से पैदा होती है। प्रशिक्षण को इन दोनों का ध्यान रखना चाहिए। एशेटन कमेटी रिपोर्ट, 1944 ने प्रशिक्षण के निम्नलिखित पाँच उद्देश्य बताये-

कार्मिकों में विश्व सनीय कार्य चातुर्य उत्पन्न करना।

- कार्मिकों को इस योग्य बनाना कि वे परिवर्तित परिस्थितियों में अपने कार्य को दक्षतापूर्वक एवं सुगमता से सम्पदा कर सकें।
- कार्मिकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर उन्हें अनुभव कराना कि वे सेवक हैं, स्वामी नहीं।
- कार्मिकों में सामुदायिक भावना उत्पन्न करना तथा उन्हें यन्त्रीकरण से बचाना।
- कार्मिकों को दायित्वों की पूर्ति हेतु अधिक क्षमता प्रदान करना।

किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसके उद्देश्यों का निर्धारण कितनी कुशलता से किया गया है। सामान्य: संगठनों द्वारा अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के लिए जो उद्देश्य होते है, वे निम्नलिखित प्रकार से हैं-

1. कर्मचारियों को नवीनतम ज्ञान, अवधारणाओं, सूचनाओं एवं तकनीकों के विषय में जानकारी प्रदान करने तथा उन निपुणताओं, जिनकी उन्हें अपने-अपने विशेष क्षेत्रों मे आवश्यकता है अथवा होगी, उनको विकसित करने के द्वारा उन्हें उनके वर्तमान पदों पर अधिक प्रभावपूर्ण रूप से कार्य सम्पन्न करने के लिए सहायता प्रदान करना।
2. कार्य एवं संगठन की वर्तमान तथा साथ ही परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नये तथा पुराने दोनों कर्मचारियों को तैयार करना तथा लोकसेवक को उन कार्यों के अनुकूल बनाना जो उसे एक परिवर्तनशील जगत में करने को दिए गए हैं।
3. न्यूनतम लागत, अपव्यय एवं बर्बादी तथा न्यूनतम पर्यवेक्षण पर कर्मचारियों से श्रेष्ठ ढंग से कार्य सम्पादन को प्राप्त करना।
4. प्रशिक्षण की सहायता से लोक सेवकों में जनकल्याण की भावना उत्पन्न करना।
5. वैयक्तिक एवं सामूहिक मनोबल, उत्तदायित्व की अनुभूति, सहकारिता की मनोवृत्तियों तथा मधुर सम्बन्धों को बढ़ावा देना।
6. स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में नवीन कार्य-दशाओं में समायोजित करने के लिए कर्मचारियों को तैयार करना।
7. कर्मचारियों की आत्म-विश्लेषण करने की योग्यता तथा कार्य सम्बन्धी निर्णय क्षमता का विकास करना तथा विभागीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लोक सेवकों को व्यावसायिक दृष्टि से कुशल बनाना।
8. लोक सेवकों की दृष्टि ओर दृष्टिकोण को व्यापक बनाना।
9. इस मनोवृत्ति का पोषण करना कि लोकसेवक मालिक नहीं, बल्कि जनसेवक हैं।
10. मानव संसाधन विकास के लक्ष्यों की पूर्ति करना आदि।

अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रशासन में प्रशिक्षण कर्मचारियों के दक्षता सुधारता है। साथ ही कर्मचारियों की व्यवसायिक कार्यकुशलता और ज्ञान को प्रशिक्षण बढ़ाता है, ताकि वे अपना काम प्रभावी ढंग से कर सकें। नए कर्मचारियों के संगठन में प्रवेश का प्रशिक्षण एक सहायक माध्यम है और उसे संगठन के लक्षण तथा उद्देश्य संगठन में उसकी अपनी भूमिका तथा उसके कार्यों के निर्वहन की तकनीकी ज्ञान और पद्धतियों से अवगत कराता है जिसके फलस्वरूप कर्मचारी संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपना सर्वोत्तम योगदान दे सकते हैं। प्रशिक्षण कर्मचारियों को क्षेत्र विशेष में हुए नवीनतम प्रगति और विकास की जानकारी देता है इस प्रकार उन्हें ज्ञान से अद्यतन बनाए रखता है। संगठन के लक्ष्य और तकनीकों में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए प्रशिक्षण कर्मचारियों को ने संगठनात्मक परिवर्तनों के अनुकूल बनाता है। प्रशिक्षण में भर्ती किए गए व्यक्तियों में विद्यमान कमियों को पूरा करता है तथा सरकार के प्रशासनिक कार्यों के लायक बनाने तथा उसी दिशा में डालने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। प्रशिक्षण कर्मचारियों में निष्ठा और मनोबल बढ़ाता है तथा कर्मचारियों के लिए सामुदायिक सेवा और अपनेपन की भावना विकसित करता है। कर्मचारियों को इस बात का एहसास होता है कि वे और उनका काम संगठन और समुदाय का अनिवार्य अंग है। कार्यों में समर्पण कर्मचारियों को गौरव परम संतोष प्रदान करता है।

13.6 प्रशिक्षण के प्रकार

सभी प्रजातांत्रिक देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण बुनियादी महत्व का होता है। प्रशिक्षण न केवल नवनियुक्त कर्मचारियों के लिए आवश्यक है बल्कि उनके लिए भी आवश्यक है, जो सेवा में कार्यरत हैं। इसकी प्रकृति अलग-अलग हो सकती हैं। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम देश में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक दशाओं को रखकर तैयार किए जाते हैं । प्रशिक्षण देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार से और विभिन्न तकनीकों से दिया जाता है।
सामान्यतया प्रशिक्षण को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जाता है-

1. **औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रशिक्षण (Formal and Informal Training)-** मूलतया प्रशिक्षण दो प्रकार के होते हैं- अनौपचारिक और औपचारिक। अनौपचारिक प्रशिक्षण का अर्थ है- वरिष्ठ अधिकारियों के मार्गदर्शन के अधीन वास्तविक काम करते हुए काम सीखना। अत: यह प्रशिक्षण अनुभव से या परीक्षण और चूक पद्धति (Trial & Error Method) द्वारा होता है। प्रशिक्षु को प्रशासनिक कुशलता की प्राप्ति वास्तविक काम करते हुए अर्थात व्यवहार के दौरान होती है । इसको 'काम पर प्रशिक्षण' कहते हैं । लोक प्रशासन में यह प्रशिक्षण की परंपरागत पद्धति है। ए.डी. गोरवाला के शब्दों में ''एक अच्छे कलेक्टर (जिलाधीश) का घर नए सहायक कलेक्टर के लिए अक्सर ही उसका दूसरा घर होता है।" दूसरी ओर, औपचारिक प्रशिक्षण विशेषज्ञ मार्गदर्शन तथा निरीक्षण के अंतर्गत व्यवस्थित ढंग से पूर्व नियोजित और सुस्पष्ट पाठ्यक्रमों के द्वारा दिया जाता है।

   औपचारिक प्रशिक्षण उस किस्म का प्रशिक्षण है जिसकी योजना व्यवस्था और संचालन विशेषण और मार्गदर्शन में सावधानी के साथ किया जाता है। निश्चित समय अवधि के दौरान विशेष रूप से चुने गए प्रशिक्षणार्थियों के समूह को प्रशिक्षण संस्थानों में विशेषज्ञ प्रशिक्षक अथवा विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत औपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। औपचारिक प्रशिक्षण की परम्परा प्रक्रिया में पूर्व निर्धारित योजना के अन्तर्गत विशिष्ट प्रशिक्षकों के द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण विधिवत् प्रशिक्षण केन्द्र में संगोष्ठी वाद-विवाद व्याख्यान आदि के माध्यम से दिया जाता है। इसमें विशेष प्रकार के प्रशासनिक कौशल एवं कार्यविधि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके विपरीत अनौपचारिक प्रशिक्षण अनुभव एवं व्यक्तिगत सम्पर्क पर आधारित होता है। इसमें नवनियुक्त अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ रहकर उसके आचरण को देखकर अनुभव ज्ञान एवं कौशल ग्रहण

करता है। इसमें वास्तविक रूप से तैयार किया गया अध्ययन पाठ्यक्रम तथा व्याख्यान संगोष्ठी या कार्यशाला में समूह चर्चा, सम्मेलन, कार्य परियोजनाएं, लिखित परीक्षाएं इत्यादि होती है। यह पूर्णकालिक या आंशिक हो सकता है। प्रशासनिक दक्षता सुधारने की आवश्यकता को देखते हुए औपचारिक प्रशिक्षण किया प्रणाली काफी लोकप्रिय हैं।

वहीं दूसरी ओर, अनौपचारिक प्रशिक्षण अनुभव द्वारा प्राप्त शिक्षण है, जिसे कर्मचारी अपने संगठन में वास्तविक निर्धारित कार्य के दौरान अर्जित करता है। यह संगठनात्मक क्रियाकलाप है। अनौपचारिक प्रशिक्षण के लिए कोई विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए कोई योजना बनाना आवश्यक नहीं है। प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षक अथवा किसी प्रकार के प्रशिक्षण संस्थान की आवश्यकता नहीं होती है। इसकी कोई निश्चित अवधि भी नहीं होती है और ना ही इसके लिए विशेष रूप से चुने गए प्रशिक्षणार्थियों के समूह की आवश्यकता होती है। यह लोक प्रशासन में प्रशिक्षण का परंपरागत तरीका है और व्यावहारिक प्रशासन इसे आज भी प्राथमिकता देते हैं, परंतु यह प्रक्रिया सीखने की सबसे कठिन तरीका है और इसमें कर्मचारियों को काफी धैर्य और लता की आवश्यकता होती है। अनौपचारिक प्रशिक्षण अधिकांश देशों में लोकप्रिय नहीं है।

2. **अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षण (Short-Term and Long-Term Training)-** अल्पकालीन प्रशिक्षण अल्पविधि के लिए दिया जाता है, जबकि दीर्घकालीन प्रशिक्षण एक लम्बे समय तक चलता है। अल्पकालीन प्रशिक्षण किन्हीं विशेष परिस्थितियों में दिया जाता है। जैसे- युद्ध के समय मोर्चे पर भेजते समय नवनियुक्त सैनिकों को दिया गया प्रशिक्षण। इसके विपरीत दीर्घकालीन प्रशिक्षण में विषय की गहन जानकारी एक लम्बी अवधि में प्रदान की जाती है। जैसे- शान्तिकाल में सैनिकों को दिया गया प्रशिक्षण। यह प्रशिक्षण जटिल व तकनीकी प्रकृति का होता है।

   अवधि के अनुसार प्रशिक्षण को अल्पकालिक और दीर्घकालिक वर्गों में रखा जाता है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम यदि कुछ सप्ताहों या एक-दो माह का होता है तो उसे अल्पकालिक प्रशिक्षण कहते हैं और यदि यह छह महीने से एक या दो-तीन वर्ष का होता है तो उसे दीर्घकालिक प्रशिक्षण कहा जाता है। भारत में दीर्घकालिक प्रशिक्षण का उदाहरण भारतीय विदेश सेवा का प्रशिक्षण है जिसकी अवधि तीन वर्ष होती है।

3. **विभागीय एवं केन्द्रीय प्रशिक्षण (Departmental and Central Training)-** विभागीय प्रशिक्षण विभाग या कार्यालय के अन्दर ही अनुभवी विभागीय अधिकारियों द्वारा प्रदान किया जाता है। यह प्रशिक्षण विभाग की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप दिया जाता है। इसके विपरीत उच्च एवं जटिल कार्यों के लिए प्रशिक्षण विभाग के केन्द्रीय मुख्यालय या केन्द्रीय सत्ता द्वारा दिया जाता है। प्रशिक्षण जब विभाग द्वारा (विभाग के अंदर) आयोजित किया जाता है तो उसे विभागीय प्रशिक्षण कहते हैं। यह विभाग के वरिष्ठ एवं अनुभवी सदस्य देते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण एस. बी. पी. राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण है। दूसरी ओर विभिन्न विभागों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण का आयोजन जब केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थान द्वारा होता है तो उसे केंद्रीय या केंद्रीयकृत प्रशिक्षण कहते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण एल.बी.एस. राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण है।

4. **कौशल एवं सामान्य प्रशिक्षण (Skill and General Training)-** कौशल प्रशिक्षण विशिष्ट योग्यता प्रदान करने के उद्देश्य से दिया जाता है। उदाहरणार्थ- पुलिस विभाग को आपराधिक कृत्यों की खोज व निवारण हेतु दिया गया प्रशिक्षण। इसके विपरीत, सामान्य प्रशिक्षण किसी विशिष्ट कौशल को बढ़ाने के लिए नहीं वरन् कार्य-सम्पादन को सुगम बनाने की दृष्टि से दिया जाता है। इसमें राजनीतिक,

सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों की जानकारी देते हुए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की जाती है, जिससे कि प्रशिक्षणार्थी सरलता से विषय को ग्रहण कर सकें।

5. **प्रवेश-पूर्व, सेवाकालीन एवं प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Pre-Entry, in-Service and Post-Entry Training)-** लोक सेवाओं में प्रवेश से पूर्व दिया गया प्रशिक्षण प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण है, जबकि किसी व्यक्ति विशेष को सेवा में प्रवेश के बाद दिया गया प्रशिक्षण प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण कहलाता है। महाविद्यालयों और विश्व विद्यालयों की औपचारिक शिक्षा के पश्चात चयनित लोक सेवकों का प्रशिक्षण विभिन्न संस्थानों में आयोजित किए जाते हैं। इसे सेवाकालीन प्रशिक्षण भी कहा जाता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक पद्धति का संयुक्त रूप भी हो सकता है और इस सेवा के सभी स्थानों पर दिया जा सकता है। इससे कर्मचारी की दक्षता और कार्य निष्पादन सुधारने में सहायता मिलती है तथा उन्हें व्यवसायिक रूप से अधिक सक्षम और योग्य बनाया जाता है। कभी-कभी कर्मचारी के वास्तविक कार्य से प्रवेश उत्तर प्रशिक्षण का सीधा संबंध नहीं होता परंतु उनकी सामान्य योग्यता और संगठनात्मक कार्य निष्पादन सुधारने प्रत्यक्ष रूप से बहुत सहायक होता है। सेवा में पद-स्थापन से पूर्व दिया जाने वाला प्रशिक्षण 'प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण' कहलाता है। शिक्षण संस्थाएँ इस प्रकार का प्रशिक्षण प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वर्तमान में विश्व विद्यालयों में तकनीकी व व्यावसायिक प्रशिक्षण को विशेष महत्व दिया जा रहा है। सेवाकालीन प्रशिक्षण पहले से कार्यरत कार्मिकों को दिया जाता है जिससे कि वे अपने कार्य को अधिक कुशलता व दक्षता के साथ सम्पन्न कर सकें। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रशिक्षण सामूहिक या व्यक्तिगत किसी भी रूप में हो सकता है।
महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा तथा व्यवसाय अथवा तकनीकी शिक्षा को प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण की संज्ञा दी गई है। विगत वर्षों में सरकार ने प्रशासकीय एवं प्रबंधकीय पदों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को संचालित करने के लिए शिक्षण संस्थानों की स्थापना की है। कुछ ऐसे संस्थान भी हैं जो सेवा से पूर्व प्रशिक्षण के लिए विविध प्रकार की व्यवस्थाएं संचालित करते हैं। प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण काफी प्रचलित प्रथा है। सेवाकालीन प्रशिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक पद्धति का संयुक्त रूप हो सकता है तथा इसे सेवा के सभी स्तरों पर दिया जाता है। कर्मचारियों की दक्षता और कार्य निष्पादन सुधारने में सहायता मिलती है तथा उन्हें व्यवसायिक रूप से अधिक सक्षम और योग्य थी बनाया जाता है। यह प्रशिक्षण उन प्रत्याशियों को दिया जाता है जो सार्वजनिक सेवा में निकट भविष्य में प्रवेश करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, यह विभिन्न संस्थानों और कॉलेजों में दिए जाना वाला व्यावसायिक शिक्षण है। यह शिक्षण एप्रेंटिसशिप और इंटर्नशिप के रूप में संयुक्त राज्य अमरीका में बेहद लोकप्रिय है।

6. **अनुस्थापन प्रशिक्षण (Orientation Training)-** अनुस्थापन प्रशिक्षण सेवाकालीन प्रशिक्षण का ही एक प्रकार है। किसी भी संगठन में नवनियुक्त कर्मचारीकों उसके पद व स्थिति से महत्वपूर्ण जानकारी दी जाती है, उसे ही 'अनुस्थापन प्रशिक्षण' कहा जाता है। अभिविन्यास प्रशिक्षण नए लोक सेवकों को संगठन कार्य कार्य करने की स्थिति तथा पद्धतियों का ज्ञान से परिचय वही विन्यास प्रशिक्षण द्वारा दिया जाता है। यह एक योजनाबद्ध प्रशिक्षण है जिसका मूल उद्देश्य कर्मचारियों की मूल अवधारणा, नए वातावरण संगठन के लक्ष्य और उद्देश्य और संगठन में उसके अपने स्थान से परिचित कराना है। हाल के वर्षों में विभिन्न देशों में इस प्रकार के प्रशिक्षण का महत्व बढ़ रहा है।

इस प्रकार विभिन्न संगठनों द्वारा अपने उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उपयोग अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने हेतु किया जाता है। ज्ञान का नवीनीकरण एंव विकास सूचनाओं का प्रसार, कार्य-शैलियों में परिवर्तन तथा वैयक्तिक विकास आदि इस प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्य हैं।

13.7 प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक

प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा संगठनों के कर्मचारियों के ज्ञान, निपुणताओं तथा रूचियों में वृद्धि की जाती है। विभिन्न संगठनों की परिवर्तित आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कर्मचारियों के लिए उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जायें। लोक सेवकों को प्रशिक्षण प्रदान करने में विविध विधियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें महत्वपूर्ण पद्धतियां हैं-

1. **औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण-** आजकल अधिकांश देशों में औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण की तकनीक अपनाई गई है। इसके अंतर्गत व्याख्यान या कक्षाएं आयोजित करके नवनियुक्त कर्मचारियों को वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा औपचारिक रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है। यदा-कदा बाह्य विशेषज्ञों द्वारा भी व्याख्यान का आयोजन भी किया जाता है। निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर यह प्रशिक्षण सामूहिक चर्चा, संगोष्ठी, अभिभाषण और कार्यशाला पर आधारित होती है। विभागीय अध्यक्ष भी इस दौरान कर्मचारियों को संबोधित करता है तथा उन्हें आवश्यक निर्देश भी देता है। औपचारिक प्रशिक्षण में फिल्म, दृश्य, श्रवण उपकरण तथा कंप्यूटरों का ही प्रयोग किया जाता है। व्याख्यान पद्धति प्रशिक्षण का यह सबसे पुराना तरीका है। इसमें वरिष्ठ विद्वानों तथा अनुभवी अधिकारियों द्वारा व्याख्यान दिए जाते हैं। इनसे प्रशिक्षुओं को उनके काम के विभिन्न पक्षों पर नई-नई जानकारियाँ मिलती है। व्याख्यान विधि का एक लाभ यह हैं कि यह एक प्रत्यक्ष विधि है, जिसे कि प्रशिक्षार्थियों के एक बड़े समूह के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अत: इससे समय एवं धन, दोनों की बचत होती है। इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि इसके द्वारा केवल सैद्धान्तिक ज्ञान की प्रदान किया जा सकता है, व्यवाहारिक ज्ञान नहीं।
2. **कार्य करते हुए अर्जित अनुभव द्वारा प्रशिक्षण-** प्रायः अधिकारी और कर्मचारी कार्य करने के दौरान अर्जित अनुभवों से बहुत कुछ सीखते हैं और इसी सीखने की प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए उनका स्थानांतरण एक अनुभाग से दूसरे अनुभाग में किया जाता है। वरिष्ठ तथा अनुभवी अधिकारियों द्वारा समय-समय पर अनुदेश या निर्देश इस सीखने की प्रक्रिया में नए कर्मचारियों की सहायता करते हैं। अल्पकालिक तौर पर अंतर विभागीय विनिमय कार्यक्रम या अध्ययन दौरे द्वारा भी कर्मचारियों की दक्षता को सुधारने का प्रयास किया जाता है। समय के साथ यह सीखने की प्रक्रिया अधिक परिपक्व होती जाती है और प्रशासक के रूप में उसकी कार्यशैली में आवश्यक सुधार भी लाती है। लेकिन यह पद्धति काफी धीमी है और इसमें अत्यधिक समय भी लगता है। अक्सर इसके स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य और निश्चित समय सीमा नहीं होती है।
3. **प्रशिक्षण की सम्मेलन पद्धति-** वर्तमान समय में यह पद्धति सर्वाधिक प्रचलित है। प्रशिक्षण हेतु विभिन्न विभागों से चुने गए अधिकारियों एवं कर्मचारियों के समूह को एक मंच पर लाकर चर्चा द्वारा अनुभव और विचारों को साझा किया जाता है। प्रशिक्षण की यह व्यवस्था विश्लेषण पद्धति भी कही जाती है। इसमें दूसरों के अनुभव से सीखने का पर्याप्त अवसर भी प्राप्त होता है और प्रशिक्षण पा रहे कर्मचारियों की भूमिका भी सक्रिय बनी रहती है। चर्चा को सही दिशा में रखने के लिए अनुदेशक का कार्य भी महत्वपूर्ण हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कई अन्य देशों में सम्मेलन पद्धति बहुत ही लोकप्रिय है। भारत में भी भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के अल्पकालिक प्रशिक्षण के लिए इस पद्धति का उपयोग किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत, सामूहिक विचार-विमर्श द्वारा सूचनाओं एवं विचारों का आदान-प्रदान किया जाता है। इसके उद्देश्य एक समूह के ज्ञान एवं अनुभव से सभी को लाभान्वित करना होता है। इस विधि के अन्तर्गत भाग लेने वाले विभिन्न विषयों पर अपने विचारों को प्रस्ततु करते

हैं, तथ्यों, विचारों एवं आँकडों का आदान-प्रदान एवं परीक्षण करते हैं, मान्यताओं की जाँच करते हैं, निष्कर्षों को निकालते है तथा परिणामस्वरूप कार्यों के निष्पादन में सुधार हेतु योगदान देते है।

4. **प्रशिक्षण की अभिषद (सिंडीकेट) पद्धति-** प्रशिक्षण की इस पद्धति का जन्म इंग्लैंड में एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज (हेनले-ओन-थेम्स) में हुआ था। इस पद्धति में तीन या चार प्रशिक्षुओं के छोटे से दल को अध्ययन परियोजना का काम दिया जाता है। सामान्य सदस्यों के मार्गदर्शन में प्रशिक्षु से उस विषय का गहन अध्ययन कराया जाता है। अत: यह प्रशिक्षण की भागीदारी पद्धति है। अभिषद दो प्रकार के होते हैं- जानकारी संग्रह और समस्या समाधान।
5. **विषय अध्ययन पद्धति-** इसमें विषय विशेष का सघन और गहरा अध्ययन किया जाता है। इसके लिए वास्तविक मामलों का वर्णन उन लोगों द्वारा किया जाता है जिनको अध्ययनाधीन मामले का निजी अनुभव होता है। इसके बाद सामान्य सदस्य के निर्देशन और देख-रेख में सामूहिक परिचर्चा की जाती है। इस तरीके से लोकसेवकों की समझ और कार्यक्षमता विकसित होती है।
6. **संवेदनशीलता प्रशिक्षण-** यह सबसे जटिल और नवीनतम पद्धति है। प्रशासनिक सिद्धांत के साहित्य में कर्मचारियों की व्यक्तिगत प्रभावशीलता में सुधार करने के लिए इस पद्धति का सुझाव क्रिस आर्गिरिस ने दिया था। इसको टी-ग्रुप ट्रेनिंग भी कहते हैं। इसका लक्ष्य है- व्यवहार के अपेक्षित ढंगों के प्रति प्रशिक्षुओं की मनोवृत्तियों का अनुकूलन। ए0आर0 त्यागी के शब्दों में- ''टी-ग्रुप में प्रशिक्षु अपनी स्वभावगत विलक्षणताओं को अपने साथी प्रशिक्षुओं के सामने लाते हैं जो आपसी व्यवहार के द्वारा उनको रगड़कर साफ कर देते हैं। ये प्रशिक्षु अपने पुराने व्यवहार के प्रति सचेत हो जाते हैं जिसका पता उनको अन्यथा कभी नहीं चल पाता और इस प्रकार यह पद्धति उन्हें आत्मविश्लेषण तथा आत्मविकास का अवसर प्रदान करती है।''

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रशिक्षण की कोई भी पद्धति सर्वश्रेष्ठ नहीं है। इसे आवश्यकता समय एवं उद्देश्यों को देखकर ही निर्धारित किया जाना चाहिए। भिन्न-भिन्न देश प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकताओं के अनुकूल जिन विभिन्न पद्धतियों का समावेश कर अपने कार्यक्रमों को संचालित करते हैं। संगोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला, सामूहिक चर्चाएं और क्षेत्र के दौरे इस संदर्भ में काफी आवश्यक हो जाते हैं। पुनश्चर्या और अभिविन्यास पाठ्यक्रम की उपयोगिता भी इस संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. एशेटन कमेटी रिपोर्ट का संबंध किस देश से है?
2. यह किसने कहा कि प्रशिक्षण नये कार्य के लिए अभिनवीकरण है?
3. प्रशिक्षण की यह परिभाषा किसने दी कि ''प्रशिक्षण लोक सेवकों की कार्यक्षमता बढाने का एक सुस्पष्ट प्रयास है।''
4. लोक सेवकों के प्रशिक्षण के उद्देश्यों के बारे में सर्वप्रथम किस रिपोर्ट में बताया गया था?
5. एशेटन कमेटी रिपोर्ट- 1944 में प्रशिक्षण के कितने उद्देश्य बताये गये हैं?
6. प्रशिक्षण की अभिषद(सिंडीकेट) पद्धति का जन्म कहां हुआ?
7. टी-ग्रुप प्रशिक्षण पद्धति किसने प्रदिपादित की?

13.8 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों का प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग बन गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासनिक क्रियाकलाप जटिल और तकनीकी बन गए हैं जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। लोक सेवकों को उपयुक्त

और प्रभावी प्रशिक्षण देने के लिए प्रायः सभी देशों में प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था की गई है। भारत इसका अपवाद नहीं है। स्वतंत्रता के पश्चात नवीनतम उभरती हुई स्थिति के अनुरूप लोक सेवकों के जिम्मेदार और क्रियाशील बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निर्धारित किया गया। प्रशिक्षण एक ऐसा मापदंड है जो लोक सेवकों को अपने सेवाकाल के दौरान किसी न किसी रूप में गुजरना ही पड़ता है जो उनकी क्रियाशीलता और कार्य कुशलता में वृद्धि करता है परंतु लोक सेवकों के प्रशिक्षण की सुविधा और प्रशिक्षण संस्थान की प्रचुरता के बावजूद भारतीय प्रशिक्षण प्रणाली वांछित परिणाम नहीं दे पाई है। इसमें बहुत सारी कमियां हैं, जिसमें समय के अनुसार सुधार लाने की आवश्यकता है। उचित व सफल प्रशिक्षण पर ही प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं सफलता निर्भर है। अत: इस दिशा में सार्थक कदम उठाना नितान्त आवश्यक है।

13.9 शब्दावली

प्रवेश बिंदु- चयन के बाद की अवधि परंतु वास्तविक तैनाती से पहले, मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, परिवीक्षाधीन- वास्तविक तैनाती के शुरुआती एक या दो वर्ष की अवधि, जिसमे प्रशिक्षण भी शामिल है, के दौरान लोक सेवकों को परिवीक्षाधीन अधिकारी कहा जाता है, अभिविन्यास- समय के अनुसार ज्ञान को अद्यतन करना, उपबंध- प्रावधान

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ब्रिटेन, **2.** मैण्डेल ने, **3.** अवस्थी और माहेश्वरी ने, **4.** एशेटन कमेटी रिपोर्ट- 1944, **5.** पांच, **6.** इंग्लैंड के एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज में, **7.** क्रिस आर्गिरिस

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
3. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।

13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

13.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशिक्षण के अर्थ एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. प्रशिक्षण के उद्देश्य एवं प्रशिक्षण के प्रकार का वर्णन कीजिए।
3. प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई- 14 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली, संस्थाऐं एवं मूल्यांकन

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा
14.3 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली
14.4 भारत में प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं
14.4.1 लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी
14.4.2 सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद
14.4.3 प्रशासनिक स्टॉफ कॉलेज, हैदराबाद
14.4.4 राष्ट्रीय ग्राम्य विकास संस्थान, हैदराबाद
14.4.5 भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली
14.4.6 रेलवे स्टॉफ कॉलेज, बड़ोदरा
14.4.7 सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली
14.5 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

प्रशिक्षण, उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्मिकों के ज्ञान और कौशल में वृद्धि करने की एक कला है। प्रशिक्षित कार्मिक किसी भी विभाग या संगठन की एक अमूल्य धरोहर है। किसी कार्य विशेष को कुशलता के साथ करने हेतु कर्मचारियों के ज्ञान, कुशलता, अभिरुचि तथा क्षमताओं में वृद्धि की प्रक्रिया का नाम प्रशिक्षण है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है और इसके कुशल निष्पादन हेतु विशेष ज्ञान और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता होती है। बदलते परिदृश्य में नए मापदंडों पर खरे उतरने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। आज प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। भारत सहित प्रायः सभी देशों में लोक सेवाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के उपयुक्त और प्रभावी प्रशिक्षण हेतु व्यापक प्रबंध किए गए हैं। इस इकाई में लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली, भारत में प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं, प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशिक्षण की अवधारणा के संबंध में जान पायेंगे।
- भारत में प्रशिक्षण की प्रणाली, प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं को समझने में सक्षम हो पाएंगे तथा
- प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कर पाएंगे।

14.1 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा

सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में शिक्षण और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की उपयुक्त योजना का निर्माण आवश्यक हो गया है। नियुक्ति के पश्चात प्रशासकीय क्षमता पर कार्मिकों के प्रशिक्षण का काफी प्रभाव पड़ता है। सरकार के प्रत्येक कार्य के लिए उसके अनुरूप प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। संसदीय प्रजातंत्र की परंपरा के प्रति सम्मान की भावना का विकास एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि लोक सेवकों को दक्ष और कार्य कुशल बनाने के साथ-साथ उन्हें तदनुरूप प्रशिक्षित भी किया जाए। भारत विविधताओं का देश होने के कारण अलग-अलग प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है। ग्रामीण एवं शहरी विभाजन रेखा तथा निरंतर बदलते परिदृश्य में लोक सेवकों का अभिमुखीकरण एक आवश्यक तथ्य है।
प्रशिक्षण की अवधारणा समय के साथ परिवर्तित होती रही है। प्राचीन काल में गुरु-शिष्य परंपरा एक प्रथा थी, इसमें गुरु से स्पष्ट ज्ञान, कार्यकुशलता और कला सीखने के लिए विद्यार्थी अपने घर से दूर गुरुकुल आश्रम में रहते थे तथा विविध प्रकार के शिक्षाओं से प्रशिक्षित होते थे। परंतु यह व्यवस्था केवल समाज के उच्च वर्गों तक सीमित थी। सामान्य नागरिकों का व्यवसाय उनके जन्म और जाति के आधार पर तय होता था तथा उनके परिवार या समुदाय के अनुरूप ही औपचारिक या अनौपचारिक प्रशिक्षण दिया जाता था। निजी क्षेत्र व्यापार और प्रबंध के क्षेत्र में यूरोप में प्रारंभ औद्योगिक क्रांति के पश्चात व्यवस्थित और प्रणाली प्रशिक्षण प्रारंभ हुआ। उद्योग विस्तार के बाद कार्य कुशल और विशेषज्ञ कामगारों की आवश्यकता हुई ताकि कार्यकुशलता और गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके। इस प्रकार प्रशिक्षण की तत्काल आवश्यकता औद्योगिक क्रांति के काल में प्रारंभ हुई। परंतु सामान्य प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण को जरूरी नहीं समझा गया क्योंकि सरकार के कार्य सीमित थे। लोक सेवकों के परीक्षण प्रक्रिया के माध्यम से अनुभव द्वारा सीखने की उम्मीद की जाती थी और यही प्रणाली काफी लंबे समय तक चलती रही। आधुनिक युग में सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलाव के कारण लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का विकास हुआ है। सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई है तथा समय के अनुसार वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति ने जीवन में काफी बदलाव लाए हैं। जिससे शासन के कार्यों में कई गुना वृद्धि हुई है। विकास प्रशासन को चलाने के लिए अत्यंत कुशल कार्मिकों की आवश्यकता है और इसके लिए योजनाबद्ध, प्रयोजनमूलक प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की गई है। जिस कारण प्रत्येक देश में लोक सेवकों को किसी न किसी प्रकार से प्रशिक्षण देने के लिए राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किए गए हैं।

14.3 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली

भारत में लोक सेवकों का प्रशिक्षण संबंधी समस्या और समाधान ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात राज्य के कार्यों में वृद्धि के कारण प्रशासनिक सेवा के सदस्यों के लिए भारत में एक भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। संगठन एवं नियोजन विभाग की स्थापना के बाद प्रशिक्षण को और भी प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया। अनंतर योजना आयोग ने भी एक ऐसे प्रशिक्षण संचालक को नियुक्त करने का प्रस्ताव दिया था जिसे कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम तथा व्यवस्थित प्रशिक्षण कार्यक्रम संगठित करने का दायित्व सौंपा जाए। विशिष्ट सेवाओं के सदस्यों को दिए जाने वाले सामान्य प्रशिक्षण संबंधी ए. के. चंदा के सुझावों को गृह मंत्रालय ने काफी हद तक स्वीकार भी किया था।

1954 में गृह मंत्रालय ने सभी राज्य सरकारों को ऐसी आदेश दिए थे, जिनमें अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं के अधिकारियों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम की प्रबंध संबंधी योजना प्रस्तावित की गई थी। 1957 में इस दिशा में प्रारंभिक कदम उठाया गया तथा ग्रेडपे 6 से 10 तक की नौकरी कर चुके भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज शिमला में पाठ्यक्रम शुरू किया गया। अनंतर गृह मंत्रालय ने भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण विद्यालय, दिल्ली और भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज, शिमला- दोनों को मिलाकर मसूरी में राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की जिसने एक सितंबर 1959 से कार्य आरंभ कर दिया। 2 अक्टूबर 1972 से इसे लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी कहा जाने लगा है।
अखिल भारतीय सेवाओं जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा और केंद्रीय सेवाओं के प्रथम श्रेणी और परिविक्षाधीन अधिकारियों को दो चरणों में संस्थागत शिक्षण दिया जाता है- आधार पाठ्यक्रम और व्यवसायिक पाठ्यक्रम। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सिविल सेवा परीक्षा में चयनित उम्मीदवार जिन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा तथा केंद्रीय सेवा वर्ग आवंटित किया जाता है, इन्हें एक साथ लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी उत्तराखंड में आधारभूत पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण दिया जाता है। आधारभूत पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षु अधिकारियों को लोक सेवाओं की मूलभूत जानकारी देने, उन्हें अभिप्रेरित करने, संविधान और प्रशासन तंत्र को समझने तथा भारतीय परिवेश और मूल्यों को जानने के अतिरिक्त अन्य सेवाओं के साथ समन्वय का भाव दिखाना होता है। आधार पाठ्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षु अधिकारियों को भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजनीतिक सिद्धांत, भारत का संविधान और शासन, लोक प्रशासन विधि, आधारभूत अर्थशास्त्र और जनसंख्या अध्ययन तथा हिंदी भाषा का सामान्य अध्ययन करवाया जाता है।
इस आधारभूत प्रशिक्षण के बाद के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी अकादमी में ही बने रहते हैं जबकि अन्य सेवाओं के अधिकारी अपने विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थानों में अग्रिम प्रशिक्षण हेतु चले जाते हैं। लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी में व्यवसायिक प्रशिक्षण भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए इसके बाद प्रारंभ होता है, जो 26 सप्ताहों तक चलता है। इसके अंतर्गत शिक्षकों को प्रशासनिक सेवाओं के दायित्वों का अध्ययन कराया जाता है।
व्यवसायिक प्रशिक्षण के पहले चरण के पूर्ण होने के बाद प्रशिक्षु अधिकारी आवंटित राज्य में जिला स्तरीय व्यवसाय प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, जो एक वर्ष का होता है। इस दौरान तीन सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण, जिसमें उन्हें राज्य के प्रशासनिक तंत्र से संबंधित सामने महत्वपूर्ण बातें सिखाई जाती है। इसके उपरांत प्रशिक्षु अधिकारियों को वास्तविक प्रशासनिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न कार्यालयों एवं क्षेत्रों में भेजा जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य सामान्य कानून एवं नियम, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय एवं राजस्व प्रशासन, भूमि सुधार और नियोजन तथा विकास का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करना होता है। व्यावहारिक स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त करते समय आने वाली समस्याओं का निराकरण संबंधित जिलाधिकारियों के मार्गदर्शन में किया जाता है। जिला स्तरीय व्यवसायिक प्रशिक्षण के अंतिम चरण में राज्य प्रशासनिक अकादमी में चार सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाता है। जिला स्तरीय प्रशिक्षण के सभी राज्यों के प्रशिक्षु अधिकारी एक बार फिर लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी, मसूरी आते हैं, जहां उनका व्यवसाय प्रशिक्षण का द्वितीय चरण जो अंतिम चरण भी है, प्रारंभ होता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उद्देश्य शारीरिक- मानसिक रूप से तैयारी, विश्लेषण लेखन और संचार क्षमता विकसित करना और जिम्मेदार अधिकारी बनाना होता है। अंत में अधिकारियों की एक लिखित परीक्षाओं होती है, जो अकादमी द्वारा आयोजित की जाती है, जिसका संचालन संघ लोक सेवा आयोग करता है। इस परीक्षा में सफल अधिकारियों को तथा 1 साल या 18 माह का सेवा पूर्ण कर लेने के पश्चात उन्हें सेवा में स्थाई किया जाता है। प्रशिक्षण पूर्ण कर लेने के पश्चात भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का स्थानांतरण एक

जिले से दूसरे जिले में होता है। अवर सचिव के रूप में उन्हें लगभग 18 महीने के लिए सचिवालय भेजा जाता है और और अनंत है चार साल की सेवा के पश्चात में जिलाधिकारी पद प्रदान किया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण सेवा करने अधिकारियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी भारत में की गई है। हितेन माया समिति एवं रामचंद्रन समिति ने भारतीय प्रशासनिक सेवा किए सेवाकालीन प्रशिक्षण का मूल्यांकन किया और इसमें आवश्यक सुधार की अनुशंसा की है।

भारतीय विदेश सेवा के के अधिकारियों को तीन वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का पहला चरण लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी में चार माह की आधारभूत प्रशिक्षण से प्रारंभ होता है। अनन्तर इन प्रशिक्षु अधिकारियों को इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली में चार माह का विदेश नीति, अंतरराष्ट्रीय कार्यप्रणाली, अंतरराष्ट्रीय संबंध और भाषा की जानकारी का प्रशिक्षण दिया जाता है। अधिकारी किसी जिले के प्रशासन से संलग्न होता है, ताकि वह दायित्वों के व्यवहारिक संपर्क में आने योग्य हो जाए। साथ ही कुछ समय के लिए विदेश मंत्रालय के सचिवालय में भी प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में हिंदी और एक देश भाषा तथा ऐसे विषयों के अध्ययन पर बल दिया जाता है। जिसका ज्ञान प्राप्त करना उन्हें आवश्यक समझा जाता है। प्रशिक्षु अधिकारियों को कुछ दिनों के लिए सेना के किसी यूनिट में और भारत दर्शन के लिए भी भेजा जाता है।

भारतीय पुलिस सेवा के प्रशिक्षु अधिकारी लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी में 16 सप्ताह के आधारभूत प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकैडमी, हैदराबाद में प्रशिक्षण हेतु जाते हैं, जहां उन्हें एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है। पहले यह संस्थान माउंट आबू में था लेकिन आंतरिक आपातकाल के दौरान इसे हैदराबाद स्थानांतरित कर दिया गया। अधिकारियों को सर्वप्रथम संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाता है जो चार सप्ताह का होता है। इसके अंतर्गत भारतीय दंड संहिता, अपराधशास्त्र, भारतीय साक्ष्य अधिनियम तथा भारतीय संवैधानिक व्यवस्था की जानकारी दी जाती है। विभिन्न हथियारों का प्रशिक्षण सेंट्रल ऑफ स्कूल टेक्टोनिक्स में दिया जाता है। प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में अपराध, मनोविज्ञान, अपराध का पता लगाने में सहायक वैज्ञानिक उपकरण, भ्रष्टाचार का सामना करने की नीतियों तथा अग्नि और संकट में रक्षा आदि का अध्ययन भी सम्मिलित होता है। एक वर्ष के प्रशिक्षण के उपरांत उन्हें संघ लोक सेवा आयोग द्वारा संचालित एक परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है। तत्पश्चात उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु आवंटित राज्य में सहायक पुलिस अधीक्षक के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है, यहां उन्हें विभिन्न अधीनस्थ पदाधिकारियों के कार्य करके प्रभारी प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। इसके उपरांत ने सहायक पुलिस अधीक्षक नियुक्त किया जाता है।

भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा सेवा में नियुक्त प्रशिक्षु अधिकारियों को शिमला में अपने विभाग के प्रशिक्षण विद्यालय में प्रशिक्षित किया जाता है, जो लेखा परीक्षण एवं लेखा सेवाओं के विविध पहलुओं से संबंधित होता है। इस प्रशिक्षण के अंत में प्रशिक्षु अधिकारियों को उन विषयों की एक विभागीय परीक्षा भी उत्तीर्ण करना होता है, जिसका संबंध उनके कार्यों से होता है। विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात प्रशिक्षु अधिकारियों को सहायक लेखा अधिकारी के पद पर नियुक्त किया जाता है।

भारतीय राजस्व सेवा के अधिकारियों को राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी, नागपुर के प्रशिक्षण विद्यालय में अपने विभागीय कार्यों को अच्छे ढंग से संपादित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इनके पाठ्यक्रम में आयकर कानून तथा परीक्षा, विभिन्न संस्थानों में छापा मारने गए तथा अन्य नियम एवं विनियमों को शामिल किया गया है। इनकी प्रशिक्षण अवधि 18 माह की होती है।

भारतीय रेल सेवा के अधिकारियों को प्रशिक्षण हेतु रेलवे स्टाफ कॉलेज, वडोदरा में नवनियुक्त अधिकारियों को यातायात, परिवहन रेलवे नियम, दुर्घटना राहत विधियों, तथा यात्रियों से संबंधित तथ्यों की जानकारी दी जाती है।

प्रशिक्षण के दौरान इन्हें व्यावहारिकता का भी ज्ञान दिया जाता है। तत्पश्चात इन्हें विविध रेल जोन में भेज दिया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के अलावा अन्य अखिल भारतीय सेवाओं तथा केंद्रीय सेवाओं के लिए नियमित अंतराल पर पुनश्चर्या प्रशिक्षण का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार के प्रशिक्षण भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली; प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज हैदराबाद; राष्ट्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज माउंट आबू; राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान हैदराबाद; भारतीय प्रबंध संस्थान अहमदाबाद इत्यादि संस्थाओं द्वारा समय-समय पर संचालित किए जाते हैं।

14.4 भारत मे प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाऐं

अधिकांश विकासशील देशों की तुलना में भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया लंबी है। ब्रिटिश काल से ही उच्च लोक सेवकों के लिए संस्थागत प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई थी। भारत में सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में वरिन हेस्टिंग्स ने 'प्रशिक्षण' की आवश्यकता अनुभव की। उनके मतानुसार ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं व पद्धतियों आदि का ज्ञान कराने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक था। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हेतु लॉर्ड वेलेजली (1798-1805) ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। तत्पश्चात् 1813 ई में 'हेलिबरी कॉलेज' भी इसी उद्देश्य से स्थापित किया गया। यह सन् 1857 ई तक चलता रहा। इसके बाद लोक सेवकों को ब्रिटिश विश्वविद्यालय कैम्ब्रिज या किसी अन्य में प्रशिक्षण देने की पद्धति आरम्भ की गयी उन्हें भारतीय कानून, भारतीय भाषा, भारतीय राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक इतिहास का प्रशिक्षण प्राप्त करना होता था। एक भारतीय भाषा का ज्ञान होना भी अनिवार्य था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण हुए सरकार के कार्यों में विस्तार के फलस्वरुप लोक सेवकों को प्रणालीबद्ध और अद्यतन प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। लोक सेवकों का प्रशिक्षण आज केंद्र और राज्य सरकारों की कार्मिक नीति का अभिन्न अंग है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग अखिल भारतीय और केन्द्रीय सेवाओं की प्रशिक्षण नीतियां बनाने और उनका समन्वय करने और राज्यत सरकार के कर्मचारियों की क्षमता निर्माण का कार्य भी करता है। केंद्र एवं राज्य सरकारों ने कई प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए हैं, जो लोक सेवकों को समय-समय पर उनके उनके सेवाकाल के दौरान भी सामान्य और व्यवसायिक दोनों प्रकार के प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इन प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या अधिक है। स्वाधीन भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण हेतु निम्नलिखित संस्थान हैं- लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी, सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली, एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद, रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ोदरा, राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्धन, संस्थान, राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी, नागपुर। कुछ महत्वपूर्ण संस्थानों का विवरण निम्न है-

14.4.1 लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी

भारत में उच्च लोक सेवकों के प्रशिक्षण के लिए लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षण केंद्र है। वर्ष 1959 में भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज, शिमला तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण विद्यालय, दिल्ली को संयुक्त कर इस संस्थान की स्थापना की गई थी। 2 अक्टूबर 1972 से इसे लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी नाम दिया गया। यह अकादमी भारतीय सिविल सेवाओं के सदस्यों को सामान्य बुनियादी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शुरुआती स्तर पर प्रशिक्षण प्रदान करती है। अखिल भारतीय एवं केंद्रीय सेवाओं के नवनियुक्त प्रशिक्षु अधिकारियों को लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन संस्थान मसूरी में

चार माह के आधारभूत पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण दिया जाता है और तत्पश्चात वे अपनी-अपनी प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। आधार पाठ्यक्रम का उद्देश्य सामान्य दृष्टिकोण का विकास है तथा मौलिक विषयों से शिक्षा देने के लिए सभी अखिल भारतीय सेवाओं के प्रथम वर्ग के लिए 5 महीने का पाठ्यक्रम आधारित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है।

वर्ष 1969 से भारत सरकार ने भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षण के लिए नया प्रारूप प्रस्तुत किया है, जिसे 'सैंडविच पाठ्यक्रम' अर्थात मिश्रित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है। अधिकारियों, जिनका सेवा का लाभ हो 15 साल हो चुका है, वह छोटे-छोटे पाठ्यक्रम गोष्ठियों, सम्मेलनों आदि में सम्मिलित होते हैं। इन पाठ्यक्रमों का संबंध सामाजिक सुरक्षा, वित्तीय नीति, अंतर विभागीय नियोजन और समन्वय आदि से संबंधित होता है। इन पाठ्यक्रमों के लिए सामान्य और प्राविधिक दोनों प्रकार के अधिकारी आमंत्रित किए जाते हैं। वर्तमान में इस अकादमी में तीन प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है- अखिल भारतीय परीक्षा अधीन अधिकारियों के अंतिम परीक्षा नियमों के अंतर्गत पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए, भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए 1 वर्ष पाठ्यक्रम तथा 10 साल तक के अधिकारियों के लिए सप्ताह का पाठ्यक्रम होता है।

14.4.2 सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद

केंद्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, माउंट आबू, 1975 तक भारतीय पुलिस सेवा के नए नियुक्त अधिकारियों को प्रवेश के समय व्यवसायिक प्रशिक्षण देता था। अब इसका कार्य राष्ट्रीय पुलिस अकादमी हैदराबाद करता है। केंद्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, माउंट आबू अब भारतीय पुलिस सेवा और राज्य पुलिस सेवा दोनों के मध्यवर्ती और वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को पुनःचर्या प्रशिक्षण और सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करता है। यह अकादमी भारतीय पुलिस सेवा के नए अधिकारियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करता है। इस अकादमी का उद्देश्य भारतीय पुलिस के लिए ऐसे अधिकारियों को प्रशिक्षण द्वारा तैयार करना था जो बल का नेतृत्व ईमानदारी समर्पण और जनसेवा की भावना के साथ कार्य करें। केंद्रीय सचिव की अध्यक्षता में वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के रूप में लेकर एक सलाहकार बोर्ड गठित किया जाता है जो भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करता है। यह पुलिस अकादमी भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए बुनियादी पाठ्यक्रम सेवाकालीन प्रबंधन पाठ्यक्रम आयोजित करती है। साथ ही पुलिस और अर्धसैनिक बलों के पुलिस प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए विशेष पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं। अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनुशासन, चरित्र, अपराध शाखा ,व्यवहारिक ज्ञान, विद्रोह और आतंकवाद, आपदा प्रबंधन, आम जनता-पुलिस संबंध पर विशेष बल देती है।

14.4.3 प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद

प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद की स्थापना प्राविधिक शिक्षा संबंधी अखिल भारतीय परिषद की सिफारिश पर 1957 में हुई थी। इंग्लैंड में स्थापित हैनले एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज की तर्ज पर गठित की गई है। सामान्यतया 8 से 15 वर्ष की व्यावहारिक अनुभव के आधार पर हर मनुष्य जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों से संबंधित व्यक्तियों के साथ रहने के कारण अपने कार्य के संबंध में एक अलग स्थिति में सोच कर उससे लाभ उठा सकता है तथा यह भी संभव है कि उसे उच्चतर उत्तरदायित्व के योग्य बनाने हेतु यह एक सर्वोत्तम सफल प्रमाणित शैक्षणिक चरण है। निजी क्षेत्र के प्रशासन सार्वजनिक क्षेत्र के सदस्य प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद में 10-10 की संख्या में सिंडिकेट के रूप में बांट दिए जाते हैं। विभिन्न विषयों के अनुभवी सदस्यों को एक साथ अपने अनुभवों को साझा करने का एक मंच प्रदान किया जाता है। शासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद में इस प्रकार के पाठ्यक्रम के मुख्य अंश संगठनों की संरचना, आंतरिक संबंध और प्रशासन तथा जीवन से संबंधित होते हैं। इन

विषयों में अर्थशास्त्र, आर्थिक क्रियाएं, आर्थिक संस्थाएं, नियोजन और विकास, व्यापारिक संबंध एवं सरकार, संविधान की कार्यप्रणाली, प्रबंधन, सार्वजनिक व्यापारिक लेखा तथा उद्योग जगत से संबंधित सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। प्रशिक्षण प्रणाली सामूहिक चर्चा के आधार पर होती है। विभिन्न सुझावों के आधार पर एक विस्तारपूर्वक रिपोर्ट तैयार की जाती है और इन पर व्यापक चर्चा होती है।

14.4.4 राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान, हैदराबाद

सन् 1956 में स्थापित संस्थान ग्राम विकास प्रशासन के क्षेत्र में नियुक्त उच्च और मध्यम स्तर के लोक सेवकों के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रम में आयोजित करता है तथा ग्राम विकास से के क्षेत्र में यह अनुसंधान कार्य भी संपादित करता है। राष्ट्रीय विकास संस्थान हैदराबाद जून 1958 में इस उद्देश्य के साथ स्थापित किया गया था कि अधिकाधिक संख्या में ऐसे महत्वपूर्ण कर्मचारी तैयार किए जाएं, जो कार्यक्रम के प्रशासकीय एवं समाजशास्त्रीय पहलुओं से परिचित हो। ग्रामीण विकास में अध्ययन-अनुसंधान करना इस संस्था का प्रमुख अंग है। यह ग्रामीण विकास संस्थान पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन करता है, जिसमें आधारभूत जानकारियां प्रदान की जाती है। पाठ्यक्रम में प्रतिभाग करने वाले अधिकारी एवं कर्मचारी अपने विचारों एवं अनुभवों के परस्पर आदान-प्रदान से सामुदायिक विकास कार्यक्रम और समग्र राष्ट्रीय योजना के बीच अंतर संबंध को समझने का प्रयास करते हैं। साथ ही सामुदायिक विकास के लक्ष्य तक पहुंचने में संतुलन और समन्वय के प्रयोग पर भी इस कार्यक्रम में बल दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम सामान्य प्रशासकीय नमूने जैसा संगठित प्रशिक्षण नहीं होता बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य कार्यक्रम में लगे प्रमुख कर्मचारियों में नए विचारों को जगाना और अनुभवों के आधार पर उन्हें बेहतर मंच प्रदान करना होता है। राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद में विकास आयुक्त विकास से जुड़े अन्य अधिकारी शासन के सचिव, उप सचिव, प्राविधिक विकास विभागों के प्रधान एवं क्षेत्रीय पदाधिकारी, आयुक्त, जिलाधीश, अतिरिक्त जिलाधीश, चयनित खंड विकास अधिकारी तथा विविध केंद्र सरकार के मनोनीत अधिकारी और कर्मचारी भी प्रतिभाग करते हैं। यह संस्थान जनप्रतिनिधियों को भी प्रशिक्षित करने का कार्य संपादित करता है। इसके अंतर्गत संसद और विधानमंडल के सदस्य, जिला पंचायत के अध्यक्ष एवं सदस्य, विश्व विद्यालय के प्रतिनिधि एवं अन्य देशों से भाग लेने वाली व्यक्तियों को भी यह प्रशिक्षित करता है।

14.5.5 भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना पॉल एच0ऐपल्बी रिपोर्ट- 1953 की अनुशंसा के आधार पर 1954 में नई दिल्ली में की गई थी। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, लोक प्रशासन में अनुसंधान के अलावा केंद्रीय और राज्य सरकारों के वरिष्ठ और मध्य स्तर के कर्मचारियों के लिए अल्पकालिक अभिविन्यास और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करता है। यह पाठ्यक्रम बड़े स्तर के अधिकारियों के लिए नियमित रूप से संचालित किए जाते हैं जो विशेषीकृत व्यवसायिक पाठ्यक्रम संबंधी विषयों के वरिष्ठ अधिकारियों और विशेषज्ञों के व्याख्यान पर निर्भर करता है। यह संस्थान विविध पाठ्यक्रमों द्वारा लोक सेवकों को लोक प्रशासन के विविध पहलुओं से परिचित कराता है। सामान्यतः केंद्र और राज्य सरकारों की उप सचिव एवं अवर सचिवों की श्रेणी के कर्मचारी इन पाठ्यक्रमों में भाग लेते हैं। मध्य श्रेणी के अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम लगातार संचालित किए जाते हैं जिसमें विचार-विनिमय का अवसर प्रदान करने के अतिरिक्त समस्याओं के संबंध में आधुनिकतम विचारों का आदान-प्रदान भी होता है। इसके साथ ही सामूहिक चर्चा, विचारों के आदान-प्रदान की आधार पर प्रशिक्षण कार्य संपादित किया जाता है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली 1975 से लगातार 9 माह का शिक्षा कार्यक्रम आयोजित करता रहा है जो देश का एकमात्र अनूठा पाठ्यक्रम है।

14.5.6 रेलवे स्टाफ कॉलेज, वड़ोदरा

यातायात परिवहन तथा वाणिज्य विभाग तथा रेलवे लेखा सेवा के लिए नियुक्त कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के अतिरिक्त बड़ोदरा का स्टाफ कॉलेज सी भारत पदाधिकारियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम का आयोजन भी करता है। भारतीय रेलवे लेखा सेवा के नवनियुक्त कर्मचारी भी आने में 2 माह का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व्यवहारिक होता है। इसका सीधा संबंध नवीनतम कार्यप्रणाली से होता है।

14.5.7 सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान, नई दिल्ली

इस संस्थान का पुराना नाम केंद्रीय सचिवालय प्रशिक्षण है जिसकी स्थापना 1948 में की गई थी। केंद्रीय सचिवालय और क्षेत्रीय संगठन के पदाधिकारियों के पदों के लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए संस्थान की स्थापना की गई थी। इसमें संगठन और नीतियां कार्यालय की कार्यप्रणाली वित्तीय नियम और विनियम इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाता है। शिक्षण पूर्ण करने के पश्चात व्यवहारिक प्रशिक्षण के लिए इन कर्मचारियों को विभिन्न मंत्रालय में नियुक्त किया जाता है। उच्च श्रेणी में कार्यरत कर्मचारियों के लिए यह विद्यालय पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का भी आयोजन करता है।

कई केंद्रीय सेवाओं के अलग-अलग शिक्षण संस्थान भी स्थापित है जो अपने लोक सेवकों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। पुलिस, आयकर, लेखा और लेखा परीक्षा, रेलवे, दूरसंचार, विदेश ,व्यापार आदि सेवाओं के क्षेत्र में विभिन्न व्यवसायिक संस्थानों द्वारा उनके संबंधित सेवाओं के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए भी नया पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं। राज्य में इस प्रकार की व्यवस्था विगत कुछ वर्षों में देखने को मिली है। इसके अतिरिक्त कुछ विश्वविद्यालय लोक प्रशासन और सार्वजनिक उद्यम विभाग आदि भी उच्च और मध्यम स्तरीय लोक सेवकों के लिए अल्पकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करते हैं। आयकर प्रशिक्षण विद्यालय, नागपुर; रेलवे स्टाफ कॉलेज, वडोदरा; सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान नई दिल्ली; राष्ट्रीय वन अनुसंधान संस्थान देहरादून; केंद्रीय लेखा परीक्षा और लेखा प्रशिक्षण स्कूल शिमला; अखिल भारतीय स्थानीय स्वशासन संस्थान मुंबई; राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान नई दिल्ली; राष्ट्रीय नागरिक सेवा महाविद्यालय नागपुर एवं प्रशिक्षण संस्थान सहारनपुर; डाक स्टाफ कॉलेज गाजियाबाद; भारतीय प्रबंध संस्थान हैदराबाद, बेंगलुरु, कोलकाता, लखनऊ, इंदौर, कोजिकोंड, चेन्नई; केंद्रीय संस्थान मुंबई; भारतीय राजस्व सेवा प्रशिक्षण संस्थान नागपुर; राष्ट्रीय जन सहयोग और बाल विकास संस्थान, नई दिल्ली; जयपुर लोक प्रशासन संस्थान; हिमालय पर्वतारोहण संस्थान पटियाला; पर्यावरण अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली; विविध क्षेत्रों में भारत के प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान हैं।

14.5 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन

राज्य के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप लोक प्रशासन के कार्यों में भी अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। वर्तमान युग में इस कारण लोक सेवकों की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत जैसे देश में लोक सेवकों को नवीनतम परिवर्तन एवं कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए समय-समय पर यथा अनुरूप प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते रहे हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से कर्मचारियों और अधिकारियों को उनके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि हुई है लेकिन प्रशिक्षण प्रणाली पूरी तरह से आशाओं पर खरी नहीं उतरती है। इसमें बहुत सारी कमियां है जो नीचे वर्णित की गई हैं-

1. प्रथम, भारत जैसे विशाल देश में जहां सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि हुई है। प्रशिक्षण के लिए किए गए प्रबंध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त हैं। वर्तमान प्रशिक्षण सुविधाओं से केवल थोड़े से ही लोक सेवकों को लाभान्वित किया जा सका है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संख्या प्रकार की आवश्यकता

से अधिक वृद्धि हुई है। ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन होने लगा है जो आकर्षक तो प्रतीत होते हैं, लेकिन आवश्यक नहीं होते हैं। इन कार्यक्रमों में प्रशासन की वास्तविक समस्याओं पर सही विचार नहीं होता। बढ़ते महत्व को ध्यान रखते हुए प्रशिक्षण एक व्यवसाय सा प्रतीत होने लगा है।

2. द्वितीय, अखिल भारतीय एवं प्रथम श्रेणी के केंद्रीय और राज्य सेवाओं जैसे उच्च लोक सेवाओं के प्रवेश बिंदु और सेवाकालीन प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाता है। मध्य और निम्न स्तर के कार्मिकों के प्रशिक्षण आवश्यकता की पूर्ति इन कार्यक्रमों से नहीं होती है। निम्न स्तर के कर्मचारियों के लिए अद्यतन सेवाकालीन प्रशिक्षण की रूपरेखा तैयार नहीं की गई है। इसके परिणाम स्वरूप देश के लगभग 80 से 90 प्रतिशत कर्मचारी प्रशिक्षण से वंचित रह जाते हैं।
3. तीसरा, देश में सिविल सेवा के प्रशिक्षण को गंभीरता से नहीं लिया गया है जो पद्धतियां प्रशिक्षण के दौरान अपनाई जाती हैं, वह दूसरे देशों से ली गई होती हैं और भारतीय परिदृश्य में वह उपयुक्त नहीं बैठती। प्रशिक्षणार्थियों का चयन भी सावधानीपूर्वक नहीं किया जाता है। अक्सर प्रशिक्षणार्थियों के चयन में अफसरशाही राजनीति और संरक्षण आदि को महत्व दिया जाता है। प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति सरकार एवं संगठन के लिए लाभदायक होगा, यह सर्वथा सिद्ध नहीं होता। सर्वप्रथम बहुधा ऐसे कर्मचारी प्रशिक्षण के लिए प्रेषित किए जाते हैं, जिनका चयन वैध नहीं होता।
4. चौथा, प्रशिक्षण की विषय वस्तु अक्सर अधिकारी और कर्मचारियों के लिए प्रासंगिक और सार्थक नहीं होती। अधिकांश प्रशिक्षण एजेंसियां प्रशिक्षण कार्यक्रमों और प्रणाली बंधन सेवा विकास की आवश्यकताओं के बीच में कोई समन्वय नहीं रखती। अधिकांश प्रशिक्षण कार्यक्रम लोकतांत्रिक राजनीति तथा विकास प्रशासन की आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ हैं। प्रशिक्षण अधिकतर औपचारिक होता है जिसमें व्यावहारिक ज्ञान बहुत कम होता है। प्रशिक्षण का कार्मिक प्रबंधन से कोई संबंध है अक्सर देखने को नहीं मिलता। प्रायः देखने में आता है कि एक व्यक्ति को जिस क्षेत्र में प्रशिक्षण मिलता है, उसमें उसकी नियुक्ति नहीं होती। प्रशिक्षण में तकनीकी अध्ययन वालों को मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की शिक्षा नहीं दी जाती है और सामान अध्ययन वाले को विज्ञान आदि की जानकारी दी जाती है। इस प्रकार प्रशिक्षणार्थी का बहुमुखी विकास नहीं हो पाता।
5. पांचवा, प्रशिक्षण कार्यक्रम लगभग व्याख्यान पद्धति पर ही बल देता रहा है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम विशेषकर लोक प्रशासन द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्य और चुनौतियों की दृष्टि से व्यावहारिक और उद्देश्य पूर्ण नहीं होते।
6. और अंत में, प्रशिक्षण प्रणाली का देश में शिक्षा और अनुसंधान तथा प्रशिक्षण निष्कर्षों और प्रशासन में दक्षता प्रशिक्षण के प्रभावों का प्रणाली के मूल्यांकन नहीं किया जाता है। आने वाले वर्षों में भारतीय प्रशिक्षण संस्था को सुधारने की काफी आवश्यकता है। लोक सेवकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम विगत कुछ वर्षों से आयोजित की जा रहे हैं उनमें कुछ कमियां प्रतीत होती है।

बदलते परिदृश्य में जिसे उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण के कारण प्रशासन की महत्व अधिक बढ़ा है। प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। कार्यकुशलता, प्रभावशीलता, नैतिकता आदि जटिल एवं चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रशिक्षण को ज्ञान कौशल और अभिवृत्ति में विधि का कारक बनना होगा। साथी लोक सेवकों को नई प्रौद्योगिकी, ज्ञान, सूचना से परिचित होना अत्यंत आवश्यक है। प्रशिक्षण को क्षमता निर्माण का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। लोक सेवकों को दायित्व निर्वहन की योग्य बनाने जनसाधारण के प्रति संवेदनशील बनाने एवं परिवर्तन करने योग्य बनाने के लिए लोक सेवाओं में कार्यकुशलता, मितव्ययिता और प्रभावशीलता लाने के लिए शिक्षण पद्धति का सहारा लिया जाता है। शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए प्रयासों की आवश्यकता है। भारतीय प्रशिक्षण पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम

के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। बौद्धिक गुणों के विकास के साथ ही भारतीय संविधान के निदेशक तत्वों में वर्णित गुणों के विकास पर भी बल दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रशिक्षणार्थी में परस्पर सहयोग की भावना एवं नेतृत्व आदि गुणों का विकास हो सके। प्रशासकों को सेवा काल के दौरान ही अवकाश देकर प्रशिक्षण हेतु भेजा जाना चाहिए। और, निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

कहा जा सकता है कि उचित व सफल प्रशिक्षण पर ही प्रशासनिक कार्यकुशलता निर्भर है। अत: इस दिशा में सार्थक कदम उठाना नितान्त आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न-

8. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी कहाँ स्थापित है?

9. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली की स्थापना कब की गई थी?

10. प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद की स्थापना कब हुई थी?

11. सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी कहाँ स्थापित है?

14.6 सारांश

सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में शिक्षण और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की उपयुक्त योजना का निर्माण आवश्यक हो गया है। प्रशिक्षण की अवधारणा समय के साथ परिवर्तित होती रही है। निजी क्षेत्र व्यापार और प्रबंध के क्षेत्र में यूरोप में प्रारंभ औद्योगिक क्रांति के पश्चात व्यवस्थित और प्रणाली प्रशिक्षण प्रारंभ हुआ। उद्योग विस्तार के बाद कार्य कुशल और विशेषज्ञ कामगारों की आवश्यकता हुई ताकि कार्यकुशलता और गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके। इस प्रकार प्रशिक्षण की तत्काल आवश्यकता औद्योगिक क्रांति के काल में प्रारंभ हुई। भारत के सन्दर्भ में कह सकते हैं कि प्राचीन काल में गुरु-शिष्य परंपरा एक प्रथा थी, जिससे वो विभिन्न प्रकार की शिक्षाओं से प्रशिक्षित होते थे। लेकिन यह समाज के उच्च वर्गों तक सीमित थी। सामान्य नागरिकों का व्यवसाय उनके जन्म और जाति के आधार पर तय होता था। आधुनिक युग में सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलाव के कारण लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का विकास हुआ है। सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई है तथा समय के अनुसार वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति प्रगति ने जीवन में काफी बदलाव लाए हैं। जिससे शासन के कार्यों में कई गुना वृद्धि हुई है।

भारत में लोक सेवकों का प्रशिक्षण संबंधी समस्या और समाधान ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात राज्य के कार्यों में वृद्धि के कारण प्रशासनिक सेवा के सदस्यों के लिए भारत में एक भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। अधिकांश विकासशील देशों की तुलना में भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया लंबी है। ब्रिटिश काल से ही उच्च लोक सेवकों के लिए संस्थागत प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण हुए सरकार के कार्यों में विस्तार के फलस्वरुप लोक सेवकों को प्रणालीबद्ध और अद्यतन प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। लोक सेवकों का प्रशिक्षण आज केंद्र और राज्य सरकारों की कार्मिक नीति का अभिन्न अंग है।

14.7 शब्दावली

उपबंध- प्रावधान, महत्ता- महत्व, कौशल- प्रतिभा या क्षमता, दुरूह- कठिन

14. 8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मसूरी, **2.** 1954 में, **3.** 1957 में, **4.** हैदराबाद

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
6. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।

14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

4. प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कीजिए।
5. भारत मे प्रशिक्षण एजेंसियों और संस्थाओं की कार्यप्रणाली का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई-15 निष्पादन मूल्यांकन

इकाई संरचना

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 निष्पादन मूल्यांकन अर्थ एवं परिभाषा
15.3 निष्पादन मूल्यांकन की विशेषताएं
15.4 निष्पादन मूल्यांकन का उद्देश्य
15.5 मूल्यांकन कौन कर सकता है?
15.6 निष्पादन मूल्यांकन की विधियां
15.6.1 परंपरागत विधियाँ
15.6.1.1 रैंकिंग विधि
15.6.1.2 ग्राफिक स्केल
15.6.1.3 महत्वपूर्ण घटना विधि
15.6.1.4 फोर्स डिस्ट्रीब्यूशन
15.6.1.5 फोर्स चॉइस रेटिंग मेथड
15.6.1.6 समूह मूल्यांकन
15.6.1.7 वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट
15.6.2 आधुनिक विधियाँ
15.6.2.1 उद्देश्य आधारित प्रबंधन
15.6.2.2 व्यावहारिक रूप से आधारित रेटिंग पैमाना
15.6.2.3 360डिग्री फीडबैक
15.6.2.4 मानव संसाधन लेखा विधि
15.7 निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यास प्रश्न का उत्तर
15.11संदर्भ ग्रंथ सूची
15.12 निबंधात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

जब कोई व्यक्ति किसी संगठन में प्रवेश लेता है तो उसे कार्य से संबंधित प्रशिक्षण दिया जाता है। संगठन कार्मिक से अपेक्षा करता है कि कार्मिक दिए गए प्रशिक्षण के अनुरूप कार्य करेगा। प्रदर्शन मूल्यांकन मूलतः यह जानने के लिए किया जाता है कि कार्मिक उसको दिए प्रशिक्षण के अनुरूप कार्य कर रहा है कि नहीं। निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से कार्मिक की नियुक्ति का औचित्य सिद्ध करने में मदद मिलती है कि सच में नियुक्ति कारगर है कि नहीं। यदि कर्मचारी को कार्य निष्पादन में कोई समस्या आ रही है तो उसका पता लगाकर उस समस्या को दूर करने का भी प्रयास किया जाता है। सार्वजनिक सेवा में सरकार के उद्देश्यों को प्राप्त करने में कार्मिक की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कार्मिक ही सरकार की नीतियों को धरातल पर उतारते है।नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिए

कार्य निष्पादन मूल्यांकन आवश्यक हैं जिससे कार्मिक के कार्य निष्पादन पर निगरानी रखी जा सकती है। कार्य मूल्यांकन से इस संगठन को यह ज्ञात होता है कि कौन सा कार्मिक संगठन और सरकार के लक्ष्यों के अनुरूप कार्य कर रहा है और कौन सा कार्मिक नहीं कर रहा है। ऐसे में जो कार्मिक लगातार संगठन के कार्य मापदंडों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं उनको पुरस्कृत करना आवश्यक हैवही जो कार्मिक संगठन के उद्देश्यों के अनुरूप कार्य नहीं करते उनके व्यवहार को सुधारने का प्रयास किया जाता है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते है कि निष्पादन मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जो न केवल संगठन के लिए लाभप्रद है बल्कि कार्मिकों के लिए भी लाभप्रद है। इसके माध्यम से कार्मिकों के कार्य सम्बन्धी व्यवहार की समीक्षा की जाति है। संगठन के लिए उपयोगी व्यवहारों को प्रोत्साहित किया जाता है एवं उन व्यवहारों को हटाने का प्रयास किया जाता है जो संगठन के लिए उपयोगी नहीं है । इसके माध्यम से यह पता लगाया जा सकता है कि किस कार्मिक को पदोन्नत करने की आवश्यकता है और किस कार्मिक को उसकी योग्यतानुसार स्थानांतरित करने की।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप-

- निष्पादन मूल्यांकन के अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकेंगे।
- निष्पादन मूल्यांकन की विशेषताओं एवं उद्देश्यों के संबंध में जान सकेंगे।
- निष्पादन मूल्यांकन की विधियों के संबंध में जान सकेंगे।
- केंद्रीय सिविल सेवा में निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

15.2 निष्पादन मूल्यांकन अर्थ एवं परिभाषा

निष्पादन मूल्यांकन के अर्थ को अगर हम लोग सरल शब्दों में समझने का प्रयास करें तो कार्मिक के पद से अपेक्षित कार्यों का मूल्यांकन ही निष्पादन मूल्यांकन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारी के कार्य व्यवहार और प्रदर्शन का मूल्यांकन पूर्व निर्धारित मापदंडों के अनुरूप किया जाता है। यह वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ दोनों प्रकार से निष्पादित होता है अर्थात इसके मापदंड मात्रात्मक होने के साथ-साथ गुणात्मक भी होते हैं।यह प्रक्रिया का मुख्य रूप से कार्मिक के प्रदर्शन में सुधार लाने का प्रयास करती है-

वेन्डेल फ्रेंच(Wendey French) के अनुसार, "यह एक औपचारिक और व्यवस्थित प्रक्रिया है,जिसके द्वारा कर्मचारियों के कार्य निष्पादन को निर्धारित मानको के सापेक्ष मापा जाता है एवं कार्मिक को इसकी जानकारी दी जाती है।"

फ्लिप्पो(Flippo)के अनुसार, "निष्पादन मूल्यांकन किसी कर्मचारी की वर्तमान नौकरी से संबंधित मामलों में उसकी उत्कृष्टता और बेहतर नौकरी के लिए उसकी क्षमता का व्यवस्थित आवधिक और निष्पक्ष मूल्यांकन है।"

3.सी.डी. फिशर, एल.एफ. स्कोनफेल्ड और जे.बी.(C.D. Fisher, L.F. Schoenfeldt and J.B. Shawऔर Shaw)के अनुसार, "निष्पादन मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी कर्मचारी द्वारा किसी निर्दिष्ट अवधि के दौरान संगठन में किए गए योगदान का मूल्यांकन किया जाता है।"

हेयल सी का मानना है "यह प्रशासन के प्रयोजनों के लिए उस नौकरी की आवश्यकताओं के संदर्भ में कर्मचारियों के प्रदर्शन और योग्यता का मूल्यांकन करने की प्रक्रिया है,जिसके लिए उन्हें नियुक्त किया जाता है। इसमें नियुक्ति,पदोन्नति के लिए चयन, वित्तीय पुरस्कार प्रदान करना और अन्य कार्य शामिल हैं, जिनके लिए समूह के सदस्यों के बीच विभेदक व्यवहार की आवश्यकता होती है जो सभी सदस्यों को समान रूप से प्रभावित करने वाले कार्यों से अलग होता है''

उपरोक्त विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर ये कहा जा सकता है कि निष्पादन मूल्यांकन योग्यता, दक्षता और क्षमता को आंकने की एक विधि है जिसके द्वारा न केवल पिछली घटनाओं का विश्लेषण किया जाता है बल्कि भविष्य की योजनाओं का निर्धारण भी किया जाता है।

15.3 निष्पादन मूल्यांकन की विशेषताएं

मूल्य निष्पादन का अर्थ और परिभाषा को समझाने के उपरान्त आईये इसकी विशेषताओं का अध्ययन करते हैं-

1. यह एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। इसमें लक्ष्यों के निर्धारण से मापन तक और फिर सुधार तक की एक निश्चित प्रक्रिया होती है।
2. यह भविष्योन्मुखी है। इसमें न केवल वर्तमान कार्य की समीक्षा की जाती है बल्कि भविष्य के प्रदर्शन में भी सुधार करने का प्रयास किया जाता है।
3. यह विकासोन्मुखी है। इसमें कर्मचारियों की दक्षता और कौशल में सुधार करने का प्रयास किया जाता है ।
4. यह एक नियमित प्रक्रिया है,इसमें कार्मिक के कार्यो की नियमित समीक्षा की जाती है।
5. यह सुधार केंद्रित है। इस प्रक्रिया में कार्मिक के कार्य में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।
6. इस प्रणाली में यह निश्चित होता है कि निष्पादन मूल्यांकन क्यों किया जाना है, जैसे- पदोन्ति, वेतन वृद्धि, प्रशिक्षण की आवश्यकता एवं स्थानांतरण आदि।
7. यह परिणामोन्मुखी प्रक्रिया है। इसमें कार्मिक की नकारात्मक और सकारात्मक दोनों परिणाम से उसे अवगत कराया जाता है।
8. यह एक संवाद आधारित प्रक्रिया है। इसमें प्रबंधन और कार्मिक अथवा वरिष्ठ और अधीनस्थ के मध्य निरंतर संवाद बना रहता है। परिणाम आने के बाद भी संवाद के माध्यम से परिस्थितियों को समझने का प्रयास किया जाता है।

15.4 निष्पादन मूल्यांकन का उद्देश्य

निष्पादन मूल्यांकन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं, आईये इनकी विस्तार से चर्चा करते हैं-

1. **एकीकरण-** कार्य निष्पादन के द्वारा कार्मिकों के व्यक्तिगत उद्देश्यों का संगठन के उद्देश्यों के साथ एकीकरण करने का प्रयास किया जाता है। कर्मचारी के व्यक्तिगत उद्देश्य क्या होते हैं, जैसे- वेतन वृद्धि ,पदोन्नति, पहचान आदि और संगठन के उद्देश्य हैं- उत्पादकता में वृद्धि, नीति का कुशल क्रियान्वयन, गुणवत्ता में वृद्धि आदि। कार्मिकों को यह विश्वास होना चाहिए कि निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से अगर संगठन को पता चलता है कि कार्मिक ने संगठन के उद्देश्यों (उत्पादकता में वृद्धि, नीति का कुशल क्रियान्वयन, गुणवत्ता में वृद्धि) को प्राप्त करने के लिए प्रयास कर रहा है तो संगठन अथवा नियोक्ता पुरस्कार के रूप में उनके व्यक्तिगत उद्देश्यों (वेतन वृद्धि , पदोन्नति, पहचान) की पूर्ति करने का प्रयास करेगा।
2. **पदोन्नति-** निष्पादन मूल्यांकन से यह जानने में मदद मिलती है कि कौन सा कार्मिक उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रहा है और कौन निकृष्ट। जो कार्मिक लगातार उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रहे हैं उनको पदोन्नत किया जाता है वही जो कार्मिक लगातार निकृष्ट प्रदर्शन कर रहे हैं अथवा संगठन द्वारा निर्धारित मानकों के तहत कार्य नहीं कर रहे हैं, तो ऐसे कार्मिकों को दंड के योग्य माना जा सकता है।
3. **पुरस्कार-** निष्पादन मूल्यांकन द्वारा बोनस एवं पुरस्कार पाने योग्य मापदंडों का निर्धारण किया जा सकता है। जो कार्मिक उन मापदंडो के अनुरूप कार्य करता है उनकी पुरस्कार के योग्य मन जाता है। पुरस्कृत होने पर कार्मिक का मनोबल हमेशा ऊँचा बना रहता है।

4. **प्रशिक्षण-** निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से कार्मिकों की कमियों को जानकर उसका निदान प्रशिक्षण के द्वारा किया जा सकता है। कार्मिक को भर्ती के बाद एवं समय-समय प्रशिक्षण दिया जाता है, लेकिन कुछ कार्मिक प्रशिक्षण के बाद भी कार्य के कुछ पहलू को समझ नहीं पाते हैं। ऐसे में अगर संगठन को यह महसूस होता है कि पुनः प्रशिक्षण के बाद कार्मिक के कार्यशैली में सुधार किया जा सकता है तो प्रशिक्षण के माध्यम से संगठन यह प्रयास करता है।
5. **स्थानांतरण-** निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से यह भी जाना जा सकता है कि कार्मिक किस क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं और किस क्षेत्र में उनकी रुचि है।अतः कार्मिक का स्थानांतरण उसके विशेषज्ञता और रुचि के पद पर किया जा सकता है।
6. **निगरानी-** इसका उद्देश्य कार्मिकों की कार्य प्रगति पर निगरानी भी रखना है कि कार्मिक निश्चित समय में कार्मिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में कार्य कर रहा है कि नहीं।इसके माध्यम से कार्य में सुधार लाया जा सकता है।
7. **विकास-** जब कोई कार्मिक किसी संगठन में प्रवेश करता है तो उसके लिए संगठन के उद्देश्यों को जानने के साथ-साथ उसके कार्य के लक्ष्यों एवं कार्य की गुणवत्ता के मापदंडों को जानना भी अत्यंत आवश्यक है जो कि निष्पादन मूल्यांकन प्रक्रिया के तहत उन्हें भली भांति से बताया जाता है। मापदंडों के अनुरूप कार्य करने पर उनके कार्यात्मक दक्षता और कुशलता के साथ मनोबल भी बढ़ता है।
8. **संवाद-** यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे संगठन और कार्मिक के मध्य एक बेहतर संवाद स्थापित किया जाता है। इसके द्वारा कर्मचारियों को अपना पक्ष रखने का मौका दिया जाता है। जिससे वह यह बता सके कि उसे संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति करने में अथवा अपने कार्य के निष्पादन में किन किन दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है।
9. किसी भी संगठन के लिए ये बहुत आवश्यक है कि वहाँ सारे कार्य समन्वय सहयोग और शांति से हो। इसलिए ये बहुत आवश्यक है शिकायतों की पहचान की जा सके एवं उसका निदान करने का प्रयास किया जा सके।

15.5 मूल्यांकन कौन कर सकता है?

मूल्यांकन कौन कर सकता है? आईये इसको निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं-

1. **पर्यवेक्षक द्वारा मूल्यांकन-** किसी कार्मिक के कार्य निष्पादन के मूल्यांकन का सबसे उपयुक्त साधन यह है कि उसका मूल्यांकन उस व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जो उसके कार्यों पर प्रत्यक्ष निगरानी रखता है। यह तरीका इसलिए अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि इसके द्वारा पर्यवेक्षक को कार्मिक के कार्यशैली, दक्षता, उत्तरदायित्व का ज्ञान होता है। इसलिए वह कार्मिक के प्रदर्शन का निष्पक्ष और यथार्थ मूल्यांकन कर सकता है।
2. **अधीनस्थों द्वारा मूल्यांकन-** इस पद्धति में अधीनस्थ कर्मचारी अपने वरीष्ठ अधिकारी या पर्यवेक्षक के कामकाज का मूल्यांकन करते हैं। अधीनस्थों को वरिष्ठ अधिकारी के नेतृत्व क्षमता का ज्ञान होता है। यह तरीका इसलिए उपयोगी है क्योंकि संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह बहुत आवश्यक है कि अधीनस्थ कर्मचारी को सही निर्देशन मिले। सही निर्देशन मिलने पर अधीनस्थों द्वारा संगठन के उद्देश्यों को पूर्ण करने में सुगमता होती है। साइमन ने भी कहा था कि सत्ता ऊपर से नीचे नहीं बल्कि नीचे से ऊपर चलती है। उन्होंने स्वीकार्यता के क्षेत्र(Zone of acceptance) के तहत यह बताया कि अधीनस्थों का आदेशों को स्वीकार्य करने का एक क्षेत्र होता है, अगर आदेश उस क्षेत्र से बाहर होता है तोअधीनस्थ वरिष्ठ अधिकारी के आदेशों को मानने से मना कर सकता है। किसी अधिकारी के लिए यह बहुत

महत्वपूर्ण है कि अधीनस्थ उसके आदेशों का पालन करे अन्यथा इससे संगठन के गतिविधियों पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है।

3. **समान पदधारी (Peer) द्वारा मूल्यांकन-** जब किसी कार्मिक का मूल्यांकन उसके साथ कार्य करने वाले समान स्तर एवं समान वेतनमान वाले कार्मिक करते है तो इसे समान पदधारी (Peer) द्वारा मूल्यांकन कहा जाता है। यह तरीका तब कारगर होता है जब प्रबंधक अथवा पर्यवेक्षक के पास इतना समय या संसाधन न हो, जिससे वह प्रत्येक कार्मिक के कार्य का मूल्यांकन कर सके। इस स्थिति में यह ज्यादा उपयोगी है कि समान पदधारी (Peer) खुद अपने साथी के कार्य का मूल्यांकन करे। समान पदधारी (Peer) किसी साथी कार्मिक के कार्य एवं कार्य के प्रति उसके व्यवहार को अच्छे तरह से समझता है। समान पदधारी (Peer) द्वारा मूल्यांकन का सबसे बड़ा नुकसान यह है कि इससे संगठन में कार्मिकों के बीच आपसी द्वेष बढ़ सकता है।
4. **स्वयं मूल्यांकन-** इस तरीके में कार्मिक स्वयं का मूल्यांकन करता है। इस तरह के मूल्यांकन का सबसे ज्यादा फायदा यह है कि इससे कार्मिक अपनी कमियों को को स्वयं खोजता हैं और भविष्य में उसमें सुधार कर सकता हैं। इस प्रक्रिया से उसका आत्मविश्वास भी बढ़ता है।
5. **बाहरी व्यक्ति द्वारा मूल्यांकन-** इस मूल्यांकन में कार्मिक के कार्य का मूल्यांकन उनके विभाग के बाहर के व्यक्ति द्वारा किया जाता है। यह मूल्यांकन किसी प्रकार के पक्षपात से रहित होते हैं क्योंकि बाहरी व्यक्ति से कार्मिक का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क नहीं होता है। स्वतंत्र मूल्यांकन में ये तरीका अत्यंत कारगर है।
6. **360 डिग्री मूल्यांकन-** इस मूल्यांकन में कार्मिक के कार्य का मूल्यांकन ना केवल वह स्वयं करता है,बल्कि उसके वरीष्ठ अधिकारी,सहकर्मी,अधीनस्थ,जनता अथवा ग्राहक और अन्य निकाय के लोग भी करते हैं। इस तरह के मूल्यांकन में कार्मिक के बहुआयामी कार्यों मूल्यांकन होता है जैसे-
    - कार्मिक सहकर्मी के साथ सहयोग और समन्वय के साथ कार्य कर रहा है कि नहीं ,
    - वरीष्ठ अधिकारी को रिपोर्ट कैसे कर रहा है कि नहीं,
    - कार्मिक द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी को निर्देश सही तरीके से दिया जा रहा है कि नहीं, जिससे वह नीति का क्रियान्वयन सही ढंग से कर सकें।

15.6 निष्पादन मूल्यांकन की विधियां

यहां निष्पादन मूल्यांकन की विधियों को दो प्रकारों में बांटा गया है- परंपरागत विधियां और आधुनिक विधियां। आईये इनका विस्तार से अध्ययन करते हैं-

15.6.1परंपरागत विधियां

सर्वप्रथम परम्परागत विधि को निम्नांकित बिन्दुओं से समझने का प्रयास करते हैं-

15.6.1.1 रैंकिंग विधि(Ranking Method)

रैंकिंग विधि कार्य निष्पादन का एक ऐसा तरीका है, जिसमें कर्मचारियों को उनके प्रदर्शन और कुशलता के आधार पर एक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। जैसे- जो व्यक्ति सबसे अच्छे तरह से कार्य का निष्पादन करता है उसे सबसे ऊपर रखा जाता है, फिर उससे कम अच्छे को उसके नीचे। इस प्रकार उन्हें एक पदानुक्रम में स्थापित किया जाता है। इसमें शिक्षार्थियों को 1,2,3,4,5,6,….,के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है जो शिक्षार्थी सबसे अच्छा है वो नंबर एक पर आएगा, जो सबसे खराब है वह अंतिम पायदान पर आएगा।

15.6.1.2 ग्राफिक स्केल विधि(Graphic Scale Method)

यह प्रदर्शन मूल्यांकन की वह विधि है जिसमें कार्मिकों की कुशलता एवं प्रदर्शन को विभिन्न स्केलों पर मापा जाता है। किसी संगठन में किसी कार्मिक का मूल्यांकन करना है तो उसका मूल्यांकन निम्नलिखित गुणों के आधार पर होगा- 1. कार्य की गुणवत्ता, 2. कार्य की मात्रा, 3. सहकर्मियों के व्यवहार, 4. सहकर्मियों के साथ संचार और 5. अनुशासन।

इन गुणों का मापन निम्नलिखित स्केल के आधार पर किया जाता है- 1. बहुत खराब, 2. खराब, 3. अच्छा, 4. बहुत अच्छा और 5. अत्यंत अच्छा।

उदाहरण के रुप में हम समझ सकते है जैसे कोई कार्मिक A है, उसके कार्य की गुणवत्ता की जाँच उपरोक्त स्केल के आधार पर की जाएगी कि उसका कार्य अत्यन्त अच्छा था कि बहुत अच्छा कि अच्छा कि खराब कि बहुत खराब।

15.6.1.3 महत्वपूर्ण घटना विधि(Critical Incident Method)

इस विधि के अंतर्गत कार्मिक के कार्य निष्पादन के दौरान के महत्वपूर्ण घटनाक्रम को नोट किया जाता है। यह सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकता है। इन विभिन्न घटनाक्रमों का जोड़ मूल्यांकन के दौरान प्रस्तुत किया जाता है।

15.6.1.4 फोर्स डिस्ट्रीब्यूशन मैथड(Force Choice Distribution Method)

इस प्रकार की विधि में कार्मिकों को निश्चित प्रतिशत के अनुसार बांटा जाता है। जैसे मान लेते हैं कि कोई कंपनी A है जिसमें 100 कार्मिक हैं। उसमें यह निर्धारित किया जाता है कि 10 प्रतिशत कार्मिकों को शीर्ष प्रदर्शनकर्ता में रखा जाएगा, जो कि प्रमोशन पात्र होंगे। वहीं उसके बाद 30 प्रतिशत कार्मिकों को अच्छे प्रदर्शनकर्ता में रखा जायेगा जो कि आर्थिक पुरस्कार के पात्र होंगे। वहीं उसके बाद 40 प्रतिशत कार्मिकों को संतोषजनक प्रदर्शनकर्ता में रखा जाता है। अंतिम 20 प्रतिशत को कमजोर प्रदर्शनकर्ता की श्रेणी में रखा जाएगा, जिनकों प्रशिक्षण देकर उनके कार्य निष्पादन में सुधार किया जाएगा।

श्रेणी प्रतिशत विवरण- उत्कृष्ट 10 प्रतिशत प्रमोशन, अच्छा 30 प्रतिशत आर्थिक पुरस्कार, संतोषजनक 40 प्रतिशत और कमजोर 20 प्रतिशत, सुधार की आवश्यकता(प्रशिक्षण)

15.6.1.5 फोर्स चॉइस रेटिंग मैथड (Force Choice Rating Method)

इस विधि में व्यक्तिगत पक्षपात को दूर करने का प्रयास किया जाता है, क्योंकि इसमें मूल्यांकनकर्ता को यह नहीं पता होता है कि किस गुण के चयन पर कार्मिक को कितने अंक प्राप्त होंगे।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए किसी कार्मिक का मूल्यांकन सकारात्मक और नकारात्मक गुणों के आधार पर करना है तो मूल्यांकनकर्ता को सकारात्मक और नकारात्मक गुणों में से किन्ही दो का चुनाव करना है। गुणों के समक्ष मूल्य पहले से ही अंकित हैं, लेकिन इन अंकित मूल्यों का अंदाजा मूल्यांकनकर्ता को नहीं है। मूल्यांकनकर्ता जिन गुणों को चुनाव करता है, उसके समक्ष अंकित मूल्य जो कर्मचारियों को दिए गए हैं वे कार्मिकों को प्राप्त होते हैं। यह मैथड कहता है कि हम मुल्यांकन व्यवहार के दो आधारों पर करते हैं-

पहला- सकारात्मक व्यवहार- 1. समय पर कार्यपूर्ण करना, 2. ग्राहक/जनता से अच्छा व्यवहार और 3. नियमित उपस्थिति।

दूसरा- नकारात्मक व्यवहार- 1.कार्य की गुणवत्ता में कमी, 2.सीखने में रुचि नहीं और 3.केवल आदेश पर कार्य करना।

15.6.1.6 समूह मूल्यांकन(GroupAppraisal)

यह एक ऐसी निष्पादन मूल्यांकन विधि है जिसमें कर्मचारी के कार्य का मूल्यांकन एक अधिकारी नहीं करता बल्कि तीन चार लोगों का एक समूह करता है। इस समूह में तत्काल पर्यवेक्षक के साथ साथ अन्य वरीष्ठ अधिकारी, साथी कर्मचारी या अन्य अधीनस्थ भी शामिल होते हैं। कभी-कभी एक कर्मचारी उन पहलुओं तक नहीं पहुँच पाता जहाँ एक से ज्यादा कर्मचारी पहुँच जाते हैं। एक से ज्यादा लोगों की राय को ज्यादा प्रमाणिक माना जाता है।

15.6.1.7 वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट(Annual confidential Report)

निष्पादन मूल्यांकन की इस विधि के अंतर्गत हर वर्ष कार्मिक के निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है। इसमें कर्मचारियों के कार्य की कुशलता,योग्यता और क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार के मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य कार्मिकों को उनकी कमियां बताकर उनके व्यवहार को नियंत्रित करना है। कार्मिकों के नकारात्मक प्रविष्टियों से कार्मिकों को अवगत कराया जाता है। जिससे वो समय रहते अपने नकारात्मक कमियों को दूर कर सकें। यदि कार्मिक रिपोर्ट से संतुष्ट नहीं हैं तो वह अपील भी कर सकता है। इस प्रकार के मूल्यांकन में गोपनीयता देखने को मिलती है। गोपनीयता के कारण कार्मिकों को यह पता नहीं चल पता है कि उसका मूल्यांकन किस आधार पर किया गया है, इसमें कार्मिकों कोसिर्फ ग्रेड का पता चलता है कि उसका प्रदर्शन अच्छा है या संतोषजनक। पूरी प्रक्रिया का पारदर्शी होना अत्यंत आवश्यक जिससे कार्मिकों को यह ज्ञान हो सके की आखिर किन मापदंडों के आधार उसका मूल्यांकन किया जाना है।

15.6.2 निष्पादन मूल्यांकन की आधुनिक विधियाँ

निष्पादन मूल्यांकन की आधुनिक विधियों को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर समझते हैं-

15.6.2.1 उद्देश्य आधारित प्रबंधन(Management by Objective)

उद्देश्य आधारित प्रबंधन वह प्रक्रिया है, जिसमें कर्मचारी के उद्देश्यों का एकीकरण संगठन के उद्देश्यों के साथ किया जाता हैऔर उ से प्राप्त करने की योजना बनाई जाती है। योजना बनाने के बाद कार्मिकों को स्पष्ट कार्य एवं दायित्व का वितरण किया जाता है। दिए गए दायित्वों के आधार पर नियमित मूल्यांकन किया जाता है। जो कार्मिक अच्छा प्रदर्शन करता है उसे पुरस्कार दिया जाता है और जिसका प्रदर्शन खराब होता है, उसके व्यवहार एवं कार्यशैली में सुधार करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रक्रिया से कार्मिकों को आत्म मूल्यांकन करने में मदद मिलती है, साथ ही वह कार्य में सुधार भी कर सकते हैं। इससे कार्मिकों का व्यक्तिगत विकास भी होता है। इस विधि से निचले स्तर के कार्मिक एवं प्रबंधन परस्पर सहयोग एवं समन्वय के साथ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।
उद्देश्य आधारित प्रबंधन की प्रक्रिया है(पीटर ड्रूकर के MBO प्रक्रिया चक्र के अनुसार) -

1. **संगठन के उद्देश्यों को तय करना-** इस चरण में संगठन के उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है या उनको पुनर्निर्धारित किया जाता है।
2. **संगठन के उद्देश्यों से कर्मचारियों को अवगत कराना-** जब संगठन अपने उद्देश्यों का निर्धारण कर देता है तो यह बहुत आवश्यक है कि उन उद्देश्यों से कर्मचारियों को अवगत कराया जाए। यह बहुत आवश्यक है कि कर्मचारियों को यह ज्ञान हो कि संगठन उनसे क्या चाहता है और उन उम्मीदों को पूरा करने के लिए उन्हें क्या करना है।
3. **लक्ष्यों का निर्धारण-** इस चरण में संगठन के प्रबंधक और कार्मिक मिलकर संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभागीय और व्यक्तिगत लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं। जब कर्मचारी स्वयं लक्ष्यों के निर्धारण में

सहयोग करते हैं तो उन्हें ज्यादा जिम्मेदारी और प्रेरणा महसूस होती है। वो जानते हैं कि क्यों यह लक्ष्य प्राप्त करना संगठन के लिए आवश्यक है।

4. **कार्य प्रगति की निगरानी करना-** किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य निष्पादन की निगरानी रखना अत्यंत आवश्यक है। यह देखना अत्यंत आवश्यक है कि कार्मिक निर्धारित मानको और गुणवत्ता के साथ कार्य कर रहे हैं कि नहीं। अगर कार्य-निष्पादन में उनको किसी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है तो उसको दूर करने का प्रयास किया जाता है। इस चरण में यह देखने का प्रयास किया जाता है कि कार्मिक अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के दिशा में आगे बढ़ रहा है कि नहीं।
5. **इनाम या सुधार-** इस चरण में कार्मिकों के कार्य का मूल्यांकन किया जाता है और ये देखा जाता है कि कार्मिक ने तय किए गए लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कितना प्रयास किया है। यदि कार्मिक ने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अच्छा प्रदर्शन किया है तो उसे पुरस्कार दिया जाता है अगर उसका प्रदर्शन अच्छा नहीं होता है तो उसके कार्य में सुधार करने का प्रयास किया जाता है।

15.6.2.2 व्यावहारिक रूप से आधारित रेटिंग पैमाना(Behaviorally Anchored Rating Scales)

यह निष्पादन मूल्यांकन का ऐसा तरीका है जिसमें यह देखा जाता है कि कार्मिक ने उसको दिए गए दायित्व के मुताबिक कार्य किया है कि यहाँ पर मुख्य रूप से कार्मिक का व्यवहार देखा जाता है। इस विधि में सर्वप्रथम किसी पद के कार्यों की पहचान की जाती है। फिर उन कार्यों के प्रति कार्मिकों के अच्छे इसे लेकर खराब व्यवहारों को नोट किया जाता है एवं उनके व्यवहार को स्केल में अंकित मूल्य की समक्ष रखा जाता है।

उदाहरण के लिए, लेखपाल का कार्य गांव में जमीन की माप करना और रिपोर्ट को सही तरीके से अपडेट करना। इस कार्य के लिए व्यावहारिक रूप से आधारित रेटिंग पैमाना(Behaviorally Anchored Rating Scales)-

स्कोर	लेखपाल का व्यवहार
5	लेखपाल भूमि की समय पर माप करता है और रिकॉर्ड अपडेट करके उसके नकल किसान को उपलब्ध कराता है।
4	लेखपाल माप समय पर करता है लेकिन अपडेट करने में देरी करता हैं और मांगने पर नकल उपलब्ध कराता है।
3	माप में देरी करता है और किसान को बार बार दफ्तर के चक्कर लगाना पड़ता है और रिकॉर्ड अपडेट करने में देरीकरता है ।
2	शिकायत के बाद माप करता है लेकिन अपडेट करने में काफी देरी करता है, जैसे 4-5 सप्ताह
1	माप को करने के लिए रिश्वत की अपेक्षा करता है।माप में जानबूझकर त्रुटि करता है।

इस प्रणाली के द्वारा नायब तहसीलदार और तहसीलदार के लिए ये जानना आसान हो जाता है कि किस लेखपाल का प्रदर्शन किस प्रकार का है।

15.6.2.3 -360 डिग्री फीडबैक

इस प्रकार के मूल्यांकन में कार्मिक का समग्र मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन की शुरुआत 1940 के दशक में जर्मन सेना द्वारा की गई थी। उस समय सैनिकों का मूल्यांकन इस विधि से किया जाता था। इस विधि में मूल्यांकन निम्नलिखित लोगों द्वारा किया जाता है- 1. स्वयं मूल्यांकन, 2. उच्चाधिकारियों द्वारा, 3. समान पदधारी (Peer) द्वारा, 4. अधीनस्थ द्वारा, 5. ग्राहक या जनता द्वारा फीडबैक, 6. अन्य संबंधित पक्षों द्वारा फीडबैक।

समग्र मूल्यांकन का लाभ ये है कि- 1. समग्र मूल्यांकन द्वारा कर्मचारियों को प्रदर्शन के बारे में बहुआयामी समझ विकसित होती है। 2. इसमें व्यक्तिगत पक्षपात की संभावना कम होती है। 3. इस प्रकार की मूल्यांकन से

प्रमाणिकता पारदर्शिता पढ़ती है। 4. इसके माध्यम से कर्मचारी को प्रदर्शन में होने वाली कमी का एक बहुआयामी दृष्टिकोण मिलता है।

समग्र मूल्यांकन की सीमायें भी हैं-1. इस प्रकार के मूल्यांकनमें समय की खपत होती है। और 2. प्रशासनिक रूप से जटिल प्रक्रिया है।

15.6.2.4 मानव संसाधन लेखा विधि (Human Resource Accounting Method)

इस प्रकार के मूल्यांकन का विचार 1691 में सर विलियम पेटी (Sir William Petty) ने प्रस्तुत किया था। परंतु इसका वास्तविक विकास 1960 के दशक में 'रेंसिस लिकर्ट' द्वारा प्रारंभ हुआ। इस प्रकार के मूल्यांकन में मानव को एक संसाधन के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार के मूल्यांकन में कर्मचारियों के प्रदर्शन का मूल्यांकन लागत और योगदान के रूप में किया जाता है। अर्थात मनुष्य को एक संसाधन के रूप में देखा जाता है। लागत से तात्पर्य यह के कार्मिक के ऊपर संगठन ने कितना खर्चा किया गया है, जैसे- वेतन, भत्ते, प्रशिक्षण एवं अन्य लाभ। योगदान से तात्पर्य हैं कि कार्मिक ने संगठन के लिए मौद्रिक रूप से क्या योगदान दिया है। प्रदर्शन का मापन योगदान से लागत को घटाकर किया जाता है। यहाँ यह देखने का प्रयास किया जाता है कि योगदान का मूल्य लागत से कितना अधिक है। प्रदर्शन=योगदान- लागत।

यह विधि पारदर्शी होती है और इसके द्वारा प्रदर्शन आसानी से मापा जा सकता है। इस विधि का एक नुकसान यह होता है कार्मिक के ऊपर निरंतर प्रदर्शन का दबाव बना रहता है।

15.7 निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया (Performance Appraisal Process)

निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को निम्नांकित बिन्दुओं से समझते हैं'

1. **लक्ष्य निर्धारण-** मूल्यांकन प्रक्रिया में सर्वप्रथम यह निर्धारित करना आवश्यक है कि संगठन कार्मिक से क्या उम्मीद करता हैं अर्थात किसी निश्चित समयकाल में जिसमें कार्मिक का मूल्यांकन होना है। उस समय काल में संगठन कार्मिक से क्या उम्मीद करताहै। संगठन की यही उम्मीद ही लक्ष्य है। लक्ष्यों का निर्धारण मुख्यतः संगठन के उद्देश्यों, कार्मिक के कुशलता और क्षमता को ध्यान में रखकर किया जाता है।
2. **मापदंड निर्धारण-** प्रशासन में किसी भी कार्मिक के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए उन बिंदुओं का निर्धारण अत्यंत आवश्यक है जिनके द्वारा कार्मिक अपना कार्य निष्पादन कुशलता एवं दक्षता के साथ करता है और उनके अभाव में कार्य निष्पादन की कुशलता एवं दक्षता में गिरावट आती है। उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित बिंदुओं के तहत मापदंडों को समझा जा सकता है।
   कार्मिक समय पर आता है या नहीं
   - कार्मिक फाइलों का निपटारा समय परकरता है या नहीं।
   - कार्मिक द्वारा नियमों का पालन किया जाता है कि नहीं।
   - कार्मिक सहकर्मियों के साथ सहयोग एवं समन्वय के साथ कार्य करता है कि नहीं।
   - कार्मिक अपने अधीनस्थों को सही तरीके से निर्देशित करता है कि नहीं।
3. **मानको का संप्रेषण-** इस चरण में कार्मिकों को यह बताया जाता है कि संगठन आपका मूल्यांकन किन-किन मापदंडों के आधार पर करेगा। यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि कार्मिकों को कार्य के उन व्यवहारों का ज्ञान हो जिसके आधार पर उनका मूल्यांकन किया जाना है। मापदंडों का संप्रेषण बहुत ही स्पष्टता के साथ होना चाहिए, जिसमें किसी भी प्रकार की विरोधाभास न हो।
4. **वास्तविक प्रदर्शन का मापन-** इस चरण में तय मानकों के अनुरूप कार्मिकों के कार्य का मापन किया जाता है।मापन मुख्यता निरीक्षण, सांख्यिकी रिपोर्ट , मौखिक रिपोर्ट , लिखित रिपोर्ट जैसेतथ्यों आधार पर

किया जाता है।क्लर्क ग्रेड के स्तर के कार्मिकों के लिए वस्तुनिष्ठ मापन किया जाता है। वही मैनेजर और प्रशासनिक अधिकारियों के लिए व्यक्तिपरक मापन का प्रयोग किया जाता है।

5. **तुलना एवं विश्लेषण-** इस चरण में कार्मिको के प्रदर्शन की तुलना निर्धारित मानकों के साथ की जाती है और देखा जाता है कि कार्मिकों का प्रदर्शन निर्धारित मानको के अनुरूप है अथवा नहीं। अगर प्रदर्शन निर्धारित मानकों के अनुरूप नहीं होता है तो यह जानने का प्रयास किया जाता है कि कार्मिक का व्यवहार निर्धारित मानकों से कितना दूर है और इसके पीछे कौन-कौन से कारण विद्यमान हैं। मापन का परिणाम जो हो उसको कार्मिकों के साथ साझा करके उनके अनुभवों को जानने का प्रयास किया जाता है। अगर परिणाम नकारात्मक हैं तो कमियों को जानने का प्रयास करना चाहिए।
6. **सुधारात्मक कदम-** कार्मिक के द्वारा अपना पक्ष रखने के बाद सुधारों का निर्धारण किया जाता है कि कार्मिक के कार्य निष्पादन के किस क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता है। इसके लिए दो प्रकार के कदम उठाए जा सकते हैं-तत्कालिक सुधार जिसमें निर्देश देना ,व्यवहार सुधरना और दूसरा मूलभूत सुधार जिसमें प्रशिक्षण देना और भूमिका में बदलाव करना।

अभ्यास प्रश्न-

1. निष्पादन मूल्यांकन के परंपरागत विधि के प्रमुख उदाहरणों का उल्लेख कीजिए।
2. निष्पादन मूल्यांकन के आधुनिक विधि के प्रमुख उदाहरणों का उल्लेख कीजिए।
3. निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को बताइए।

15.8 सारांश

निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम सेसंगठन और कार्मिक का विकास करने का प्रयास किया जाता है। प्रदर्शन मूल्यांकन में लक्ष्यों का निर्धारित किया जाता है जिससे कार्मिक द्वारा किए जाने वाले कार्य में स्पष्टता आती है कि वास्तव में कर्मचारी को क्या करना है।कार्य के दौराननियमित समीक्षा से संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में निरंतरता बनी रहती हैएवं वर्ष के अंत में संपूर्ण मूल्यांकन होता है। निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया में अनेक समस्याएं भी देखने को मिलती है। अमूमन यह देखा जाता है कि मूल्यांकनकर्ता अनिच्छुक रूप से मूल्यांकन कार्य को संपन्न करता है ,अंतिम तिथिसे पूर्व जल्दबाजी में निष्पादन मूल्यांकनकी प्रक्रियापूर्ण करता है एवं अपने व्यक्तिगत पसंद न पसंद के हिसाब मूल्यांकन करता है।सरकारी विभागों में होने वाले मूल्यांकन में अमूमन गोपनीयता के साथ साथ अपारदर्शिता देखने को मिलती है। निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया यदिपारदर्शीएवं निष्पक्ष हो तो ये कार्मिकों के अंदर विश्वास और मनोबल को जन्म देती है।निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को अधिक से अधिक विकासोन्मुखी बनाना चाहिए इससे संगठन कीउत्पादकता में वृद्धि होती है।मूल्यांकन प्रक्रिया औपचारिक एवं नियंत्रणकारी होने से कार्मिकों के अंदर रोष उत्पन्न होता है।

15.9 शब्दावली

निष्पादन- किसी कार्य को पूर्ण करने की क्रिया को निष्पादन कहते है।

मूल्यांकन- किसी कार्य कोजांचने की प्रक्रिया को मूल्यांकन कहते है। इसके द्वारायह देखा जाता है कि वास्तव में कार्य कैसा हुआ है अच्छा कि बुरा।

कार्मिक- वह व्यक्ति जो किसी संस्थाया संगठन में कार्य करता हो, उसे कार्मिक बोलते है।

एकीकरण- एक जैसे गुणों वाले चीजों को मिलाकर एक करना, एकीकरण कहलाता है।

फीडबैक- जब कोई हमे यह बताता है कि हमने कोई कार्य या व्यवहार कैसा कियाहै,अच्छा या बुरा तो उसे फीडबैक कहते है।

15.10 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. रैंकिंग विधि,ग्राफिक स्केल, महत्वपूर्ण घटना विधि,फोर्स डिस्ट्रीब्यूशन,फोर्स चॉइस रेटिंग मेथड,समूह मूल्यांकन
2. उद्देश्य आधारित प्रबंधन ,बिहेवरियल एंकर ऑड रेटिंग स्केल,360 डिग्री फीडबैक ,मानव संसाधन लेखा विधि
3. निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया
लक्ष्य निर्धारण-मापदंड निर्धारण-मानको का संप्रेषण-वास्तविक प्रदर्शन का मापन-तुलना एवं विश्लेषण-सुधारात्मक कदम

15.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Goel, S. L., & Rajneesh, S. (2002). Public personnel administration: Theory and practice. Deep & Deep Publications Pvt. Ltd.
2. Mathis, R. L., & Jackson, J. H. (2008). Human resource management (12th ed.). Thomson South-Western.
3. Rao, V. S. P. (2008). Personnel management concepts (MBA 2nd Year, Human Resources). Bharathiar University, School of Distance Education.
4. Kataria, S. (2012). प्रशासनिक चिन्तक [Administrative thinkers] (7th rev. & enl. ed.). National Publishing House.
5. Sharma, Y. (Ed.). (n.d.). Personnel management and industrial psychology (Course: PGDLL-04). Vardhaman Mahaveer Open University.
6. Durai, P. (2012). Human resource management. Dorling Kindersley (India) Pvt.Ltd.,Pearson
7. Ibrahim, S. A. S. (n.d.). Principles of personnel management (M.Com III Semester, Course Code: 31033). Alagappa University, Directorate of Distance Education.
8. Jaiswal, B. (2020, April 1). Traditional and modern methods of performance appraisal. Department of Library and Information Science, Lucknow University.

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. निष्पादन मूल्यांकन की परंपरागत विधियों की व्याख्या कीजिए।
2. निष्पादन मूल्यांकन की आधुनिक विधियां की व्याख्या कीजिए।
3. निष्पादन मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए ,इसके उद्देश्यों का विश्लेषण कीजिए।
4. निष्पादन मूल्यांकन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ,इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. किसी संगठन में मूल्यांकन किसके द्वारा किया जा सकता है? विश्लेषण कीजिए।

नौकरशाही
[BUREAUCRACY]

नौकरशाही, जिसे **कर्मचारीतन्त्र** या **अधिकारीतन्त्र** या **लाल फीताशाही** भी कहते हैं, कोई नई व्यवस्था नहीं है। वास्तव में, इसका जन्म तो उसी समय हो गया था जब प्राचीन काल में विशाल साम्राज्यों की स्थापना हुई थी। विशाल साम्राज्य को बनाए रखने के लिए और प्रशासन की सभी क्षेत्रों पर पकड़ रखने के लिए अधिकारियों की औपचारिक नियुक्तियों, उनके पदों में संस्तरण, उनके दायित्वों और अधिकारों के स्पष्टत: विभाजन आदि के निर्धारण की संगठित पद्धति का विकास हुआ। जगत प्रसिद्ध **कौटिल्य** के **'अर्थशास्त्र'** में नौकरशाही का स्पष्ट विवरण है, परन्तु जिस रूप में नौकरशाही को आज हम देखते हैं उसका विकास औद्योगीकरण के साथ-साथ हुआ है। प्राचीन मिस्र और रोम में भी नौकरशाही की विद्यमानता के प्रमाण मिलते हैं, परन्तु यह प्राचीन नौकरशाही पैतृक-प्रशासन (Patrimonial administration) था जहाँ प्रशासक के व्यक्तिगत विचार, भावनाएँ व मिजाज पर शासन होता था। आधुनिक नौकरशाही पूर्णत: अवैयक्तिक व्यवस्था है। पूँजीवाद और प्रजातन्त्र के विस्तार ने आधुनिक 'नौकरशाही' को संगठन का अपरिहार्य रूप बना दिया है। मैक्स वेबर ने आधुनिक नौकरशाही को अपने अध्ययन का विषय बनाया, उसकी सैद्धान्तिक अवधारणा का विकास किया उसके तत्त्व व लक्षण बताए तथा उसके गुण और दोषों का विश्लेषण किया। मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही का विवेचन समाजशास्त्रीय चिन्तन के इतिहास में शास्त्रीय उपलब्धि के रूप में माना जाता है। वेबर के नौकरशाही सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करने से पहले हम सर्वप्रथम मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित नौकरशाही की परिभाषा पर विचार करेंगे।

नौकरशाही का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Bureaucracy)

वेबर ने नौकरशाही को अग्रलिखित दो रूपों में परिभाषित किया है—

(1) कानूनी सत्ता के रूप में—इस रूप में नौकरशाही 'कानून द्वारा स्थापित अवैयक्तिक व्यवस्था' (Legally established impersonal order) है जिसमें व्यक्ति पद की सत्ता का प्रयोग इस आधार पर करते हैं कि उन्हें अपने पद की सत्ता के दायरे में आदेश देने की औपचारिक वैधता प्राप्त है।"

(2) एक संगठन के रूप में—संगठन के रूप में नौकरशाही "एक संस्तरणबद्ध संगठन है जिसकी रचना तार्किक ढंग से बहुत-से ऐसे व्यक्तियों के कार्यों के समीकरण के लिए की गई है जो वृहद् स्तर पर प्रशासनिक दायित्वों व संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में लगे हैं।"

इस प्रकार, वेबर के लिए नौकरशाही कानून द्वारा स्थापित, औपचारिक व संस्तरित पदों की एक वह अवैयक्तिक व्यवस्था है जो प्रशासनात्मक दायित्वों की पूर्ति और संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए स्थापित की जाती है।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि नौकरशाही संगठन अथवा प्रशासन का एक विशेष रूप अथवा प्रणाली है। **वेबर** के शब्दों में, "विशुद्ध कर्मचारीतन्त्रीय शासन प्रत्येक कार्य के पीछे तार्किकता के आधार पर पर्यावलोकन करने लायक आधारों की एक प्रणाली है अर्थात् मानकों के अन्तर्गत निर्णय लेने अथवा साधनों एवं साध्यों की गणना करने की प्रणाली है।"

संक्षेप में, **वेबर** ने कहा है, "नौकरशाही प्रशासन का मौलिक अर्थ है ज्ञान के आधार पर नियन्त्रण करना। इसकी यही विशेषता इसे विशिष्ट रूप से तार्किक बनाती है।"

नौकरशाही के प्रमुख तत्त्व
(Major Elements of Bureaucracy)

मैक्स वेबर के अनुसार नौकरशाही में निम्नलिखित तत्त्व निहित होते हैं—

(1) संगठन के उद्देश्य के लिए आवश्यक नियमित क्रियाओं को पदानुसार कर्त्तव्यों के रूप में वितरित किया जाता है।

(2) पदों के संगठन में संस्तरण का सिद्धान्त अपनाया जाता है अर्थात् हर निचला पद अपने से ऊँचे पद के नियन्त्रण व निरीक्षण में रहता है।

(3) नौकरशाही के कार्यकलापों का संचालन पूर्व परिभाषित व स्पष्ट नियमों के अनुसार होता है और जो भी मूर्त मामला सामने आता है उनका निपटारा इन नियमों के आधार पर किया जाता है।

(4) एक आदर्श पदाधिकारी अपने कर्त्तव्यों का पालन औपचारात्मक अवैयक्तिकता से करता है अर्थात् बिना किसी भावावेश या घृणा के करता है।

(5) पदाधिकारियों की नियुक्ति उनकी तकनीकी योग्यता एवं एक विशेषज्ञ के रूप में उनके ज्ञान के आधार पर की जाती है। वे पूरे समय के लिए कर्मचारी होते हैं, जिनका निश्चित वेतन-क्रम आदि होता है। यह नौकरी ही उनके लिए जीवन-व्यवसाय (Career) होता है। इसलिए उनकी उन्नति और समृद्धि अपने पद के कुशल संचालन में निहित है।

(6) नौकरशाही व्यक्तिगत जीवन और दफ्तरी जीवन को बिलकुल पृथक् कर देती है। अधिकारी निजी लाभ के लिए अपने पद का प्रयोग नहीं कर सकता। संगठन के किसी भी भाग पर उसका निजी स्वामित्व नहीं होता है। इसीलिए **वेबर** ने कहा है, "नौकरशाही अधिकारिक गतिविधि को व्यक्तिगत जीवन के क्षेत्र से अलग (पृथक्) कर देती है।"

राइनहार्ड बैण्डिक्स नौकरशाही के तत्त्वों को एक वाक्य में समेटते हुए लिखते हैं कि, "(1) सरकारी कार्य की निरन्तरता; (2) निश्चित नियमों के द्वारा सत्ता की सीमितता; (3) इसके कार्यान्वयन का निरीक्षण; एवं (4) पद और पदाधिकारी का भेद; तथा (5) सरकारी कार्य के प्रलेखीय आधार के बिना इस प्रकार की वैधानिक सत्ता की प्रणाली नहीं बन सकती जिसमें सत्ता का कार्यान्वयन अधिनियमित मानकों के अध्यारोपण पर आधारित हो।"

वास्तव में, आज के युग में नौकरशाही सार्वजनिक व निजी दोनों ही क्षेत्रों में पाई जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र में इसे 'नौकरशाही प्रशासन' कहते हैं, जबकि निजी क्षेत्र में इसे नौकरशाही प्रबन्ध कहा जाता है। कॉलेज, विश्वविद्यालय, चिकित्सालय, सैनिक संगठन, यहाँ तक कि धार्मिक संगठनों में भी यही पदक्रम वाली दफ्तरी व्यवस्था पाई जाती है। इसलिए वेबर ने इसे आधुनिक समाज में घटित परिवर्तन की प्रक्रिया भी कहा है।

नौकरशाही की प्रमुख विशेषताएँ
(Major Characteristics of Bureaucracy)

आधुनिक नौकरशाही में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं—

(1) नियमों का महत्त्व—नौकरशाही में पदाधिकारियों के कार्य नियमों द्वारा होते हैं तथा ये नियम अव्यक्तिगत होते हैं। इन नियमों में स्थायित्व तथा निरन्तरता पाई जाती है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि नौकरशाही में विभिन्न पदाधिकारियों के कार्य नियमों द्वारा स्पष्ट रूप से परिभाषित होते हैं तथा कार्यों में स्पष्ट विभाजन पाया जाता है। नौकरशाही को एक ऐसा संगठन कहा जा सकता है जिसमें व्यक्तियों की अपेक्षा पदों से जुड़े नियमों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इन नियमों का पालन सभी अधिकारी समान रूप से करते हैं जिसके कारण इस संगठन में स्थायित्व बना रहता है।

(2) स्पष्ट एवं निश्चित कार्य-क्षेत्र—नौकरशाही में प्रत्येक अधिकारी की सत्ता तथा दायित्व का क्षेत्र सीमित होता है। वास्तव में, नौकरशाही में कार्य-कुशलता तथा दक्षता के आधार पर श्रम-विभाजन पाया जाता है जिसमें प्रत्येक सदस्य का कार्य-क्षेत्र पूर्णत: स्पष्ट रूप से परिभाषित होता है। नौकरशाही में अधिकारियों की भर्ती प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर होती है।

(3) पदों में संस्तरण—नौकरशाही को कार्यों का स्तरीकृत संगठन कहा जा सकता है अर्थात् इसमें विभिन्न पद उच्चता तथा निम्नता के क्रम में संगठित रहते हैं परन्तु निम्नता से उच्चता की ओर अपील करने की छूट होती है। यदि किसी अधिकारी को किसी तरह की शिकायत करनी है तो वह अपने से उच्च अधिकारी से कर सकता है। पदों में संस्तरण होने के बावजूद ये पद एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए होते हैं तथा इनमें केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है।

(4) तकनीकी नियमों अथवा आदर्श प्रतिमानों के आधार पर अधिकारियों के व्यवहार पर नियन्त्रण—नौकरशाही में सभी अधिकारियों के पदों के कार्य तकनीकी नियमों द्वारा नियन्त्रित होते हैं अर्थात् कोई भी अधिकारी मनमाना व्यवहार नहीं कर सकता, अपितु उसे नियमों के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है। नौकरशाही में उच्च पदों पर नियुक्त अधिकारियों में अपने से निम्न पदों पर कार्य कर रहे अधिकारियों के कामों की देख-रेख का अधिकार होता है तथा यदि अनिवार्य हो तो वह ऐसा अनुशासन समिति द्वारा कर सकते हैं।

(5) प्रशासनिक पदाधिकारियों का उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से पूर्ण पृथक्करण—प्रशासनिक पदाधिकारी ही उत्पादन के साधनों अथवा प्रशासनिक साधनों पर एकाधिकार नहीं रखते अपितु इसमें अन्तर होता है। यदि ऐसा नहीं है तो नौकरशाही में तार्किकता तथा निष्पक्षता पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं की जा सकती।

(6) बाहरी अंकुश की कमी—नौकरशाही संगठन बाहरी दबावों तथा अंकुश से मुक्त होना चाहिए ताकि नियमों के अनुसार निष्पक्ष रूप से सभी पदाधिकारी अपनी सीमाओं के अन्दर कार्य कर सकें। यदि बाहरी अंकुश होगा तो सही निर्णय लेने की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है।

(7) पदों के एकाधिकार का अभाव—नौकरशाही में पदों पर किसी एक व्यक्ति का एकाधिकार नहीं होना चाहिए तथा संगठन को आवश्यकतानुसार अधिकारियों को स्थानान्तरित करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। नियमों का पालन न करने पर पद की अवनति तथा क्षमतापूर्वक कार्य करने पर पदोन्नति की भी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे एकाधिकार समाप्त हो जाए।

(8) नियमों, आदेशों तथा निर्णयों का लिखित रूप—नौकरशाही के सभी नियम, आदेश तथा निर्णय लिखित होते हैं तथा किसी भी प्रकार के मौखिक आदेश इत्यादि नहीं होते। हर निर्णय को तथा आदेश को लिखित रूप में बताया जाता है तथा इनका रिकार्ड रखा जाता है। यह व्यवस्था प्रशासनिक कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने तथा पक्षपातरहित बनाने के लिए होती है। इसी विशेषता के आधार पर कुछ लोगों ने नौकरशाही संगठन को लाल फीताशाही प्रवृत्ति को जन्म देने वाला संगठन भी कहा है।

(9) पदों पर नियुक्ति—पदों पर नियुक्ति या तो प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर या विशेष योग्यता वाले डिप्लोमा, डिग्री, या प्रमाणपत्र के आधार पर की जाती है।

(10) वेतन, पदोन्नति आदि की स्पष्टता—पदाधिकारी अपने काम के एवज में निश्चित वेतन पाते हैं। पद-संस्तरण की भाँति वेतन-क्रम भी एक संस्तरण में होता है।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त नौकरशाही की कुछ और विशेषताएँ भी हैं; जैसे— अधिकारियों का अपने कार्य पालन की स्थिति में उत्पन्न कठिनाइयों में उचित रूप से संरक्षण, अधिकारियों के वेतन के रूप में निश्चित पुरस्कार तथा पद समाप्ति के पश्चात् पेन्शन इत्यादि।

मैक्स वेबर का कहना है कि इन विशेषताओं के आधार पर नौकरशाही आधुनिक समाज के बड़े प्रशासनिक संगठन के तार्किक तथा कुशल अभिकरण के रूप में कार्य करती है। वेबर इस बात पर बल देते हैं कि नौकरशाही के संगठन में एक नियमित, अनुशासित तथा कुशल व्यवस्था पाई जाती है।

नौकरशाही के सामाजिक परिणाम
(Social Consequences of Bureaucracy)

वेबर ने कर्मचारीतन्त्र का विश्लेषण इसके सामाजिक परिणामों की दृष्टि से भी किया है। उनकी गहन और पैनी दृष्टि ने इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों पर विचार किया। इन्हीं दोनों पक्षों पर मैक्स वेबर के विचारों को अग्रांकित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

(अ) नौकरशाही के सकारात्मक परिणाम
(Positive Consequences of Bureaucracy)

मैक्स वेबर के अनुसार नौकरशाही ने निम्नलिखित रूप से समाज की प्रगति में योगदान दिया है—

(1) प्रशासन को प्राविधिक श्रेष्ठता प्रदान करना—नौकरशाही संगठन के किसी भी अन्य स्वरूप की तुलना प्राविधिक दृष्टि से श्रेष्ठ है। अवैयक्तिक नियमों द्वारा निर्दिष्ट होने के कारण नौकरशाही कार्यवाही की सामान्य विश्वसनीयता एवं गण्यता को बढ़ा देती है। इसी प्रणाली के अन्तर्गत कार्य अधिक सूक्ष्मता से, तेजी से, मितव्ययिता से तथा बिना अनावश्यक विवाद के सम्पन्न होता है। नौकरशाही के युग का आदर्श विशेषज्ञ है, न कि एक परिशीलित व्यक्ति।

(2) प्रजातन्त्र के लिए अनिवार्य—मैक्स वेबर का उचित ही कहना है कि ज्यों-ज्यों प्रजातन्त्र का विस्तार होता है, नौकरशाही पर आधारित प्रशासन व्यवस्था की अपरिहार्यता भी बढ़ती जाती है। प्रजातन्त्र स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रशासन के स्थान पर कानून द्वारा स्थापित सरकारी सेवाओं में लगे अधिकारियों द्वारा स्थापित होता जाता है। मैक्स वेबर की इन्हीं भावनाओं को **जूलियन फ्रायण्ड** (Julien

Freund) ने बड़े सुन्दर शब्द दिए हैं, "यह सामान्यत: स्वीकार कर लिया गया है कि प्रजातन्त्रीकरण और नौकरशाहीकरण साथ-साथ चलते हैं।"

(3) प्रशासन एवं राजनीतिक-नियन्त्रण की पृथकता सम्भव—नौकरशाही एक ऐसी प्रशासनिक संगठन की मशीन है जो स्वचालित है। इसके द्वारा यह सम्भव हो जाता है कि राजनीतिक नेतृत्व व्यवस्थापिका एवं नीति-निर्माण के कार्यों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर सके। साथ ही, कर्मचारीतन्त्र पर भी राजनीतिक नेतृत्व अपना नियन्त्रण रख सकता है ताकि वह मनमानी पर न उतर आए। ऐसा होना इसलिए भी सम्भव है क्योंकि नौकरशाही प्रशासन को स्थायित्व एवं निरन्तरता प्रदान कर देती है। यह व्यक्ति-विशेष पर आधारित नहीं है। राजनीतिक नेतृत्व तो बदल भी सकता है, परन्तु यह संगठन अपना कार्य निरन्तर करता रहता है।

(4) शिक्षा के महत्त्व एवं विभेदीकरण को प्रोत्साहन—नौकरशाही की आवश्यकताओं ने शिक्षा के स्वरूप को भी प्रभावित किया है। स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में विभिन्न क्षेत्रों में कर्मचारियों की माँगों को देखते हुए शिक्षण के पाठ्यक्रम व प्रशिक्षण के तरीके बदलने पड़े। डिप्लोमा, सर्टिफिकेट्स, डिग्री आदि का महत्त्व बढ़ गया है। कर्मचारी के चयन के लिए ये बड़े सहायक सिद्ध होने लगे हैं तथा नए-नए विषय विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाने लगे हैं।

(5) एक नई तार्किक, वैज्ञानिक व अवैयक्तिक संस्कृति का उदय—प्रतियोगी परीक्षाओं पर आधारित, नियमों की औपचारिकता द्वारा निर्दिष्ट, मानवीय भावनाओं से तटस्थ, दफ्तरी कार्यप्रणाली एक नई संस्कृति को विकसित कर रही है। यह सेवा को एक जीवन-भर का व्यवसाय बनाती है। इस भाँति, व्यवसायियों (Professionals) का एक नया वर्ग समाज में बन जाता है। समय-सारणी में आबद्ध, औपचारिक एवं लिखित नियमों की प्रतिष्ठा से विभूषित, योजनाबद्ध जीवन शैली का विकास होता है। प्रत्येक कदम लागत और लाभ के विश्लेषण के आधार पर उठाया जाने लगता है।

(6) प्रशासन के साधनों का एकत्रीकरण—ज्यों-ज्यों नौकरशाही संगठनों का आकार बढ़ता जाता है त्यों-त्यों इनको चलाने के साधनों की स्वतन्त्रता व्यक्तियों और समूहों से ले ली जाती है और इसे शासन करने वाले अल्पसंख्यक समूह के अधिकार में दे दिया जाता है। सच तो यह है कि शासन के आधुनिक साधन व्यक्तियों की आर्थिक क्षमता से बाहर हैं। **राइनहार्ड बैण्डिक्स** के शब्दों में, "एक समय था जब उत्पादन, प्रशासन एवं विद्वत्ता के साधन घर से अभिन्न अंग थे, पर ज्यों ही एकत्रीकरण की प्रक्रिया बढ़ी, ये घर से अलग हो गए। फलत: आधुनिक नौकरशाही प्रशासन की विशेषता परिवार से व्यापार, पदाधिकारी से पद और विद्वान् से गवेषणा की सुविधाओं को अलग करने पर निर्भर हैं।" नौकरशाही प्रशासन के साधनों के एकत्रीकरण को प्रोत्साहित करती है।

(7) आर्थिक-सामाजिक अन्तरों को पाटना (Levelling)—नौकरशाही एक ऐसी संगठन प्रणाली है जो आर्थिक और सामाजिक भेदों को दूर कर सामाजिक समतलीकरण करती है। वस्तुनिष्ठ शैक्षिक प्रमाणपत्रों व औपचारिक परीक्षा के आधार पर विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ की जाती हैं। परिवार, वंश या आर्थिक-सम्पन्नता ऐसी नियुक्तियों को प्रभावित नहीं करती। जो भी व्यक्ति योग्यता के आधार पर किसी पद पर आसीन होता है उसके अधीन सभी कर्मचारी उसके निर्णय मानेंगे। इस प्रकार, नौकरशाही सामाजिक अन्तरों को पाटती है।

इस भाँति, मैक्स वेबर ने नौकरशाही के प्रकाशमान पक्ष का वर्णन किया और यह बताया कि ज्यों-ज्यों समाज में औद्योगीकरण का विकास हो रहा है और राज्य की सार्वजनिक क्रियाओं का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है; त्यों-त्यों नौकरशाही संगठन की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। **मैक्स वेबर** के शब्दों में, "यह बात चर्च, राज्य, सेना, राजनीतिक दल, आर्थिक संस्थान यहाँ तक कि ऐच्छिक समितियों एवं क्लबों के लिए भी उतनी ही सत्य है......चाहे लोग नौकरशाही के अभिशापों के सम्बन्ध में कितनी भी शिकायत क्यों न करें, क्षण भर के लिए यह सोचना केवल भ्रम-मात्र होगा कि दफ्तरों में कार्यरत अधिकारियों को माध्यम बनाए बिना किसी भी क्षेत्र में निरन्तर प्रशासनात्मक कार्य किया जा सकता है।"

लेकिन मैक्स वेबर नौकरशाही के खतरों के प्रति भी बेखबर नहीं थे। वे प्रशासन की इस व्यवस्था में अन्तर्निहित अवगुणों के प्रति भी जागरूक थे। उन्होंने उसके उन परिणामों का भी वर्णन किया है जो सामाजिक व्यवस्था में अकार्य के रूप में घटित हो रहे हैं। इन नकारात्मक परिणामों के विश्लेषण में मैक्स वेबर ने अपनी प्रखर मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

(ब) नौकरशाही के नकारात्मक परिणाम

(Negative Consequences of Bureaucracy)

मैक्स वेबर ने नौकरशाही के निम्नलिखित अवगुणों का भी वर्णन किया है जिनके कारण इसके सामाजिक व्यवस्था के लिए नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं—

(1) रचनात्मक निजी पहल में बाधक—औपचारिक नियमों का कठारेता से पालन और अपने पद के दायित्वों तक ही स्वयं को सीमित रखने का अभ्यास व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का गला घोंट सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति की स्वत: स्फूर्त सूझ-बूझ, रचनात्मकता और पहल करने के साहस जैसी शक्तियों का विकास अवरुद्ध हो जाता है। व्यक्ति की कर्मचारी के रूप में केवल अपनी नौकरी को सुरक्षित रखने की इच्छा बलवती हो जाती है। निर्णय के साथ दायित्व आता है अत: वह विचाराधीन मामले को टालता जाता है। कर्मचारी एक नीरस और उबाऊ दिनचर्या में फँसा रहता है।

(2) आत्मविहीन विशेषज्ञों का उदय—नियमों एवं विधियों की अवैयक्तिकता ऐसे विशेषज्ञों को उत्पन्न कर सकती है जो अपने सीमित कार्य-क्षेत्र में सिमटे समग्र संगठन के लक्ष्यों को भूल जाएँ। यह भी सम्भावना हो सकती है कि नियमावली व प्रक्रिया ही साध्य बन जाए। वेबर ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि दफ्तरी आचरण की अवैयक्तिकता की प्रवृत्ति 'आत्मविहीन विशेषज्ञों' को जन्म देने की होती है।

(3) भीरु अधिकारी आपातकालीन संकट के समय असमर्थ—नौकरशाही में अधिकारीगण जनता से दूर विशाल भवन में कायदे से काम करने के आदी हो जाते हैं। सरकारी गोपनीयता का नियम भी उनकी सुरक्षा की भावना को बढ़ा देता है। सभी व्यक्ति (कर्मचारी) शान्ति, व्यवस्था और सुरक्षा की आवश्यकता के आदी हो जाते हैं। **वेबर** के शब्दों में, "हम जान-बूझ कर ऐसे व्यक्ति बनते हैं जिन्हें व्यवस्था या शान्ति की आवश्यकता है और केवल व्यवस्था की आवश्यकता है और यदि एक क्षण के लिए भी यह व्यवस्था नष्ट हो जाती है तो हम घबरा जाते हैं और कायर हो जाते हैं और यदि इस व्यवस्था के अंग नहीं बन पाते तो निस्सहाय हो जाते हैं।"

(4) परम्परात्मक मूल्यों का ह्रास—वेबर कहते है कि वास्तव में, युक्तिकरण, जिसकी एक प्रमुख अभिव्यक्ति नौकरशाही है, वस्तुत: अतार्किक (Irrational) है। तार्किकता हमें उन परम्परात्मक मूल्यों से अलग कर देती है जो मानव जीवन को अर्थ और लक्ष्य प्रदान करते हैं।

इस भाँति, हम वेबर की नौकरशाही के प्रति आशंका से भी परिचित होते हैं। उनकी आशंकाएँ सर्वदा निर्मूल साबित नहीं हुईं। वास्तव में, वह नौकरशाही के अन्धपुजारी नहीं थे, जैसा कि कुछ लोग उन्हें समझने की भूल करते हैं। वे महान् चिन्तक नौकरशाही, जो आज के युग की एक सर्वग्राही प्रक्रिया है, के प्रति पूर्णत: आश्वस्त नहीं थे। उन्होंने यह भी प्रयास किया कि वह तरीका खोजा जाए जिसके द्वारा नौकरशाही से होने वाले दुष्परिणामों की रोकथाम की जा सके अथवा उन्हें न्यूनतम किया जा सके। जब नौकरशाही अपरिहार्य बन गई है, तब उसके नियन्त्रण के उपाय खोज लेने में ही बुद्धिमानी है।

नौकरशाही पर नियन्त्रण के उपाय

(Measures for Control over Bureaucracy)

मैक्स वेबर के अनुसार नौकरशाही सदैव शक्ति का एक यन्त्र रहा है और आज भी है। इसलिए जो इस वृहद् यन्त्र पर शासन स्थापित कर सकता है, वह शक्ति पर भी काबू पा जाता है। शक्ति के ऊपर इस प्रकार आधिपत्य में निम्नलिखित दो खतरे निहित हैं—

प्रथम, आपत्तिकाल में नौकरशाही नेतृत्व शीघ्र काम नहीं कर पाता। दफ्तरी प्रक्रिया शीघ्र निर्णय के मार्ग में बाधा है और विपत्ति के समय तुरन्त निर्णय लेने ही पड़ते हैं।

दूसरे, पूँजीवादी व्यवस्थाओं में यह भी खतरा है कि पूँजीपति नौकरशाही की इस वृहद् मशीन पर आधिपत्य करके उसका प्रयोग अपने हितों के लिए कर सकते हैं।

इसलिए वेबर ने नौकरशाही पर नियन्त्रण को अत्यन्त आवश्यक बताया है। वेबर का इस समस्या के हल के लिए यह सुझाव था कि सरकारी नौकरशाही पर संसद का नियन्त्रण होना चाहिए। राजनेता जनता के प्रति जवाबदेह होते हैं। यही नहीं, उनके कार्यकलाप जन-नेत्रों से किसी भी क्षण ओझल नहीं होते। राजनेता जन आलोचना के विषय भी बनाए जा सकते हैं। इन सभी तर्कों के आधार पर यही जान पड़ता है कि नौकरशाही

राजनीतिक नेताओं के निर्देशन में कार्य करे। इस भाँति, वेबर ने सरकारी क्षेत्र में दोहरी प्रशासन पद्धति की सिफारिश की। फिर भी, वेबर के मन में यह आशंका बनी रही कि राजनीतिक नेता जन-सम्पर्क के तो कुशल और अनुभवी व्यक्ति होते हैं परन्तु उन्हें विशिष्ट क्षेत्रों का इतना अधिक और तकनीकी ज्ञान नहीं होता जितना नौकरशाही को होता है। **वेबर** के ही शब्दों में, "राजनीतिक नेता और प्रशिक्षित अधिकारी जिस समय आमने-सामने होते हैं, उस समय प्राय: राजनेता अधिकारी के सम्मुख एक नौसिखिया ही प्रतीत होता है।" ऐसी स्थिति में यह सम्भावना हो सकती है कि राजनीतिक नेता ही नौकरशाही के द्वारा निर्देशित होने लगें। परन्तु इसके अलावा और कोई उपाय अभी तक कारगर होता हुआ प्रतीत नहीं होता।

मर्टन के अनुसार नौकरशाही के प्रकार्य एवं अकार्य

(Functions and Dysfunctions of Bureaucracy according to Merton)

रोबर्ट के० मर्टन ने नौकरशाही की अवधारणा को और अधिक सुव्यवस्थित बनाकर, वेबर की अपेक्षा इसे एक व्यापक रूप देने का प्रयास किया है। इन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक **'सामाजिक सिद्धान्त तथा सामाजिक संरचना'** *(Social Theory and Social Structure)* में नौकरशाही के प्रकार्यात्मक एवं अकार्यात्मक पहलुओं की विस्तृत विवेचना की है। साथ ही, इन्होंने अकार्यों को उत्पन्न करने वाले संरचनात्मक स्रोतों का भी उल्लेख किया है। इनके अनुसार, "एक औपचारिक एवं तार्किक रूप से संगठित सामाजिक संरचना में सुस्पष्ट एवं परिभाषित क्रिया के प्रतिमान सम्मिलित होते हैं जिसमें आदर्श रूप से, प्रत्येक क्रिया संगठन के लक्ष्य से प्रकार्यात्मक दृष्टि से जुड़ी हुई है।"[1] इस प्रकार के संगठन में अनेक परस्पर सम्बन्धित विभिन्न स्तरीकृत पद पाए जाते हैं तथा प्रत्येक के साथ कुछ सुस्पष्ट रूप से परिभाषित उत्तरदायित्व तथा अधिकार जुड़े हुए हैं। नौकरशाही में नियन्त्रण की शक्ति किसी विशेष व्यक्ति के कारण नहीं अपितु पद के कारण प्राप्त होती है। यह संगठन औपचारिक है तथा विभिन्न पदों में निश्चित दूरी पाई जाती है तथा इसी औपचारिकता के कारण व्यक्तिगत रूप से समन्वय न होने पर भी पदों के अनुसार भूमिकाएँ निभाना सम्भव हो पाता है।

मर्टन ने नौकरशाही को एक औपचारिक संगठन माना है जिसमें विभिन्न पदों पर नियुक्त व्यक्ति नियमों के अनुसार अपने उत्तरदायित्व निभाते हैं। यह विवेक पर आधारित होता है तथा नियन्त्रण की शक्ति व्यक्ति-विशेष के कारण नहीं अपितु पद से जुड़ी हुई सत्ता से सम्भव हो पाती है।

मर्टन यह मानते हैं कि नौकरशाही का शास्त्रीय विश्लेषण अथवा आदर्श-प्ररूप के निर्माण का श्रेय मैक्स वेबर को जाता है। वेबर के अनुसार पद के अनुसार की जाने वाली क्रियाओं, मान्यताओं तथा नियन्त्रणों में स्पष्ट विभाजन पाया जाता है तथा पद पर नियुक्ति औपचारिक अवैयक्तिक विधि (जैसे परीक्षा) के आधार पर तकनीकी योग्यता के अनुसार होती है। प्रशिक्षित वेतनभोगी अधिकारियों की क्रियाएँ सुस्पष्ट रूप से परिभाषित, सामान्य तथा अमूर्त नियमों द्वारा नियन्त्रित होती हैं। नौकरशाही में अधिकारी चुना हुआ नहीं होता अपितु उसकी नियुक्ति उच्च अधिकारियों द्वारा अथवा अवैयक्तिक प्रतियोगिता के आधार पर होती है।

नौकरशाही व्यावसायिक सुरक्षा में वृद्धि करती है। सेवा की अवधि, पेन्शन, वेतन, इन्क्रीमैण्ट, पदोन्नति की नियमित विधि की सुरक्षा का कार्य अधिकारी को बाहरी दबाव के बिना अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिए प्रेरित करता है। नौकरशाही को तकनीकी कार्यकुशलता, सूक्ष्मता, गति, विशेषज्ञ नियन्त्रण, सततता, अवैयक्तिकता तथा लक्ष्य की अधिकाधिक पूर्ति के कारण महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

नौकरशाही के विकास के साथ-साथ यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति उत्पादन के साधनों पर आधारित सामाजिक सम्बन्धों द्वारा नियन्त्रित नहीं होता है क्योंकि अधिक-से-अधिक व्यक्ति काम करना चाहते हैं इसलिए उन्हें कहीं-न-कहीं काम भी मिलना चाहिए। काम करने के लिए जिन यन्त्रों तथा उपकरणों की आवश्यकता होती है वे व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक अधिकारीतन्त्रों में उपलब्ध हैं। अधिकारिता का विकास व्यक्ति को उत्पादन के साधनों से पृथक् कर देता है, न तो श्रमिक के पास अपने यन्त्र होते हैं, न ही सैनिक के पास शस्त्र। ये यन्त्र तथा शस्त्र उसे नौकरशाही द्वारा प्रदान किए जाते हैं तथा इसी कारण वे उत्पादन के साधनों से पृथक् हो जाते हैं।

मर्टन के अनुसार नौकरशाही एक ऐसा प्रशासनिक ढाँचा है जिसमें जननीतियों पर वाद-विवाद तो हो सकता है परन्तु इन्हें प्राप्त करने की विधियों पर वाद-विवाद नहीं हो सकता है। इस प्रकार, मर्टन ने नौकरशाही को एक औपचारिक तार्किक संगठन मानकर मैक्स वेबर से मिलती-जुलती व्याख्या आदर्श-प्ररूप के रूप में प्रस्तुत की है।

मैक्स वेबर के विपरीत, रोबर्ट के० मर्टन ने नौकरशाही संगठन की उपलब्धियों तथा प्रकार्यों का वर्णन ही नहीं किया है अपितु हमारा ध्यान संरचना के उन आन्तरिक दबावों तथा तनावों की ओर भी दिलवाने का प्रयास किया है जिनके परिणामस्वरूप नौकरशाही में अकार्य उत्पन्न होते हैं। मर्टन का नौकरशाही के सिद्धान्त में सबसे बड़ा योगदान यही है कि इन्होंने उसके प्रकार्यात्मक पक्ष के साथ-साथ अकार्यात्मक पक्ष भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है तथा इसके लिए उन्होंने 'प्रशिक्षित अयोग्यता की अवधारणा' (Concept of trained incapacity) की सहायता ली है।

प्रशिक्षित अयोग्यता की अवधारणा **वेब्लन** (Veblen) द्वारा प्रस्तुत की गई है। वेब्लन के अतिरिक्त **दिवे** (Dewey) की धारणा 'व्यावसायिक मनोविकार' (Occupational psychosis) तथा **वारनोट** (Warnotte) की धारणा 'व्यावसायिक विकृति' (Occupational deformation) भी नौकरशाही के अकार्यात्मक पक्ष की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित करती है। नौकरशाही में पाए जाने वाले प्रमुख अकार्य अथवा दोष निम्नलिखित हैं—

(1) प्रशिक्षित अयोग्यता (Trained incapacity)—नौकरशाही का प्रमुख अकार्य प्रशिक्षित अयोग्यता है। **मर्टन** के अनुसार, "प्रशिक्षित अयोग्यता से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसमें किसी व्यक्ति की योग्यताएँ ही स्वयं उसकी अपर्याप्तताएँ अथवा कमियों के रूप में कार्य करने लगती हैं। प्रशिक्षण तथा मस्तिष्क पर आधारित क्रियाएँ, जिनको भूतकाल में सफलतापूर्वक लागू किया गया है, परिवर्तित परिस्थितियों में अनुपयुक्त प्रत्युत्तरों को विकसित करती हैं।" सरल शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि प्रशिक्षित योग्यता जहाँ एक व्यक्ति की क्षमता में वृद्धि करती है वहीं दूसरी ओर परिवर्तित परिस्थितियों में यह उसके प्रत्युत्तरों को सीमित करके गलत विधियों को अपनाने में भी सहायक हो सकती है।

(2) व्यावसायिक मनोविकार (Occupational psychosis)—परिवर्तित परिस्थिति में जब व्यक्ति का प्रशिक्षण ही उसमें असामंजस्य की परिस्थिति उत्पन्न कर देता है तो इसका एक अन्य परिणाम व्यावसायिक मनोविकार होता है। मर्टन का कहना है कि प्रतिदिन की अपनी दिनचर्या के परिणामस्वरूप व्यक्तियों में विशेष प्राथमिकताएँ, विरोध, भेदभाव तथा कुछ कार्यविधियों के प्रति महत्त्व का दृष्टिकोण विकसित हो जाता है तथा उनमें एक विशिष्ट मानसिक प्रकृति उभर आती है। यह मनोविकार विशेष संगठन द्वारा व्यावसायिक भूमिका की माँग के परिणामस्वरूप ही विकसित होता है।

(3) कठोर अनुशासन तथा अनुरूपता (Strict discipline and conformity)— नौकरशाही व्यक्ति को लकीर का फकीर बना देती है क्योंकि कठोर अनुशासन एवं नियमों के प्रति अनुरूपता के कारण व्यक्ति अपनी बुद्धि तथा क्षमता का प्रयोग ही नहीं करते हैं। यदि अत्यधिक अनुशासन और अनुरूपता तथा अपने कर्त्तव्यों के प्रति लगाव की मनोवृत्तियों में सन्तुलन न रहे तो भी कार्यकुशलता में कमी हो सकती है। कठोर अनुशासन तथा अनुरूपता व्यक्ति की कार्यकुशलता कम कर देते हैं।

(4) लक्ष्यों का विस्थापन (Displacement of goals)—नौकरशाही में कठोर अनुशासन में रहने के लिए तथा प्रतिपादित मान्यताओं एवं नियमों के अनुसार कार्य करने पर विशेष परन्तु अत्यधिक बल दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति संगठन के लक्ष्यों के प्रति उदासीन हो जाता है। नियमों का अनुपालन लक्ष्य प्राप्ति का साधन बनने की अपेक्षा स्वयं साध्य बन जाता है। एक अधिकारी के जीवन में अनुशासन तथा नियमों के प्रति अनुरूपता किसी लक्ष्य की प्राप्ति का साधन न रहकर स्वयं जीवन का एक लक्ष्य बन जाती है।

(5) औपचारिकता (Formalism)—नौकरशाही एक औपचारिक संगठन है तथा नियमबद्धता, अनुशासन एवं अवैयक्तिक सम्बन्धों के कारण अत्यधिक औपचारिकता अधिकारियों को संगठन के लक्ष्यों से दूर ले जाती है। व्यक्तियों में इतनी अधिक औपचारिकता आ जाती है कि वे यन्त्र की तरह अपना कार्य करने लगते हैं तथा इस प्रकार अन्य व्यक्तियों से भी उनकी दूरी बढ़ती जाती है। मर्टन का कहना है कि आवश्यक नियमों के प्रति अनुरूपता और औपचारिकता व्यक्तियों को उनके वास्तविक उद्देश्यों से विमुख कर देती है जिसके कारण ग्राहक अथवा अपने काम के लिए अधिकारियों से सम्पर्क करने वाले व्यक्ति भी असन्तुष्ट रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि नौकरशाही का अकार्यात्मक पक्ष अर्थात् नकारात्मक पक्ष भी है। अकार्य की व्याख्या मर्टन ने प्रशिक्षित अयोग्यता के आधार पर दी है अर्थात् नियमबद्धता तथा अनुशासन लक्ष्य-प्राप्ति का साधन न रहकर स्वयं में एक लक्ष्य बन जाता है जिससे लक्ष्यों का विस्थापन होता है और अधिकारी प्रशिक्षित होते हुए भी परिवर्तित परिस्थितियों में अनुकूलन नहीं रख सकते तथा प्रशिक्षित योग्यता कार्यकुशलता की अपेक्षा उनकी कार्यक्षमता को अयोग्य बनाना शुरू कर देती है।

रोबर्ट के० मर्टन के अनुसार प्रशिक्षित अयोग्यता के कारण अथवा अकार्यों के स्रोत स्वयं नौकरशाही की संरचना में ही विद्यमान हैं। एक प्रभावशाली नौकरशाही अधिकारियों से प्रत्युत्तरों में विश्वसनीयता तथा नियमबद्धता को बनाए रखने पर बल देती है तथा नियमों के प्रति भक्तिभाव के कारण वे निरपेक्ष हो जाते हैं तथा सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन कम होने लगता है। इससे अपर्याप्तता में वृद्धि होने लगती है। मर्टन के अनुसार अकार्यों को उत्पन्न करने वाले प्रमुख संरचनात्मक स्रोत निम्नलिखित हैं—

(1) भावनाओं का लक्ष्यों से साधनों की ओर विस्थापन (Displacement of sentiments from goals into means)—नौकरशाही की संरचना श्रेणीबद्ध संरचना होती है तथा अधिकारियों का जीवन भी नियोजित एवं श्रेणीबद्ध होता है अर्थात् अनेक संगठनात्मक साधन; जैसे वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति, पेन्शन, वार्षिक वेतन वृद्धि इत्यादि नियमबद्धता को प्रोत्साहन देते हैं। अधिकारी अपने सेवा काल में नियमों के पालन के प्रति इतना अधिक जागरूक हो जाता है कि यही नियमबद्धता उसमें कायरता, रूढ़िवादिता तथा तकनीकीवादिता पैदा कर देती है। **मर्टन** का कहना है, "नियमों के प्रति अत्यधिक प्रतीकात्मक महत्त्व के कारण भावनाओं का लक्ष्यों से साधनों की ओर विस्थापन हो जाता है।"[1] अत्यधिक अनुरूपता तथा नियमबद्धता लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन न रहकर स्वयं लक्ष्य बन जाते हैं। इससे नौकरशाही में अकार्य उत्पन्न होते हैं।

(2) सामान्य भाग्य की चेतना (Sense of common destiny)—नौकरशाही में अकार्य उत्पन्न करने वाला दूसरा प्रमुख स्रोत अधिकारियों में संयुक्त रूप से कार्य करने के परिणामस्वरूप सामान्य भाग्य की चेतना अथवा भावना का विकास है। पदाधिकारियों के उद्देश्य एक समान होते हैं तथा उनमें पदोन्नति के लिए किसी प्रकार की भी प्रतिस्पर्द्धा नहीं पाई जाती क्योंकि पदोन्नति का आधार वरिष्ठता होती है। ऐसी स्थिति में सहकारिता की भावना के विकास के साथ-साथ पदाधिकारी, चुने हुए उच्च अधिकारी अपने ग्राहकों के हितों की रक्षा करने के बजाय अपने हितों की रक्षा में लग जाते हैं। कई बार चुने हुए अधिकारी को पूर्ण सूचनाएँ तक उपलब्ध नहीं की जा सकतीं ताकि उसे अकुशलता के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके। अधिकारी अपनी तथा अपने अधीन कार्य करने वाले व्यक्तियों की सत्ता की रक्षा करने के प्रयास में अपनी सामान्य प्रारब्ध की चेतना इतनी अधिक विकसित कर लेता है कि वह किसी भी परिवर्तन के प्रति उदासीन बन जाता है।

(3) पदाधिकारियों का अपने जीवन के प्रकार से भावात्मक सात्मीकरण (Bureaucrats' affective identification with their way of life)—मर्टन का कहना है कि नवीन व्यवस्था अथवा परिवर्तन का स्रोत केवल अपने निजी स्वार्थ ही नहीं अपितु एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया भी इसके साथ जुड़ी हुई है। नौकरशाही में पदाधिकारी का अपने जीवन के प्रकार अर्थात् अपने रहन-सहन से भावात्मक सात्मीकरण हो जाता है। उसे अपने रहन-सहन एवं योग्यता पर इतना अभिमान हो जाता है कि वह इसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन सहन नहीं करता। यह अतार्किक अभिमान भी नौकरशाही में अकार्य उत्पन्न करने का एक प्रमुख स्रोत है।

(4) पवित्रीकरण की प्रक्रिया (Process of sanctification)—नौकरशाही में व्यावसायिक विभिन्नीकरण द्वारा अधिक धर्मनिरपेक्षीकरण उत्पन्न होने के साथ-साथ पदाधिकारियों के अन्दर अपने विशेषाधिकारों के प्रति पवित्रता की प्रवृत्ति भी विकसित होती है जिसे मर्टन ने पवित्रीकरण की प्रक्रिया कहा है। इन विशेषाधिकारों को अधिकारी नैतिक रूप से वैध मानने लगता है तथा ये लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन न रहकर स्वयं साध्य (अर्थात् लक्ष्य) बन जाते हैं। अपने विशेषाधिकारों के प्रति नैतिक वैधता की भावना नौकरशाही की कार्यकुशलता कम करने में सहायक है।

इस प्रकार, मर्टन ने नौकरशाही (अधिकारीतन्त्र) के प्रकार्यों एवं अकार्यों का विस्तृत विवेचन करके प्रकार्य एवं अकार्य की अवधारणा का स्पष्टीकरण ही नहीं किया है अपितु प्रकार्यवाद को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

नौकरशाही के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(Critical Evaluation of Theory of Bureaucracy)

अनेक विद्वानों ने मैक्स वेबर के नौकरशाही के सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की है—

(1) **हरालाम्बोस** तथा **हैल्ड** ने लिखा है कि मैक्स वेबर नौकरशाही के विश्लेषण में अन्त तक दुविधा की स्थिति से बाहर नहीं निकल पाए। इससे उनके विचारों में अस्पष्टता एवं द्वैधवृत्ति (Ambivalence) का दोष आ गया। इन्हीं विद्वानों के शब्दों में, "मैक्स वेबर की नौकरशाही के प्रति दृष्टि द्वैधवृत्ति वाली है। वे इसकी

संगठन के अन्य सभी स्वरूपों के ऊपर प्राविधिक श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। उनका यह भी विश्वास था कि एक वृहद् स्तरीय औद्योगिक समाज की प्रभावपूर्ण क्रियाशीलता के लिए यह आवश्यक भी है। जब उन्होंने देखा कि यह एक उत्तरदायी सरकार के लिए खतरा भी है, तो उन्होंने विश्वास किया कि इस खतरे का सामना मजबूत राजनीतिक नियन्त्रण द्वारा किया जा सकता है। परन्तु फिर भी मानवीय स्वतन्त्रता एवं प्रसन्नता के लिए नौकरशाही के परिणामों के प्रति वे निराशावादी ही बने रहे।''

(2) **एटजियोनी** का तर्क है कि मैक्स वेबर की नौकरशाही की अवधारणा सैद्धान्तिक रूप में तो दोषरहित दिखाई देती है, परन्तु व्यवहार में नौकरशाही संगठन में अनेक भिन्न सम्भावनाएँ हो सकती हैं जिन पर मैक्स वेबर ने ध्यान नहीं दिया। कभी-कभी संगठन की संरचना में परिवर्तन होने से सत्ता के स्रोत में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए—यह हो सकता है कि नौकरशाही का शिखर— अधिकारी— चमत्कारिक गुणों वाला व्यक्ति आ जाए और नौकरशाही की कार्यपद्धति ही प्रभावित हो उठे। इसी प्रकार, युद्ध काल में सैनिक संगठन, नौकरशाही स्वरूप रखते हुए भी, व्यवहार में औपचारिक नियमों और प्रक्रियाओं के अनुरूप नहीं चल पाता। इस औपचारिक व्यवस्था को भंग करना पड़ता है और सैन्य संचालन में चमत्कारिक गुणों का समावेश करना पड़ता है। युद्ध संचालन त्वरित निर्णय प्रक्रिया के द्वारा ही हो सकता है।

(3) मैक्स वेबर द्वारा वर्णित नौकरशाही संगठन की विशेषताएँ नौकरशाही के रंगमंच के बाह्य अभिनय को तो साकार रूप से स्पष्ट करने में पर्याप्त हैं, परन्तु रंगमंच के पर्दे के पीछे जो हित-विरोध और समझौतों की प्रक्रियाएँ चलती हैं, उनका खुलासा इससे नहीं हो पाता। वास्तविक जगत में किसी भी नौकरशाही से सम्बन्धित सोपान-बद्ध स्तरों में लगे कर्मचारी समूह अनेक मानवीय द्वेष और सहयोग की ऐसी क्रिया-प्रतिक्रिया में से गुजरते रहते हैं कि वेबर का नौकरशाही का यह आदर्श-प्ररूप उस सम्पूर्णता को पकड़ने में नितान्त अक्षम है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी यह बात माननी ही होगी कि मैक्स वेबर की यह मान्यता एकदम सही है कि संगठन अथवा प्रशासन में युक्तिकरण की प्रक्रिया घटित हो रही है और प्रत्येक क्षेत्र में नौकरशाही-स्वरूप ही लागू होता जा रहा है। **मैक्स वेबर** के इन शब्दों से असहमति प्रकट करना वास्तव में कठिन होगा, ''आज जन-प्रशासन की आवश्यकताओं के लिए यह (नौकरशाही) पूर्णत: अपरिहार्य है। प्रशासन के क्षेत्र में विकल्प केवल नौकरशाही और नौसिखियावाद के बीच ही हैं।'' साफ जाहिर है कि कोई भी व्यक्ति आज के जन समाज में प्रशासन जैसे दुरूह कार्य को शौकीन मिजाज लोगों के हाथ में नहीं सौंपना चाहेगा। इसके लिए तो प्रशिक्षित व विशेषज्ञ अधिकारीगणों पर ही भरोसा किया जा सकता है। यह भी सच है कि अपने पदों के छोटे-छोटे क्षेत्रों में लगे ये विशेषज्ञ एक भयावह दृश्य उपस्थित करते हैं परन्तु सिवाय उस भय को कम-से-कम करने के उपाय खोजने के अन्य कोई चारा भी नहीं है। **मैक्स वेबर** ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में वस्तु स्थिति का वर्णन किया है, ''यह सोचना भी भयावह है कि एक दिन संसार में प्रशासन के पहिए में लगे हुए दाँतों (Cogs) के अलावा और कुछ न होगा। ये छोटे आदमी छोटे कार्यों में लगे होंगे और बड़े कामों को पूरा करने में प्रयत्नशील होंगे परन्तु संसार केवल ऐसे लोगों के सिवाय किसी को न जानेगा—यह एक ऐसा उद्विकास है जिसमें हम अब फँस ही चुके हैं और इसलिए आज महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि हम नौकरशाही को कैसे उन्नत करें और गति प्रदान करें बल्कि यह है कि हम इस मशीन का क्या विरोध करें ताकि मानव जाति के कुछ हिस्से को आत्मा के इस टुकड़े-टुकड़े हो जाने से बचा सकें और नौकरशाही जीवन-शैली की सर्वोच्च प्रभुता से रक्षा कर सकें।''

●